कल्याण
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
वर्ष ६०
संकीर्तनाङ्क
संख्या १

'कल्याण'के सम्मान्य ग्राहकों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१—'कल्याण'के ६०वें वर्ष-(सन् १९८६ई०)का यह विशेषाङ्क—'*संकीर्तनाङ्क*' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४७२ पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठोंमें सूची आदि हैं। कई बहुरंगे तथा सादे चित्र भी यथास्थान दिये गये हैं। इस प्रकार विशेषाङ्कमें गतवर्षकी अपेक्षा इस वर्ष ४० पृष्ठ अधिक एवं (रंगीन और सादे मिलाकर) लगभग दुगुने चित्र बढ़ा दिये गये हैं।

२—जिन ग्राहकोंसे शुल्क-राशि अग्रिम मनीआर्डरद्वारा प्राप्त हो चुकी है, उन्हें विशेषाङ्क फरवरी अङ्कके सहित रजिस्ट्रीद्वारा भेजे जा रहे हैं। जिनसे शुल्कराशि प्राप्त नहीं हुई है, उन्हें अङ्क बचनेपर ही ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार वी० पी० पी० द्वारा भेजा जा सकेगा। रजिस्ट्रीकी अपेक्षा वी० पी० पी० द्वारा विशेषाङ्क भेजनेमें डाकखर्च अधिक लगता है, अतः ग्राहक महानुभावोंसे विनम्र अनुरोध है कि वे वी० पी० पी०की प्रतीक्षा और अपेक्षा न करके अपने तथा 'कल्याण'के हितमें वार्षिक शुल्कराशि कृपया मनीआर्डरद्वारा ही भेजें। 'कल्याण'का वार्षिक-शुल्क ३०.०० तीस रुपये मात्र है, जो मात्र विशेषाङ्कका ही मूल्य है।

३—ग्राहक-सज्जन मनीआर्डर-कूपनोंपर कृपया अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या या 'पुराना ग्राहक' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है, जिससे आपकी सेवामें '*संकीर्तनाङ्क*' नयी ग्राहक-संख्याके क्रमसे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्याके क्रमसे इसकी वी० पी० पी० भी जा सकती है। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप शुल्क-राशि मनीआर्डरसे भेज दें और उसके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी० पी० पी० भी चली जाय। ऐसी स्थितिमें आपसे प्रार्थना है कि आप कृपया वी० पी० पी० लौटायें नहीं; अपितु प्रयत्न करके किन्हीं अन्य सज्जनको नया ग्राहक बनाकर वी० पी० पी०से भेजे गये 'कल्याण'-अङ्क उन्हें दे दें और उनका नाम तथा पूरा पता सुस्पष्ट, सुवाच्य लिपिमें लिखकर हमारे कार्यालयको भेजनेका अनुग्रह करें। आपके इस कृपापूर्ण सहयोगसे आपका अपना 'कल्याण' व्यर्थ डाक-व्ययकी हानिसे तो बचेगा ही, इस प्रकार आप भी 'कल्याण'के पावन प्रचारमें सहायक एवं सहयोगी बनकर पुण्यके भागी होंगे।

४—विशेषाङ्क—'*संकीर्तनाङ्क*'के साथमें 'फरवरी'१९८६का दूसरा अङ्क भी ग्राहकोंकी सेवामें (शीघ्र और सुरक्षित पहुँचानेकी दृष्टिसे) रजिस्टर्ड-पोस्टसे भेजा जा रहा है। फरवरीके साधारण अङ्कमें भी इस वर्ष ८ पृष्ठ अधिक बढ़ाकर दिये गये हैं। आगेके अङ्कोंमें भी ८ पृष्ठोंकी अतिरिक्त सामग्री दिये जानेका निश्चय किया गया है। यद्यपि यथाशक्य तत्परता और शीघ्रता करनेपर भी सभी ग्राहकोंको अङ्क भेजनेमें अनुमानतः ६-७ सप्ताह तो लग ही सकते हैं; तथापि विशेषाङ्कको ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार ही भेजनेकी प्रक्रिया होनेसे किन्हीं महानुभावोंको अङ्क कुछ विलम्बसे मिलें तो वे अपरिहार्य कारण समझकर कृपया हमें क्षमा करेंगे।

५—विशेषाङ्कके लिफाफे (या रैपर) पर आपकी जो ग्राहक-संख्या लिखी गयी है, उसे आप कृपया पूर्ण सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० पी० नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये, जिससे आवश्यकतानुसार पत्राचारके समय उनका उल्लेख किया जा सके। इससे कार्यकी सम्पन्नतामें शीघ्रता एवं सुविधा होगी एवं कार्यालयकी शक्ति और समय व्यर्थ नष्ट होनेसे बचेंगे।

६—'कल्याण' व्यवस्था-विभाग एवं गीताप्रेस-पुस्तक-विक्रय-विभागको अलग-अलग समझकर सम्बन्धित पत्र, पार्सल, पैकेट, मनीआर्डर, बीमा आदि पृथक्-पृथक् पतोंपर भेजने चाहिये। पतेके स्थानपर केवल 'गोरखपुर' ही न लिखकर पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुरके साथमें पिन-कोड सं०—२७३००५ भी अवश्य लिखनी चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय गीताप्रेस, गोरखपुर, पिन-२७३००५।

सं० अं० ६—

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस विश्वसाहित्यके अमूल्य ग्रन्थरत्न हैं। इनके पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोक दोनोंमें अपना कल्याण साध सकता है। इनके स्वाध्यायमें वर्ण, आश्रम, जाति, अवस्था आदि कोई भी बाधक नहीं है। आजके समयमें इन दिव्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है। अतः धर्मप्राण जनताको इन कल्याणमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं विचारोंसे अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ'की स्थापना की गयी है। इसके सदस्योंकी संख्या इस समय लगभग पचास हजार है। इसमें श्रीगीताके छः प्रकारके और श्रीरामचरितमानसके तीन प्रकारके सदस्य बनाये गये हैं। इसके अतिरिक्त उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्य इष्टदेवके नामका जप-ध्यान और मूर्तिकी पूजा अथवा मानसिक पूजा करनेवाले सदस्योंकी श्रेणी भी है। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन एवं उपासनाकी सत्प्रेरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन परिचय-पुस्तिका निःशुल्क मँगवाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा करें एवं श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित होकर अपने जीवनका कल्याणमय पथ उज्ज्वल करें।

पत्र-व्यवहारका पता—मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, पत्रालय—स्वर्गाश्रम—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश) जिला—पौड़ीगढ़वाल (उ० प्र०)

साधक-संघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्मविकासपर ही अवलम्बित है। आत्मविकासके लिये जीवनमें सत्यता, सरलता, निष्कपटता, सदाचार, भगवत्-परायणता आदि दैवी गुणोंका संग्रह और असत्य, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, हिंसा आदि आसुरी लक्षणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ उपाय है। मनुष्यमात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन उद्देश्यसे लगभग ३८वर्ष पूर्व साधक-संघकी स्थापना की गयी थी। इसका सदस्यताशुल्क कुछ नहीं है। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोंको इसका सदस्य बनना चाहिये। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम बने हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' एवं एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है, जिन्हें सदस्य बननेके इच्छुक भाई-बहनोंको मात्र ४५ पैसे डाक-टिकट या मनीआर्डरद्वारा अग्रिम भेजकर मँगवा लेना चाहिये। साधक उस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं।

विशेष जानकारीके लिये कृपया निःशुल्क नियमावली मँगवाइये।

पता—संयोजक, 'साधक-संघ' द्वारा—'कल्याण' सम्पादन-विभाग, पत्रालय—गीताप्रेस, जनपद—गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)

श्रीगीता-रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस मङ्गलमय एवं दिव्यतम ग्रन्थ हैं। इनमें मानवमात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है और जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्रायः सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योंने इनके अनुवादोंको भी पढ़कर अवर्णनीय लाभ उठाया है। इन ग्रन्थोंके प्रचारके द्वारा लोक-मानसको अधिकाधिक परिष्कृत करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसकी परीक्षाओंका प्रबन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें बैठनेवाले लगभग बीस हजार परीक्षार्थियोंके लिये ४०० (चार सौ) परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर कार्ड भेजें—

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, पत्रालय-स्वर्गाश्रम, पिन-२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश), जनपद—पौड़ीगढ़वाल (उ० प्र०)

संकीर्तनाङ्ककी विषय-सूची

जिज्ञासा-समाधान

मनन करने योग्य—

चित्र-सूची

(बहुरंगे चित्र)

(सादे चित्र)

(रेखा-चित्र)

परमभागवतोंका महासंकीर्तन

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥

वर्ष ६० } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२११, जनवरी १९८६ ई० { संख्या १ पूर्ण संख्या ७१०

महाभागवतोंका दिव्य संकीर्तन

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत् ।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा
यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥
ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र भक्त्यादिकानां नटवत्सुतेजसाम् ।

'चञ्चलगति प्रह्लादजी करताल, उद्धवजी झाँझ और नारदजी वीणा बजाने लगे, स्वरकुशल अर्जुन राग आलापने लगे, इन्द्र मृदङ्ग बजाने लगे और सनकादि सुन्दर जय-जयकार करने लगे। उनके आगे शुकदेवजी रसीली रचनासे भाव बताने लगे। तेजस्वी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नटोंके समान नाचने लगे।'

वैदिक शुभाशंसा

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा॒ꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥
(ऋक्० सं० १ । ८९ । ९)

'ब्रह्मादि यज्ञप्रिय-यजनशील देवगण ! कीर्तनकारी हम सब अपने कानोंसे मङ्गलमय एवं कल्याणकारक प्रभुके नाम-यशका श्रवण करें । आँखोंसे सुखकारी, मङ्गलमय भगवद्वाक्योंको देखें (पढ़ें, समझें, उनका बोध प्राप्त कर तदनुसार आचरण अथवा उनके विग्रहके दर्शन-अर्चन करें) । मङ्गलमय प्रभुकी स्तुति, कीर्तन, उपासना करते हुए और ज्ञानयोग्य पदार्थोंका यथार्थ रूपसे वर्णन करते हुए हमलोग स्थिर, दृढ, निश्चल अङ्गों और विस्तृत, हृष्ट-पुष्ट शरीरोंसे युक्त रहकर देवताओंकी जो आयु है, उसे भगवान्‌के यश-गुण-कीर्तन-हेतु प्राप्त करें ।'

संकीर्तनका वैदिक संदेश

मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे ।
विप्रासो जातवेदसः ॥ (ऋग्वेद ८ । ११ । ५)

'हम सभी मनुष्य तथा विद्वान् ब्राह्मणलोग अमृत, अविनाशी और व्यापक आप (परब्रह्म-परमात्मा)के नामको यज्ञ, तप आदिसे भी भूरि (अधिक) श्रेष्ठ मानते हैं । हम सभी उसका संकीर्तन करें ।'

आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित्सधस्थात् ।
अग्ने त्वांकामया गिरा ॥ (ऋक्० ८ । ११ । ७)

उठ रही मेरी वाणी आज, पिता ! पानेको तेरा धाम ।
अरे वह ऊँचा-ऊँचा धाम, जहाँ है जीवनका विश्राम ॥
तुम्हारे वत्सल रससे भीग, हृदयकी करुण कामना कान्त ।
खोजके चली विवश हो तुम्हें, रहेगी कबतक भवमें भ्रान्त ॥
दूर-से-दूर भले तुम रहो, खींच लायेगी किंतु समीप ।
विरत कबतक चातकसे जलद, स्वातिसे मुक्ता-भरिता सीप ॥

परमात्माका स्मरण परम मङ्गल

अशुभानि निराचष्टे तनोति शुभसंततिम् । स्मृतिमात्रेण यत्पुंसां ब्रह्मतन्मङ्गलं विदुः ॥
अतिकल्याणरूपत्वान्नित्यकल्याणसंश्रयात् । स्मर्तॄणां वरदत्वाच्च ब्रह्म तन्मङ्गलं विदुः ॥

'जो स्मरण मात्रसे सारे अमङ्गलोंको दूर कर कल्याण-परम्पराका विस्तार करता है, वह ब्रह्म परम मङ्गलमय है । अत्यन्त कल्याणरूप तथा मङ्गलोंका नित्य आश्रय होने और स्मरण-कीर्तन करनेवालोंको वरप्रदान करनेके कारण ब्रह्म परम मङ्गलमय है ।'

देववन्दना

'गणानां पतये नमः'

नमस्ते गणनाथाय गणानां पतये नमः। भक्तिप्रियाय देवेश भक्तेभ्यः सुखदायक॥
स्वानन्दवासिने तुभ्यं सिद्धिबुद्धिवराय च। नाभिशेषाय देवाय ढुण्ढिराजाय ते नमः॥
वरदाभयहस्ताय नमः परशुधारिणे। नमस्ते सृणिहस्ताय नाभिशेषाय ते नमः॥
अनामयाय सर्वाय सर्वपूज्याय ते नमः। सगुणाय नमस्तुभ्यं ब्रह्मणे निर्गुणाय च॥
ब्रह्मभ्यो ब्रह्मदात्रे च गजानन नमोऽस्तु ते। आदिपूज्याय ज्येष्ठाय ज्येष्ठराजाय ते नमः॥
मात्रे पित्रे च सर्वेषां हेरम्बाय नमो नमः। अनादये च विघ्नेश विघ्नकर्त्रे नमो नमः॥
विघ्नहर्त्रे स्वभक्तानां लम्बोदर नमोऽस्तु ते। त्वदीयभक्तियोगेन योगीशाः शान्तिमागताः॥

'भक्तोंको सुख देनेवाले देवेश्वर! आप भक्तिप्रिय तथा गणोंके अधिपति हैं, ऐसे आप गणनाथको नमस्कार है। आप 'स्वानन्दलोक'के वासी और सिद्धि-बुद्धिके प्राणवल्लभ हैं। आपकी नाभिमें भूषणरूपसे शेषनाग विराजते हैं, आप ढुण्ढिराज देवको नमस्कार है। आपके हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्राएँ हैं। आप परशु धारण करते हैं। आपके हाथमें अंकुश शोभा पाता है और नाभिमें नागराज विराजते हैं, अतः आपको नमस्कार है। आप रोगरहित, सर्वस्वरूप और सबके पूजनीय हैं, अतः आपको नमस्कार है। आप ही सगुण और निर्गुण ब्रह्म हैं, अतः आपको नमस्कार है। आप ब्राह्मणोंको ब्रह्म (वेद एवं ब्रह्म-तत्त्वका ज्ञान) देते हैं, अतः गजानन! आपको नमस्कार है। आप प्रथम पूजनीय, ज्येष्ठ (कुमार कार्तिकेयके बड़े भाई) और ज्येष्ठराज हैं, अतः आपको नमस्कार है। सबके माता-पिता आप हेरम्बको बारंबार नमस्कार है। विघ्नेश्वर! आप अनादि और विघ्नोंके भी जनक हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। लम्बोदर! आप अपने भक्तोंका विघ्न हरण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। योगीश्वरगण आपके भक्तियोगसे शान्तिको प्राप्त हुए हैं (अतः आप हमें भी सुख-शान्ति दीजिये)।'

'नमः शिवाय'

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै नकाराय नमः शिवाय॥
मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय तस्मै मकाराय नमः शिवाय॥
शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्दसूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै शिकाराय नमः शिवाय॥
वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्यमुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै वकाराय नमः शिवाय॥
यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै यकाराय नमः शिवाय॥

'जिनके कण्ठमें साँपोंका हार है, जिनके तीन नेत्र हैं, भस्म जिनका अङ्गराग (अनुलेपन) है और दिशाएँ ही जिनका वस्त्र हैं (अर्थात् जो नग्न हैं), उन शुद्ध अविनाशी महेश्वर 'न'कारस्वरूप शिवको नमस्कार है। गङ्गाजल और चन्दनसे जिनकी अर्चा हुई है, मन्दार-पुष्प तथा अन्यान्य कुसुमोंसे जिनकी सुन्दर पूजा हुई है, उन नन्दीके अधिपति, प्रमथगणोंके स्वामी महेश्वर 'म'कारस्वरूप शिवको नमस्कार है। जो कल्याणस्वरूप हैं, पार्वतीजीके मुखकमलको विकसित (प्रसन्न) करनेके लिये जो सूर्यस्वरूप हैं, जो दक्षके यज्ञका नाश करनेवाले हैं, जिनकी ध्वजामें बैलका चिह्न है, उन शोभाशाली नीलकण्ठ 'शि'कारस्वरूप शिवको नमस्कार है। वसिष्ठ, अगस्त्य और गौतम आदि मुनियोंने तथा इन्द्र आदि देवताओंने जिनके मस्तककी पूजा की है, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं, उन 'व'कारस्वरूप शिवको नमस्कार है। जिन्होंने यक्षरूप धारण किया है, जो जटाधारी हैं, जिनके हाथमें पिनाक है, जो दिव्य सनातन पुरुष हैं, उन दिगम्बर देव 'य'कारस्वरूप शिवको नमस्कार है।'

'नारायणि नमोऽस्तु ते'

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

'आप सृष्टि, पालन और संहारकी शक्तिभूता, सनातनी, गुणोंका आधार तथा सर्वगुणमयी हैं । नारायणि ! आपको नमस्कार है । शरणमें आये हुए दीनों एवं पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली तथा सबकी पीड़ा दूर करनेवाली नारायणी देवि ! आपको प्रणाम है । नारायणी देवि ! आप ब्रह्माणीका रूप धारण करके हंसजुते विमानपर बैठती हैं तथा कुशमिश्रित जल छिड़कती रहती हैं । आपको अभिवादन है । माहेश्वरी-रूपसे त्रिशूल, चन्द्रमा एवं सर्पको धारण करनेवाली तथा महान् वृषभकी पीठपर बैठनेवाली नारायणी देवि ! आपको नमस्कार है । शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग (धनुष) रूप उत्तम आयुधोंको धारण करनेवाली वैष्णवी शक्तिरूपा नारायणि ! आप प्रसन्न होइये, आपको नमस्कार है ।'

'नमोऽस्तु सूर्याय'

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशंकरात्मने ॥
नमोऽस्तु सूर्याय सहस्रमूर्तये सहस्रशाखान्वितसम्भवात्मने ।
सहस्रयोगोद्भवभावभाविने सहस्रसंख्यायुगधारिणे नमः ॥
यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति गायन्ति यच्चारणसिद्धसंघाः ।
यद्योगिनो योगजुषां च संघाः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥
सशङ्खचक्रं रविमण्डले स्थितं कुशेशयाक्रान्तमनन्तमच्युतम् ।
नमामि सूर्यं तपनीयमूर्तिं सुरोत्तमं चिन्मयमद्वितीयम् ॥

'जो विश्वके एकमात्र नेत्रभूत, जगत्की सृष्टि, पालन और प्रलयके कारण, वेदत्रयीस्वरूप और त्रिगुणमय आत्मावाले हैं, ब्रह्मा, विष्णु और शिव जिनके स्वरूप हैं, उन भगवान् सूर्यको नमस्कार है । जिनकी हजारों मूर्तियाँ हैं, जिनका स्वरूप सहस्र शाखाओंवाले वेदसे उद्भूत है, जो हजारों योगोंसे उत्पन्न हुए भावसे भावित और हजारों युगोंको धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् सूर्यको बार-बार प्रणाम है । वेदवेत्तागण जिसका वर्णन करते हैं तथा चारण, सिद्धसमुदाय और योगानुष्ठानमें संलग्न योगियोंके समूह जिसका गुणगान करते हैं, सविता देवका वह श्रेष्ठ मण्डल मुझे पावन बनाये । जो शङ्ख-चक्र धारण करके रविमण्डलमें पद्मासनपर स्थित, अनन्त, अच्युत, स्वर्णमूर्ति, सुरश्रेष्ठ, चिन्मय और अद्वितीय हैं, उन भगवान् सूर्यको मैं नमस्कार करता हूँ ।'

प्रातःस्मरणीय कीर्तन

प्रातःकालिक श्रीगणेशका स्मरण-कीर्तन

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं सिन्दूरपूर्णपरिशोभितगण्डयुग्मम् ।
उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्डमाखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम् ॥
प्रातर्नमामि चतुराननवन्द्यमानमिच्छानुकूलमखिलं च वरं ददानम् ।
तं तुन्दिलं द्विरसनाधिपयज्ञसूत्रं पुत्रं विलासचतुरं शिवयोः शिवाय ॥
प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्तशोकदावानलं गणविभुं वरकुञ्जरास्यम् ।
अज्ञानकाननविनाशनहव्यवाहमुत्साहवर्धनमहं सुतमीश्वरस्य ॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं सदा साम्राज्यदायकम् । प्रातरुत्थाय सततं प्रपठेत् प्रयतः पुमान् ॥

'जो इन्द्र आदि देवेश्वरोंके समूहद्वारा वन्दनीय और अनाथोंके बन्धु हैं, जिनके युगल कपोल सिन्दूरसे पूर्णतया अनुरञ्जित हैं, जो उद्दण्ड (प्रबल) विघ्नोंका खण्डन करनेके लिये प्रचण्ड दण्डस्वरूप हैं, उन श्रीगणेशजीको मै प्रातःकाल स्मरण करता हूँ । जो ब्रह्माके (भी) वन्दनीय है, अपने सेवकको उसकी इच्छाके अनुकूल पूर्ण वरदान देनेवाले हैं, तुन्दिल (लम्बोदर) हैं, सर्प ही जिनका यज्ञोपवीत है, उन क्रीड़ाकुशल शिव-पार्वतीके पुत्र (श्रीगणेशजी) को मै कल्याण-प्राप्तिके लिये प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ । जो अपने जनको अभय प्रदान करनेवाले हैं, भक्तोंके शोकरूप वनके लिये दावाग्नि हैं, गणोंके नायक हैं, जिनका मुख हाथीके समान और सुन्दर है तथा जो अज्ञानरूप वनको नष्ट करने (जलाने)के लिये अग्नि हैं, उन उत्साह बढ़ानेवाले शिवसुत श्रीगणेशजीका मै प्रातःकाल स्मरण-कीर्तन करता हूँ ।'

जो पुरुष प्रातःकाल उठकर संयतचित्तसे इन तीनो पवित्र श्लोकोंका नित्य पाठ करता है, उसे यह स्तोत्र सर्वदा साम्राज्यके समान सुख देता है ।

प्रातर्ब्रह्मस्मरण

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् ।
यत् स्वप्नजागरसुषुप्तिमवैति नित्यं तद् ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसङ्घः ॥
प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यं वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण ।
यन्नेति नेति वचनैर्निगमा अवोचंस्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम् ॥
प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ रज्ज्वां भुजंगम इव प्रतिभासितं वै ॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम् । प्रातःकाले पठेद् यस्तु स गच्छेत् परमं पदम् ॥

'मै प्रभातके समय हृदयमें स्फुरित होते हुए आत्मतत्त्वका स्मरण करता हूँ, जो सत्, चित् और आनन्दरूप है, परमहंसोंका प्राप्य स्थान है और जाग्रतादि तीनों अवस्थाओंसे विलक्षण (परे) है, जो स्वप्न, सुषुप्ति और जाग्रत् अवस्थाको नित्य जानता है, मैं वही स्फुरणारहित ब्रह्म हूँ, पञ्चभूतोंका संघात (शरीर) नहीं हूँ । जो मन

और वाणीसे अगम्य हैं, जिनकी कृपासे समस्त वाणी भास रही है, जिनका शास्त्र 'नेति-नेति' कहकर निरूपण करते हैं, जिन अजन्मा देवदेवेश्वर अच्युतको आद्य (आदि) पुरुष कहते हैं, मैं उन परमेश्वरका प्रातः भजन करता हूँ। जिन सर्वस्वरूप परमेश्वरमें यह समस्त संसार रज्जुमें सर्पके समान प्रतिभासित (प्रतीत) हो रहा है, उन अज्ञानातीत, दिव्यतेजोमय, पूर्ण सनातन पुरुषोत्तमको मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ।'

ये तीनो श्लोक तीनो लोकोके भूषण हैं। इनका जो कोई प्रातःकाल पाठ करता है, उसे परमपदकी प्राप्ति होती है।

श्रीशिवजीका प्रातःस्मरण-कीर्तन

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम्।
खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥
प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्धदेहं सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम्।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोऽभिरामं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥
प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम्।
नामादिभेदरहितं षड्भावशून्यं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम्॥
प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति।
ते दुःखजालं बहुजन्मसंचितं हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भोः॥

'जो सांसारिक भयको हरनेवाले और देवताओंके स्वामी हैं, जो गङ्गाजीको धारण करते हैं, जिनका वाहन वृषभ है, जो अम्बिकाके ईश हैं तथा जिनके हाथोंमें खट्वाङ्ग, त्रिशूल और वरद तथा अभय मुद्राएँ हैं, उन संसार-रोगको हरनेके निमित्त अद्वितीय औषधरूप ईश (महादेवजी)का मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ। भगवती पार्वती जिनका आधा अङ्ग हैं, जो संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण हैं, आदिदेव हैं, विश्वनाथ हैं, विश्वविजयी और मनोहर हैं, सांसारिक रोगको नष्ट करनेके लिये अद्वितीय औषधरूप उन गिरिश (शिव)को मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ। जो अन्तसे रहित आदिदेव हैं, वेदान्तसे जाननेयोग्य, पापरहित एवं महान् पुरुष हैं तथा जो नाम आदि भेदोंसे रहित, छः अभावोंसे शून्य, संसाररोगको हरनेके लिये अद्वितीय औषध हैं, उन एक (अद्वितीय) शिवजीको मैं प्रातःकाल भजता हूँ।'

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर शिवका ध्यान कर प्रतिदिन इन तीनो श्लोकोंका पाठ करते हैं, वे लोग अनेक जन्मोंके संचित दुःखसमूहसे मुक्त होकर शिवजीके उसी कल्याणमय पदको पाते हैं।

श्रीविष्णुका प्रातःस्मरण-कीर्तन

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम्।
ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम्॥
प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना पादारविन्दयुगलं परमस्य पुंसः।
नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य पारायणप्रवणविप्रपरायणस्य॥

प्रातर्भजामि भजताभयंकरं तं प्राक्सर्वजन्मकृतपापभयापहत्यै ।
यो ग्राहवक्त्रपतिताङ्घ्रिगजेन्द्रघोरशोकप्रणाशनकरो धृतशङ्खचक्रः ॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं प्रातः प्रातः पठेन्नरः । लोकत्रयगुरुस्तस्मै दद्यादात्मपदं हरिः ॥

'मैं प्रातःकाल गरुडवाहन, कमलनाभ, ग्राहसे ग्रसित गजेन्द्रकी मुक्तिके कारण, सुदर्शन-चक्रधारी, नवविकसितकमलपत्रके समान नेत्रवाले नारायणका भवभयरूपी महान् दुःखकी शान्तिके लिये स्मरण करता हूँ । वेदोंका स्वाध्याय करनेवाले विप्रोंके परम आश्रय, नरकरूप संसारसमुद्रसे तारनेवाले, उन परमपुरुष नारायणके चरणोंमें सिर झुकाकर मैं मन-वचनसे प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ । जिन्होंने शङ्ख-चक्र धारण करके ग्राहके मुखमें पड़े हुए चरणवाले गजेन्द्रके घोर संकटका नाश किया, भक्तोंको अभय करनेवाले उन भगवान्‌को मैं अपने पूर्वजन्मोंके सब पापोंका नाश करनेके लिये प्रातःकाल भजता हूँ । जो मनुष्य इन तीनों श्लोकोंको प्रतिदिन प्रातःकाल पढ़ता है, उसे त्रिलोकगुरु श्रीहरि अपना अभय पद प्रदान कर देते हैं ।'

—:○:—

श्रीसूर्यका प्रातःस्मरण-कीर्तन

प्रातः स्मरामि खलु तत् सवितुर्वरेण्यं रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि ।
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम् ॥
प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभिर्ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्नुतमर्चितं च ।
वृष्टिप्रमोचनविनिग्रहहेतुभूतं त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च ॥
प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं पापौघशत्रुभयरोगहरं परं च ।
तं सर्वलोककलनात्मककालमूर्तिं गोकण्ठबन्धनविमोचनमादिदेवम् ॥
श्लोकत्रयमिदं भानोः प्रातः प्रातः पठेत् तु यः । स सर्वव्याधिनिर्मुक्तः परं सुखमवाप्नुयात् ॥

'मैं सूर्य भगवान्‌के उस श्रेष्ठ रूपका प्रातः समय स्मरण करता हूँ, जिसका मण्डल ऋग्वेद है, तनु यजुर्वेद है और किरणें सामवेद हैं तथा जो ब्रह्माका दिन है, जगत्‌की उत्पत्ति, रक्षा और नाशका कारण है तथा अलक्ष्य और अचिन्त्यस्वरूप है । मैं प्रातः समय शरीर, वाणी और मनके द्वारा ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओंसे स्तुत और पूजित, वृष्टिके कारण एवं अवृष्टिके हेतु, तीनों लोकोंके पालनमें तत्पर और सत्त्व आदि त्रिगुणरूप धारण करनेवाले तरणि (सूर्य भगवान्) को नमस्कार करता हूँ । जो पापोंके समूह तथा शत्रुजनित भय एवं रोगोंका नाश करनेवाले हैं, सबसे उत्कृष्ट हैं, सम्पूर्ण लोकोंके समयकी गणनाके निमित्तभूत कालस्वरूप हैं और गौओंके कण्ठबन्धन छुड़ानेवाले हैं, उन अनन्तशक्ति आदिदेव सविता (सूर्य भगवान्) का मैं प्रातःकाल भजन-कीर्तन करता हूँ ।' जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातः समय इन तीनों श्लोकोंका पाठ करता है, वह सब रोगोंसे मुक्त होकर परम सुख प्राप्त करता है ।

पराम्बा ललिताका प्रातःस्तवन-कीर्तन

प्रातः स्मरामि ललितावदनारविन्दं बिम्बाधरं पृथुलमौक्तिकशोभिनासम्।
आकर्णदीर्घनयनं मणिकुण्डलाढ्यं मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वलभालदेशम्॥
प्रातर्भजामि ललिताभुजकल्पवल्लीं रक्ताङ्गुलीयसदङ्गुलिपल्लवाढ्याम्।
माणिक्यहेमवलयाङ्गदशोभमानां पुण्ड्रेक्षुचापकुसुमेषुसृणीर्दधानाम्॥
प्रातर्नमामि ललिताचरणारविन्दं भक्तेष्टदाननिरतं भवसिन्धुपोतम्।
पद्मासनादिसुरनायकपूजनीयं पद्माङ्कुशध्वजसुदर्शनलाञ्छनाढ्यम्॥
प्रातः स्तुवे परशिवां ललितां भवानीं त्रय्यन्तवेद्यविभवां करुणानवद्याम्।
विश्वस्य सृष्टिविलयस्थितिहेतुभूतां विद्येश्वरीं निगमवाङ्मनसातिदूराम्॥
प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्यनाम कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति।
श्रीशाम्भवीति जगतां जननी परेति वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः सौभाग्यदं सुललितं पठति प्रभाते।
तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना विद्यां श्रियं विमलसौख्यमनन्तकीर्तिम्॥

'मैं प्रातःकाल श्रीललितादेवीके उस मनोहर मुखकमलका स्मरण करता हूँ, जिसके बिम्ब-समान रक्तवर्ण अधर, विशाल मौक्तिक (मोतीवाली) नकबेसरसे सुशोभित नासिका तथा कर्णपर्यन्त फैले हुए विशाल नयन हैं, जो मणिमय कुण्डल और मन्द मुस्कानसे युक्त है तथा जिसका ललाट कस्तूरीके तिलकसे सुशोभित है। मैं श्रीललितादेवीकी भुजारूपिणी कल्पलताका प्रातःकाल स्मरण करता हूँ, जो लाल अँगूठीसे सुशोभित सुकोमल अँगुलिरूप पल्लवोंवाली तथा रत्नजटित सुवर्णमय कङ्कण और अङ्गदादिसे भूषित है एवं जो पौंड़ा-ईखके धनुष, पुष्पमय बाण और अङ्कुश धारण किये हुए है। मैं श्रीललितादेवीके चरणकमलोंको, जो भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाले और संसारसागरके लिये सुदृढ़ जहाजरूप हैं तथा कमलासन श्रीब्रह्माजी आदि देवेश्वरोंसे पूजित और पद्म, अङ्कुश, ध्वज एवं सुदर्शनादि मङ्गलमय चिह्नोंसे युक्त हैं, प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ। मैं प्रातःकाल परमकल्याणरूपिणी श्रीललिता भवानीकी स्तुति करता हूँ, जिनका वैभव वेदान्तवेद्य है, जो कल्याणमयी होनेसे शुद्धस्वरूपा है, विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लयकी मुख्य हेतु हैं, विद्याकी अधिष्ठात्री देवी हैं तथा वेद, वाणी और मनकी गतिसे अति दूर हैं। ललिते! मैं आपके पुण्यनाम कामेश्वरी, कमला, महेश्वरी, शाम्भवी, जगज्जननी, परा, वाग्देवी तथा त्रिपुरेश्वरी आदिका प्रातःकाल अपनी वाणीसे उच्चारण करता हूँ।'

माता ललिताके अति सौभाग्यप्रद और सुललित इन पाँच श्लोकोंको जो पुरुष प्रातःकाल पढ़ता है, उसे ललितादेवी शीघ्र ही प्रसन्न होकर विद्या, धन, निर्मल सुख और अनन्त कीर्ति देती हैं।

प्रातःकालिक श्रीरामका स्मरण-कीर्तन

प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं मन्दस्मितं मधुरभाषि विशालभालम्।
कर्णावलम्बिचलकुण्डलशोभिगण्डं कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम्॥
प्रातर्भजामि रघुनाथकरारविन्दं रक्षोगणाय भयदं वरदं निजेभ्यः।
यद् राजसंसदि विभज्य महेशचापं सीताकरग्रहणमङ्गलमाप सद्यः॥
प्रातर्नमामि रघुनाथपदारविन्दं पद्मा(वज्रा)ङ्कुशादिशुभरेखि सुखावहं मे।
योगीन्द्रमानसमधुव्रतसेव्यमानं शापापहं सपदि गौतमधर्मपत्न्याः॥
प्रातर्वदामि वचसा रघुनाथनाम वाग्दोषहारि सकलं शमलं निहन्ति।
यत्पार्वती स्वपतिना सह भोक्तुकामा प्रीत्या सहस्रहरिनामसमं जजाप॥
प्रातः श्रये श्रुतिनुतां रघुनाथमूर्तिं नीलाम्बुजोत्पलसितेतररत्ननीलाम्।
आमुक्तमौक्तिकविशेषविभूषणाढ्यां ध्येयां समस्तमुनिभिर्जनमुक्तिहेतुम्॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रयतः पठेद्धि नित्यं प्रभातसमये पुरुषः प्रबुद्धः।
श्रीरामकिङ्करजनेषु स एव मुख्यो भूत्वा प्रयाति हरिलोकमनन्यलभ्यम्॥

'जो मधुर मुसकानयुक्त, मधुरभाषी और विशाल भालसे सुशोभित है, जिसके दोनो कपोल कानोंमें लटके हुए चञ्चल कुण्डलोसे शोभित हो रहे हैं तथा जो कर्णपर्यन्त फैले बड़े-बडे नेत्रोसे शोभायमान और नेत्रोंको आनन्द देनेवाला है, ऐसे श्रीरघुनाथजीके मुखारविन्दका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ। मै प्रातःकाल श्रीरघुनाथजीके उन करकमलोंका स्मरण करता हूँ, जो राक्षसोको भय एवं अपने भक्तोंको वर देनेवाले हैं और जिन्होंने (जनककी) राजसभामें शंकरका धनुष शीघ्र तोड़कर सीताका मङ्गलमय पाणिग्रहण किया था। मै प्रातःकाल श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंको नमस्कार करता हूँ, जो पद्म (या वज्र), अङ्कुश आदि शुभ रेखाओसे युक्त, मुझे सुख देनेवाले तथा योगियोके मन-मधुपद्वारा सेवित और गौतमपत्नी अहल्याके शापको दूर करनेवाले हैं। मै प्रातःकाल अपनी वाणीसे श्रीरघुनाथजीके नामका जप (वैखरी वाणीमें कीर्तन) करता हूँ, जो वाणीके दोषोको नाश करनेवाला और सभी पापोको हरनेवाला है तथा जिसे भगवती पार्वतीजीने अपने पति शंकरके साथ भोजन करनेकी लालसासे शीघ्रतामें भगवान्‌के सहस्रनामके सदृश (मानकर) प्रीतिसहित जपा था। मै प्रातःकाल श्रीरघुनाथजीकी वेदवन्दित मूर्तिका आश्रय लेता हूँ, जो नीलकमल और नीलमणिके समान नीलवर्ण, लटकते हुए मोतियोंकी मालासे विभूषित एवं समस्त मुनियोंकी ध्येय तथा भक्तोंको मोक्ष प्रदान करनेवाली है।'

जो पुरुष प्रातःकाल नींदसे जगकर जितेन्द्रियभावसे इन पॉच श्लोकोका नित्य पाठ करता है, वह श्रीरामजीके सेवकों (भक्तों)में मुख्य होकर श्रीहरिके लोकको, जो दूसरोके लिये दुर्लभ है, प्राप्त करता है।

स्तवन-भजन

'हरेर्नामैव केवलम्'

मधुरं मधुरेभ्योऽपि मङ्गलेभ्योऽपि मङ्गलम्। पावनं पावनेभ्योऽपि हरेर्नामैव केवलम्॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मायामयं जगत्। सत्यं सत्यं पुनः सत्यं हरेर्नामैव केवलम्॥
स गुरुः स पिता चापि सा माता बान्धवोऽपि सः। शिक्षयेच्चेत्सदा स्मर्तुं हरेर्नामैव केवलम्॥
निःश्वासे न हि विश्वासः कदा रुद्धो भविष्यति। कीर्तनीयमतो बाल्याद्धरेर्नामैव केवलम्॥
हरिः सदा वसेत्तत्र यत्र भागवता जनाः। गायन्ति भक्तिभावेन हरेर्नामैव केवलम्॥
अहो दुःखं महादुःखं दुःखाद् दुःखतरं यतः। काचार्थं विस्मृतं रत्नं हरेर्नामैव केवलम्॥
दीयतां दीयतां कर्णो नीयतां नीयतां वचः। गीयतां गीयतां नित्यं हरेर्नामैव केवलम्॥
तृणीकृत्य जगत्सर्वं राजते सकलोपरि। चिदानन्दमयं शुद्धं हरेर्नामैव केवलम्॥

'केवल हरिका नाम ही मधुरसे भी मधुर, मङ्गलमयसे भी मङ्गलमय और पवित्रसे भी पवित्र है। ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सारा संसार मायामय है, केवल हरिका नाम ही सत्य है, नाम ही सत्य है, फिर भी (कहता हूँ कि) नाम ही सत्य है। जो सर्वदा केवल हरिनाम-स्मरण करना ही सिखलाता है, वही गुरु है, वही पिता है, वही माता है और बन्धु भी वही है। श्वासका कुछ विश्वास नहीं, न मालूम कब रुक जायगा, इसलिये बाल्यावस्थासे ही केवल हरिनामका ही कीर्तन करना चाहिये। जहाँ भक्तजन भक्तिभावसे केवल हरिनामका ही गान करते हैं, वहाँ सर्वदा भगवान् विराजते हैं। अहो! महान् दुःख है! भयंकर कष्ट है!! सबसे बढ़कर शोक है!!! जो विषयरूपी काँचके लिये हरिनामरूपी रत्नको बिसार दिया जाता है। केवल हरिनामके श्रवणमें ही कान लगाओ, हरिनामकी ही वाणी बोलो और उसीका निरन्तर गान करो। सम्पूर्ण जगत्को तृणतुल्य करके सबके ऊपर केवल एक हरिका शुद्ध सच्चिदानन्दघन नाम ही विराजता है।'
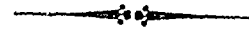
'भज विश्वनाथम्'

गङ्गातरङ्गरमणीयजटाकलापं गौरीनिरन्तरविभूषितवामभागम्।
नारायणप्रियमनङ्गमदापहारं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्॥
वाचामगोचरमनेकगुणस्वरूपं वागीशविष्णुसुरसेवितपादपीठम्।
वामेन विग्रहवरेण कलत्रवन्तं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्॥
भूताधिपं भुजगभूषणभूषिताङ्गं व्याघ्राजिनाम्बरधरं जटिलं त्रिनेत्रम्।
पाशाङ्कुशाभयवरप्रदशूलपाणिं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्॥
शीतांशुशोभितकिरीटविराजमानं भालेक्षणानलविशोषितपञ्चबाणम्।
नागाधिपारचितभासुरकर्णपूरं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्॥
पञ्चाननं दुरितमत्तमतङ्गजानां नागान्तकं दनुजपुङ्गवपन्नगानाम्।
दावानलं मरणशोकजराटवीनां वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्॥
तेजोमयं सगुणनिर्गुणमद्वितीयमानन्दकन्दमपराजितमप्रमेयम्।
नागात्मकं सकलनिष्कलमात्मरूपं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्॥
रागादिदोषरहितं स्वजनानुरागं वैराग्यशान्तिनिलयं गिरिजासहायम्।
माधुर्यधैर्यसुभगं गरलाभिरामं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्॥

आशां विहाय परिहृत्य परस्य निन्दां पापे रतिं च सुनिवार्य मनः समाधौ ।
आदाय हृत्कमलमध्यगतं परेशं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥
वाराणसीपुरपतेः स्तवनं शिवस्य व्याख्यातमष्टकमिदं पठते मनुष्यः ।
विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिं सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम् ॥
विश्वनाथाष्टकमिदं यः पठेच्छिवसंनिधौ । शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥

'जिनकी जटाएँ गङ्गाजीकी लहरोंसे सुन्दर प्रतीत होती हैं, जिनका वामभाग सदा पार्वतीजीसे सुशोभित रहता है, जो नारायणके प्रिय और कामदेवके मदका नाश करनेवाले हैं, उन काशीपति विश्वनाथका भजन-कीर्तन करो । वाणीद्वारा जिनका वर्णन नहीं हो सकता, जिनके अनेक गुण और अनेक स्वरूप हैं, ब्रह्मा, विष्णु और अन्य देवता जिनकी चरणपादुकाका सेवन करते हैं, जो अपने सुन्दर (अर्धनारीश्वरके रूपमें) वामाङ्गके द्वारा ही सपत्नीक है, उन काशीपति विश्वनाथका भजन-कीर्तन करो । जो भूतोंके अधिपति हैं, जिनका शरीर सर्परूपी आभूषणोंसे आभूषित है, जो बाघके चर्मका वस्त्र पहनते हैं, जिनके हाथोंमें पाश, अङ्कुश, शूल और अभय एवं वरप्रद मुद्राएँ हैं, उन जटाधारी, त्रिनयन काशीपति विश्वनाथका भजन-कीर्तन करो । जो चन्द्रमाद्वारा प्रकाशित किरीटसे शोभित हैं, जिन्होंने अपने भालस्थ नेत्रकी अग्निसे कामदेवको भस्म कर दिया, जिनके कानोंमें बडे-बडे साँपोंके कुण्डल चमक रहे हैं, उन काशीपति विश्वनाथको भजो, उनका कीर्तन करो । जो पापरूपी मतवाले हाथियोंको मारनेवाले सिंह हैं, दैत्यसमूहरूपी साँपोंका नाश करनेवाले गरुड हैं तथा जो मरण, शोक और बुढ़ापारूपी भीषण अरण्यको जला देनेवाले दावानल हैं, ऐसे काशीपति विश्वनाथका भजन-कीर्तन करो । जो तेजपूर्ण, सगुण, निर्गुण, आनन्दकन्द, अपराजित, अतुलनीय और अद्वितीय हैं, जो अपने शरीरपर साँपोंको धारण करते हैं, जिनका रूप ह्रास-वृद्धिरहित है, ऐसे आत्मस्वरूप काशीपति विश्वनाथका भजन-कीर्तन करो । जो रागादि दोषोंसे रहित हैं और अपने भक्तोंपर अनुग्रहशील हैं, जो वैराग्य और शान्तिके स्थान हैं, जिनके साथ पार्वतीजी सदा रहती हैं, जो धीरता और मधुरताके स्वभावसे सुषमाशाली हैं तथा जो कण्ठमें गरलके चिह्नसे सुशोभित हैं, उन काशीपति विश्वनाथका भजन-कीर्तन करो । सब आशाओंको छोड़कर, दूसरोंकी निन्दा त्यागकर और पापकर्मसे अनुराग (आसक्ति) हटाकर तथा चित्तको समाधिमें लगाकर हृदयकमलमें प्रकाशमान परमेश्वर काशीपति विश्वनाथका भजन-कीर्तन करो ।'

जो मनुष्य काशीपति शिवके आठ श्लोकोंके इस विख्यात स्तवनका पाठ करता है, वह प्रचुर विद्या, धन, सौख्य और अनन्त कीर्ति प्राप्तकर देहावसान होनेपर मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है । जो शिवके समीप इस विश्वनाथाष्टकका पाठ करता है, वह शिवलोक प्राप्त करता है और शिवके साथ आनन्दित होता है ।

भगवान् विश्वनाथ शरण्य हैं

सानन्दमानन्दवने वसन्तमानन्दकन्दं हतपापवृन्दम् ।
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥

'मैं आनन्दवन—काशीमें आनन्दपूर्वक निवास करनेवाले, पाप-समूहके नाशक, आनन्दके मूल, अनाथनाथ, काशीनाथ, विश्वनाथकी शरण लेता हूँ ।'

'भजत रे मनुजा गिरिजापतिम्'

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥

पशुपतिं द्युपतिं धरणीपतिं भुजगलोकपतिं च सतीपतिम् ।
प्रणतभक्तजनार्तिहरं परं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥

न जनको जननी न च सोदरो न तनयो न च भूरिबलं कुलम् ।
अवति कोऽपि न कालवशं गतं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥

मुरजडिण्डिमवाद्यविलक्षणं मधुरपञ्चमनादविशारदम् ।
प्रमथभूतगणैरपि सेवितं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥

शरणदं सुखदं शरणान्वितं शिव शिवेति शिवेति नतं नृणाम् ।
अभयदं करुणावरुणालयं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥

नरशिरोरचितं मणिकुण्डलं भुजगहारमुदं वृषभध्वजम् ।
चितिरजोधवलीकृतविग्रहं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥

मखविनाशकरं शशिशेखरं सततमध्वरभाजि फलप्रदम् ।
प्रलयदग्धसुरासुरमानवं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥

मदमपास्य चिरं हृदि संस्थितं मरणजन्मजराभयपीडितम् ।
जगदुदीक्ष्य समीपभयाकुलं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥

हरिविरञ्चिसुराधिपपूजितं यमजनेशधनेशनमस्कृतम् ।
त्रिनयनं भुवनत्रितयाधिपं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥

पशुपतेरिदमष्टकमद्भुतं विरचितं पृथिवीपतिसूरिणा ।
पठति संश्रृणुते मनुजः सदा शिवपुरीं वसते लभते मुदम् ॥

'अये मनुष्यो ! चाँदीके पर्वतकी कान्तिके समान जिनकी उज्ज्वल कान्ति है, जो सुन्दर चन्द्रमाको शिरोभूषणके रूपमें धारण करते हैं, जिनका शरीर रत्नमय अलङ्कारोंसे समुज्ज्वल एवं चमचमा रहा है, जिनके हाथोंमें परशु, मृग, वरद और अभयद मुद्राएँ हैं, जो प्रसन्न हैं, जो पद्मके आसनपर विराजमान हैं, देवतागण जिनके चारों ओर खड़े होकर स्तुति करते हैं, जो बाघकी खाल पहनते हैं, जो विश्वके आदि, जगत्की उत्पत्तिके बीज और समस्त भयोंको हरनेवाले हैं, जिनके पाँच मुख और तीन नेत्र हैं, उन महेश्वरका प्रतिदिन ध्यान करो ।

'अरे मनुष्यो ! जो समस्त प्राणियों, स्वर्ग, पृथ्वी और नागलोकके पति हैं, जो दक्षकी कन्या सतीके स्वामी हैं, जो शरणागत प्राणियो और भक्तजनोंकी पीड़ा दूर करनेवाले हैं, उन परमपुरुष पार्वतीके प्रियतम शंकरजीको भजो । ऐ मनुष्यो ! कालके वशमें पड़े हुए जीवको पिता, माता, भाई, बेटा, अत्यन्त बल और कुल—इनमेंसे कोई भी नहीं बचा सकता, इसलिये तुम परमरक्षक-पालक गिरिजापतिका भजन-कीर्तन करो । अरे मनुष्यो ! जो मृदङ्ग और डमरू बजानेमें निपुण हैं, मधुर पञ्चम स्वरके गानमें कुशल हैं, जिनकी सेवामें प्रमथ और भूतगण रहते हैं, उन गिरिजापतिका भजन करो । हे मनुष्यो ! 'शिव ! शिव ! शिव !' कहकर मनुष्य जिनको प्रणाम करते हैं, जो

शरणागतोंको शरण, सुख और अभय देनेवाले हैं, उन दयासागर गिरिजापतिका भजन-कीर्तन करो। अरे मनुष्यो! जो नरमुण्डरूपी मणियोंके कुण्डल और साँपोंका हार पहनते हैं, जिनका शरीर चिताकी राखसे धूसर है, उन वृषभध्वज गिरिजापतिको भजो। रे मनुष्यो! जिन्होंने दक्ष-यज्ञका विध्वंस किया था, जिनके मस्तकपर चन्द्रमा सुशोभित हैं, जो यज्ञ करनेवालोंको सदा ही फल देनेवाले हैं और जो प्रलयकालीन (प्रचण्ड) अग्निसे देवता, दानव और मानवोंको दग्ध करनेवाले हैं, उन गिरिजापतिको भजो। अरे मनुष्यो! जन्म, जरा और मरणके भयसे पीडित और सामने उपस्थित भयसे व्याकुल जगत्को देखकर बहुत दिनोंसे अपने हृदयमें संचित मदका त्यागकर उन गिरिजापतिका भजन करो। रे मनुष्यो! विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र जिनकी पूजा करते हैं, यम और कुबेर जिनको प्रणाम करते हैं, जिनके तीन नेत्र हैं तथा जो त्रिभुवनके स्वामी हैं, उन गिरिजापतिका कीर्तन-भजन करो।'

जो मनुष्य 'पृथ्वीपति सूरि'के बनाये हुए इस अद्भुत पशुपत्यष्टकका सदा पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, वह शिवपुरीमें निवास करता और आनन्दित होता है।

'कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण !'

(अच्युताष्टकम्)

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे॥

अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं माधवं श्रीधरं राधिकाराधितम्।
इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं देवकीनन्दनं नन्दजं संदधे॥

विष्णवे जिष्णवे शङ्खिने चक्रिणे रुक्मिणीरागिणे जानकीजानये।
वल्लवीवल्लभायार्चितायात्मने कंसविध्वंसिने वंशिने ते नमः॥

कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण श्रीपते वासुदेवाजित श्रीनिधे।
अच्युतानन्त हे माधवाधोक्षज द्वारकानायक द्रौपदीरक्षक॥

राक्षसक्षोभितः सीतया शोभितो दण्डकारण्यभूपुण्यताकारणः।
लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितोऽगस्त्यसम्पूजितो राघवः पातु माम्॥

धेनुकारिष्टकानिष्टकृद् द्वेषिहा केशिहा कंसहृद्वंशिकावादकः।
पूतनाकोपकः सूरजाखेलनो बालगोपालकः पातु मां सर्वदा॥

विद्युदुद्योतवत्प्रस्फुरद्वाससं प्रावृडम्भोदवत्प्रोल्लसद्विग्रहम्।
वन्यया मालया शोभितोरःस्थलं लोहिताङ्घ्रिद्वयं वारिजाक्षं भजे॥

कुञ्चितैः कुन्तलैर्भ्राजमानाननं रत्नमौलिं लसत्कुण्डलं गण्डयोः।
हारकेयूरकं कङ्कणप्रोज्ज्वलं किङ्किणीमञ्जुलं श्यामलं तं भजे॥

अच्युतस्याष्टकं यः पठेदिष्टदं प्रेमतः प्रत्यहं पूरुषः सस्पृहम्।
वृत्ततः सुन्दरं कर्तृविश्वम्भरस्तस्य वश्यो हरिर्जायते सत्वरम्॥

'मैं अच्युत, केशव, राम, नारायण, कृष्ण, दामोदर, वासुदेव, हरि, श्रीधर, माधव, गोपिकावल्लभ तथा जानकीनायक रामचन्द्रजीको भजता हूँ। (मैं) अच्युत, केशव, सत्यभामापति, लक्ष्मीपति, श्रीधर, राधिकाजीद्वारा आराधित, लक्ष्मीनिवास, परमसुन्दर, देवकीनन्दन, नन्दकुमारका चित्तसे ध्यान करता हूँ। जो विभु हैं, विजयी

हैं, शङ्ख-चक्रधारी हैं, रुक्मिणीजीके परम प्रेमी हैं, जिनकी धर्मपत्नी जानकीजी हैं तथा जो व्रजाङ्गनाओंके प्राणाधार हैं, उन कंसविनाशक, मुरलीमनोहर, परमपूज्य, आत्मस्वरूप आपको (मैं) नमस्कार करता हूँ । हे कृष्ण ! हे गोविन्द ! हे राम ! हे नारायण ! हे रमानाथ ! हे वासुदेव ! हे अजेय ! हे शोभाधाम ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे माधव ! हे अधोक्षज (इन्द्रियातीत)! हे द्वारकानाथ ! हे द्रौपदीरक्षक ! (मुझपर कृपा कीजिये ।) जो राक्षसोंपर अति कुपित हैं, श्रीसीताजीसे सुशोभित हैं, दण्डकारण्यकी भूमिकी पवित्रताके कारण हैं, श्रीलक्ष्मणजी-द्वारा अनुगत हैं, वानरोंसे सेवित हैं और श्रीअगस्त्यजीसे पूजित हैं, वे रघुवंशी श्रीरामचन्द्रजी मेरी रक्षा करें । धेनुक और अरिष्टासुर आदिका अनिष्ट करनेवाले, शत्रुओंका ध्वंस करनेवाले, केशी और कंसका वध करनेवाले, वंशीको बजानेवाले, पूतनापर कोप करनेवाले और यमुनातटपर विहार करनेवाले बालगोपाल मेरी सदा रक्षा करें । विद्युत्प्रकाशके सदृश जिनका पीताम्बर विभासित हो रहा है, वर्षाकालीन मेघोंके समान जिनका शरीर अति शोभायमान है, जिनका वक्षःस्थल वनमालासे विभूषित है तथा चरणयुगल अरुणवर्णके हैं, उन कमलनयन श्रीहरि-को (मैं) भजता हूँ । जिनका मुख घुँघराली अलकोंसे सुशोभित हो रहा है, मस्तकपर मणिमय मुकुट शोभा दे रहा है तथा जिनके कपोलोंपर कुण्डल सुशोभित हो रहे हैं, उज्ज्वल हार, केयूर (बाजूबन्द), कङ्कण और किङ्किणीकलापसे सुशोभित उन मञ्जुलमूर्ति श्रीश्यामसुन्दरको (मैं) भजता हूँ ।'

जो पुरुष इस अति सुन्दर छन्दवाले और अभीष्ट फलदायक अच्युताष्टकको प्रेम और श्रद्धासे नित्य पढ़ता है, विश्वम्भर, विश्वकर्ता भगवान् श्रीहरि शीघ्र ही उसके वशीभूत हो जाते हैं ।

भगवान् मुकुन्दकी जय

जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं
जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः ।
जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो
जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥
हे गोपालक हे कृपाजलनिधे हे सिन्धुकन्यापते
हे कंसान्तक हे गजेन्द्रकरुणापारीण हे माधव !
हे रामानुज हे जगत्त्रयगुरो हे पुण्डरीकाक्ष मां
हे गोपीजननाथ पालय परं जानामि न त्वां विना ॥

(मुकुन्दमाला)

'इन भगवान् देवकीनन्दनकी जय हो, जय हो । वृष्णिवंशके प्रदीपस्वरूप श्रीकृष्णकी जय हो, जय हो । कोमल शरीरवाले मेघ-सरीखे श्यामल (घनश्याम) की जय हो, जय हो । पृथ्वीका भार नष्ट करनेवाले मुकुन्दकी जय हो, जय हो । हे गोपालक ! हे कृपासागर ! हे लक्ष्मीपति ! हे कंसविनाशक ! हे गजेन्द्रपर असीम कृपा करनेवाले ! हे माधव ! हे बलरामके अनुज ! हे त्रिलोकगुरु ! हे कमलनयन ! हे गोपीजनोंके स्वामी ! मेरी रक्षा कीजिये । मैं आपके अतिरिक्त अन्य किसीको नहीं जानता ।'

महामन्त्रार्थ

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव ।

(यह महामन्त्र है । अन्तर्निहित अर्थ (भावार्थ)के ज्ञानसहित इसका जाप करे । भावार्थ नीचे दिया जा रहा है—)

श्रीकृष्ण—हे प्रभो ! आप सभीके मनको आकर्षित करनेवाले हैं, अतः आप मेरा मन भी अपनी ओर आकर्षित कर अपनी भक्ति-सेवाकी दिशामें सुदृढ़ कीजिये ।

गोविन्द—गौओं तथा इन्द्रियोंकी रक्षा करनेवाले भगवन् ! आप मेरी इन्द्रियोंको स्वयंमें लीन करें ।

हरे—हे दुःखहर्ता ! मेरे दुःखोंका भी हरण करें ।

मुरारे—हे मुर राक्षसके शत्रु ! मुझमें बसे हुए काम-क्रोधादिरूपी राक्षसोंका नाश कीजिये ।

हे नाथ—आप नाथ हैं और मै अनाथ हूँ । (मुझ अनाथका भाव आप नाथके साथ जुड़ा रहे ।)

नारायण—मै नर हूँ और आप नारायण हैं । (आपको प्राप्त करनेके लिये आपके आदर्शपर मै तपस्यामें रत रहूँ ।)

वासुदेव—वसुका अर्थ है प्राण । मेरे प्राणोंकी रक्षा करें । मैने अपना मन आपके चरणोंमें अर्पित कर दिया है ।

महामृत्युंजय मन्त्र और उसका शब्दार्थ

'ॐ हौं जूं सः, ॐ भूर्भुवः स्वः, ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । स्वः भुवः भूः ॐ । सः जूं हौं ॐ ।'—यह सम्पुटित महामृत्युंजय मन्त्र है । इसका अर्थ यह है*—

'मै ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र—इन तीनोके उत्पादक—पिता उन परब्रह्म परमात्माकी वन्दना करता हूँ, जिनका यश तीनों लोक सम्पूर्ण विश्वमें फैला हुआ है और जो विश्वके बीज एवं उपासकोंके अणिमादि ऐश्वर्योंके वर्धक है । वे अपने मूलसे पृथक् हुए ककड़ीके फलकी तरह मुझे मृत्यु या मर्त्यलोकसे मुक्त कर अमृतत्व (सायुज्य मोक्ष) प्रदान करे ।'

यही मन्त्र 'संजीवनी' नामसे भी विख्यात है । आये दिन, जबकि जीवन बहुत ही जटिल हो गया है और दुर्घटनाएँ प्रतिदिन हुआ करती हैं, इस मन्त्रके द्वारा सर्पदंश, बिजली-मोटर-दुर्घटना तथा अन्य सभी प्रकारकी दुर्घटनाओंसे जीवनकी रक्षा हो सकती है । इसके अतिरिक्त यह मन्त्र रोगोंका भी निवारण करता है । भाव, श्रद्धा तथा भक्तिके साथ इस मन्त्रके जपद्वारा ऐसी भयंकर व्याधियोका भी विनाश हो जाता है, जिन्हें डाक्टरोंने असाध्य बतला दिया है । इस मन्त्रसे मृत्युपर भी विजय प्राप्त हो सकती है । यह मोक्षका भी साधक है और दीर्घायु, शान्ति, धन, सम्पत्ति, तुष्टि तथा सद्गति भी प्रदान करता है ।

* यह मन्त्र ऋक् ७ । ५९ । १२, वाजस०, तैत्तिरीय, काण्वसंहिता, निरुक्त आदि कई ग्रन्थोंमें आया है । अकेले सायणाचार्यने इसपर जगह-जगह थोड़ी भिन्नता लिये व्याख्या लिखी है । यहाँ ऋग्भाष्यका भाव दिया गया है ।

शास्त्र-वचनामृत

नाम-संकीर्तनका महत्त्व

श्रीभगवन्नाम-संकीर्तनसे प्रारब्धकर्मका नाश

नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं
मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात्।
न यत् पुनः कर्मसु सज्जते मनो
रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥
(श्रीमद्भागवत)

'जो लोग इस संसार-बन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिये तीर्थपाद भगवान्‌के नाम-कीर्तनसे बढ़कर और कोई साधन ऐसा नहीं है, जो कर्मबन्धनकी जड़ (गाँठ) काट सके; क्योंकि नामका आश्रय लेनेसे मनुष्यका मन फिर सकाम कर्मोंमें आसक्त नहीं होता। भगवन्नामके अतिरिक्त दूसरे किसी प्रायश्चित्तका आश्रय लेनेपर मन रजोगुण और तमोगुणसे ग्रस्त ही रहता है तथा उसके पापोंका भी पूर्णतया नाश नहीं हो पाता।'

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः
पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान्।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं
प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥
(श्रीमद्भागवत)

'मरणोन्मुख रोगी तथा गिरता या किसीका स्मरण करता हुआ मनुष्य विवश होकर भी जिन भगवान्‌के नामका उच्चारण कर कर्मोंकी साँकलसे छुटकारा पाकर उत्तम गतिको प्राप्त कर लेता है, उन्हीं भगवान्‌का कलियुगके मनुष्य पूजन नहीं करेंगे (यह कितने कष्टकी बात है)।

नाम-संकीर्तनसे मुक्ति और परमधामकी प्राप्ति

इष्टापूर्तानि कर्माणि सुबहूनि कृतान्यपि।
भवे हेतूनि तान्येव हरेर्नाम तु मुक्तिदम् ॥
(भविष्यपुराण)

'इष्ट (यज्ञ-यागादि) और आपूर्त (कूप-वाटिका-निर्माण आदि) कर्म कितनी ही अधिक संख्यामें क्यों न किये जायँ, वे ही भव-बन्धनके कारण बनते हैं, परंतु श्रीहरिका नाम भव-बन्धनसे छुटकारा दिलानेवाला होता है।'

किं करिष्यसि सांख्येन किं योगैर्नरनायक।
मुक्तिमिच्छसि राजेन्द्र कुरु गोविन्दकीर्तनम् ॥
(गरुडपुराण)

'नरेन्द्र! सांख्य और योगका अनुष्ठान करके क्या करोगे? राजेन्द्र! यदि मुक्ति चाहते हो तो गोविन्दका कीर्तन करो।'

अप्यन्यचित्तोऽशुद्धो वा यः सदा कीर्तयेद्धरिम्।
सोऽपि दोषक्षयान्मुक्तिं लभेच्चेदिपतिर्यथा ॥
(ब्रह्मपुराण)

'जो अन्यमनस्क तथा अशुद्ध रहकर भी सदा हरिनामका कीर्तन करता है, वह भी अपने दोषोंका नाश हो जानेके कारण उसी तरह मोक्ष प्राप्त कर लेता है, जैसे चेदिराज शिशुपालने प्राप्त किया था।'

सकृदुच्चारयेद् यस्तु नारायणमतन्द्रितः।
शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्वाणमधिगच्छति ॥
(पद्मपुराण)

'जो आलस्य छोड़कर एक बार नारायण नामका उच्चारण कर लेता है, उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और वह निर्वाण-पदको प्राप्त कर लेता है।'

यथा कथंचिद् यन्नाम्नि कीर्तिते वा श्रुतेऽपि वा।
पापिनोऽपि विशुद्धाः स्युः शुद्धा मोक्षमवाप्नुयुः ॥
(बृहन्नारदीय)

'भगवान्‌के नामका जिस-किसी तरह भी उच्चारण या श्रवण कर लेनेपर पापी भी विशुद्ध हो जाते हैं और शुद्ध पुरुष मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं।'

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्।
ततः सद्यो विमुच्येत यद् बिभेति स्वयं भयम् ॥
(श्रीमद्भागवत)

'घोर संसार-बन्धनमें पड़ा हुआ मनुष्य विवश होकर भी यदि भगवन्नामका उच्चारण करता है तो वह

तत्काल उस बन्धनसे मुक्त हो जाता है और उस पदको प्राप्त कर लेता है, जिससे भय स्वयं भय मानता है।'

जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्।
विष्णुलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥
(बृहन्नारदीय)

'जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि'—ये दो अक्षर विद्यमान हैं, वह पुनरावृत्तिरहित विष्णुलोकको प्राप्त कर लेता है।'

तदेव पुण्यं परमं पवित्रं गोविन्दगेहे गमनाय पत्रम्।
तदेव लोके सुकृतैकसत्रं यदुच्यते केशवनाममात्रम्॥
(पद्मपुराण)

'भगवान् केशवके नाममात्रका जो उच्चारण किया जाता है, वही परम पवित्र पुण्यकर्म है। वही गोविन्दगेह (गोलोकधाम) में जानेके लिये वाहन है और वही इस लोकमें सुकृतका एकमात्र सत्र है।'

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद् धाम किमुत श्रद्धया गृणन्॥
(श्रीमद्भागवत)

'अन्तकालमें पुत्रके बहाने 'नारायण'-नामका उच्चारण करके पापी अजामिल भी भगवद्धाममें चला गया। फिर जो श्रद्धापूर्वक भगवान्‌का नाम लेता है, उसकी मुक्तिके लिये तो कहना ही क्या है?'

वासुदेवेति मनुज उच्चार्य भवभीतितः।
तन्मुक्तः पदमाप्नोति विष्णोरेव न संशयः॥
(आङ्गिरसपुराण)

'जो मनुष्य संसारभयसे भीत हो 'वासुदेव' नामका उच्चारण करता है, वह उस भयसे मुक्त हो निःसंदेह भगवान् विष्णुके ही पदको प्राप्त होता है।'

कलियुगमें संकीर्तनकी विशेषता

यदभ्यर्च्य हरिं भक्त्या कृते क्रतुशतैरपि।
फलं प्राप्नोत्यविकलं कलौ गोविन्दकीर्तनात्॥

'सत्ययुगमें भक्ति-भावसे सैकड़ों यज्ञोंद्वारा भी श्रीहरिकी आराधना करके मनुष्य जिस फलको पाता है, वह सारा-का-सारा कलियुगमें भगवान् गोविन्दका कीर्तनमात्र करके प्राप्त कर लेता है।'

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'नरेश्वर! मनुष्योंमें वे ही सौभाग्यशाली तथा निश्चय ही कृतार्थ हैं, जो कलियुगमें हरिनामका स्वयं स्मरण करते हैं और दूसरोंको भी स्मरण कराते हैं।'

कलिकालकुसर्पस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य मा भयम्।
गोविन्दनामदावेन दग्धो यास्यति भस्मताम्॥
(स्कन्दपुराण)

'तीखी दाढ़ोंवाले कलिकालरूपी दुष्ट सर्पका भय मत करो; क्योंकि वह गोविन्द-नामके दावानलसे दग्ध होकर शीघ्र ही राखका ढेर बन जायगा।'

हरिनामपरा ये च घोरे कलियुगे नराः।
त एव कृतकृत्याश्च न कलिर्बाधते हि तान्॥

'जो मनुष्य घोर कलियुगमें हरिनामकी शरण ले चुके हैं, वे ही कृतकृत्य हैं। कलि उन्हें बाधा नहीं पहुँचाता।'

हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय।
इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः॥
(बृहन्नारदीय०)

'हरे! केशव! गोविन्द! वासुदेव! जगन्मय!—इस प्रकार जो नित्य उच्चारण—कीर्तन करते हैं, उन्हें कलियुग कष्ट नहीं देता।'

येऽहर्निशं जगद्धातुर्वासुदेवस्य कीर्तनम्।
कुर्वन्ति तान् नरव्याघ्र न कलिर्बाधते नरान्॥
(विष्णुधर्मोत्तर)

'नरव्याघ्र! जो दिन-रात जगदाधार वासुदेवका कीर्तन करते हैं, उन मनुष्योंको कलियुग नहीं सताता।'

ते धन्यास्ते कृतार्थाश्च तैरेव सुकृतं कृतम्।
तैराप्तं जन्मनः प्राप्यं ये कलौ कीर्तयन्ति माम्॥

(भगवान् कहते हैं—) 'जो कलियुगमें मेरा कीर्तन करते हैं, वे धन्य हैं, कृतार्थ हैं, उन्होंने ही पुण्य-कर्म किया है तथा उन्होंने ही जन्म और जीवनका पाने योग्य फल पाया है।'

नाम-संकीर्तनसे सर्वपाप-नाश

पापानलस्य दीप्तस्य मा कुर्वन्तु भयं नराः ।
गोविन्दनाममेघौघैर्नश्यते नीरबिन्दुभिः ॥
(गरुडपुराण)

'मनुष्यो ! तुमलोग उद्दीप्त पापाग्निसे भय मत करो; क्योंकि वह गोविन्दनामरूपी मेघसमूहोंके जल-बिन्दुओंसे नष्ट हो जाती है ।'

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव ॥

'विवश होकर भी भगवान्‌के नामका कीर्तन करनेपर मनुष्य समस्त पातकोंसे उसी प्रकार मुक्त हो जाता है, जैसे सिंहसे डरे हुए भेड़िये अपने शिकारको छोड़कर भाग जाते हैं ।'

यन्नामकीर्तनं भक्त्या विलायनमनुत्तमम् ।
मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः ॥

'मैत्रेय ! भक्तिपूर्वक किया गया जिनके (भगवान्‌के) नामका कीर्तन उसी प्रकार समस्त पापोंको विलीन कर देनेवाला सर्वोत्तम साधन है, जैसे धातुओंके सारे मैलको जला डालनेके लिये आग ।'

सायं प्रातस्तथा कृत्वा देवदेवस्य कीर्तनम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥

'मनुष्य सायं और प्रातःकाल देवाधिदेव श्रीहरिका कीर्तन करके सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है ।'

नारायणो नाम नरो नराणां
प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम् ।
अनेकजन्मार्जितपापसंचयं
हरत्यशेषं श्रुतमात्र एव ॥
(वामनपुराण)

'इस पृथ्वीपर नारायण नामक एक नर (व्यक्ति) प्रसिद्ध चोर बताया गया है, जिसका नाम एवं यश कर्ण-कुहरोंमें प्रवेश करते ही मनुष्योंकी अनेक जन्मोंकी कमायी हुई समस्त पापराशिको हर लेता है ।'

गोविन्देति तथा प्रोक्तं भक्त्या वा भक्तिवर्जितैः ।
दहते सर्वपापानि युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥
(स्कन्दपुराण)

'मनुष्य भक्तिभावसे या भक्तिरहित होकर यदि गोविन्द नामका उच्चारण कर ले तो वह नाम सम्पूर्ण पापोंको उसी प्रकार दग्ध कर देता है, जैसे युगान्त-कालमें प्रज्वलित हुई प्रलयाग्नि सारे जगत्‌को जला डालती है ।'

गोविन्दनाम्ना यः कश्चिन्नरो भवति भूतले ।
कीर्तनादेव तस्यापि पापं याति सहस्रधा ॥

'भूतलपर जो कोई भी मनुष्य गोविन्द नामसे प्रसिद्ध होता है, उसके भी नामका कीर्तन करनेसे पापके सहस्रों टुकड़े हो जाते हैं ।'

प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत् ।
तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम दहेदघम् ॥

'जैसे असावधानीसे भी छू ली गयी आगकी चिनगारी उस अङ्गको जला देती है, उसी प्रकार यदि हरिनामका ओष्ठपुटसे स्पर्श हो जाय तो वह पापको जलाकर भस्म कर देता है ।'

अनिच्छयापि दहति स्पृष्टो हुतवहो यथा ।
तथा दहति गोविन्दनाम व्याजादपीरितम् ॥
(पद्मपुराण)

'जैसे अनिच्छासे भी स्पर्श कर लेनेपर आग शरीरको जला देती है, उसी प्रकार किसी बहानेसे भी लिया गया गोविन्द-नाम पापको दग्ध कर देता है ।'

नराणां विषयान्धानां ममताकुलचेतसाम् ।
एकमेव हरेर्नाम सर्वपापविनाशनम् ॥
(बृहन्नारदीय)

'ममतासे व्याकुल-चित्त हुए विषयान्ध मनुष्योंके समस्त पापोंका नाश करनेवाला एकमात्र हरिनाम ही है ।'

कीर्तनादेव कृष्णस्य विष्णोरमिततेजसः ।
दुरितानि विलीयन्ते तमांसीव दिनोदये ॥
(पद्मपुराण)

'अमित तेजस्वी सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्णके कीर्तनमात्रसे समस्त पाप उसी तरह विलीन हो जाते हैं, जैसे दिन निकल आनेपर अन्धकार ।'

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥

(बृहद्विष्णुपुराण)

'श्रीहरिके इस नाममें पापनाश करनेकी जितनी शक्ति है, उतना पातक पातकी मनुष्य अपने जीवनमें कर ही नहीं सकता ।'

श्वादोऽपि नहि शक्नोति कर्तुं पापानि मानतः ।
तावन्ति यावती शक्तिर्विष्णुनाम्नोऽशुभक्षये ॥

'भगवान् विष्णुके नाममें पापक्षय करनेकी जितनी शक्ति विद्यमान है, माप-तौलमें उतने पाप कुक्कुरभोजी चाण्डाल भी नहीं कर सकता ।'

श्रीभगवन्नामोच्चारणसे रोग-उत्पात-भूत-व्याधि आदिका नाश

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

'अच्युत, अनन्त, गोविन्द—इन नामोंके उच्चारणरूपी औषधसे समस्त रोग नष्ट हो जाते है, यह मै सर्वथा सत्य कहता हूँ ।'

न साम्ब व्याधिजं दुःखं हेयं नान्यौषधैरपि ।
हरिनामौषधं पीत्वा व्याधिस्त्याज्यो न संशयः ॥

'साम्ब ! व्याधिजनित दुःख स्वतः छूटने योग्य नहीं है, इसे दूसरी ओषधियोंद्वारा भी सहसा नहीं दूर किया जा सकता; परंतु हरिनामरूपी ओषधिका पान करनेसे निःसंदेह समस्त व्याधियोंका निवारण हो जाता है ।'

आधयो व्याधयो यस्य स्मरणान्नामकीर्तनात् ।
तत्रैव विलयं यान्ति तमनन्तं नमाम्यहम् ॥

'जिनके स्मरण और नामकीर्तनसे सम्पूर्ण आधियाँ (मानसिक चिन्ताएँ) और व्याधियाँ तत्काल नष्ट हो जाती हैं, उन भगवान् अनन्तको मै नमस्कार करता हूँ ।'

मायाव्याधिसमाच्छन्नो राजव्याध्युपपीडितः ।
नारायणेति संकीर्त्य निरातङ्को भवेन्नरः ॥

'जो मनुष्य मायामय व्याधिसे आच्छादित तथा राजरोगसे पीडित है, वह 'नारायण' नामका संकीर्तन करके निर्भय हो जाता है ।'

सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
शान्तिदं सर्वारिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥

'श्रीहरिके नामका बारंबार कीर्तन समस्त रोगोंको शान्त करनेवाला, सारे उपद्रवोंका नाशक और सम्पूर्ण अरिष्टोंकी शान्ति करनेवाला है ।'

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥

'जिनकी महिमा सर्वत्र विश्रुत (प्रसिद्ध) है, उन भगवान् अनन्तका जब कीर्तन किया जाता है, तब वे उन कीर्तनपरायण भक्तजनोंके चित्तमें प्रविष्ट हो उनके सारे संकटको उसी प्रकार नष्ट कर देते है, जैसे सूर्य अन्धकारको और आँधी बादलोंको ।'

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता
घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः ।
संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रं
विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति ॥

'पीडित, विषादग्रस्त, शिथिल, भयभीत तथा भयानक रोगोंमें पड़े हुए मनुष्य भी एकमात्र नारायण नामका कीर्तन करके समस्त दुःखोंसे छूटकर सुखी हो जाते हैं ।'

कीर्तनादेव देवस्य विष्णोरमिततेजसः ।
यक्षराक्षसवेतालभूतप्रेतविनायकाः ॥
डाकिन्यो विद्रवन्ति स्म ये तथान्ये च हिंसकाः ।
सर्वानर्थहरं तस्य नामसंकीर्तनं स्मृतम् ॥
नामसंकीर्तनं कृत्वा क्षुत्तृट्प्रस्खलितादिषु ।
वियोगं शीघ्रमाप्नोति सर्वानर्थैर्न संशयः ॥

'अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुके कीर्तनसे ही यक्ष, राक्षस, भूत, वेताल, प्रेत, विनायक (विघ्न), डाकिनी-गण तथा अन्य जो भी हिंसक भूतगण हैं, वे सब भाग जाते हैं। भगवान्का नाम-संकीर्तन सम्पूर्ण अनर्थोंका नाशक कहा गया है। भूख-प्यासमें तथा गिरने, लड़खड़ाने आदिके समय भगवन्नाम-संकीर्तन करके मनुष्य निःसंदेह सारे अनर्थोंसे छुटकारा पा जाता है।'

मोहानलोल्लसज्ज्वालाज्वलल्लोकेषु सर्वदा।
यन्नामाम्भोधरच्छायां प्रविष्टो नैव दह्यते॥

'मोहाग्निकी धधकती हुई ज्वालाओंसे सदा जलते हुए लोकोंमें जो भगवन्नामरूपी जलधरकी छायामें प्रविष्ट होता है, वह कभी नहीं दग्ध होता।'

नामकीर्तनसे भगवान्का वशमें होना

ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति।
यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम्॥

(महाभारत)

स्वयं भगवान् कहते हैं—'द्रुपदकुमारी कृष्णाने कौरवसभामें वस्त्र खींचे जाते समय जो मुझ दूरवासी (द्वारकानिवासी) कृष्णको 'गोविन्द' कहकर पुकारा था, उसका यह ऋण मुझपर बहुत बढ़ गया है। यह हृदयसे दूर नहीं हो रहा है।'

गीत्वा च मम नामानि नर्तयेन्मम संनिधौ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन॥

'अर्जुन! जो मेरे नामोंका गान (कीर्तन) करके मेरे निकट नाचने लगता है, उसने मुझे खरीद लिया है—यह मैं तुमसे सच्ची बात कहता हूँ।'

गीत्वा च मम नामानि रुदन्ति मम संनिधौ।
तेषामहं परिक्रीतो नान्यक्रीतो जनार्दनः॥

(आदिपुराण)

'जो मेरे नामोंका गान (कीर्तन) करके मेरे समीप जोरसे रो उठते हैं, मैं उनका खरीदा हुआ गुलाम हूँ; यह जनार्दन दूसरे किसीके हाथ नहीं बिका है।'

जितं तेन जितं तेन जितं तेनेति निश्चितम्।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

'जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि'—ये दो अक्षर विद्यमान हैं, उसकी जीत हो गयी, उसने विजय पा ली, निश्चय ही उसकी विजय हो गयी।'

श्रीरामनामकी महिमा

रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापापनोदकः।
गच्छंस्तिष्ठञ्छयानो वा मनुजो रामकीर्तनात्॥
इह निर्वर्तितो याति चान्ते हरिगणो भवेत्।
रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः॥
न रामादधिकं किंचित् पठनं जगतीतले।
रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना॥
रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च।
अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते॥
रामेति मन्त्रराजोऽयं भवव्याधिनिषूदकः।
रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः॥
द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भुवि।
देवा अपि प्रगायन्ति रामनाम गुणाकरम्॥
तस्मात् त्वमपि देवेशि रामनाम सदा वद।
रामनाम जपेद् यो वै मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥

(स्कन्दपुराण)

भगवान् श्रीशंकर देवी पार्वतीसे कहते हैं—"'राम' यह दो अक्षरोंका मन्त्र जपनेपर समस्त पापोंका नाश करता है। चलते, खड़े हुए अथवा सोते (जिस-किसी भी स्थितिमें) जो मनुष्य रामनामका कीर्तन करता है, वह यहाँसे कृतकार्य होकर (स्वर्ग) जाता है और अन्तमें भगवान् हरिका पार्षद बनता है। 'राम' यह दो अक्षरोंका मन्त्र शतकोटि मन्त्रोंसे भी अधिक महत्त्व रखता है। रामनामसे बढ़कर जगत्में जप करनेयोग्य कुछ भी नहीं है। जिन्होंने रामनामका आश्रय लिया है, उनको यमयातना नहीं भोगनी

महापापी अजामिळने अत्यन्त भयाक्रान्त होकर अपने पुत्र नारायणका नामोच्चारण किया था; किंतु भगवत्पार्षदोंने आकर उसे यमपाशसे विमुक्त करते हुए यमदूतोंसे कहा था—

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि ।
यद् व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥
एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् ।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥
स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग् ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥
सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥

(श्रीमद्भा० ६ । २ । ७–१०)

'यमदूतो ! इसने अनेक जन्मोंकी पापराशिका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त कर लिया है । विवश होकर ही सही, इसने भगवान् विष्णुके मङ्गलमय नामका उच्चारण तो किया है । जिस समय इसने भगवान्के चार अक्षरोंवाले 'नारायण' नामका उच्चारण किया, उसी समय इसके सारे पापोंका प्रायश्चित्त हो गया । चोर, मद्यप, मित्रद्रोही, ब्राह्मणको मारनेवाला, गुरुपत्नीगामी, स्त्री, राजा, पिता एवं गौको मारनेवाला तथा अन्य प्रकारके जो पापी हैं, इन सभीका सबसे बड़ा यही प्रायश्चित्त है कि वे श्रीहरिके नामोंका उच्चारण कर लें; क्योंकि भगवन्नाम-संकीर्तनसे जीव श्रीभगवान्की दयाका पात्र बन जाता है ।'

संसारके सभी सहायकोंसे निराश होकर सर्वथा असमर्थ द्रौपदीने अपनी रक्षाके लिये भगवान्के 'गोविन्द' नामका उच्चारण अत्यन्त आर्त होकर किया था । उसकी छाप भगवान्के हृदयपर पड़ गयी । वात्सल्य-सीमाभूमि भगवान्का यह वस्त्रावतार दुर्दान्त दुःशासनके बाहुबलको निष्फल कर तुष्ट नहीं हुआ था, अपितु द्रौपदीका उद्धार करके लौटते हुए भगवान् द्रौपदीकी कातरताका स्मरण कर बार-बार क्षुब्ध होते जा रहे थे—

यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम् ।
ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति ॥

(महाभारत)

'द्रौपदीने आर्त होकर दूरस्थ मुझे 'गोविन्द' नामसे जो पुकारा, मानो उसका ऋण मेरे ऊपर बढ़ गया है; अतएव उसकी चिन्ता मेरे हृदयसे नहीं मिट रही है ।'

भगवान्के इस वात्सल्यका ही अनुभव करके भगवद्भक्तोंका हृदय भगवन्नाम-संकीर्तनमें इतना रम जाता है कि वे शौच-अशौच, दिन-रात, सुदेश-कुदेश आदिका बिना विचार किये हुए चलते-फिरते, सोते-जागते, उठते-बैठते सदा भगवन्नामोंका संकीर्तन करते रहते हैं—**'प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि'** (गीता) और अनन्तानन्त कल्याणको प्राप्त करते रहते हैं । भगवन्नामोच्चारणके ही माहात्म्यका अनुसंधान कर सभी कर्मयोगी तत्-तत् कर्मोंके अन्तमें भगवन्नामका उच्चारण करके उनकी पूर्णताका अनुभव करते हैं । इसलिये लौकिक एवं वैदिक सभी कर्मोंके अन्तमें 'ॐ विष्णवे नमः', 'ॐ विष्णवे नमः' 'ॐ विष्णवे नमः'के त्रिवार उच्चारणका शिष्टाचार है ।

संकीर्तन-भक्तिकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके अधिकारी सर्वत्र सुलभ हैं । देव, दानव एवं मानव भी संकीर्तन-भक्तिके अनुष्ठानमें सहसा व्यापृत (संलग्न) होकर अपने आराध्य श्रीहरिके प्रति अपने हाव-भावोंको अभिव्यक्त करनेमें आनन्दमग्न हो जाते हैं । सनकादि महर्षियोंद्वारा अनुष्ठित श्रीमद्भागवत-सप्ताहके अन्तमें आयोजित महासंकीर्तनमें देव, दानव, मुनिजन सभीका सोत्साह भाग लेनेका बड़ा ही मनोज्ञ उदाहरण हमें देखनेको मिलता है—

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत् ।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा
यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥

(श्रीमद्भा० माहा० ६ । ८६)

'कीर्तन आरम्भ हुआ । प्रह्लाद चञ्चल-गति होनेके कारण करताल, उद्धवजी झाँझ और देवर्षि नारद वीणा बजाने लगे, स्वरविज्ञानमें कुशल अर्जुन राग अलापने लगे, इन्द्रने मृदङ्ग बजाना आरम्भ किया, सनकादि बीच-बीचमें जय-जयकार करने लगे और इन सबके आगे शुकदेवजी तरह-तरहकी सरस भावभङ्गिमाओंके द्वारा भाव बताने लगे ।' इस दृष्टिसे संकीर्तन-भक्तिमें अधिकारिसुभिक्षत्वका गुण सर्वाधिक है । पाण्डवगीतामें कहा है—

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता
घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः ।
संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रं
विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति ॥

'आर्त, उदास, शिथिल तथा भयभीत एवं भयंकर विपत्तिमें पड़े हुए प्राणी भी केवल 'नारायण'शब्दका संकीर्तन करके सभी दुःखोंसे छूटकर सुखी हो जाते हैं ।'

इस तरह अन्य भक्ति-साधनोंकी अपेक्षा संकीर्तन-भक्ति प्रियतमविषयक होनेके कारण सुखक्रियत्व, व्यय-साम्य एवं आयाससाध्यरहित होनेके कारण सुकरत्व, अपने आराध्य श्रीहरिको प्रसन्न करनेके लिये किये जानेके कारण आकर्षकत्व, अत्यन्त भयंकर संसार-दुःखको दूर करके मोक्ष-जैसा फल प्रदान करनेके कारण महाफल-प्रदत्व, विघ्नरहितत्व एवं संकीर्तनकारी भक्तोंके सर्वत्र सुलभ होनेके कारण अधिकारिसुलभत्व आदि गुणोंके कारण अपना विशेष वैशिष्ट्य रखती है ।

संकीर्तन-महिमा

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्विष्णुस्वामिमतानुयायी श्रीगोपाल-वैष्णवपीठाचार्यवर्य श्री १०८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

इस विकराल कलिकालमें आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक—इन तीनों प्रकारके तापोंसे संतप्त प्राणियोंके कल्याणके लिये संकीर्तन परम उपादेय एवं सरल साधन है—**'सम्-सम्यक्रूपेण कीर्तनम्—संकीर्तनम्'** इस व्युत्पत्तिके अनुसार विस्तारसे कथन—गुण-नाम-कीर्तन करना ही संकीर्तन कहलाता है । श्रीभागवतकार कहते हैं—कलियुगमें सुन्दर बुद्धिवाले व्यक्ति शरणागतवत्सल भगवान्‌के संकीर्तन-महायज्ञके द्वारा ही यजन करते हैं—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥
(श्रीमद्भा० ११ । ५ । ३२)

कलियुगमें भगवान्‌के श्रीविग्रहकी छटा नील मणियोंकी उज्ज्वल कान्तिधाराकी तरह ही उज्ज्वल होती है । वे हृदय आदि अङ्ग, कौस्तुभ आदि उपाङ्ग, सुदर्शन आदि अस्त्र और सुनन्द प्रभृति पार्षदोंसे संयुक्त रहते हैं । कलियुगमें श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न पुरुष ऐसे यज्ञोंके द्वारा उनकी आराधना करते हैं, जिनमें नाम, गुण, लीला आदिके कीर्तनकी प्रधानता रहती है ।'

कीर्तन करनेसे अपने-पराये जनोंके भगवत्प्राप्तिमें प्रतिबन्धक दोषोंकी निवृत्ति होती है । भगवद्गुण-कीर्तनका ही दूसरे लोग श्रवण करते हैं, अतः श्रवणकी अपेक्षा कीर्तनका महत्त्व अधिक है । भगवत्प्रपन्न हुए बिना जीवकी कीर्तन करनेकी योग्यता नहीं होती । अतः शरणागत जीव भगवान्‌की प्रपत्तिद्वारा शनैः-शनैः मायिक संसारसे मुक्त होता जाता है । गीतामें भगवान् कहते हैं, 'जो मेरी शरणमें आते हैं, वे इस मायाको पार कर जाते हैं'—

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

संकीर्तनके तीन भेद हैं—(१) नामकीर्तन, (२) लीलाकीर्तन और (३) गुणकीर्तन । इस प्रकार भगवानके नाम, लीला और गुणोंका ऊँचे

स्वरसे गान करना ही कीर्तन कहलाता है। यह भागवत-धर्मके अनुसार है। श्रीकृष्णभगवान्‌के नाम भी अनन्त हैं, उनमेंसे अपनी रुचिके अनुसार किन्हींका चयन करके कीर्तन करें। नामी भगवान् तो एक हैं, यद्यपि उनके नाम अनेक है। उनसे प्राप्य वस्तु एक ही है—

'संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्।'
(श्रीमद्भा० ६। ३। २४)

'नामलीलागुणादीनां उच्चैर्भाषानुकीर्तनम्॥'
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

भगवन्नामामृत-रसका पान करनेसे महापातकपुञ्ज नष्ट हो जाते हैं तथा कीर्तनकारका जीवन मङ्गलमय एवं धन्य हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण मङ्गलरूप है, अतः उनके नाम भी मङ्गलरूप है। उनके उच्चारणसे व्यक्ति मङ्गलमय हो जाता है। संकीर्तन श्रेष्ठ वाचिक तप है। वह वाणीको शुद्ध कर मधुर-मधुर रसास्वादनद्वारा आत्माको पावन कर भगवत्स्वरूपके साक्षात्कारके योग्य बनाता है।

भगवन्नाममें जैसी शक्ति है, वैसी अन्य प्रायश्चित्तोंमें नहीं है। इससे पाप समूल नष्ट हो जाते है।

तस्मात् संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्।
महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम्॥
(श्रीमद्भा० ६। ३। ३१)

'बड़े-बड़े पापों और पाप-वासनाओंको निर्मूल कर डालनेवाला सर्वोत्तम प्रायश्चित्त यही है कि केवल भगवान्‌के गुणों, लीलाओं और नामोंका कीर्तन किया जाय।' यह बात भागवतमें छठे स्कन्धके अजामिलो-पाख्यानमें स्पष्ट है। भगवन्नाम-कीर्तन-श्रवणसे अमङ्गल-कारी दोषोंका नाश होता है तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति एवं चार प्रकारके वाचिक पापोंकी निवृत्ति होती है।

कृष्ण-नाम अकेले सभी दोषोंको दूर कर डालता है। इस कलिकालमें दोषोंकी बहुलताके कारण मनका निरोध न होनेसे भगवत्परताका अभाव होता है। सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापरयुगमें ध्यान, याग, अर्चनसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल कलिकालमें नामकीर्तनसे ही प्राप्त हो जाता है—नामकीर्तन ही सभी गुणोंका सार है; इतना ही नहीं, अपितु संसार-सागरको पार करानेमें वह नौकारूप भी है। परमभागवत राजा परीक्षित्‌को महामुनीन्द्र श्रीशुकदेवजीने द्वादश स्कन्धके तीसरे अध्यायकी समाप्ति (श्लोक ५१)में कहा है—

'दोषसे भरे इस कलियुगमें यह एक महान् गुण है कि श्रीकृष्णका कीर्तन करनेसे मनुष्य आसक्तिरहित होकर परमधाम चला जाता है।'

मनकी चञ्चलताको रोकनेके लिये कीर्तन एक परमोपयोगी उपाय है। इससे ध्यान-समाधि और निरतिशय सुखकी प्राप्ति होती है। शास्त्रो तथा संतोने भगवान्‌के नामको तप-दानादि सभी धर्मोंसे अधिक माना है।

वेद कहते हैं—

'मर्ता अमर्तस्य ते भूरि नाम मनामहे।
विप्रासो जातवेदसः॥' (ऋक्० ८। ११। ५)

'आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन'
(ऋक्० १। १५६। ३)

पराङ्मुखी जीवोंको भगवन्नाम लेना कठिन है; क्योंकि वे लोग उसके महत्त्वको नहीं समझते। भगवान्‌के सभी नामोंमें एक-सी ही शक्ति है। ऐसे महत्त्वशाली भगवन्नाम-संकीर्तनमें वर्णाश्रमका भी नियम नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, अन्त्यज आदि जो कोई भी विष्णुभगवान्‌के नामोंका कीर्तन करते हैं, वे सभी पापोंसे मुक्त होकर भगवान्‌को प्राप्त कर लेते हैं। यदि कोई प्राणी मरते समय 'कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!' उच्चारण करता हुआ प्राण त्याग दे तो वह एक ही नामसे मुक्त हो जाता है, अवशिष्ट दो उच्चरित नाम ऋणी होकर स्थित रहते हैं।

भगवन्नाम-कीर्तनके लिये देश-कालका कोई नियम नहीं है। इसके लिये विशेष पवित्रता आदिकी भी आवश्यकता नहीं है। सर्वदा, सर्वत्र सभी अवस्थामें

भगवन्नामोच्चारण करनेका विधान शास्त्रोंमें वर्णित है। अतः भूत-भविष्य-वर्तमानकालीन पापोंका नाशक हरिकीर्तन ही है। फिर भी भगवत्प्रेमी जीवोंको पापोंके नाशपर अधिक दृष्टि नहीं रखनी चाहिये। उसे तो भक्तिभावकी दृढ़ताके लिये भगवान्‌के चरणोंमें अधिकाधिक प्रेम बढ़ता जाय, इस दृष्टिसे अहर्निश नित्य-निरन्तर भगवान्‌के मधुर-मधुर नामोंका जप करते रहना चाहिये। जितनी ही अधिक निष्कामता होगी उतनी ही नामकी पूर्णता प्रकट होती जायगी—अनुभवमें आती जायगी और भगवान् वशमें होते जायँगे। भगवन्नाम ग्रहण करनेसे भगवान् प्रेमबन्धनसे बँधकर भक्तके हृदयमें निवास करते हैं, अन्यत्र कहीं नहीं जाते। नामकीर्तन वशीकरण मन्त्र सिद्ध होता है। द्रौपदीकी पुकार सुनकर भगवान् कहते हैं—

यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम्।
ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति॥

यज्ञादि धर्मोंमें देश-काल-पात्र-श्रद्धा-हवि-मन्त्र-तन्त्र आदि अपेक्षित हैं। वे इस घोर कलिकालमें सुलभ नहीं होते, अतः भगवन्नाम-संकीर्तनकी प्रधानता प्रतिपादित है। इसलिये भगवान्‌के अवतार-नाम वासुदेव, देवकीनन्दन, कौसल्यानन्दन, वामन, नृसिंह आदि एवं लीला-नाम—गिरिधारी, पूतनारि, कालियमर्दन, कंसनिकन्दन, मुरारि, दैत्यारि, रावणारि आदि तथा गुणनाम—भक्तवत्सल, शरणागतवत्सल, दीनदयालु आदि नामोंका कीर्तन करना चाहिये। इसी प्रकार भगवान्‌की भक्तमनोरञ्जनी दान-लीला, रासलीला, बाललीलाओंका भी गान करना चाहिये।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

संकीर्तनके सम्बन्धमें योगिराज श्रीदेवरहवाबाबाजी महाराजके अमृत-वचन

१—भगवान्‌के नामोंका, उनके गुणोंका उच्चस्वरसे बार-बार उच्चारण करनेका नाम संकीर्तन है।

२—मनको संकल्प-विकल्परहित बनानेके लिये उच्चस्वरसे नाम-कीर्तन करो।

३—अपने परिवारके सदस्योंको एकत्रकर प्रतिदिन नाम-कीर्तन करो। बाधाएँ स्वतः दूर भागेंगी।

४—झाल पीटनेसे भक्ति पैदा नहीं होगी। संकीर्तन करते समय जब परमात्माके साथ मनोयोग होगा, तब भक्ति देवी तुम्हें गोदमें बैठायेंगी।

५—भगवान्‌के सुन्दर नाम, उनके सगुण रूप और चरितको श्रवण करो। यह सहज साधनाकी उत्तम विधि है।

६—भगवन्नामसंकीर्तनमें पागल हो जाओ और संसार तथा सांसारिक भोगोंसे उदासीन रहो। यही सार है तथा त्रिकालमें सत्य है।

७—प्रेममें मुग्ध होकर भगवन्नाम-संकीर्तन करो। जहाँ कीर्तन होता है, वहाँ श्रीनारायण साकाररूपसे विराजमान रहते हैं।

८—कराल-भव-व्याल-ग्रसित जीवको विषय मीठा और भजन कटु लगता है। निष्ठापूर्वक भगवन्नाम-संकीर्तन करनेवाले संसार-सागरसे सहज ही तर जाते हैं।

९—सत्ययुगमें निरन्तर विष्णुका ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञसे और द्वापरमें पूजा-उपासना करनेसे जो परमगति प्राप्त होती है, वही कलियुगमें केवल नाम-कीर्तन करनेसे प्राप्त हो जाती है।

१०—नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भरकर जब भक्त भगवान्‌के कीर्तनमें तल्लीन होता है, तब दयामय श्रीनारायण संकीर्तनध्वनिसे तथा भक्तके प्रेमसे प्रसन्न होकर अपनी नयनाभिराम छविका दर्शन देकर भक्तोंकी मनःकामना पूर्ण करते हैं।

११—भक्ति-भावको सतत जाग्रत् रखनेके लिये भगवान्‌का अहर्निश नाम-जप करो।

१२—श्रीहरिनाम संकीर्तनद्वारा इधर-उधर भटकनेवाले चञ्चल चित्तको स्थिर करो। तभी तुम्हारे अन्तःकरणमें परमात्माका आविर्भाव होगा।

१३—भगवन्नाम दिव्य सुधाकी तरह है। जितना पीओगे, उसी अनुपातमें और पीनेकी इच्छा होगी।

प्रेषक—मदनशर्मा 'शिक्षक'

*

कीर्तन-भक्तिका स्वरूप

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, चरित्र, तत्त्व और रहस्यका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक उच्चारण करते-करते शरीरमें रोमाञ्च, कण्ठावरोध, अश्रुपात, हृदयकी प्रफुल्लता, मुग्धता आदिका होना कीर्तन-भक्तिका स्वरूप है ।

कथा-व्याख्यानादिके द्वारा भक्तोंके सामने भगवान्‌के प्रेम-प्रभावका कथन करना, एकान्तमें अथवा बहुतोंके साथ मिलकर भगवान्‌को सम्मुख समझते हुए उनके नामका उपांशु जप एवं ऊँचे स्वरसे कीर्तन करना, भगवान्‌के गुण, प्रभाव और चरित्र आदिका श्रद्धा और प्रेमपूर्वक धीरे-धीरे या जोरसे खड़े या बैठे रहकर वाद्य-नृत्यके सहित अथवा बिना वाद्य-नृत्यके उच्चारण करना तथा दिव्य स्तोत्र एवं पदोंके द्वारा भगवान्‌की स्तुति-प्रार्थना करना, यही उपर्युक्त भक्तिको प्राप्त करनेका प्रकार है; किंतु ये सब क्रियाएँ नामके दस अपराधोंको बचाते हुए* दम्भरहित एवं शुद्ध भावनासे स्वाभाविक होनी चाहिये ।

उपर्युक्त कीर्तन-भक्तिको प्राप्त करके सबको भगवान्‌में अनन्य-प्रेम होकर उसकी प्राप्ति हो जाय, इस उद्देश्यसे संसारमें इसका प्रचार करना यह इनका प्रयोजन है । यह कीर्तन-भक्ति ईश्वर एवं महापुरुषोंकी कृपासे ही प्राप्त होती है । इसलिये इस विषयमें उनकी कृपा ही हेतु है; क्योंकि भगवान्‌के भक्तोंद्वारा भगवान्‌के प्रेम, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यकी बातोंको सुननेसे एवं शास्त्रोंको पढ़नेसे भगवान्‌में श्रद्धा होती है और तब मनुष्य उपर्युक्त भक्तिको प्राप्त कर सकता है । अतः भगवान् और उनके भक्तोंकी दया प्राप्त करनेके लिये उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये ।

इस प्रकारकी केवल कीर्तन-भक्तिसे भी मनुष्य परमात्माकी दयासे उसमें अनन्य-प्रेम करके उसे प्राप्त कर सकता है । गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥
(९ । ३०-३१)

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य-भावसे मेरा भक्त हुआ मुझे निरन्तर भजता है, वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है, अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है । इसलिये वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है । अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता ।'

इतना ही नहीं, इस कीर्तन-भक्तिका प्रचारक तो भगवान्‌को सबसे बढ़कर प्रिय है । भगवान्‌ने गीतामें स्वयं कहा है—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥

---

* सन्निन्दासति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधीरश्रद्धा गुरुशास्त्रवेदवचने नाम्न्यर्थवादभ्रमः ।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागौ हि धर्मान्तरैः साम्यं नाम्नि जपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश ॥

'सत्पुरुषोंकी निन्दा, अश्रद्धालुओंमें नामकी महिमा कहना, विष्णु और शिवमें भेदबुद्धि, वेद, शास्त्र और गुरुकी वाणीमें अविश्वास, हरिनाममें अर्थवादका भ्रम अर्थात् केवल स्तुतिमात्र हैं ऐसी मान्यता, नामके बलसे विहित कर्मोंका त्याग और निषिद्ध कर्मका आचरण, अन्य धर्मोंकी तुलना अर्थात् शास्त्रविहित कर्मोंसे नामकी तुलना—ये सब भगवान् शिव और विष्णुके नामजपमें नामके दस अपराध हैं ।'

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥
(१८ । ६८-६९)

'जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीता-शास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, अर्थात् निष्काम भावसे प्रेमपूर्वक मेरे भक्तोंको पढ़ायेगा और अर्थकी व्याख्याद्वारा इसका प्रचार करके उनके हृदयमें धारण करायेगा, वह निःसंदेह मुझको ही प्राप्त करेगा; और न तो उससे बढ़कर मेरा अतिशय प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई है और न उससे बढ़कर मेरा अत्यन्त प्रिय पृथ्वीमें दूसरा कोई होवेगा ।' यही इस कीर्तन-भक्तिका फल है ।

भागवत और रामायणादि सभी भक्ति-ग्रन्थोंमें भगवान्‌के केवल नाम और गुणोंके कीर्तनसे सब पापोंका नाश एवं भगवत्प्राप्ति बतलायी है । श्रीमद्भागवतमें कहा है—

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाघवान् ।
श्वादः पुल्कसको वापि शुद्धयेरन् यस्य कीर्तनात् ॥
(६ । १३ । ८)

'ब्राह्मणघाती, पितृघाती, गोघाती, मातृघाती, गुरुघाती—ऐसे-ऐसे पापी तथा चाण्डाल एवं म्लेच्छ जातिवाले भी जिसके कीर्तनसे शुद्ध हो जाते हैं ।'

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥
(श्रीमद्भा० १२ । १२ । ४७)

'जिस तरह सूर्य अन्धकारको, प्रचण्ड वायु बादलको छिन्न-भिन्न कर देता है, उसी तरह कीर्तित होनेपर विख्यात प्रभाववाले अनन्त भगवान् मनुष्योंके हृदयमें प्रवेश करके उनके सारे पापोंका निस्संदेह विध्वंस कर डालते हैं ।' एवं—

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ॥
(श्रीमद्भा० १ । १ । १४)

'जिस परमात्मासे स्वयं भय भी भय खाता है, उस परमात्माके नामका यह घोर संसारमें पड़ा हुआ मनुष्य विवश होकर भी उच्चारण करनेसे तुरंत संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है ।'

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥
(श्रीमद्भा० १२ । ३ । ५१)

'राजन् ! दोषके खजाने कलियुगमें एक ही वह महान् गुण है कि भगवान् कृष्णके कीर्तनसे ही मनुष्य आसक्तिरहित होकर परमात्माको प्राप्त हो जाता है ।'

इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतार-
वीर्याणि बालचरितानि च शंतमानि ।
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन् मनुष्यो
भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ॥
(श्रीमद्भा० ११ । ३१ । २८)

'इस प्रकार इस भागवतमें अथवा अन्य सब शास्त्रोंमें वर्णित भगवान् कृष्णके सुन्दर अवतारोंके पराक्रमोंको तथा परम मङ्गलमय बालचरित्रोंको कहता हुआ मनुष्य परमहंसोंके गतिस्वरूप भगवान्‌की परा भक्तिको प्राप्त करता है ।'

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥
(श्रीमद्भा० ३ । ३३ । ७)

'अहो ! आश्चर्य है कि जिसकी जिह्वापर तुम्हारा पवित्र नाम रहता है, वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है; क्योंकि जो तुम्हारे नामका कीर्तन करते हैं, उन श्रेष्ठ पुरुषोंने तप, यज्ञ, तीर्थस्नान और वेदाध्ययन आदि सब कुछ कर लिया ।' श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

नामु सप्रेम जपत अनयासा । भगत होहिं मुद मंगल बासा ॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भगत सिरोमनि भे प्रहलादू ॥

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपनें बस करि राखे रामू॥
चहुँ जुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

महर्षि पतञ्जलि भी कहते है—

तस्य वाचकः प्रणवः। (योग० १।२७)

'उस परमात्माका वाचक अर्थात् नाम ओंकार है।'

तज्जपस्तदर्थभावनम्। (योग० १।२८)

'उस परमात्माके नामका जप और उसके अर्थकी भावना अर्थात् स्वरूपका चिन्तन करना (चाहिये)।'

ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च। (योग० १।२९)

'उपर्युक्त साधनसे सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश और परमात्माकी प्राप्ति भी होती है।' नारदपुराणमें भी कहा है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
(१।४१।११५)

'कलियुगमें केवल श्रीहरिका नाम ही कल्याणका परम साधन है, इसे छोड़कर दूसरा कोई उपाय ही नहीं है।' इस तरह शास्त्रोंमें और भी बहुत-से प्रमाण मिलते हैं। कीर्तन-भक्तिसे पूर्वकालमें बहुत-से तर गये हैं। इतिहास और पुराणोमें एवं रामायणमें बहुत-से उदाहरण मिलते है।

भगवान्‌के नाम और गुणोंके कीर्तनके प्रतापसे पूर्वकालमें नारद, वाल्मीकि, शुकदेव आदि तथा अर्वाचीन समयमें गौराङ्ग महाप्रभु, तुलसीदास, सूरदास, नानक, तुकाराम, नरसी, मीराबाई आदि अनेक भक्त परमपदको प्राप्त हुए है। इनके जीवनका इतिहास विख्यात है। परमभक्तोंकी बात तो छोड़ दीजिये, जो महापापी थे वे भी तर गये हैं। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरिनाम प्रभाऊ॥

अतः जैसे मेघको देखकर पपीहा जलके लिये पी-पी करता है, वैसे ही भगवान्‌में परम प्रेम होनेके लिये एवं भगवान्‌की प्राप्तिके लिये भगवान्‌के नाम और गुणोंके कीर्तनकी नित्य-निरन्तर तत्पर होकर प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

'काशी मरत मुक्त करत कहत राम नाम'

प्रेम मुदित मनसे कहो, राम राम राम।
श्री राम राम राम, श्री राम राम राम॥
पाप कटैं दुःख मिटैं, लेत राम नाम।
भव समुद्र सुखद नाव, एक राम नाम॥
परम शान्ति सुख-निधान, नित्य राम नाम।
निराधारको आधार, एक राम नाम॥
परम गोप्य परम इष्ट, मन्त्र राम नाम।
संत हृदय सदा वसत, एक राम नाम॥
महादेव सतत जपत, दिव्य राम नाम।
काशी मरत मुक्त करत, कहत राम नाम॥

श्रीनाम-संकीर्तनसे प्रारब्धका नाश और भगवत्प्राप्ति

(संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराजका प्रवचन)

ज्ञानी संतोंने ऐसा वर्णन किया है कि सभीको प्रारब्ध भोगना पड़ता है। ब्रह्मज्ञानसे भी प्रारब्धका नाश नहीं होता। प्रारब्धका नाश भोगनेसे ही होता है। श्रीहरिनाममें प्रारब्धका नाश करनेकी अतुल शक्ति है। श्रीतुलसीदासजी महाराजने कहा है—

'मेटत कठिन कुअंक भाल के······'

जगत् भगवान्के अधीन है और भगवान् नामके अधीन हैं। निराकार ब्रह्मके सर्वव्यापक होनेपर भी जीव दुःखी है। सभी प्राणियोंके हृदयमें भगवान् विराजमान हैं—

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'

इतनेपर भी जीव अज्ञानी है। निराकार व्यापक ब्रह्म पूर्ण निष्क्रिय होनेसे दया नहीं करता, परंतु साकार प्रभु दयालु होते हैं। साकार प्रभु श्रीराम और श्रीकृष्ण कृपा करते हैं और दण्ड भी देते हैं। निग्रह और अनुग्रहमें ये दोनों शक्तियाँ निराकार ब्रह्ममें नहीं दीखतीं। साकार ब्रह्म श्रीरामने शूर्पणखाको दण्ड दिया और शबरी मातापर कृपा की। हमारे लिये निराकारकी अपेक्षा साकार भगवान् बहुत उपयोगी हैं।

श्रीराम और श्रीकृष्णकी भक्ति करनेवाला निराकार ब्रह्मका अनुभव कर सकता है। सगुण-साकार भगवान्की भक्ति छोड़कर जो निर्गुण-निराकारके पीछे पड़ता है, उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता। जिसके हाथमें मिठाई है, उसके हाथमें मिठास भी है। सगुण-साकार भगवान् मिठाई-जैसे हैं। निर्गुण-निराकार ब्रह्म मिठास-जैसा है। मिठाईको छोड़कर मिठास किसीके हाथमें नहीं आ सकती। हमारे लिये सगुण-साकार परमात्मा ही अति उपयोगी है। सगुण-साकार भगवान् अतिसरल प्रेमस्वरूप होनेपर भी अपने स्वरूपको छिपाते हैं। सम्भव है, भगवान्का तेज सहन करनेकी शक्ति मानवमें न होनेसे भगवान् अपने स्वरूपको छिपाते हों। साधारण जीवके लिये भगवान्का तेज सहन करना अशक्य है। कदाचित् भगवान् कृपा करके दर्शन दे दें तो भी हाथमें नहीं आते।

भगवान्के नामको सभी जीव पकड़ सकते हैं। भगवान्का नाम और भगवान्का रूप एक ही हैं। भगवान्का नाम रूपको प्रकट करता है, इसलिये रूप परतन्त्र है और नाम स्वतन्त्र। भगवान्का रूप नामके अधीन होनेसे संतोंने भगवान्के नामको श्रेष्ठ माना है। नामसे रूप प्रकट होता है, वह अज्ञान और वासनाका विनाश करता है। संत नामसे हृदयमें रूप प्रकट करते हैं। इसीलिये कामका विनाश कर सकते हैं। सगुण-साकार और निर्गुण-निराकारसे भी नाम श्रेष्ठ है। कलियुग ज्ञानी और योगियोंको भी भुलावेमें डालता है, किंतु वह भगवान्के नामसे डरता है। जिस घरमें प्रातःकाल और सायंकाल घरके सभी लोग हरिनामका संकीर्तन करें तो कलियुग उस घरमें आयेगा ही नहीं। सर्वयुगमें नाम-साधनके श्रेष्ठ होनेपर भी कलियुगमें उसकी विशेष महिमा है। इसीलिये श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने स्वरूप-सेवाको बहुत महत्त्व नहीं दिया, अपितु नामसंकीर्तनको ही प्रधान माना। 'हरिनाम' पापका नाश करता है। श्रीकृष्ण-नाम मनका आकर्षण करता है। जिसके मनको भगवान्ने खींच लिया, वह मन संसारके किसी विषयमें नहीं जाता। नामसे जिसका मन भगवान्में स्थिर हुआ है, उसे जीवन्मुक्तिका अनुभव होता है अर्थात् शरीर रहते हुए भी मुक्तिका आनन्द मिलता है। इसीको वेदान्तमें जीव-मुक्ति कहा गया है।

समर्थ सद्गुरु रामदास स्वामीने गोदावरी गङ्गाके किनारे महामन्त्रका तेरह करोड़ जप किया। जप करनेसे वहाँ रामजी प्रकट हो गये। नासिकमें काले रामजीका मन्दिर है। वहाँके रामजी स्वयम्भू हैं। वे नामसे प्रकट हुए हैं। जिसके इष्टदेव 'कृष्ण' हैं, वह 'हरे राम हरे राम०'का कीर्तन करनेपर भी कृष्णका ही ध्यान-स्मरण करे तथा 'हरे कृष्ण०'का कीर्तन करनेपर रामका भक्त रामका ही ध्यान-स्मरण करे। दोनों एक ही हैं। ध्यानमें स्वरूप बदलनेकी आवश्यकता नहीं है। श्रीसमर्थ गुरु रामदास स्वामीने लिखा है कि संसार रोग है। इसकी दिव्य दवा 'राम-नाम' है। पथ्यके साथ दवा लेनेसे रोगका नाश शीघ्र होता है। पथ्यमें सादा, सात्त्विक और पवित्र भोजन और संयम—इन दोनोंको प्रधान माना गया है। संतोंने वर्णन किया है कि 'पथ्यके साथ तीन करोड़ जप करनेसे हाथकी रेखाएँ बदलने लगती हैं। जन्मपत्रीके ग्रह शुद्ध होने लगते है। जन्मपत्रीमें तनु, धन आदि द्वादश भाव होते है। इन द्वादश भावोंकी शुद्धि सतत नामजप करनेसे होती है। तीन कोटि जिसने पथ्यके साथ जप किया है, उसके शरीरमें महारोग नहीं होता। जिसने चार कोटि जप किया है वह गरीब नहीं होगा, उसे भीख माँगनी नहीं पड़ेगी। उसके धन-स्थानकी शुद्धि हो जाती है। जिसने पाँच कोटि जप किया है, उसकी बुद्धिमें ज्ञान प्रकट होता है। पुस्तक पढ़नेसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है और जिसकी उत्पत्ति होती है उसका नाश भी होता है। पुस्तक पढ़कर जो ज्ञान उत्पन्न हुआ है, वह ज्ञान टिकता नहीं है। छः करोड़ जप करनेसे अंदरके शत्रु मरने लगते है। शत्रु बाहर नहीं हैं, अंदर हैं। बाहरके एक शत्रुको मारनेसे अनेक शत्रु उत्पन्न होते हैं। अंदरके शत्रुको मारनेसे कोई शत्रु रहता नहीं। सात करोड़ नाम-जप करनेवाली स्त्रीके पतिकी आयु बढ़ती है। पुरुष सात करोड़ जप करे तो उसकी पत्नी भक्तिमें बहुत अनुकूल हो जाती है। आठ करोड़ जप करनेसे मरण सुधरता है। अन्तकालमें भगवान् उसे किसी पवित्र तीर्थमें बुलाते है और वहाँ पवित्र अवस्थामें उसकी मृत्यु होती है। नौ करोड़ जप करनेसे भगवान्का स्वप्नमें दर्शन होता है। दस, ग्यारह और बारह करोड़ जप करनेसे संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध—तीनों कर्मोका नाश होता है। तेरह कोटि जप करनेसे भगवान्का प्रत्यक्ष साक्षात्कार होता है।' समर्थ सद्गुरु रामदास स्वामीने कहा है—यह सब मैंने अनुभव करके आपको बतलाया है।

आधी केले मग सांगितले'

यज्ञ और दान करनेसे पुण्य बढता है, सुख बढ़ता है; पर वासनाका नाश नहीं होता, मनकी शुद्धि नहीं होती। कलिकालमें मनकी शुद्धि नाम-संकीर्तनसे ही होती है। सतत नाम-संकीर्तन करनेवालेके साथ भगवान् निरन्तर रहते हैं। भगवान्के साथ रहनेपर संसारके सुख-दुःख और मान-अपमानका असर नहीं होता। सतत नाम-जप और कीर्तन करनेवालेको भगवान्के आनन्दमय स्वरूपका अनुभव होता है। भगवान्का दर्शन जिसे हुआ नहीं है वह पाप करे तो क्या आश्चर्य है? भगवान्का जिसे दर्शन हुआ है वह भी पाप करता है! पुण्य करना सरल है। पाप छोड़ना कठिन है। सत्कर्म, स्वाध्याय, यज्ञ, तीर्थयात्रा और अतिशय दान देनेवाले भी पाप करते हैं। अनेक जन्मके पापके संस्कार दृढ हैं। पाप-संस्कारके जाग्रत् होनेपर सयाना भी मूर्ख हो जाता है।

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति-
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

—यह वचन दुर्योधनका है। दुर्योधन कहता है कि 'मैं धर्मको जानता हूँ तो भी धर्मानुकूल सादा-सात्त्विक जीवन मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं समझता हूँ कि पाप करनेसे जीव दुःखी होते हैं तो भी पाप करनेमें मुझे आनन्द आता है। मेरे अंदर कोई देव बैठा है, वही पाप कराता है।' टीकाकारोंने इसका अर्थ किया है कि देव पाप नहीं कराते, हृदयमें छिपे हुए पाप-वासनाके संस्कार पाप कराते हैं। इस पाप-वासनाके संस्कारको मिटानेकी शक्ति भगवान्‌के नाममें ही है।

बहुत पुस्तक पढ़नेसे शब्दज्ञान तो बढ़ता है, परंतु पाप नहीं छूटता। यज्ञ और दान करनेसे पुण्य बढ़ता है, परंतु पाप नहीं छूटता। जब भगवान्‌के नाम हृदयमें प्रकट होते हैं, तभी पाप छूटता है। रावण, दुर्योधन आदि भगवान्‌का दर्शन करते थे, परंतु वे भी पाप करते थे। नाम-जपमें कोई भूल भी हो जाय तो क्षम्य है; अर्थात् सफलता मिलती है। सकाम कर्म-काण्डमें थोड़ी भी भूल हो जाय तो क्षम्य नहीं है, विपरीत फल होता है। वाल्मीकिने उलटा नाम-जप किया, 'राम'की जगह 'मरा' नाम जपा, तथापि उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गयी—

उलटा नाम जपत जग जाना। वालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

अपने यहाँ ऐसे भक्तोंकी और संतोंकी लम्बी परम्परा है, जिन्होंने केवल भगवन्नामसंकीर्तनसे ही अपने पापोंका विनाश कर भगवत्प्राप्ति कर ली।

भक्त जनाबाई

एक बार कबीरसाहब जनाबाईका दर्शन करने पंढरपुर गये। उन्होने वहाँ देखा कि दो स्त्रियाँ गोबरके उपलों (गोइठो)के लिये लड़ रही थीं। कबीरदासजी वहीं खड़े हो गये और यह दृश्य देखने लगे। फिर उन्होंने उनमेंसे एक महिलासे पूछा—'आप कौन हैं?' उसने कहा—'मेरा नाम जनाबाई है।' कबीरदासको परम आश्चर्य हुआ। हम तो परम भक्त जनाबाईका नाम सुनकर दर्शन करने आये और ये गोबरसे बने उपलोंके लिये झगड रही हैं। उन्होने जनाबाईसे पूछा—'आपको अपने उपलोंकी क्या कोई पहचान है?' जनाबाईने उत्तर दिया—'जिन उपलोंसे 'विट्ठल-विट्ठल' ध्वनि निकलती हो, वे हमारे हैं।' कबीरजीने उन उपलोंको अपने कानके निकट लगाकर देखा तो उन्हें वह ध्वनि सुनायी पड़ती थी। यह देखकर कबीरदासजी आश्चर्य-चकित हो गये और उन्होंने भक्त जनाबाईको सादर नमन किया।

श्रीब्रह्मचैतन्य महाराज

दक्षिणमें एक ब्रह्मचैतन्य महाराज थे, जो सबको भक्तिका उपदेश करते थे और राम-नाम जपनेका उपदेश करते थे। किसीने पूछा—'आपके जपमें और हमारे जपमें क्या अन्तर है?' उन्होंने कहा—'रात्रिमें बारह बजे आना।' वे रात्रिमें आठ बजे प्रतिदिन सो जाते और रात्रिमें बारह बजे भजनपर बैठते थे। भक्त जब आया, तब ब्रह्मचैतन्य महाराजने कहा—'तुम मेरे अंगूठेसे लेकर मस्तकतक कहीं भी कान लगाकर देखो।' उसने कान लगाकर देखा तो उनके रोम-रोमसे 'श्रीराम-श्रीराम'की ध्वनि निकल रही थी!

भक्त चोखामेला

चोखामेला भगवद्भक्त थे। उनकी भक्ति सनातन धर्मके अनुकूल थी। हीन जातिके होनेके कारण वे मन्दिरके अंदर जाते नहीं थे, बाहरसे ही दर्शन करते थे। किसीके बुलानेपर भी मन्दिरमें नहीं जाते थे। उनकी उत्कृष्ट भक्तिसे जब भगवान्‌को उन्हें देखनेकी इच्छा होती थी, तब भगवान् विट्ठलनाथ स्वयं बाहर आ जाते थे। आज भी मन्दिरके बाहर उनका स्थान है। एक बार मजदूरोंके साथ काम करते-करते आठ-दस मजदूरोंके साथ चोखामेलाकी मृत्यु हो गयी। भगवान् श्रीपण्ढरीनाथजीकी आँखोंसे अश्रुधारा निकल

पड़ी। उन्होने संत नामदेवको प्रेरणा की—'भक्त चोखामेलाकी अस्थियोका संचय करो।' नामदेवजीके मनमें जब शङ्का हुई कि इतनी हड्डियोंमेंसे भक्त चोखामेलाकी कौन-सी हड्डी है, तब भगवान्‌ने प्रेरणा की कि 'जिस हड्डीसे 'विटठल-विटठल'की ध्वनि निकलती हो उस हड्डीका संचयन कर लेना।' श्रीनामदेवजीने जब सुना तब उन्हें उन हड्डियोंमें 'विटठल', 'विट्ठल' की ध्वनि सुनायी पड़ती थी।

संत नामदेव

एक बार संत नामदेवने भगवान् पण्ढरीनाथसे कहा—'बहुत-से भक्त आपके पीछे पड़ते है पर मै कभी आपके पीछे पड़नेवाला नहीं हूँ। मेरे पास एक ऐसी युक्ति है कि आप ही मेरे पीछे पड़ेंगे।' भगवान्‌ने पूछा—'वह कौन-सी युक्ति है?' तब नामदेवजीने कहा कि 'आपके नाममें मै इतना तल्लीन हो जाऊँगा कि आपको मेरे पास आना पडेगा।' रात्रिमें जब संत नामदेवजी तन्मय होकर भगवान् विटठलका कीर्तन करते थे, तब भगवान् विटठलको रातभर जागकर सुनना पड़ता था।

महाराष्ट्रमें पंढरपुर एक महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल है। इसे महायोगपीठ भी कहते है। भगवान् आद्य शंकराचार्यने वर्णन किया है—

> महायोगपीठे तटे भीमरथ्या
> वरं पुण्डरीकाय दातुं मुनीन्द्रैः।
> समागत्य तिष्ठन्तमानन्दकन्दं
> परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम्॥

दूसरे सब योगपीठ हैं, परंतु पंढरपुर महायोगपीठ है। अन्य स्थानोंकी परम्परा छिन्न-भिन्न होती है, पर यहाँकी परम्परा अक्षुण्ण रहती है। सिद्धपीठ अथवा भगवद्धाममें नाम-जप-कीर्तन-भजन करनेसे सफलता शीघ्र मिलती है।

परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्

(निम्बार्काचार्य स्वामी श्रीललितकृष्णजी महाराज)

सृष्टिके अनन्तर मानव-प्रकृतिमें निरन्तर ह्रास ही हो रहा है। सृष्टिके प्रारम्भमें प्रकृति शुद्ध सत्त्व-प्रधान थी। मानव सात्त्विक भावसे आत्मचिन्तनमें संलग्न था। उज्ज्वल कान्तिमान् हंसस्वरूप ब्रह्म ही उसके चिन्तनका विषय था। फिर प्रकृतिमें रजोगुणके आधिक्यसे कर्ममें विशेष प्रवृत्ति जाग्रत् हुई और मानवके शुद्ध अन्तःकरणमें वैदिक कर्मकाण्डके मन्त्रोंका प्रकाश मिला। प्रणव एवं गायत्री-मन्त्रके अभ्यासमें प्रवृत्ति, सूर्य-अग्निकी उपासना, वर्णाश्रमधर्मके पालनमें संलग्नता होने लगी। कर्मकी संलग्नता संग्रहमें लगाती है, अतः मानव वैभवसम्पन्नताकी ओर अग्रसर हुआ। उपासनामें ऐश्वर्यका संचार होता है, अतः षडैश्वर्य-सम्पन्न भगवान्‌की पूजा-सेवामें प्रवृत्ति जगी। वैभव-ऐश्वर्यकी चरम सीमा गृहस्थाश्रम ही है, अतः गृहाचार, कुलाचारकी मर्यादाएँ बनीं। सृष्टिका यह नियम है कि वर्णाश्रम-कुलाचारकी मर्यादाओमें जब भी विपर्यय होता है, तभी भगवान् अवतार लेकर उनको स्थिर करते है। अवतारोंमे श्रेष्ठतम अवतार भगवान् श्रीकृष्णका है। उन्होंने स्वतः गृहस्थके कर्तव्योका पालन कर मानवके समक्ष जो आदर्श उपस्थित किये हैं, वे वर्तमान समयके मानवोके लिये आचरणीय है। शुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से कहते हैं—

> एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन् सतां गतिः।
> गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत् पदम्॥
> (श्रीमद्भा०)

'भगवान् श्रीकृष्ण सत्पुरुषोके एकमात्र आश्रय है। उन्होंने वैदिक धर्मोका बार-बार पालन करके लोगोंको दिखला दिया कि धर्म, अर्थ, कामका साधन-स्थल

एकमात्र गृहस्थाश्रम ही है।' गृहस्थाश्रममें रहकर शास्त्र-निर्दिष्ट भगवदुपदिष्ट कर्तव्योंका पालन करते हुए भगवल्लीलाओंका श्रवण, भगवन्नामका कीर्तन किया जाय तो सहज ही मुक्ति प्राप्त होती है। श्रवण संत-महात्माओं-की संगति एवं साहचर्यसे और शास्त्र-परिशीलनसे सम्पन्न होता है।

कीर्तनकी तीन विधाएँ संतोंने लोकमें प्रचलित की हैं—१—कथा-कीर्तन, २—गानकीर्तन और ३—नाम-कीर्तन। तीनों ही प्रकार लोककल्याणका साधन करते हैं। व्यासगद्दीपर बैठकर भगवल्लीलाका प्रवचन करनेसे श्रोताओंको भगवान्‌की अनूठी कृपा प्राप्त होती है। भगवान् स्वयं श्रोता और वक्ताओंका उद्धार करते हैं, जैसा कि शुकदेवजी कहते हैं—

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम्॥

भगवान् श्रीकृष्ण अपने श्रोताओंको जब अपनी कथा सुनते हुए देखते हैं, तब हृदयमें विराजमान होकर उनके समस्त पापोंको धो देते हैं—

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः॥

भगवान्‌का नाम-कीर्तन किया जाय या सुना जाय तो भगवान् वक्ताओं और श्रोताओंके चित्तमें प्रवेशकर उनके चित्तके समस्त कल्मषोंको धो देते हैं—जैसे कि सूर्यके प्रकाशसे अंधकार और तेज हवासे बादल नष्ट हो जाते हैं।

कथा-श्रवण करनेसे भगवान् चित्तमें विराजने लगते हैं तो कलिकालके समस्त दोष शान्त हो जाते हैं, इसे शुकदेवजी स्पष्टरूपसे पुनः कहते हैं—

पुंसां कलिकृतान् दोषान् द्रव्यदेशात्मसम्भवान्।
सर्वान् हरति चित्तस्थो भगवान् पुरुषोत्तमः॥

चित्तस्थ भगवान् द्रव्यदेश और अन्तःकरणमें होनेवाले समस्त कलिकृत दोषोंको नष्ट कर देते हैं। अन्तमें भगवान् शुकदेवने इसे और भी स्पष्ट कर दिया—

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥

'जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार होना चाहते हैं, जो दुःख-दावानलसे दग्ध हैं, उन्हें पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके लीला-कथारसका ही पान करना चाहिये, इसके अतिरिक्त मोक्षका कोई और (सरल) साधन नहीं है।' श्रीशुकदेवके इस अमृतोपम प्रवचनसे निश्चित होता है कि भगवान् श्रीकृष्णके वर्णाश्रम-कुलाचारा-नुष्ठित कर्तव्योंके पालन और उनकी लीला-कथाओंके कीर्तनसे ही पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्ति सम्भव है। महाप्रभु चैतन्यने इन सभी भावोंको अपने उपदेशमें समाविष्ट कर दिया है—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥

'भगवान् श्रीकृष्णका नामकीर्तन चित्तरूपी दर्पणको स्वच्छ करता है, संसाररूप महादावाग्निको शान्त करता है, कल्याण-कुमुदिनीकी चाँदनी छिटकाता है, विद्या सुन्दरीको प्राणदान करता है, आनन्दका समुद्र उद्वेलित करता है, पद-पदपर पूर्णामृतास्वाद प्रदान करता है, अन्तःकरणको एकदम स्वच्छ कर देता है। श्रेष्ठतम मोक्ष भी प्रदान करता है। ऐसा श्रीकृष्ण-संकीर्तन सर्वोत्कृष्ट भावसे विजयी है।'

संकीर्तनका स्वरूप और महत्त्व

(परम वीतराग स्वामी श्रीनन्दनन्दनानन्दजी सरस्वती (शास्त्री स्वामी) एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, भू० पू० संसद-सदस्य)

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता
घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः।
संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रं
विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति ॥
(प्रपन्नगीता २५)

'आर्त अर्थात् बाहरसे सताये हुए अथवा मनमें खिन्न, शक्ति-सामर्थ्यहीन होनेसे शिथिल (ढीले), बाह्य-आन्तरिक उपद्रवोंसे भयभीत, घोर रोगोंसे पीड़ित सर्वथा असहाय लोग 'नारायण' शब्दमात्रका संकीर्तन कर दुःखोंसे निर्मुक्त एवं सुखी हो जाते हैं।' इस श्लोकमें दुःखी प्राणीके दुःख-संकटकी पराकाष्ठा और 'नारायण' नामकी तथा संकीर्तनकी लोकोत्तर शक्तिका दिग्दर्शन मिलता है। शास्त्रानुसार कृतयुगमें विष्णुके ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञ-यागानुष्ठानसे, द्वापरमें पूजा-अर्चासे जो सिद्धि प्राप्त होती है, वही कलियुगमें केवल हरिकीर्तनसे प्राप्त होती है—

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

कीर्तन शब्दका सामान्य अर्थ उच्चारण, कथन या वर्णन है। स्वाभाविक है कि यह श्रवणके अनन्तर ही होगा। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे किसी वस्तुके श्रवणके अनन्तर ही उसका कीर्तन होगा। इस कारण नवधा भक्तिकी शृङ्खलामें कीर्तनका स्थान दूसरा है—'**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः**'। किंतु विचार करनेपर श्रवणसे पूर्व यदि किसी अन्यद्वारा कीर्तन न हो तो श्रवण असम्भव होगा। कीर्तित शब्दका स्वयं अपने कानोंद्वारा श्रवण पारतन्त्र्यका द्योतक है। श्रोत्र (कानों)का धर्म ही सुनना है। शब्द होनेपर उन्हें अवश्य सुनना पड़ेगा। इन्द्रियोंका विषय-संयोग स्वाभाविक है; किंतु कीर्तन अथवा अकीर्तनमें मनुष्य स्वतन्त्र है। प्राकृतिक प्रक्रियामें कीर्तन श्रवणकी प्रतिक्रिया है; किंतु सोद्देश्य कीर्तन सर्वथा कीर्तनकर्ताके उद्देश्यपर निर्भर है। सांसारिक विषयोंका कीर्तन सामान्यतः सभी करते हैं; किंतु शुद्ध निःश्रेयःप्राप्तिके लिये कीर्तन केवल वे ही कर सकते हैं, जिनमें विषयोंके प्रति विरति और परमात्मविषयक आसक्तिका उद्भव हो गया है। सांख्यकारिकाकार ईश्वरमिश्रने दुःख-प्रशमनके अलौकिक साधनकी आवश्यकताका उल्लेख करते हुए कहा है कि संसारके सभी लोग आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक—इन त्रिविध दुःखोंके अभिघातसे दुःखी हो उसके शमनके उपायोंकी जिज्ञासा करते हैं, किंतु दृष्ट जगत्में उनका कोई भी ऐकान्तिक अथवा आत्यन्तिक उपाय न मिल सकनेके कारण वे अलौकिक अथवा अदृष्ट उपायके लिये प्रयत्नशील होते हैं—

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ।
दृष्टे सापार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ॥
(सांख्यका० १)

इन अलौकिक उपायोंको विश्वके सभी विचारकोंने गम्भीरतासे खोजा है। ये सब ऋषि-मुनि-महात्मा मत-सम्प्रदायप्रवर्तक अथवा दार्शनिक तत्त्वचिन्तक अथवा भक्त हो सकते हैं। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

हैं श्रुतिविदित उपाय सकल सुर केहि केहि दीन निहोरै।
तुलसिदास येहि जीव मोह रजु जेहि बाँध्यो सोइ छोरै ॥
(विनयपत्रिका १०२। ५)

भारतीय शास्त्रोंने ज्ञान, कर्म और भक्ति—ये तीन प्रमुख उपाय बताये हैं। योग, यज्ञ, मन्त्र-तन्त्र, उपासना आदि सभी इन तीनोंमें अन्तर्भावित हैं। इनमें नवधा भक्तिके प्रसङ्गमें हम कीर्तनको द्वितीय

स्थान कह आये हैं। भक्तिशास्त्रके पण्डितोंने वैधी तथा रागानुगा भक्तिके दो पृथक्-पृथक् रूप बतलाये हैं। वैधी भक्ति शास्त्रोंद्वारा प्रतिपादित मार्गसे किसी उद्देश्य-विशेषसे प्रेरित व्यक्ति-विशेषद्वारा उपासित होती है। भगवान्ने श्रीगीताजीमें कहा है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥
(७। १६)

इनमें आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी—ये तीनों उदार एवं पुण्यात्मा बताये गये हैं, किंतु चतुर्थ—ज्ञानी भक्तको तो श्रीभगवान्ने अपनी 'आत्मा' ही कहा है। इन ज्ञानी भक्तोंमें सनकादि, प्रह्लाद, शुकदेव, उद्धव, श्रीहनुमान्जी तथा कलिमें श्रीचैतन्य महाप्रभु, गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, आचार्यशंकर, रामानुज आदिके नाम आते हैं। बंगालके वैष्णव भक्त तो श्रीगौराङ्ग महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवको श्रीमद्भागवतके—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥
(११। ५। ३२)

—इस श्लोकके आधारपर साक्षात् संकीर्तनावतार ही मानते हैं। इस आधारपर कथा-श्रवण, गुण-कीर्तन तो शेष तीन प्रकारके उदार भक्त कर सकते हैं; किंतु सस्वर नाम-संकीर्तन रागानुगा कोटिमें प्रविष्ट भक्त ही कर सकते हैं। **'सम्यक्कीर्तनम्'**—संकीर्तन शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि—सभीके एक तारमें एक जुट होनेसे सुष्ठु सम्पन्न होता है। यह प्रायः समूहमें सम्भव है, किंतु संकीर्तन-कर्ताकी तल्लीनता इसमें प्रमुख है। दार्शनिक लाइबनिजने इसे प्राकृत सामूहिक नृत्यगान की संज्ञा दी है और नक्षत्र-मण्डलका दिव्य नृत्यगान कहा है। प्रत्येक सौरमण्डलका नक्षत्र अपने केन्द्रके चारों ओर निरन्तर घूमता है। फिर सब नक्षत्रोंका सूर्यके चारों ओर घूमना केवल नृत्य ही है तथा इस नृत्यमें जो दिव्य स्वरगान प्रकट होता है, उसे विश्वके बड़े-बड़े रागी भी नहीं अलाप सकते। आईंस्टाईन आदि परमाणु-वैज्ञानिकोंका कथन है कि प्रत्येक परमाणुमें उसके इलैक्ट्रोन और प्रोटान निरन्तर अपने केन्द्रके चारों ओर घूमते हैं और इनमें भी अलौकिक स्वर-गानकी ध्वनि प्रादुर्भूत होती है। दुःखी प्राणी स्वभावतः नाच-गा नहीं सकता। अतः निश्चित सच्चिदानन्द परब्रह्म श्रीकृष्णको यह नित्य-प्राकृत रासलीलाका ही अभिनय है। प्राकृत नृत्य-गान भले ही एक वैज्ञानिकका विषय हो, परंतु अपने आराध्यके चरण-पङ्कजमें तल्लीन भक्तकी मनः-प्राणेन्द्रिय सभी क्रियाएँ अपने प्रियतमके गानमें तल्लीन होकर एक अनिर्वचनीय उत्फुल्लता-पुलकावलि अभिव्यक्त कर दें, इसमें आश्चर्य क्या!

स्वयं श्रीकृष्णके वेणुरवसे आकृष्ट होकर व्रज-गोपाङ्गनाएँ आत्मविभोर हो घर-परिवार स्वजनोंके प्रति सभी कृत्योंका परित्याग कर देतीं हैं, गौएँ बछड़ोंको दूध पिलाते-पिलाते भूल जातीं और बछड़े भी श्रीकृष्णके अधरामृतसे निःसृत वंशीनादका कर्णपुटोंसे पानकर माताओंके स्तनपर मुख लगाये हुए ही दुग्धपान भूल जाते हैं। पक्षी वृक्षोंकी डालपर मुनियोंकी तरह नेत्र निमीलनकर समाविस्थ हो जाते, हरिणियाँ अपने प्रियतम कृष्णसार मृगोंको भूलकर श्यामसुन्दरके मुखकमलपर टकटकी लगा अपने नेत्रकमलोंसे पूजन करतीं और मयूर प्रभुकी रसमयी मूर्तिके दर्शन और वेणुरवके मधुर सौरस्यमें नाचने लगते हैं। इतना ही नहीं **'अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणाम्'**—सजीव चर प्राणियोंका 'अस्पन्दन' नाड़ी न फड़कना और स्थिर वृक्षोंकी पुलकावलि, कालिन्दीकी वारिधाराका स्तम्भन हो जाना—यह सब है संकीर्तन-सम्राट्का जगन्मोहन संकीर्तन, जिसने कथा-कीर्तनमें अपनी उपस्थिति होनेकी प्रतिज्ञा की है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

मैं वैकुण्ठमें अथवा योगियोंके हृदयस्थलमें निवास नहीं करता, प्रत्युत मेरे भक्तजन जहाँ मेरा कीर्तन-कथा—गान करते हैं, वहीं रहता हूँ। अधिक क्या कहें, स्वयं भक्ति ही अपने दो पुत्रों—वृद्ध ज्ञान-वैराग्यके साथ श्रीवृन्दावनमें दिव्य कीर्तनमें प्रफुल्लित-आनन्दित हो नृत्य करने लगी। यह अलौकिक संकीर्तन कलियुगके आरम्भमें भक्ति-ज्ञान-वैराग्यके दुःख-वार्धक्यकी निवृत्तिके लिये विशाल नगरीमें आयोजित हुआ था, जिसमें सभी संकीर्तन-महारथियोंने भाग लिया। वर्णन इस प्रकार है—

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत्।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जय-जयसुकराः कीर्तने ते कुमारा
यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव॥

इस अलौकिक संकीर्तनमें भक्तराज प्रह्लाद ताल देनेवाले थे, भक्तप्रवर उद्धव तरल (चपल) गतिसे कांसीके झाँझ-खड़ताल बजाते चलते थे। देवर्षि नारदने स्वयं वीणावादन किया। राग अलापनेमें निपुण स्वयं अर्जुन राग अलाप रहे थे, इस संकीर्तनमें देवराज इन्द्रने मृदङ्ग-वादन किया और सनक, सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार चारों कुमारोंने जय-घोषके साथ अद्भुत संकीर्तन किया और दिव्य भावानुभाव, स्थायी भाव आदि परिप्लुत अति रसपरिपूर्ण रचनाके कारण व्याससूनु श्रीशुकदेव स्वयं वक्ता बने। इस दिव्यातिदिव्य संकीर्तनमें भक्ति, वैराग्य और ज्ञान तीनों युवा और परिपुष्ट होकर नृत्य करने लगे। इस दिव्यातिदिव्य कीर्तनको देखकर परम प्रसन्न भक्तजन मानस-सुधासिन्धु परमशान्त आनन्दवर्धक तेजःपुञ्ज-सम्पन्न श्रीहरि स्वयं उपस्थित हो भक्तमानस-सुधास्यन्दिनी गिराका उच्चारण करने लगे। इससे स्पष्ट है कि कलिमल-ग्रस्त जीवके लिये कीर्तनका महत्त्व आधार है। इससे मोक्षप्राप्ति भी सुलभ है।

'पावैगो सत ज्ञान'

राम नाम रटते रहै, साँसै साँस सँभार।
आनि मिलैं प्रभु एक दिन, सफल होय संसार॥
साँसै साँस सँभारता, होना नहीं निरास।
मृगतृष्ना मिट जायगो, पूरी होगी आस॥
राम नाम आधार ले क्यों तू करता रार।
रात दिवस इकतार जप कर देगा भव पार॥
निसि बासर सुमिरन करौ, नामहि सों कर हेत।
गुरु किरपा मिलिहैं अवसि, रघुवर प्रीति समेत॥
राम नाम जपु रात दिन, तजि कै दूजो ध्यान।
याही बिधि अभ्यास तें पावैगो सत ग्यान॥

वेदोंमें संकीर्तन

(लेखक—श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

ऋग्वेदका आदेश है कि जन्म लेनेके बाद जैसे-जैसे ज्ञान विकसित होता जाय, वैसे-वैसे हमें संकीर्तनका क्रम बढ़ाते जाना चाहिये। इतना संकीर्तन किया जाय कि भगवान् प्रसन्न हो जायँ—

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद
ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम विवक्तन
महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे॥
(ऋक्० १। १५६। ३)

इस ऋचाके तीन चरणोंमें दो वाक्य हैं—

(**क**) **तमु, उ जनुषा पिपर्तन**[1] (जन्मसे ही संकीर्तन आदिके द्वारा भगवान्‌को प्रसन्न करो)।

(**ख**) **आस्य जानन्तो नाम विवक्तन** (भगवान्‌के नामका संकीर्तन करो)।

पहले वाक्यमें 'उ' निपात है, जिसका अर्थ 'ही' होता है। अतः इस वाक्यका अभिप्राय हुआ कि 'मानव-जीवनका एकमात्र लक्ष्य है—भगवान्‌को प्रसन्न करना।' इस वाक्यमें साधनके रूपमें संकीर्तन विवक्षित है। इसलिये सायणने 'पिपर्तन'की व्याख्यामें '**स्तोत्रादिना प्रीणयत**' लिखा है। '**स्तोत्र**'का अर्थ होता है—'गुण आदिका संकीर्तन।' इसीलिये भगवान् शंकराचार्यने '**स्तुवन्तः**' की व्याख्या '**गुणसंकीर्तनं कुर्वन्तः**'[2] किया है। इस तरह इस वाक्यसे सामान्य कीर्तनका निर्देश मिल जाता है।

दूसरा वाक्य है—'**आस्य नाम जानन्तो विवक्तन**'—यह स्पष्टरूपसे नामसंकीर्तनका विधान करता है। सायणने 'आ विवक्तन'का 'आपलोग संकीर्तन करें' यह अर्थ किया है—'**आ=समन्तात्, विवक्तन=वदत,सङ्कीर्तयत।**' सायणने जो 'आ' का '**समन्तात्**' अर्थ किया है, इसका अर्थ होता है—चारों ओरसे। अतः '**आ विवक्तन**'का तात्पर्य होता है कि भगवान्‌का संकीर्तन नाम, रूप, लीला और धाम—इन चारों प्रकारोंसे होना चाहिये। चूँकि नाम-संकीर्तनमें अन्य तीनोंका समावेश हो जाता है, इसीलिये भगवती श्रुतिने नाम-संकीर्तनपर विशेष बल दिया है—'**नाम आ विवक्तन।**'

श्रुतिके तीन चरणोंका अर्थ इस प्रकार है—(**स्तोतारः**) हे स्तोतागणो! (**पूर्व्यं ऋतस्य गर्भं तमु उ**) अनादि यज्ञ-स्वरूप भगवान्‌को ही (**जनुषा यथाविद**) जन्मसे ज्यों-ज्यों जानते जाओ, त्यों-त्यों[3] कीर्तन[4] आदिके द्वारा (**पिपर्तन**) प्रसन्न कर लो। इसके बाद भगवती श्रुति संकीर्तनका विशेष विधान करती है—(**आस्य नाम जानन्तो विवक्तन**)। पुरुषार्थ-प्रद जानकर भगवान्‌के नामका संकीर्तन करो।

संकीर्तनसे स्तोतागणोंको लक्ष्यकी प्राप्ति

अबतक श्रुतिके चौथे चरणमें किस तरह स्तोतागणोंने भगवान्‌का साक्षात्कार प्राप्त किया यह बतलाया है। स्तोतागण जब नाम-कीर्तनमें जुट गये, तब भगवान् शीघ्र प्रसन्न हो गये। उन्होंने दुर्लभ दर्शन देकर वर माँगनेके लिये कहा। स्तोतागण सौन्दर्य-सिन्धुके सौन्दर्यका छककर पान कर रहे थे, जिसकी एक बूँदके एक कणमें ही संसारकी सारी सुन्दरताएँ समायी हुई हैं। वे उस मिठासभरे वचनको सुन रहे थे, जिसके

१—श्रीमद्भागवतमें श्रुतिके इसी अर्थका प्रतिपालन हुआ है। वहाँ कहा गया है कि बचपनसे ही भगवान्‌को प्राप्त करानेवाले, कीर्तन-भागवत आदि धर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये—'कौमार आचरेत् प्राज्ञः धर्मान् भागवतानिह।' (श्रीमद्भा० ७। ६। १)

२—विष्णुसहस्रनामभाष्य—'नाम्नां सहस्रेण स्तुवन्=गुणान् संकीर्तयत।'

३—यावदस्य महत्त्व जानीथ तावत् (सायण)।

४—स्तोत्रादिना प्रीणयत। (सायण)

एक कणसे संसारकी सारी मधुरताएँ बनी हैं। उनका मनोरथ सफल हो चुका था, अतः उन्होंने वरदानमें भगवान्‌की ममतामयी कृपा-बुद्धिकी शरण माँगी। वे बोले—हम (**महस्ते**) महान् आपकी (**सुमतिं**) शोभन-बुद्धिका (**भजामहे**) भजन-कीर्तन करते रहें।

इस तरह ऋग्वेदने मानव-जीवनका लक्ष्य, उसकी प्राप्तिके लिये संकीर्तनका विधान और उससे मिलनेवाली सफलताकी घटनाको प्रस्तुत कर सुस्पष्ट कर दिया है कि संकीर्तनका पथ सरस, सुगम और सफल है—

एष निष्कण्टकः पन्था यत्र सम्पूज्यते हरिः।

(१) नाम-कीर्तन

(क) नाम-कीर्तनके भीतर रूपादिका समावेश

उपर्युक्त पङ्क्तियोंसे स्पष्ट है कि ऋग्वेदने पहले तो सामान्य कीर्तनका और पीछे नाम-कीर्तनका विशेष विधान किया है। इसका मनन अपेक्षित है। बात यह है कि नामोच्चारणके साथ रूप, लीला और धामका समावेश हो जाता है। आद्य शंकराचार्यने बताया है कि नाम-संकीर्तनके भीतर स्मरण और ध्यानका समावेश हो जाता है—

'मनसा चाग्रे संकल्पयत्यथ वाचा व्याहरति', 'यद्धि मनसा ध्यायति तद् वाचा वदति' इति श्रुतिभ्यां स्मरणं ध्यानं च नामसंकीर्तनेऽन्तर्भूतम्।
(वि० स० १४)

कोई भी पहले मनसे सोचता है, तब उसे वाणीसे प्रकट करता है—इस अभिप्रायवाली दोनो श्रुतियोसे सिद्ध हो जाता है कि स्मरण और ध्यान नामसंकीर्तनकी कुक्षिमें प्रविष्ट हैं।

हम सहस्रनामका पाठ कर रहे हैं। यहाँ भी नामका उच्चारण पहले हो रहा है और अर्थका स्मरण बादमें। जब हम 'पञ्चानन' बोलते हैं तब भगवान् विश्वनाथके पाँच मुँहवाले रूपका, जब 'त्रिपुरारि' पढ़ते हैं तब उनके त्रिपुरासुरके नाश करनेवाली लीलाका और जब 'काशीनाथ' या 'कैलासनाथ' कहते हैं तब उनके धामका स्मरण हो जाता है। इस तरह नाम-कीर्तनमें रूप, लीला, धामका अन्तर्भाव हो जाता है। यही कारण है कि ऋग्वेदने नामकीर्तनपर विशेष बल दिया है।

(ख) सबसे श्रेष्ठ साधन

कठोपनिषद्‌ने नाम-संकीर्तनकी श्रेष्ठताको अभिधासे अभिव्यक्त कर दिया है—

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। (२। १६)

कलिसंतरणोपनिषद्‌ने और स्पष्टरूपसे समझा दिया है कि समस्त वेदोंमें नाम-संकीर्तनसे बढ़कर और कोई उपाय नहीं दीखता—

'नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते।'

(ग) लक्ष्यका शीघ्रतम प्रापक

ऋग्वेदने उक्त घटना प्रस्तुत कर यह भी व्यक्त कर दिया है कि नाम शीघ्र ही नामीको प्राप्त करा देता है। स्तोतागण कर्मकाण्डमें व्यापृत (संलग्न) थे। वे तृतीय सवनमें अच्छावाकीय सूक्तका पाठ कर रहे थे। इसी बीच नाम-संकीर्तनका प्रसंग आता है और इसके बाद दूसरी क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इससे प्रतीत होता है कि नाम-संकीर्तनके थोड़ी ही देर बाद भगवान्‌का प्राकट्य हुआ। मुण्डकोपनिषद्‌में नामकीर्तनकी आशु फलप्रदता समझानेके लिये 'नाम' के लिये 'धनुष' का रूपक प्रस्तुत करके बतलाया गया है कि बाण जैसे धनुषका आश्रयण कर क्षणमें लक्ष्यतक पहुँच जाता है, वैसे ही जीव भी नामका सहारा लेकर शीघ्र ही लक्ष्यतक पहुँच जाता है, तन्मय हो जाता है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्॥

(घ) नाम नामीको खींच लाता है

मुण्डकका रूपक नये साधकोंके लिये है, जिनके हृदयमें अभी लगन लगने लगी है और ऋग्वेदकी घटना

अधिक लगनवाले साधकोंकी है, ऐसे लोगोंको लक्ष्यकी ओर कदम उठानेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती। भगवान्‌का चिन्मय नाम स्वयं भगवान् है। वह नामीको ही साधकोंके सम्मुख खींच लाता है। स्तोतागणोंको कहीं जाना नहीं पड़ा था। नामने नामीको यज्ञस्थलमें ही लाकर उपस्थित कर दिया था। नामके उच्चारणमें लगनकी मात्रा जितनी अधिक होगी उतनी ही शीघ्रतासे नामी वहाँ आ पहुँचता है। कभी-कभी तो नामका उच्चारण पूरा भी नहीं होता कि नामी उपस्थित हो जाता है। भरी सभामें द्रौपदीकी लाज जानेको ही थी। द्रौपदीने झट पूरी लगनसे नामका सहारा लिया। वह पूरा 'गोविन्द' नाम कह भी नहीं पायी थी कि नामी वहाँ उपस्थित हो गया। इस बार उस बहुरूपियेने वस्त्रका रूप धारण कर लिया था। दुःशासन खींचता गया, खींचता गया, खींचता रह गया! जीवनभर खींचता रहता तो भी क्या उस अनन्तका अन्त होता? नामके आधे उच्चारणसे ही नामी आ धमका था। नामी इस उपद्रवको कबतक सहता? संकेत पाकर जड़वर्गने भी विद्रोह कर दिया। आकाश गरज उठा। अनभ्र वज्रपात होने लगा। हवा फुफकार बन बैठी। समुद्रमें ज्वार-भाटा उठने लगा। पृथ्वीके भीतर भयानक गड़गड़ाहटकी आवाज होने लगी। भवन काँप उठे। ऐसा लगा कि पृथ्वी फटी और अत्याचारी इसीमें विलीन हो जायँगे; किंतु वे समयसे चेत गये। द्रौपदी एवं इसके पतियोंकी शरण ली गयी। उत्पात शान्त हो गया। द्रौपदीकी विजय हो गयी।

यह सब आधे नामका चमत्कार था। नामने द्रौपदीके लिये इतना ही नहीं किया, अपितु इसने नामीके हृदयमें वह अमिट कसक उत्पन्न कर दी कि बेचारा नामी अपनेको सदाके लिये ऋणी मान बैठा। द्रौपदीकी अकुलाहटसे भरी वह पुकार उसके हृदयको सदा सालती ही रहेगी—

यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम्।
ऋणं प्रवृद्धमेतन्मे हृदयान्नापसर्पति॥

(ङ) लौकिक नाम और भगवन्नाममें अन्तर

भगवान्‌की तरह इनके नामकी शक्ति भी अचिन्त्य होती है। यह शक्ति लौकिक नामोंमें नहीं होती; क्योंकि लौकिक नाम-नामीमें 'भेदसहिष्णु अभेद' होता है, जबकि भगवान् और उनके नाममें वास्तविक 'अभेद' रहता है। इसमें प्रमाण माण्डूक्य उपनिषद् है—

ओमित्येकाक्षरमिदं सर्वम्　　　(१ । १)

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वमित्याद्यभिधानप्राधान्येन निर्दिष्टस्य पुनरभिधेयप्राधान्येन निर्देशोऽभिधानाभिधेययोरेकत्वप्रतिपत्त्यर्थः।　　　(शां० भाष्य)

अर्थात् 'ओम्' यह अक्षर (नाम) ही सब कुछ है। इस श्रुतिकी व्याख्या करते हुए भगवान् शंकराचार्यने बतलाया है कि यद्यपि वाचक (नाम) और वाच्य-(नामी) में अभेद है, फिर भी भगवती श्रुति जो यहाँ वाचककी प्रधानतासे और आगे वाच्यकी प्रधानतासे प्रतिपादन करती है, वह केवल इसलिये कि वाच्य और वाचकका अभेद-बोध हो जाय।

इस तरह भगवान् और इनके नाममें अभेद सिद्ध हो जाता है। इसी तरह भगवान्‌का रूप, उनकी लीला, उनका धाम सब भगवन्मय हैं, सब अभिन्न है, सब चिन्मय हैं। यही कारण है कि एक नाममें पापोंके विनाशकी जितनी शक्ति होती है, उतने पाप चौदहों भुवनोंके निवासी मिलकर भी नहीं कर सकते—

अत्रैकनाम्नो या शक्तिः पातकानां निवर्तने।
तन्निवर्त्यमघं कर्तुं नालं लोकाश्चतुर्दश॥
(ब्रह्माण्डपु० उ०ख० १ । ३ १६)

—क्रमशः

१–तुलना कीजिये—'गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न'

वेदोंमें संकीर्तनका स्वरूप और उसकी महिमा

(लेखक—श्रीजगन्नाथजी वेदालंकार)

ऋग्वेदके एक मन्त्रमें भगवन्नाम-कीर्तनका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वहाँ कहा गया है कि 'परम ऐश्वर्यशाली इन्द्र परमेश्वरका नाम और उसका शत्रुओंको झुकानेवाला बल कीर्तनके योग्य है—'कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत्' (१। १०३।४) एक अन्य मन्त्रमें भी कहा गया है—'अश्विदेवो! आपका दान, आपकी दिव्य देन महान् और कीर्तनके योग्य है'—'तद् वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्' (ऋ० १।११६।६) एक और स्थलमें वामदेवके गोत्रमें उत्पन्न बृहदुक्थ ऋषि कहते हैं—

'तां सु ते कीर्तिं मघवन् महित्वा' (ऋ० १०।५४।१)

'परम ऐश्वर्यशाली इन्द्र प्रभो! तुम्हारी महिमासे प्रथित तुम्हारी कीर्तिका मैं उत्तम प्रकारसे कीर्तन करता हूँ।' वेदोंमें भगवन्नामके कीर्तनके लिये 'कीर्तेन्य' और 'संकीर्तन' शब्दोंकी जगह बहुशः 'कीर्ति' शब्दोंका प्रयोग किया गया है। वेद तो ऐतिह्योंके वैदिक कालकी भाषामें भगवान्के स्तोत्रोंसे ही भरे पड़े हैं। ऋग्वेदका आरम्भ ही 'अग्निमीळे' शब्दोंसे होता है, जिनका अर्थ है—'मैं उपासक-प्रकाशस्वरूप अग्निदेवकी उपासना करता हूँ।' और फिर इस सारे सूक्तमें उस सन्मार्गदर्शक अग्निदेवके गुणों और कर्मोंका स्तवन और कीर्तन ही किया गया है। सामवेद तो विशेषरूपसे भगवान्के गेय स्तोत्रोंका ही वेद है, जो सामगानमें नाना प्रकारोंसे गाये जा सकते हैं। गेय मन्त्रोंको ही साम कहते हैं—'गीतीषु सामाख्या' (मीमांसादर्शन २।१।३६)। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है कि वेदोंमें सामवेद मेरी विशेष विभूति है। उसका कारण यह है कि सामगानसे भगवान्के नामों, गुणों, कर्मों और चरितोंका उच्च स्वरसे गान और कीर्तन किया जा सकता है। कीर्तनसे भगवान् प्रकट होते हैं और भक्तोंका तथा सम्पूर्ण जगत्का मङ्गल करते हैं। इसीलिये सामगायक वेदमन्त्रोंके सामगानोंसे भगवान्का गायन, कीर्तन और आवाहन किया करते हैं—

'वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।'
(श्रीमद्भागवत १२।१३।१)

भक्तवर प्रह्लादने कीर्तनको नवधा भक्तिमें दूसरी संख्यापर गिना है (श्रीमद्भागवत ७।५।२३)। श्रीमद्भागवतमें अनेक प्रकारसे की गयी है। (६।३।२४)में कहा गया है—'संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्'—भगवान्के नामों, गुणों और कर्मोंके कीर्तनको संकीर्तन कहते हैं। (२।१।११)में 'हरेर्नामानुकीर्तनम्'की बात बतायी गयी है। इस प्रकार पापतापहारी चितचोर हरिके नामोंका अनवरत उच्चस्वरसे उच्चारण करना ही कीर्तन है। श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीने अपने ग्रन्थ 'वृन्दावनमहिमामृत'में लिखा है—

'वाण्या गद्गदया कदा मधुपतेर्नामानि संकीर्तये।'

इससे यह अभिप्राय निकलता है कि गद्गदकण्ठसे श्रीकृष्णके नामका कीर्तन ही संकीर्तन है। याज्ञवल्क्यस्मृतिकी 'वीरमित्रोदय' टीकामें संकीर्तनकी परिभाषा इन शब्दोंमें दी गयी है—

'संकीर्तनं नाम भगवद्गुणकर्मनाम्नां स्वयमुच्चारणम्।'

'भगवान्के नामों, गुणों और कर्मोंका स्वयं उच्च स्वरसे उच्चारण करना ही संकीर्तन है।' किंतु इसमें सामूहिक संकीर्तनका समावेश न होनेसे हम इसमें कुछ शब्द बढ़ाकर इसे व्यापक परिभाषाका रूप देना चाहते हैं, जो इस प्रकार होता है—

संकीर्तनं नाम स्वयं सम्मिल्य वा एकस्वरेण गद्गदगिरा भगवन्नामगुणकर्मणां कीर्तनम्।

'एक व्यक्तिका अकेले अथवा बहुत-से लोगोंका मिलकर एक स्वरसे, गद्गद वाणीसे भगवान्के नाम-गुण-कर्मोंका गान करना ही 'संकीर्तन' कहलाता है।' कलियुगमें संकीर्तनके पावनावतार, प्रेममूर्ति श्रीगौराङ्गदेव चैतन्य महाप्रभु कीर्तनकारके लिये आवश्यक गुणोंका अपने श्रीमुखसे वर्णन करते हुए कहते हैं—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥
(शिक्षाष्टक)

'जो कीर्तन करनेवाले हैं, उन्हें चाहिये कि वे अपनेको तिनके-से भी तुच्छ समझकर और वृक्षसे भी अधिक सहनशील बनकर अपने लिये किसी प्रकारके मानकी इच्छा न करते हुए तथा स्वयं सबका सम्मान करते हुए नित्य-निरन्तर हरिके नाम-गुण-कर्मोंके कीर्तनमें रत रहें।' ऐसा करनेसे

ही उन्हें प्रभुका प्रसाद प्राप्त हो सकता है। अब हम पाठकोंको कुछ वेद-मन्त्रोंका रसास्वादन कराते हैं, जिनमें ऋषियोंकी दिव्य वाणीद्वारा परमेश्वरका स्तवन-कीर्तन किया गया है।

ॐ नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे।
इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ (ऋ० ३। ३७। ३)

'अनन्त ज्ञानके भण्डार! सैकड़ों प्रकारके पराक्रमपूर्ण कर्म करनेवाले, परम ऐश्वर्यशाली प्रभो! हम सब प्रकारकी वाणियोंसे आपके नामोंका ही कीर्तन करते हैं, जिससे हम अभिमानपर पूर्णरूपसे विजय प्राप्त कर सकें।' इस मन्त्रका अन्तिम पद 'अभिमाति षाह्ये' चैतन्य महाप्रभुके 'तृणादपि सुनीचेन''''''''' इत्यादि श्लोकका भाव वैदिक भाषामें भी गूँज रहा है। तथा—

सहस्रं साकमर्चत परिष्टोभत विंशतिः।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(१। ८०। ९)

'बीसियों, सैकड़ों और हजारों लोग एक स्थानपर मिलकर परमेश्वरके स्तोत्र गायें, उनका स्तवन, पूजन और कीर्तन करें। जो मनुष्य सामूहिक रूपसे स्तोत्र-गान करते हैं, उनकी प्रार्थनाओंकी पूर्तिके लिये परब्रह्म परमात्मा सदैव उद्यत रहते हैं। अतः अध्यात्म-साम्राज्य चाहनेवालोंके लिये सामूहिक स्तवन-कीर्तन नितान्त आवश्यक है।' और भी कहा है—

अर्चत प्रार्चत नरः प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत ॥
(साम० ३६२)

'उपासना-यज्ञके प्रेमी भक्तजनो! तुम पिण्ड और ब्रह्माण्डका पालन करनेवाले, सब प्रकारकी न्यूनताओंको दूर करनेवाले, समस्त पाप-तापोंका धर्षण एवं निवारण करनेवाले परमेश्वरकी अर्चना करो, उसका उत्तम प्रकारसे गुण-गान करो, स्तुति-प्रार्थना-उपासना करो, भजन-कीर्तन करो। केवल तुम्हीं नहीं, तुम्हारे पुत्र-पौत्र एवं भावी संतानें भी उसका वन्दन, स्तवन और संकीर्तन किया करें।' इस मन्त्रमें पूजार्थक 'अर्च' धातुका पाँच बार प्रयोग किया गया है, जो पूजनके नाना प्रकारोंकी ओर संकेत करता है।

सखाय आ नि षीदत सवित्रे पुनानाय प्र गायत।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥
(साम० ५६८)

'समान स्वभाववाले भक्त-मित्रो! आओ, मिलकर बैठो। सबको पवित्र करनेवाले प्रभुका उच्च स्वरसे गुण-गान करो। अध्यात्म-सम्पदा प्राप्त करनेके लिये भक्ति-यज्ञोंके द्वारा उसकी श्री-शोभा और गरिमा-महिमा उसी प्रकार बढ़ाओ, जिस प्रकार (जातकर्म) संस्कारसे नवजात शिशुकी शोभा बढ़ायी जाती है।'

'अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।'
(ऋ० १। २४। २)

'देवताओंमें प्रथम, प्रकाशस्वरूप अग्निदेवके परम मनोहर नामका हम बारंबार कीर्तन करते हैं।'

मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे।
(ऋ० ८। ११। ५)

'भगवन्! हम मरणशील मनुष्य आप अजरामर अविनाशी प्रभुके नामका नित्य-निरन्तर उच्चारण करते हैं।'

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ (ऋ० १। १५६। ३)

'स्तोताओ! सत्य और यज्ञके गर्भस्वरूप, सनातन पुरुष विष्णुको तुम जैसा जानते हो उस प्रकारके स्तोत्रोंके द्वारा उसका आराधन और प्रीणन करो, जिससे तुम्हारा जन्म सफल हो। उसकी महिमाको जानते हुए उसके चित्प्रकाशस्वरूप नामका प्रवचन और कीर्तन करो। सर्वव्यापक विष्णो! हम तुम्हारी महिमाके कीर्तनसे तुम्हारी सुमति प्राप्त करते और उसका सेवन करते हैं।' इस मन्त्रकी व्याख्या करते हुए वेदभाष्यकार सायणाचार्यने 'विवक्तन' पदका अर्थ 'वदत—संकीर्तयत' लिखा है। इस प्रकार उन्होंने इसे स्पष्टतया संकीर्तनका प्रतिपादक माना है। आचार्य शंकर, श्रीधर स्वामी, श्रीलक्ष्मीधर, श्रीपाद सनातन गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी आदिने तो इस मन्त्रको नाम-महिमा और नाम-संकीर्तनका मूल सूत्र ही माना है। इसी प्रकार अन्य भी मन्त्र हैं—

प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुहि। (ऋ० ८। १०३। १०)

'प्रिय पदार्थोंमें सबसे अधिक प्रिय, प्रियतम प्रभुका ही स्तवन-कीर्तन करो।'

महो महीं सुष्टुतिमीरयामि। (ऋ० २। ३३। ८)

'महान् और महनीय देवकी महती सु-स्तुतिका मैं उच्च स्वरसे उच्चारण करता हूँ।'

※

विष्णो······वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे ।
(ऋ० ७ । १०० । ७)

'सर्वव्यापी विष्णो ! उत्तम स्तुतिसे भरी मेरी वाणियाँ विश्वमें तेरी महिमा बढ़ायें ।'

कद्रु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते ।
तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥ (साम० २२४)

'पूर्ण ज्ञानी महतो महीयान् परम पूजनीय परमेश्वरके लिये जो कुछ भी, जो थोड़ा-सा भी वचन स्तुतिरूपमें कहा जाता है, वह निश्चय ही उस स्तोताका—भक्तका संवर्धन करनेवाला होता है ।' वह उसके मनोबल और आत्मबलको बढ़ाता है तथा उसका लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण करनेवाला होता है ।

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ (ऋ० ९ । ३३ । ४, साम० ४७१)

'वेदोंकी त्रिविध (गद्य, पद्य और गीतिरूप) वाणियाँ अथवा परमेश्वरके निज नाम 'ओम्'की तीन मूल आदि-ध्वनियाँ (अ उ म्) भक्तके मुखसे उच्च स्वरमें उच्चरित हो रही हैं । उन्हें सुनकर भक्तकी पुकारपर पाप-तापहारी, चितचोर हरि गरजते हुए, उसका आह्वान करते हुए आ प्रकट होते हैं, जैसे बछड़ोंकी पुकारपर दुधारू गाएँ हुंभार उठती हैं ।' ऊपर हमने कुछ वेदमन्त्रोंके द्वारा वैदिक कीर्तनका दिव्य-रस-पान कराया है । अब हम इस कीर्तनके अन्यत्र सगृहीत अमृतका आस्वादन कराते हैं ।

संकीर्तनके प्रथम आचार्य नारदजी कहते हैं—

संकीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति, अनुभावयति च भक्तान् ।
(ना० भ० सू० ८०)

'भगवान्‌का प्रेमपूर्वक कीर्तन किया जाय तो वे शीघ्र ही प्रकट हो जाते हैं तथा अपने भक्तोंको अपना अनुभव और साक्षात् दर्शन करा देते हैं ।' इससे ठीक ऊपर दिये अन्तिम वेदमन्त्रमें भी यही बात कही गयी है—'हरिः एति कनिक्रदत् ।'

श्रीचैतन्यमहाप्रभु अपने 'शिक्षाष्टक'में कहते हैं—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥

'श्रीकृष्णके नाम और गुणोंका कीर्तन भगवत्प्राप्तिका सर्वोपरि साधन है । यह चित्तरूपी दर्पणको स्वच्छ शुभ्र कर देता है और संसारके महादावानलको शान्त कर देता है । कल्याणरूपी कुमुदिनीको अपनी चन्द्रिकासे विकसित कर देता है, विद्यारूपिणी वधूको नवजीवन दे देता है, आनन्द-सागरको तरङ्गित कर देनेवाला है, पग-पगपर पूर्ण अमृतका आस्वादन कराता है और हमारी सम्पूर्ण आत्माको शान्ति और आनन्दकी धारामें स्नान करा देता है ।' स्कन्दपुराणमें कहा गया है—

आधयो व्याधयो यस्य स्मरणान्नामकीर्तनात् ।
तदैव विलयं यान्ति तमनन्तं नमाम्यहम् ॥

'जिसके स्मरण और नाम कीर्तनसे सभी शारीरिक और मानसिक रोग तत्क्षण विनष्ट हो जाते हैं, उस अनन्तशक्ति भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ ।' श्रीचैतन्य-चरितामृतमें आया है कि गौराङ्ग महाप्रभुने कीर्तनके द्वारा कई कोढ़ियोंको और अन्य असाध्य रोगोंसे पीड़ित रोगियोंको रोगमुक्त कर दिया । श्रीजगदीशचन्द्र वसुने प्रत्यक्ष परीक्षणोंसे सिद्ध कर दिखलाया है कि पेड़-पौधे संगीतके प्रभावसे नीरोग और सुपुष्ट हो जाते हैं तथा अच्छी तरह पनपते और फूलते-फलते हैं । माताएँ रोते शिशुओंको लोरी-गानोंसे सुला देती हैं । ये सब कार्य कीर्तनकी ध्वनिसे भी सहज ही किये जा सकते हैं ।

श्रीचैतन्य-चरितामृत (मध्यलीला) में आया है कि श्रीचैतन्य महाप्रभु वृन्दावन जानेके लिये प्रसिद्ध पथ-सड़क आदिको छोड़कर अप्रसिद्ध मार्गसे ही चल दिये और उन्होंने कटककी दाहिनी ओर वनमें प्रवेश किया । वहाँ निर्जन वन था । प्रभु उसमें श्रीकृष्णका नाम उच्चारण करते हुए जा रहे थे । हाथी, सिंह आदि हिंसक पशु श्रीमहाप्रभुको देख-कर रास्ता छोड़ देते थे । झुंड-के-झुंड व्याघ्र, हाथी, गैंडा आदि उस जंगलमें विचर रहे थे, किंतु महाप्रभु प्रेमावेशमें उनके बीचो-बीच चल रहे थे । उन सबको देखकर भट्टाचार्यका हृदय अत्यन्त भयभीत हुआ, किंतु वे हिंस्र पशु श्रीमहाप्रभुके ···पमें एक ओर हो जाते और प्रभु उनके ··· प्रभावसे हिंस्र पशुतक ··· हैं । पतञ्जलि मुनिने किया

हृदयमें अहिंसावृत्ति, प्राणिमात्रके प्रति प्रेम दृढ़तया प्रतिष्ठित हो जाय तो उसकी समीपतामें हिंसक भी अपनी वैर-वृत्ति त्याग देता है—

'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः।'

(पातञ्जलयोगदर्शनम्, साधनपाद ३५)

श्रीरूपगोस्वामीने 'भक्तिरसामृतसिन्धु'में भक्तिरसकी अलौकिक महिमा गायी है। वहाँका यह वचन उद्धृत करने योग्य है—

ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्धगुणीकृतः।
नैति भक्तिरसाम्भोधेः परमाणुतुलामपि॥

(१ । १०)

'यदि ब्रह्मके आनन्दको असंख्य गुना कर दिया जाय तो भी वह भक्ति-रसके उमड़ते हुए सागरकी एक बूँदकी भी बराबरी नहीं कर सकता।'

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि ऐसा रस-सागर सत्कीर्तनसे ही उमड़ता है और वह सम्पूर्ण भुवनको पवित्र कर देता है—

'मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति' (श्रीमद्भा० ११।१४।२४)

श्रद्धा-भक्तिसे रहित व्यक्ति उस तत्त्वको कोरी अतिशयोक्ति कहकर उड़ा दे सकता है। इस सत्यकी सत्यता जाननेका मार्ग महर्षि श्वेताश्वतरने श्वेताश्वतरोपनिषद्में अत्यन्त सरल और स्पष्टरूपसे दिखलाया है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः, प्रकाशन्ते महात्मनः॥

(श्वे० ६ । २३)

व्यक्तिको इस तथ्यकी सचाई जाननेके लिये भगवान्में पूर्ण श्रद्धा रखते हुए उसकी सर्वभावसे भक्ति करनी चाहिये। भगवान्में ही नहीं, अपितु मार्ग दिखानेवाले उसके प्रतिनिधि गुरुमें भी उसकी पूर्ण भक्ति होनी चाहिये। भगवान्की परमभक्तिसे ये सत्य उसे हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष हो जायँगे, उसके अन्तःकरणमें प्रकाशित हो उठेंगे।

वेदों एवं उपनिषदोंमें संकीर्तनके सूत्र

(लेखक—डॉ० श्रीकपिलदेवजी शुक्ल, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

'भक्तिरसे निमग्नैर्जनैः स्वकीयेष्टदेवताप्रीत्यर्थमुच्चस्वरेण गानपूर्वकं क्रियमाणं स्तवनं कीर्तनमिति कथ्यते।' भक्तिरसानुप्राणित जनोंद्वारा अपने इष्टदेवताके प्रसीदनार्थ उच्चस्वरसे गानपूर्वक किया गया स्तवन कीर्तन कहलाता है। यह स्तवन देवताके नाम, रूप तथा कर्मपर आधृत होना चाहिये। 'सम्यक् कीर्तनं संकीर्तनं भवति'—भलीभाँति किया गया कीर्तन 'संकीर्तन' कहलाता है। यह संकीर्तन शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कॄ' संशब्दने धातुमें उपधादीर्घ और ल्युट् (अन) प्रत्यय करनेपर बनता है। आदि-मानवका आद्युच्चारण कीर्तनमय होकर आदि भाषामें अवतरित हुआ। ऋषिगण अपनी ओजस्विनी प्रज्ञाके द्वारा उस जगन्नियन्ताकी विभिन्नरूपा कृतियोंका स्तवन करते हुए मङ्गलकी कामना करते हैं। उनकी दृष्टि बड़ी उदार एवं व्यापक थी। जगत्में दृश्यमान समस्त कार्योंको वे परमेश्वरकी लीलाका वितान मानते थे। एतदर्थ उन्होंने परमेश्वरकी अग्नि, इन्द्र, विष्णु, प्रजापति, पुरुष, वरुण, आदित्य, रुद्र, मरुत् तथा पर्जन्य आदि विभिन्न रूपोंके माध्यमसे स्तुति की है। इन स्तुतियोंमें जहाँ अधिकतर नामोल्लेख है, वहीं तत्सम्बद्ध देवताके रूप एवं कर्मका सुन्दर वर्णन भी है। वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें यद्यपि कीर्तन शब्द प्रयुक्त नहीं है, तथापि स्तुति, स्तवन, अनुशंसन तथा स्तोत्र आदि शब्द उपर्युक्त आशय-हेतु तत्काल प्रचलित थे और कीर्तन भी कथन-अर्थमें प्रयुक्त होता था। उस कालमें कीर्तन अथवा संकीर्तनकी आजकी भाँति कोई रूढ विधा नहीं थी।

ऋग्वेदमें कई स्थलोंपर स्तुति एवं स्तुतिकर्ताके लिये कीरि (कॄ धातुके रूप) शब्द-रूपोंका प्रयोग है, जो कीर्तन एवं कीर्तन करनेवालेके अर्थमें है। 'कीरिणा, कीरये, कीरचोदनम्, कीरेः' आदि ऐसे ही शब्द-रूप

हैं। 'कृत्' धातुके शब्दरूप भी ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें मिलते हैं, पर उनका अर्थ नामकथन ही किया गया है। ऐसे शब्दरूप हैं—कीर्तयेत्, कीर्तयति, कीर्तयन्ति तथा कीर्तयिष्येत्। 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'—इस गीताके वाक्यसे सम्पुष्ट है कि वेदोंमें उसी लीलामय पुरुषका वर्णन है। अतः वैदिक ऋषिने विभिन्न देवताओंके रूपमें उसकी आभाका अवलोकन कर अनुभूतपूत तत्त्वोंका अपनी गीर्वाणवाणीमें उद्घोष किया है। सूक्तोंमें उसने देवता-के नामका उल्लेख करते हुए उसके रूप, गुण एवं कर्मका प्रशस्य गान भी किया है। इन स्थलोंमें कीर्तनका मूल तत्त्व अनुसंधेय है। एतदर्थ ऋग्वेदके कतिपय मन्त्र द्रष्टव्य हैं—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं रत्नधातमम्·····।

उपत्वाग्ने दिवेदिवे नमो भरन्त एमसि॥

वयंत इन्द्र विश्वहप्रियासः सुवीरासो विदथमावदेम।

कदान्वन्तर्वरुणे ··················· भुवानि॥

संहिताओंमें देवताके नामोंका वैविध्य कर्ममूलक है। रूपकी भिन्नता भी एतत्सदृश है, परंतु स्तवनकी यह भिन्नता तात्त्विक नहीं, अपितु प्रकारान्तरसे परमेश्वरके स्तवनमें समाहित है। श्रुति इसकी पुष्टि करती है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु-
रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
(ऋक्संहिता)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ऋग्वेदकी देवस्तुतियाँ देवकीर्तनके रूपमें प्रयुक्त हैं। आचार्य सायण ऋक्की परिभाषामें इसका संकेत करते हैं—'अर्च्यते प्रशस्यतेऽनया देवविशेषः क्रियाविशेषस्तत्-साधनविशेषो वा।' समस्त वेदोंके सारभूत गायत्री-मन्त्रमें जगन्नियामक सवितादेवताकी कीर्तनीया यशोगाथाका ही ज्ञान-ध्यानपूर्ण गान हुआ है। जिसका स्तवन दिनकी तीनों संधियोंमें किया जाता है। वस्तुतः हमारे धर्मशास्त्रोंमें वर्णित नित्यकरणीय पञ्चमहायज्ञोंमें ब्रह्मयज्ञ अथवा जपयज्ञ वरेण्य हैं। ये जपयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ वास्तवमें प्रभुकीर्तन ही हैं। अतः वेदमाता गायत्री परमेश्वरके कीर्तनार्थ ही प्रवृत्त हैं।

संसारमें कर्मकी महत्ता सर्वश्लाघ्य है। समस्त नाम कर्मज हैं। संसार स्वयमेव परमेश्वरकी लीलामयी क्रिया है, जिसे वह तटस्थ भावसे देखता है। कभी वह अपने मनोविनोदके लिये एकसे अनेक बनकर विभिन्न क्रियाओंका संचालन करता है। 'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च' (छांदो०) 'एकोऽहं बहु स्याम' 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति',—ये वाक्य उपर्युक्त कथनकी पुष्टि करते हैं। वह अपने कार्योंका अनुकरण एवं तदाश्रित जनों-द्वारा आत्म-श्लाघाकी कामना रखता है। 'तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः', 'यज्ञो वै विष्णुः', 'क्रतुमयोऽयं पुरुषः' आदि वाक्य बतलाते हैं कि सारी सृष्टि यज्ञमय है। प्राणी याज्ञिक क्रियाओंकी अभिवृद्धिमें सहायक बनकर परमेश्वरकी असीम कृपाकी प्राप्ति कर सकता है। वाजसनेयी-संहिताके 'शतरुद्रियम्'में आये रुद्रके विभिन्न नामोंके आधारपर अवान्तरकालमें नामकीर्तनकी परम्परा विकसित हुई, जो विष्णुसहस्रनाम एवं शिव-सहस्रनाम आदि स्तोत्र-ग्रन्थोंमें द्रष्टव्य है।

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो
नमो भवाय च रुद्राय च।
नमः शर्वाय च पशुपतये च
नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च॥

यह उद्धरण नामकीर्तनका मूल स्रोत जाननेके लिये पर्याप्त है।

ऋगाश्रित सामवेद उस यज्ञीय पुरुषकी विभिन्न स्वरलहरियोंके माध्यमसे स्तवन (कीर्तन) है। इसके दोनों आर्चिकोंमें वेदगान, अरण्यगान, ऊहगान एवं ऊह्यगान वैदिक संकीर्तनका स्वरूप निर्धारित करते हैं। समूचा

भारतीय संगीतशास्त्र इन्हीं सामगानोंपर अवलम्बित है। यज्ञकालमें स्तोत्र एवं शास्त्रका पाठ देवकीर्तन ही है। स्तोत्रोंके भेदोपभेद उस संकीर्तनकी विशेषताओंको प्रकट करते हैं। त्रिवृत्, पञ्चदश, नौकी संख्या आदि विभिन्न प्रकारके गायनोंकी अवस्थाओंके वाचक हैं। बृहद्, रथन्तर, वैरूप आदि मञ्जुल सामगानोंके नाम हैं। सामगानके मुख्य रूपसे प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव तथा निधन—ये पाँच भाग होते हैं। इस प्रकार सामगानकी विशिष्ट प्रक्रिया हमें कीर्तनके विशद स्वरूपका ज्ञान कराती है। ऋग्वेदमें 'प्रणव', सामवेदमें 'उद्गीथ', अथर्ववेदमें 'स्कम्भ' एवं 'उच्छिष्ट' आदि पद वस्तुतः उस आदिपुरुषके विविध उपधान हैं। इनका गायन भी परवर्ती कीर्तन शब्दका मूलभाव प्रदर्शित करता है।

ध्यातव्य है कि वैदिक गान (कीर्तन) की अपनी विशिष्ट अनुशासनयुक्त प्रक्रियाएँ थीं, परंतु आजके कीर्तनके लिये ऐसा नहीं है। इसके लिये देश, काल एवं अवस्थाका बन्धन अपेक्षित नहीं है। यद्यपि ब्राह्मण-ग्रन्थ विधि एवं अर्थवाद आदिसे भरे पड़े हैं, पर आरण्यक-ग्रन्थोंमें प्राणविद्याका प्रौढ़ वर्णन विद्यमान है। अरण्यके शान्त वातावरणमें बैठकर साधक विभिन्न विद्याओंके माध्यमसे उस प्राणमय परात्पर ज्ञान-स्वरूपका चिन्तन करता है। वह योग्य व्यक्तिद्वारा प्राणकी महिमाका अनुश्रवण (कीर्तन-श्रवण) के पश्चात् ही साधनामें लगता है। संहितात्मक नानात्व एवं एकत्व औपनिषदिक समष्टिमें समाहित है। उपनिषदोंने हृदयाकाशमें छिपे उस आत्मतत्त्व (पुरुष) को ढूँढ़ लिया, जिसके ज्ञानमात्रसे हमारे सारे बन्धन विनष्ट हो जाते हैं। आत्यन्तिक मुक्ति-हेतु उसका साक्षात्कार तद्वत् हो जाना ही जीवनका परम श्रेय है। ओम्, प्रणव, ब्रह्म, अक्षर ब्रह्म, परमात्मा, उद्गीथ तथा भूमा आदि उसके विशिष्ट नाम हैं। 'ओम् ही ब्रह्म है तथा यही प्राप्तव्य है'—यह उपनिषदोंका जयघोष है। यह श्रवण, मनन तथा निदिध्यासनद्वारा ही बोधगम्य है। उस निर्गुणके विषयमें विभिन्न उपायोंद्वारा किये गये कथन (कीर्तन)-को सुनना, चिन्तन करना एवं जानना ही श्रवण, मनन, निदिध्यासन है। 'ओम्'की महिमाका गान (कीर्तन) निम्नलिखित मन्त्रमें द्रष्टव्य है—

ॐ मदामों पिबामों देवो वरुणः प्रजापतिः सविताऽन्नमिहाऽऽहरदन्नपतेऽन्नमिहाऽऽहराऽऽहरो-मिति ॥ (छा० उ० १।१२।५)

उपनिषदोंमें वर्णित अनेक उपायोंवाली साधना इस लक्ष्यकी प्राप्तिमें संलग्न रहती है। यह साधना सरल नहीं, अपितु—**'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति'** है। अर्थात् तीक्ष्ण छुरेकी धारपर चलनेके समान है। तदनन्तर सफल साधक अविद्या मैलके विनष्ट होनेपर सद्यःपूत हो अपने निकटतम बन्धुको पहचान लेता है। एतदर्थ आवश्यक है—आत्मसमर्पणपूर्वक सत्य-निष्ठासे युक्त संकल्पशक्ति। यही भक्ति है। श्वेताश्वतरोप-निषद्में कहा गया है—यह ज्ञान ईश्वरमें परमभक्तिवालेको ही मिलता है—

'यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥'

यह देखनेपर स्पष्ट है कि समग्र उपनिषत्साहित्यमें उसी परमपुरुषकी महिमाका गान है। यह गान ही उसका कीर्तन है। उपर्युक्त कतिपय वैदिक स्थलोंके आधारपर कीर्तनकी परम्परा विकसित होती चली आयी है। कीर्तनका अभिप्राय भक्तिपूर्ण चरित्र-कथन भी है, जैसा कि दुर्गासप्तशतीके—**'रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम'** (१२।२३) इस वाक्यसे स्पष्ट है और पुराणोंमें यह संकीर्तनमाहात्म्य सर्वत्र सभी देवताओंके लिये अलग-अलग रूपमें बहुत अधिक व्याप्त हो गया है। पर इस विकसित भक्तिविद्याके सूत्र वेदों और उपनिषदोंमें भी अपने मूल रूपमें विद्यमान हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

चैतन्य-मतमें संकीर्तन

(लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

'धर्म'का अर्थ इतना पवित्र और व्यापक है कि इसका वास्तविक पर्यायार्थक शब्द अन्य किसी भाषामें है नहीं। अंग्रेजी शब्द रिलीजन तथा उर्दू शब्द मजहबसे इसका वास्तविक अर्थ नहीं निकलता। बृहदारण्यक उपनिषद्में इस शब्दका प्रयोग कर्तव्यके लिये भी हुआ है (बृ० १ । ४ । १४) । शुक्रनीतिमें 'धर्मज्ञ' शब्दका प्रयोग लोकाचार तथा कर्तव्य-सम्बन्धी जानकारके लिये हुआ है और बतलाया है कि ऐसी जानकारीवाले धर्मज्ञ चाहे सात, पाँच, तीन विप्र भी जहाँ बैठ जायँ, वह सभा यज्ञके सदृश होगी—

लोकवेदज्ञधर्मज्ञाः सप्त पञ्च त्रयोऽपि वा ।
यत्रोपविष्टा विप्राः स्युः सा यज्ञसदृशी सभा ॥
(४ । २६)

वाराणसीमें नगरसे कुछ दूर वैद्यनाथ महादेवका एक प्राचीन मन्दिर है, जिसे 'बैजनत्था' कहते है। शिवरात्रिके दिन इस शिवलिङ्गपर गङ्गाजल चढानेका बड़ा माहात्म्य है। पहले यहाँ घोर जंगल था, पर अब यह स्थान बँगले और बस्तियोंसे घिर गया है। यहाँ शिवरात्रि-पर्वपर अगणित लोग मिट्टीके पात्रमें जल भर-कर लाते हैं तथा स्त्री-बच्चोंको कुचलते हुए आगे बढ़कर जल चढ़ानेकी चेष्टा करते है और लिङ्गतक न पहुँच सकनेके कारण मिट्टीका पात्र दूरसे फेंकते रहते है। इससे सैकड़ोंके सिरमें चोट आती है। कुछके सिर फट भी जाते है। पिण्डिकाके ऊपर तो तड़ातड़ पात्र टूटते रहते है। कितनोंके रक्त बह जाता है। सायंकाल पुजारीको हजारो मिट्टीके टूटे पात्रोंके बीचसे शिवलिङ्गका उद्धार करना पड़ता है। श्रद्धालु लोगोको दूसरेके कष्ट तथा पिण्डिकाके अनादरका कोई ध्यान नहीं रहता। उनकी 'श्रद्धा' पूरी हो गयी, उन्हें इतना ही आभास रहता है।

ऐसी ही भ्रान्त श्रद्धा फैली हुई थी आजसे पाँच सौ वर्ष पूर्व बंगालमें। यद्यपि वहाँका मुसलिम शासन अन्य स्थानोकी तरह न तो हिंदू-विरोधी था, न कट्टर। पर बंगाल पालवंशके राज्यकी समाप्तिके बाद धार्मिक अन्धविश्वास तथा अव्यवस्थित स्थितियोंका शिकार बना हुआ था।

उन दिनो हिंदू-समाजको जाग्रत् करनेके लिये भारतमें बड़े-बड़े महापुरुष अवतरित हुए। शंकराचार्यकी विचारधारा ज्ञानमार्गकी होते हुए भी वेद, पुराण, शास्त्र, मूर्तिपूजा, श्राद्ध-तर्पण आदिकी समर्थिका थी। नाथपंथी लोग भजन-कीर्तनद्वारा अपने योग-मतका प्रचार करने लगे। दक्षिण भारतमें काञ्ची नगरीके समीप लक्ष्मण (रामानुज) नामक बालकका जन्म सन् १०१७में हो चुका था। उनका एक सौ बीस वर्षकी आयुमें सन् ११३७में स्वर्गवास हुआ। यही बालक प्रसिद्ध रामानुजाचार्य हुए, जिन्होंने वैष्णव धर्मकी पताका फहरायी। इनका मत था कि ईश्वर दिव्य गुणोंसे विभूषित है। जड-चेतनमय जगत् विष्णुका ही प्रसार है। उसीकी लीला तथा विभूतिका यह प्रकाश है। संसार विष्णुमय है। चित् और अचित् दोनों सत्य हैं। विष्णु अन्तर्यामी है। वे ही सबके कल्याणके लिये संसारमें आते है, जिसमें श्रीराम सबसे प्रमुख हैं। उन्हींकी पूजा-उपासना दास्यभावसे करनेसे वे मुक्ति देते है। रामानुजाचार्यके मतको—**'विशिष्टाद्वैत'** सिद्धान्त कहते हैं। उनका सम्प्रदाय 'श्रीसम्प्रदाय' कहा जाता है।

रामानुजके बाद वैष्णव सम्प्रदायमें मध्वाचार्यका नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनका जन्म सन १२३८ तथा मृत्यु सन् १३१७ ई० में उन्यासी वर्षकी

आयुमें हुई। यद्यपि वे रामानुजाचार्यसे सहमत न थे कि जीव तथा जड़ प्रकृति ईश्वरका अंश है—सृष्टिका प्रवाह अनादि है—पर वे ईश्वरको साकार, सगुण मानते थे। श्रीराम तथा श्रीकृष्णकी उपासना, कीर्तन, भजन, पूजनको तथा भागवतके पाठ आदिको वे बड़ा महत्त्व देते थे। उनके सम्प्रदायको 'द्वैत सम्प्रदाय' कहते हैं। मध्वाचार्यने उत्तर भारतकी यात्रा कर रामकृष्ण-उपासनाका बड़ा प्रचार किया था। चौदहवीं शताब्दिके अन्तमें वैष्णव सम्प्रदायके प्रचण्ड प्रचारक तथा ईश्वरकी भक्तिमें सभी वर्गोंके समान अधिकारके उपदेशक रामानन्दने श्रीरामको मानव-जीवनका आदर्श सिद्ध किया, जिनसे आदर्श कर्मयोग, स्वधर्ममें परायणता, विनय, वीरता तथा वर्णाश्रम-धर्मकी रक्षाका उपदेश प्राप्त होता है। रामानन्दका कार्यक्षेत्र मध्य-पश्चिमोत्तर भारत था।

सन् १४७९ में चैतन्य महाप्रभुके छः वर्ष पूर्व मध्यप्रदेशके रायपुर जिलेके चम्पकवनमें श्रीवल्लभाचार्य-का जन्म हुआ था। सन् १५३२में उनका शरीर छूटा। इनकी शिक्षा काशीमें हुई थी। श्रीवल्लभाचार्य श्रीकृष्णके बालरूपको ब्रह्मका स्वरूप तथा उपास्यदेव मानते थे। उनकी भक्तिको ही वे धर्म-अर्थ-काम-मोक्षका एकमात्र साधन मानते थे। वे श्रीमद्भागवतको सर्वश्रेष्ठ रचना तथा नित्य अध्ययनका ग्रन्थ कहते थे। वे श्रीकृष्णकी भक्तिको मायारहित 'शुद्धाद्वैत' भक्ति कहते थे तथा उसकी उपासना, नवधा सेवन केवल उस परमशक्तिके प्रति कृतज्ञता-प्रदर्शन कहते थे। अन्यथा वे तन-मनसे उनमें—श्रीकृष्णमें आत्मसमर्पण ही जीवनका परम कर्तव्य समझते थे। उनके प्रति सख्य तथा वात्सल्य भाव ही अभीष्ट है, जिससे सिद्धि होती है। भक्तिके लिये कष्टदायी योग और तपस्याकी आवश्यकता नहीं है। केवल उन सर्वज्ञ कृपालुके प्रति आत्मसमर्पण ही होना चाहिये। प्रेम तथा सेवासे भगवान् प्राप्त होते हैं। वल्लभके मतको 'पुष्टिमार्ग' कहते हैं। वल्लभ वैराग्य या संन्यास-मार्गको कोई महत्त्व नहीं देते थे।

बंगालमें भक्तिकी आवश्यकतापूर्तिके लिये नदिया जिलाके श्रीधाम मायापुरमें सन् १४८५ में (कुछका मत है १४८६ में) चैतन्यमहाप्रभुका जन्म हुआ। अड़तालीस-उनचास वर्षकी आयुमें ही सन् १५३४ या ३५में श्रीपुरुषोत्तमधाम जगन्नाथपुरीमें उनका तिरोधान हुआ। वैसा ही कार्य महाराष्ट्रमें पण्ढरपुरमें श्रीविट्ठल (विष्णु)के दो भक्त संत ज्ञानदेव (जन्म १२०१, मृत्यु १२८४) तथा नामदेव (जन्म १२७०, मृत्यु १३५०) ने किया था। वास्तवमें यह युग वैष्णवधर्मके लिये स्वर्ण-युग था तथा कीर्तनके व्यापक प्रचारका युग था। अस्तु!

बंगाल उन दिनों विद्या तथा पण्डितोंका केन्द्र था। वहीं नवद्वीप (नदिया)में चैतन्यका आविर्भाव हुआ। बचपनसे ही उनकी प्रतिभा तथा ज्ञानकी दीपशिखा प्रकट हो चुकी थी। थोड़ी आयुमें ही वे वेद-वेदाङ्गके पण्डित हो गये और आदिशंकराचार्यके अद्वैतवाद तथा मायावादके समर्थक हो गये। उन्होंने स्वयं अपनी संस्कृत-पाठशाला खोल ली तथा उनकी विद्यासे प्रभावित छात्रोंकी संख्या बराबर बढ़ने लगी। बाईस वर्षकी आयुतक वे उसी स्थानपर सुखमय गृहस्थजीवन बिताते रहे। सुन्दर पत्नी, प्रेममयी माता और पिताका बड़ा सुख था, किंतु इस जीवनमें भी मोड़ आया। प्रभुको उनसे बहुत काम लेना था। उनके पिताका देहान्त हो गया और वे उनका श्राद्ध करने गया चले आये। गयामें ही उनकी नवद्वीपके प्रकाण्ड विद्वान् तथा वैष्णव सम्प्रदायके राधाकृष्णके उपासक माधवेन्द्रपुरी गोस्वामीके शिष्य ईश्वरपुरीसे भेंट हो गयी। ईश्वरपुरीके वैष्णव धर्मके प्रति चैतन्य इतने आकृष्ट हो गये कि घरकी सुध, विधवा निःसहाय माता तथा दूसरी पत्नी सुन्दरी विष्णुप्रियाको भी भूल बैठे। रातों-दिन विष्णुकी लीला, उनके परब्रह्म-स्वरूप

श्रीकृष्णके वियोगमें रोते रहते। बड़ी कठिनाईसे नदिया वापस आये। पर वे असली चैतन्य हो गये थे। संस्कृत-पाठशाला 'टोल' बंद कर दी। रातों-दिन 'मनको हरण करनेवाले' हरिकी धुनमें मस्त हो गये। उनकी एक ही ध्वनि थी कीर्तनका—'हरि बोल', 'हरि बोल'। यह ध्वनि चारों ओर ऐसी गूँजी कि समूचा नवद्वीप जाग उठा। सामूहिक रूपसे लोग 'हरि बोल' का कीर्तन करने लगे।

चैतन्यको घरसे विरक्ति हो गयी थी। वे चौबीस वर्षकी अवस्थामें सब कुछ त्यागकर जगन्नाथपुरी चले गये और फिर वहाँसे सुदूर दक्षिणमें रामेश्वरम्‌तक तथा उत्तरमें वाराणसी, प्रयाग, वृन्दावन आदिकी यात्रा कर पुनः पुरी वापस आ गये। उन्हें इस यात्रामें अनेक सफलताएँ मिलीं। वाराणसीके शांकर सम्प्रदायके प्रकाशानन्द सरस्वती अपने हजारों शिष्योंके साथ उनके अनुयायी हो गये। उस समयके सबसे बड़े विद्वान् वासुदेव सार्वभौमने भी—जो गृहस्थ-आश्रममें थे—उनकी शिष्यता स्वीकार कर ली। इसी यात्रामें उन्हें तीन अनमोल प्रचारक शिष्य और मिल गये। रूप तथा सनातनने बंगालके शासक हुसेनशाहकी सरकारी सेवा छोड़ दी और उनके भतीजे जीवगोस्वामी भी इनके साथ हो गये। इन्हें दीक्षित कर चैतन्यने उन्हें आदेश दिया कि वे श्रीकृष्णके लीला-स्थल वृन्दावन जाकर बस जायँ और प्रभुके प्रत्येक क्रीड़ा-क्षेत्रका पता लगाकर उसे पुनः स्थापित करें। उन्होंने रूपा (रूप गोस्वामी) को प्रयागमें और सनातनको वाराणसीमें दीक्षा दी थी। यद्यपि चैतन्यके पहले दो प्रमुख साथी द्वैत तथा नित्यानन्दपर आज वृन्दावनकी इतनी महिमा रूप और सनातनके अथक परिश्रम तथा शोधके परिणामस्वरूप ही है।

चैतन्य पुरी वापस चले गये और अपने जीवनके शेष अठारह वर्ष वहीं व्यतीत किये। सन् १५३३ में अड़तालीस वर्षकी अवस्थामें उन्होंने यह नर-चोला त्याग दिया। चैतन्यने जीवनमें केवल मौखिक उपदेश दिया, किसी ग्रन्थकी रचना नहीं की थी। उनके विचार, मन्तव्य तथा हृदयको छू लेनेवाली वाणीका स्वाद बंगला भाषामें रचे गये 'चैतन्यचरितामृत' ग्रन्थसे मिलता है, जिसे कृष्णदास कविराजने लिखा है। 'भागवतकी व्याख्या', 'गोपालचम्पू,' 'हरिभक्ति-विलास' आदि अनमोल रचनाएँ उनके वृन्दावन-निवासी शिष्यगण—लोकनाथ, गोपाल-भट्ट, कृष्णदास कविराज, रघुनाथ गोस्वामी आदिकी देन हैं। सन् १५९१ में रूप गोस्वामी तथा सनातन गोस्वामीने शरीर त्याग दिया, पर जीव गोस्वामी वर्षोंतक प्रभुकी प्रचार-सेवामें लगे रहे। उनकी दो प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'हरिभक्ति-रसामृत-सिन्धु' तथा 'उज्ज्वल-नीलमणि'। जीवकी टीका-सहित सनातन गोस्वामीकी 'गोपालचम्पू' तथा 'षट् संदर्भ' रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। बलदेव विद्याभूषणका 'गोविन्द-भाष्य' जो ब्रह्मसूत्रकी टीका है तथा कृष्णदास कविराजका 'गोविन्द-लीलामृत' बड़े अनमोल ग्रन्थ हैं।

चैतन्य-मतमें ब्रह्म अनन्त, शाश्वत तथा सर्वव्यापी है। उसकी शक्ति, आभा तथा प्रतिभा महान् है, अपरिमित है। उसका ही नाम श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्ण ही विष्णु, शिव, शक्ति आदि रूपमें प्रकट होते हैं। वे संसारमें अवतार लेते हैं। इसलिये नहीं कि केवल पृथ्वीसे असुरो, राक्षसोंका बोझ हटाना है; अपितु इसलिये भी कि वे दिखाना चाहते हैं कि लोगोंका उनके प्रति कितना माधुर्य, कितना अनुराग, कितना विश्वास है। कृष्ण ही चित् हैं, सत् हैं, आनन्द है, सच्चिदानन्द है। वे ही रस हैं, वे ही आनन्दके अतिरेक हैं। मानव प्रेम तथा आनन्दका भूखा है। यह प्रेम तथा आनन्द केवल श्रीकृष्णके चरणोंमें अर्पण करनेसे मिल सकता है। कृष्णकी साधनाके लिये पहले श्रद्धा होनी

चाहिये। श्रद्धासे ही 'आह्लादिनी-शक्ति' राधाकी प्राप्ति होगी। इसीसे शुद्ध सत्त्वकी उत्पत्ति होगी और तभी हृदयमें प्रेमाङ्कुर पैदा होगा। प्रेमाङ्कुरसे ही मनमें प्रणय-भावकी उत्पत्ति होगी। प्रणयसे राग और रागसे अनुराग पैदा होगा। अनुरागसे ही महाभावकी उत्पत्ति होकर श्रीकृष्णकी प्राप्ति होगी।

उपासनाके लिये पाँच रसों—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्यका सम्मिलित होना आवश्यक है। श्रीकृष्णके परमानन्दका उपासक मोक्ष या ब्रह्मसे सायुज्य नहीं चाहता। वह सदैव श्रीकृष्णके साथ माधुर्यभावका आनन्द लेना चाहता है। आनन्दका अनुभव ब्रह्ममें लीन होनेसे नहीं, सामीप्यसे प्राप्त होगा। श्रीकृष्णकी लीला तथा बालकालकी क्रीडा ही परम आनन्दका स्रोत है। वृन्दावन ही उसका स्रोत-स्थान है; अतएव वृन्दावनधाममें ही श्रीकृष्णके माधुर्यका अनुभव हो सकता है। राधा उनकी भक्ति तथा माधुर्यकी प्रतीक हैं। उन्हींकी शक्तिकी प्रतिबिम्बस्वरूपा गोपियाँ माधुर्य-रस प्रदान करती है। वृन्दावनमें ही श्रीकृष्णकी पराशक्ति तथा अनन्त माधुर्यका रसास्वादन हो सकता है और यह रस लेनेवाला मरणके उपरान्त श्रीकृष्णके निकट रहकर परम आनन्दका माधुर्य——आनन्द-सुख भोगता है।

नारद, वाल्मीकि, व्यास, शुकसे लेकर रामानुज, मध्व, निम्बार्क, वल्लभ, श्रीकण्ठ आदिने भक्तिकी जिस धाराको प्रवाहित किया और प्रचलित रखा, उसे राधा-कृष्णके एक मूर्ति श्रीगौराङ्ग श्रीचैतन्यदेवने एक नया मोड़ दिया। मानव-जीवनके लिये ऐसा लक्ष्य दे दिया जो सुलभ, सरल तथा हृदयग्राही था। चैतन्यने प्रत्यक्ष ब्रह्मके रूपमें वृन्दावनके श्रीकृष्णके अवतारको स्वीकार कर हिंदू-समाजको प्रत्यक्ष साधनाका प्रकाश दे दिया। महाप्रभुके मतसे बिना श्रीकृष्णके प्रति प्रेमभावके कर्म, ज्ञान आदि सब निरर्थक हैं, निष्फल हैं। श्रीकृष्णकी भक्तिसे ही मनुष्यमें पवित्रता, दया, सत्य, सहिष्णुता, विनय, शान्ति, सब प्राणियोंका कल्याण, अभिमानसे रहित जीवन, सार्थक तथा अहंकाररहित जीवन हो जाता है। साधनासे भक्ति, भक्तिसे माधुर्यभाव तथा माधुर्य-भावसे श्रीकृष्णके अनन्त प्रेम और आनन्दकी प्राप्ति होती है।

तैत्तिरीय उपनिषद्‌ने ब्रह्मको 'रसो वै सः' (२।७) कहा है। हम रसके पाँच भेद लिख आये हैं। उन सबकी प्राप्ति भक्तिसे होती है। चैतन्यका मत भक्तिरस है। वह ईश्वरको अपनी वस्तु बना लेता है और उसकी करुणाके सहारे उससे सान्निध्य प्राप्त करता है। उसमें विलीन न होकर उसके निकटतम सम्पर्कमें आना चाहता है।

चैतन्य-मतमें संकीर्तन

चैतन्य महाप्रभुने भक्तिरसके पानके लिये जो उपाय बतलाये है, उनमें सत्संग, भगवान्‌की कथाका श्रवण, वृन्दावन-निवास, श्रीराधाकृष्णकी मूर्तिपूजा, अवतारोंमें विश्वासके अतिरिक्त संकीर्तनको बड़ा महत्त्व दिया है। इसका प्राचीनतम प्रयोग 'महाभारत' में तथा बादमें 'काव्य-साहित्य'में मिलता है। एक साथ मिलकर कीर्तन करनेसे आकाशतक शब्द-शुद्धि होती है। वातावरण शुद्ध होता है तथा समाजमें एक साथ मिलकर कीर्तनसे एक-दूसरेकी आत्माका प्रकाश व्यापक हो जाता है। इससे संगठन-शक्ति बढ़ती है। चैतन्य महाप्रभुने अपने समयमें हिंदू-समाजको एक साथ मिलने, बैठने, बन्धुत्व तथा सौहार्दका बड़ा दूरदर्शी आन्दोलन खड़ा कर दिया था। ईसाई सप्ताहमें एक बार गिर्जाघरमें तथा मुसलमान शुक्रवारको मस्जिदमें एक साथ बैठकर प्रार्थना करते है। हिंदू-समाज अलग उपासना करे, पर प्रायः एक साथ मिलकर एक ही आराध्यकी उपासनासे धार्मिक तथा सामाजिक बल बढ़ता है।

वेद कहते हैं—शब्दका नाश नहीं होता, इसीलिये वह अक्षर है। अब तो विज्ञानने भी यह स्वीकार कर लिया है। विज्ञानद्वारा भी सिद्ध हो चुका है कि श्रीकृष्णने अर्जुनको गद्य-पद्यमें जो गीताका उपदेश कुरुक्षेत्रमें दिया था, वे इस समय पृथ्वीसे पाँच हजार मील ऊँचे तक पहुँच गये हैं और उसके वाक्य पकड़में आ रहे हैं। इसीलिये कहते हैं कि अशुभ और अपशब्द न कहो, इससे वातावरण दूषित होता है। आज राजनीतिज्ञोंके द्वारा संसारभरमें अपशब्दोंकी भरमार हो गयी है। प्राचीन भारतमें शिक्षा-प्रणालीमें शुद्ध उच्चारण-पर बड़ा जोर दिया जाता था। पाणिनीय-शिक्षा, कात्यायनी-क्षिशा, याज्ञवल्क्य-शिक्षा, वासिष्ठी शिक्षा, माण्डवीय शिक्षा, नारदीय शिक्षा आदि ग्रन्थोंमें सौ-दो-सौ श्लोकोंमें जो ज्ञान-भण्डार है, उनमें अक्षरोंकी उत्पत्ति, स्थान तथा प्रत्ययोंका विशद वर्णन है।

आज अशुद्ध श्लोक-पाठसे भी बड़ी हानि हो रही है। चैतन्यके संकीर्तनसे भाषा शुद्ध होती है, शब्दका मूल हृदयमें बैठ जाता है तथा एक साथ सस्वर उच्चारण, गायनसे दिशाएँ शुद्ध हो जाती हैं। चैतन्य महाप्रभुने संकीर्तनकी जो प्रथा भक्तिरसके उद्रेकके लिये चालू की, उसने भारतके हिंदू-समाजको आत्म-शुद्धिका बहुत बड़ा अवसर दे दिया। यदि यह रीति प्रत्येक जगहपर अपना ली जाय तो हिंदू-समाजका बड़ा कल्याण होगा।

श्रीवल्लभाचार्यकी परम्परामें संकीर्तनका स्वरूप

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणलाल शर्मा, एम्०ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यालंकार)

श्रीवल्लभाचार्यजीने भक्तिका जो मार्ग प्रशस्त किया वह पुष्टिमार्ग कहलाता है। पुष्टिमार्गीय भक्तिके अनुसरण-कर्ताके लिये उन्होंने 'सिद्धान्त-मुक्तावली' ग्रन्थमें भागवतके वचनोंसे नवधा भक्तिको अपनानेकी बात कही है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
(७। ५। २३)

'भगवान् विष्णुके गुणो और उनकी लीलाओंका श्रवण, कीर्तन, नामका स्मरण, चरण-सेवन, पूजन, वन्दन, दास्य, उनसे सख्यभाव और उनके सम्मुख आत्मनिवेदन करना—यह नौ प्रकारकी भक्ति है, जो पुष्टि-मार्गीय तनुजा भक्तिके अन्तर्गत आती है। 'भक्ति-वर्धिनी'में आचार्यने भक्तिकी वृद्धिका उपाय बतलाते हुए कहा है कि त्यागपूर्वक श्रीभगवान्की कथाओंके सुनने एवं संकीर्तन करनेसे भक्तिकी वृद्धि होती है और प्रभुके प्रति हृदयमें प्रेमका बीज जमता है—

यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात् तस्योपायो निरूप्यते।
बीजभावे दृढे तु स्यात् त्यागाच्छ्रवणकीर्तनात्॥

स्पष्ट है कि आचार्यकी पुष्टिमार्गीय भक्तिमें 'कीर्तन'को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। 'निरोध-लक्षण' ग्रन्थमें इसकी महत्तापर प्रकाश डालते हुए आपने कहा है—

महतां कृपया यद्वत् कीर्तनं सुखदं सदा।
न तथा लौकिकानां तु स्निग्धभोजनरूक्षवत्॥
गुणगाने सुखावाप्तिर्गोविन्दस्य प्रजायते।
यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतोऽन्यतः॥

× × × ×

तस्मात् सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणाः।
सदानन्दपरैर्गेयाः सच्चिदानन्दता ततः॥

'ईश्वरके गुणगानमें जो आनन्द है वह लौकिक पुरुषोंके गुणगानमें नहीं है तथा जैसा सुख भक्तोंको भगवान्के गुणगानमें होता है, वैसा सुख भगवान्के स्वरूप-ज्ञानकी मोक्ष-अवस्थामें भी नहीं होता। इसलिये सदानन्द ईश्वरकी भक्ति करनेवाले भक्तोंको सब लौकिक साधन

छोड़कर भगवान्‌के गुणोंका गान करना चाहिये। ऐसा करनेसे भक्तमें ईश्वरीय गुण आ जायँगे।' यहाँ गुण-गानसे तात्पर्य कथा एवं कीर्तनसे ही है। आचार्यने 'तत्त्वदीपनिबन्ध' ग्रन्थके शास्त्रार्थ-प्रकरणमें कीर्तनकी महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा है कि भगवान्‌का प्रेम बिना अविद्याका नाश हुए नहीं मिलता। प्रभुका प्रेम या अनुग्रह ही पुष्टिमार्गीय भक्तिका मूलाधार होता है। इस अनुग्रहकी प्राप्तिके लिये सब कुछ छोड़कर दृढ़ विश्वासके साथ सदा श्रवण-कीर्तन आदि साधनोंद्वारा हरिका भजन करना चाहिये। इसीसे अविद्याका नाश होगा—

तस्मात् सर्वं परित्यज्य दृढविश्वासतो हरिम्।
भजेत श्रवणादिभ्यो यद्विद्यातो विमुच्यते॥

ज्ञानसे रहित पुष्टिमार्गीय भक्तके लिये आचार्यने कीर्तन आदि साधनोंके द्वारा पूजा करनेका निर्देश दिया है—

'ज्ञानाभावे पुष्टिमार्गी तिष्ठेत् पूजोत्सवादिषु॥'
(सिद्धान्त-मुक्तावली १७)

आचार्य श्रीवल्लभजीके समयमें श्री चैतन्य महाप्रभुने कीर्तन-भक्तिका विशेष प्रचार किया। चैतन्य महाप्रभु भगवान्‌के नाम और गुणोंका संकीर्तन करते-करते आनन्द-विभोर हो जाया करते थे। श्रीवल्लभाचार्यजीने भी कीर्तन-भक्तिको महत्त्व देते हुए श्रीनाथजीके मन्दिरमें कीर्तनकी आयोजना की थी। आचार्यके बाद श्रवण, कीर्तन आदि भक्ति-साधनोंके अभ्यासका 'मण्डन' श्रीविट्ठलनाथजी तथा श्रीगोकुलनाथजीने बहुत विस्तारके साथ किया। श्रीविट्ठलनाथजीने श्रीनाथजीके स्वरूप-पूजनमें अष्ट-प्रहरकी भावना, शृङ्गार, सजावट तथा कीर्तन आदिकी व्यवस्था वैभवपूर्ण ढंगसे की। उन्होंने श्रीनाथजीकी अष्टप्रहरी सेवाके लिये अष्टछापकी स्थापना की। अष्टछापकी स्थापनाके लिये श्रीविट्ठलनाथजीने अपने चार शिष्यों तथा आचार्यके चार शिष्योंका चयन किया। इस प्रकार आठ भक्तोंको आठ प्रहरकी सेवामें कीर्तन[illegible] गया। इनके कीर्तनका समय [illegible] किया गया। इन अष्टछाप भक्तोंका प्रमुख कार्य श्रीनाथजीके समक्ष समय-समयपर कीर्तन करना ही था। इन्होंने अपनी मधुर स्वरलहरीयुक्त कीर्तनद्वारा भक्ति-मार्गकी अद्भुत सरिता प्रवाहित की और अपने कीर्तनोंको प्रचलित [illegible]में आबद्ध करके अपने प्रभुके सम्मुख प्रस्तुत किया।

अष्टछापके भक्त केवल भक्त ही न थे, अपितु वे उच्च कोटिके गायक भी थे। उन्होंने कीर्तनके लिये स्वयं पदोंकी रचना की और उन्हें विविध राग-रागिनियोंमें बाँधकर गाया। उनके द्वारा रचित कीर्तन-भक्तिसे सम्बन्ध रखनेवाला यह पदसाहित्य हिंदी भाषा और साहित्यका एक गौरव-पूर्ण अङ्ग है। इन अष्ट भक्तोंने कीर्तनके रूपमें भगवान्‌के यश, गुण, लीला और नामके प्रकाशनके साथ कीर्तनकी महिमा और अपने मनकी लीनताका वर्णन किया है। अष्टभक्तोंकी कीर्तन-परम्पराका अनुसरण आज भी वल्लभ-सम्प्रदायके मन्दिरोंमें किया जाता है। प्रत्येक मन्दिरमें अष्टयाम सेवाके लिये आठ कीर्तनिये रहते हैं। इनकी कीर्तन-प्रणाली एक विशेष प्रकारकी है। इनकी कीर्तन-पद्धतिको सीखे बिना साधारण गायनाचार्य सूर आदिके कीर्तनोंको नहीं गा सकते। अष्टयामी सेवाके कीर्तनकी यह भी विशेषता है कि शृङ्गारके संयोगपक्षसे सम्बन्धित श्रीकृष्णकी प्रेम-लीलाओंका ही गान कीर्तनके रूपमें किया जाता है, जो कि अष्ट भक्तोंके समयसे प्रचलित है। वियोगके पद आठ समयकी सेवामें नहीं गाये जाते। अष्टछापी भक्तोंने भी वियोगको कीर्तन-क्षेत्रमें स्थान नहीं दिया था। वर्तमानमें आचार्यके सम्प्रदायमें बहुत-से लोग दीक्षित हैं और हो रहे हैं, जो वल्लभ-सम्प्रदायी संकीर्तन-परम्पराको अक्षुण्ण रखते हुए आगे बढ़ायेंगे।

गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायमें संकीर्तन

(लेखक—श्रीश्यामलालजी हकीम)

वैदिक सनातनधर्मके सभी ग्रन्थोंमें, प्रत्येक वैष्णव सम्प्रदायमें कीर्तनकी महिमाका वर्णन किया गया है। फिर भी गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय 'संकीर्तन-प्रधान सम्प्रदाय' माना जाता है। कारण यह है कि इस सम्प्रदायके साधन-भजनका प्राण है—उस नाम-संकीर्तनद्वारा उपलब्ध प्रेम या श्रीवृन्दावनाधीश्वरद्वय श्रीराधाकृष्णकी प्रेमरसमयी मधुर उपासना। अभिधानोंमें कीर्तन शब्दका अर्थ है—'कथनम्' (शब्दकल्पद्रुम)। किसीके विषयमें कुछ कहना या चर्चा करना उसके विषयका 'कीर्तन' है। वह कथन धीमे स्वरमें अथवा उच्च स्वरमें भी हो सकता है तथा अकेले व्यक्तिद्वारा या अनेक व्यक्तियोंद्वारा मिलकर भी सम्पन्न हो सकता है और सुर-ताल-लयपूर्वक वाद्यादिके साथ भी किया जा सकता है। टीका-ग्रन्थोंमें संकीर्तन शब्दका विशेष अर्थ किया गया है—'सम्यक्प्रकारेण देवतानामोच्चारणं संकीर्तनम्।' सम्यक् प्रकारसे देवता—इष्टदेवके नामोच्चारणको 'संकीर्तन' कहते हैं।

श्रीमद्भागवतमें नवयोगीश्वरोपाख्यानान्तर्गत कलिके उपास्य-अवतार तथा उसकी उपासना-विधिके सम्बन्धमें श्रीकरभाजन मुनिने कहा है—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥
(११। ५। ३२)

'राजन्! कलियुगमें श्रीकृष्णका वर्ण नीलमणिकी हलके दिव्योज्ज्वल कान्ति-सी होती है। (गौर) कान्ति-विशिष्ट उन भगवान्‌की अङ्ग, कौस्तुभादिभूषण उपाङ्ग, आयुध, चक्रादि तथा सुनन्दादि पार्षदसहित संकीर्तन-प्रधान यज्ञोंके द्वारा सुबुद्धिमान् व्यक्ति कलिमें अर्चना करते हैं। श्रीधरस्वामीने इस श्लोकमें प्रयुक्त 'संकीर्तन' शब्दकी व्याख्यामें कहा है—'संकीर्तनं नामोच्चारणम्'—नामोच्चारण ही 'संकीर्तन' है। नामोच्चारणके विषयमें श्रीजीवगोस्वामीने श्रीमद्भागवत (७। ५। २३) के 'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः' आदि श्लोकमें प्रयुक्त कीर्तन-शब्दकी व्याख्यामें कहा है—'नामकीर्तनं चेदमुच्चैरेव प्रशस्तम्।'—यह नामोच्चारण उच्च स्वरमें ही प्रशस्त कहा गया है। अतः उच्चस्वरमें भगवन्नाम-कीर्तन करनेको 'नाम-संकीर्तन' कहते हैं। श्रीमन्महाप्रभुके भावको प्रकाशित करते हुए गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीजीव-गोस्वामीजीने अपने 'क्रम-संदर्भ' व्याख्यामें कहा है—'संकीर्तनं बहुभिर्मिलित्वा तद्गानसुखं श्रीकृष्णगानम्।'

अनेक भक्तोका मिलकर सम्यक् प्रकारसे—सुर-ताल-लयपूर्वक वाद्यादिके साथ कृष्ण-सुखजनक या कृष्ण-प्रीतिमूलक कृष्णनाम-गुणादिका उच्चस्वरमें कीर्तन करना ही नाम-संकीर्तन है। नाम-संकीर्तनके इस लक्षणमें श्रीजीवपादने उसके मुख्य प्रयोजनकी ओर भी इङ्गित किया है। यह मुख्य प्रयोजन है कृष्णप्रीति-जनकत्व।

श्रुतियों आदिमें, पुराणशिरोमणि श्रीभागवतमें तथा अन्यान्य धर्मशास्त्रोंमें नामकीर्तनका वर्णन उपलब्ध

१–एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्। एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥
(कठोपनिषद् १। २। १६)

यह अक्षर-प्रणव (ब्रह्मका नाम) ही ब्रह्म है। यह अक्षर ही श्रेष्ठ है। इस नामको जान लेनेपर जिनका जो अभीष्ट होता है, वह सिद्ध हो जाता है।

२–एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्। योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्॥ (२। १। ११)

'राजन्! निर्वेद-भावापन्न मुमुक्षुओं (ज्ञानियों)की मोक्ष-प्राप्तिमें, सकाम व्यक्तियोंकी अभीष्ट-प्राप्तिमें तथा योगियोंके परमात्माके साथ मिलनेमें एकमात्र नामकीर्तन ही निरापद साधन निर्णीत किया जा चुका है।'

होता है। अतः यह सत्य है कि श्रीमन्महाप्रभु श्रीगौराङ्गके आविर्भावसे पहले भी कीर्तनका प्रचलन अथवा महत्त्व शास्त्रोंमें प्राप्त था। भागवतमाहात्म्यके अन्तमें उसका अद्भुत स्वरूप भी मिलता है। परंतु 'तद्गानसुखं श्रीकृष्णगानम्'—लक्षणविशिष्ट नामसंकीर्तनके उज्ज्वलतम मुख्य फल तथा जीवस्वरूपानुबन्धि परमतम प्रयोजनीय साध्य स्वरूपको श्रीगौराङ्गने विशेषरूपसे प्रचारित किया। राधा-भाव-द्युतिसंवलित स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णरूप (गौड़ीय वैष्णवसम्प्रदायके सर्वस्व शचीनन्दन) श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने उसे विशेष उजागर किया। श्रीमन्महाप्रभुने प्रस्थानत्रयीद्वारा निरूपित प्रयोजन-तत्त्व—कृष्णप्रेमका उपदेशमात्र ही नहीं किया; अपितु उसकी प्राप्तिके उपायभूत कृष्णनाम-संकीर्तनका स्वयं आचरण कर, उसकी जीव-जगत्को शिक्षा देकर उसके मुख्य फल कृष्णप्रेम-सागरमें सबको आनन्दमग्न कर दिया। श्रीमहाप्रभुने कृष्णप्रीतिजनक नाम-संकीर्तनके द्वारा अपने पार्षद-भक्तोंको ही नहीं, आचाण्डाल जनसाधारणको, यहाँतक कि हिंसक पशुओंको भी कृष्णप्रेममें नचा डाला। व्याघ्र-हरिणादि अपने नैसर्गिक वैर-भावको त्यागकर एक दूसरेका आलिङ्गन-चुम्बन करने लगे।[1] श्रीकृष्णदास गोस्वामीने चैतन्यदेवको ही प्रेम-संकीर्तनका सर्जक कहा है—

'चैतन्येर सृष्टि एई प्रेमसंकीर्तन।'
(चै० च० २।११।८६)

श्रीचैतन्य-भागवतके व्यास श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने भी श्रीश्रीकृष्णचैतन्यनित्यानन्द प्रभुको 'संकीर्तनैकपितरौ'—संकीर्तनके पिता या जनक कहकर उनकी वन्दना की है (श्रीचैतन्य-भागवत १।१)। अतः गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायका 'संकीर्तन-प्रधान सम्प्रदाय' होना संगत ही है।

विवेचनापूर्वक अध्ययन किया जाय तो श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभुका सारा चरित्र ही अपने-आपमें कृष्णनाम-संकीर्तन है। महाप्रभुके नाम-संकीर्तन-तत्त्वका उपदेश आरम्भ हुआ था—पद्मानदी-तट-निवासी श्रीतपन मिश्रकी सर्वश्रेष्ठ साध्य-साधन-तत्त्वकी जिज्ञासापर। श्रीमन्महाप्रभुने कहा था—

साध्य-साधन तत्त्व जे किछु सकल।
हरिनाम संकीर्तनने मिलिबे सकल॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥
एइ श्लोक नाम बलि लय महामन्त्र।
षोल नाम बत्तीस अक्षर एइ तन्त्र॥
साधिते साधिते जबे प्रेमांकुर हबे।
साध्य-साधनतत्त्व जानिबा से तबे॥
(श्रीचैतन्यभागवत १।१०।१३९-१४१)

'मिश्र! 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण०' आदि इस सोलह नाम-बत्तीस अक्षरके तारक-ब्रह्म महामन्त्रका उच्चस्वरसे नाम-संकीर्तन करो। इस साधनासे तुम्हारे अंदर प्रेमाङ्कुर उदित होगा और फिर तुम साध्य-साधन-तत्त्वको भली-भाँति जान पाओगे।' श्रीतपन मिश्रने इस मन्त्रद्वारा प्रेम प्राप्तकर साध्य-साधन-तत्त्वका अनुभव किया। यही कारण है कि गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायमें इसी 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण०'—आदि महामन्त्रका सर्वत्र संकीर्तन प्रचलित है।

१—कृष्ण कृष्ण कह करि प्रभु जबे बैल। कृष्ण कहि व्याघ्र-मृग नाचिते लागिल॥
व्याघ्र-मृग अन्योन्ये करे आलिंगन। मुखे मुख दिया करे अन्योन्ये चुम्बन॥
(श्रीचैतन्यचरि० २।१७।३७-३९)

२—ब्रह्माण्डपुराणके उत्तरखण्ड (६।५५) में 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण०'—इस रूपमें महामन्त्रका उल्लेख है। श्रीक्रतुमुनिने इसे श्रीराधाजीके पिता श्रीवृषभानुजीको आकाशवाणीकी प्रेरणासे उपदिष्ट किया था। कलिसंतरणोपनिषद्में 'हरे राम हरे राम राम०'—आदि महामन्त्रसे वह भिन्न है। राधाभावविभावित श्रीमहाप्रभुने श्रीवृषभानुजीके सिद्धिप्रद महामन्त्रको प्राधान्य दिया है। कहते हैं—व्रजयामलमें श्रीशिवजीने भी इस मन्त्रका यही रूप वर्णन किया है।

श्रीमहाप्रभुने अपने श्रीमुखसे अनेक स्थलोंपर श्रीकृष्ण-नाम-संकीर्तनके प्रेमजनकत्व एवं सर्वोत्कृष्ट साध्य-साधनस्वरूपत्वका उपदेश किया है—

भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नव विधा-भक्ति।
कृष्णप्रेम कृष्ण दिते धरे महाशक्ति॥
तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नामसंकीर्तन।
निरपराध नाम हैते हय प्रेम-धन॥
(श्रीचैतन्यचरि० ३। ४। ६५–६६)

एक कृष्ण नाम करे सर्व पाप क्षय।
नवविधा भक्ति पूर्ण नाम हैते हय॥
नाम संकीर्तन हैते सर्वानर्थ नाश।
सर्व शुभोदय कृष्णप्रेमेर उल्लास॥
कृष्ण मन्त्र हैते हबे संसार मोचन।
कृष्णनाम हैते पाबे कृष्णेर चरण॥
कृष्णनाम महामन्त्रेर एइ त स्वभाव।
जेइ जपे तार कृष्णे उपजये भाव॥
(श्रीचैतन्यचरितामृत)

श्रीमन्महाप्रभुने अपने पार्षद-भक्तों—अनुयायियोंको एकमात्र नामसंकीर्तनका आश्रय ग्रहण करनेका उपदेश दिया। अन्तिम दिनोंमें भी जब श्रीमहाप्रभु प्रायः कृष्ण-प्रेमोन्मत्त-अवस्थामें आत्म-विस्मृत रहते थे तो भी वे ऐसा कहते रहते—

हर्षे प्रभु कहे शुन स्वरूप राम राय।
नाम संकीर्तन कलौ परम उपाय॥
(वही ३। २०। ७)

इस उपदेशके बाद श्रीमहाप्रभुने श्रीकृष्णनाम-संकीर्तनके दिव्यातिदिव्य अनुभूत स्वरूपको इस प्रकार प्रकाशित किया—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥
(श्रीशिक्षाष्टक १)

'जो चित्तरूप दर्पणको परिमार्जित करनेवाला है, संसार-तापरूप महादावाग्निको बुझानेवाला है, मङ्गलरूप कुमुदके लिये ज्योत्स्ना वितरण करनेवाला है, विद्या-(ज्ञान-भक्ति-) रूप वधूका प्राणस्वरूप है, आनन्द-सागरको उद्वेलित करनेवाला है। इसके प्रतिपदमें ही पूर्णामृतका आस्वादन है एवं सर्वात्मना—मन-इन्द्रियोंकी तृप्तिका विधान करनेवाला है, ऐसे श्रीकृष्णनाम-संकीर्तनकी जय हो—वह सर्वोत्कर्षसे विजययुक्त होकर विराजमान है।' श्रीमन्महाप्रभुने श्रीकृष्णनाम एवं श्रीकृष्णका सर्वथा अभेद प्रतिपादन करते हुए श्रीकृष्णनामकी असाधारण कृपाका उपदेश भक्तोंको किया—

कृष्णनाम कृष्णगुण कृष्णलीलावृन्द।
कृष्णेर स्वरूप सम सब चिदानन्द॥
कृष्णनाम कृष्णस्वरूप दुइ त समान॥
(श्रीचैतन्यचरितामृत)

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके श्रीकृष्णचैतन्यरूपमें अवतीर्ण होनेके मुख्य कारण व्रजलीलामें जागी स्वमाधुर्यास्वादनकी लालसापूर्तिके साथ आनुषङ्गिक कारण ही था कलियुग-धर्म श्रीनाम-संकीर्तनका प्रवर्तन। उस प्रवर्तनके लिये ही उन्होंने भक्तभावको अङ्गीकार किया। स्वयं उसका आचरण कर जीवजगत्‌को उस धर्मकी शिक्षा प्रदान की*। वस्तुतः नाम-संकीर्तन देश-काल-युग-नियमादिनिरपेक्ष स्व-प्रकाश चित्-स्वरूप है, तो भी कलियुगमें इसके विशेष महिमाकी कड़ी शास्त्रोंने जोड़ी है। कलियुगमें ही नाम-संकीर्तनकी प्रशस्तताके कारणकी समीक्षा करते हुए गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीजीवगोस्वामीने लिखा है—

* युगधर्म प्रवर्त्ताइमु नामसंकीर्तन। चारिभाव-भक्ति दिया नाचाइमु भुवन॥
आपनि करिब भक्तभाव अङ्गीकारे। आपनि आचरि भक्ति शिखाइमु संसारे॥
आपनि ना कैले धर्म शिखान न जाय। एइ त सिद्धान्त गीता-भागवते गाय॥
(श्रीचै०च० १। ३। १७-१९)

'सर्वत्रैव युगे श्रीमत्कीर्तनस्य समानमेव सामर्थ्यम्, कलौ श्रीभगवता कृपया तद् ग्राह्यते, इत्यपेक्षयैव तत्तत् प्रशंसेति स्थितम् ॥ (क्रमसंदर्भ)

समस्त युगोंमें ही श्रीनामसंकीर्तनकी समान सामर्थ्य-महिमा है; किंतु कलियुगमें श्रीभगवान् स्वयं ही कृपाकर इसे ग्रहण करते हैं, इसीलिये श्रीनामसंकीर्तनकी विशेष महिमा-प्रशंसा है। श्रीभगवान् दो प्रकारसे कलियुगमें नाम-संकीर्तनका प्रचार करते हैं—प्रथमतः युगावतारस्वरूपमें कलियुगका धर्म है नाम-संकीर्तन। धर्मसंस्थापनके लिये जब साधारण कलिमें युगावतार होता है, तब वह कलिधर्म नामका प्रचार करता है—नाम वितरण करता है। इस प्रकार श्रीभगवान्द्वारा वितरित होनेसे कलिमें नामकी विशेषता कही गयी है।

द्वितीयतः ठीक उसके परवर्ती कलियुगमें श्रीहरि-नामसंकीर्तनका अपूर्व वैशिष्ट्य है। श्रीगौराङ्ग स्वयं तथा अपने पार्षदोंद्वारा पात्रापात्र-विचारके बिना सबको नाम ग्रहण कराते समय श्रीनामके साथ-साथ नाम-ग्रहणकारी जनोंमें अपनी कृपाशक्तिको भी संचारित किया करते थे। उसके प्रभावसे नाम-ग्रहणकारी अतिशीघ्र श्रीनामसंकीर्तनके मुख्य फल कृष्णप्रेमको अनुभव करनेमें समर्थ हो जाते हैं। यही दूसरा विशेषत्व है—इस कलिमें श्रीहरिनाम-संकीर्तनका। यह वैशिष्ट्य अन्य युगको प्राप्त नहीं होता। प्रेममयविग्रह श्रीमहाप्रभुके श्रीमुखसे उच्चारित श्रीनाम प्रेम-विमण्डित होकर परम मधुर, अचिन्त्य शक्ति-सम्पन्न हो उठता है। श्रीमहाप्रभुके अन्तर्हित हो जानेपर भी जीव-जगत्के मङ्गल-निमित्त प्रचारित वह श्रीप्रभु-मुखनिःसृत श्रीनाम परम शक्तिशाली होकर प्रभावका विस्तार करता है। अतः इन समस्त कारणोंसे नाम-संकीर्तनकारी भक्तोंके प्रति श्रीनामकी कृपा कलिमें जैसे सहज प्राप्त होती है और किसी युगमें उतनी सहज नहीं होती। अतः श्रीनाम-संकीर्तनकी महिमाको कलि-युगके साथ सर्वत्र जोड़ा जाता है। इस रहस्यसे अवगत होकर गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायानुगत वैष्णवजन किसी भी अन्य भजनाङ्गका अनुष्ठान क्यों न करें, उसमें श्रीनाम-संकीर्तनका संयोग अवश्य रखते हैं, जैसा कि आचार्यपादने कहा है—अतएव अन्यथा भक्तिः कलौ कर्तव्या तदा तत्संयोगेनैवेत्युक्तम्। (श्रीजीवगोस्वामी)

गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायमें संकीर्तन-विषयक यह एक अपूर्व वैशिष्ट्य है। श्रीमन्महाप्रभुने जहाँ अपने अनुगतजनोंको श्रीनामके अनुपम स्वरूपका अनुभव कराया, वहाँ उन्होंने केवल गौड़ीय वैष्णवोंके लिये ही नहीं, नामग्रहणकारी समस्त वैष्णवोंके लिये कड़ी चेतावनी दी है—

> हेन कृष्णनाम यदि लय बहुबार ।
> तबे यदि प्रेम नहे, नहे अश्रुधार ॥
> तबे जानि अपराध आछये प्रचुर ।
> कृष्णनाम बीज ताहे ना हय अंकुर ॥
> (श्रीचैतन्यच० १ । ८ । २५-२६)

महामहिम, सर्वसमर्थ, परमस्वतन्त्र, चित्स्वरूप श्रीनामको यदि कोई अनेक बार ग्रहण करता है, चिल्ला-चिल्लाकर नाम-संकीर्तन करता है, किंतु उसके हृदयमें प्रेम आविर्भूत नहीं होता, उसके नेत्रोंसे अश्रु नहीं बह निकलते, शरीर पुलकित नहीं होता तो समझ लेना चाहिये कि उस व्यक्तिमें अनेक नामापराध हैं। नामापराधीमें कृष्णनाम-बीज अङ्कुरित ही नहीं होता, फलकी प्राप्ति तो दूर रही। अतः गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदायमें श्रीनाम-संकीर्तनके फल—प्रेमकी प्राप्तिके लिये दस नामापराधोंसे रहित होनेका आदेश है। साथ ही श्रीमन्महाप्रभुने श्रीनामसंकीर्तनके लिये विशेष विधान किया है कि 'तृणसे भी नीच होकर, वृक्षकी भाँति सहनशील होकर, अपने मान-सम्मानकी अभिलाषा न रखकर, किंतु दूसरोंको सम्मान प्रदान करते हुए ही सर्वदा श्रीहरिनाम-संकीर्तन करना चाहिये'—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥
(शिक्षाष्टक)

इस प्रकार गौडीय वैष्णव-सम्प्रदाय कलि-पावनावतार महाप्रभु गौराङ्ग-प्रदिष्ट श्रीनामसंकीर्तनमें निष्ठा रखता है और उसे ही परम साधन जानकर उसके द्वारा प्राप्त होनेवाले कृष्ण-प्रेमका अनुसंधान इस सम्प्रदायका मुख्य लक्ष्य है, जिसके द्वारा श्रीश्रीराधाकृष्ण-चरण-सेवाकी प्राप्ति सुनिश्चित है। प्रत्येक गौड़ीय वैष्णवाचार्यने श्रीनाम-संकीर्तनकी अशेष-विशेष महिमाका गान किया है तथा (पुराणनिर्दिष्ट) दस नामापराधोंसे रहित होकर नामाश्रय ग्रहण करनेका आदेश दिया है।

प्रेमावतार श्रीचैतन्यका दिव्य नाम-संकीर्तन

(लेखक—डॉ० श्रीलक्ष्मणप्रसादजी नायक, एम्० ए०, बी० एड्०, पी-एच्० डी०)

भारतीय मान्यताके अनुसार यह सारा विश्व एक ही परिवार है—'वसुधैव कुटुम्बकम्'। पारिवारिक प्रेम-भावनासे ही संसारमें सुख-शान्ति मिल सकती है, वैमनस्य, ईर्ष्या, शत्रुता अथवा अहं-भावसे नहीं। ऋग्वेदके संवननसूक्तमें कहा गया है—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥
(मण्डल १०। सूत्र १९१। २)

'आपलोग परस्पर मिलकर चलें, परस्पर प्रेमसे बातें करें। आपके मन एक समान होकर ज्ञानको प्राप्त करें। जिस प्रकार पूर्वकालके ज्ञानी विद्वान् सेवनीय प्रभुको जानकर उनकी उपासना करते आये हैं, वैसे ही आपलोग भी किया करें।' परस्पर मिलकर चलने एवं बात करनेके साधन वाणी एवं संकल्प हैं। संकलन शब्दसे ही संसारका पारस्परिक सम्बन्ध सौष्ठवसे सम्पन्न होता है। यदि शब्दज्योति न होती तो फिर यह सारा संसार अन्धकारमें डूबा रहता। आचार्य दण्डी कहते हैं—

इदमन्धतमं कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारान्न दीप्यते॥

नित्यानन्द श्रीकृष्ण चैतन्यने सारे संसारके लिये प्रेम-शब्दाभिधेय ज्योति जलायी। संसारमें प्रेय और श्रेय नामक दो मार्ग हैं। इनमें प्रेय भौतिक मार्गका और श्रेय आध्यात्मिक पथका अनुसरण करता है। प्रेयका अर्थ है—स्त्री, पुत्र, धन, यश आदि इस लोकके तथा स्वर्गलोकके समस्त प्राकृत सुखभोगोंकी सामग्रियोंकी प्राप्तिका मार्ग तथा श्रेयका अर्थ है—इन भौतिक सुखभोगोंकी सामग्रियोंसे उदासीन होकर नित्यानन्दस्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तमकी प्रीतिके लिये उद्योग करना। श्रीकृष्ण-चैतन्यने संकीर्तनके द्वारा प्रेय एवं श्रेय—दोनों मार्गोंको एक साथ समन्वित कर चलनेके लिये कहा है। तत्त्ववेत्ता कहते हैं—'मुक्ति या सायुज्य मोक्षमें तो भक्त भगवान् ही हो जाता है, पर प्रेमाभक्तिसे भावुक भक्त भगवान्‌को अपने वशमें कर अपार आनन्द प्राप्त करता है'—इसका अक्षरशः प्रमाण श्रीबिल्वमङ्गलकी आत्मजीवनी एवं उनका भक्तिमार्ग है—

अहो चित्रमहो चित्रं वन्दे तत्प्रेमबन्धनम्।
यद्बद्धं मुक्तिदं मुक्तं ब्रह्म क्रीडामृगीकृतम्॥
(कृष्णकर्णामृत)

'कोई निराधार निर्विकार ब्रह्मको भजता है तो कोई सगुण साकारकी वन्दना करता है, किंतु प्रेमी भक्त तो उस प्रेमबन्धनकी वन्दना करता है, जिसमें बँधकर परब्रह्म परमात्माको भी भक्तोंका क्रीडामृग—खिलौना बन जाना पड़ता है।

प्रेम नदी जब उमडे श्यामसिन्धुकी ओर।
लोक-रीति-मर्यादा सब डारे पर्वत फोर॥

जो प्रेमी भक्त समस्त लोकरीति और मर्यादाको सहज भावसे छोड़कर सर्वदाके लिये अपने परम-प्रेमास्पद

एकमात्र भगवान्‌का हो जाता है, वह अपने परम प्राप्तव्य प्रेमरूप—परमतत्त्व (परमात्मा) को प्राप्त कर लेता है। प्रेमस्वरूपका वर्णन अनिर्वचनीय है—'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्' । इस वर्णनातीत परमप्रेम-प्राप्तिका अन्यतम साधन वास्तविक कीर्तन है। कीर्तन यदि केवल मनोरञ्जनका साधन है, तब तो वह तुच्छ बाजारू और व्यर्थ है, किंतु यदि भगवत्प्राप्तिके निमित्त उद्दिष्ट है तो उसका प्रभाव दिव्य होगा।

श्रीचैतन्यदेवका आविर्भाव वस्तुतः विशुद्ध समाजवाद और विश्वबन्धुत्वका उदय है; क्योंकि चैतन्यने राधाके रूपमें कृष्ण-राधा-प्रेमका पान करते हुए हिंदू, बौद्ध, जैन, सिक्ख, मुसलमान आदि सभीको एक प्रेम-सूत्रमें ग्रथितकर विश्व-बन्धुत्वकी ज्योति जलायी। इसमें सम्प्रदाय-स्थापना अथवा बदलनेकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं, न कोई आग्रह ही है। देश, काल, पात्र, अवस्था, योग्यता, विधि-विधान, जाति-वर्ग-धर्म-सम्प्रदाय अथवा विशेषकी भी अपेक्षा नहीं। किसी एक निश्चित नामके संकीर्तन करनेकी नीति निर्धारित नहीं है। जो भी नाम भक्तको प्रिय हो, जो भी धर्म, सम्प्रदाय, आजीविका, समय प्रिय हो, उसीमें रमे रहकर प्रेमसे कीर्तन करना चाहिये। द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत—चाहे जिस-किसी भी आध्यात्मिक दार्शनिक सिद्धान्तवादको माननेवाले ही क्यों न हों, वे प्रेमसे नाम-संकीर्तन करें। नाम-संकीर्तन करनेवालेको वेशभूषा भी बदलना नहीं है और न ही शारीरिक बाह्याडम्बर करनेकी आवश्यकता है। शुद्धभावसे कीर्तन करना ही परम मङ्गलकारक है।

आजकल संकीर्तनके नामपर कुछ संकीर्णता बढती जा रही है। यह इधर मात्र मनोरञ्जन नृत्य-संगीतके साधन-रूपमें परिवर्तित होता जा रहा है। ऐसे दिखावटी आचरणोंका परित्याग आवश्यक है। संकीर्ण सुखवाद मानवके लिये गौरवकी वस्तु नहीं है। चैतन्यने कहा है—'अमरजीवनके ऊपर, शारीरिक एवं मानसिक आनन्दके ऊपर नहीं, अपितु अक्षय अलौकिक आनन्दके ऊपर ही मानवका जन्मसिद्ध अधिकार है। उनकी इसी असाधारण नवीनताको देखकर लोग मुग्ध होते गये। उन्होंने प्रेम-धर्मके मूलभूत आध्यात्मिक तत्त्वोंकी व्याख्या की। इसमें संदेह नहीं कि समाज ही साधनाभूमि है, परंतु इसके आगे एक समाजातीत लक्ष्य होना आवश्यक है, अन्यथा जीवन-जंजालमें उलझा हुआ मनुष्य उससे पार न पा सकेगा। प्रेम-भक्तिके अङ्गरूपमें श्रीचैतन्यने राय रामानन्दद्वारा प्रदर्शित भगवद्विग्रहकी सेवा और उपासनाके पाँच उत्कृष्ट तत्त्वोंको स्वीकार किया है, वे है—१–वर्णाश्रमधर्माचार-पालनद्वारा भगवद्भक्ति प्राप्त होती है। २–भगवान्‌के लिये सभी स्वार्थोंका त्याग करना आवश्यक है। ३–भगवत्-प्रेमद्वारा सर्वधर्म-त्याग होता है। ४–ज्ञानात्मिका भक्तिकी साधना करनी पड़ती है। ५–स्वाभाविक एवं अखण्डरूपमें मनको श्रीकृष्णकी भक्तिमें लगाना लक्ष्य है।

श्रीकृष्णकी प्रीति-हेतु उनमें आसक्ति ही भक्ति है। यह ज्ञान, कर्म और वैराग्यकी इच्छासे सर्वथा शून्य होती है तथा पूर्णतया अनभिलाषितायुक्त होती है। शुद्ध भक्तिमें भक्त सारी कामनाओंसे मुक्त होकर सम्पूर्ण इन्द्रियोंके द्वारा श्रीकृष्णपर आसक्त रहता है। निष्कपट और निरपराध होकर नाम-लीलागुणोंका श्रवण-कीर्तन करना ही प्रेम-भक्तिमें भगवान्‌को पानेका साधन है। श्रीवृन्दावनदासजीने 'श्रीचैतन्यचरिताष्टक' के चतुर्थ श्लोकमें कहा है—

यथेष्टं रे भ्रातः कुरु हरिध्यानमनिशं
ततो वः संसाराम्बुधितरणदायो मयि भवेत्।
इदं बाहुस्फोटै रटति रटयन् यः प्रतिगृहं
भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि॥

(ओड़िया अपूर्व प्रकाश, पृ० १३६ श्रीरंगनाथ गोस्वामीद्वारा प्रकाशित)

*

वन्य पशुओं पर चैतन्य महाप्रभुका संकीर्तन प्रभाव

'भाइयो ! आप अपने इच्छानुसार यदि सर्वदा हरि-हरि बोलें या हरिध्वनि करें तो आपलोगोंका संसार-सागरसे पार उतारनेका भार मुझपर है—ये ही बातें जो सम्पूर्ण साहससहित रटते हुए अपने ही बाँहोंसे ताल ठोकते घर-घर घूमते-फिरते हैं; उन्हीं अयाचित कृपालु परमहितैषी भजन-तरुके आदिकन्द श्रीनित्यानन्द प्रभुको मै भजता हूँ ।' श्रीश्रीचैतन्य-भागवतके तृतीय स्कन्ध पृ० १८१ में दिव्यप्रेमके वितरकका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

आनन्दे करन्ति कीर्तन । संगरे निज भक्तगण ॥
छाड़िण गृह पुत्र धन । प्रभुंक संगे भक्तगण ॥
कीर्तन करन्ति आनन्दे । उन्नत प्रेम गद गदे ॥
से प्रेम कथा जे अद्भुत । देखि पाषाण, द्रविभूत ॥
से प्रभु गौरचन्द्र हरि । आपणा दास्य भाव धरि ॥
प्रेमरे करन्ति रोदन । क्षणके हास्य करि पुण ॥
से हास्य प्रहरे पर्यन्त । क्षणके हुअन्ति मूर्च्छित ॥
श्वास प्रश्वास किछि नाहिं । देखि भकते भय पाइ ॥

'श्रीकृष्णचैतन्य अपने भक्तोंके साथ कीर्तन कर रहे है । घर, पुत्र और धनको त्यागकर भक्तवृन्द भी आनन्दसे गद्गद होकर कीर्तन कर रहे है । वह प्रेमकी कथा ही अद्भुत है, जिसे देखकर पत्थर भी पिघल जा रहा है । वे प्रभु गौरचन्द्रहरि अपने दास्यभावको धारण किये है । प्रेमसे रुदन कर रहे है । पलभरके बाद फिर हँसते हैं । वह हँसी एक पहरतक चल रही है । पलभरके बाद वे मूर्च्छित हो जाते हैं । उनकी श्वास-प्रश्वास कुछ भी नहीं चल रही है, जिसे देखकर भक्त भयभीत हो रहे है ।' इस तरह वे उद्दण्ड प्रेमसे उन्मत्त होकर कीर्तन किया करते थे । कीर्तन करते हुए वे जब तीर्थाटन करते थे, तब रास्तेका एक अद्भुत और अनुपम विचित्र चित्र देखिये—

गच्छन् वृन्दावनं गौरो व्याघ्रेभैणखगान् वने ।
प्रेमोन्मत्तान् सहोन्नृत्यान् विदधे कृष्णजल्पितः ॥
(चैतन्यचरितामृत मध्यलीला खण्ड १७ । १)

'श्रीगौराङ्ग महाप्रभु कीर्तन करते हुए वृन्दावन जा रहे है । वे अरण्यके सिंह, हस्ती, मृग और पक्षियोंतकको कृष्णप्रेममें उन्मत्त करते हुए एवं उनके मुखसे श्रीहरिके सुमधुर नामोंका उच्चारण कराते हुए उनसे भी अपने साथ ही नृत्य कराते जा रहे हैं ।' दास्य-प्रेम-भक्तिके महत्त्वका वर्णन इस प्रकार श्रीश्रीचैतन्यभागवतके पृष्ठ १८५ में किया गया है—

दास्य सुखरू सुख नाहिं । सकळ सुख तुच्छतहिं ॥
कोटिए ब्रह्म सुख जेंहि । दास्य भाव क्रु समनोहि ॥
जे लक्ष्मी अति प्रिया होइ । दास्य सुखकू से मागइ ॥
विधि नारद भव पुण । आवर शुक सनातन ॥
सकले दास्य भावे भोज । आपणे अनन्त ईश्वर ॥
दास्य सुखरे भोल होई । सकल भाव पासोरइ ॥
राधा रुक्मणी आदि जेते । दास्य जे मागन्ति निरते ॥

'दास्य-प्रेमभक्तिके समान सुख और कोई सुख नहीं है, जिसकी तुलनामें अन्य सुख व्यर्थ हैं । करोड़ों ब्रह्म-सुख दास्यभावके सुखके सामने तुच्छ हैं । जो लक्ष्मी अतिप्रिया होती हैं, वे दास्य-भक्तिको माँगती हैं । इसी तरह नारद, शुक और सनातन आदि सभी दास्यप्रेममें विभोर अपने-आपमें अनन्त ईश्वर हैं । राधा-रुक्मिणी आदि सब सर्वदा दास्य-प्रेमकी याचना करती हैं ।' चैतन्य महाप्रभुने सुप्तप्राय मानव-जातिको प्रेमसे भक्ति-पथ दिखलाकर पुनः जागृति प्रदान की—

जे सिद्ध जोगी मुनी ऋषी । सकले गौर प्रेमे रसि ॥
आनन्द ए तिनि भुवन । गौर प्रेमरे होइ मगन ॥
जाहाँक कीर्तन लीलारे । वृक्षादि पशुपक्षी खरे ॥
प्रेम रसरे रसि जाई । पाषाण तरल हुअई ॥
जीव वा केतेक मातर । रसिब नाहिं से भावर ॥
सकल जीवंक उद्धार । कारणे गौर अवतार ॥
(वही पृष्ठ २३६)

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कीर्तनलीलाने भला किसे आकर्षित नहीं किया । नामकीर्तनसे सुख अधिक बढ़ता है । यही नामकीर्तनका स्वभाव है । कीर्तनमें संसार डूब जायगा । दुःख शरीरसे दूर होगा । दिव्य

प्रेमावतार श्रीकृष्णचैतन्यने श्रीकृष्ण-प्रेम-लीलालीन वियोगावस्था तथा दिव्योन्मादके साथ अड़तालीस वर्षकी भरी जवानीमें समुद्रमें 'झाप' देकर—कूदकर अपनी इहलीला समाप्त कर दी। ऐसे दिव्य प्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीला आज भी सर्वत्र वितरण हो रही है। भक्तगण नाम-संकीर्तन कर रहे हैं—

> भज श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
> जप हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधेगोविन्द॥

आजके युगमें चैतन्यके दिव्यप्रेमकी ज्योति फिरसे जगे और विश्व-बन्धुत्वकी भावना जाग्रत करे। मानव-जातिकी रक्षा हो, इसी प्रार्थनाके साथ लेखका उपसंहार किया जा रहा है।

रामस्नेही-सम्प्रदायमें नाम-संकीर्तन

(लेखक—रामस्नेहीपीठाधीश्वर श्री १००८श्रीपुरुषोत्तमदासजी महाराज)

रामस्नेही संतोंकी उपासना-पद्धति विलक्षण है। अपनी साधना-पद्धतिमें ये सगुण या निर्गुणके कारण कोई मतभेद नहीं आने देते। ये आराधना नाम (निर्गुण) ब्रह्मकी करते हैं तो सेवा रूप (सगुण) ब्रह्म (गुरुदेव)-की करते हैं। ऐसा सही रास्ता एवं सच्चा ज्ञान मिल जानेसे वे सर्वथा निश्चिन्त हो जाते हैं—

> 'सरगुण सेव निर्गुण ध्यान। चिन्त्या हरण चितमन ज्ञान॥'
> (द० ग्र० चिन्तामणि)

संतों एवं सद्ग्रन्थोंका यह स्पष्ट मत है कि 'परमात्मा स्वयं आवश्यकतानुसार संतोंके रूपमें नित्य अवतार ग्रहण करते हैं—

> संत रूप होइ साहिब आया। देह धार अरु संत कहाया॥
> (दयालुवाणी-परची)

इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संतोंके लिये निर्गुण रूपमें तथा सगुण अवतारों तथा गुरु महाराजके नाम-रूपमें एक ब्रह्म ही उपास्य है। इनमेंसे ये संत नाम-ब्रह्मकी उपासना सुरतशब्दयोगके द्वारा करते हैं तथा रूप-ब्रह्मकी सेवा भगवद्वशकारिणी नवधा भक्तिके द्वारा करते हैं—

> संतों संतन का मत गूहा।
> अनहद तार गिगन धुन वाके, सुरत शब्द का नेहा॥
> (श्रीहरिराम० पद)

> श्रवण कीर्तन नाम जप पद अर्चन पुनि वन्द।
> दास सखा कृत समर्पण श्री गुरुदेव सनन्द॥
> (द०वा०गुरुप्रकरण)

श्रीदयालु-वाणीमें इस नवधा भक्तिमेंसे कीर्तन-भक्तिके लिये भगवान् हमें स्पष्ट रूपसे बता रहे हैं कि 'जब मेरा भक्त प्रेमसे मेरा गान (नाम-संकीर्तन, गुणगान) करता है, तब मैं उसके पास नृत्य करता हूँ; क्योंकि मेरा स्मरण ही उसका सच्चा जीवन है।'

> गावत जन निरन्तर नाचूं। मम सिमरण पुनि जीवन साचू॥
> (द०गु०वा०ग्रन्थभाग)

ग्रन्थोंमें ताल-स्वरके बिना किये गये नामोच्चारणको नाम-जप तथा ताल-स्वरके सहित किये गये नामोच्चारणको कीर्तन अथवा संकीर्तन कहा गया है। संतमत इन दोनोंको एक-दूसरेका पूरक ही मानते हैं। संतलोग जपको सुमिरण-भजन तथा नामसंकीर्तनको पद-गान या भजनगान भी कहते हैं। संतजन प्राणिमात्रको सर्वतोभावेन एकमात्र राम-भजन (नाम-जप) की आज्ञा देते हैं—

> राम सुमर रे प्राणिया भूले मत जाई।
> सुमिरण बिन छूटे नहीं, जम द्वारे जाई॥
> (रामदासजी म०पद)

> भज मन दीनानाथ दयाल।
> भरथ खण्ड मिनख देह चढ़े भाग आयो।
> ताही मे सो बड़ो, राम नाम गायो॥

जीवन प्राण पद निर्वाण, रामनाम गावो ।
खोय मत मिनख देह, स्वास लेखे लावो ॥
(दयालु-पद)

एकमात्र राम-नाम ही जीवनका सार एवं चरम लक्ष्य है। जो निरालस्य हो पूर्ण श्रद्धा एवं दृढ़ताके साथ इसका अधिकाधिक जप करता है, उसीका मानव बनना सार्थक है। राम-भजनके समय जब उबासी एवं तन्द्राके रूपमें कुछ आलस्य आने लगे, तब सुमिरणके स्थानपर पद-गान—नाम-संकीर्तन प्रारम्भ कर देना चाहिये। इससे भजनका बाधक आलस्य निर्मूल हो जायगा—

सरधावन्त गाढ सिवरण को, मिथ्या नेह तजीजे ।
आलस ऊँघ उबासी आवै, तब हरजस चित दीजे ॥
(दयालु-पद)

संतोंने अपने प्रभुके दर्शनाभिलाषी भक्तके अपने स्वामीके प्रति—'मुझे कब दर्शन होंगे?', 'वही दिन परम सौभाग्यशाली होगा, जब दर्शन हो जायँगे।'—इत्यादि उद्गारोंके बारंबार कीर्तन (उच्चारण)को भी कीर्तन-भक्ति ही बताया है—

भक्ति कीर्तन यूह, हरि गुण गुरु मुख उचरे ।
भूरिभाग दिन तेह, कद आवन पावन दरस ॥
(दयालु, गुरुप्रकरण)

संत-मतमें नवधा भक्ति वास्तवमें तभी फलीभूत हो पाती है जब साधक प्रेमके प्रवाहमें पूर्णरूपसे सराबोर हो जाय। ऐसी प्रेमदशाको संत-महात्मा दसवीं भक्ति अर्थात् प्रेमाभक्ति कहते हैं। ब्रह्मधामप्रद यह प्रेमाभक्ति रामगुरु महाराजकी कृपासे अति सहज एवं सुगमतासे प्राप्त हो जाती है। अतः हमें चाहिये कि हम गुरुके आज्ञानुसार एकमात्र रामनाम-संकीर्तनमें तल्लीन हो जायँ।

यह नवध्या दशध्या मिले, परापरमपद पाय ।
उत्तम प्रेरक सतगुरु, रामनाम लिवलाय ॥
(श्रीदयालु, गुरुप्रकरण)

श्रीमद्भागवतमें संकीर्तन-महिमा

(लेखक—पं० श्रीगोविन्ददासजी संत, धर्मशास्त्री, पुराणतीर्थ)

भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनप्रणीत श्रीमद्भागवत महापुराणमें नवधा भक्तिके द्वितीय अङ्ग कीर्तन या संकीर्तनका विशेष गुणगान हुआ है। इसकी महिमा अपार—वर्णनातीत है। जो कुछ महिमा कही-सुनी जाती है, वह अपनी वाणी और अन्तरात्माको पवित्र करनेके लिये ही। श्रीमद्भागवतमें नारदजी श्रीवेदव्याससे कहते हैं—'जिस वाणीमें, चाहे वह रस-भाव-अलंकारादिसे युक्त ही क्यों न हो, जगत्को पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीहरिके यशकी बात नहीं होती, वह 'काकतीर्थ' (कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंकनेके स्थान) के समान अपवित्र है। मानसरोवरके रमणीय कमलवनमें विहार करनेवाले हंसोंकी भाँति ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त कभी वहाँ नहीं रमते। ठीक इसके विपरीत, जिसमें सुन्दर रचना नहीं है और जो शैलीबद्ध शब्दोंसे युक्त भी नहीं है, परंतु जिसका प्रत्येक श्लोक भगवानके सुयश-सूचक नामोंसे युक्त है, वह वाणी लोगोंके सम्पूर्ण पापोंका नाश कर देती है; क्योंकि सज्जन पुरुष ऐसी ही वाणीका श्रवण-गान और कीर्तन किया करते हैं। (भाग० १।५।१०-१२) अतः इधर-उधरकी व्यर्थ बातोंको छोड़कर सदा-सर्वदा भगवान्के मङ्गलमय नामोंका संकीर्तन करना चाहिये।

वेदोंका विभाजन, सत्रह पुराणोंका निर्माण और महाभारत-जैसे महान् ग्रन्थकी रचना कर लेनेके पश्चात् भी जब भगवान् वेदव्यासकी आत्माको संतोष नहीं हुआ, तब देवर्षि नारदजीने उन्हें यथार्थ तत्त्वका परिज्ञान कराते हुए कहा था—'बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह उसी परमार्थ तत्त्वकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करे, जो तृणसे लेकर ब्रह्माण्डपर्यन्त समस्त ऊँची-नीची योनियोंमें कर्मोंके फलस्वरूप घूमते रहनेपर भी उसे प्राप्त नहीं होता। संसारके विषय-सुख तो

जिस प्रकार बिना चेष्टाके दुःख मिलते हैं, उसी प्रकार कर्मके फलरूपमें अचिन्त्यगतिवाले समयके परिवर्तनसे सबको सर्वत्र मिल जाते हैं।'—'तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदः' (श्रीमद्भा० १ । ५ । १८) सारांश यह कि विषय-सुख तो दुःखकी तरह सभी योनियोंमें मिल ही सकते हैं, पर भगवत्प्राप्ति परम दुर्लभ है। इस भगवत्प्राप्तिका सर्वसुलभ साधन है, भगवन्नाम-संकीर्तन। यहाँ श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धसे लेकर द्वादश स्कन्ध-पर्यन्त सभी स्कन्धोंमें आये हुए भगवन्नाम-संकीर्तनके प्रसङ्गका दिग्दर्शन कराया जा रहा है। श्रीशौनकादि मुनिगण भगवत्सम्बन्धी जिज्ञासाके प्रसङ्गमें श्रीसूतजीसे कहते हैं—

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम्॥
(१ । १ । १४)

'घोर संसार-बन्धनमें पड़ा हुआ जीव यदि विवश होकर भी भगवान्‌का नामोच्चारण (नाम-संकीर्तन) कर ले तो वह उससे शीघ्र ही मुक्त हो जाय; क्योंकि स्वयं भय भी उनसे भय मानता है।' श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से कहते हैं—

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्॥
(२ । १ । ११)

'राजन्! जिन पुरुषोंको संसारसे वैराग्य हो गया है और जो अभयपदके इच्छुक हैं, उन योगियोंको भी श्रीहरिका नाम-संकीर्तन ही करना चाहिये, यही समस्त शास्त्रोंका निर्णय है।' सृष्टिकर्ता श्रीब्रह्मदेव भगवान्‌की स्तुति करते हुए कहते हैं—

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा
संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये॥
(३ । ९ । १५)

'जिनके अवतारोंके गुणों और कर्मोंको सूचित करनेवाले नामोंका प्राणत्यागके समय विवश होकर भी उच्चारण करनेवाले मनुष्य अनेक जन्मोंके पापोंसे तत्काल मुक्त हो माया आदि आवरणोंसे रहित ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेते हैं, उन अजन्मा श्रीहरिकी मैं शरण हूँ।' माता देवहूति श्रीकपिलदेवजीसे कहती हैं—

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्
यत्प्रह्वणाद् यत्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते
कुतः पुनस्ते भगवन् नु दर्शनात्॥
अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥
(३ । ३३ । ६–७)

'कभी जिनके नामोंका श्रवण या कीर्तन करनेसे अथवा जिनका वन्दन या स्मरण करनेसे चण्डाल भी (जन्मान्तरोंके) सवनोंका अधिकारी हो जाता है, भगवन्! उन्हीं आपका दर्शन करके मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है, इसमें तो संदेह ही क्या है? अहो! जिसकी जिह्वापर आपका पवित्र नाम विराजमान रहता है, वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है। जो भद्र पुरुष आपके नामका उच्चारण करते हैं, वास्तवमें उन्होंने जप, हवन, तीर्थ-स्नान और वेद-पाठ आदि सब कर लिये हैं।' अर्थात् आपके नामोच्चारणका इतना महत्त्व है कि इसके लेनेवाले व्यक्तिके लिये उपर्युक्त सभी साधनोंका फल प्राप्त हो जाता है। दक्षप्रजापतिके यज्ञमें ब्राह्मणोंने भी भगवान्‌की स्तुति करते हुए कहा है—

स प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां
दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम्।
कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते
यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः॥
(४ । ७ । ४७)

'यज्ञेश! जिन आपके नामका मनुष्योंद्वारा कीर्तन किये जानेपर यज्ञके सम्पूर्ण विघ्न दूर हो जाते हैं, उन आपको नमस्कार है। हमारा यज्ञरूप सत्कर्म नष्ट हो गया था, इसलिये हम आपके दर्शनकी इच्छा कर रहे थे। अतः अब आप हमपर प्रसन्न होइये।' श्रीशुकदेवजी परीक्षित्‌से कहते हैं—

यस्य ह वाव क्षुतपतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन् पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते॥ (५ । २४ । २०)

'छींकने, गिरने और फिसलने आदिके समय विवश होकर जिसका एक बार नाम लेनेपर पुरुष उस कर्मबन्धनको सहसा त्याग देता है, जिसे मुमुक्षु जन योगसाधना आदि अन्य नाना प्रकारके उपायोंसे दूर कर पाते हैं।' यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः॥
नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत॥
एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां
संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्।
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि
नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम्॥
(६।३।२२-२४)

'इस लोकमे भगवान्‌के नामोच्चारणादियुक्त किया हुआ भक्तियोग ही मनुष्यका सबसे प्रधान कर्म माना गया है। पुत्रो! देखो, भगवान्‌के नामोच्चारणका कैसा माहात्म्य है, जिसके प्रभावसे अजामिल भी मृत्युके पाशसे मुक्त हो गया। मनुष्योंके पापोंका समूल नाश करनेके लिये भगवान्‌के गुण-कर्मसम्बन्धी नामोंका कीर्तन ही पर्याप्त है; क्योंकि महापापी अजामिल मरनेके समय अस्वस्थ-चित्तसे अपने पुत्रको 'नारायण' कहकर पुकारनेसे ही मुक्त हो गया।'

श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्धके दूसरे अध्यायके सातवें श्लोकसे उन्नीसवें श्लोकतक भगवान् विष्णुके दूतोंने यमराजके दूतोंसे नाम-महिमाका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, जो विस्तारभयसे यहाँ नहीं दिया जा रहा है। यह वहीं द्रष्टव्य है। एक बार दैत्यराज हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र प्रह्लादको गोदमें बिठाकर पूछा—'बेटा प्रह्लाद! इतने दिनोंतक तुमने गुरुसे जो कुछ अध्ययन किया है, उसमेंसे कोई अच्छी-सी बात सुनाओ।' यह सुनकर प्रह्लादने कहा—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥
(७।५।२३-२४)

'पिताजी! भगवान् विष्णुके गुण, लीला, नाम आदिका श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—ये उनकी नौ प्रकारकी भक्ति है। यदि मनुष्य इस नवधा भक्तिका भगवदर्पणपूर्वक आचरण करे तो मैं उसे ही सबसे अच्छा अध्ययन समझता हूँ।' इसी नवधा भक्तिके द्वितीय अङ्गका नाम कीर्तनभक्ति है। कलिकालमें संसार-सागरसे पार होनेका सरल उपाय एकमात्र भगवन्नाम-संकीर्तन ही है। राजा बलिकी यज्ञशालामें जिस समय श्रीवामन भगवान्‌ने श्रीशुक्राचार्यसे कहा कि आपके शिष्यके यज्ञमें जो त्रुटि रह गयी हो उसे आप पूर्ण कर दीजिये। उस समय शुक्राचार्यजीने उत्तर दिया—

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव॥
(८।२३।१६)

'भगवन्! (सच तो यह है कि) आपका नाम-संकीर्तन मन्त्र, तन्त्र, देश, काल, पात्र और वस्तुके कारण होनेवाली सभी त्रुटियोंको पूर्ण कर देता है।' महर्षि दुर्वासा भी भगवान्‌की स्तुति करते हुए कहते हैं—

अजानता ते परमानुभावं
कृतं मयाघं भवतः प्रियाणाम्।
विधेहि तस्यापचितिं विधात-
र्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि॥
(९।४।६२)

'प्रभो! आपका प्रभाव न जाननेके कारण ही मैंने आपके प्रिय भक्तोंका अपराध किया है। विधातः! आप मुझे उससे छुड़ाइये; क्योंकि आपका नामोच्चारण करनेसे नारकी जीव भी मुक्त हो जाता है।' राजा निमिके यज्ञमें संकीर्तनके प्रभावको बताते हुए करभाजन मुनि कहते हैं—

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः।
यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते॥
न ह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह।
यतो विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः॥
(११।५।३६-३७)

'राजन्! गुणज्ञ और सारग्राही सज्जन पुरुष कलियुग-को सबसे अधिक प्रिय मानते हैं; क्योंकि उसमें भगवान्‌के नाम-संकीर्तनसे ही सम्पूर्ण स्वार्थकी सिद्धि हो जाती है। जन्म-मरणके चक्रमें पड़कर घूमते हुए प्राणियोंका इस (हरिनाम-संकीर्तन) से बढ़कर और कोई लाभ नहीं है;

क्योंकि इससे संसार-बन्धन टूट जाता है और परम शान्तिकी प्राप्ति होती है।' श्रीशुकदेवजी श्रीहरिके स्वभावका उल्लेख करते हुए राजा परीक्षित्से कहते हैं—

श्रुतः संकीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपि वा।
नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम्॥
(१२।३।४६)

'श्रीहरि अपना श्रवण, कीर्तन, ध्यान, पूजन अथवा आदर करनेपर हृदयमें स्थित हो मनुष्योंके दस हजार जन्मोंके दोषोंको भी दूर कर देते हैं।' कलियुगमें भगवत्प्राप्तिका सर्वसुलभ साधन भगवन्नाम-संकीर्तन ही है, यह बताते हुए श्रीशुकदेवजी राजर्षि परीक्षित्से पुनः कहते हैं—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥
(१२।३।५१)

'राजन्! दोषोंके भण्डार इस कलियुगमें यह एक बड़ा गुण है कि इसमें श्रीकृष्णचन्द्रका कीर्तनमात्र करनेसे पुरुष सब प्रकारके बन्धनोंसे छूटकर परमात्माको प्राप्त हो जाता है।' भगवन्नाम-संकीर्तन कलियुगसे उद्धार पानेका प्रधान साधन है—

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥
(१२।३।५२)

'सत्ययुगमें भगवान् विष्णुका ध्यान करनेसे, त्रेतायुगमें यज्ञोंद्वारा उनका यजन करनेसे, द्वापरमें उनकी सेवा-पूजा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह कलियुगमें हरिनाम-संकीर्तनसे ही मिल जाता है।' श्रीसूतजी नैमिषारण्यतीर्थमें श्रीशौनकादि महर्षियोंसे कहते हैं—

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन्।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात्॥
संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः॥
(१२।१२।४६-४७)

'कोई भी मनुष्य यदि गिरते-पड़ते, ठोकर खाते, दुःखसे पीड़ित होते अथवा छींकते हुए भी विवश होकर उच्चस्वरसे 'हरये नमः' ऐसा कहे तो वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार सूर्य अन्धकारको और प्रचण्ड पवन मेघको छिन्न-भिन्न कर देता है, ठीक उसी प्रकार भगवान् अनन्तका कीर्तन तथा उनके प्रभावका श्रवण किये जानेपर वे उन लोगोंके हृदयमें प्रविष्ट होकर उनके सम्पूर्ण दुःख दूर कर देते हैं।'

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥
(१२।१३।२३)

'जिनका नाम-संकीर्तन सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला है और जिन्हें किया हुआ प्रणाम सम्पूर्ण दुःखोंको नाश कर देता है, उन परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ।'

इस प्रकार श्रीमद्भागवतके प्रत्येक स्कन्धमें नाम-संकीर्तनकी महिमा भरी पड़ी है। भागवतीय सम्प्रदायका दृढ़ विश्वास है कि श्रीमद्भागवतका श्रवण-पठन करनेसे जीवका उद्धार हो जाता है। इसका प्रधान कारण नाम-संकीर्तन ही है, अतः मनुष्यको सर्वदा, सर्वथा, सर्वत्र लोभसे भगवन्नामका उच्चारण करते रहना चाहिये। नाम-संकीर्तनकी चर्चाका दिग्दर्शन करनेके बाद भागवतीय संकीर्तनायोजनका भी उल्लेख आवश्यक जँचता है, जो भगवदीय पद्धतिमें संकीर्तनकी महिमा और विधिको अधिक उजागर करता है। जहाँ अहिंसा-वृत्तिपरायण महात्माओंके भजन-साधनमें रत रहनेसे पशु-पक्षी भी पारस्परिक वैरभावको भूलकर निर्भीक हो बन्धु-बान्धवोंकी तरह प्रेमभावपूर्वक निवास करते हैं, ऐसे परम सुरम्य गङ्गाजीके विशाल पुलिनमें यह आयोजन होना चाहिये।

श्रीसनकादि मुनिजनोंके आज्ञानुसार देवर्षि नारद उन्हें साथ लेकर हरिद्वार पहुँचे। वहाँ सनकादि मुनिगणों-द्वारा कथा प्रारम्भ हुई। देवर्षि नारद प्रधान श्रोता बने। श्रीमद्भागवतका यह बहुत विशाल सम्मेलन था। इस आयोजनके प्रारम्भ होते ही भक्ति, ज्ञान और वैराग्यका चित्त इस ओर आकर्षित हुआ। तब इस कथानकके प्रभावसे तरुणावस्थाको प्राप्त हुए अपने

दोनों पुत्र (ज्ञान-वैराग्य) को साथ लिये विशुद्ध प्रेमरूपा भक्ति बार-बार 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव !' आदि भगवन्नामोंका उच्चारण करती हुई वहाँ अकस्मात् प्रकट हो गयी—

> भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा
> प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत्।
> श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे
> नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ॥
> (श्रीमद्भा० मा० ३ । ६७)

इस आयोजनकी समापनताके शुभावसरपर इस पारमार्थिक कार्यसे परम प्रभावित होकर प्रह्लाद, बलि, उद्धव और अर्जुन आदि पार्षदोंसहित सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्र परमप्रसन्न होकर उस कथास्थलपर प्रकट हो गये। इसी शुभावसरपर व्यासनन्दन श्रीशुकदेव मुनिका भी शुभागमन हुआ। देवर्षि नारदजीने परम प्रसन्न होकर भगवान् एवं समस्त पार्षदोंकी पूजा की। तदनन्तर सभीने मिलकर भगवान् श्रीकृष्णके आगे 'भगवन्नामसंकीर्तन' किया। इसका वर्णन करते हुए भगवान् वेदव्यास कहते हैं—

> दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं
> ते चक्रिरे कीर्तनमग्रतस्तदा।
> भवो भवान्या कमलासनस्तु
> तत्रागमत् कीर्तनदर्शनाय ॥
> (पाद्मीय श्रीमद्भा० मा० ६ । ८५)

'भगवान्को प्रसन्न देखकर देवर्षिने उन्हें एक विशाल सिंहासनपर बैठा दिया और सब लोग उनके सामने संकीर्तन करने लगे। उस संकीर्तनको देखनेके लिये श्रीपार्वतीजीके साथ श्रीमहादेवजी और श्रीब्रह्माजी भी आये।' इस संकीर्तनमें किसने किस प्रकार भाग लिया, इसे भी देखिये—

> प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
> वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत्।
> इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा
> यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥
> (श्रीमद्भा० मा० ६ । ८६)

'संकीर्तन प्रारम्भ हुआ। प्रह्लादजी तो चञ्चलता (फुर्तीला) होनेके कारण करताल बजाने लगे, उद्धवजीने मंजीरे (झाँझ) ग्रहण किये, देवर्षि नारदजी वीणाकी ध्वनि करने लगे, स्वरविज्ञान (गान-विद्या) में कुशल होनेके कारण अर्जुन राग अलापने लगे, इन्द्रने मृदङ्ग बजाना प्रारम्भ किया, सनकादि मुनिजन बीच-बीचमें जयघोष करने लगे और इन सबके आगे व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी भाँति-भाँतिके सरस अङ्ग-भङ्गीद्वारा संकीर्तनका भाव बताने लगे।' यह थी कीर्तनकी दिव्य झाँकी।

इन सबके बीचमें परमतेजस्वी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नटोंके समान नाचने लगे। ऐसा अलौकिक कीर्तन देखकर भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हो गये और इस प्रकार कहने लगे कि 'मैं तुम्हारी इस कथा और कीर्तनसे बहुत प्रसन्न हूँ, अतः तुमलोग मुझसे कोई वरदान माँगो।' तब उन सबने यही कहा कि समय-समयपर जहाँ भी ऐसी कथा और कीर्तन हो, वहाँ आप इन पार्षदोंके साथ अवश्य पधारें। भगवान् 'तथास्तु' कहकर अन्तर्हित हो गये। श्रद्धा और विश्वासके साथ यदि इस प्रकारसे तल्लीन होकर भगवन्नाम-संकीर्तन किया जाय तो भगवान्के साक्षात् दर्शन हो सकते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। श्रुति-स्मृति-पुराण गीता रामायण और महाभारत आदि सद्ग्रन्थोंमें सर्वत्र हरिनाम-संकीर्तनकी महिमा भरी पड़ी है। श्रीमद्भागवत महापुराणमें 'हरिः सर्वत्र गीयते' कहकर यह बता दिया गया है कि पदे-पदे भगवान् श्रीहरिके गुणगानकी ही प्रधानता है। वस्तुतः श्रीमद्भागवतमें संकीर्तनकी महिमा व्यापक रूपमें प्राप्त है। संकीर्तनका यह आयोजन ऐसे प्रायोगिक रूपको स्पष्ट करता है, जिसे आदर्श मानकर आयोजनपूर्वक सर्वत्र संकीर्तन होना चाहिये। इससे जगत्का महान् कल्याण होगा।

सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं हरेः

(लेखक—आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र कुलपति, कामेश्वरसिंह सं० वि० वि०)

वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि समस्त भारतीय वाङ्मय एवं विश्वके सभी सभ्य देशोंके सत्साहित्य इसको सप्रमाण प्रतिपादित करते हैं कि अभ्युदय और श्रेयःप्राप्तिका भगवत्-प्रसादसे बढ़कर दूसरा कोई सरल साधन या अपने-आपमें सिद्धि नहीं है। भगवान्‌को प्रसन्न करनेका असाधारण कारण है भगवन्नाम-संकीर्तन, जिसका साक्षी है, विवेकी व्यक्तिका अपना ही अनुभव। आप कितने ही क्रुद्ध क्यों न हों, यदि श्रद्धा-भक्तिसे आपको कोई पुकार रहा है तो आप किसी भी परिस्थितिमें आकर उससे मिलते हैं और उसके साथ आत्मीयता स्थापित करते हैं। जब जीवात्माके साथ ऐसी बात है, तब विश्वात्मा परमात्माके साथ यह बात कैसे सत्य न होगी? अतः आराध्यको रिझानेका अद्वितीय साधन है—भजन-संकीर्तन।

संकीर्तन शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक चौरादिक 'कृत संशब्दने' (१०। ११८) धातुसे 'ल्युट्' प्रत्यय करनेपर निष्पन्न होता है[1]। योगरूढ़िसे यह शब्द श्रद्धा-भक्तिपूर्वक आराध्यके गुण-नाम, समुच्चारणरूप अर्थमें प्रसिद्ध है। नवधा भक्तिमें संकीर्तनका दूसरा स्थान है[2]। मानव जब भगवत्प्राप्तिके लिये श्रद्धापूर्वक इन नवधा भक्तियोंके प्रथम सोपान श्रवणसे बढ़ता हुआ क्रमशः नवम सोपान आत्म-समर्पणपर पहुँचता है, तभी उसके जीवन और अध्ययनकी सफलता है[3]।

श्रद्धापूर्वक नाम-संकीर्तनद्वारा भगवान्‌में भक्तियोग ही भूलोकमें मानवका परम धर्म माना गया है। निरन्तर नाम-संकीर्तनसे नाम और नामीमें अभेद होनेके कारण संकीर्तयिताको सर्वत्र भगवान् दीखते हैं, जिससे उनमें एकान्त भक्ति दृढ़ हो जाती है और यही मानवके सबसे बड़े स्वार्थकी सिद्धि है। इसीलिये तो संकीर्तनको हमारे शास्त्र-पुराणोंमें बड़े-से-बड़े कलुषोंका निवारक और जगन्मङ्गल-कारक कहा गया है[5]। इतिहास साक्षी है कि यम-पाशके भयसे त्रस्त म्रियमाण अजामिलके मुखसे नारायणके नामोच्चारणमात्र होनेपर करुणा-वरुणालय नारायणकी असीम कृपासे उसे भगवद्धामकी प्राप्ति हुई[6]। उपचारसे भगवन्नामोच्चारणका जब यह मङ्गलमय

१–सम्पूर्वक 'कृत संशब्दने' (१०। ११८) धातुसे ल्युट्, उपधायाश्च (पा० सू० ७। १। १०१) से इत्व, रपरत्व, उपधायां च (पा० सू० ८। २। ७८) से उपधादीर्घ होकर संकीर्तन बना है।

२–श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ (श्रीमद्भा० ७। ५। २३)

३–इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा। क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥ (श्रीमद्भा० ७। ५। २४)

४–एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः। एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम्॥ (श्रीमद्भा० ७। ७। ५५)

५–तस्मात् संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्। महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम्॥ (श्रीमद्भा० ६। ३। ३१)

६–म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्। अजामिलोऽप्यगाद् धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥ (श्रीमद्भा० ६। २। ४९)

सुपरिणाम होता है, तब श्रद्धा-भक्तिपूर्वक संकीर्तनका सत्फल सहज ही अनुमेय है।

मन्त्र-तन्त्रके द्वारा भी मानवको सिद्धि मिलती है; किंतु मन्त्र-तन्त्रके अनुष्ठानमें विधानका प्रपञ्च जटिल होता है। सविधि अनुष्ठान पुराने समयमें भी अत्यन्त कठिन था, जो आजकल असम्भव-सा हो गया है। दैशिक, कालिक और वास्तविक (वस्तुजन्य) त्रुटियोंके कारण मान्त्रिक-तान्त्रिक अनुष्ठान निर्दोष नहीं हो पाते। फलतः अनुष्ठाता विपरीत परिणामका भागी हो जाता है; परंतु श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवन्नाम-संकीर्तन सब कुछको त्रुटिरहित, निर्दोष बना डालता है और श्रद्धालु भक्त सफल हो जाता है। इसीलिये भागवतकारने आचार्य शुक्रके भावोंको व्यक्त करते हुए कहा है—

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव॥
(श्रीमद्भा० ८। २३। १६)

महर्षि दुर्वासा-जैसे व्यक्तिने भी इस वास्तविकताको स्वीकारा है कि भगवान्‌के नाम-श्रवणमात्रसे जब पुरुष निर्मल-निष्पाप हो जाता है, तब भजन-कीर्तन करनेवाले भक्तजनोंके लिये भगवत्कृपासे क्या प्राप्तव्य अवशिष्ट रह सकता है? यही कारण है कि भगवन्नामोपासनाकी महिमा अनादिकालसे ऋग्वेद,[3] यजुर्वेद,[4] सामवेद,[5] अथर्ववेद,[6] उपनिषद्,[7] महाभारत, पुराण आदिमें बतलायी गयी है।

नाम और नामीमें अभेद होता है। अतः नाम-संकीर्तनसे नामीकी प्रसन्नता निश्चित है। शब्द और अर्थमें तादात्म्य-सम्बन्ध होनेके कारण ही कोई किसीको 'दुरात्मा' कहता है तो श्रोता लड़नेको उद्यत हो जाता है। 'महात्मा' शब्द कहनेपर व्यक्ति प्रसन्न हो जाता है और बहुत कुछ दे देता है, यह विषय प्रत्यक्ष अनुभवगम्य है। अतः भक्ति और श्रद्धापूर्वक भगवन्नाम-संकीर्तनसे करुणासागर विश्वात्मा भगवान् दयार्द्र होकर संकीर्तयिता भक्तका उद्धार करते हैं, इसमें संदेह नहीं।

सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापरमें भगवत्प्राप्तिके अन्यान्य उपाय भी बतलाये गये हैं; परंतु कलियुगमें तो उसके लिये हरिकीर्तन ही अद्वितीय सहज साधन है।[9] अतः कलियुगमें मानवोंके कल्याणके लिये स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

१—नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः। अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत॥ (श्रीमद्भा० ६। ३। २३)

२—यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः। तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते॥ (श्रीमद्भा० ९। ५। १६)

३—मनामहे चारुदेवस्य नाम। (ऋग्वेद १। २४। १)
मर्ता अमर्त्यस्य ते नाम मनामहे॥ (ऋ० ८। ११। ५)

४—यस्य नाम महद्यशः। (यजु० ३२। ३)

५—सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि। (सामवेद २०। ३।४। २)

६—नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे। (अथर्व० २०। १९। ३)

७—नाम उपास्व। छान्दोग्योपनिषद् (७। १। ४)

८—सततं कीर्तयन्तो माम्‌ ......। (गीता ९। १४)

९—कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः। द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

कीर्तन—भगवान्‌की साकार शब्दोपासना

(लेखक—डॉ० श्रीरञ्जनसूरिदेवजी एम्० ए० (प्राकृत, संस्कृत, हिंदी)

कलियुगमें भगवन्नामके जप या कीर्तनको अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। इस संदर्भमें विष्णुपुराणकी 'कलौ केशवकीर्तनात्' उक्ति बार-बार दुहरायी जाती है। इतना ही नहीं, कलिकालमें केवल हरिनामके स्मरण या कीर्तनको ही भौतिक तापसे मुक्तिका एकमात्र उपाय बताया गया है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
(ना० पु०)

कीर्तन वैष्णव-साधनामें वर्णित उपासना-तत्त्वकी सर्वजन-प्रिय और सर्वलोकसुलभ विशिष्ट विकसित विधि है। मन्त्ररूप नामके कीर्तनका विकास ही उपासनाका सार्वजनिक विकास है। भगवान्‌के लोकातिशयी गुणोंका विविधताके साथ राग बनाकर या एकल रूपमें कथन-प्रतिकथन ही 'कीर्तन' या 'संकीर्तन' है। भगवान्‌के नामकीर्तनसे उनके रूप-तादात्म्यका लाभ होता है, साथ ही ईश्वरीय विभूतिका सांनिध्य भी प्राप्त होता है। अखण्डभावसे कीर्तन या भगवद्भजन आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञानका मार्ग प्रशस्त करता है। निरन्तर कीर्तनके अभ्याससे संसारकी मोहासक्ति छूट जाती है और जीव धीरे-धीरे भगवत्स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है।

कीर्तन भगवान्‌की साकार शब्दोपासना है। सामान्य जन प्रायः भौतिक ऐश्वर्यसिद्धि और सुखभोगकी दृष्टिसे कीर्तनके माध्यमसे देवरूपमें भगवान्‌की उपासना करते हैं। यही उपासना चित्त-संस्कारकी निर्मलताकी स्थितिमें क्रमशः ब्रह्मोपासनाके स्तरपर पहुँच जाती है, जहाँ भौतिक सुखभोगकी कामना सर्वथा दग्ध हो जाती है और तभी आत्मदर्शन एवं परामुक्तिको अधिगत करनेकी क्षमता प्राप्त होती है। ऐसी ही स्थितिमें साधक मनुष्य निम्न-स्तरको भेदकर ऊर्ध्वस्तरमें चला जाता है।

कीर्तन भगवान्‌की अलौकिक कृपादृष्टि प्राप्त करनेका लौकिक सुगमतर साधन है। शब्द और मनकी अभेदसिद्धिके लिये कीर्तन अतिशय सशक्त माध्यम है। मन यदि आत्माके चेतनांशसे प्रस्फुटित होता है तो शब्द उसके जडांशसे। संसारमें जड और चेतनका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। दोनोंकी स्थिति एक दूसरेपर निर्भर करती है। शब्दके बिना मनकी तृप्ति या पूर्णता नहीं होती और मनपर पूरा अधिकार प्राप्त किये बिना शब्दकी पूर्णता नहीं होती। इसीलिये उपनिषद्‌की यह मन्त्रवाणी है—**'वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम्।'** इस प्रकार स्पष्ट है कि मनमें एकाग्र प्रतिष्ठासे ही भगवन्नामस्मरणमूलक वाङ्मय या शब्दमय कीर्तनकी पूर्णता प्राप्त होती है। अतएव नामकीर्तन साध्यकी प्राप्तिके लिये विशिष्ट रूपात्मक शाब्दिक साधन है।

कीर्तनमें विष्णु, शिव आदि देवता-विशेषकी देहकल्पना की जाती है; क्योंकि देह-कल्पनाके बिना नामकी कल्पना सम्भव नहीं है। फिर रूपात्मक स्थूल शरीरके भीतर नामात्मक सूक्ष्म शरीर भी है। जब 'नामात्मक' सूक्ष्म शरीरका विकास होता है, तब उसका नामकरण करना होता है। यही भीतरका 'रूप' है। बाह्य रूप मिट सकता है, किंतु आन्तरिक रूप अर्थात् नामका विनाश नहीं हो सकता। इस दृष्टिसे शाश्वत रूपका शाब्दिक या सस्वर स्मरण ही कीर्तन है। शाश्वत या आन्तरिक रूप ही विशुद्ध ज्ञानदेह या आनन्द-देह है। इसलिये नामसे पुकारनेपर देहकी ओरसे उत्तर प्राप्त होता है। इस प्रकार कीर्तन रूपसे नामकी ओर या स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर प्रस्थान करनेका सहजसाध्य माध्यम है।

महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराजजीने अपनी प्रसिद्ध कृति 'स्वसंवेदन' में नामकरणके रहस्यपर विशदतासे प्रकाश डाला है। उनके विवेचनका सार है कि नामके अनुरूप ही भावका संचार होता है, अर्थात् हम जो-जो नाम लेते हैं, उनका भाव उसी रूपमें संचारित होता है और वह भाव उस नामके साथ सम्बद्ध रहता है; जैसे कृष्ण, गोविन्द और मुरारि एक ही देवता हैं, पर कृष्णके 'गोविन्द' नामकी जो शक्ति है, वह शक्ति 'मुरारि' नामकी नहीं है। 'गोविन्द' नामका समग्र भाव उस नामके उच्चारणके साथ उस रूपमें आविर्भूत होता है। जब कृष्ण 'गोविन्द' नामसे उत्तर देंगे, तब उस नामके सारे भावोंसे भूषित होकर ही देंगे। इसलिये कृष्णोपासक कृष्णके जिन नामोंका कीर्तन करें या शिवोपासक शिवके जिन नामोंका उच्चारण करें—सबका उत्तर एकमात्र भगवान् तत्तद्रूपोंमें आविर्भूत होकर देंगे। द्रौपदीने अपने चीर-हरणके समय कृष्णको 'गोविन्द द्वारकावासिन्' कहकर पुकारा था तो कृष्णने द्वारकासे आकर उनकी लाज बचायी थी, ऐसी श्रुति है। इस प्रकार कीर्तन विभिन्न नामोंसे किया जा सकता है; किंतु सबके कीर्तनोंका समाहार एकमात्र परात्पर परब्रह्म भगवान्‌में ही होता है; जैसे प्रार्थनापरक एक श्लोकमें कहा भी गया है—

> **आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।**
> **सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥**
> (प्रपन्नगीता)

शरीरमें प्रतिष्ठित मनके साथ आत्माका संघर्ष या संयोग कीर्तन ही है। मनमें बार-बार यह संघर्ष होनेसे आत्मामें निहित चैतन्यशक्तिका स्फुरण होता है। कीर्तनमें शब्दकी क्रिया मानसिक प्रक्रियामें परिणत हो जाती है, जिससे आत्मा निष्क्रियभाव छोड़कर सक्रिय हो उठता है। अतएव ऐसा कहा जा सकता है कि कीर्तन या नामोच्चारण या मन्त्रजप इन्द्रियों और उनके विषयोंसे सम्बद्ध मनके साथ चैतन्यकी अग्निसे प्रज्वलित था संजीवित आत्माके अप्रत्यक्ष मिलनका प्रत्यक्ष माध्यम है, जो प्रायः आध्यात्मिक किंवा मनोवैज्ञानिक धरातलपर प्रतिष्ठित है।

कीर्तन देवताके नामके एकतान चिन्तनका ही विशिष्ट रूप है। एकनिष्ठ नाम-चिन्तनसे नाम चेतन होता है, अर्थात् नाममें चैतन्यका समावेश होता है। चैतन्य-भावकी गहराईकी स्थितिमें भगवान् काष्ठमय, मृण्मय या पाषाणमय मूर्तिमें आ जाते हैं। कहा भी गया है—

> न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
> भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम् ॥
> (ग० पु०)

चैतन्यभावकी उत्कृष्टताकी दशामें भगवान् कभी-कभी मूर्तिसे बाहर होकर कीर्तन करनेवाले साधकमें प्रविष्ट हो जाते हैं, किंतु इस दिव्यभाव या महाभावका सुलभता तभी सम्भव है, जब साधक कीर्तनके क्षणोंमें दिव्य चक्षुसे सम्पन्न हो उठता है। कीर्तनके भावावेशमें ज्ञानचक्षुके उन्मीलनसे मूर्तिमें भगवान्‌का प्रतिबिम्ब दृष्टिगत हो सकता है। इसलिये कीर्तन भगवत्-साक्षात्कार या भक्त और भगवान्‌के साधारणीकरण या भक्तके मधुमती भूमिकामें प्रस्तुत होनेका माध्यम है।

कीर्तनमें आँख मूँदकर भगवन्नामका उच्चारण करनेसे आत्मा दिव्य-अवस्थामें पहुँचकर ज्योतिर्मय रूपका दर्शन करता है। उसे उस समय सब कुछ आलोकोज्ज्वल प्रतीत होता है। इस अपरोक्ष दर्शनकी स्थितिमें देह-सायुज्य होनेसे द्वैतबोध नहीं रहता। साधक भक्त अभेद-दर्शन या आत्मदर्शन या आत्मदर्शनकी अवस्थामें पहुँच जाता है। इस प्रकार कीर्तनद्वारा साधनाकी सिद्धिकी स्थितिमें समग्र विश्व ही 'मैं'-जैसा प्रतिभासित होता है। यही 'अहं ब्रह्मास्मि' के रूपमें अद्वैत-दर्शन है। इस प्रकारके कीर्तन-साधकोंमें मीरा या महाप्रभु चैतन्य अग्रणी थे, यह वैष्णव सम्प्रदायके भक्तोंमें सर्वविदित है।

कीर्तनमें शब्दोच्चारण या सस्वर नामस्मरणकी प्रधानता रहती है। 'उच्चारण'का अर्थ है—आत्माका ऊर्ध्वोत्थित होना (उत्+चारण)—ऊपरकी ओर चालित होना। आत्माका ऊर्ध्वोत्थान ही चक्रभेदन है। अव्यक्त स्वरसे आत्माको व्यक्त स्वरतक पहुँचाना ही शब्द या मन्त्रसिद्धिका लक्ष्य है। मन्त्रसिद्धि सत्त्व-शुद्धिके बिना नहीं होती और सत्त्वशुद्धि आहारशुद्धिसे होती है। इसलिये वैष्णवागमोंमें सिद्धिके कारणरूपमें प्रसिद्ध सत्त्वशुद्धि कीर्तनकी पूर्णताके लिये भी अनिवार्य है। विशेषकर आधुनिक ध्वनि-प्रदूषणके युगमें तो सत्त्व-शुद्धिके साथ-साथ समग्र बाह्य पर्यावरणकी शुद्धिके लिये कीर्तन अपना प्रासङ्गिक महत्त्व रखता है।

संकीर्तनकी चिरन्तनी कीर्ति

(लेखक—राष्ट्रपतिपुरस्कृत पद्मविभूषण डॉ० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, शास्त्री, आचार्य, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

श्रीभगवान्के पतित-पावन नामों, परमोज्ज्वल गुणों तथा नानाविध ललित लीलाओंका लयके साथ उच्च स्वरसे उच्चारण अति प्राचीनकालसे भारतमें प्रचलित रहा है। ऐसे उच्चारणको संकीर्तन कहा जाता है। एकव्यक्तिनिष्ठ संकीर्तनकी अपेक्षा सामुदायिक संकीर्तनका प्रभाव दिग्दिगन्ततक वातावरणको सात्त्विक बना देता है। सकाम और निष्काम भावसे किये जानेके कारण यह द्विविध है। केवल भगवत्प्रीत्यर्थ अनुष्ठित संकीर्तन सर्वोत्तम है। संस्कृत-वाङ्मयमें संकीर्तनपर विपुल सामग्री उपलब्ध होती है। दिग्दर्शनार्थ कतिपय पङ्क्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं।

वेदोंके मन्त्रभागमें

मैत्रावरुणि वसिष्ठने सम्भवतः सर्वप्रथम भगवान् विष्णुके नाम आदिके संकीर्तनकी ओर संकेत किया था—

'ध्रुवासो अस्य कीरयो जनासः' (ऋग्वेद ७। १००। ४)

'श्रीविष्णुभगवान्के नामादिका कीर्तन करनेवाले भक्तजन ध्रुव अर्थात् स्वरूपस्थ हो जाते हैं।'

उपनिषद्में

श्रीरुद्रहृदयोपनिषद्के सत्रहवें मन्त्रमें भगवान् शंकरके नामादि-कीर्तनसे सर्व-पाप-निवृत्तिका स्पष्ट उल्लेख है—

'कीर्तनाच्छर्वदेवस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते।'

महाभारतमें

महाभारतान्तर्गत श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रके भीष्म-युधिष्ठिर-संवादमें भगवान्के सहस्र नामोंका कीर्तन हुआ है। अतएव भगवान् केशव 'कीर्तनीय' कहे गये हैं—

इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः।
नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम्॥

इस सहस्रनामकी ९२२ वीं संख्यापर 'पुण्य-श्रवण-कीर्तन' नाम आया है। इस नामका अर्थ है कि 'भगवान्के नाम, यश आदिके श्रवण एवं कीर्तन परमपुण्यप्रद हैं।' उक्त स्तोत्रमें यह निर्देश विशदरूपसे हुआ है कि जो व्यक्ति पवित्र एवं भगवन्निष्ठ होकर सदा कीर्तन किया करता है, उसे यश, ज्ञाति-प्राधान्य, अचला सम्पत्ति, अनुत्तम श्रेय, निर्भयता, वीर्य, तेज, नैरुज्य, द्युति, बल, रूप, गुण, बन्धन-मुक्ति, आपद्-विनाश, दुर्गति-निरास, पाप-विशोधन एवं सनातन-ब्रह्मकी प्राप्ति होती है।

पुराणोंमें

१—भक्तिकी अनेक विधाएँ हैं। उनमेंसे भक्त-प्रवर प्रह्लादजीके द्वारा उपदिष्ट नवधा भक्तिकी प्रायः विशेष चर्चा की जाती है। उन नव विधाओंमें द्वितीय है कीर्तन—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
(श्रीमद्भा० ७। ५। २३)

२—श्रीपराशरजीने मैत्रेयको उपदेश देते हुए कहा था कि भगवान् वासुदेवका कीर्तन चाहे जानकर किया जाय अथवा बिना जाने, उससे कर्म-राशिका विलय उसी प्रकार हो जाता है, जिस प्रकार पानीमें नमकका—

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि वासुदेवस्य कीर्तनात्।
तत्सर्वं विलयं याति तोयस्थं लवणं यथा॥
(श्रीविष्णुपुराण ६।८।२)

३—यदि कोई व्यक्ति अवश अथवा परवश होकर भी भगवन्नामोंका कीर्तन किया करता है तो उसके पाप इस प्रकार दूर हो जाते हैं, जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर मृग दूर भाग जाते हैं—

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव॥
(तदेव ६।८।१०)

४—सत्ययुगमें ध्यान करनेसे, त्रेतायुगमें यज्ञानुष्ठानसे और द्वापरमें भगवदर्चनसे जिस सुफलका लाभ होता है वह कलियुगमें भगवान् केशवके कीर्तनमात्रसे मिल जाता है।

५—अच्युत भगवान्का कीर्तन करनेसे यदि पापोंका नाश हो जाता है तो इसमें आश्चर्य क्या?—

'किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते'
(तदेव ६।८।५७)

६—पुराणमणि श्रीमद्भागवत उपनिषदोंके सार-सर्वस्व ब्रह्मसूत्रका अर्थ माना गया है—**'अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणाम्।'** उसमें अनेकत्र कीर्तनकी महिमाका प्रतिपादन हुआ है। इस संदर्भमें सर्वाधिक ज्ञेय-तत्त्व यह है कि महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने अपनी इस दिव्यातिदिव्य रचनाका चरम उद्देश्य नाम-कीर्तन, प्रणामादि ही रखा है—

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥
(श्रीमद्भा० १२।१३।२३)

इस प्रकार सिद्ध होता है कि नाम-संकीर्तनपूर्वक श्रीमद्भगवच्चरणारविन्दयुगलके सम्मुख प्रणाम करना मानव-जीवनका सर्वोत्तम साधन है।

कीर्तनमें अधिकार

नम्रता, सहिष्णुता, निरभिमानता तथा अन्य व्यक्तियोंका सम्मान करनेकी भावनाका होना सभी साधकोंके लिये आवश्यक है। इस विषयमें श्रीचैतन्य-महाप्रभुकी यह उदात्त शिक्षा विश्वविश्रुत है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥
(शिक्षाष्टक ३)

श्याम-संकीर्तन

श्यामकी चर्चा हमारा प्रान है।
श्यामकी चर्चा सुखोंकी खान है।
श्यामकी चर्चा हमारी शान है।
श्यामकी चर्चा हमारा मान है।
श्याम-चर्चा है सुखद हमको परम॥
श्यामकी चर्चा सुनाता जो हमें।
श्यामकी चर्चा बताता जो हमें।
श्याम-परिपाटी सिखाता जो हमें।
श्यामकी रतिमें लगाता जो हमें।
हैं कृतज्ञ सदैव हम उसके परम॥
(श्रद्धेय श्रीभाईजी)

कलियुगके दोषोंसे बचनेका सुगम उपाय—संकीर्तन

(लेखक—श्रीसदानन्दजी द्विवेदी, आयुर्वेदाचार्य, [illegible])

'कीर्तन' शब्द नाम लेकर पुकारनेके अर्थमें 'कॄत—संशब्दने' (धातु-पाठ १०।११८) धातुसे ल्युट् प्रत्यय जोड़नेपर निष्पन्न होता है। आराधकद्वारा अपने आराध्यके नामोच्चारण करने तथा पुकारनेकी क्रियाको 'कीर्तन' कहते हैं। यह क्रिया व्यक्तिगतरूपमें या सामूहिकरूपमें सम्पन्न होती है। सम्यक् रूपसे किया गया कीर्तन ही 'संकीर्तन' कहलाता है। इसमें अपेक्षाकृत तल्लीनताका भाव विशेष होता है। समर्पण-भाव अपनाकर नामों, गुणों, लीलाओं तथा प्रभावोंका चित्रण ही संकीर्तन या भजन कहलाता है। इसमें भावोन्मेष तथा तल्लीनताके लिये वाद्यका योग भी वाञ्छनीय तथा परम्परा-समर्थित है।

तन्मयता एवं समर्पणके परिणामस्वरूप कीर्तन ही संकीर्तन बन जाता है। इसमें ब्रह्मप्राप्तिके लिये बतलाये गये योगमार्ग-सम्बन्धी यम, नियमादि आठ सोपान स्वयं समाहित हैं। प्रभुके नाममें भवबन्धनछेदनकी अपार क्षमता है। वह भवव्याधिकी रामबाण ओषधि है, कलिव्यालके लिये काल है तथा नारकीय यातनाओंसे मुक्ति प्राप्त करनेका साधन है। इससे सहज ही परम लक्ष्यकी प्राप्ति सम्भव है। फलतः संकीर्तनकी साधनोपयोगिता निःसंदिग्ध है। तन्मयताके साथ नामोच्चारणसे प्रभावित होकर परम प्रभु मीराके लिये भेजे गये विषको अमृत बना देते हैं। वे खंभेसे प्रकट होकर भक्त प्रह्लादकी रक्षा करते हैं और बालक ध्रुवको दर्शन देकर ध्रुवलोकमें प्रतिष्ठित करते हैं। इसी प्रकार भरी सभामें वे द्रौपदीकी मर्यादाकी रक्षा करते हैं। वे जाने-अनजाने नामोच्चारण करनेवाले लोगोंकी रक्षाके अनेक उदाहरण हैं। साथ ही पाप-विध्वंसकी अपूर्व क्षमता है हरिनाममें। किसी भी परिस्थितिमें लिया गया प्रभु-नाम मङ्गलकारी ही होता है—

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्।
स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥
(नारद, पूर्व ११।१००-१०१)

'दुष्टचित्तवाले पुरुषोंद्वारा भी स्मरण किये जानेपर श्रीहरि पापोंको वैसे ही नष्ट कर देते हैं, जैसे बिना इच्छाके भी स्पर्श करनेपर आग जला देती है। जिसकी जिह्वाके अग्रभागमें 'हरि' यह दो अक्षरवाला शब्द वास करता है, वह पुनरावृत्तिरहित दुर्लभ विष्णुलोकको प्राप्त करता है।' ऋषियों, आचार्यों एवं संतोंने मुक्तकण्ठसे संकीर्तनको कलिमल-नाशक तथा भवसागरमें निमज्जमान मनुष्योंका उद्धारक स्वीकार किया है। महर्षि वेदव्यासकी रचनाओंमें प्रायः सर्वत्र इसकी पुष्टि की गयी है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
(विष्णुपुराण ६।२।१८)

'जो फल सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ और द्वापरमें देवार्चनसे प्राप्त होता है, वही फल कलियुगमें श्रीकृष्णके नामकीर्तनसे प्राप्त होता है।'

नास्ति नास्ति महाभाग कलिकालसमं युगम्।
स्मरणात् कीर्तनाद् विष्णोः प्राप्यते परमं पदम्॥
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति कलौ वक्ष्यति प्रत्यहम्।
नित्यं यज्ञायुतं पुण्यं तीर्थकोटिसमुद्भवम्॥
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति नित्यं जपति यो जनः।
तस्य प्रीतिः कलौ नित्यं कृष्णस्योपरि वर्धते॥
(स्कन्दपुराण, मा० ३८।४४-४६)

'महाभाग! कलिकालके समान कोई युग नहीं है; क्योंकि इस युगमें विष्णुके स्मरण-कीर्तनसे ही मनुष्य परमपद (मोक्ष) पा लेता है। जो व्यक्ति इस युगमें

कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण नित्य कीर्तन करेगा, उसे प्रतिदिन दस हजार यज्ञों एवं कोटि तीर्थोंका पुण्य प्राप्त होगा। जो मनुष्य प्रतिदिन श्रीकृष्णका कीर्तन करता है, उसका भगवान्‌के प्रति उत्तरोत्तर स्नेह बढता जाता है।' यही क्यों, प्रत्युत वह भगवत्स्वरूप हो जाता है—

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति नित्यं जाग्रत् स्वपंश्च यः।
कीर्तयेन कलौ चैव कृष्णरूपी भवेद्धि सः॥
(स्कन्दपु० द्वा० मा० ३९। १)

'जो व्यक्ति कलियुगमें प्रतिदिन सोते-जागते भगवत्स्मरण करता है, वह कृष्णस्वरूप हो जाता है।' यही तो जीवनका चरम फल है। अकारण करुणा-वरुणालय परमप्रभुकी कृपाके बिना भवसागर पार करना कठिन है। यही कारण है कि जीवन्मुक्त पुरुष भी तदर्थ निरन्तर प्रभुका गुण-गान करते हैं। सहज कृपालु प्रभुके नाम-कीर्तनसे विमुख रहना तो आत्मघात करना है—

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्
भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात्।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्
पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्॥
(श्रीमद्भा० १०। १। ४)

'निवृत्तिमार्गी महापुरुष जिनका निरन्तर गान किया करते हैं, जो भवव्याधिके लिये रामबाण ओषधि हैं तथा सांसारिकतामें निमग्न पुरुषोंके कानों तथा मनोंको भी अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं, ऐसे परमप्रभुके गुणानुवादसे आत्मघाती मनुष्यके अतिरिक्त कौन विरक्त हो सकता है?' संकीर्तन आराधकको आराध्यके निकट ला देता है। चञ्चल मन स्वयं विषयोंसे विरक्त होकर हरिचरणोंमें अनुरक्त हो जाता है। फिर तो भगवद्भक्तिमें आकण्ठमग्न होकर मन भौतिकतासे उपरत हो जाता है। भक्तिकी तुलनामें स्वर्ग एवं मुक्तिको भी वह पसंद नहीं करता। भला, ऐसे भवबन्धन-छेदनमें सुगम साधन संकीर्तनको अपनाकर उससे कोई तृप्त कैसे हो सकता है?

कस्तृप्नुयात् तीर्थपदोऽभिधानात्
सत्रेषु वः सूरिभिरीड्यमानात्।
यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो
भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति॥
(श्रीमद्भा० ३। ५। ११)

'जो भगवत्कीर्तन मनुष्योंके कर्णरन्ध्रमें प्रवेश करके सांसारिक आसक्तियोंका उन्मूलन करता है तथा ऋषियो-मुनियोंकी सभाओंमें त्यागियों एवं विरागियोंद्वारा गाया जाता है, उससे कोई तृप्त कैसे हो सकता है?' संकीर्तनमें कलियुगके भयंकर पापोंको नष्ट करनेकी भी क्षमता है। इसीलिये अन्य युगोंकी अपेक्षा इसकी श्रेष्ठता सिद्ध है। इससे हृदयमें भगवान् प्रतिष्ठित हो जाते हैं। विद्या, जप, प्राणायाम आदिसे हृदय उतना पवित्र नहीं होता, जितना कीर्तनद्वारा हृदयमें प्रभुके बसानेसे होता है—

विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्री-
तीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः।
नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा
यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते॥
(श्रीमद्भा० १२। ३। ४८)

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥
(श्रीमद्भा० १२। ३। ५१)

सत्ययुगमें विष्णुके ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञोंके अनुष्ठानसे और द्वापरमें परिचर्यासे जो सिद्धि होती है, वह कलिमें हरिकीर्तन मात्रसे हो जाती है—

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥
(श्रीमद्भा० १२। ३। ५२)

सिद्धि-प्राप्तिके लिये शास्त्रोंमें यम, नियम, ध्यान-धारणादि अष्ट सोपानोंकी चर्चा है। सफल ध्यानके लिये इनका अभ्यास अपेक्षित होता है। यज्ञादि कर्मकाण्डके लिये वैदिक विधानों एवं अनेक साधनोंकी आवश्यकता पड़ती है। परिचर्या भी सर्वजन-सेव्य नहीं है, किंतु

नामकीर्तन उन सभी आयासों एवं विघ्न-बाधाओंसे मुक्त है। नामोच्चारणमात्रसे परमप्रभुका हृदयमें ध्यान और अन्तरात्मामें अनुभूति होने लगती है। इससे चञ्चल मन भी तन्निष्ठ बनकर शान्तिका अनुभव करने लगता है। विषय-वासनाओंकी निवृत्ति स्वतः हो जाती है। इस प्रकार मानव जीवन्मुक्त होकर लक्ष्य-प्राप्तिमें सफल हो जाता है।

पुराणोंके वक्ता एवं मर्मज्ञ विद्वान् श्रीसूतजीने कलियुगके पापोंके लिये हरिकीर्तनको ब्रह्मास्त्र माना है। विविध नामोंसे पुकारे जानेवाले नारायणको अपने हृदयमें बसाकर भक्त परमशान्ति तथा अनिर्वचनीय आनन्दका अनुभव करता है। हरिभक्ति-सुधा सर्वतोभावसे भक्तकी रक्षा करती है—

कलौ नारायणं देवं यजते यः स धर्मभाक्।
हृदि कृत्वा परं शान्तं जितमेव जगत्त्रयम्॥
दामोदरं हृषीकेशं पुरुहूतं सनातनम्।
कलिकालोरगाद् दंशात् किल्बिषात् कालकूटतः॥
हरिभक्तिसुधां पीत्वा उल्लङ्घ्यो भवति द्विजः॥
(पद्मपुराण, स्वर्ग० ६१। ६-८)

'कलियुगमें जो मनुष्य नारायणका यजन करता है, वही धर्मात्मा है। वह हृदयमें परमशान्त परमेश्वरको स्थापित कर तीनो लोकोंको जीत लेता है। वह मनुष्य हरिकीर्तनरूपी अमृतको पानकर कलिकालरूपी सर्पके काटनेपर भी पापरूप जहरसे बेदाग बच जाता है।' समाजके लिये आदर्श एवं परम पूजनीय ग्रन्थ श्रीरामचरितमानसके रचयिता महान् कवि एवं भक्त गोस्वामी तुलसीदासजीने कलियुगके स्वरूप तथा संकीर्तन एवं नामोच्चारणके सम्बन्धमें मानसमें विस्तारसे वर्णन किया है। उससे कीर्तनकी महिमा सर्वसाधारणकी समझमें सरलतासे आ जाती है।

कलियुगमें निषिद्ध आहार-विहारके कारण मनुष्य तामसी प्रवृत्तियोंका शिकार बन जाता है। वहाँ अपेक्षाकृत अविकसित र्यी तथा कामलोलुप होकर भ्रष्ट आचरण अपना लेता है। वह दुराचारिणी श्रुति-विरोधिनी भावनाओंको अपनाकर अपने कर्तव्योंसे विमुख होकर नरकगामी बन जाता है। ऐसी विषम परिस्थितिमें तथा ऐसे घोर कलि-कालमें भी संकीर्तन मुक्तिका सुन्दर एवं सहज साधन है। प्रभुके गुणानुवादको अपनाकर अधम-से-अधम मनुष्य दिव्यलोकका अधिकारी बन जाता है। इस युगमें कर्म, ज्ञान एवं अन्य भक्ति-साधनको अपनाकर मुक्ति प्राप्त करना बहुत सहज नहीं है। पर हरिका एक राम-नाम भी कीर्तित होनेपर भवसागरमें डूबते हुए मनुष्यका उद्धार कर सकता है—

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥
कलिजुग केवल हरिगुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥
कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥
कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम तें पावहिं लोग॥

जगद्गुरु भगवान् नारायणने स्वयं अपने नाममें विशेष शक्ति स्थापित कर दी है। नामकीर्तनसे परिश्रमके अनुपातमें फलप्राप्ति बहुत अधिक होती है। गोस्वामीजीने रामचरितमानसके बालकाण्डमें अठारहवें दोहेसे सत्ताईसवें दोहेतक नाममहिमाका विस्तारसे वर्णन किया है। अपनी रुचिके अनुसार श्रीराम, श्रीकृष्ण, नारायण तथा सहस्रों नामोंमेंसे किसीको अपनाकर किया गया कीर्तन मनुष्यके लिये निश्चय ही कल्याणकारी होता है।

गोस्वामीजीने तो नामीसे नामकी ही श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। नाम-कीर्तन निराकार-साकारकी भेद-भावनासे भी मुक्त है। वह दोनोंके लिये समान रूपसे व्यवहृत होता है। यही कारण था कि आदिकालमें ही भगवान् शंकरने रामनामके महत्त्वको समझकर उसे हृदयमें बसा लिया था। गणेशजी इसी

नामके प्रभावसे देवताओंमें प्रथम पूज्य बन गये। महर्षि वाल्मीकि नामको अपनाकर दस्युराजसे ऋषिराज बन गये।

कीर्तन कलियुगके दुष्प्रभावोंसे बचाने तथा प्रभुके निकट लानेका साधन तो है ही, अन्य युगोंमें भी इससे भक्तोंका कल्याण होता रहा है। इससे शम्भु अविनाशी बन गये। शुक-सनकादि योगियोंने ब्रह्मसुखका अनुभव किया। नारदने नारायणत्व प्राप्त कर लिया, प्रह्लाद एवं ध्रुवने अपने लक्ष्यको पा लिया तथा पवनसुत हनुमान्‌ने नाम-कीर्तन कर भगवान्‌को अपने वशमें कर लिया। पापी अजामिल, गणिका, गज आदि मुक्तिके भागी बन गये। अर्वाचीन भक्तोंमें मीराबाई, नरसी मेहता, नामदेव, चैतन्य महाप्रभु, तुकड़ोजी महाराज प्रभृति सैकड़ों कीर्तनकार भी भगवान्‌का कीर्तन कर धन्य हो गये हैं। भगवान् दामोदरके नामों तथा गुणोंका कीर्तन ही मङ्गलमय है। वे ही मनुष्य स्वर्ग या मुक्तिके अधिकारी होते हैं, जो निरन्तर शान्त मनसे भगवद्-भजन करते हैं—

इदमेव हि माङ्गल्यमिदमेव धनार्जनम्।
जीवितस्य फलं चैतद् यद् दामोदरकीर्तनम्॥
कीर्तनाद् देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः।
दुरितानि विलीयन्ते तमांसीव दिनोदये॥

(पद्मपुराण, पातालख० ९२। १२-१३)

'भगवान् नारायणका कीर्तन परम मङ्गलप्रद है, वही धनार्जन है तथा जीवनका फल भी वही है। अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुके कीर्तनसे सभी पाप उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जैसे दिन निकलनेपर अन्धकार विलीन हो जाता है।'

भगवान् वेदव्यासने लोककल्याणके निमित्त अनेक ग्रन्थोंकी रचना की; किंतु उन्हें शान्ति नहीं मिली। अन्ततः उन्हें भगवान्‌के गुणानुवादबहुल श्रीमद्भागवतकी रचना करनी पड़ी। उन्होंने प्रभुके नाम-कीर्तन, गुणानुवाद एवं लीलाओंका विस्तारसे वर्णन करके लोक-कल्याण किया और परम शान्तिका अनुभव किया।

कलियुगमें मनुष्यके कल्याणका मुख्यतम साधन श्रीभगवन्नाम-कीर्तनको ही माना गया है। नारदमुनिने भगवान्‌से उनका निवास पूछा तो उन्होंने संकीर्तनमें ही अपना स्थान बतलाया—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

(पद्मपुराण उ० खं० ९४। २१-२२)

'नारद! न तो मै वैकुण्ठमें निवास करता हूँ और न योगियोंके हृदयमें; अपितु मेरे भक्त जहाँ मेरा गुणगान करतेहैं, मै वहीं रहता हूँ।'

कीर्तन वैयक्तिक हो या सामूहिक, दोनों कल्याणकारी है। हमें कलियुगके दुष्प्रभावोंसे बचनेके लिये तथा भगवत्प्राप्तिके लिये उसे अपनानेका प्रयास करना चाहिये। जीवन-यात्राके चरम लक्ष्यको प्राप्त करने तथा भव-बन्धनसे मुक्ति पानेके लिये सचेष्ट रहना मानवका धर्म है। अपनेको भगवान्‌को समर्पित करके हमें अधिक-से-अधिक समय कीर्तनमें लगाना चाहिये। परम कृपालुकी कृपाप्राप्तिके लिये इस युगमें इससे सहज साधन दूसरा नहीं है।

करुणामय रामका भजन

भजिबे लायक, सुखदायक रघुनायक सरिस सरनप्रद दूजो नाहिन।
आनँदभवन, दुखदवन, सोकसमन, रमारमन गुन गनत सिराहिं न॥
आरत, अधम, कुजाति, कुटिल, खल, पतित, सभीत कहूँ जे समाहिं न।
सुमिरत नाम बिबसहूँ बारक पावत सो पद, जहाँ सुर जाहिं न॥
जाके पद-कमल लुब्ध मुनि-मधुकर, बिरत जे परम सुगतिहु लुभाहिं न।
तुलसिदास सठ तेहि न भजसि कस, कारुनीक जो अनाथहिं दाहिन॥

संकीर्तनका नवधा भक्तिमें स्थान और महत्त्व

(लेखक— डॉ० श्रीमिथिलाप्रसादजी त्रिपाठी, वैष्णवभूषण, एम० ए०,
पी-एच्० डी०, साहित्याचार्य, आयुर्वेदरत्न)

महर्षि वेदव्यासने १–श्रवण, २–कीर्तन, ३–स्मरण, ४–पादसेवा, ५–अर्चना, ६–वन्दना, ७–दास्यभाव, ८–सख्य भाव और ९–आत्मनिवेदन—इन नौकी नवधा भक्तिमें गणना की है। इनमें कीर्तनभक्तिका स्थान दूसरा है, जो प्रथमसे अनुक्रान्त है। भक्तिसहित वैखरी वाणीसे भगवद्गुण या भगवन्नामके उच्चारणको कीर्तन कहते हैं। ईश्वरमें परानुरक्ति, परानुभावोंसे विरक्ति या भजन करनेको भक्ति कहते हैं। इस प्रकार भक्ति साधन, भक्त साधक, भगवान् साध्य तथा गुरु साधयिता है। इसीसे नाभादासजीने इनकी एकात्मताका उल्लेख किया है—

भक्त भक्ति भगवन्त गुरु चतुर नाम वपु एक।
इनके पद बंदन किएँ नासत विघ्न अनेक॥
(भक्तमाल १।१)

अतः प्रभु-प्राप्तिके लिये गुरुद्वारा निर्दिष्ट प्रभु-नामका बार-बार उच्चारण करना ही संकीर्तन है। संकीर्तनके नाम, गुण, रूप, लीला, धाम आदि कई भेद हैं। प्रभुकी प्रसन्नता एवं प्राकट्यके लिये संकीर्तनसे उत्तम कोई भी साधन नहीं है। अतः उपरिनिर्दिष्ट नौ प्रकारकी भक्तियोंमें 'कीर्तन' भक्ति सर्वश्रेष्ठ है।

कीर्तनका मुखसे उच्चारण होनेपर कान सुनते रहते हैं, इसलिये प्रभु-नाम एवं गुणोंका 'श्रवण' भी होता रहता है। प्रभुके जिस विग्रहके नाम या गुणका कीर्तन किया जाता है, नामके साथ ही वह स्वरूप स्मरण हो जाता है; अतः स्मरण होना भी स्वाभाविक है। सुनने और पुकारनेकी क्रिया तभी होती है, जब स्मरण होता है। इस प्रकार 'कीर्तन-भक्ति'से श्रवण एवं स्मरण दोनों भक्तियाँ भी हो जाती हैं।

पादसेवा, अर्चना एवं वन्दना—ये तीनों भक्तियाँ भी किसी अंशमें संकीर्तनसे सम्बद्ध हैं। नाम-जपके साथ ये क्रियाएँ स्वयं होने लगती हैं। जिसका गुणश्रवण होता है, उसके प्रति गुणमाहात्म्यासक्ति हो जाती है और सुने हुए गुणोंका स्मरण करते हुए जब कीर्तन प्रारम्भ होता है, तब उनके चरणोंकी सेवा करना, उन्हीं प्रभुकी अर्चना करना तथा वन्दना करना स्वयं चलने लगता है। वन्दना तथा स्तोत्र भी परम श्रेष्ठ हैं, पर नामकीर्तन सुगम है, अर्चनाएँ पादसेवाकी कर्मकाण्डीय प्रस्तुतिसे कई गुना बढ़कर हैं। मन-मन्दिरमें स्थापित प्रभुके दिव्य विग्रहकी 'कीर्तन' द्वारा पूजा करना भी परम श्रेय है।

दास्य-भावना, सख्य-भावना और आत्म-समर्पण-की भावनाका सम्बन्ध अन्तःकरणसे है। कीर्तनमें तल्लीन होकर भक्त अपना समर्पण प्रभुके दासके रूपमें अथवा सखाके रूपमें कर दे। वैसे तुलसीने 'नव महुँ एकउ जिन्ह के होई' कहा है, परंतु कीर्तनकी बात 'दूसरि रति मम कथा प्रसंगा' के लिये सर्वाधिक युक्तिसङ्गत प्रतीत होती है। तुलसीने अध्यात्मरामायणका आश्रय लेकर श्रीरामसे शबरीके लिये नौ प्रकारकी भक्तिका उपदेश कराया है—

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥
(रा० च० मा० ३।३५।८ से ३६।५० तक)

इस क्रममें भी 'कीर्तन'का स्थान दूसरा है। संतोंके सङ्गमें प्रभुके कथाप्रसङ्ग तो चलते ही रहते हैं, उन्हें निरन्तर सुननेमें 'रति' हो जाती है। प्रभुकथामें रति होना ही भक्तिकी श्रेष्ठता है। चित्तके द्रवीभावको ही तो रति कहते हैं। जिनकी कृपासे प्रभु-रति हुई, वे गुरु हैं। संतोंका प्राण 'कीर्तन' है। उन्हें प्रभु प्रिय हैं, उनके 'स्व' हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥
(११।२।४०)

वस्तुतः गोस्वामी तुलसीदासकी नवधा भक्ति व्यासजीके इस श्लोककी व्याख्या एवं अध्यात्मरामायणके नवधा भक्ति-प्रसङ्गका अनुवाद-सा है। भक्त जब स्वप्रियके नामका कीर्तन करने लगता है, तब उसके प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाता है, जिसके फलस्वरूप उसका चित्त द्रवीभूत हो जाता है। यही 'रति' संतोंको अभीष्ट है—

रतिः परा त्वच्चरणारविन्दयोः
स्मृतिः सदा मेऽस्तु तवोपसंगमे।
त्वन्नामसंकीर्तनमेव वाणी
करोतु मे कर्णपुटे त्वदीयम्॥
(अध्यात्मरामायण)

भगवत्कृपा होनेपर वाणी नाम-संकीर्तनमें ही अपनी सफलता मानती है। सुदामा-प्रसङ्गमें भी **'वाणी गुणानुकथने'** पद आधार है। भागवतमें अजामिलके प्रसङ्गमें यमराजका दूतोंके लिये आदेश था कि भगवान्‌के गुण और नामका जिसकी जिह्वाने उच्चारण नहीं किया हो, उसे ही यमलोक ले आना—

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च नो स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥
(श्रीमद्भा० ६।३।२९)

भगवद्गुणानुवाद चौथी भक्ति, भगवन्मन्त्रका जप पाँचवीं और अनेक कर्मोंको छोड़कर भगवान्‌के सत्कर्मोंमें लगना छठी भक्ति है। सबमें ईश्वरका रूप देखना और ईश्वरसे संतकी श्रेष्ठता मानना सातवीं भक्ति है तथा 'यदृच्छालाभसंतुष्टः' आठवीं भक्ति है। नवींमें सरलता एवं निष्कपटतापूर्वक प्रभुपर भरोसा रखना है। इस नवधा भक्तिमें कीर्तनका महत्त्व पहली, दूसरी, चौथी एवं पाँचवींमें विशेष रूपसे है। श्रीमद्भागवतकी नवधा भक्तिमें तीन-तीनके समूह बनाये जा सकते हैं—१—श्रवण, कीर्तन और स्मरण, २—पादसेवन, अर्चन और वन्दन तथा ३—दास्य, सख्य एवं आत्मनिवेदन।

'श्रवनादिक नवभक्ति दृढाहीं' आदिसे गोस्वामीजी भी इसका समर्थन करते हैं। यह क्रम उच्चताकी ओर गतिशील है। श्रवण, कीर्तन और स्मरण सर्वजनसुलभ हैं, परंतु दूसरा क्रम पूर्णतः कायिक उपासनापर आधृत है। दास्य, सख्य और आत्मनिवेदनकी क्रिया मानसिक उपासनाका भेद है। यही समूह तुलसीकी नवधा भक्तिमें भी होता है—

१—संतोंका संग, प्रभुकथामें रति, गुरुसेवा, २—प्रभु-गुणगान, मन्त्रजप, संयम, नियम और अनन्याश्रय तथा ३—सबको प्रभुमय देखना, यथालाभसंतोष, सरल एवं निष्कपटभावसे प्रभुपर भरोसा रखना।

इसमें भी विकासक्रम है। इनमें भी कीर्तन साधन्त व्यापक है। संत-सङ्गमें कीर्तनकी प्रधानता रहती है, वे 'प्रभु-कथा'का निरन्तर गान करते हैं—कथा भी प्रभु-चरित्रका कीर्तन है। 'निरत निरंतर सज्जन धरमा'का अर्थ भी सदा कीर्तन करनेसे है; क्योंकि सज्जनोंका जीवन

रामनाम ही है। हनुमन्नाटकमें 'जीवनं सज्जनानाम्' रामनामको कहा है। तुलसीदासके हनुमान् सज्जनकी कसौटीमें रामनामके कीर्तनको ही मानते हैं। विभीषणको वे तभी सज्जन मानते हैं, जब उसके घरपर धनुष-बाणका चिह्न और तुलसीके पेड़ लगे देखते हैं। लंकामें वे शङ्का करते हैं—'इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।' सोचते ही विभीषणकी नींद टूटती है और—

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥

कीर्तन करते-करते संसारमें प्रभुका स्वरूप दीखने लगता है। इसका वर्णन मैथिल-कोकिल विद्यापतिने यों किया है—

अनुखन माधव माधव सुमिरत सुंदरि भेलि मधाई।
अनुखन राधा राधा रटइत करत बिरह कइ बाधा॥

जिह्वासे सम्बन्ध वाणीका है। जो जीभ प्रभु-गुणोंका गान नहीं करती, वह मेढककी तरह आवाज करनेवाली निरर्थक है—

जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥

प्रभुके सभी नाम मङ्गलकारी हैं। इनके संकीर्तनमें मङ्गल-सृजन होकर भगवत्प्राप्ति होती है। भक्तिके लिये तो नामकीर्तन रागात्मिका वृत्तिका पोषक है। यदि कीर्तनका व्रत ले लिया तो सभी भक्ति स्वयं आ जाती हैं। 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे! हे नाथ नारायण वासुदेव!' का वीणाके स्वरोंमें कीर्तन करनेवाले नारद देवर्षि तथा सर्ववन्द्य हो गये। ज्ञान-वैराग्य नामक भक्तिके दो युवा पुत्र जब मृत हो गये थे, तब नाम-संकीर्तन किया गया था। श्रीमद्भागवतको सुनकर प्रह्लाद, उद्धव, भृग्वादि ऋषियोंद्वारा ताल-लयमें जब कीर्तन प्रारम्भ हुआ, तब प्रेमस्वरूपा भक्ति कीर्तन करती हुई प्रकट हो गयी थी—

भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा
प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत्।
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे
नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती॥
(पद्मपुराणीय भागवतमाहात्म्य)

प्रह्लादको हिरण्यकशिपुने जब ढुण्ढाके साथ जलाया, तब वह कीर्तन करता रहा और नहीं जला। स्वयं प्रह्लादने कहा—

रामनाम जपतां कुतो भयं
सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसंनिधौ
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

उनके लिये हाथी नियुक्त हुए। पर उन हाथियोंके वज्रके समान कठोर दाँतोके टूटनेमें भगवत्कीर्तन हेतु बना—

दन्ता गजानां कुलिशाग्रनिष्ठुराः
शीर्णा यदेते न बलं ममैतत्।
महाविपत्तापविनाशनोऽयं
जनार्दनानुस्मरणानुभावः॥
(विष्णुपुराण)

श्रीहनुमान्ने आराध्य रामका 'श्रीराम जय राम जय जय राम' संकीर्तन कर राक्षसोंको हरा दिया था। इसीको जपकर समर्थरामदासने प्रभु रामका दर्शन कर लिया था। गोपियाँ भी सदा गोविन्दका कीर्तन करती रहती थीं—

उद्गायतीनामरविन्दलोचनं
व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद् ध्वनिः।
दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो
निरस्यते येन दिशाममङ्गलम्॥
(श्रीमद्भा० १०। ४६। ४६)

वे दधि-मन्थनमें अरविन्दलोचनका गान करती थीं।

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।

गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥
(श्रीमद्भा० १० । ४४ । १५)

निरन्तर दैनिक क्रियाओंमें भी भरे कण्ठसे आसुओंकी धार बहाती गोपियाँ ध्यान करती हुई कीर्तन करती थीं। पाप-नाश करनेके लिये भगवत्कीर्तन तो ऋषिलोग भी करते है—

यस्यामलं नृपसदःसु यशोऽधुनापि
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम्
(श्रीमद्भा० नवमस्कन्ध)

राजसभाओं एवं दिक्पालोंके लोकोंमें ऋषिलोग रामका कीर्तन आज भी करते हैं। ईश्वरके प्रति परमानुराग उत्पन्न करनेमें 'कीर्तन' अत्यन्त सहायक है। प्रभु-प्राप्तिमें कीर्तन सर्वाधिक सुगम एवं महत्त्वपूर्ण है। गोस्वामी तुलसीदासने अपने ग्रन्थोंमें पद-पदपर इस बातको दोहराया है और अन्तमें निचोड़ रूपमें कहा है—

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महिमंडित पंडित दाता॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जाकर मन राता॥
नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धान्त नीक तेइ जाना॥
सोइ कवि कोविद सोइ रनधीरा। जो छल छाँड़ि भजइ रघुबीरा॥
अस बिचारि जे तग्य बिरागी। रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी॥

विशेष कर कलियुगमें संकीर्तन ही परम साधक है—

कलिजुग सम जुग आन नहिं जो नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

प्राणिमात्रके लिये प्रभु-भक्तिके निमित्त नाम-संकीर्तन या गुणकीर्तनका अद्वितीय स्थान है। समस्त शुभाशुभ कर्मोंके आदिमें पवित्रता-हेतु नामकीर्तन होता है तथा अन्तमें त्रुटियोंकी पूर्ति-हेतु यही नामकीर्तन किया जाता है। किसी भी धार्मिक कार्यके आरम्भमें—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

—को पढ़कर आचमन एवं मार्जन किया जाता है तथा सबके अन्तमें क्षमा-याचनादेवक—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥

—को पढकर नामकीर्तन द्वारा ही यज्ञपूर्ति होती है। इस प्रकार कीर्तन-भक्ति सर्वाधिक सुगम है।

गोविन्द-गुण-गान

राम नाम मेरे मन बसियो, रसियो राम रिझाऊँ ए माय।
मैं मंद-भागण करम-अभागण, कीरत कैसे गाऊँ ए माय॥ १॥
बिरह-पिंजरकी वाड़ सखी री, उठकर जी हुलसाऊँ ए माय।
मनकूँ मार सजूँ सतगुरसूँ, दुरमत दूर गमाऊँ ए माय॥ २॥
डंको नाम सुरतकी डोरी, कड़ियाँ प्रेम चढ़ाऊँ ए माय।
प्रेमको ढोल बण्यो अति भारी, मगन होय गुण गाऊँ ए माय॥ ३॥
तन करूँ ताल, मन करूँ ढफली, सोती सुरति जगाऊँ ए माय।
निरत करूँ मैं प्रीतम आगे, तो प्रीतम-पद पाऊँ ए माय॥ ४॥
मो अबलापर किरपा कीज्यो, गुण गोविंद का गाऊँ ए माय।
मीराके प्रभु गिरधर नागर, रज चरणन की पाऊँ ए माय॥ ५॥

कलियुगके दोषोंसे बचनेका सरल उपाय—संकीर्तन

(लेखक—श्रीकुबेरनाथजी शुक्ल)

शिष्ट आर्य-परम्पराके अनुसार कलियुगमें धर्म, सदाचार और सद्विचारका ह्रास होता चला जा रहा है। शास्त्रानुसार इसमें केवल एक चरणसे ही धर्म शेष रहता है, सत्त्वगुण क्षीण हो जाता है और तमोगुणकी वृद्धि होती है। तमोगुण मोह, आलस्य एवं प्रमादका जनक है। उससे वासनाओं एवं विविध एषणाओंकी अभिवृद्धि होती है, जिनकी पूर्तिके लिये मानव भगीरथ-प्रयत्न करता है और आकाश-पाताल एक कर देता है। फिर भी उसे आंशिक सफलता ही मिलती है। पर उसकी आकाङ्क्षाएँ उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं और वह राग, द्वेष, कलह एवं संघर्षके भीषण दलदलमें फँसता जाता है। अधिकतर मानव इसी प्रवृत्तिके होते हैं। ऐसे लोगोंके जीवनमें कामिनी और काञ्चनका महत्त्व अधिक बढ़ जाता है। फलतः वे विवेकहीन होकर अधःपतनकी ओर अग्रसर हो जाते हैं और मोह एवं अन्धकारसे आच्छन्न कण्टकाकीर्ण मार्गके पथिक बन जाते हैं। वे प्रकाश एवं आनन्दके मार्गसे दूर होकर अन्धकूपमें भटकते फिरते हैं। उनका जीवन विविध दुःखो एवं चिन्ताओंसे जर्जर हो जाता है और वे नारकीय दुःखाग्निकी प्रचण्ड ज्वालाओंमें झुलसने लगते हैं।

ऐसे दुःख-संतप्त जीवोंके उद्धारके लिये हमारे प्राचीन ऋषियों, मुनियों एवं शास्त्रोंने अनेक उपाय बताये हैं, जिनमें ज्ञान, कर्म, योग एवं भक्ति-मार्ग उल्लेख्य हैं। उनमेंसे किसी भी मार्गका अनुसरण करनेसे मानवका उद्धार हो सकता है; परंतु कलियुगमें ज्ञान, कर्म एवं योगमार्गका आचरण अति कठिन ही है। हाँ, भक्तिमार्ग सरल है और उसका आश्रय लेकर मानव विविध क्लेशोंसे छुटकारा पा सकता है। भक्तिमार्गमें भगवान्‌का पूजन, अर्चन, भजन, गुणगान, कथा-श्रवण, नाम-संकीर्तन, सत्सङ्ग आदि आते हैं, जो सभी उत्तम एवं कल्याणकारी हैं। उनमें भी नाम-संकीर्तन सबसे सरल उपाय है और कलिके दोषोंका निराकरण करनेवाला है। शास्त्रोंमें कहा है—'कलौ केशवकीर्तनात्' ऐसे वचनोंसे संकीर्तनकी उपयोगिता स्पष्ट रूपसे हृदयङ्गम हो जाती है।

अब यह प्रश्न होता है कि 'संकीर्तन कैसे करना चाहिये?' हमारे विचारसे शुद्ध और शान्तचित्त हो एकाकी अथवा अन्य भक्तजनोंके साथ भगवन्नामका संकीर्तन करना चाहिये। उस समय अपनी इन्द्रियों एवं मनको लौकिक पदार्थों तथा बौद्धिक विचिकित्साओं (संशय-संदेह)से दूर कर शुद्ध भावसे भगवान्‌के अभीष्ट स्वरूपका ध्यान करते हुए नामोच्चारण करना चाहिये। उस समय किसी भी लौकिक विषयका निरीक्षण अथवा मानसिक चिन्तन नहीं करना चाहिये। इन्द्रियोंको विषयोंसे रोककर और मनको भगवान्‌की ओर लगाकर विशुद्ध भावसे जो संकीर्तन किया जाता है, वह अतिशय महत्त्वाधायक और कल्याणकारी होता है। संकीर्तनमें भगवान्‌के रूप-गुण-यशके साथ मनका पूर्णतया योग रहना चाहिये।

उस समय विक्षेपोंसे बचना अत्यावश्यक है। मानस-विक्षोभ बड़े प्रबल हैं। बड़ी सतर्कतासे उनका नियन्त्रण करना चाहिये। विषयोंके दूर हो जानेपर शून्य स्थितिमें निद्रा भी आक्रमण करती है, उससे भी बचना है। ध्यानावस्थामें निद्रा-विजयके पश्चात् अन्धकार दृष्टिगोचर होता है। सावहित-चित्त हो शास्त्र-निर्दिष्ट उपायोंसे उसका भी निराकरण करना चाहिये। अन्धकारके बाद

भक्तप्रवर प्रह्लादजी द्वारा संकीर्तनोपदेश

प्रकाश आता है। उसी प्रकाशमें परम मङ्गलमय विशुद्ध-रूप भगवान्‌के दिव्य स्वरूपका ध्यान करते हुए उनके नामोंका पुनः-पुनः उच्चारण करना कल्पवृक्षके समान वाञ्छित फलदायक होता है। उसमें चित्तकी एकाग्रता और निर्मलता नितरां अपेक्षित है।

भगवान् अन्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और दयालु हैं। वे भक्तोंकी पुकारपर तुरंत प्रकट होते हैं; परंतु दीनभावसे शरणागत होकर पुकारनेकी आवश्यकता है। भक्तकी भावना जैसी होगी वैसा ही फल मिलेगा। प्रपत्तिभावसे निष्ठापूर्वक पुकारनेसे भगवान् स्वयं प्रकट होते हैं और मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं; परंतु उसके लिये द्रौपदी और गजेन्द्रकी पुकार तथा प्रह्लाद और ध्रुवकी निष्ठा चाहिये। भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये किसी बाह्य उपकरण अथवा सामग्रीकी आवश्यकता नहीं है। वे तो विशुद्ध प्रेम और भावपर रीझते हैं। संकीर्तनसे विशुद्ध प्रेम और भावका उद्रेक होता है। इसीलिये इसे कलियुगमें उत्तम उपाय बतलाया गया है।

संकीर्तनका मनुष्य-जीवनमें महत्त्व

(लेखक—डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०)

'सम्'पूर्वक कीर्तनका अर्थ है सम्यक् रूपसे भगवन्नामका उच्चारण। कीर्तनकी परम्परा अनादिकालसे भारतीय आस्था एवं जीवनमें अनुस्यूत रही है। आधुनिक विद्वान् ऋग्वेदको विश्वकी सर्वाधिक प्राचीन कृति प्रतिपादित करते हैं। सनातनधर्ममें आस्था रखनेवाले आर्षमतानुयायी विद्वान् वेदको अपौरुषेयरूपमें प्रतिष्ठित कर अपनी मेधाको सुमेधा बनानेका सत्प्रयास करते हैं। इन विद्वानोंके अनुसार वेद विश्वकी समस्त विद्याओंके उत्स हैं। इस दृष्टिकोणको आधार बनाकर जब हम वेदोंपर दृष्टि-निक्षेप करते हैं, तब यह जानकर सुखद आश्चर्यसे विभोर हो उठते हैं कि नवधा-भक्तिका मूल उत्स वेदमें भी है। श्रीमद्भागवतमें नवधा-भक्तिका सुस्पष्ट स्वरूप सर्वप्रथम हमारा ध्यान आकर्षित करता है। भक्तप्रवर प्रह्लादके प्रसङ्गमें नवधा-भक्तिका उल्लेख इस प्रकार उपलब्ध होता है—

> श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
> अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
> (श्रीमद्भा० ७। ५। २३)

भक्तप्रवर प्रह्लादजीने अपने साथी असुर बालकोंको भगवदनुग्रह-प्राप्तिकी दिशामें प्रेरित करते हुए उन्हें उन सर्वव्यापी परमेश्वरको रिझानेके निम्नलिखित नौ उपाय बताये हैं—**१-श्रवण**—भगवान्‌की लीलाओंका श्रवण करना। **२-कीर्तन**—भगवान्‌के विभिन्न लीला-परक नामोंका कीर्तन करना। **३-स्मरण**—उनके नामोंका स्मरण, चिन्तन अथवा जाप करना। **४-पादसेवन**—भगवच्चरणोंकी सेवा करना। **५-अर्चन**—प्रतिमाके माध्यमसे उस जगन्नियन्ताका यथाशक्ति पञ्चोपचार, षोडशोपचार पूजन करना। **६-वन्दन**—भगवान्‌की स्तुति करना। **७-दास्य**—सेवककी भाँति सब कार्य भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही करना। **८-सख्य**—सखाभावसे भगवान्‌की सेवा करना, उनकी लीलाओंमें भाग लेना। **९-आत्म-निवेदन**—अपने-आपको प्रभुके अर्पण कर देना। ये नौ उपाय वास्तवमें नौ सोपान हैं, जिनके सहारे व्यक्ति भगवान्‌के धामतक पहुँचता है—

> यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

नवधा-भक्तिकी श्रेणियाँ क्रमशः एक-दूसरीसे श्रेष्ठतर हैं। व्यक्ति इनपर क्रमशः आरूढ होता हुआ 'मोक्ष' नामक चरम श्रेणीमें जा पहुँचता है। वस्तुतः नवधा-

भक्ति भटके हुए मानवको ईश्वरोन्मुख बनानेका क्रमिक उपाय है। इस उपायका आलम्बन कर जब मानव-मन ईश्वरमें स्थिर हो जाता है, तब 'वेदान्त-सिद्धान्त-मुक्तावली'-का यह कथन उसपर सर्वात्मना घटित हो जाता है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसच्चित्सुखसागरेऽस्मि-
ल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

'जिसका मन उस अपार सच्चिदानन्द-समुद्रस्वरूप परब्रह्ममें लीन हो गया हो, उसका कुल पवित्र हो जाता है, माताका मातृत्व सफल हो जाता है तथा उसके जन्मके कारण पृथ्वी भी पुण्यवती हो जाती है।' नवधा-भक्तिमें कीर्तनको दूसरे स्थानपर रखा गया है जो साभिप्राय है। कीर्तन प्रभुचिन्तनका अभ्यास करानेवाला अमोघ उपाय है। जप-कीर्तनके माध्यमसे व्यक्ति क्या कुछ बन सकता है, इसका प्रमाण देते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

उलटा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भए ब्रह्म समाना॥

भगवान्ने स्वयं अपने श्रीमुखसे स्वीकार किया है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥
(पद्म० ४। २२)

संकीर्तन—सम्यक्तया कीर्तन करनेके कारण इसका महत्त्व बढ़ जायगा। सम्यक्का भाव यहाँ मात्र ठीक ढंगसे करना नहीं है; अपितु संयत होकर करना है। अर्थात् सभी इन्द्रियों और मनको वशमें करके प्रभुकी लीलाओं और गुणोंका कीर्तन करना व्यक्तिके उत्कर्ष-विधानका परम उपाय तो है ही, अंशको अंशीकी संनिधिमें पहुँचाकर विगलित वेद्यान्तरकी स्थितिमें पहुँचानेका अनावृत द्वार भी है। आयुर्वेदमें जिसे ज्वर न हो, जिसे प्रत्यक्ष दीखनेवाला कोई रोग न हो तथा जो अपना कार्य कर रहा हो, उसे पूर्ण स्वस्थ न मानकर स्वस्थकी परिभाषा इस प्रकार दी है—'प्रसन्नात्मेन्द्रियग्रामः स्थिरधीः स्वस्थ उच्यते' अर्थात् जिसकी आत्मा और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ प्रसन्न हों, बुद्धि स्थिर हो, उसे पूर्ण स्वस्थ कहते हैं, न कि उसे जो बाहरी दृष्टिसे स्वस्थ दीखे; पर मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ उसकी अस्थिर, अप्रसन्न और चञ्चल हों। इसी प्रकार कीर्तनमें एकाग्रता आना अनिवार्य है; अन्यथा कीर्तन मात्र दिखावा रह जायगा। नाम-कीर्तनकी महिमा अपूर्व है। पुराणोंके अनुसार नाम-स्मरण, नाम-संकीर्तन परमौषधि है—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

'समस्त रोग नाम-स्मरण अथवा कीर्तनसे निःसंदेह समूल नष्ट हो जाते हैं।' सांसारिक जन रोग और भोगोंके कारण ही प्रायः अस्थिर रहते हैं, अतः संकीर्तनरूपा महौषधिका सेवन कर वे एक ओर रोगोंसे मुक्त हो सकते हैं तथा दूसरी ओर सभी प्रकारकी सुख-सम्पत्तिको पाकर चिन्तामुक्त हो सकते हैं। अतः नवधा-भक्तिमें इसे दूसरा स्थान प्रदान कर नारायणके चिर-सहचर नरका प्रिय सखा, हित-साधक बनाकर प्रस्तुत किया गया है। राम-रक्षास्तोत्रमें नाम-संकीर्तनकी महत्ताका दिग्दर्शन जिस रूपमें कराया गया है, वह अप्रतिम है। बुधकौशिक ऋषि कहते हैं—

भर्जनं भवबीजानां सर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां राम रामेति गर्जनम्॥

रामनामका उच्चस्वरमें संकीर्तन करनेसे समस्त भौतिक विकारोंके बीज उसी प्रकार निस्सार हो जाते हैं जैसे भाड़में भूजनेपर सभी अन्न-बीज निःसत्त्व हो जाते हैं। समस्त सुख और सम्पदाएँ इसके प्रभावसे अनायास उपलब्ध हो जाती हैं और मृत्युके समय निकट

आये हुए यमदूत उच्चरित रामनामको सुनकर इतने भयभीत हो जाते हैं कि वे प्रताड़ित अपराधीकी भाँति दूरसे ही भाग जानेमें अपनी भलाई देखकर वहाँसे भाग निकलते है, अतः नवधा-भक्तिके साथ-साथ जीवनमें भी कीर्तनका महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसके साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि जीवन स्वयं अपूर्णताका पर्याय है । किसी-न-किसी वस्तुका अभाव तो यहाँ बना ही रहता है, साथ ही तप, यज्ञ तथा अन्यान्य क्रियाओंमें भी पूर्ण सावधानी रखनेपर भी अपूर्णता रह जाना स्वाभाविक होता है। उनकी पूर्णता केवल भगवन्नाम-संकीर्तनद्वारा ही सम्भव होती है; अतः इसे दृष्टिमें रखकर कहा गया है—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

कलिकालमें हरिनाम-संकीर्तनका विशेष महत्त्व है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

अर्थात् त्रिवाचापूर्वक नाम-संकीर्तनके महत्त्वको प्रतिपादित कर कहा गया है कि कलिकालमें इसके सिवा कोई गति नहीं है । भाव यह है कि नाम-संकीर्तनकी शरण लेकर ही व्यक्ति कलिके उपद्रवोसे त्राण पा सकता है, अन्यथा नहीं ।

सार-रूपमें कहा जा सकता है कि नवधा-भक्तिमें तो कीर्तनका अन्यतम स्थान है ही, जीवनमें भी इसका अप्रतिम स्थान है । तनकी पवित्रता, मनकी एकाग्रता, वाणीकी शोभा सभीका एकमात्र आधार नाम-संकीर्तन ही है ।

संकीर्तनका स्वरूप, क्षेत्र और महत्त्व

(लेखक—आचार्य श्रीरेवानन्दजी गौड़)

विष्णुसहस्रनामस्तोत्रमें ९२२ वीं संख्यापर भगवान्‌का **'पुण्यश्रवणकीर्तनः'** नाम आता है। इसका शब्दार्थ है—**पुण्यं पुण्यकरं श्रवणं कीर्तनं यास्येति पुण्यश्रवणकीर्तनः** (शां० भा०) । जिसके चरित्रका श्रवण और कीर्तन सदैव कल्याणकारी है; वाच्यार्थमें भगवान्‌के चरित्र, लीला, श्रवण, मनन, ध्यान आदि समस्त क्रियाएँ संकीर्तनका ही रूपान्तर है । यह शब्द **'सम्'** उपसर्गपूर्वक 'कॄत संशब्दने' धातुमें 'ल्युट्' प्रत्यय करनेसे निष्पन्न होता है । **'सा वाग् यया तस्य गुणान् गृणीते'** के अनुसार आराध्यके नाम-रूप-गुण-विषयक वाणीके व्यापारका नाम कीर्तन है ।

नवधा-भक्तिमें कीर्तनका महत्त्वपूर्ण स्थान है । यही भक्तिके भव्य भवनका मेरुदण्ड है । साधककी रागात्मिका वृत्ति ही इसकी आधारशिला है । अनन्य प्रेम इसका तोरणद्वार है । श्रद्धा और विश्वास इसके द्वार-स्तम्भ हैं । भगवान् शंकर इसके सूक्ष्म देह तथा मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं । देवर्षि नारद, जो वीणा बजाते आनन्दमग्न होकर भगवन्नामगुणकीर्तनसे इस आतुर जगत्‌को आनन्दित करते है, इसके आचार्य हैं । चैतन्य महाप्रभुकी मान्यता थी कि मनुष्य अन्न, जल और वायुके बिना भी जीवित रह सकता है, परंतु संकीर्तन बिना नहीं । उनके जीवनकी एकमात्र यही इच्छा रही—'प्रभो ! ऐसा अवसर कब आयेगा, जब मेरे नेत्र तुम्हारे प्रेमामृतसे आप्लावित हो, वाणी गद्‌गद होकर तुम्हारे नाम-रूपका कीर्तन करे और कान श्रवण करे तथा यह चञ्चल मन आत्माराम-स्थितिमें लीन होकर स्तब्ध और शान्त हो जाय'—

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गदगदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ॥

(शिक्षाष्टक ६)

अनन्य प्रेमकी उपासिका व्रजवासिनी गोपियाँ धन्य हैं, जो गौओंको दुहते, धान आदि कूटते, दही बिलोते, आँगन बुहारते, बच्चोंको पालनेमें झुलाते, घरोंको लीपते, उठते-बैठते, सोते-जागते, अहर्निश प्राणप्रियके नाम-गुणोंका प्रेमपूर्ण चित्तसे आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद वाणीमें कीर्तन करती रही हैं—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥
(श्रीमद्भा० १० । ४४ । १५)

श्रीमद्भागवतको हम संकीर्तनपुराण कहें तो अत्युक्ति न होगी । इसके स्वरूपको सुरक्षित रखनेके लिये मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और शरीर—इन चारोंको आराध्यके प्रति समर्पित करना आवश्यक है । मनके अनुकूल अथवा प्रतिकूल घटनासे प्राप्त सुख-दुःखको प्रभुका प्रसाद समझकर स्वीकार करें । हानि-लाभ, यश-अपयश, जय-पराजय, मान-अपमान आदि सभी द्वन्द्वोंमें समत्वबुद्धि रखें, ऐसा करनेपर ही प्रेमी साधक चिन्ता, भय, हर्ष, शोक, राग-द्वेष, काम आदि समस्त विकारोंपर विजय प्राप्त कर सकता है । वह पग-पगपर प्रसन्नता, शान्ति और आनन्दका अनुभव करता हुआ अपने गन्तव्य स्थानतक सहज ही पहुँच सकता है । इसके लिये आवश्यक है कि हम इस स्थितिकी प्राप्तिके लिये मन और इन्द्रियोंको समाहित करके हाथ जोड़कर विनीत भावसे अपने अन्तः-करणमें आराध्यको आरोपित करके तद्रूप और तन्मय होकर चिरकालतक कीर्तन करें—

प्रयतः प्राञ्जलिः प्रह्वः प्रणम्यारोप्य चात्मनि ।
सुचिरं कीर्तयेद् देवं तद्रूपस्तन्मयो भवेत् ॥
(वै० रहस्यम्)

संकीर्तन यदि प्रयागराज है तो प्रीति, प्रतीति और गतिकी त्रिवेणी वहाँ प्रवाहित है । इसमें मानसिक अवगाहनसे साधकके अन्तःकरणमें सात्त्विकता, सरलता, विनम्रता, तन्मयता और बाहरी आडम्बरशून्यता स्वतः पनप जाती हैं । संकीर्तनका सच्चा स्वरूप वर्णन करते हुए स्वयं श्रीभगवान् कहते हैं—'प्रेमी भक्तकी वाणी प्रेमसे गद्गद हो जाती है । उसका चित्त द्रवीभूत होकर धारा-प्रवाहमें बह जाता है; उसकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बहती है । वह कभी आत्मविभोर होकर जोरसे अट्टहास करता है, कभी सामाजिक लज्जाकी परिधिको लाँघकर रोता है, हँसता है, गाता है, नाचता है । वह केवल अपनेको ही नहीं, अपितु तीनों लोकोंको पवित्र कर देता है । मेरी लीलाके श्रवण-कीर्तनमात्रसे उसकी हृदय-ग्रन्थि खुल जाती है । उसके अन्तःकरणके संशय मिट जाते हैं, उसकी बुद्धिका मोह-जाल कट जाता है और उसके मनके मैल धुल जाते हैं'—

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥
(श्रीमद्भा० ११ । १४ । २४)

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥
(श्रीमद्भा० १ । २ । २१)

संकीर्तन-स्वरूपको सुरक्षित रखनेके लिये साधकको चाहिये कि 'वह तृणके समान नम्र स्वभाव धारण करे, वृक्षके समान सांसारिक संतापोंको सहन करे, दूसरोंका सदा मान करे और स्वयं अमानी रहे तथा अनन्यभक्ति-भावसे समर्पित होकर सदा हरिका गुणानुवाद करता रहे'—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥
(शिक्षाष्टक ३)

संकीर्तनकी लोकप्रियताका विशेष कारण है, उसकी सार्वभौमता । चारों वर्ण और आश्रम, पण्डित-मूर्ख, धनी-दरिद्र सभी आस्तिक जनोंके लिये इसका द्वार अनावृत है । औरकी तो बात ही क्या है, स्त्री तथा

अन्त्यजतकका यहाँ अप्रतिहत प्रवेश है। पवित्र या अपवित्र अवस्थामें, सायं या प्रातःकालमें, सावधानी या असावधानीकी स्थितिमें यह सुरुचिकर, सरल और सुलभ साधन है। पवित्र हृदयसे टूटी-फूटी तोतली भाषामें भी किया गया कीर्तन मङ्गलभवन और अमङ्गलहारी है। इससे पापोंका उसी प्रकार नाश होता है, जैसे जलमें पड़ा हुआ नमक गल जाता है—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
प्रयतः कीर्तयेद् भक्त्या सर्वपापहरान् गुणान्॥
एतद्धि सर्ववर्णानामाश्रमाणां च सम्मतम्।
श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि वासुदेवस्य कीर्तनात्।
दुष्कृतं विलयं याति तोयस्थं लवणं यथा॥
(पुराणसर्वस्व)

संकीर्तनका क्षेत्र धर्मक्षेत्र है। इसमें विश्वासका बीज, श्रद्धाकी खाद, आत्मज्योतिका प्रकाश, आस्थाकी करतालिका और प्रेमका जल अपेक्षित है। तभी इसमें भगवत्कृपा अङ्कुरित होती है एवं भगवान्‌की भगवत्ता प्रस्फुटित होती है। इसमें न बाह्य साधनोंकी अपेक्षा है, न स्थानका बन्धन है, न समयका प्रतिबन्ध है, न ज्ञान और न कर्मकी सूक्ष्म मीमांसा है, न विधि-निषेधमयी कर्मकाण्ड-प्रक्रियाकी ही आवश्यकता है—

न देशनियमो राजन् न कालनियमस्तथा।
परं संकीर्तनादेव राम रामेति मुच्यते॥…

अथवा—

तुलसी अपने रामको रीझ भजो या खीज।
भूमि पड़े सो जामिहै उलटो सीधो बीज॥
(दोहावली)

इस क्षेत्रका धरातल अनिर्वचनीय है। वहाँ न कोई बड़ा है न छोटा, न पण्डित है न मूर्ख, न धनी है न दरिद्र, न स्व है न पर, न कोई नाप है न कोई तौल, न गज है न कैंची, न कोई क्रेता है न विक्रेता, न आपाधापी है न छीना-झपटी; वहाँ तो केवल सच्चिदानन्दका साम्राज्य है। वह क्षेत्र सत्य, ज्ञान और प्रेमके प्रकाशसे देदीप्यमान है। वहाँ मैं और मेरा लुप्त हो जाता है; बस तू और तेरा यही नाद गूँजता है।

संकीर्तनके स्वरूप और क्षेत्रके पश्चात् इसका महत्त्व सर्वविदित है। पौराणिक साहित्यमें विशेषतया श्रीमद्भागवत-पुराण इसके महत्त्वका प्रतिपादक ग्रन्थ है। कायिक, वाचिक, मानसिक—त्रिविध तापोंको नष्ट करनेका एकमात्र यही उपाय है। इससे सब रोगोंकी शान्ति, सभी उपद्रवोंका नाश और समस्त अरिष्टोंका उपशमन सम्भव है। कलियुगमें स्वर्ग एवं अपवर्गका यही सरल और सुलभ साधन है। सत्ययुगमें ध्यानयोगसे, त्रेतामें कर्मयोगसे और द्वापरमें पूजा-पाठ-अनुष्ठानसे जिस फलकी उपलब्धि होती है, वह इस युगमें भगवन्नाम-संकीर्तनसे सहज मिल जाता है। नाम-संकीर्तनसे मनुष्य कुसंगसे छूटकर मुक्त हो जाता है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
(विष्णुपुराण)

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥
(श्रीमद्भा० १२। ३। ५२)

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥
(श्रीमद्भा० १२। ३। ५१)

पुराणोंके अनुसार कामी, क्रोधी, लोभी एवं महापातकी मनुष्य भी यदि मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरको आराध्यके प्रति समर्पण करके पवित्र हृदयसे भगवन्नाम-संकीर्तन करता है तो वह शीघ्र ही पवित्र हो जाता है तथा चिन्ता, भय, हर्ष, शोक, राग-द्वेष आदि समस्त विकारोंपर विजय प्राप्त कर लेता है। उसे पद-पदपर प्रसन्नता, शान्ति, आनन्द और आराध्यके दर्शनामृतका पान सुलभ हो जाता है। उसे गङ्गा-यमुना आदि सुरनदियोंमें तथा गया, पुष्कर, प्रयाग आदि तीर्थस्थानोंमें जाकर वह आनन्द नहीं मिलता, जो संकीर्तनसे प्राप्त होता है—

गङ्गास्नानसहस्रेषु पुष्करस्नानकोटिषु ।
यत् पापं विलयं याति स्मृते नश्यति तद्धरौ ॥
न गङ्गा न गया सेतुर्न काशी न च पुष्करम् ।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥
तन्नास्ति कर्मजं लोके वाग्जं मानसमेव वा ।
यत्तु न क्षीयते पापं कलौ केशवकीर्तनात् ॥
सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
शान्तिदं सर्वावस्थानां हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥

वस्तुतः संकीर्तनका महत्त्व अपार है। गीता आदिमें भगवान् स्वयं इसके महत्त्वको स्वीकार करते हुए कहते हैं—'मैं वैकुण्ठमें नहीं रहता, योगियोंके हृदयमें भी नहीं रहता, उच्चकुलीन और धनवान्के घरोंमें भी मेरा मन नहीं लगता। मैं बिना बुलाये वहाँ पहुँचता हूँ, जहाँ मेरे भक्त अनन्यप्रेमसे मेरा कीर्तन करते हैं। मैं उन्हींका योग-क्षेम वहन करता हूँ'—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

शिवके नाम एवं रूपके श्रवण-कीर्तनकी परम्परा

(लेखिका—डॉ० (कु०) कृष्णा गुप्ता, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

शैवमतके प्रतिपादक पुराणागमादि ग्रन्थोंमें भगवान् शिवके अनेक नाम प्राप्त होते हैं। इनमें पाँच नाम विशेष प्रमुख हैं—ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात। भक्त भगवान्के कृत्य, गुण और रूपसे विभक्त उन्हें अनेक नामोंसे अलंकृत करता है। शिवके नामोंका इतिहास भी उनकी अनेक क्रीडाओं एवं गुणोंसे जुड़ा हुआ है। समस्त जगत्के स्वामी होनेके कारण शिव ईशान तथा निन्दित कर्म करनेवालेको शुद्ध करनेके कारण अघोर कहलाते हैं। उनकी स्थिति आत्मामें लभ्य है, अतः वे तत्पुरुष और विकारोंको नष्ट करनेके कारण वामदेव तथा बालकके सदृश परम स्वच्छ और निर्विकार होनेके कारण सद्योजात कहलाते हैं। (देखिये शतरुद्रिय, महाभारत १३। १९की लक्ष्मीव्याख्या, लिङ्गपुराणकी गणे० टीका तथा कल्याणका मत्स्यपुराणाङ्क खण्ड—१) इसी प्रकार ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सभी जीव पशु माने गये हैं, अतः उनको अज्ञानसे बचानेके कारण वे पशुपति कहलाते हैं—

य ईशे पशुपतिः पशूनां
चतुष्पदामुत यो द्विपदाम् ।
निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु
रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम् ॥
(अथर्ववेद २। ३४। १, ५। २४। १२, २२। ११, और ६। ९ आदि)

शिवका एक नाम 'महाभिषक्' भी है, जो उपासकोंमें अत्यन्त प्रिय रहा है। लोकप्रिय देवताके रूपमें प्रत्यक्ष शक्ति और देवत्वके उत्कर्षके कारण 'महादेव' नामसे उनकी निरन्तर उपासना होती रही है। 'सहस्राक्ष' नाम उनकी प्रभुताका द्योतक है—

अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥
(अथर्ववेद ११। २। ७)

प्रणवस्वरूप चन्द्रशेखर शिव महामान्य, परमपवित्र और परमाराध्य हैं। उन्हें पुष्टिवर्धन भी कहा जाता है। यह नाम पुष्टि, पोषण और तदनुग्रह-शक्तिका द्योतक है। शिव अशुभको दूरकर मुक्ति प्रदान करते हैं। वे नीलग्रीवी, नीलशिखण्डी, त्र्यम्बक्, कृत्तिवासा, गिरित्र, गिरिचर, गिरिशय, क्षेत्रपति और वणिक् आदि अनेक नामोंसे भी अभिहित किये गये हैं।

शिवको उनके गुणोंके कारण मृत्युंजय, त्रिनेत्र, पञ्चवक्त्र, खण्डपरशु, गङ्गाधर, महेश्वर, आदिनाथ,

कपाली, पिनाकधारी, उमापति, शम्भु और भूतेश भी कहा गया है। वे प्रमथाधिप, विष्णु, पितामह आदि नामोंसे भी विख्यात हैं। अमरकोशमें शिवके अनेक नामोंके साथ शूली, ईश्वर, शंकर, मृड, श्रीकण्ठ, शितिकण्ठ, विरूपाक्ष, धूर्जटि, नीललोहित, स्मरहर, व्योमकेश, स्थाणु, त्रिपुरान्तक, भावुक, भाविक, भव्य, कुशलक्षेम आदि नामोंका उल्लेख है। शिवके नामोंकी पृष्ठभूमिमें उनके रूप, गुण, धाम, वाहन, आयुध आदिको स्मरण रखा गया है।

नाम नामीतक पहुँचनेका प्रबल साधन है। नामसे साध्यके गुणका परिचय मिलता है और साधक सद्गुणी हो जाता है। इसीलिये नामके जापका महत्त्व है। नामको कल्पवृक्ष कहा गया है—'नाम कामतरु काल कराला।' (रामचरितमानस, बाल० २६। ३) नामके सदृश ही शिवके रूपका वर्णन वैदिक और उत्तर वैदिक साहित्यमें उपलब्ध होता है। शिव ज्ञान और क्रिया-रूप होनेसे विश्वरूप एवं बोधरूप हैं तथा साधकके संकल्पके कारण उनका सांकल्पिक रूप भी माना जाता है। उनकी आकृति, वर्ण, हस्त, आयुध एवं वाहन आदि संकल्पभेदसे भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। शिवके निराकार और साकार दोनो ही स्वरूप साधकोंको प्रिय रहे हैं।

शिवपुराणमें शिवके निराकार एवं विराट् रूपका भी वर्णन मिलता है। शिवका एक नाम अष्टमूर्ति है। इन अष्टमूर्तियोंके नाम इस प्रकार हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव तथा ईशान। ये अष्टमूर्तियाँ क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य, चन्द्रमाको अधिष्ठित किये हुए हैं। इनसे समस्त चराचरका बोध होता है।

परात्पर ब्रह्मकी पाँच कलाएँ है—आनन्द, विज्ञान, मन, प्राण और वाक्। इन कलाओंके आधारपर शिवके पाँच रूप माने गये हैं। आनन्दमय रूपकी मृत्युञ्जय नामसे उपासना होती है। इसीसे शिव 'मृत्युञ्जय' कहलाते हैं। शिव विज्ञान-कलाके अधिष्ठाता हैं, इसीसे ये दक्षिणामूर्तिके नामसे जाने जाते हैं। विज्ञानका आधार वर्णमातृका है, अतः दक्षिणामूर्ति वर्णमातृकापर प्रतिष्ठित मानी गयी है। तीसरी मनोमय कलाके अधिष्ठाता कामेश्वर शिव हैं। यह मूर्ति तन्त्रोंमें रक्तवर्ण मानी गयी है। समयमार्गी तान्त्रिकोंमें कामेश्वर-मूर्तिकी उपासना प्रसिद्ध है। पशुपति, नीललोहित आदि नामोंमें शिवकी प्राणमयी मूर्तिकी उपासना होती है। यह मूर्ति पञ्चमुखी है। पाँचवीं कला 'वाक्' या 'भूतेश' नामसे उपास्य है। वाक्, अन्न और भूत—ये शब्द एक ही अर्थके बोधक है। 'भूतेश' शिव अष्टमूर्ति माने जाते है।

निराकारके अतिरिक्त शिवका साकार रूप भी मिलता है। इस रूपमें शिव भयंकर एवं सौम्य—दोनों रूपोंमें मिलते है। भयंकर रूपके अन्तर्गत शिवका 'कपाली' रूप उत्तर वैदिक साहित्यमें प्राप्त होता है। इस रूपका विस्तृत विवरण पुराणोंमें है। शिव कराल 'रुद्र' हैं। उनके इस रूपकी आकृति भयावह है। उनकी जिह्वा और दंष्ट्र बाहर निकली हुई है। वे भीषण है। वे वस्त्रविहीन हैं, इसीसे उनको 'दिगम्बर' की उपाधि मिली है। उनके समस्त शरीरपर भस्मका अवलेप किया हुआ है, अतः उनको 'भस्मनाथ' कहा गया है। ऐसी आकृति और वेशभूषामें वे हाथमें कपालका कमण्डलु लिये विचरते हैं। उनके गलेमें नरमुण्डमाला है। यह नरमुण्डमाला उनके कपालित्वको और अधिक व्यक्त करती है। श्मशान उनकी प्रिय विहारभूमि है।

शिवकी त्रिमूर्तिमें गणनाके समय उन्हें विश्वका स्रष्टा, पालनकर्ता और संहारकर्ता माना जाने लगा। संहार-कर्ताके रूपमें उनका उग्र या 'रुद्र' रूप सामने आता था। उनको उग्र रूपमें क्रूर, भयावह एवं विनाशकारी देवता माना गया। इस रूपमें उन्हे चण्ड, भैरव, विरूपाक्ष, महाकाल आदि उपाधियाँ प्रदान की गयीं।

मत्स्यपुराणमें इस रूपमें शिवको रक्तवर्ण, क्षपण, भीम और साक्षात् 'मृत्यु' कहा गया है। इस रूपमें उनके अनुचर दानव, दैत्य, यक्ष और गन्धर्व रहते हैं। ब्रह्माण्डपुराणमें आता है कि शिवने अपने गणोंकी सृष्टि स्वयं की थी और वे शिवके अनुरूप ही हैं। अपने इस उग्र रूपमें शिव विश्वसंहर्ता होनेके साथ देवताओं और मनुष्योंके शत्रुओंके संहारक भी हैं।

उग्र रूपके साथ-साथ उत्तरवैदिक साहित्य एवं पुराणोंमें शिवके सौम्य रूपका भी उल्लेख किया गया है। इस रूपमें उनकी कल्पना सतत मानव-जातिके कल्याणकारी और भक्तानुरूपी देवताके रूपमें की गयी है। वे नटराज हैं, पार्वतीके पति हैं, अर्धनारीश्वर हैं। इस सौम्य स्वरूपके अन्तर्गत ही उनकी उमा-महेश्वर, कल्याणसुन्दर, वृषवाहन, लिङ्गमूर्ति, अर्धनारीश्वर, हरिहर, नटराज एवं वीणाधर आदि शिव-मूर्तियाँ उपासकोंद्वारा निर्मित करायी गयीं। भक्तोंने शिवके नाम और गुणोंके साथ उनके रूपका भी श्रवण-कीर्तन किया। श्रवण-कीर्तनमें शिवके नामके साथ उनका स्वरूप भक्तोंके नेत्रोंके सम्मुख आकर हृदयमें अङ्कित हो जाता है और वह उनसे पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

भगवान्‌के सौन्दर्य-सार-सर्वस्व रूप, नाम, लीला आदिका वर्णन श्रुति-शास्त्रोंका एकमात्र लक्ष्य रहा है। उपासक उसी विग्रहके चरणोंका चिन्तन करता रहा है। यह विग्रह ही भक्त और भगवान्‌के सामीप्यको प्राप्त करनेके लिये सेतु रहा है। शिवके नाम-रूपका श्रवण-कीर्तन शैव मतावलम्बियोंका प्रमुख धर्म रहा है। शिवपुराण-(रुद्रसंहिता, सतीखण्ड, अ० २१-२३) में भक्तिके इन साधनोंके महत्त्वका वर्णन किया गया है। मध्यकालीन कवियोंने शिवके गुण और रूपके श्रवण-कीर्तनको मान्यता देकर शैवमतके प्रभावका परिचय दिया है। कृष्णभक्त नन्ददास शिवके नामका गान करते हुए कहते हैं—

गंगाधर हर शूलधर ससिधर शंकर धाम।
शर्व शंभु शिव भीम भव भर्ग कामरिपु नाम॥
त्रिनयन त्र्यंबक त्रिपुर-अरि ईश उमापति सोइ।
जटा पिनाकी धूर्जटी नीलकंठ महु मोइ॥

(नन्ददास-ग्रन्थावली, पृ०८०)

गोस्वामी तुलसीदासने अपने आराध्यदेव श्रीरामकी भक्ति प्राप्त करनेके लिये शिवकी स्तुति की है। उन्होंने शिवका गुणगान करते समय उनके अनेक नामोंका उल्लेख किया है—

अहि-भूषन दूषन-रिपु-सेवक देव-देव त्रिपुरारी।
मोह-निहार-दिवाकर संकर सरन-सोक-भयहारी॥

(विनयपत्रिका पद ९)

संगीतज्ञ तानसेन भी शिवके नामको एकमात्र आधार मानकर कहते हैं—

महादेव आदिदेव देवादेव महेश्वर ईश्वर हर
नीलकंठ गिरिजापति कैलासपति शिवशंकर
भोलानाथ गंगाधर

(हिंदीके संगीतज्ञ कवि, पृ०८७)

शिवके अनेक नामोंकी पृष्ठभूमिमें उनके गुण और रूपको स्मरण रखना आवश्यक है। शिवके नाम, गुण, लीला आदिका श्रवण-कीर्तन शिव-भक्तिके प्रमुख साधन माने गये हैं। शिवपुराणमें श्रवण-कीर्तन आदि भक्तिके अङ्गोंका महत्त्व वर्णित है। भक्ति-काव्यमें शिवके अनेक नामोंका उल्लेख शैव भक्तिका परिणाम ही दर्शाता है। शिवके ये नाम वैदिक, उत्तरवैदिक साहित्यमें प्रतिपादित शिव-नामोंकी परम्परासे ही अपना लिये गये हैं। शिवके इन नामोंकी पृष्ठभूमिमें उनके अनेक गुणोंका विवरण मिलता है। महाकवि तुलसीदास शिवके गुणोंसे प्रभावित होकर कहते हैं—

शंकरं शंप्रदं सज्जनानंददं शैल-कन्या-वरं परमरम्यं।
काममद-मोचनं तामरस-लोचनं वामदेवं भजे भावगम्यं॥
लोकनाथं, सोक-शूलनिर्मूलिनं शूलिनं मोह-तम-भूरि-भानुं।
कालकालं, कलातीतमजरं हरं कठिन-कलिकाल-कानन-कृशानुं॥

तडागमज्ञान-पाथोधि-घटसंभवं, सर्वगं, सर्वसौभाग्यमूलं।
प्रचुर-भव-भञ्जनं, प्रणत-जन-रञ्जनं, दास तुलसी शरणसानुकूलं॥
(विनयपत्रिका पद १२)

नाम और गुणोंके श्रवण-कीर्तनके साथ ही शिवके स्वरूपका भी सुन्दर वर्णन महाकवि तुलसीदासने किया है—

कंबु-कुंदेंदु-कर्पूर-विग्रह रुचिर,
तरुण रवि कोटि तनु तेज भ्राजै।
भस्म सर्वांग अर्धांग शैलात्मजा,
व्याल-नृकपाल माला विराजै॥
मौलिसंकुल जटा-मुकुट, विद्युच्छटा
तटिनि-वर-वारि हरिचरण पूतं।
श्रवण कुंडल, गरल कंठ, करुणाकंद
सच्चिदानंद वंदेऽवधूतं॥
(विनयपत्रिका पद १०)

तानसेन शिवसे नाद-विद्या माँगते हुए उनके रूपका इस प्रकार चित्रण करते हैं—

'रूप बहुरूप भयानक बाघंबर
अंबर खापर त्रिसूल कर,
तानसेन को प्रभु दीने नाद विद्या
संगत सौं गाऊँ बजाऊँ बीन कर धर॥'

शैव ग्रन्थोंके अतिरिक्त वैष्णव भक्ति-धारासे सम्बद्ध साहित्योंमें विष्णुके नाम, गुण एवं रूपके श्रवण-कीर्तनको भक्तिका अङ्ग माननेके साथ-साथ शिवके नाम एवं रूपके श्रवण-कीर्तनको भी भक्तिका अङ्ग माना गया है। इन वैष्णव भक्तोंने शिवको मनोवाञ्छित फल-प्रदाता माना है और राम एवं कृष्णकी भक्तिमें रहनेके लिये शिवसे वरदान माँगा है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शिवके नाम एवं स्वरूपकी महिमासे वैष्णव भक्त भी भलीभाँति परिचित रहे और उनपर भी शैवमतका प्रभाव रहा।

भगवान्के नाम, रूप, गुण और लीलाके संकीर्तनका महत्त्व

(लेखक—श्रीअतरसिंहजी दाँगी, एम्० ए०)

एक अक्षरब्रह्म ही राम, कृष्ण, गणेश, शिव, दुर्गा आदि सगुण ब्रह्मके रूपमें विवर्तित दीखता है। बीजाक्षरोंकी भिन्नतासे ही रूप-भिन्नता है। जैसे—**'गं'** तत्त्वका साकाररूप गणेश, **'दुं'** का दुर्गा और **'रां'** का राम है। सगुण रूप और नामका वाच्य-वाचक-भाव सम्बन्ध है। सगुण रूपकी क्रिया ही लीला है और उसका आश्रय ही 'धाम' है। अतः परमेश्वरके नाम, रूप, गुण, लीला आदि सभी नित्य और सत्य हैं। इस सत्यकी प्राप्तिका साधन उनका जप, ध्यान, संकीर्तन आदि हैं।

नाम-संकीर्तन—'नाम'की सुगमता एवं सर्वग्राह्यताके कारण 'नाम-संकीर्तन' साधना-सिद्धिकी प्रथम सीढ़ी है। नाम साधना भी है और साध्य भी। दिव्यद्रष्टा मनीषियोंने नामजप-संकीर्तन-साधनाद्वारा 'नाम-ब्रह्म'का प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया। उन्हें इस सम्पूर्ण जगत्में एकमात्र 'सत्य-तत्त्व' के रूपमें 'नाम' ही दृष्टिगोचर हुआ था—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मायामयं जगत्।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं हरेर्नामैव केवलम्॥

ऋषि-महर्षियोंने पृथ्वीपर विद्यमान अमूल्य 'भगवन्नामों'-को नाम-मालाओं एवं सहस्रनामोंमें छन्दोबद्ध कर उन्हें संकीर्तनीय रूप दिया। यह उनका महान् कार्य था। आनन्दरामायणादिप्रोक्त नामसंकीर्तन-धुनोंका उपयोग आज भी बड़ी श्रद्धासे होता है—

श्रियं रामं जयं रामं द्विर्जयं राममीरयेत्।
त्रयोदशाक्षरो मन्त्रः सर्वसिद्धिकरः स्मृतः॥

'श्रीराम जय राम जय जय राम'—तेरह अक्षरोंके इस महामन्त्रके संकीर्तनसे सभी कार्योंकी सिद्धि होती है।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस षोडश नाम-महामन्त्रके जप-संकीर्तनसे महापातकोंकी निवृत्ति, मोक्ष-प्राप्ति एवं कलिजनित बाधाएँ दूर होती है।

राम नारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन।
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन॥

ब्रह्मवैवर्तपुराण (१११।१९) के अनुसार इन एकादश नामोंका जप-कीर्तन करनेवाला व्यक्ति करोड़ों जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसी प्रकारकी और भी नाम-संकीर्तनधुन पुराणोंमें प्राप्त हैं, जो वहीं द्रष्टव्य हैं। आयु दिनोंदिन घटती जा रही है। पता नहीं कि मृत्यु कब आ जाय! अतः मृत्यु-मुखमें पड़नेके पहले ही हमें नाम-जप एवं संकीर्तनका अभ्यास कर लेना चाहिये—

निःश्वासे न हि विश्वासः कदा रुद्धो भविष्यति।
कीर्तनीयमतो बाल्याद्धरेर्नामैव केवलम्॥

'इन श्वास-प्रश्वासोंका कोई विश्वास नहीं कि कब रुक जायँ। अतः बचपनसे ही एकमात्र हरिनाम-संकीर्तनका अभ्यास प्रारम्भ कर देना चाहिये।' नाम-जप-संकीर्तनमें देश-काल आदिका कोई बन्धन नहीं है। उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते—सभी अवस्थाओंमें भगवन्नामका भजन किया जा सकता है। सभी अवस्थाओंमें अखण्ड भगवन्नाम-जप-संकीर्तन करनेवाला साधक स्वयंसिद्ध है। ऐसे भक्तसे प्रभावित होकर भगवान् श्रीकृष्ण उसे स्वयं भी बार-बार प्रणाम करते हैं—

गायन्ति रामनामानि सततं ये जना भुवि।
नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यः पुनः पुनः॥
(आदिपुराण)

'जो मनुष्य इस भूतलपर निरन्तर राम-नाम-कीर्तन-भजन करते हैं, उन्हें मेरा बार-बार नमस्कार है।' ऐसे अमोघ महामहिम राम-नामके सतत भजनद्वारा ही भक्तराज हनुमान्ने भगवान्को वशमें कर लिया है—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
(मानस)

भगवन्नाम-संकीर्तनद्वारा अनेक आर्त भक्तोंके संकट दूर हुए, अर्थार्थियोंकी कामनाएँ पूरी हुईं, जिज्ञासुओंको तृप्ति हुई एवं ज्ञानियोंको साक्षात्कार हुआ। कीर्तनसे परलोकमें दिव्य धामकी प्राप्ति होती है। इसलिये कहा गया है—

राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥
(मानस)

अतः हमें नाम-संकीर्तनको ही साधनके रूपमें ग्रहण करना चाहिये।

रूप-संकीर्तन—'नाम-संकीर्तन'की भाँति 'रूप-संकीर्तन' या ध्यान-निरूपण भी साधनाकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीनकालसे ही प्रचारित-प्रसारित है। विभिन्न देवी-देवताओं एवं ईश्वरकी उपासनाके प्रारम्भमें जो ध्यान-श्लोक दिये जाते हैं, वे ही 'रूप-संकीर्तन'के प्रचारक हैं। इनसे 'रूप-संकीर्तन'की प्राचीनता भी सिद्ध होती है। 'रूप-संकीर्तन'में ध्यानकी प्रधानता है। पुराणादि प्राचीन साहित्यके अतिरिक्त आधुनिक संत कवि गोस्वामी तुलसीदास आदिकी रचनाओंमें भी 'रूप-संकीर्तन'का सुन्दर वर्णन हुआ है—

नील सरोरुह नीलमनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥

सरद मयंक बदन छबि सींवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥
नव अंबुज अंबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावँती जी की॥
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा॥

तड़ित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि ।
नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भँवर छबि छीनि ॥
(मानस, बाल० १४६-४७)

इस प्रकारके 'रूप-संकीर्तन' का महत्त्व तथा फल 'नाम-संकीर्तन'-जैसा ही है । रूपप्राप्ति परम फल है—

सब साधन कर सुफल सुहावा । लखन राम सिय दरसनु पावा ॥

वैसे भगवान्के नाम और रूप—दोनों अभिन्न हैं—

नामचिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः ।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नात्मा नामनामिनः ॥

अतः रूप-संकीर्तन-प्रेमियोंको अपने अभीष्ट ईश्वरके रूपका ध्यान एवं संकीर्तन करते रहना चाहिये । फलतः चित्तस्थित भगवान् साधकके कलिजनित सभी दोषों एवं बाधाओंको दूर करते रहेंगे—

पुंसां कलिकृतान् दोषान् द्रव्यदेशात्मसम्भवान् ।
सर्वान् हरति चित्तस्थो भगवान् पुरुषोत्तमः ॥
(श्रीमद्भा० १२ । ३ । ४५)

परंतु ध्यान रहे 'संकीर्तन'में मन, वाणी और शरीर—तीनोंकी एकतानता हो जानी चाहिये । फिर तो 'रूप'-का प्रत्यक्ष दर्शन भी सुलभ हो सकता है । 'संकीर्तन'की भाव-प्रगाढ़तामें मानस-पटलपर अङ्कित चित्र सजीव हो जायगा ।

गुण-संकीर्तन—प्राचीनकालके 'गुण-संकीर्तन' का स्वरूप पुराण आदि ग्रन्थोंमें प्राप्त विविध स्तोत्रोंमें देखनेमें मिलता है । गुण-संकीर्तनकी परम्परा प्राचीन तो है ही, साथ ही इसकी महत्तासे सभी विद्वान् परिचित भी हैं । गुण-संकीर्तन [illegible] है, अतः आर्त एवं अर्थार्थी [illegible] इसका अधिक उपयोग होता है । [illegible] गुण-संकीर्तन (स्तुति) [illegible] नहीं होते; क्योंकि भगवान् [illegible] हैं—

[illegible]
[illegible]
([illegible])

भिन्न-भिन्न ईशोंमें उनके अपने-अपने विशेष गुण संनिहित हैं; वे ही स्तुतियों एवं गुण-संकीर्तनके आधार है; जैसे भगवान् राममें सर्वव्यापकता, शरण्यता, कारुण्यता आदि विशेष गुणोंकी अधिकता है—

भरणः पोषणाधारः शरण्यः सर्वव्यापकः ।
करुणः षड्गुणैः पूर्णो रामो हि भगवान् स्वयम् ॥

अतः ये ही गुण भगवान् रामके गुण-संकीर्तनके आधारस्तम्भ हैं । भगवद्-गुण-संकीर्तनसे साधकमें भगवद्गुणोंकी वृद्धि होना स्वाभाविक है और इस प्रकार सभक्ति गुण-संकीर्तनद्वारा चित्तशुद्धिपूर्वक मोक्षप्राप्ति हो जाती है—

गायन् मम यशो नित्यं भक्त्या परमया युतः ।
मत्प्रसादात् स शुद्धात्मा मम लोकाय गच्छति ॥
(वाराहपु० १३१ । २८)

भगवान् वाराह पृथ्वीसे कहते हैं कि 'जो परम भक्तिके साथ मेरे गुणोंका नित्य संकीर्तन करता है, वह शुद्धात्मा मेरी कृपासे मेरे अक्षय लोकमें वास करता है ।' अतः भगवन्नाम-संकीर्तनके साथ गुण-संकीर्तन भी अवश्यमेव करना चाहिये ।

गुणाचरण ही चरित्र है, अतः चरित्र गुणाचरणमें ही समाविष्ट हो जाता है । इसलिये चरित्र-संकीर्तनपर अलगसे प्रकाश नहीं डाला गया है ।

लीला-संकीर्तन—सभी इतिहास-पुराण आदि लीलाओंसे ही परिपूर्ण हैं । इनमें भी रामायण एवं भागवत भगवल्लीला-संकीर्तनके सर्वोत्तम ग्रन्थ हैं । [illegible] लीला-श्रवण एवं लीला-संकीर्तनकी [illegible] श्लोक हैं, जो [illegible] किये भी बहुत [illegible] हैं—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

इसी प्रकार भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका भी संकीर्तन एक ही श्लोकमें किया गया है—

आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनं
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम् ।
वालेर्निदलनं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनं
पश्चाद् रावणकुम्भकर्णहननं चैतद्धि रामायणम् ॥

भगवान्की ही तरह भगवल्लीला भी नित्य सत्य है। भगवान् नारायणने प्राणियोंके कल्याणके लिये, भक्तोंके सुख-सम्पादनके लिये एवं लीला-संकीर्तनकी संस्थापनाके लिये विविध लीलाएँ की हैं। लीला-संकीर्तनसे प्राणियोंके बड़े-बड़े पातक नष्ट हो जाते हैं और उनका कल्याण हो जाता है—

कृष्णक्रीडासेतुबन्धं महापातकनाशनम् ।
बालानां क्रीडनार्थं च कृत्वा देवो गदाधरः ॥
(वाराहपु० १६० । ३२)

भगवल्लीला-संकीर्तनद्वारा भक्त प्रत्यक्ष लीलाके समान आनन्दानुभूति करते हैं और सदाके लिये जन्म-मृत्युसे छुटकारा पाकर मुक्त हो जाते हैं—

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा ।
यह चरित जे गावहिं हरि पद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥
(मानस, बालकाण्ड)

हनुमान्जी अकेले ही सीताको ले आने और रावणको मारनेमें समर्थ थे; परंतु इससे श्रीरामकी लीला प्रकाशित नहीं हो पाती। अतः उन्हें इस कामसे रोककर जाम्बवन्तने भगवल्लीला-कीर्तनकी महत्ता अनुषंगतः यों बतायी है—

कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं ।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं ॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई ।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई ॥
(मानस, किष्किन्धा०)

इसी प्रकार भगवान्के ध्यान-माहात्म्य-कीर्तन, भक्ति-माहात्म्य-कीर्तन और लीला-कीर्तन आदिके भी प्रकरण हैं। वे भी सग्राह्य, कीर्तनीय एवं अनुष्ठेय हैं। रूप-लीला-धाम आदिका कीर्तन 'नाम-कीर्तन' से अभिन्न तो हैं ही, उसमें सहायक भी हैं। इसकी प्रत्यक्षानुभूति 'संकीर्तन' करनेसे ही हो जाती है। भगवान्के नाम, रूप, लीला, धाम—सभी नित्य और सच्चिदानन्दविग्रह-स्वरूप हैं। अतः उनके संकीर्तनसे मनुष्यका निःसंदेह कल्याण होता है—

रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम् ।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥
(वसिष्ठसंहिता)

चेतावनी

अब मन कृष्ण कृष्ण कहि लीजे ।
कृष्ण कृष्ण कहि कहिके जगमें साधु समागम कीजे ॥
कृष्ण नामकी माला लेके कृष्ण नाम चित दीजे ।
कृष्ण नाम अमृत रस रसना तृषावंत हो पीजे ॥
कृष्ण नाम है सार जगतमें, कृष्ण हेतु तन छीजे ।
रूपकुँवरि धरि ध्यान कृष्णको कृष्ण कृष्ण कहि लीजे ॥

नाम-संकीर्तनकी महिमा

(लेखक—श्रीवेदान्ती स्वामीजी)

वेद, शास्त्र तथा पुराणोंके अध्ययनसे विदित होता है कि इस असार संसारमें एक भगवन्नाम ही सार है। एक बार अष्टादश पुराणोंके निर्माता भगवान् वेदव्यासजीके यहाँ दो प्रकारका समाज निर्णयके लिये पहुँचा। एक समाजका कहना था कि इस असार संसारमें जिसके पास धन नहीं, वह व्यक्ति जघन्य है। दूसरे समाजका कथन था कि जगत्में धन-विहीन होकर जीना अच्छा है, परंतु गुणहीन व्यक्तिका समाजमें कोई मूल्य नहीं है। दोनों प्रकारकी बातोंको सुनकर श्रीवेदव्यासजीने निर्णय दिया कि धनहीन अथवा गुणहीन होनेसे कोई जघन्य नहीं होता, किंतु देवदुर्लभ मानव-जीवन प्राप्तकर जो सर्वान्तरात्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान्का स्मरण नहीं करता, वही जघन्य है। इस आशयका शास्त्रोंमें इस प्रकार वर्णन है—

केचिद् वदन्ति धनहीनजनो जघन्य·
केचिद् वदन्ति गुणहीनजनो जघन्यः।
व्यासो वदत्यखिलवेदपुराणवेत्ता
नारायणस्मरणहीनजनो जघन्यः॥

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने कहा है—

जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भव सिंधु अपारा॥

शास्त्रों एवं रामायणके इन वचनोंके आधारपर इस कराल कलिकालमें भगवन्नामका व्यापक प्रचार-प्रसार हो रहा है, यह प्रसन्नताकी बात है; किंतु नाम-जपसे जो फल प्राप्त होना चाहिये, वह दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। इसके कारणपर यदि विचार किया जाय तो यह सिद्ध होता है कि भगवन्नामापराधका त्याग किये बिना नाम-जपका अनुष्ठान हो रहा है, जिससे पूर्ण फलकी प्राप्तिमें बाधा पड़ रही है। जैसे कुपथ्यका परित्याग किये बिना औषध-सेवन निष्फल होता है, उसी प्रकार वेद-विहित धर्मका परित्याग करके जो भगवन्नाम-स्मरण करते हैं, वे भगवान्के प्रिय नहीं हो सकते। इसीलिये कहा है—

अपहाय निजं कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः।
ते हरेर्द्वेषिणः पापा धर्मार्थं जन्म यद्धरेः॥

भगवान्ने गीतामें कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
(१६। २३)

इन वचनोंके आधारपर स्वधर्मपालनपूर्वक भगवन्नामका स्मरण करना चाहिये, किंतु आजकल अधिकांश लोग संध्यादि स्वधर्मका परित्याग कर रात-दिन खेती-बारी एवं दूकानदारीमें ही संलग्न रहते हैं और भगवन्नामका सहारा लेकर भवसागरको पार भी करना चाहते हैं। इस प्रकारकी उपासनासे भगवान् प्रसन्न नहीं हो सकते।

एक बार महाभारत-युद्धके बाद धर्मराज युधिष्ठिरको बड़ी ग्लानि हुई कि इस समरमें बन्धु-बान्धवोंकी भयंकर हिंसा हुई है। इस पापकी निवृत्तिके लिये एक महायज्ञ करना चाहिये। ऐसा विचारकर उन्होंने भगवान् कृष्णसे इस विषयमें परामर्श किया। भगवान् कृष्णने युधिष्ठिरसे पूछा—'आप यज्ञ क्यों करना चाहते हैं?' युधिष्ठिरने कहा—'पाप-निवृत्तिके लिये।' भगवान्ने कहा—'आपको पापोंसे भय है तो सभी पाप हमें समर्पित कर दीजिये। यज्ञमें बहुत व्यय होगा।' धर्मात्मा युधिष्ठिरने कहा—'वेद-शास्त्रोंका मत है कि जो वस्तु भगवान्को अर्पित की जाती है, वह अनन्तगुना होकर फलवती होती है। ऐसी दशामें आप ही बताइये कि मेरा पाप आपको समर्पित कर देनेसे घटेगा या बढ़ेगा?' भगवान्ने निरुत्तर

होकर यज्ञ प्रारम्भ करनेकी आज्ञा प्रदान कर दी। बड़ी प्रसन्नतासे युधिष्ठिरने यज्ञमें कीट-पतंगसे लेकर ब्रह्मापर्यन्त सबको आमन्त्रित किया। अन्तमें समाहित होकर देखा कि सभी लोग यज्ञमें किसी-न-किसी रूपमें सम्मिलित हैं, परंतु एक तपस्वी ब्राह्मण नर्मदाके किनारे गायत्री-पुरश्चरण कर रहे हैं, वे इस यज्ञमें नहीं आये। युधिष्ठिरने अर्जुनको बुलाकर कहा कि 'उन तपस्वी ब्राह्मणको ससम्मान यज्ञमें बुलाया जाय।' अर्जुन गहन वनोंको पार करते हुए ब्राह्मण देवताके पास पहुँचे और उन्होंने आदरपूर्वक उन्हें यज्ञका निमन्त्रण प्रदान किया। निमन्त्रण पाकर ब्राह्मणदेव बहुत दुःखी हुए और रोने लगे। ब्राह्मणका रोना देखकर अर्जुन घबराकर युधिष्ठिरके पास पहुँचे और बोले कि 'मुझसे कोई अपराध तो नहीं हुआ, किंतु केवल आपका निमन्त्रण सुनते ही ब्राह्मणदेव रोने लगे।' यह समाचार सुनकर युधिष्ठिर भी दुःखित होकर रोने लगे।' युधिष्ठिरका रोना देखकर अर्जुन घबराकर भगवान् श्रीकृष्णके पास पहुँचे। भगवान् भी रोनेका समाचार सुनकर दुःखित हुए और रोने लगे। भगवान्को रोते देख अर्जुन भी रोने लगे। अन्तमें भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिरको साथ लेकर उन ब्राह्मणके यहाँ पहुँचे और पूछा—'महाराज! आपके निमन्त्रण अस्वीकार करनेका कारण क्या है?' तपस्वी ब्राह्मणने कहा—'राजान्नं हरते तेजः'—'राजान्न ग्रहण करनेसे तपस्या नष्ट होती है' इसीलिये निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया।'

इसपर युधिष्ठिरने कहा—'महाराज! आपके निमन्त्रण स्वीकार न करनेका कारण तो समझमें आ गया, परंतु आपके रोदनका कारण हमारी समझमें नहीं आ रहा है।' ब्राह्मणदेवने कहा—'आज तप और त्यागका यह प्रभाव है कि बड़े-बड़े चक्रवर्ती नरेन्द्र हमें आमन्त्रित करते हैं, किंतु भविष्यमें ऐसे ब्राह्मण होंगे, जो बिना निमन्त्रणके ही यज्ञ-यागादिक भण्डारोंमें पहुँच जायँगे और अपमानित होंगे। भावी ब्राह्मणोंकी इस वृत्ति और स्थितिका स्मरण कर दुःखोद्वेगसे मुझे रोना पड़ा।' तब लोगोंने युधिष्ठिरसे पूछा—'महाराज! आपके रोनेका कारण क्या है?' उन्होंने कहा कि 'आज क्षत्रिय-कुलमें ब्राह्मणोंका जितना आदर-सम्मान है, उसके विपरीत आगे चलकर क्षत्रियवंशज ब्राह्मणोंका अपमान करेंगे। इसी कारण मैं दुःखी हुआ और अश्रुपात हुआ।' तब युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा कि 'आपके दुःखी होनेका कारण क्या है?' उन्होंने कहा—'मेरे नाम-स्मरणसे प्राणी भवसागर पार कर सकता है, किंतु कलियुगमें लोग स्वधर्मका परित्याग कर मेरे नामका दुरुपयोग ही करेंगे।' जो नाम मोक्ष देनेवाला है, वह कलियुगमें गाँजा, बीड़ी एवं भाँगपर बिकेगा। आज वस्तुतः कई स्थानोंमें देखा जाता है कि कीर्तन-मण्डलीको कीर्तन करनेके लिये बुलाया जाता है तो वे लोग कहते हैं—'पहले गाँजा, भाँग, बीड़ी और चायका प्रबन्ध कीजिये, तब हम कीर्तनके लिये चलेंगे।' मैंने स्वयं एक ट्रकपर लिखा हुआ देखा—

'भोलेनाथ भूल मत जाना। गाड़ी छोड़ दूर मत जाना॥'

इस प्रकार भगवन्नामके सहारे स्वधर्मका परित्याग कर भगवन्नामका दुरुपयोग किया जा रहा है। महात्मा कबीरने भगवन्नामका दुरुपयोग करनेके कारण अपने पुत्र कमालका परित्याग कर दिया; क्योंकि उसने एक गलित कुष्ठीको स्वस्थ करनेके लिये तीन बार राम-नामका प्रयोग किया था—

उच्चार्य रामेति पदं त्रिवारं
पस्पर्श भालं स निरामयोऽभूत्।

कबीरने अपने पुत्रका त्याग करते हुए कहा—'तुम तीर्थाटन करो और महात्माओंका सत्सङ्ग करो, तब तुम्हें ज्ञात होगा कि किस कारण तुम्हारा परित्याग कर रहा हूँ। तीर्थाटनसे लौटनेपर ही तुम्हारा मुख देखूँगा तथा सम्भाषण करूँगा।' 'तीर्थाटन करते हुए उसने एक

ार देखा कि एक महात्मा एक निर्मल तुलसीदलपर ाम-नाम लिखकर जलमें छोड़कर उन जलबिन्दुओंसे ैकड़ों कुष्ठ रोगियोंको ठीक कर रहे हैं'—

भ्रमन् स तीर्थेषु ददर्श चैकदा
कश्चिन्महात्मा तुलसीदलेऽमले।
आलिख्य रामं तु तदर्घवारिणा
करोति रुग्णाञ् शतशो निरामयान् ॥

तब कमालको ज्ञात हुआ कि रामनामाङ्कित तुलसीदल-मिश्रित जलबिन्दुओंसे जब सैकड़ों कुष्ठी ठीक हो सकते हैं, तब मैंने उसी राम-नामका प्रयोग एक कुष्ठीको ठीक करनेके लिये तीन बार किया, इसीलिये मेरे पूज्य पिता मुझसे रुष्ट हैं। फिर उसने अपने पिताके पास आकर प्रणाम किया और क्षमा-याचना की कि 'भविष्यमें मै राम-नामका पुनः ऐसा दुरुपयोग नहीं करूँगा।' जो लोग नामानुरागी हैं और राम-नामके चमत्कारको जानना चाहते है, उन्हें दस नामापराधोंको छोड़कर स्वधर्मपालनपूर्वक राम-नामका जप या कीर्तन करना चाहिये। दस नामापराध ये है —

सन्निन्दासति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधी-
रश्रद्धा गुरुशास्त्रवेदवचने नाम्न्यर्थवादभ्रमः।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागौ हि धर्मान्तरैः
साम्यं नामजपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश ॥

'सत्पुरुषोंकी निन्दा, असत्पुरुषोंसे नाम-माहात्म्य-कथन, शिव और विष्णुमें भेद-बुद्धि, श्रुति-शास्त्र तथा आचार्यके वचनोंमें अविश्वास, नाम-माहात्म्यको अर्थवाद मानना, नामके सहारे शास्त्रोक्त कर्मधर्मोंका त्याग तथा शास्त्र-निषिद्ध पापकर्मोंका आचरण और नामजपकी धर्मान्तरोंके साथ तुलना अर्थात् बराबरी मानना—ये दस नामापराध हैं। इनसे बचते हुए वर्णाश्रमानुसारी स्वधर्मका पालन करते हुए यदि भगवन्नामका स्मरण-कीर्तन किया जाय तो शीघ्र ही ऐहिक, आमुष्मिक कल्याण हो सकता है।

संकीर्तनका तात्पर्य

(लेखक—आचार्य श्रीरामदेवजी त्रिपाठी, एम्० ए०, डी० लिट्०)

'साहित्यदर्पण'कार विश्वनाथका कथन है कि अल्प-बुद्धिवालोंको भी सरलतासे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्ति ब्रह्मानन्द-सहोदर रससे युक्त काव्यके सेवनसे ही होती है। 'काव्यप्रकाश'कार मम्मटके अनुसार भी काव्यसे सद्यः परनिर्वृति-(परमसुख) की प्राप्ति होती है। उपनिषदोंके अनुसार ब्रह्म रस-रूप है और रसको प्राप्तकर ही मनुष्य आनन्द प्राप्त करता है—**'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।'** (तै० उ० अनुवाक ७) वैसे नाट्यशास्त्रमें और श्रव्य काव्योंमें नौ रस माने गये है। इनमें भी शृङ्गार मधुरतम, आनन्दप्रद रसराज माना गया है, जिसका स्थायी भाव रति है। यही रति माता, पिता, गुरु, देवता, भगवान् आदिमें होनेपर भक्तिरसमें विकसित हो जाती है। भक्तिमें भी सख्य, शृङ्गार और वात्सल्य रस होते है। वस्तुतः रस और आनन्द एक ही तत्त्वके दो नाम हैं। भगवान्के सत्, चित् और आनन्द—इन तीनों अंशोंमेंसे आनन्द-अंश रस है। यह श्रेष्ठ काव्योंसे भी प्राप्त होता है। भगवद्विषयक रतिमें (क)-पिता-पुत्र-भाव (या जन्य-जनक भाव), (ख)—दास्य या स्वामि-सेवक-भाव, (ग)—सख्य भाव भी चलते हैं। काकभुशुण्डिके अनुसार 'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि' और अर्जुनके 'शिष्यस्तेऽहम्' एवं **'पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥'** और वेदोंके **'त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम्।'** (ऋ० १। ३१। १०) में ये भाव चर्चित हुए हैं।

वस्तुतः रतिका मूल काम और लोभ भी एक प्रकारके भूख-प्यास ही हैं, अतः सकाम उपासनाका वह भी एक प्रेरक है। गीतामें प्रभु-भजन करनेवाले सुकृतियोंमें अर्थार्थीकी भी गणना है; किंतु वह निम्नतम स्तरका भक्त है। भक्त वृत्रासुरका कहना है—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्त्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥
(श्रीमद्भा० ६।११।२६)

'कमलनयन! जैसे पक्षियोंके पक्षहीन बच्चे अपनी माँकी बाट जोहते रहते हैं, भूखे बछड़े अपनी माँका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित रहती है, वैसे ही मेरा मन आपके दर्शनके लिये छटपटा रहा है।' जन्य-जनक-भावमें मानव-शिशु, मार्जार-शावक, पक्षि-शावक तथा धेनु-वत्सकी मातृ-निर्भरताका भाव उत्कृष्ट है।

भगवद्रतिकी आठ विधाएँ हैं, जिनमें मुख्य हैं—श्रवण तथा कीर्तन। कीर्तन शब्द पाणिनीय व्याकरणके अनुसार चुरादिगणीय 'कृत संशब्दने'से ल्युट् प्रत्यय करनेसे निष्पन्न हुआ है। संशब्दनका अर्थ है—शब्दद्वारा सम्यक् प्रकाशन। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥
रूप बिसेष नाम बिनु जाने। करतलगत न परहिं पहिचाने॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदयँ सनेह बिसेषे॥

प्रभुके संकीर्तन अर्थात् नामोच्चारणसे उनका रूप हृदयकी आँखोंके सामने उपस्थित हो जाता है और फिर तो मानो दोनों सामने ही आ जाते हैं। नाम और रूप दोनों परमेश्वरके मायिक चित्र-सूत्र हैं—'नाम रूप दुइ ईस उपाधी।' भक्तगण सूत्रधारकी भाँति इन्हीं दोनों सूत्रोंसे अपने प्रियतमको बुला लेते हैं। वाक्यपदीयका कथन है—'अर्थप्रवृत्तितत्त्वानां शब्दा एव निबन्धनम्।' गोस्वामीजीकी 'कहउँ नाम बड़ ब्रह्म राम तें', 'ब्रह्म राम तें नामु बड़' आदि जप-कीर्तनके उद्देश्यसे ही हैं। भगवान् श्रीकृष्णने भी अर्जुनसे कहा है—

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥
(गीता ९।१४)

तथा—

कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
(गीता १०।९)

'दैवी प्रकृतिवाले यत्नशील, दृढव्रत एवं नित्य योगयुक्त हो सदा मेरी कीर्तन-वन्दना करते हुए भक्तिसे मेरी उपासना किया करते हैं और मेरी चर्चा करते हुए उसीमें सदा संतुष्ट एवं प्रसन्न रहते हैं।' गीताके अनुसार ज्ञान, कर्म, योग, उपासना और भक्तिमें भक्ति अर्थात् भजनकी महिमा सर्वोपरि है। भगवान् कृष्णने गीतामें बार-बार अर्जुनको भजनकी महिमाका स्मरण कराया है। भक्ति या भजनके लिये श्रद्धा अनिवार्य है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रद्धा और विश्वासके बिना मनुष्य स्वान्तःस्थ या हृद्देशस्थ ईश्वरको नहीं देख पाता, अर्थात् श्रद्धा न रहनेपर नामसे भी रूप पकड़में नहीं आता और जब रूप ही सामने नहीं आया, तब संनिधि कैसे उपलब्ध होगी? अतः गीतामें पद-पदपर (८।१०, २२, ९।२९, ११।५४, १२।२०) भक्ति और (३।३१, ४।३९) श्रद्धाकी अनिवार्यताकी चर्चा है। नारदने तो स्पष्ट ही प्रेमरूपा भक्तिको कर्म, ज्ञान और योगसे भी उत्कृष्ट घोषित कर दिया है (भक्तिसूत्र २५)। श्रीमद्भागवत (११।१४।२१) में भी श्रद्धा-भक्तिकी सर्वोपरिता बतायी गयी है और भजन तथा कीर्तनका बीज है श्रवण। कीर्तिकी भी रूढि 'सुकीर्ति' एवं 'सुयश' में है—'रघुपति कीरति बिमल पताका।' इस प्रकार कीर्तनका शब्दार्थ ही है गुणोंकी चर्चा, कथन, प्रशंसा, बखान।

इसीलिये भागवतमें कीर्तनके पर्यायरूपमें 'कीर्ति' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है—

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः॥
एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥
(११।२।३९-४०)

'संसारमें भगवान्‌के जन्मकी और लीलाकी बहुत-सी मङ्गलमयी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनको सुनते रहना चाहिये। उन गुणों और लीलाओंका स्मरण दिलानेवाले भगवान्‌के बहुत-से नाम भी प्रसिद्ध हैं। लाज-संकोच छोड़कर उनका गान करते रहना चाहिये। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति, वस्तु और स्थानमें आसक्ति न करके विचरण करते रहना चाहिये। इन दो श्लोकोंसे इतनी बातें और स्पष्ट होती हैं— (१) भक्तिरसके क्षीरसागरमें जलकेलि करनेके लिये पहला चरण है चक्रपाणि (विष्णु) के विश्व-कल्याणकर (सुभद्र) विभिन्न अवतारोंके जातकों और उनके लोक-प्रचलित साधु-परित्राण, राक्षस-विनाश, धर्म-संस्थापनके कार्योंकी लीलाएँ दत्तचित्त हो सुनना—श्रवण। (२) दूसरा चरण है प्रभुके सभी अवतारों और प्रत्येक अवतारकी सभी लीलाओंकी चर्चा करनेवाले सहस्रों नामों, पदोंको लज्जा त्यागकर गाना; जैसा—मीरा, तुलसी, सूर, कबीर, रैदास, नानक आदि संत करते थे। (३) तीसरा चरण है नारदकी भाँति इस प्रकार व्रत अर्थात् शील बनाकर अपने प्रियतमके प्रिय नामोंके कीर्तनमें अनुरक्त अर्थात् प्रेमानुगा भक्तिरसके उद्रेकसे द्रवीभूतचित्त हो लोक-लाजकी मर्यादा भी भूलकर प्रेमासवसे उन्मत्तकी भाँति उच्च स्वरसे गाना (जैसा कि चैतन्य करते थे) और सुमिरन या स्मरणमें मन-ही-मन उसका काव्यास्वाद लेना।'

जो इस प्रकार हरिगुणका उच्च स्वरसे कीर्तन अर्थात् गान कर अपने विरहाकुल मनको तो रिझाते ही थे, श्रवणसे औरोंको भी भक्ति-रसामृतका पान कराते थे, उन्हें कीर्तनिक कहा जाता था। इसी प्रकार भजनका भी मूल अर्थ था ईश्वरकी भक्ति करना, भक्तिके पदोंका राग अर्थात् लय-तालसे गाना—**'अव्यावृतभजनात्'**—(भ० सू० ३६) बादमें भजन शब्द सभी गेय पदोंके लिये व्यवहृत होने लगा—'बिनु हरि भजन न भव तरिअ' (तुलसी), **'भजस्व माम्'** (गीता)। भजन करनेवाले या गानेवालेको ही भजनिक कहा जाता था। जिन लोगोंने 'कीर्तन'को अपनी आजीविका बना लिया, वे 'कीर्तनियाँ' कहे जाते हैं। ठीक उसी प्रकार मूलतः विष्णुके गुणोंका कथन (श्लाघा-गानपूर्वक नृत्य) करनेवाले 'कत्थक' या 'कथक' कहे जाते हैं। शुद्ध आजीविकाके लिये अपना लिये जानेपर इस कर्मने भी अपनी गरिमा खो दी। 'कथक' एक विशेष प्रकारका नृत्य करनेवालोंका नाम रह गया। आज भी जो कीर्तनदल (बिहार, उत्तरप्रदेश आदि), यात्रादल (बंगाल), रासलीलादल (मथुरा) आदिके सदस्य हरिलीलाका बखान करनेवाले पदोंको गाते हुए झूमते, नाचते, अङ्ग-विक्षेप आदि करते हैं, वे समाजमें सामान्य नर्तकोंकी भाँति नहीं, साधुओंकी भाँति ही सम्मानित होते हैं; किंतु जैसे नर्तन-जीवी नट बनकर सम्मान और श्रद्धा खो देते हैं, वैसे ही रासलीलावाले भी कहीं श्रद्धेय नहीं होते।

(१) विष्णुके नाम, रूप, गुण, जन्म, कर्मका कीर्तन श्रद्धासे होना चाहिये (भाग० ११। २१। २७), (२) भक्तमें विषयोंका सङ्ग (आसक्ति)

नहीं रहना चाहिये (११ । २ । ३९), (३) मरणमें सातत्य और अनन्यता रहनी चाहिये (गीता ८ । १४, ९ । २२) (भक्तिसूत्र ३६, १०) । उपनिषद्ने निषेध-मुखसे कहा है—**'यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद् विजानाति तद्भूमा ।'** 'उस अनन्यतामें जहाँ दूसरा कुछ नहीं देखता, दूसरा कुछ नहीं सुनता और दूसरा कुछ नहीं जानता, वही ईश्वर है।' भागवत तो एक पद और आगे बढ़कर कहता है—**मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ।** (९ । ४ । ६८) 'वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मै उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानता ।' गीतामें इसी तथ्यको भगवान् श्रीकृष्ण इस ढंगसे कहते हैं कि जो सबमें और सबको मुझमें देखता है, न मै कभी उससे दूर रह पाता हूँ, न वह मुझसे दूर रह पाता है (६ । ३०) । इस प्रकारके संकीर्तनसे मनुष्यके सारे पाप उसी प्रकार जल जाते है, जैसे आगसे सूखी लकड़ियाँ तथा मनके त्रिविध ताप उसी प्रकार छिन्न-भिन्न एवं नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार प्रचण्ड वायुसे मेघ और सूर्यसे अन्धकार ।

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः ॥
(श्रीमद्भा० ६ । २ । १८)

तथा—

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥
(श्रीमद्भा० १२ । १२ । ४७)

भागवतमें जिस प्रकार कीर्तनके अर्थमें कीर्ति शब्दका प्रयोग हुआ है, उसी प्रकार गीतामें प्रकीर्तिका हुआ है । विश्वरूपकी स्तुतिमें अर्जुन कहते हैं—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत् प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।

'हे इन्द्रियोंके स्वामी ! यह उचित ही है कि तुम्हारी प्रकीर्ति अर्थात् प्रकीर्तन, संकीर्तनसे संसार परम आनन्द तथा तुम्हारे प्रति अनुरागको प्राप्त करता है ।' वस्तुतः काव्यामृतरसास्वाद जिस ब्रह्म-स्वादका उपमेय है, वह संकीर्तनसे ही उपलब्ध होता है; क्योंकि प्रभुकी घोषणा है—

'मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।'

प्रभु वहाँ प्रकट होते हैं, जहाँ भक्तगण उनका स्मरण, कीर्तन, भजन, गुणगान करते हैं; और—

सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥

संकीर्तनके द्वारा हृदयका मन्थन होनेसे ही भगवान् शीघ्र आविर्भूत होकर भक्तोंके त्रिविध ताप-तमको दूरकर उन्हें ज्योतिर्मय आनन्द प्रदान करते हैं । धन्य है वह व्यक्ति, जो निरन्तर भगवत्-संकीर्तनके ब्रह्मानन्दमें नारद, हनुमान् आदिकी भाँति निमग्न रहता है । ऐसा व्यक्ति अपनी ममताकी केंचुलसे मुक्त होकर गीतामें कथित विष्णुके मद्भाव (१४ । १९) और ब्रह्मभाव (१४ । २६)को प्राप्त कर लेता है और अद्वितीयता-प्राप्त आत्मा अभय हो जाता है; क्योंकि भय तो सदा दूसरेसे ही होता है—**'द्वितीयाद् वै भयं भवति ।'** (बृहदा० १ । ४ । २) परंतु भगवान्का भक्त यह अद्वितीयताका अभय नहीं, द्वितीयताका रमणसुख चाहता है; क्योंकि **'एकाकी न रमते'** । वह तो कहता है—''गति न चहौं निर्बान, जनम जनम रति राम पद यह बरदान न आन ।'

संकीर्तनकी महिमा बताते हुए श्रीरामके निवास-योग्य स्थल बतानेके प्रसङ्गमें मानसमें कहा गया है कि 'जिनकी रसना और श्रवण तुम्हारे नाम, गुण, कर्मका कीर्तन, गान, श्रवण करते रहते हैं, लोचन चातककी भाँति तुम्हारे रूप-जलबिन्दुके पानके ही अभिलाषी बने रहते हैं, उनके ही हृदय-सदनमें आप सीता और

लक्ष्मणके साथ निवास करें ।' संकीर्तनका रहस्य है—मनुष्य जिसके नाम, रूप, गुण, कर्म, कीर्तिका स्मरण, कीर्तन, श्रवण करता रहता है, अर्थात् उसीका सत्सङ्ग करता है, वैसा ही बनना चाहता है; क्योंकि वही उसका आदर्श बन जाता है । अतः वह भी वैसा ही काम करने लग जाता है, अपनेमें वैसे ही गुणोंका विकास करने लगता है, उसे भी वैसी ही कीर्ति काम्य हो जाती है । सिद्धान्त है—

काममयस्थानं पुरुष इति, स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति, यत्क्रतुर्भवति तत् कर्म कुरुते, यत् कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते । (बृहदा० ४ । ४ । ५)

'यह पुरुष काममय है, वह जैसी कामनावाला होता है, वैसा ही संकल्प करता है, जैसे संकल्पवाला होता है, वैसा ही कर्म करता है और जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल प्राप्त करता है—

'श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥'

मनुष्य श्रद्धामय है, जिसकी जैसी श्रद्धा रहती है, वह वैसा ही होता है । इसलिये जो आत्माका उत्थान, उद्धार, दैवी संपदा, परमानन्दकी प्राप्ति और संसारके दावानलसे छुटकारा एवं चतुर्वर्ग-फलकी उपलब्धि चाहते हैं, उन्हें दैनिक संध्या, हवन, पूजा-पाठ, जप, सद्ग्रन्थोंके अध्ययनकी भाँति यथासम्भव कुछ भजन अर्थात् भक्ति-संकीर्तन भी अवश्य करना चाहिये ।

हरिनाम-संकीर्तनकी विधि

(लेखक—स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी अवधूत)

कलिपावनावतार, प्रेममूर्ति, भावनिधि श्रीश्रीगौराङ्गदेवने कीर्तनके विषयमें अपने श्रीमुखसे कहा है कि अपनेको तृणसे भी तुच्छ मानकर अर्थात् जिस प्रकार तृण दलित होनेपर थोड़ी ही देरमें फिर सिर उठा लेता है, उस अपमानके कारण अपना कोई पराभव नहीं समझता, उसी प्रकार कीर्तनप्रेमीको भी तिरस्कार और अपमानसे पराभूत न होकर कीर्तन करना चाहिये; अपमानमें भी भगवान्‌की कृपा ही समझनी चाहिये । इस प्रकार अत्यन्त दीनभावसे प्रभुके प्रत्येक विधानमें प्रसन्न रहना चाहिये । इतना ही नहीं, उसमें वृक्षके समान सहनशीलता भी होनी चाहिये । जिस प्रकार वृक्ष जाड़ा, गरमी और वर्षादि ऋतुओंके द्वन्द्वोंको सहन करता है, अपनी ही शाखाका छेदन करनेवालेपर भी छाया करता है और पत्थर या ढेला मारनेवालेको भी बहुत मीठा फल देता है, उसी प्रकार कीर्तनप्रेमियोंको भी अपने विरोधियोंद्वारा किये हुए तिरस्कार, उपहास एवं उपेक्षा आदिकी परवा न करके उन्हें सहन करना चाहिये । यदि कोई कटु भाषण करे तो उसे मीठी बोली बोलकर प्रसन्न करना चाहिये तथा किसीके मर्मभेदी शब्द सुनकर तनिक भी क्षुब्ध नहीं होना चाहिये—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

गोस्वामीजी महाराज भी कहते है—

बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें । खल के बचन संत सह जैसें ॥

इस प्रकार अत्यन्त विनम्र और सहनशील होकर किसी प्रकारके मानकी इच्छा न रखते हुए तथा स्वयं सबका सम्मान करते हुए सर्वदा श्रीहरिका नाम-संकीर्तन करना चाहिये । संकीर्तनप्रेमीमें भाव, आचार और शरीर—तीनोंकी संशुद्धिकी बड़ी आवश्यकता है । इसके लिये कीर्तनकारको मान, बडाई, ईर्ष्या, द्वेष एवं लोभ आदि सब प्रकारके मलिन भावोंसे दूर रहकर प्रभुमें प्रेममात्रकी कामना करनी चाहिये । कीर्तनप्रचारका बहाना बनाकर दम्भपूर्वक

अपना स्वार्थ-साधन कभी नहीं करना चाहिये । आजकल कीर्तनकी ओटमें बड़ा अनर्थ हो रहा है । कुछ लोग भोली-भाली गरीब स्त्रियोंको एकत्रकर उनकी श्रद्धा एवं श्रमका दुरुपयोग कर रहे हैं तो कोई इसी बहाने अपनी आजीविका चला रहे हैं और कुछ लोग अपनेको भक्त कहलाकर पुजवानेके लिये भी किसी कीर्तन-मण्डलीमें घुस जाते हैं । इस प्रकारके भाव शुद्ध संकीर्तनके सर्वथा विरुद्ध हैं । इन मलिन भावोंसे रहित होना ही **'भावसंशुद्धि'** है । जिसका शुद्ध भाव होता है, वह केवल प्रभु-प्रेमसे प्रेरित होकर उन्हींको रिझानेके लिये और उन्हींको सुनानेके लिये उनके पवित्र नामोंका कीर्तन करता है । उसे किसी भी प्रकारकी लौकिक वस्तुकी तनिक भी इच्छा नहीं होती ।

आचारशुद्धिसे बड़ा लाभ होता है । जो लोग अपनी संस्कृतिको छोड़कर पाश्चात्त्य सभ्यताका अनुकरण करते हुए भक्ष्याभक्ष्यका कोई विचार नहीं करते—होटलोंमें सबके स्पर्श किये हुए अपवित्र चाय, बिस्कुट, डबलरोटी अथवा हिंसायुक्त अंडा-मांस-मदिरादि पदार्थोंका सेवन करते हैं, वे सच्चे अर्थमें प्रभु-प्रेमी नहीं हैं । प्रभुप्रेमी प्राणिमात्रमें भगवद्दर्शन करते हैं तथा कभी स्वधर्मकी अवहेलना नहीं करते । जो धर्मका तिरस्कार करते हैं, वे भगवद्द्वेषी ही हैं । जिनका चित्त अशुद्ध है, उन्हें भगवान् या भगवन्नाममें वास्तविक प्रेम भी कैसे हो सकता है ! कुछ लोग भगवन्नामके आधारपर जाति-पाँतिके भेदको मिटाना चाहते हैं । वे कहते हैं—

जाति पाँति पूछै ना कोई । हरि को भजै सो हरि का होई ॥

जीव तो कर्मोंके अधीन हैं और उन्हें कर्मानुसार ही जाति आदिकी प्राप्ति भी हुई है । अतः उस कर्मबन्धनसे छूटनेके लिये उन्हें अपने-अपने वर्णाश्रमानुकूल धर्मोंका पालन करना ही चाहिये । आजतक जो निम्न वर्णोंमें उत्पन्न कबीर, रैदास, सदन, नानक, नामदेव और धन्ना आदि भक्त हुए हैं, वे अवश्य ही भक्त थे; पर उन्होंने भी अपने जातिगत या समाजोचित आचारका परित्याग नहीं किया, फिर हमलोग किस प्रकार उसकी उपेक्षा करनेका साहस कर सकते हैं ! चातुर्वर्ण्यकी व्यवस्था स्वयं भगवान्की ही बनायी हुई है । वे स्वयं कहते हैं—

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'
(गीता ४ । १३)

अतः साधारण मनुष्यको उसका उच्छेद करनेका अधिकार नहीं है । आचारमें शारीरिक शुद्धिका भी बहुत ध्यान रखा जाना चाहिये । नियमानुकूल स्नानादि करना तथा शुद्ध और सात्त्विक आहारका सेवन करना—ये इसके प्रधान अङ्ग हैं । ऐसा न करनेसे शरीर और मनमें तमोगुणकी वृद्धि होती है, जो भजन-भावका बहुत बड़ा प्रतिबन्धक है । जो लोग राजसी एवं तामसी प्रकृतिके हों, उनके स्पर्श किये हुए पदार्थको भी नहीं खाना चाहिये । शरीरको तामसिक मलिन अपवित्र पदार्थोंके सेवनसे सदा बचाये रहना चाहिये । भारतीय धर्म-शास्त्रोंमें भगवद्भजनके लिये शरीर और स्थानकी शुद्धिपर बहुत बल दिया गया है । अतः कीर्तनकारको इनका भी ध्यान रखना चाहिये । कीर्तन-स्थानको भी गोमय, कदलीदल, आम्रपत्र, मङ्गलघट और धूप-दीपादिसे सुशोभित करना चाहिये तथा श्रीभगवान्का चित्रपट स्थापित कर उनके सामने कीर्तन करना चाहिये । देवालयोंमें तो ये सब बातें स्वभावतः ही सुलभ होती हैं । अतः कीर्तनके लिये सबसे उपयुक्त स्थान देवस्थान, निर्जन-नदीतीर अथवा तीर्थस्थानादि ही है । ऐसे स्थानोंपर नित्य कीर्तन करनेका सुयोग न हो तो अपने घरमें ही किसी कमरेको लीप-पोतकर ठीक कर लेना

चाहिये तथा उसे ऐसी वस्तुओंसे सुसज्जित करना चाहिये, जिनसे कीर्तनानन्दका उद्दीपन हो। लीपने-पोतने योग्य कमरा न हो तो उसे साफ, शुद्ध तथा सात्त्विक बिछावन आदिसे सम्पन्न रखना चाहिये।

पद-कीर्तनमें आजकल सूर, तुलसी और मीरा-जैसे सच्चे भक्तों तथा सर्वमान्य संतोंकी वाणियोंके स्थानमें आधुनिक गजल, कव्वाली और ठुमरियोंकी बाढ़ आने लगी है। सिनेमाके बेसुरे भद्दे रेकार्ड आदि गाने भी बजाये-गाये जाने लगे हैं। इसका कारण कीर्तनकारोंकी भावशून्यता है। वे भगवान्‌को रिझानेकी अपेक्षा मनचली जनताको प्रसन्न करने तथा अपनी क्षुद्र लोकैषणाको तृप्त करनेमें ही अपनी कृतकार्यता समझने लगे हैं। तुलसी, सूर, मीरा, दादू, कबीर, नरसी, हरिदास, हरिवंश, तुकाराम, नंददास, हितहरिवंश, नारायणस्वामी और ललितकिशोरी आदि भावुक भक्तों और सच्चे त्यागी संतोंकी रचनामें जो अलौकिक शक्ति और प्रसाद है, वह आधुनिक विलास-प्रवण लोगोंकी वाणीमें आ ही नहीं सकता। वाणी तो वक्ताका हृदय ही होती है, अतः भक्त-हृदयसे निकली हुई वाणी हमारे भक्तिभावको उद्दीप्त कर सकती है। महापुरुषोंके अनुभवपूर्ण हृदयसे निकले हुए भावपूर्ण पद ही हमारे हृदयके कल्मषको धोकर स्वच्छ करनेमें समर्थ हैं और उन्हींके द्वारा अश्रु-रोमाञ्चादि सात्त्विक भावोंका विकास हो सकता है। इसलिये हमें प्राचीन आचार्य और संतजनोंके पद और वाक्योंद्वारा ही कीर्तन करना चाहिये, तभी कीर्तनका सच्चा आनन्द मिल सकता है।

भक्तराज जयदेवका गीतगोविन्द भी एक अपूर्व कीर्तन-ग्रन्थ है। उसके विषयमें प्रसिद्ध है कि उसका प्रेमपूर्वक गान करनेपर तो स्वयं भगवान् उसे सुननेके लिये आ जाते हैं। कहते हैं, एक बार जगन्नाथपुरीमें एक मालीकी लड़की फूल तोड़नेके समय गीतगोविन्दके पद गाया करती थी। उस समय भगवान् जगन्नाथदेव उसके पीछे-पीछे घूमा करते थे। तब बागके काँटेदार वृक्षोंमें उलझनेसे उनका वस्त्र फट जाता था। भगवत्प्रेममें मतवाली उस बालिकाको इसका कुछ भी पता नहीं था; किंतु पुजारीलोग देखते थे कि भगवान्‌के वस्त्र फट जाते हैं, यद्यपि उनके पास कोई जाता भी नहीं था। एक दिन भगवान्‌ने स्वप्नमें उन्हें इसका सारा रहस्य बता दिया। तब उन्होंने बड़े आदरसे उस बालिकाको लाकर भगवान्‌को पद सुनानेकी सेवामें नियुक्त कर दिया। ऐसी अपूर्व शक्ति आजकलकी भावशून्य रचनामें कहाँसे आयेगी? ऐसी ही बातें सूर, तुलसी आदि अन्यान्य भक्तोंकी वाणियोंके विषयमें भी प्रसिद्ध हैं। अतः भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये प्रेमपूर्वक उन्हींका गान करना चाहिये।

मनुष्य-जीवनका कोई भरोसा नहीं। उसके प्रत्येक श्वासका बड़ा मोल है। अतः उसका पूरा सदुपयोग करना चाहिये। एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। पता नहीं, एक बार बाहर निकलनेपर श्वास पुनः आये या न आये। इसलिये निरन्तर नाम-कीर्तन करना चाहिये।

साँस-साँस पर कृष्ण भज, वृथा साँस मत खोय।
ना जाने या साँसको आवन होय न होय॥

अतः भगवत्प्रेमीकी लगन यदि सच्ची है तो शुद्ध संतों एवं भगवत्प्रेमियोंका ही संग करना चाहिये। वे निरन्तर श्रीकृष्णलीलाका कीर्तन करते हुए प्रेमानन्दमें छके रहते हैं। प्रेम ही उनका धन है। वे ही प्राणीको प्रेमदान कर सकते हैं। संकीर्तनमें प्रेम ही मुख्य वस्तु है।

संकीर्तन [एकाङ्की नाटक]

(श्रीमद्भागवत और भागवत-माहात्म्यके आधारपर)

(लेखक—मानसतत्त्वान्वेषी, वेदान्तभूषण पं० श्रीरामकुमारदासजी महाराज, रामायणी)

नतोऽस्मि ते शुभेक्षणे क्षणे क्षणे विचक्षणे
कृपाकटाक्षवर्षणे कृपाम्बुपूर्णविग्रहे ।
अलक्ष्यलक्ष्यरक्षणे प्रपन्नपक्षपालिके
प्रदेहि देवि जानकि स्वरामनामसद्रतिम् ॥

[प्रथम दृश्य]

(श्रीबदरिकाश्रमका एक पर्वतीय मार्ग, ऊपरकी ओरसे सुन्दर पीताम्बर धारण किये, द्वादश ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाये, तुलसीकी युगलकण्ठी बाँधे एवं कमलाक्षकी सुन्दर माला पहने, झाँझ बजाते—

'गोविन्द जय जय गोपाल जय जय ।
राधारमण हरि गोविन्द जय जय ॥'

—की सुमधुर ध्वनि करते हुए श्रीउद्धवजी नीचे उतर रहे हैं। नीचेसे पागलोंकी तरह एक ओरको जाते हुए श्रीकृष्ण-सखा अर्जुनजीको देखकर उन्हें पकड़ते कहते हैं—)

उद्धव—भाई अर्जुन ! आज आप इस तरह केश बिखेरे धूलि लपेटे पागलोंकी तरह बीहड़ हिमालयके जंगलोंमें अकेले कैसे घूम रहे हैं ?

अर्जुन—(रोते हुए प्रणाम कर) आर्य ! हाय ! क्या आपको मालूम नहीं ? (सिसकियाँ भरकर रोते हैं ।)

उद्धव—ऐं ! आप महारथी होकर भी इस तरह अधीर क्यों होते हैं ? कुछ कारण तो कहें ।

अर्जुन—भगवन् ! जिन धर्मराजके धर्म तथा निष्काम भक्तिसे रीझकर त्रैलोक्यनाथ यादवेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रने नपुंसक बृहन्नलाको महारथी, अतिरथी आदि बनाया और मित्रकी महत्ता प्रदान की, यहाँतक कि दौत्य तथा सारथ्य-तक भी निःसंकोच भावसे किया, आज वे श्रीधर्मराज ही इस दशामें राजकाज छोड़कर जा रहे हैं और दादा श्रीभीमसेनकी भी यही दशा है तो मेरी कौन गणना ?

उद्धव—(आश्चर्यान्वित होकर) कारण ?

अर्जुन—(रोते-रोते चरण पकड़कर) आप तो सब कुछ जानते ही हैं, फिर मेरा मार्ग क्यों रोक रहे हैं ! कृपा कर मेरा मार्ग छोड़ दीजिये । आह ! अब प्राणधनकी वियोग-व्यथा नहीं सही जाती । हाय ! (गिरकर मूर्छित हो जाते हैं ।)

(उद्धवजी बैठकर अर्जुनका सिर गोदमें लेकर मुख धूलि झाड़कर आँसू पोंछते हैं और अपने पीताम्बरके छोर धीरे-धीरे वायु करते हैं, शनैः-शनैः अर्जुनको होश आता है।)

अर्जुन—(रोते हुए) हा नाथ ! जब आपको ऐसे ही करना था, तब लाक्षाग्निसे, भीष्मके भयंकर बाणोंसे, का[र्ण] प्रेरित अश्वसेन नागसे और अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रादिसे मे[री] रक्षा क्यों की ?

उद्धव—(कुछ चिन्तित-से होकर स्वतः) ज्ञात हो[ता] है कि भक्त अर्जुनको भगवद्विरह असह्य हो रहा है । अतए[व] कुछ ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे शीघ्रातिशीघ्र प्रभु[का] प्रादुर्भाव हो जाय। (प्रकट) बन्धो ! क्या आपको वह साक्षा[त्] श्रीमुखवाणी भूल गयी कि **'मां नमस्कुरु'**—अर्थात् उ[न्हें] प्राप्त करनेका सबसे सरल उपाय नमस्कार है ।

अर्जुन—आह ! ये आँखें तरसती हैं उस मनोह[र] मुखारविन्दको देखनेके लिये—**'दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पिआसे नैन ।'** कर्ण तरसते हैं मुरलीमनोहरके उस वीणा-विनिन्दक शब्दको सुननेके लिये—**'प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ ।'** और भुजाएँ तड़पती हैं अपने प्राणप्रिय मित्रको अङ्कमाल देनेके लिये । परंतु हाय ! वे अब कहाँ मिलेंगे ! वे तो छिप गये ।

उद्धव—छिपने दो, वे छिपा करें और हम ढूँढ़ा करें ! (कुछ आवेशमें व्याकुल होकर) मेरे प्यारे सखा गोपाल ! छिपो चाहे जहाँ, किंतु तुम्हें ढूँढ़ निकालेंगे ही—'तुम्हें ढूँढ़ ही लेंगे कहीं-न-कहीं ।'

अर्जुन—देव ! क्या वे इस अभागिनी धरापर बैठे हैं, जो आप उन्हें ढूँढ़ निकालेंगे ? वे तो प्रकृतिमण्डलके उस पार छिप गये ।

उद्धव—अर्थात् ··· ····· !

अर्जुन—अर्थात् गोलोक चले गये

उद्धव—अ ह ह ह ह वत्स ! क्या आपको श्रीमुख-वाणी विस्मृत हो गयी जो महाभारत-युद्धके प्रारम्भमें कही गयी थी—'**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।**' तथा '**सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टः**'—इत्यादि ।

अर्जुन— आप ! धृष्टता क्षमा करें । क्या पराह्लादिनी शक्ति महारानी श्रीराधाजूका शिष्यत्व ग्रहण करनेपर भी आपकी निर्गुण-गन्ध न गयी ? मैं अङ्गुष्ठमात्र हृदयके चावल-मात्र हृदयाकाशनिवासी ईश्वरको नहीं चाहता । मैं तो अपने उस चिरपरिचित रूपका दर्शन करना चाहता हूँ, जिसके कि 'पीत बसन बनमाल उर कर आयुध मुख पान' दिखायी पड़े । मैं तो सखा श्यामसुन्दरको चाहता हूँ ।

उद्धव—अहा ! क्या उस झाँकीके लिये भी कहीं जाना होगा ? अरे ! उस साक्षात् मन्मथमन्मथका दर्शन तो अभी थोड़ी ही देरमें हो सकता है ।

अर्जुन—(हाथ जोड़ **पैरोंपर गिरकर गिड़गिड़ाते हुए**) प्रभो ! कृपा कर शीघ्र ही बतलाइये । सच्चिदानन्द भगवान् श्यामसुन्दरसे जल्दी ही मिला दीजिये ।

उद्धव—(हृदयसे लगाते हुए) वत्स ! क्या देवर्षि नारदकी वह बात भूल गयी, जो उन्होंने भगवान् श्रीराम-द्वारा की हुई प्रतिज्ञा बतायी थी ?

अर्जुन—क्या ?

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

उद्धव—नहीं ।

अर्जुन—तब ?

उद्धव—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

अर्जुन—(प्रसन्नतासे उछलकर) धन्य ! धन्य !! श्रीचरणोंने तो मुझे पुनर्जीवन-ज्योति प्रदान कर दी । तभी तो श्रीश्यामसुन्दर प्रसङ्ग आनेपर बारंबार कहा करते थे कि मेरे भक्तोंसे बढ़कर कोई भी उपकारी नहीं । जिसमें निःस्वार्थ परोपकारिता न हो, वह मेरा भक्त नहीं । अहा ! आपने बड़ी अच्छी उक्ति याद दिलायी; अब मैं भी व्रज-ललनाओंकी तरह गान-लीला-अनुकरणद्वारा उन मनमोहन प्यारेको प्रकट कर लूँगा ।

उद्धव—(कानपर हाथ रखकर) राम राम राम राम ! भला श्रीकृष्ण-प्रेमकी साक्षात् मूर्ति सच्चिदानन्द गोपियोंकी समता करनेके अधिकारी आप और हम कब हो सकते हैं ?

अर्जुन—तब क्या करना चाहिये । कैसे गान किया जाय, जिससे वे शीघ्र मिल जायँ ? यह तो सर्वथा ठीक है कि भगवद्भक्तिमें व्रजाङ्गनाओंकी समता करना हम-जैसोंके लिये महान् भागवतापराध है ।

उद्धव—अब कलिकी संधि प्राप्त हो गयी है, अतः '**कलौ केशवकीर्तनम्**' ।

(**अर्जुन प्रसन्न होकर केशोंको समेटकर बाँधते हुए ज्यों ही हाथ उठाकर कुछ कहना चाहते हैं, त्यों ही उद्धव बीचमें ही रोक लेते हैं और अपनी चद्दर अर्जुनके कंधेपर रखते हैं ।**)

उद्धव—अर्जुन ! आपने देवलोकमें गान्धर्व-शास्त्र भी अच्छा अध्ययन किया है, अतएव स्वरयुक्त श्रीहरिनाम गान करें और मैं झाँझ बजाता हूँ ।

अर्जुन—जैसी आज्ञा ।

(**इतनेमें नेपथ्यसे राम-कृष्ण-हरिकी वीणा-विनिन्दक मधुर ध्वनि करतल-ध्वनिके साथ सुनायी पड़ती है ।**)

उद्धव—भक्तशिरोमणि राजर्षि श्रीप्रह्लादजी आ रहे हैं, ऐसा मालूम पड़ता है । अहा ! आज हमलोगोंका कैसा भाग्योदय हुआ । जान पड़ता है कि आरम्भमें ही शुभ शकुन हुआ—'राम ते अधिक राम कर दासा ॥' यह देखो, श्रीप्रह्लादजी ही तो हैं ।

(**उद्धव तथा अर्जुन दूरसे ही साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हैं और प्रह्लादजी दौड़कर दोनोंको उठाकर हृदयसे लगा लेते हैं ।**)

उद्धव—कृपाकी जय, जय, लोकोंको सनाथ करते हुए श्रीचरणोंकी कृपा यहाँ हुई ?

प्रह्लाद—यह तो आप जानते ही हैं कि राम-नामका जो माहात्म्य है उसे शिव जानते हैं, उसका आधा शिवा जानती हैं तथा चतुर्योग और सब जीव जानते हैं । अतः भगवान् शिव कैलासपर अपने विश्राम-वटके नीचे अपने गणोंको श्रीराम-नामका माहात्म्य समझा रहे थे; मैं भी मुग्धकी तरह उसी अमृत-रसका पान कर रहा था

सहसा देवदेव महादेवजी जगजननी श्रीपार्वतीजीको साथ लेकर हरिद्वार जानेके लिये उद्यत हो गये। मैं भी वहीं जा रहा था कि सौभाग्यसे आप महापुरुषोंका दर्शन हो गया। भगवत्कृपाकी बलिहारी, बलिहारी।

(इसी प्रकार आपसमें प्रेमालाप हो ही रहा था कि सहसा वीणाकी झंकारमें सम्मिलित—'राघव पालय मां दीनम्। राघव पालय मां दीनम्।' की सुमधुर ध्वनि करते हुए एक ओरसे देवर्षि नारदजी आते हैं। सबकी दृष्टि उठती है और सब कोई दौड़कर चरणोंमें लिपट जाते हैं। सभी भक्तोंके बारी-बारी मिलनेके बाद श्रीनारदजी कहते हैं—)

नारद—अहा! क्या ही सुन्दर समय है कि आज सनकादिकोंके महान् प्रयत्नसे भक्तिमाताके सहित ज्ञान-वैराग्यको भी परमानन्द और अपनी पूर्वावस्था प्राप्त हो गयी है।

अर्जुन—भगवन्! स्पष्ट कहिये कि उन तीनोंकी अवस्थामें क्यों और क्या अन्तर आ गया था और फिर वह कैसे पूर्ववत् हुई?

नारद—क्या राजर्षि प्रह्लादने नहीं बताया था? ये तो उमावल्लभसे सुन चुके हैं।

प्रह्लाद—गुरुजी! मैं भी अभी आ रहा हूँ।

नारद—अच्छा तो संक्षेपमें ही सुनते जाइये। यह तो आपलोगोंको पता ही है कि कलियुगकी संधि प्राप्त हो चुकी है। यह सदासे चला आ रहा है कि कलियुगमें ज्ञानी और भक्तोंकी संख्या न्यून हो जाती है। यद्यपि पोथी रटकर वेदान्त बघारनेवालोंकी कमी नहीं रहती और इसीसे कहनेके लिये ज्ञानी और भक्तोंकी संख्या बहुत बढ़ जाती है; परंतु जागतिक चाकचिक्यसे दूर रहनेवाला ही सच्चे ज्ञानी और भक्तकी पदवीके योग्य हो सकता है, क्योंकि वेदान्तशास्त्रका यही तो चरम लक्ष्य है कि सत्-असत्का ज्ञान प्राप्त करके पूर्ण वैराग्यपूर्वक भगवदाराधन किया जाना चाहिये और यदि कामिनी-काञ्चन न छूटा तो विराग कहाँ? हाँ, तो इसी कारण महारानी श्रीभक्तिदेवीके युगल सुपुत्र ज्ञान और वैराग्य वृद्ध होकर एक जगह मूर्च्छित पड़े थे। पुत्रोंके शोकसे भक्तिदेवीकी दृष्टि भी शोचनीय हो गयी थी। अकस्मात् उन दोनोंको देखकर अहर्निश परोपकारपरायण श्रीसनकादिकोंने उन्हें श्रीमद्भागवतामृतका पान निरन्तर सात दिनोंतक कराया, जिससे वे दोनों फिर युवावस्थाको प्राप्त हो गये हैं और श्रीभक्ति महारानी भी निःशोक हो गयी हैं। अब साक्षात् श्रीकमलापतिको प्रत्यक्ष करनेके लिये सङ्कीर्तनकी तैयारी हो रही है। मैं देवराज इन्द्रको मृदङ्ग बजानेके लिये बुलाने गया था। वे देवमण्डलीके साथ हरिद्वार गये। मैं आपलोगोंको लेने यहाँ चला आया।

अर्जुन—हरिद्वार यहाँसे कितनी दूर है?

नारद—(एक ओर अंगुली उठाकर) बस उस सामनेवाले पर्वतके पार एक योजनकी दूरीपर है और (दूसरी ओर अंगुली उठाकर) उस पर्वत-मालिकाकी राहसे जानेपर साधारण लोगोंको एक महीनेसे भी अधिक लग जाता है; परंतु एक योजनवाले मार्गकी अपेक्षा वह अतिसुगम मार्ग है, किंतु हमें क्या, हमलोग तो इसी निकटके मार्गसे अधिक सरलतापूर्वक पहुँच सकते हैं। अतः अब शीघ्र चलना चाहिये।

(सबका प्रस्थान)

[पटाक्षेप]

द्वितीय दृश्य

(स्थान हरिद्वार गङ्गाजीका तट, सुन्दर मण्डपमें सिंहासनपर श्रीमद्भागवतकी पोथी विराजमान है। सामने अपने पुत्र ज्ञान-वैराग्यसहित प्रसन्नचित्त श्रीभक्तिदेवी नृत्य कर रही हैं; उनके चारों ओर इन्द्र मृदङ्ग, उद्धव झाँझ और श्रीनारदजी वीणा बजा रहे हैं। प्रह्लादजी उछल-उछलकर हाथोंसे ताल दे रहे हैं और श्रीशुकदेवजी भाव बता रहे हैं। अपने प्रधान गणों और श्रीशिवाजीके सहित श्रीशिवजी मन्त्रमुग्धकी भाँति देख रहे हैं। महामन्त्रके संकीर्तनपूर्वक अर्जुनका गान हो रहा है और सनकादिक बीच-बीचमें जय-जयकार कर रहे हैं।)

लीलाव्यास—

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत्।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा
यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव॥
ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र
भक्त्यादिकानां नटवत् सुतेजसाम्॥
(भागवतमाहात्म्य ६। ८७-८८)

अर्जुन— हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

सब— हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

अर्जुन— (अलाप लेकर)

अब आओ आओ आओ मनमोहन श्याम पियारे ॥टेक॥
जिहि प्रकार कमला शशि कारण क्षीर समुद्र मथाये ।
जिहि प्रकार शेषासन तजिके नरहरि रूप बनाये ॥
निज भक्तनके रखवारे । मनमोहन श्याम पियारे ॥
जिहि प्रकार गङ्गाके कारण वामन रूप बनाये ।
जिहि प्रकार साकेत छाँडि प्रभु दशरथके घर आये ॥
कपि कोल निशाचर तारे । मनमोहन० ॥
जिहि प्रकार गोलोक छाँडि ब्रज बाल गोपाल सुहाये ।
जिहि प्रकार द्वारावति तजि प्रभु सारथि पार्थ कहाये ॥
मोहि तजि अब कहाँ सिधारे । मनमोहन० ॥
जिहि प्रकार वैराग्य ज्ञान कहँ युवा शरीर बनाये ।
अपनाये इन विधि 'कुमार' कहँ क्यों तजि मोह सिधाये ॥
अब तलफत प्राण हमारे । मनमोहन० ॥
अब आओ आओ आओ मनमोहन श्याम हमारे ॥

(गान समाप्त होते ही एक अद्भुत प्रकाश होता है। सभीकी आँखें बंद हो जाती हैं। क्षणभरके बाद आँखें खुलनेपर सब लोग देखते हैं कि सिंहासनपर श्रीमद्भागवतकी पोथीके स्थानपर अपनी पराशक्तिके साथ भगवान् श्यामसुन्दर विराजमान होकर मन्द-मन्द मुस्कानपूर्वक सभी भक्तोंपर अपने सुन्दर नयनारविन्दोंसे कृपा-पीयूषकी वृष्टि कर रहे हैं। देखते ही आनन्दमग्न हो सबलोग साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड़कर सामने खड़े हो जाते हैं ।)

भगवान्—भावुक भक्तगणो ! आपलोग इस समय अपनी इच्छाके अनुसार वर माँग लीजिये । मैं कथा और संकीर्तनसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ ।

सनकादिक—भगवन् ! हमलोग चाहते हैं कि कथाओंमें ये सब भक्त अनुरागपूर्वक एकाग्रचित्तसे आपकी भावना करते रहें ।

भगवान्—'तथास्तु' ।

नारद—अपनी पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार संकीर्तन-स्थानोंमें रहते हुए संकीर्तनप्रेमी भक्तजनोंको कलिकालके कराल जालसे बचाते रहें ।

भगवान्—'तथास्तु' ।

भक्तिदेवी—नाथ ! अनन्त उपकारोंके बोझसे दबी होनेके कारण मेरा कुछ कहनेका साहस नहीं होता तो भी श्रीचरणोंके आज्ञा-पालनार्थ माँगूँगी । परंतु······।

भगवान्—प्रिये ! मेरे समक्ष भी 'परंतु' लगानेका प्रयोजन ? भला, जब तुम्हारे सेवकोंतकके लिये मैं कोई वस्तु अदेय नहीं समझता, तब तुम्हें सकोच करनेका क्या काम ?

भक्तिदेवी—अच्छा तो नाथ ! यही दीजिये कि जैसे इस दासीको आपने अपना लिया, उसी प्रकार हमलोगोंके इस वृत्तान्तको जो कोई सप्रेम कहें, सुनें, अनुकरण करें, उन्हे भी अपनाकर अपना धाम देनेकी स्वीकृति प्रदान करें ।

भगवान्—प्रिये ! सहर्ष स्वीकार है ।

अर्जुन—यही मैं चाहता तुमसे, न बिछुड़न अब हमारा हो ।
तुम्हारे साथ हम भी हों जहाँ कीर्तन तुम्हारा हो ॥
मिले तुम जिस तरह मुझको कृपा करके यहाँ भगवन् ।
मिलो उस तरह उन सबको करें जो प्रेमसे कीर्तन ॥

सब मिलकर—यही हमलोग भी चाहें कृपा कर दीजिये स्वामी ।
मिटें भवरोग उन सबका जो हों कीर्तनके अनुगामी॥

भगवान्—तुम सबकी शुभकामना है मुझको स्वीकार ।
मम प्रिय तुम सब भक्तियुक्त अरु ये भक्ति 'कुमार' ॥

(सब कोई प्रसन्नतासे उठकर भगवान्की आरती उतारनेके बाद भगवान्के सामने ही पूर्वोक्त रीतिसे गान प्रारम्भ करते हैं ।)

सब—हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संकीर्तनकी तुमुल ध्वनिसे रंगस्थली गूँज उठती है और हँसी-आनन्दमें धीरे-धीरे पटाक्षेप होता है ।)

जन्मकी सफलता

सोइ रसना जो हरि-गुन गावै ।
नैननिकी छवि यहै चतुरता, ज्यों मकरंद मुकुन्दहि ध्यावै ॥ १ ॥
निर्मल चित तौ सोई साँचौ, कृष्ण बिना जिय और न भावै ।
स्रवननि की जू यहै अधिकाई, सुनि हरिकथा सुधारस पावै ॥ २ ॥
कर तेई जे स्यामहि सेवैं, चरननि चलि वृंदावन जावै ।
सूरदास जैये बलि ताके, जो हरिजू सों प्रीति बढ़ावै ॥ ३ ॥

कीर्तनीयः सदा हरिः

(१)

(लेखक—श्रीमाताप्रसादजी त्रिपाठी, एम्० ए०)

परमेश्वरके नामकी महिमा किसी भी आस्तिकके लिये नित्य नयी प्रेरणा देती है। भारतीय शास्त्रोंमें इसके माहात्म्यका वर्णन यथावसर होता रहा है। ईश्वरीय गुणोंका गान कोई नयी बात नहीं—गुणानुवादकी परम्पराके स्रोत वेदोंमें भी सुरक्षित हैं। श्रीमद्भगवद्गीता भक्तिका एक अनुपम ग्रन्थरत्न है। वह भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा गायी जानेवाली 'गीता' बनकर भी एक चिरन्तन काव्य-रसका परिपाक है। 'गीता' में इस बातके स्पष्ट संकेत हैं कि 'इसका गान ऋषियोंने पहले अनेक बार किया था—**'ऋषिभिर्बहुधा गीतम्'**—वही कृष्ण भी कहे जा रहे थे। इसमें संदेह नहीं कि नामजप या संकीर्तन संगीतकी ओर व्यक्त होकर उसका अन्तःसंवेदन महाभावकी सृष्टि कर सकता है। ऐसे महाभारतमें मिलनेवाले ईश्वरीय नामोंके विविध स्तोत्र और उनके पौराणिक-ऐतिहासिक विस्तारके क्रमकी परख करें तो स्पष्ट होगा कि नाम-संकीर्तनकी परम्परा सनातन है और आस्तिक्य बुद्धिके लिये सदा-सर्वदासे महती संजीवनी-शक्ति रही है। इसके लिये किसी विशेष कर्मकाण्डका आश्रय आवश्यक नहीं। श्रीमद्भागवतके अनुसार 'श्रीहरिमें अहैतुकी और व्यवधानरहित प्रीतिके लिये सतत अनन्यभावसे सात्वतोंके पति भगवान् वासुदेवके नाम, रूप, लीलाका स्मरण, श्रवण और कीर्तन करते रहना चाहिये—

> तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः।
> श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा॥
> (१। २। १४)

राजा परीक्षित् महर्षि शुकदेवजीसे पूछते हैं कि 'प्राणियोंके कल्याणके लिये क्या श्रोतव्य है, क्या मन्तव्य एवं स्मरणीय है तथा मानवमात्रकी भलाई किसमें है?' इसपर महर्षि शुकदेवजीका कथन था—'मनुष्य यदि अभय-पद चाहता है, परम शान्ति तथा शाश्वत सुखकी उसे चाह है तो उसे सदा भगवान् श्रीहरिका ही श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण करते रहना चाहिये'—

> तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः।
> श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम्॥
> (२। १। ५)

प्राणिमात्रके कल्याणके लिये जिस विष्णु-नामके परम संकीर्तनकी अपेक्षा हमारे पूर्व महर्षियोंद्वारा की गयी है, वह सकारण है, कलियुगका वस्तुतः यही मूलमन्त्र है। विष्णुपुराणके अनुसार सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञानुष्ठानसे और द्वापरमें भगवान्के पूजनसे मनुष्य जो कुछ प्राप्त करता है, वह कलियुगमें श्रीकेशवके नाम-संकीर्तनसे ही पा लेता है। तथा 'जिसके नामका विवश होकर भी कीर्तन करनेसे मनुष्य उसी क्षण सम्पूर्ण पापोंसे इस प्रकार मुक्त हो जाता है, जैसे सिंहसे डरे हुए भेडियोंसे उनका शिकार—

> अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
> पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव॥
> (वि० पु० ६। ८। १९)

'जान अथवा अनजानमें वासुदेवके कीर्तनसे समस्त पाप जलमें पड़े हुए नमकके समान गल जाते हैं और मनुष्योंको नरककी पीडा देनेवाले कलिके अत्यन्त उग्र पाप श्रीकृष्णका एक बार भी भली प्रकार स्मरण करनेसे तुरंत विलीन हो जाते हैं।'

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि वासुदेवस्य कीर्तनात्।
तत्सर्वं विलयं याति तोयस्थं लवणं यथा॥
कलिकल्मषमत्युग्रं नरकार्तिप्रदं नृणाम्।
प्रयाति विलयं सद्यः सकृत् कृष्णस्य संस्मृतेः॥
(वि० पु० ६ । ८ । २०-२१)

क्योंकि—

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥
(प्रपन्नगीता २०, महाभारत, शान्तिपर्व ४७ । ९१)

शान्तिपर्वकी इस उक्तिको उद्धृत करते हुए विष्णुसहस्रनाम (श्लोक १४) के भाष्यमें भगवान् शंकराचार्य कहते हैं— '**एवमादिवचनैः श्रद्धाभक्त्योरभावेऽपि नामसंकीर्तनं समस्तं दुरितं नाशयतीत्युक्तम्, किमुत श्रद्धादिपूर्वकं सहस्रनामसंकीर्तनं नाशयतीति॥**'

किं वा—

गङ्गास्नानसहस्रेषु पुष्करस्नानकोटिषु।
यत् पापं विलयं याति स्मृते नश्यति तद्धरौ॥
(गरुडपुराण १ । २३० । १८)

'हजार बार गङ्गास्नान करनेसे और करोड़ बार पुष्कर-क्षेत्रमें नहानेसे जो पाप नष्ट होते हैं, वे श्रीहरिके स्मरण मात्रसे ही नष्ट हो जाते हैं।' किंतु यह 'स्मरण' सामान्य नहीं है। इसकी विशिष्टता इस बातमें है कि आराधकको आराध्यके साथ तादात्म्य स्थापित करना होता है। मुझे यहाँ एक संस्मरण याद हो आता है—मेरे एक मित्रने मुझे एक व्यक्तिके पक्षाघातकी व्यथाकी कथा सुनायी। उन सज्जनको क्लेशसे छुटकारा पानेके लिये पक्षाघातके व्रणकी शल्य-चिकित्सा करानी थी। डॉक्टरने उन्हें जब बेहोशीकी दवा देनी चाही, तब उन्होंने कहा—'नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं है, मैं भगवन्नाम-कीर्तन आरम्भ करता हूँ। मैं जब अपने कीर्तनभावमें आ जाऊँ, तब आप आपरेशन कर दें।' आपरेशन इस प्रकार बिना बेहोशीकी दवाके हो गया और सफल रहा तथा उक्त सज्जनको कोई पीड़ा न हुई।

कहना न होगा कि हरिनाम-कीर्तनकी पराकाष्ठा हरिके अनन्त नामोंसे सहस्र नामोंकी 'कीर्ति' में है। नामोंकी पुनरावृत्तिमें उनका सौन्दर्यबोध तथा अनेकार्थता झलकती है। यहाँ केवल पदलालित्य हो, ऐसी बात नहीं—बार-बार दुहराये जानेमें नामकी एक मन्त्रबद्ध-शृङ्खला बन जाती है और तदनुरूप कीर्तन मानव-मेधाको शुचिता प्रदान करता है। यहाँ नाम ही मन्त्र है और यह मन्त्र-रव ऐसे परम संगीत-स्तरकी सृष्टि करता है, जो मन्त्र-विज्ञानकी दृष्टिसे अवर्णनीय है। इसका भौतिक ऐश्वर्य भी स्पष्ट है। आज चूँकि घोष करनेकी प्रवृत्तिका ह्रास होता जा रहा है, मशीनी युगमें नवीन संचार-माध्यमोंके कारण आधुनिक मानव 'घोषकी परम्परा' अथवा 'वाचिक परम्परा' के मूल्योंको खोता जा रहा है, अतः जिसे देखो 'कण्ठ-तालु' के गुणसे विरत भी (होता गया) है।

श्रीमद्भागवतके द्वितीय स्कन्धमें कहा गया है कि 'लोक-पितामह ब्रह्माने भी तीन बार आदिसे अन्ततक सम्पूर्ण वेदोंका मन्थन किया, पर उन्हें भी श्रीहरि-भक्तिके अतिरिक्त कोई दूसरा मङ्गलमय मार्ग नहीं दीख पड़ा। अतः प्रतिक्षण सर्वत्र भगवान् श्रीहरिके ही नाम-रूप-लीलाका श्रवण-कीर्तन करना चाहिये'—

भगवान् ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रतिरात्मन् यतो भवेत्॥
तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान् नृणाम्॥
(श्रीमद्भा० २ । २ । ३४, ३६)

(२)

(लेखक—श्रीविश्वनाथजी वसिष्ठ)

नाम-स्मरणकी महिमा संत महापुरुषों और शास्त्रोंने सर्वदा गायी है। कविकुलचूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदासजीने भगवन्नाम-गुणगानकी महत्ताके सारका दिग्दर्शन रामचरितमानसमें इस प्रकार कराया है—

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥
कलिजुग जोग जग्य नहिं ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥

राम-गुन-गाना अर्थात् संकीर्तन करना अन्यत्र भी कहा है—

हरेर्नामैव नामैव हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

नाम-स्मरण प्रायः दो प्रकारसे किया जाता है— **(१) उपांशु नामजप**—उपांशु जपकी विधिमें नाम-स्मरण करते हुए ओष्ठमात्र हिलते हैं और कण्ठ (स्वरयन्त्र)-में गति धीमी रहती है। **(२) अजपा-जप**—मौन होकर मनसे नाम-स्मरण करना अजपा-जप होता है। नाम-स्मरण करते समय दस नामापराधोंसे बचना चाहिये; तभी नामकी अचिन्त्य शक्तिका अनुभव होता है।

निम्न प्रकारसे नाम-जप करनेसे सद्यः लाभ होता है—(१) इष्टदेवका ध्यान करते हुए, (२) नामके अर्थका अनुसंधान करते हुए, (३) व्याकुलतापूर्वक (प्रेमसहित), (४) तैल-धारावत् (अखण्डरूपसे) और (५) पूर्ण श्रद्धा एवं दृढ विश्वासके साथ निरन्तर दीर्घकालतक जप करनेपर जो फल होता है, उसे शब्दोंद्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। गोस्वामीजी कहते हैं कि नामकी अनन्त महिमाका वर्णन कोई क्या कर सकता है—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई॥
राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
ब्रह्म राम तें नाम बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥

'राम' और 'राम-नाम'की तुलना करते हुए वे लिखते हैं—रामने एक गौतमकी पत्नीको, जो शापवश शिला हो गयी थी, तारा और 'रामनाम'ने तो करोड़ों खलोंकी मतिको सुधारकर उद्धार किया। कीर्तनका सामान्य अभिप्राय है, उच्च स्वरमें भगवान्‌का नाम या गुण-गान करना। संकीर्तनका विशेष अर्थ है कि सम्यक् रूपसे अर्थात् ताल, लय, स्वर मिलाते हुए रसिक भक्त-मण्डलीके साथ कीर्तन करना। इसका दिव्य प्रभाव संकीर्तन करनेवालोंपर ही नहीं, अपितु सुननेवालोंपर भी पड़ता है। सचराचर जगत् आनन्द-विभोर हो जाता है। कलिपावनावतार चैतन्यमहाप्रभुने संकीर्तनके प्रभावसे शेर, रीछ, हाथी-जैसे पशुओंको भी आनन्द-विभोर कर दिया था। उन्होंने न केवल जगाई-मधाई-जैसे पतितोंको पावन कर डाला, प्रत्युत समस्त देशके आबाल-वृद्ध नर-नारियोंको संकीर्तनकी अजस्र धारामें स्नान कराया।

सर्वप्रथम वैष्णवों और शैवोंके गुरु शंकरने डमरू बजाकर कीर्तन किया था और भगवती जगदम्बाने घुँघुरू बजाकर अपने पदचापसे उस आनन्दको द्विगुणित कर नृत्य करते हुए जगत्‌को संकीर्तनकी शिक्षा दी थी। इसी परम्परामें देवर्षि नारदने वीणा बजाते हुए संकीर्तनका प्रचार-प्रसार किया। महाभागवत प्रह्लादजीने नवधा भक्तिमें 'कीर्तन'-को दूसरे ही स्थानपर गिनाकर उसकी महिमाको प्रकाशित किया। कलिपावनावतार श्रीगौरहरिने श्रीकृष्ण-संकीर्तनको आनन्दके समुद्रको बढ़ानेवाला बताया है—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥

(शिक्षाष्टक १)

'चित्तरूपी दर्पणको शोधित करनेवाला, संसाररूप महादावानलको सम्पूर्णरूपसे बुझा देनेवाला, जीवोंकी कल्याणरूपिणी कुमुदिनीको विकसित करनेके

लिये भावरूपी चन्द्रिकाका वितरण करनेवाला, विद्यारूपी वधूका जीवनस्वरूप, आनन्दरूपी समुद्रको निरन्तर बढ़ानेवाला, बाहर-भीतरसे देह, धृति, आत्मा और स्वभाव सबको सर्वतोभावेन निर्मल और सुशीतल करनेवाला केवल श्रीकृष्ण-संकीर्तन ही विशेषरूपसे सर्वोपरि विजयी हो।'

षोडशकलावतार भगवान् अर्जुनको गीताका संदेश देते हुए नाम-स्मरणके गुप्त रहस्यका उद्घाटन यों करते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
(गीता ८।१४)

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च॥
(गीता)

एक नामका ही स्मरण मन लगाकर यदि यावज्जीवन प्रतिक्षण निरन्तर करते रहें तो भगवत्प्राप्ति हो जाती है। सभी कालमें निरन्तर मेरा स्मरण करे और अपने कर्तव्यका पालन करे।

नदिया-विहारी निमाई चाँद (चैतन्यमहाप्रभु)से एक भक्तने पूछा—'वैष्णव कौन है?' वे भक्तको आश्वासन देते हुए बोले—'जो एक बार भी भगवान्‌का नाम मुखसे लेता है, वह वैष्णव है।' आगे जब भक्तने पूछा कि 'परम वैष्णव कौन है?' महाप्रभुचैतन्यने कहा—'जो सदा हरिसंकीर्तन करता है, वह परम वैष्णव है।' अब प्रश्न यह उठता है कि 'सदा हरिसंकीर्तन कैसे हो?' सदा हरिसंकीर्तन करनेमें वही भक्त समर्थ होता है, जिसपर गुरुकृपा, इष्ट-कृपा तथा आत्मकृपा होती है। वस्तुतः यह कृपा-साध्य है, तथापि कलिपावनावतार महाप्रभुचैतन्यने अत्यन्त विनीत और वृक्षके समान सहिष्णु होकर सदा कीर्तन करनेको कहा है—

कीर्तनीयः सदा हरिः (शिक्षाष्टक)

दीनता—अपनेको तृणसे भी छोटा समझे। विपरीत परिस्थितियोंमें पेड़ उखड़ जाते हैं, किंतु तृण सदा झुक जानेसे जमा ही रहता है, नष्ट नहीं होता। दीनबन्धुकी प्राप्तिके लिये दीनताका होना परमावश्यक है। दीनताके विपरीत 'अभिमान' होता है। भगवान्‌का भोजन अभिमान है। अभिमानी व्यक्ति भगवान्‌को कभी प्राप्त नहीं कर सकता।

सहिष्णुता—सदा हरि-संकीर्तन वही कर सकता है जो परम सहिष्णु हो। सहिष्णुता भी सामान्य नहीं, अपितु वृक्ष-जैसी होनी चाहिये। वृक्षकी सहनशीलताकी कुछ विशेषताएँ हैं—(अ) किसीसे भी अपने पोषणके लिये जल आदिकी प्रार्थना नहीं करना, (ब) सर्दी, गर्मी, वर्षा, आँधी, ओले आदि सब कुछ नियतिपर आश्रित रहकर चुपचाप सहना, (स) अपने काटनेवाले शत्रुको भी उसी प्रकार फल, फूल, शीतल छाया आदि सब कुछ समान रूपसे देना, जैसे जल-सिंचन करनेवाले मित्रको देते हैं।

अमानी—अपने हृदयमें सम्मान पानेकी कामना, वासना न होना। भगवत्प्रेम-प्राप्तिमें सम्मानको महान् विघ्न समझना, गुणवान् होते हुए भी गुणहीनकी तरह व्यवहार करे, जैसे जड-भरत थे। प्रसिद्धि (कीर्ति) सदा हरि-संकीर्तन करनेकी इच्छा रखनेवाले साधकके लिये बड़ी बाधा है। उस साधकको यवन हरिदास, अम्बरीष आदि-जैसा अमानी होना चाहिये। ऐसे साधकको न केवल अमानी, अपितु समस्त सचराचर जगत्‌को भगवान्‌का रूप समझकर उसे सम्मान देना चाहिये (नतमस्तक होकर वन्दना करनी चाहिये)। गोस्वामीजी कहते हैं—

उमा जे रामचरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत का सन करहिं बिरोध॥
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥
सीयराम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

सदा हरिसंकीर्तन करनेवालेकी एक पहचान यह है कि वह अगाध प्रेम-समुद्रमें सदैव डूबा रहता है। दादूदयालजी कहते हैं—

रात दिवसका रोवना, घड़ी पहर का नाँहि।
रोवत-रोवत मिल गया, दादू साहिब माँहि॥

एक अन्य भक्तका भी कहना है—

क्षण चाढ़े क्षण ऊतरे, सो नहिं प्रेम कहाय ।
अष्टयाम भीगो रहै, प्रेम वही कहलाय ॥

गोस्वामी तुलसीदासजी सदा हरिसंकीर्तन करनेवाले व्यक्तिका चरित्र-चित्रण करते हैं—

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥

कलियुगमें संकीर्तनके संस्थापक एवं अद्वितीय प्रचारक महाप्रभु चैतन्य 'शिक्षाष्टक'में इसी प्रकारसे भाव व्यक्त करते हैं—

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति॥६॥

संकीर्तन करते हुए जिनके [illegible] प्रकट होते हैं, [illegible] (पुलक, गद्गद आदि) है। ऐसे भक्त ([illegible]) [illegible] कल्याण करते हैं।

हृदिस्थं कुरु केशवम्

(लेखक—प्रो० श्री[illegible])

सम्यक् रूपसे कीर्तन भगवत्-उपासनाकी श्रेष्ठ विधि है। श्रीपाद सनातन गोस्वामीजी उच्च स्वरसे नाम-संकीर्तनको परमोत्तम मानते हैं। गीताकथित विधिसे 'कीर्तन'-द्वारा पुरुषोत्तम-भाव अनन्य एवं अनमोल हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—'आसुरी सम्पदाओंके त्याग एवं दैवी सम्पदाओंके ग्रहणद्वारा साधक अपनी विशुद्ध बुद्धिको शुद्धकर अन्तःकरणमें पुरुषोत्तमकी स्थितिसे ब्रह्मीभूत होकर शोकमोहसे रहित हो जाता है और उसे भगवान्की पराभक्तिकी प्राप्ति हो जाती है (गीता १८। ५०-५४)। उस पराभक्तिसे साधक पुरुषोत्तमको, महिमा-सहित उनके स्वरूपको तत्त्वतः जान पाता है एवं तत्पश्चात् उसका अन्तःकरण —'वासुदेवः सर्वमिति' की अनुभूतिसे युक्त हो जाता है, अर्थात् उस पुरुषको सर्वत्र भगवान् वासुदेवका दर्शन होने लगता है और धीरे-धीरे उस अनुभूतिमें उसकी अचल स्थिति बन जाती है (गीता १८। ५५)। भगवान्ने इसीलिये 'मामनुस्मर युध्य च' कहकर आन्तर अनुस्मरणकी ओर ध्यान दिलाया है। स्मरणकी आवृत्ति-परम्पराको अनुस्मरण कहते हैं। वृत्तियाँ वासना या विकारोंका नहीं, अपितु वासुदेवका वासस्थान बनें। वाञ्छनीय और तैलधारावत् कीर्तन हो। अन्तरमें भगवद्-भावोंकी आवृत्ति कीर्तनकी आन्तर प्रक्रिया है। उसके बिना [illegible] है। [illegible] कीर्तन होता है और न उसका कोई आध्यात्मिक मूल्य ही है।

आध्यात्मिक अनुभूतिमें वृद्धि [illegible] होती है। अन्तःकरणकी एकाग्रतासे जब कीर्तन होने लगता है, तब पुरुषको पुरुषोत्तमका साक्षात्कार होने लग जाता है। कीर्तनमें आन्तर भाव-कम्पनका बाह्य अनुकम्पनमें रूपान्तर होता है। आरम्भमें वह अति सूक्ष्म होता है, किंतु कालान्तरमें स्थूलरूपमें सुस्पष्ट बनता जाता है। जैसे सूक्ष्म भावना स्थूल आकार ग्रहण करने लगती है। सूक्ष्म भावनाके क्रमशः प्रबल होनेपर वृत्ति भी क्रमशः विकसित होकर तद्रूप बन जाती है और अन्तमें अन्तःकरण आन्तर सूक्ष्म भावनाको बाह्य जगत्में स्थूल घनीभूत स्वरूप प्रदान करनेमें समर्थ बन जाता है। अतएव भगवान्ने कहा है कि जो जैसा निश्चय करता है, वह स्वयं वैसा ही बन जाता है (गीता १७। ३)। भावनानुसार ही सिद्धि होती है। हम जिस-जिस भावको आधार बनाकर भगवान्का आश्रय लेते हैं, भगवान् हमारे उसी-उसी भावको साकार कर देते हैं (गीता ४। १०)। कीर्तनमें भी भगवान्के प्रति किसी भावको आधार बनाया जाता है।

सामान्यतः कीर्तन स्थूल रूपमें कर्मेन्द्रिय वागिन्द्रिय-का कार्य है, जिसका संचालन प्राणशक्तिद्वारा होता है। भजनसे मन, प्राण और वागिन्द्रिय एक हो जाते हैं, प्राणोंकी गतिका भी नियमन होता है और आसन सिद्ध हो जाता है। फिर मन और प्राणका सुषुम्णामें प्रवेश होता है और प्राकृतिक आवरणके हट जानेसे भगवद्-ध्यानद्वारा भगवद्दर्शन सुलभ हो जाता है। इस प्रकार स्थूल भूमिका भी भगवद्-आविर्भावका आधार बन सकती है। कीर्तनकी यह विशेषता भी है कि उसकी बाह्य-क्रियामें उच्चस्वर, तालबद्धता एवं अन्तर्भावोंकी प्रबल उत्कृष्टतासे स्वय प्रस्फुट प्रच्छन्न शरीर-चेष्टाका योग हो जाता है। यह सब होते हुए भी 'सुरति'—चित्तवृत्ति भगवत्स्वरूपमें लीन रहती है। चित्तमें भागवत-भावका धाराप्रवाह बहाव रहता है। यह भावप्रवाह धीरे-धीरे प्रबलतम होकर बाह्य-जगत्‌में उच्चस्वरसे प्रवाहित हो जाता है। इसी समय भगवत्-प्रेमकी प्रबलतासे अभिभूत चित्तस्थितिके कारण बहिर्भजनमें—ताल, नृत्य, लय, आलाप आदिमें कभी-कभी कोई लय नहीं रहता, कभी-कभी लय स्वयमेव सम्पन्न होता है। इससे प्रभुका अन्तर्बाह्य-दर्शन होता है (ना० भ० सू० ८०)।

सामगानकी तरह उच्च एवं लयबद्ध स्वरके कारण कीर्तन प्रमुखतः नादप्रधान उपासना-प्रणाली है। नादोपासनामें कीर्तन सर्वोत्तम है; क्योंकि अनाहत नादानुसंधानमें भगवान्‌के निर्गुण-निराकार स्वरूपका अनुसंधान होता है, जो एक कठिन साधना है, जबकि कीर्तनमें भगवान्‌के सगुण-साकार पुरुषोत्तम स्वरूपका चिन्तन होता है, जिसमें सिद्धि सहज साध्य है। उच्च एवं लयबद्ध नादके कारण चित्तस्थैर्य एवं एकाग्रता—दोनों शीघ्र एवं सरलतासे प्राप्त हो सकते हैं; क्योंकि उच्च एवं लयबद्ध नादसे मनकी संकल्प-विकल्पजनित चञ्चलता शीघ्र ही मन्द पड़कर शान्त होने लगती है, जो योग-साधनामें आसनसिद्धिका प्राप्तव्य है। अतः चित्तकी जो स्थिति अष्टाङ्ग-योग-साधनासे कष्टपूर्वक प्राप्त की जाती है, वह कीर्तनसे सहज ही प्राप्त होती है। यही कारण है कि जैसे भक्तिको अन्य साधनाओंकी अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है, वैसे ही भक्तिमें भी कीर्तनको श्रेष्ठ माना गया है। संकीर्तनकी महिमा सबको सुविदित है। भागवतमें तो उसकी महिमा बड़ी स्पष्टतासे कही गयी है। शुकदेवजी कहते हैं—

'परीक्षित् ! दोषोंका महास्रोत होते हुए भी कलियुगमें एक महान् गुण है। इस कलिकालमें श्रीकृष्णका कीर्तन करनेमात्रसे ही समस्त बन्धनोंसे मुक्त परमपदकी प्राप्ति होती है। सत्ययुगमें विष्णुके ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञद्वारा उनके यजनसे और द्वापरमें उनकी परिचर्यासे जो फल प्राप्त होता है, वह कलियुगमें केवल उनके कीर्तनमात्रसे प्राप्त हो जाता है।' वैसे भगवान्‌के सभी नाम कीर्तनीय हैं। उनके स्वरूपका कीर्तन, ऊर्ध्वमहिमाका गान, लीला-गान आदि भी कीर्तनीय है। भावकीर्तनमें उनकी स्तुति, प्रार्थना, आत्म-निवेदन आदि भी कीर्तनीय है। श्रेयस्कामीको उनका नित्य ही सेवन करना चाहिये। कहा है—

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः॥
(श्रीमद्भा० १२ । १२ । ४७)

'यदि देश, काल एवं वस्तुसे अपरिच्छिन्न भगवान् श्रीकृष्णके नाम, लीला, गुण आदिका संकीर्तन किया जाय अथवा उनके प्रभाव, महिमा आदिका श्रवण किया जाय तो वे स्वयं ही हृदयमें आ विराजते हैं और उसके सारे दुःखको उसी प्रकार मिटा देते हैं, जैसे सूर्य अन्धकार-को और आँधी बादलोंको तितर-बितर कर देती है।'

दृढ़ वृत्तिवाले भक्तजन वृत्तिको नित्य ही वासुदेवमें एकाग्र रखते हुए उनका यत्न—अभ्यास करते-करते तथा भावपूर्वक उनको प्रणाम करते-करते उनका ही सतत कीर्तन करते हुए उनकी उपासना करते हैं। अतः अन्तःकरणकी समग्र वृत्तियोंको वासुदेवमें एकाग्र रख पाना ही श्रेष्ठतम पुरुषार्थ है। श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवजीने भी परीक्षित्‌को यही उपदेश दिया था—

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवम्।
म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम्॥
म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान् परमेश्वरः।
आत्मभावं नयत्यङ्ग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः॥
(१२।३।४९-५०)

'राजन्! आप सभी प्रकार भगवान् पुरुषोत्तमको ही हृदयस्थ कर लो। ऐसा करनेसे आपको परमगतिकी प्राप्ति होगी। जो लोग मृत्युके निकट पहुँच रहे हैं, उन्हें सब प्रकारसे परम ऐश्वर्यशाली भगवान्‌का ही ध्यान करना चाहिये। परीक्षित्! सबके परम आश्रय और सर्वात्मा भगवान् अपना ध्यान करनेवालेको अपने स्वरूपमें लीन कर लेते हैं।' नाम-संकीर्तनको ऋषियोंने मुक्तिका साधन निश्चित किया है। उनका कथन है—

मुक्तिमिच्छसि राजेन्द्र कुरु गोविन्दकीर्तनम्॥

'राजेन्द्र! यदि मुक्ति चाहते हो तो भगवान् श्रीगोविन्दका कीर्तन करो।' इससे अन्तःकरणकी शुद्धि हो जानेपर परमात्म-प्राप्ति हो जाती है।

संकीर्तन-योग

(लेखक—वैद्य श्रीधानाधीशजी गोस्वामी)

भारतीय वाङ्मयमें शब्दको अक्षर ब्रह्म कहा गया है। हम जिन-जिन शब्दोंका उच्चारण करते हैं, वे उसी क्षण समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त हो जाते हैं और सदाके लिये स्थायी बने रहते हैं। ब्रह्मकी तरह शब्द भी ज्योतिःस्वरूप ही हैं। शब्दरूप ज्योतिसे ही अन्तःकरणका अन्धकार नष्ट होता है। दण्डीने कहा है—

इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारान्न दीप्यते॥
(काव्यादर्श)

'यदि संसारमें शब्दज्योतिका प्रकाश न हो तो समस्त त्रिभुवन घोर अन्धकारके गर्तमें विलीन हो जाय। सारे जगत्‌का व्यवहार रुक जाय और मानव तथा पशुजीवनमें अन्तर करना भी सम्भव न हो।' अतः प्रत्येक मानवको स्वहृदयविराजित ज्ञानस्वरूप प्रभुसे आज्ञा लेकर ही वाणीसे शब्दोच्चारण करना चाहिये। विवेककी कसौटीपर कसकर 'पहले तोलो, फिर मुँह खोलो' की उक्तिके अनुसार उच्चारित शब्द वक्ता और श्रोता दोनोंके लिये कल्याणकारी होता है। वैयाकरण कहते हैं—

'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति।'

'विचारपूर्वक ठीकसे बोला गया एक शब्द भी इस लोक और परलोकमें कामधेनु-सम फलदायी होता है।' किंतु अविवेक-निःसृत एक शब्द भी समस्त मानव-जीवनको पतनके गर्तमें डाल देता है। जीवनको धन्य तथा कल्याणकारी बनानेवाला शब्द वही है, जो भगवान्‌की प्राप्तिमें सहायक हो सके; क्योंकि मानवका चरम और परम लक्ष्य प्रभुप्राप्ति ही है। ऐसे शब्द हैं—ईश्वरके दिव्य तथा पावन नाम। जिस साधनासे जीव भगवान्‌से सम्बन्ध स्थापित कर उन्हें प्राप्त करता है उसे ही योग कहते हैं। आचार्योंने आध्यात्मिक ग्रन्थोंमें इस योगके विविध रूप वर्णित किये हैं; जैसे—नामयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, प्रेमयोग, अष्टाङ्गयोग, राजयोग, कुण्डलिनीयोग, समाधियोग, सुरतियोग, स्वरोदययोग, लययोग, विरहयोग, सर्वाङ्गयोग, अनासक्तियोग, सत्सङ्गयोग, शरणागतियोग आदि। श्रीमद्भागवतमें समस्त योगोंको तीन रूपोंमें अन्तर्हित करके श्रीउद्धवजीके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए भगवान्‌ने कहा है—

'उद्धव! मैंने मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये तीन प्रकारके योगोंका उपदेश दिया है। ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग। इनके अतिरिक्त अन्य कल्याणकारी मार्ग नहीं

हैं। जो लोग कर्मों तथा उनके फलोंका त्याग कर चुके हैं, वे ज्ञानयोगके अधिकारी हैं। जिनके चित्तमें कर्मों एवं उनके फलोंसे वैराग्य नहीं हुआ है, वे सकाम व्यक्ति कर्मयोगके अधिकारी हैं। जो पुरुष न तो अत्यन्त विरक्त हुए हैं और न अत्यन्त आसक्त ही हैं तथा पूर्वजन्मके कर्मसे सौभाग्यवश जिनकी मेरे नामो एवं चरित्रोंमे श्रद्धा उत्पन्न हो गयी है, वे भक्तियोगके अधिकारी हैं। इस योगसे उन्हे मेरी प्राप्ति सरलतासे हो सकती है (भाग० ११। २०। ६-८)। श्रीमद्भगवद्गीतामे भी इसी योगत्रयीका उपदेश अर्जुनको देकर तीनोमे भक्तियोगको सुलभ, सर्वोपादेय और आशुफलदायी बताते हुए कहा—'जो निरन्तर मेरे सकीर्तन, भजन एवं ध्यानमें लगे हुए हैं, वे उत्तम योगी है। इस अनन्ययोगके वशीभूत मैं मृत्युरूप ससार-समुद्र-से उनका शीघ्र उद्धार करता हूँ।' (१२। २, ७)

जिस तत्त्वके जो देवता होते हैं, उसी तत्त्वके गुणोंसे वे शीघ्र प्रसन्न होते है। यथा—पाञ्चभौतिक जगत्के हेतुभूत पञ्चभूतोंमें आकाशतत्त्वकी प्रधानता और **'शब्दगुणक-माकाशम्'** इस वैशेषिक न्यायदर्शनके सूत्रानुसार आकाशका गुण शब्द है और आकाशके देवता श्रीविष्णु भगवान् हैं। ये देववृन्दमें प्रधान हैं। इनका पूजन-नमन सभी देवताओंका पूजन-नमन है—**'सर्वदेवनमस्कारं केशवं प्रति गच्छति'**। इसी प्रकार—**'तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या'** से सिद्ध है कि भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाले योगोंमें शब्दयोग सर्वोपरि है।

कीर्तन शब्दयोग है; क्योंकि कीर्तनके यौगिक अर्थमें तो भगवदाराधन-हेतु प्रयुक्त समस्त शब्द-पुञ्ज ही आ जाता है। वैसे शब्दयोगको साधकोंने तीन भागोमें विभक्त किया है—(१) नाम संकीर्तन-योग, (२) मन्त्रजप-योग और (३) स्तुति-प्रार्थना, कथा एवं प्रियसत्यभाषणयोग। इनमें भी नाम-संकीर्तन-योग भगवत्प्राप्ति एवं भक्तिकी उत्पत्तिमें प्रमुख कारण है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने परम-भागवत उद्धव जीकी जिज्ञासाका समाधान करते हुए कहा कि—'भक्तिका परम कारण अमृतमयी कथामें श्रद्धा तथा निरन्तर मेरे गुण लीला और नामोंका सकीर्तन करना है'—

पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम्।
श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम्॥
(श्रीमद्भा० ११। १९। १९-२०)

कीर्तन शब्दका रूढार्थ ग्रहण करनेपर कीर्तनको तीन स्तरोंमें विभक्त किया है—(१) भगवान्‌के प्रायः सम्बोधन परक पावन नामोंका उच्च एवं मधुर स्वरसे एकाकी या सामूहिक रूपसे मनोयोगपूर्वक बार-बार आवर्तन करना कीर्तन कहलाता है। (२) वही ताल-लय-स्वरमें वाद्ययन्त्रोंसहित मनोयोगसे किया गया सकीर्तन कहलाता है। (३) और वही सामूहिक रूपसे विविध वाद्य-यन्त्रोंसहित भाव-विभोर ऊर्ध्ववाहुसे नाच-नाचकर किया जानेवाला उद्दाम सकीर्तन कहलाता है।

भगवन्नामोंको उच्चस्वरसे बोलनेको कीर्तन और शनैः-शनैः जिह्वा या मनसे जपनेको जपयोग कहते हैं। इनमें किसी प्रकारके विधि-विधानका बन्धन नहीं होता—जब कि गुरु-प्रदत्त मन्त्रके जपमे विशेष विधि, सस्कार तथा अनुष्ठानकी आवश्यकता होती है। मन्त्रका उच्चारण भी उच्चस्वरसे नहीं होता; कारण, दैवीशक्तिके साथ गुप्त परामर्शको मन्त्र कहते हैं। गुरुके माध्यमसे ही गुप्त परामर्शरूपी मन्त्रसे सिद्धि प्राप्त होती है। सकीर्तन-योगके विधि-निषेधसे मुक्त होनेके कारण उसे प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह किसी वर्ण, जाति तथा अवस्था-का हो, इसका पूर्ण अधिकारी है। परमात्मप्राप्तिके इच्छुक साधकोंके लिये जब समाधि-योगादिकी साधना विकृत मनमें दुष्कर प्रतीत होती हो, स्मरण, ध्यान एवं जप आदिमें रजोगुणी अस्थिर मन पूर्वकी स्मृतियो तथा भविष्यत्‌के संकल्पोंके जालसे घिर जाता हो, वैसी स्थितिमे सकीर्तन-योग ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। इससे आलस्य, जड़ता और विषयासक्तिकी निवृत्ति होकर पवित्र भावनाओं और शुभ संकल्पोंका अभ्युदय स्वतः होने लगता है। भगवान् कहते हैं—

कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः।
योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाम्छनैः॥
(११। २८। ४०)

'काम, क्रोध आदि विघ्नोंको मेरे चिन्तन और नाम-संकीर्तन आदिके द्वारा नष्ट करना चाहिये तथा पतनकी ओर ले जानेवाले दम्भ, मद आदि विघ्नोंको धीरे धीरे महा-पुरुषोंकी सेवाके द्वारा दूर करना चाहिये।' 'योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः'—इस पातञ्जलयोग-सूत्रके अनुसार मनुष्यके चञ्चल एवं प्रमाथी मनकी वृत्तियाँ संकीर्तनमें अनायास ही स्थिर हो जाती हैं, अतः यह योग सरलतासे सिद्ध हो जाता है। इससे साधकको निःश्रेयस तथा तीव्र भक्तिभावकी प्राप्ति होकर सात्त्विक मन प्रभुमें सदाके लिये समर्पित एवं स्थिर हो जाता है। श्रीशुकदेवजीने कहा है—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां निःश्रेयसोदयः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥
(श्रीमद्भा० ३ । २५ । ४४)

'संसारमें मनुष्यके लिये सबसे बड़ी कल्याण प्राप्ति यही है कि उसका चित्त तीव्र भक्तियोगके द्वारा मुझमें लगकर स्थिर हो जाय ।'

संकीर्तन योगका तात्पर्य है कि संकीर्तन भगवानका साक्षात् रूप है, क्योंकि नाम और नामीमें अभेद सम्बन्ध होनेके कारण कीर्तनमें उच्चारित नाम प्रभुका साक्षात् स्वरूप हो जाता है । योग शब्दसे भी भगवान् ही अभिहित होते हैं क्योंकि योग कहते हैं समत्वभावको 'समत्वं योग उच्यते ।' समभाव ही भगवत्ता है 'समोऽहं सर्वभूतेषु' अतः संकीर्तनयोग सदा भगवत्स्वरूप ही परिलक्षित होता है । इन्द्रिय समूहमें वाक् जिसकी इन्द्रिय विषय शब्द कहलाते हैं । भावप्रधान ध्वनिसे आकृष्ट होकर सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा सगुण साकाररूपसे अवतरित होते हैं । जिन नामों-मन्त्रों एवं स्तुतियोंसे अभिहित होकर वे तत् तत् श्रीविग्रह धारण करते हैं, वे समस्त शब्द परावाणीके होते हैं । इनसे ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रकाशमें आती है और इन्हींसे ऋषि मुनि संत और भक्तजन परमतत्त्वका साक्षात्कार करते हैं । नाम संकीर्तन, कथा और सत्सङ्गसे मानवके नाडीकेन्द्रोंमें शुभ सत्त्वगुणकी जागृति होकर अन्तःकरणमें विवेक, त्याग, उपासना, सत्य, विनय, संतोष, सेवा आदिके भाव और सर्वविध आरोग्यताकी स्थिति उत्पन्न होती है, जिससे प्राणी ज्ञानी, महात्मा, सेवक, सतोगुणी भक्त और स्वस्थ कहलाने लग जाते हैं । फलस्वरूप पतनशील अहङ्कार, भोगासक्त बुद्धि तथा विषयासक्त मनके सारे मल नष्ट हो जाते हैं ।

निषिद्ध कोटिके कटु, असत्य, दुर्वचन (गाली गलौज), घृणित, निन्दित एवं निरर्थक शब्दोंके उच्चारण तथा श्रवणसे नाडी-केन्द्रोंमें रजोगुण और तमोगुणकी जागृति होकर अन्तःकरणमें काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, राग, द्वेष, प्रमाद, आलस्य, शारीरिक रोग, हिंसादि दुर्भावोंकी जागृति हो जाती है । इससे मनुष्य कामी, क्रोधी, लोभी, ईर्ष्यालु, प्रमादी, कपटी, आलसी, रोगी और दुर्जन हो जाते हैं । मनमें अस्थिरता, नास्तिकता, आदि दोष पूर्वक दुष्कर्मों (पापों)में आते हैं । इनसे बुद्धि भी मलिन हो जाती है, परन्तु जन्म-जन्मान्तरोंसे पापपङ्कमें लिप्त मनको भगवन्नाम ही शुद्ध करता है—

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
(श्रीमद्भा० १२ । १३ । २३)

पापोंको नष्ट करनेकी जितनी शक्ति भगवन्नाममें है उतनी अन्य किसी साधनमें नहीं है । मनुष्य पापी भी समस्त जीवनभरमें उतने पाप नहीं कर सकता, जितने पापोंको नाम-संकीर्तन नष्ट कर सकता है—

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥
(बृ० विष्णुपुराण)

नाम-संकीर्तन करनेवाले केवल स्वयं ही पाप-तापसे नष्ट नहीं करते अपितु जिस स्थानमें नाम कीर्तन करते हैं, उसको तथा औरोंको भी निष्पाप बना देते हैं । श्रीशुकदेवजीकी यह स्तुति भी इसीका प्रमाण ही है—

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥
(श्रीमद्भा० २ । ४ । १५)

कामनाओंसे मन चञ्चल बना रहता है । अतः साधकके उपासनामें बैठते ही मन कामनाओंके अनुसार अपना ताना बाना बुनने लग जाता है । कामना और वासनाके त्यागसे ही शान्ति मिलती है, सांसारिक भोग पदार्थोंके त्यागसे नहीं । उनकी इच्छाओंके त्यागसे ही शान्ति सम्भव है । इच्छाओंका त्याग करानेमें प्रभुभक्तिका पुट ही काम करता है, अतः ऐसी गति ही मनका निग्रह करके उसे निश्चल बना देती है । भगवानने उस रहस्यको उद्धवजीको समझाते हुए कहा था—

तस्मात् सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया ।
मय्यावेशितया युक्त एतावान् योगसंग्रहः ॥
(श्रीमद्भा० ११ । २३ । ६१)

मनको शुद्ध करनेका दूसरा उपाय बताया कि भगवान् स्वयं हृदयमें विराजित हो जायँ । किंतु यह तो मात्र कृपासाध्य है । ऐसी कृपा निष्काम नाम संकीर्तनसे ही प्राप्त की जा सकती है । भगवान् जिस भक्तके मनको निज मन्दिर बनाते हैं, यह तो वे ही जानें; किंतु भगवत्तत्त्ववेत्ता श्रीशुकदेवजी महाराजने केवल परीक्षित्को ही नहीं, समस्त जगत्के प्राणियोंको आश्वस्त करते हुए कहा है कि प्रेमसे भगवन्नामका संकीर्तन करने और सुननेवालोंपर परमकृपा करके श्रीकृष्ण उनके हृदयमें स्वयं

विराजमान हो जाते हैं; जिससे उनके मनःस्थित काम-क्रोधादिक विकार ऐसे नष्ट हो जाते हैं, जैसे भगवान् भास्करके उदय होनेपर रात्रिका अन्धकार तथा तीव्र वायुसे मेघमाला —

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः॥
(श्रीमद्भा० १२। १२। ४७)

तन्मयतासे संकीर्तन करनेवालोंके हृदयमें विराजकर कीर्तन सुननेमें श्रीरसिकविहारीको जैसा आनन्द आता है, वैसा न तो वैकुण्ठमें, न क्षीरसागरमें और न ही ध्यानोच्छ्वलित योगियोंके हृदयमें आ पाता है। भगवान्ने श्रीमुखसे स्वयं कहा है —

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥
(आदिपुराण, पद्मपुरा० ६। ९४। २५)

यही कारण है कि भक्त गोपालके गुण-यश-कीर्तनमें अनुपम सुखका अनुभव करते हैं। सूरदासजी अपनी इसी रसानुभूतिको व्यक्त करते हैं—

जो सुख होत गोपालहिं गाये।
सो सुख होत न जप तप कीन्हें, कोटिक तीरथ न्हाये॥
दिये लेत नहिं चारि पदारथ, चरणकमल चित लाये।
तीन लोक तृणसम करि लेखत नंदनंदन उर आये॥
बंशीवट वृन्दावन यमुना तजि वैकुण्ठ को जाये।
सूरदास हरिको सुमिरन करि, बहुरि न भव चलि आये॥

ऐसे दिव्य प्रेमकी पात्रता कीर्तनसे ही मनमें आती है। हरिनाम केवल मनको ही शुद्ध नहीं बनाता, अपितु संसारको पवित्र करनेवाले पुष्कर-प्रयाग आदि तीर्थों, गङ्गा आदि नदियोंको भी पावन बनाता है। कहा है—

वसन्ति यानि कोटयस्तु पावनानि महीतले।
न तानि तत्तुलां यान्ति कृष्णनामानुकीर्तने॥
(कूर्मपुराण)

भगवान् कपिलदेवजीसे भक्ति-ज्ञानोपदेश प्राप्त करनेपर माता देवहूतिने कहा था कि कुत्तेका मांस खानेवाला चाण्डाल भी यदि आपके नामोंका कीर्तन करता है तथा स्मरणपूर्वक प्रणाम करता है तो वह सभी प्रकारके तप, हवन, तीर्थस्नान, श्रेष्ठ आचरण और वेदाध्ययन-सम फल प्राप्त कर लेता है—

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्
यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते
कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥
अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥
(श्रीमद्भा० ३। ३३। ६-७)

नाम-संकीर्तन जैसे मनकी आधियों—काम-क्रोधादिको शान्त करता है, उसी प्रकार शारीरिक व्याधियोंका शमन कर स्वास्थ्य प्रदान करता है। दुःख और रोग भाग्यकी परिणति नहीं, पापके फल हैं। पापोंके मूल हैं—प्रमाद, आलस्य और प्रज्ञापराध। इनका निर्हरण (दूरीकरण) भी नामोंसे होता है। उदाहरणस्वरूप धन्वन्तरि भगवान्के नामोंका कीर्तन तथा जप करनेसे उन भीषण रोगोंका उपशम होता है, जिनको वैद्योंने असाध्य घोषित कर दिया हो। श्रीशुकदेवजीने कहा है—

धन्वन्तरिश्च भगवान् स्वयमेव कीर्ति-
र्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति।
(श्रीमद्भा० २। ७। २१)

भक्तराज प्रह्लादने रामनामका प्रभाव बताते हुए अपने पिताजीसे कहा कि तीनों दोषों, समस्त रोगों तथा सब प्रकारके भयोंकी एकमात्र औषध रामका नाम है। इसके कीर्तनसे अग्निकी भीषण ज्वाला भी मुझे शीतलता प्रदान कर रही है।

रामनामजपतां कुतो भयं
सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसंनिधौ
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

संकीर्तन और भजनमें रस आनेपर तन्मयता बढ़ती है और परम तृप्तिका अनुभव होने लगता है; क्योंकि रस ही भगवान्का स्वरूप है। शास्त्रोंमें कहा है—'**रसो वै सः**'। रसास्वादन न होनेपर भोजन एवं भजनमें अरुचि उत्पन्न हो जाती है। भावनासे सम्पृक्त क्रिया ही सिद्धिदात्री होती है। रस सांसारिक बाह्य साधनसमूहमें नहीं है। इनमें

जो रसकी प्रतीति हो रही है, वह तो शुक्तिमें रजतकी भाँति रसाभासमात्र है। रसका अगाध सिन्धु तो परमात्मस्वरूपसे अन्तःकरणमें विद्यमान रहता है। रसकी प्रारम्भिक प्रक्रिया रसना-इन्द्रियसे प्रारम्भ होती है। इसका अधिष्ठान जिह्वा है। 'मैं भगवान्का हूँ और भगवान् मेरे हैं'—यह विश्वास दृढ रखते हुए जिह्वासे भगवन्नामका कीर्तन करने, कथा सुनते और भगवद्दर्शन करते समय प्रभुके सौन्दर्य, माधुर्य एवं कारुण्य आदि गुणोंके भाव अन्तःकरणमें प्रवाहित होते रहनेसे अन्तरका वह दिव्य रस उस इन्द्रियकी क्रियाके साथ सम्पृक्त हो जायगा। फलस्वरूप नाम बोलने, चरित्र सुनने तथा दर्शन करनेमें रस आने लग जायगा। कीर्तन करते करते भगवद्भाव उद्रेक होनेपर रसना इन्द्रियका रस उच्छलित होकर वाक् इन्द्रियमें भर जायगा। ऐसा होनेपर कीर्तनमें वेगके साथ रस-सिन्धुमें ज्वार आकर भक्त शरीरके कण कणको रसाप्लावित करता हुआ रोम रोमसे प्रस्फुटित हो बाह्य-जगत्में फैलने लगता है। ऐसी रसमयी स्थितिको प्राप्त हुए रसिक भक्तजन संकीर्तन करते-करते जिस मार्गसे निकल जाते हैं, वहाँके वृक्ष, लताएँ, पशु-पक्षी भी नामोच्चारण करने लग जाते हैं।

कलियुगमें प्रकट होकर कीर्तनके साक्षात् अवतार श्रीचैतन्य महाप्रभुने हरिनाम सुना-सुनाकर कोटि-कोटि अधम-पापियोंका हठात् उद्धार कर दिया। उन्होंने एक बार कृपा करके एक भगवन्नामके असहिष्णु भीलको छू दिया तो वह जीवन-भर हरिनाम-रसिक बन गया। महाप्रभुजीकी कीर्तनस्वरलहरी जिन-जिन पशुओं एवं पक्षियोंके भी कानोंमें प्रवेश कर गयी, उन्होंने भी अपना प्राक्तन वैर भुलाकर नाच-नाचकर ताल बजाते हुए अपनी अपनी भाषामें कीर्तन करना प्रारम्भ कर दिया—

गौराङ्गके कीर्तनके श्रवणका। दे ताल नाचे मृग सिंह अजगर॥
निर्वैर हो नाम रंग मिला स्वर। गोविन्द दामोदर माधवेति॥

(प्राणनाथशतक)

पावन व्रजभूमिमें विचरण करनेवाले रसिक नामभक्तोंके सांनिध्य एवं स्पर्शसे वृन्दावनके वृक्षों और लताओंसे आज भी 'राधे राधे'की ध्वनि होती रहती है। परम नाम-भक्त संत तुलसीदासजीने अपने व्रजप्रवासमें इस मर्मकी अनुभूति करते हुए कहा था—

वृन्दावनके वृक्षको, मर्म न जाने कोय।
डार-डार अरु पातमें, राधे राधे होय॥

राधा कृष्ण सबै कहत, आक-ढाक अरु कैर।
तुलसी या व्रजभूमि में कहा सिया राम सों बैर॥

कुछ वर्ष पूर्व मारवाड़में जन्मी फूलीबाई बाल्यकालसे ही रामनामकी ध्वनि किया करती थीं। निरन्तर अभ्यासके कारण उनके हृदयमें नाम जाग्रत् हो गया। फलस्वरूप चलते-फिरते, खाते-पीते, यहाँतक कि गहरी निद्रामें सोते समय भी उनके मुखसे राम-ध्वनि चालू रहती थी। ध्वनि-परायण फूलीका स्पर्श पाकर उनके घरकी दीवारें, कपड़े, गहने, बरतन आदि सभी पदार्थ राम-नामकी ध्वनि करने लग गये थे। यहाँतक कि उनके द्वारा थापी गयी गोबरकी थोपियोंमें भी राम-ध्वनि निकलती थी। एक बार फूलीबाईकी थोपियाँ किसी पड़ोसिनने चुरा लीं। फूलीके कथनानुसार लोगोंने उनकी थोपियोंमें रामध्वनि सुनी तो चोरीका भेद खुला। यह अघटित घटना देखकर लोग आश्चर्यचकित रह गये। ऐसे नाम-भक्त जिस देश एवं कुलमें उत्पन्न होते हैं, वे धन्य हैं।

संकीर्तनका मुख्य उद्देश्य है— प्रभुको पुकारना, आह्वान करना; क्योंकि आह्वानसे ही स्थापना होती है। स्थापनाके अनन्तर ही आराधना प्रारम्भ होती है और आराधनासे प्रभु-प्राप्ति-रूप लक्ष्य सिद्ध हो सकता है। तन्मयतासे संकीर्तन करनेवालोंके निवासस्थानपर समस्त देववृन्द, सिद्ध, मुनि, पितर एवं तीर्थादिक उपस्थित होकर कीर्तन श्रवण करते हैं। वे उसे सुन परम प्रसन्न हो आशीर्वादात्मक वरदान देकर जीवनको सुखमय बना देते हैं। हाँ, संकीर्तन माधुर्य-रसपूरित होनेपर भी विषयासक्तिरूपी नमककी डलीको मुखमें रखनेवाले व्यक्ति कीर्तन-रूपी मिठाईमें मधुरताका आस्वादन नहीं कर पाते; जिनका नाम संकीर्तनमें आदर, प्रेम एवं आकर्षण नहीं है; अन्तरमें पूर्ण श्रद्धा, निष्काम भाव और समर्पण नहीं है; पर पूरे विश्वास और श्रद्धासे तल्लीन हो कीर्तन करनेवाले भक्तपर चारों प्रकारकी अमृत वर्षा होने लग जाती है—

नाम कृपामृतको बरसाता। प्रेमामृतका पान कराता॥
लीलामृतसे तृप्त बनाकर, भावरसामृत हिय सरसाता॥
संकीर्तनका सन्तमुखसे भक्तिरसायनको भर लोना।
जीवनका पल-पल अमूल्य है, बिना नाम के व्यर्थ न खोना॥

(नामरसायन)

अतः मानव-जीवनका प्रत्येक क्षण विश्वकी अमूल्य निधि एवं भगवत्प्रदत्त दिव्य थाती है। इन्हें भगवान्के अर्पण न करनेवाला मनुष्य दोषोंका भागी होता है। अर्थात्—'मनसा

वाचा-कर्मणा'—पूरे प्राणपणसे प्रत्येक श्वास, अवस्था तथा समयमें भगवन्नामोंका कीर्तन-स्मरण एवं श्रवण करके जीवनको सफल बनाना चाहिये। श्रीशुकदेवजीने कहा है—

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम्॥
(श्रीमद्भा० २। २। ३६)

कथा, गान और कीर्तन

(लेखिका—डॉ० धनवती मिश्र)

अपने प्रभुतक अपनी पुकार पहुँचानेके अनेक साधनोंमें कथा, गान और कीर्तन विशेष महत्त्व रखते हैं। कथामें जो कृतिमय गति है, वही कीर्तनमें तन, मन और प्राणोंकी आकुल-व्याकुल, अनुरागमय अभिव्यक्ति है। यह अभिव्यक्ति साधकको रसमें सराबोर कर देती है और श्रोताको सद्यः रस-स्नात। कथामें ज्ञानकी प्रधानता है, किंतु कीर्तनमें भावकी विशेष अपेक्षा है। कथामें आराध्यकी महिमा घटनाओंके सहारे तथ्यमय हो जाती है। इसमें वाणीका सुख है, श्रोताकी तुष्टिका पूरा ध्यान है तथा वाचकके बड़प्पनको भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके लिये पूर्व-योजना तथा स्थान-विशेषका भी ध्यान रखना पड़ता है। गानमें अपने प्रभुके गुणोंका बखान तथा साथ-साथ अपने 'स्व'का भी भान रहता है। भक्त और भगवान्—दोनों उपस्थित रहते हैं। इसमें 'स्व'की छूट नहीं रखते। 'हौं हरि पतित-पावन सुने।'—इसमें कैसी अद्भुत दीनता एवं निरभिमानतापूर्ण निवेदन है और 'दास तुलसी सरण आयो, राखिए अपनी।' में कितना वैराग्य तथा प्रभुपर विश्वास है, यह देखते ही बनता है।

कथा और गानसे अलग कीर्तनकी अपनी विशेषता है—'स्व'से विरति। विरति केवल 'स्व' से ही नहीं, श्रोतासे भी कोई अनुरक्ति नहीं; क्योंकि संसारमें जो सलोना है, मधुर है, वह सब उसके आराध्यकी आराधनाके समक्ष अलोना है, सीठा है। उसकी अनुभूतिमें केवल एक ही रस है—

'मीठो लागे नाम तेरो, मीठो लागे नाम।'

जीवन और जगत्का समस्त माधुर्य एक ही भाव-भूमिमें केन्द्रित हो जाता है। वह भाव-भूमि है—आराध्यके नामका निरन्तर गान। कौन-सा नाम! नाम वही जो जिसे भा गया। जैसे प्रह्लादके लग गयी राम-रटना और मीराके भीतर बैठ गयी गोपी, जो अपने जातीय धर्म-कर्मसे इतनी विमुख हो गयी कि निकली थी दही बेचने और पुकारने लगी—'कोई स्याम मनोहर ल्यो री।' ग्वालिन दहीका नाम ही भूल गयी और गली-गली 'हरि ल्यो, हरि ल्यो' पुकारते हुए घूमने लगी। यहाँ भक्तके भीतर 'हरि'-नामकी ऐसी हूक उठी कि वह अपने कर्तव्यको भी भूल गयी। कीर्तनका यह रूप आनेमें अनोखा है, अनुपम है। समूचा जीवन समा गया 'श्रीहरि' में। दही लेना, दही देना, दही खरीदना, दही बेचना। ऐसे ही रंगमें डूब गये थे, महाप्रभु चैतन्य। कीर्तनकी यह आत्म-विस्मृति न तो कथामें है, न गानमें; क्योंकि एकमें श्रोताकी उपस्थितिका ध्यान है, दूसरेमें अपने अस्तित्वका भान।

आत्म-विस्मृतिकी इस स्थितिमें भक्त अपनेको ही नहीं, अपने परिवेशको भी नगण्य कर देता है। भाव-विभोरकी यह स्थिति ब्रह्मानन्दके निकटकी स्थिति है, समाधिका सुख इसमे सहज सुलभ है। कोई भी नाम (एक प्रभुके अनेक नाम) सस्वर पुकारा जा सकता है। ताल और लय तो स्वयमेव स्वामिभक्त सेवककी तरह सदैव समुपस्थित हो जाते हैं।

कीर्तनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह नितान्त एकान्त और समिति-समूह दोनोंमें पूर्ण है, सफल है, जब कि कथा और गान नितान्त एकान्तमें अपूर्ण हैं, विफल हैं। कथामें प्रशंसाकी एक प्यास रहती है और गानमें भी उपहारकी आशा तो रहती ही है। यह प्यास और आशा भले ही प्रत्यक्ष न हो, किंतु कहीं-न-कहीं प्रच्छन्न तो रहती ही है। इसके विपरीत कीर्तन अपनेमें तुष्ट है, अपनेमें तृप्त है। उसे जब 'दुःख' ही नहीं, तब 'सुख' का प्रश्न ही कहाँ! वह निन्दा-स्तुतिसे परे है। उसमें तो बस एक ही लगन है—पुनः-पुनः उसी नामका गुण-गान, उसीका रस-पान। मन भी—वह मनमें इस तरह समाया है, जैसे—

मोहन की मुरलीमें राधा का नाम। राधे के मन में बसे घनश्याम॥

कीर्तनमें आराधक प्रभु-नामके हीरे-मोती गली-गली भी बिखराता है और एक स्थान-विशेषपर बैठकर लुटाता भी है। इसके आगेका काम पारखियोंका है, गुण-ग्राहकों-का है। वे चाहें तो इन्हें बीनकर, लूटकर, दैवी सम्पदासे समृद्ध हो जायँ; न चाहें, न सही; किंतु कीर्तनियाँ तो दोनों ही अवस्थाओंमें मगन हैं, मुदित हैं।

सुख-शान्तिका साधन—संकीर्तन

(लेखक—श्रीपरमहंसजी महाराज)

मानव-जीवनका परम उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है, इसके मार्ग-निर्देशक हैं शास्त्र एवं संत। जो दृढ़तापूर्वक इनके उपदेशोंका श्रद्धासहित अनुकरण करता है, वह लक्ष्य-प्राप्तिमें सफल होकर भगवत्साक्षात्कार कर लेता है। आज कलियुगमें मोहान्धकारमें पड़कर अधिकतर लोग पथभ्रष्ट हो रहे हैं। ऐहिक सुखके अतिरिक्त और भी कुछ है, इसे वे नहीं जानते। संत-शास्त्ररूपी अनुकूल आधारका त्याग करनेके कारण अशान्तिरूपी अग्निकी ज्वाला उनके चतुर्दिक् प्रज्वलित हो रही है। कलिने भयंकर रूपसे समस्त शास्त्र-संतनिर्दिष्ट धर्म-कर्मको ग्रसित कर लिया है, जिससे शास्त्र-संतके आज्ञानुसार आचार-पालन करनेकी सामर्थ्य भी मनुष्यमें नहीं है। वह केवल भोग चाहता है। आज मानवमें धर्म, सदाचार एवं परलोककी उपेक्षा हो रही है। पग-पगपर धार्मिक लोग लाञ्छित हो रहे हैं। दुःखके बादल मँडरा रहे हैं। इन बादलोंको दूरकर सुख-शान्तिकी स्थापना करनेका एकमात्र उपाय है—'भगवन्नाम-संकीर्तन'। गीतामें अर्जुनकी स्तुति है—

> स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
> जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
> रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
> सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः॥
> (११। ३६)

'प्रकीर्ति' शब्द यहाँ उच्चारण या कीर्तनका वाचक है, यहाँ 'प्र' उपसर्गका प्रयोग यह सूचित किया गया है कि श्रद्धापूर्वक प्रभुनामका कीर्तन या स्तुति करनेका भाव ही प्रकीर्ति अथवा संकीर्तन है। भगवन्नामके संकीर्तनसे विश्वमें महद्-आनन्द होता है। सम्पूर्ण दुःखोंके दूर होनेसे जगत् अति हर्षित होता है और जीवनमें परमात्मप्राप्तिका अनुराग होता है। समस्त दुःखोंके मूल कारण दुष्ट काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मत्सररूपी राक्षसगण भयभीत होकर दसों दिशाओंमें भाग जाते हैं। भगवन्नाम-जापक सिद्धगण भगवान्में ऐक्य भावको प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे भगवन्नामको बार-बार नमस्कार है। श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

> कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
> कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥
> (१२। ३। ५१)

'राजन् ! यद्यपि कलियुग दोषोंकी खान है, तथापि इसमें एक महान् गुण भी है; वह यह कि केवल भगवन्नाम-संकीर्तनके द्वारा मानव सर्वसंगविनिर्मुक्त होकर भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है।'

और भी कहा है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
(विष्णुपु० ६। २। १७)

'सत्ययुगमें भगवान् विष्णुका ध्यान करनेसे, त्रेतायुगमें यज्ञोंद्वारा यजन करनेसे और द्वापरयुगमें परिचर्या करनेसे मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल कलियुगमें भगवन्नाम-संकीर्तनसे प्राप्त होता है।' इस प्रकार केवल पुराणोंमें ही नहीं, अपितु कलिसंतरणोपनिषद्‌में भी संकीर्तनके लिये महामन्त्र निर्धारित करते हुए कहा गया है—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस महामन्त्रका ज्ञान, ध्यान, सदाचार, नियम, एकतानता तथा प्रेमभक्तिसे सम्पन्न होकर संकीर्तन करके मनुष्य सालोक्य-सामीप्य-सारूप्य और सायुज्य मुक्ति प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। यदि इस मन्त्रका साढ़े तीन करोड़ जप कर लिया जाय तो सद्योमुक्तिकी प्राप्ति होती है। भगवान् श्रीशंकरने जगन्माता पार्वतीसे सहस्र नाम जपके बदले राम-नाम जप करनेके लिये कहा था—

राम रामेति रामेऽति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥

सुमुखि ! भगवान्‌के नामका संकीर्तन विष्णुसहस्रनामस्तोत्रके पाठ करनेसे कई गुना अधिक महत्त्वपूर्ण है। तभी तो मैं निरन्तर 'श्रीराम-राम' संकीर्तन करता रहता हूँ। तुम भी नाम-संकीर्तन किया करो।'

'आयु तो अल्प है, उसमें नीच जीव सोच रहा है; क्योंकि करना तो बहुत कुछ है, उसमें क्या-क्या किया जाय ? पुराणोंका पार नहीं है, वेदोंका भी अन्त नहीं है, वाणियाँ भी अनेक हैं, किस-किसमें मन लगाया जाय ? काव्यकी कलाएँ अनन्त हैं, छन्दोंके बहुत-से प्रबन्ध हैं, बहुत-से रसीले राग-रस हैं, किस-किसका पान किया जाय ? परंतु हम सब बातोंकी निचोड़ एक बात बता दिये जा रहे हैं कि यदि आप अपना जन्म सुधारना चाहते हैं तो 'राम-राम' का संकीर्तन करते रहें। इसीसे कल्याण होगा; क्योंकि सुख-शान्तिका सम्यक् साधन है—संकीर्तन।

संकीर्तनसे समाधि

(लेखक—श्रीदाऊदयालजी गुप्त)

भक्ति-साधनामें 'संकीर्तन'का बड़ा महत्त्व है, किंतु यह प्रक्रिया कोई नयी नहीं, वरन् वैदिक कालसे चली आ रही है। साम-गायकका उद्गीथ-गान संकीर्तनसे भिन्न नहीं है। यज्ञादि अनुष्ठानोंमें मन्त्रमयी आहुतियाँ भी संकीर्तनका ही एक रूप हैं। ज्ञानीका संकीर्तन ज्ञानमयी वाणीसे और योगीका प्राणसे होता है। योगाभ्यासके द्वारा जब उसके प्राण पूरक-रेचक क्रियाएँ करते हैं तब वे भी एक प्रकारका जप, एक प्रकारका संकीर्तन ही करते हैं। उसमें जो ध्वनि होती है, उपनिषत्कारोंने उसे 'हंस' ध्वनि कहा है। वस्तुतः ऐसी ध्वनि एक दिन-रात—चौबीस घंटोंमें स्वाभाविक रूपसे ही इक्कीस हजार छः सौकी संख्यामें होती है। उसका यह क्रम कभी टूटता नहीं। यही हंस-ध्वनि पर्यायक्रमसे 'सोऽहं' बन जाती है। आगे चलकर ऐसी वृत्तिवाले कृतकृत्य होकर गा उठते हैं—'शिवः केवलोऽहं शिवः केवलोऽहम्।'

मनुष्यके प्रत्येक श्वास-निःश्वासके साथ ऐसी ध्वनि निकलती है, जिसे अजपा (गायत्री) जप कहते हैं। कानोंको बंद करके सुननेका प्रयास करें तो अनाहत ध्वनि निरन्तर ही चलती प्रतीत होती है। इसका तात्पर्य है कि 'संकीर्तन' जीवमात्रका स्वभाव

है । इसका यह अर्थ हुआ कि कर्मवान् व्यक्ति इन्द्रियोंके द्वारा संकीर्तन करते हैं और योगिजन प्राणके द्वारा; किंतु भक्तोंका संकीर्तन एक विशेष प्रकारका है, जिसमें न किसी कर्मकी अपेक्षा है, न ज्ञानकी, न योगाभ्यासकी ही । उसका कारण यह भी है कि भक्तिकी अनन्यतम अवस्थामें पहुँचनेपर भक्त और भगवान्में कोई भेद नहीं रह जाता । अतः परमश्रेष्ठ भक्त भी वन्द्य है । नारद-भक्तिसूत्र (४१)में स्पष्ट कहा है—**'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्'** अर्थात 'भगवान्में और उनके भक्तोंमें भेदका अभाव है ।'

ज्ञानी लोग भी आत्मा और परमात्मामें भेदको अमान्य करते हैं । महर्षि पतञ्जलि योगदर्शन (१ । २४) में कहते हैं कि 'क्लेश, कर्म, विपाक और आशय—इन चारोंसे रहित व्यक्ति ही ईश्वर है ।' क्लेश पाँच प्रकारके हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश । ये ही जीवमात्रको विश्वप्रपञ्चमें बन्धन-रूप पीडाकी प्राप्ति कराते हैं; क्योंकि ये ही चित्तमें विद्यमान रहकर संस्कार-रूप गुणोंके परिणामोंको सुदृढ़ किये रहते हैं । जीव इनसे मुक्त हो जाय तो स्वतः परमात्मस्वरूप हो जाता है । पर ऐसी भक्तिकी प्राप्ति कैसे हो ? इसका एक ही उपाय है कि भगवानका चिन्तन करें, उन्हींका गुण-कीर्तन करें । श्रीमद्भागवतमें भगवान् स्वयं ही उद्धवके प्रति कहते हैं—

एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् ।
मयि संजायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ॥

'उद्धव ! इस प्रकार आत्म-निवेदन करते हुए धर्म-पूर्वक मेरी उपासना करनेवाले मनुष्योंको ही मेरी भक्ति प्राप्त होती है । फिर उन्हें कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता ।' भक्त जब संकीर्तनमें निमग्न होता है, तब बाह्य विषयोंको भूल जाता है । उसकी इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं । योगिजन इस अवस्थाको प्रत्याहार कहते हैं । उस स्थितिमें उसे कोई द्वन्द्व व्यथित नहीं कर सकता । श्रीचैतन्यमहाप्रभु जब संकीर्तन-नृत्य करते, तब उन्हें सर्वत्र भगवान् ही दिखायी देते थे । मीरा नाचती थी तो उसकी आँखोंमें गिरिधर गोपाल नाचते थे और वह कह उठती थी कि 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई ।' इस अवस्थाको ध्येयवृत्ति कहते हैं, जिसकी प्राप्ति तभी सम्भव है, जब चिन्तनीय विषयमें पूर्णरूपसे निमग्नता उत्पन्न हो जाय ।

अष्टाङ्गयोगके अभ्यासीको क्रमशः यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहारतक पहुँचते हुए पाँच सीढ़ियाँ पार करनी होती हैं । छठी सीढ़ी धारणाकी है, वही ध्यानकी आरम्भिक प्रक्रिया है । योगियोंके अनुसार इसका अभ्यास सिद्ध होनेपर दीर्घ ध्यानावस्थाकी समाधि सिद्ध होती है । संकीर्तनमें तन्मय हुए पहुँचे साधक आनन्दमें इतने अधिक निमग्न हो जाते हैं कि उन्हें बाह्यविषयोंका किंचित् ज्ञान नहीं रह जाता । उस समय उनकी स्थिति किसी समाधिस्थ योगीके समान ही हो जाती है ।

संकीर्तनके स्वर-लयके साथ श्वासका संयोग प्राणायामकी सिद्धि प्राप्त करा देता है । संकीर्तन-साधकका चित्त जब भगवान्में लगता है, तब प्रत्याहार और धारणाकी सिद्धि सहज ही हो जाती है । संकीर्तनमें अधिक तन्मयता ध्यानमें अत्यन्त निमग्न करके साधकको समाधिकी अवस्थामें पहुँचा सकती है । भगवान्‌की प्राप्ति-का सरल साधन संकीर्तन ही है । पद्मपुराण ०६।९४।२५ तथा आदिपुराण १९ । ३५ में भगवान स्वयं ही नारदजीके प्रति कहते हैं—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

'नारद ! मै न तो वैकुण्ठमें रहता हूँ, न योगियोंके हृदयमें ही । मै तो वहीं रहता हूँ, जहाँ मेरे भक्त मेरे गुण-चरित्रोंको गाते हैं—संकीर्तन करते हैं ।' इस प्रकार भक्तोंको तन्मयतापूर्वक किये गये संकीर्तनके द्वारा योग-मार्गसे समाधिकी प्राप्ति सम्भव हो जाती है ।

निर्गुण, सगुण उभय-व्यञ्जक नाम

(वीतराग महात्मा श्रीजगन्नाथ स्वामीजी महाराज)

संसारके समस्त पदार्थोंको दो विभागोंमें विभक्त किया जा सकता है—१-अभिधान (नाम) और २-अभिधेय (नामी) रूपमें । नामात्मक प्रपञ्चोत्पादनानुकूल शक्त्यवच्छिन्न चैतन्यका नाम अभिधान है, अर्थात् नाममय स्वरूप-प्रपञ्चको उत्पन्न करनेवाली जो शक्ति है, उससे अवच्छिन्न चैतन्यका नाम अभिधान है एवं अभिधेयात्मक प्रपञ्चोत्पादनानुकूल शक्तिसे अवच्छिन्न चैतन्यका नाम अभिधेय है । कहनेका अभिप्राय यह है कि नाम (या संज्ञात्मक पद) अभिधान है, जिसे दार्शनिक भाषामें वाचक कहते हैं और अर्थ ही अभिधेय होता है, जिसे वाच्यार्थ (या पदार्थ) कहते हैं । 'घट' एक नाम है । उसका अर्थ है—'कम्बुग्रीवादिमान्' घट-पदार्थ, जिसमें हम जल रखते है। बिना नामके वाच्यार्थका या वस्तु-पदार्थका ज्ञान नहीं होता । बिना शब्द (नाम)के अर्थका भान न होना ही अर्थका शब्दपरतन्त्र होना सिद्ध करता है । इसी बातको वाक्यपदीयकार भर्तृहरिने कहा है—

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वशब्देन भाषते ॥

'ऐसा कोई प्रत्यय (ज्ञान) संसारमें नहीं होता, जो बिना शब्दके हो जाय । समस्त बोध शब्दद्वारा ही होता है।' वैयाकरणोंका तो यही सिद्धान्त है कि स्फोट (शब्द-तत्त्व) ही ब्रह्म है । **'स्फुटति अर्थोऽस्मात् इति स्फोटः'** अर्थात् शब्दसे ही अर्थका भान होता है।लोकमें भी देखा जाता है कि हमारे पास अनजानमे करोड़ोंका हीरा पड़ा रहता है, किंतु हम उसे एक साधारण पत्थर समझकर ही उससे व्यवहार करते है । जब कोई जौहरी आता है और उसका नाम 'हीरा' बतलाता है, तब हम उसे बड़ी सावधानीके साथ तिजोरीमें बंद कर रखते है । इसी बातको कलिपावनावतार गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

रूप बिसेष नाम बिनु जानें । करतलगत न परहिं पहिचानें ॥
नाम निरूपन नाम जतन तें । सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ॥

तत्त्वकी बात तो यह है कि मन्त्रब्राह्मणात्मक वेदमें सबका अधिकार नहीं है; किंतु नाममें प्राणिमात्रका अधिकार है । गङ्गासे लाये हुए जलमें सबका अधिकार नहीं है, किंतु गङ्गामें प्राणिमात्रका अधिकार रहता है । गङ्गासे लाये हुए जलको कोई अनधिकारी स्पर्श कर ले तो वह पूजाके योग्य नहीं रह जाता, किंतु उसी जलको पुनः गङ्गामें डाल देनेपर वह पूजनके योग्य हो जाता है । यही नहीं, प्रत्युत **'सुराप्रवाहो गङ्गायां पतितस्तन्मयो भवेत्।'** 'गङ्गामें मदिरादि अपवित्र जल भी गिरनेसे गङ्गा ही बन जाता है।' ऐसे ही अनधिकारी वेदाध्ययन करेगा तो वह अनर्थका भागी बन जायगा, किंतु जब वह चारो वेदोंका सारसर्वस्वभूत, निर्मल, निष्कलङ्क गङ्गाके पवित्र प्रवाह-तुल्य नामका आश्रयण करता है, तब चारों वेदोके फलको प्राप्त कर लेता है। गोस्वामीजी महाराजने रामचरितमानसमें इसे ही **'ब्रह्माम्भोधिसमुद्भव'** शब्दसे अभिहित किया हैं । जिस प्रकार अग्निको अग्नि समझकर या अज्ञानपूर्वक स्पर्श करें तो अग्नि जलाती ही है, उसी प्रकार नामरूपी वस्तुका प्रभाव है । जब निरन्तर नामस्मरण किया जाता है, तब नाम अपना प्रभाव दिखाता ही है । जब हम किसीको अपशब्द कहते हैं, तब सुननेवाला व्यक्ति रुष्ट हो जाता है । जब एक अपशब्द अपना चमत्कार दिखाये बिना नहीं रहता, तब अप्राकृतिक भगवन्नाम अपना प्रभाव दिखाये तो इसमे आश्चर्य ही क्या ?

भगवान् शंकराचार्यजीके शिष्य आचार्य सुरेश्वराचार्यजीने तो नामकी महिमापर अपने-आपको ही

समर्पित कर डाला है। उनका कहना है कि लोकमें तो नाम एवं अर्थका सम्बन्ध लेकर ही प्राणी व्यवहार करता है, किंतु जब दस व्यक्ति सो रहे होते हैं, उनमेंसे एक व्यक्तिको बुलाया जाता है, तब एक ही व्यक्ति क्यों जागता है ? उस समय तो उस सोनेवाले व्यक्तिकी आत्माका तथा उसके नामका सम्बन्ध नहीं हो पाता। फिर उन सभी व्यक्तियोंमेंसे वही क्यों जागता है ? इसका समाधान करते हुए स्वयं आचार्यजीने कहा है कि 'नाममें एक अचिन्त्य दिव्य शक्ति रहती है। वह शक्ति **'अगृहीत्वैव सम्बन्धम्'** नाम एवं नामीके सम्बन्ध न होनेपर भी दिव्याचिन्त्य शक्तिके बलसे नामको आकृष्ट कर लेती है। अतः जिसे हम नाम लेकर पुकारते हैं वही जागता है।' श्रीतुलसीदासजी महाराज तो यहाँतक कहते हैं कि वेदान्त-वेद्य निर्गुण ब्रह्मको तथा वेदान्तवेद्य भक्त-हृदय-परिभावित सगुण ब्रह्मको भी प्रकाशित करनेवाला नाम ही है—

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।'

जैसे देहलीपर रखा एक दीपक बाहर और भीतरके पदार्थोंको प्रकाशित करता है, ठीक वैसे ही नाम भी सर्वान्तरात्मा सर्वभूत निजस्वरूपको प्रकाशित करता है एवं अनन्त ब्रह्माण्डनायक सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ, सर्वान्तरात्मा कौसल्यानन्दन राम अथवा यदुनन्दन कृष्णको भी प्रकाशित करता है। इसी प्रकार यह (नाम) श्रीराजराजेश्वरी षोडशी महाषोडशी श्रीत्रिपुरसुन्दरी कामेश्वराङ्कनिलया अम्बा गौरी, अनाथनाथ विश्वनाथ भगवान् शंकर, श्रीकृष्णाराध्या श्रीरासेश्वरी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा और अनन्त ब्रह्माण्डजननी मिथिलेशकिशोरी भूमिजा प्रणिपात-प्रसन्ना श्रीसीताको भी प्रकाशित करता है। अतः नामसे नामीका साक्षात्कार सरलतासे हो सकता है, संकीर्तन इसका सुगम साधन है।

क्या नाम-महिमा अर्थवाद है ?

(लेखक—अनन्तश्री स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती)

['न्याय-भास्कर' तथा 'नामचिन्तामणि' ग्रन्थोंके प्रणेता श्रीलक्ष्मीधरजीने भगवन्नाम-कौमुदी ग्रन्थकी भी रचना की थी। इसपर मीमांसक-शिरोमणि श्रीआपदेवके पुत्र अनन्तदेवकी 'प्रकाश' नामक टीका प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ एक बार अच्युत ग्रन्थमालासे संस्कृत-टीकासहित एवं दूसरी बार गीताप्रेसमें हिन्दी-टीकासहित प्रकाशित हुआ था; परंतु इस समय यह ग्रन्थ अलभ्यप्राय है। नाम-महिमाके प्रतिपादक मान्य ग्रन्थोंमें यह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। पूज्य स्वामीजी महाराजने सर्वसाधारणके हितकी दृष्टिसे कृपापूर्वक इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थका संक्षिप्त सार प्रस्तुत किया है। नाम-महिमाके सम्बन्धमें तत्त्वजिज्ञासु पाठकोंको लाभान्वित होनेके लिये हम इसे क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं। —सम्पादक]

(१)

'भगवन्नाम-कौमुदी' मानव-मनको भगवन्नाम-संकीर्तनमें स्थिर तथा समाहित करनेके लिये रची गयी है। भगवान्‌के नाममें अर्थवादकी कल्पना करना पाप है और उससे नरक मिलता है, यह जानते हुए भी यहाँ उसे अर्थवाद माननेवालोंके मतका अनुवाद केवल इसलिये किया गया है कि उनका खण्डन किया जा सके। पापकी बात अपने मुँहमें लाना भी पाप है, फिर भी उस मतका निराकरण करनेके व्याजसे नाम-माहात्म्यका मनन करनेका सौभाग्य मिलता है, यही सोचकर उसका उल्लेख किया जा रहा है। अस्तु ! इस सम्बन्धमें वादियोंके दो पूर्वपक्ष हैं—

पूर्वपक्ष (१)—इतिहास-पुराण अपने मुख्य अर्थमें प्रमाण नहीं है। तात्पर्य यह कि जिन पुराण-वचनोंमें नाम-महिमा वर्णित है, उनका मुख्य अर्थ न लिया जाय। वेद कुछ करने या न करनेके लिये क्रमशः विधि एवं निषेध-रूप दो प्रकारके आदेश दिया करते हैं। जो वस्तु स्वयं सिद्ध है, उसे बतानेमें वेदोंका कभी तात्पर्य नहीं होता। आदेशात्मक (विधि) वचन ही प्रमाण माने जाते हैं, मन्त्र, अर्थवाद या उपनिषद् नहीं। वे तो किसी-न-किसी विधि-वाक्यमें ही विनियुक्त होते हैं या जप-पाठके काम आते हैं। जब वेदोंकी ही यह स्थिति है, तब उनके पीछे चलनेवाले इतिहास-

पुराण तो अपने वाच्यार्थमें कभी प्रमाण ही नहीं हो सकते। मीमांसाके आचार्य जैमिनिने स्पष्ट कहा है कि वेदमें जो यथार्थ नहीं, वह व्यर्थ है।

पूर्वपक्ष (२)—कुछ लोगोंका कहना है कि 'केवल विधि-निषेधपरक वेद-वचन ही प्रमाण हैं,' पर हम ऐसा नहीं मानते। धर्मके सम्बन्धमें तो यह बात ठीक है, किंतु वेद सिद्ध वस्तुके निरूपणमें भी प्रमाण हैं, यह मानना उचित नहीं है; क्योंकि आचार्योंने सिद्ध अर्थमें शक्ति और तात्पर्यको प्रमाण माना है। लौकिक रूपमें कहा जा सकता है कि जैसे तुम्हारे पुत्र हुआ है, यह सिद्ध अर्थ-बोधक वाक्य सुनकर भी वाक्यार्थबोध और सुखरूप फल प्राप्त होता है, वैसे ही वेद-वाक्य भी हैं। मन्त्र और अर्थवाद अज्ञात-ज्ञापक और विधिके उपयोगी अर्थके बोधक होते हुए भी अपने स्वतन्त्र अर्थके बोधक हैं। यदि कोई शब्द स्वभावसे ही निष्प्रतिबन्ध, निश्चितस्वरूप एवं प्रमाणान्तरसे अज्ञात वस्तुका ज्ञान कराये तो उसे प्रमाण माननेमें क्या संदेह है? माना कि मन्त्र और अर्थवाद विधिके अङ्ग हैं, पर उपनिषदें विधिका अङ्ग कैसे हो सकती हैं? उनमें तो आत्माके अकर्ता, अभोक्ता, असंसारी, अपरिच्छिन्न स्वरूपका वर्णन है, जिनका कभी कर्मका अङ्ग होना सम्भव नहीं। आत्माके इस स्वरूपको जान लेनेपर समस्त अनर्थोंकी निवृत्ति एवं परमानन्दकी प्राप्ति होती है। इसलिये यदि दूसरे प्रमाणसे यह विरुद्ध भी हो तो भी यही वास्तविक प्रमाण है और सब प्रमाणाभास हैं। कुमारिल भट्टने भी माना है कि इतिहास-पुराणोंके प्रमाणसे सृष्टि और प्रलय भी हमें अभीष्ट हैं।

जहाँतक अर्थवादका प्रश्न है, वह तीन प्रकारका माना गया है—१-अनुवाद, २-गुणवाद और ३-भूतार्थवाद। जैसे 'अग्नि शैत्यका औषध है,' यह अन्य प्रमाणोंसे सिद्ध होनेपर भी वेद इसका 'अनुवाद' करता है। 'ब्रह्मचारी सिंह है' अथवा 'यूप आदित्य है' यह शौर्य, दीप्तिमत्ता आदि गुणोंके कारण कहा गया है, इसलिये 'गुणवाद' है। पहला उदाहरण प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध होनेसे वेदद्वारा अनुवादित है। दूसरा उदाहरण प्रत्यक्षादिके विरुद्ध होनेके कारण केवल गुणोत्कर्षका सूचक है। किंतु जो न प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे सिद्ध होता हो और न विरुद्ध हो, वहाँ 'भूतार्थवाद' नामक अर्थवाद माना जाता है। जैसे 'इन्द्रने वृत्रासुरको मारनेके लिये वज्र उठाया', यहाँ न दूसरे प्रमाणोंसे इसकी पुष्टि होती है, अर्थात् न सवाद है, न विवाद। ये सभी अर्थवाद वेदोंकी ही तरह इतिहास-पुराणोंमें भी आते हैं। इनका अपने अर्थमें प्रमाण है।

'यह ठीक है कि देवता-तत्त्व और कर्तव्य अर्थके प्रतिपादनमें स्मृतियोंका अपना विशिष्ट स्थान सुरक्षित है, उनकी इस महिमासे मुकरना सम्भव नहीं, फिर भी जहाँ बड़े-बड़े पापोंके प्रायश्चित्तका प्रसङ्ग आता है, वहाँ स्मृत्युक्त उन बड़े-बड़े प्रायश्चित्तोंका निषेध कर पुराण केवल नाम संकीर्तनमात्रका विधान कर दें—यह उचित नहीं। अतएव उनका अभिप्राय भजनीय, पूजनीय देवताकी स्तुतिमात्रसे है, अर्थात् जिस देवताका एक बार नाम लेनेपर ऐसा फल है, उसका यदि आजीवन भजन पूजन किया जाय तो वह क्या नहीं कर सकता। सारांश, पुराणके नाम-महिमासूचक वचन अपने मुख्य अर्थके बोधक नहीं, भजनमें प्रवृत्तिमात्र करानेके लिये हैं।' अब इनका उत्तर सुनें।

उत्तरपक्ष—इस सम्बन्धमें कहना यह है कि पुराण अपने मुख्य अर्थमें सर्वथा प्रमाण हैं। जैसे वेद कर्तव्यशासन और परमार्थ-शासन—दोनोंमें समान रूपसे प्रमाण हैं, वैसे ही पुराण भी हैं। जिस वर्णाश्रमधर्मका वर्णन वेदोंमें है, उसीका पुराणोंमें भी है। भागवतके प्रथम स्कन्ध, प्रथम अध्यायके 'धर्मः प्रोज्झितकैतवः' श्लोकमें धर्म, ज्ञान और भक्ति—तीनों ही स्पष्टतः भागवतके प्रतिपाद्य कहे गये हैं। महाभारतका भी यही कहना है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंके सम्बन्धमें जो कुछ इसमें है, वही अन्यत्र सर्वत्र है, जो इसमें नहीं, वह कहीं भी नहीं। त्रिकाण्डात्मक वेदके समान पुराण भी धर्म और ब्रह्म—दोनोंका प्रतिपादन करते हैं। अनेक पुराण तो मुख्यतः धर्मके प्रतिपादनमें ही गतार्थ हैं। जैसे वेद काण्डभेदसे नानार्थोंका प्रतिपादन करता है और वह अविरुद्ध है, उसी प्रकार पुराण भी हैं। पुराणोंका मुख्य विषय उपनिषद्-प्रतिपादित ब्रह्मात्मैक्य ही है। 'वेदा ब्रह्मात्मविषयाः'। वे कर्मका विधान भी कर्म-मोक्षके लिये करते हैं—'कर्ममोक्षाय कर्माणि।' तीनों काण्डोंकी एकवाक्यता जैसी वेदोंमें होती है, वैसी पुराणोंमें भी है। अतएव धर्मशासन और ब्रह्म-शासन—दोनोंमें पुराणोंका भी वेदवत् प्रामाण्य है।

पुराण अर्थवाद नहीं

यदि कोई कहे कि यह तो ठीक है कि 'पुराणोंका धर्ममें भी तात्पर्य है, किंतु नाम-कीर्तनविषयक पुराणवचन स्मृत्युक्त बृहत् प्रायश्चित्तोंके विधानके विरुद्ध हैं, इसलिये उन्हें प्रमाण मानना युक्तियुक्त नहीं है।' इस प्रश्नका उत्तर यह है कि आपकी बात सुनकर वे लोग डर जायँगे, जिन्होंने मीमांसा

पारावारका तलस्पर्शी अवगाहन नहीं किया है। मैं आपसे पूछता हूँ कि आप नाम-महिमाके प्रतिपादक वचनोंको अर्थवाद क्यों मानते हैं? क्या नाम-कीर्तनके विधि-वाक्य नहीं मिलते या किसी कर्मविधि आदिके वे अङ्ग या शेष हैं, अथवा वे जिस पदार्थका प्रतिपादन करते हैं, वे उनके मुख्यार्थ नहीं, अविवक्षित अर्थ हैं? उन्हें अविहित माननेके दो ही कारण हो सकते हैं, या तो १—उनमें लिङ्, लोट् वा तव्य प्रत्यय न हों, या २—उनका वाच्यार्थ न हो, अर्थात् वैसा कीर्तनादि-रूप कोई कर्म ही न बन पाये। नाम-कीर्तनके प्रसंगमें अर्थ-वाद माननेके लिये ये दोनों कारण उचित नहीं; क्योंकि पूर्व-मीमांसाकी रीतिसे आदेशात्मक प्रत्यय न होनेपर भी काल-त्रयानवच्छिन्न द्रव्य-देवता-सम्बन्धसे योगविधिकी कल्पना की ही जाती है। जैसे—आग्नेय अष्टाकपाल। इसी प्रकार पुराण-के—'प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम्।'—

इस वचनानुसार कालत्रयानवच्छिन्न साध्य-साधन-सम्बन्धसे नाम-संकीर्तन-विधिकी सिद्धि हो जाती है। हरि-संस्मरण पापका एकमात्र और सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त है। अभिप्राय यह है कि पापोंका नाश करनेके लिये हरि-संस्मरण करना चाहिये। इसमें लिङ्, लोट्, तव्यत्—सबका समावेश है। दूसरा पुराणवचन है—

'हरिरित्यवशेनाह पुमान् नार्हति यातनाम्।'

अर्थात् अवशतावश भगवन्नामोच्चारण पाप-फलरूप यातनासे मुक्त करता है, अतः 'हरि-हरि' का उच्चारण करना चाहिये। वेदोंमें जहाँ 'यजते', 'जुहोति' ऐसे क्रियापद आते हैं, वहाँ भी लकारका परिणाम करके अथवा पञ्चम लकार मानकर विधि सिद्ध की जाती है। पूर्वोक्त प्रसङ्गोंमें भी 'अर्हति' आदि क्रियापद विधिबोधक ही हैं। यदि यहाँ किसी दूसरी विधिका अङ्ग होनेके कारण नाम-महिमा-प्रतिपादक वचनोंको अर्थवाद मानें तो वह कौन-सी विधि है, जिसके ये वचन शेष हैं? नाम-कीर्तन-विधिके ही शेष हैं अथवा किसी दूसरी विधिके? दूसरी विधिका तो संनिधान नहीं है और उपसंहार भी स्वतन्त्रतया नाम-संकीर्तन-में ही है। अतः यह और किसी विधिका शेष नहीं। जैसे, पूर्वमीमांसामें यह निर्णय दिया गया है कि 'जो प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहे, वह रात्रि-सत्रका अनुष्ठान करे'; ठीक उसी प्रकार यहाँ भी यह निर्णय करें कि 'जो पापक्षय चाहता है, वह नाम-संकीर्तन-विधिका नियोज्य अधिकारी है।' नाम-संकीर्तन अनुष्ठान है और पापक्षय उसका फल है। अतः नामविषयक विधि स्वतन्त्र है, कर्मविधिका अङ्ग नहीं।

एक और भी विलक्षणता ध्यान देने योग्य है—कर्मविधिमें हविष्-त्यागका कर्मभूत जो शब्द है, वही देवता है। जहाँ 'विष्णु' शब्द है, वहाँ विष्णु, जहाँ 'शिपिविष्ट' है, वहाँ वही! 'अग्नि', 'शुचि', 'पावक' सबकी यही स्थिति है; किंतु संकीर्तनमें ऐसा नहीं है। भगवान्‌का कोई भी नाम कहीं भी लिया जा सकता है। भगवान्‌का नाम ही अशेष पापहारी है। कर्मविधिमें पदार्थ-सम्बन्धसे भी नाम-संकीर्तनका अनुप्रवेश नहीं है। अतः नाम-संकीर्तनकी फल-श्रुति यथार्थ है, अर्थवाद नहीं। जहाँ वाक्यमें फलपरक विधिकी सम्भावना हो, वहाँ उसे अर्थवाद मानना अनुचित है; क्योंकि मुख्य अर्थ सम्भव होनेपर गौण अर्थकी कल्पना करना ठीक नहीं। क्या संकीर्तन क्रिया नहीं है? फिर उसके द्वारा फलोत्पत्तिमें संदेह क्या है? वह स्वतः फलसाधन है और फलके लिये ही उसका विधान है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि संकीर्तन-विधि स्वार्थ-परक ही है। ऐसा कौन-सा वाक्य है कि उसे विधिपरक न माना जाय। यदि कहे कि कोई साधक नहीं तो पूछा जा सकता है कि क्या स्वाध्यायके अध्ययनकी विधि संकीर्तन-विधिकी साधक नहीं? वहाँ केवल अध्ययनमात्र फलसाधक है या नहीं? एक-एक अक्षरका अध्ययन सप्रयोजन माना गया है। तब अक्षरोच्चारणके समान नामोच्चारण भी सप्रयोजन (सफल) क्यों नहीं? अतः नाम-संकीर्तन-महिमाका अन्यत्र तात्पर्य नहीं। वह जिस प्रकार कहा गया है, वैसा ही है, अर्थात् अर्थवाद नहीं है। इस तरह अबतक अर्थवाद होनेके तीनों कारणोंका विधि न होना, अन्य विधिका शेष होना और स्वार्थमें तात्पर्य न होनेका निराकरण हो जाता है।

नाम-कीर्तनके वाक्य विधि ही हैं

विधि क्या है? प्रेरक उपदेश—यह करो, यह मत करो। जो दूसरे प्रमाणसे ज्ञात न हो, अनुष्ठान-योग्य हो और अपने अभीष्टकी प्राप्तिका साधन हो, उसे 'विधि' कहते हैं। फिर भला इसमें लिङ्, लोट् मात्रके बन्धनकी आवश्यकता ही क्या है? वह किसी भी प्रकारके वाक्यसे ज्ञात हो सकता है। ठीक है, वाक्य-रचनाका बन्धन क्यों? चाहे जब कभी (काल-नियमके बिना) पापक्षयकी कामनासे नाम-कीर्तन करना चाहिये। वह करने योग्य है और उससे पापक्षय होता है।

आप अर्थवाद-अर्थवाद कहते हैं, परंतु उसे विधिका शेष भी मानते हैं। यदि विधि न होती तो यह शेष कहाँसे आता ? जिसकी विधि है, उसीका अर्थवाद होता है न ? क्या अर्थवादके बलपर उपस्थापित विधि फलप्रद नहीं हुआ करती ?

ये प्रत्यक्ष विधि-वचन—

भागवतमें 'कीर्तितव्यः' यह तव्य प्रत्यय विधायक है या नहीं ? 'नामानि गायन् विचरेत्'—यहाँ विचरेत् विधि नहीं तो क्या है ? 'संकीर्तयेन् जगन्नाथम्', 'गोविन्देति सदा वाच्यम्' 'नामानि पठेत्', 'विष्णोर्नामानि ईरयेत्' आदि असख्य विधि-वचनोंकी क्या कोई गणना कर सकता है ? अतः यह कहना कोई अर्थ नहीं रखता कि नाम-स्मरणमें विधि नहीं है।

ज्ञातव्य है कि विधियाँ अनेक प्रकारकी होती हैं—नित्य-विधि, नियम-विधि आदि। उनमें संध्या-वन्दनादि नित्यविधि है। प्रतिदिन स्वाध्यायके समान ही कीर्तन भी करना चाहिये। इसपर यह शङ्का हो सकती है कि नित्यविधियोंकी फलश्रुतियाँ तो अर्थवादरूप ही होती हैं, इसलिये उनका तात्पर्य कर्मानुष्ठानकी प्रेरणा देनामात्र है, स्वतन्त्र फलदान नहीं। इसका समाधान यह है कि विधि चाहे नित्य हो या अनित्य, वह फलके बिना पूर्ण नहीं होती। अतः आर्थवादिक फलको भी स्वीकार करना ही होगा। नाम-संकीर्तन-प्रतिपादक वचन सर्वथा सत्य हैं और उनके द्वारा पापक्षयरूप फल होना भी यथार्थ है। अतः पुराणोक्त नाम-सकीर्तन-महिमा विध्युक्त ही है—

कृष्ण कृष्ण मधुसूदन विष्णो कैटभान्तक मुकुन्द मुरारे।
पद्मनाभ नरसिंह हरे श्रीराम राम रघुनन्दन पाहि॥

(२)

प्रश्न यह है कि नाम-सकीर्तन पापक्षयका स्वय स्वतन्त्र साधन है या किसी श्रेष्ठ साधनका अङ्ग बनकर ? अवश्य ही नाम-कीर्तन-महिमाकी अर्थवादकताका निराकरण कर देनेपर इस प्रश्नका उत्तर हो जाता है, फिर भी अन्यान्य आक्षेपोंका निरसन कर अपना सिद्धान्त अत्यन्त दृढ़ करना भी स्थूणा-निखनन-न्यायसे युक्तियुक्त है।

संगति कैसे लगायी जाय ?

प्रश्न है कि जहाँ मन्वादि-प्रणीत स्मृतियों और पुराण-वचनोंके बीच विरोध उपस्थित हो, वहाँ किस तरह सगति लगानी चाहिये ? उदाहरणार्थ स्मृति-उपदिष्ट एवं पुराण-प्रतिपादित पाप-प्रायश्चित्तोंमें विरोध दीखता है। तब क्या दोनोंमें विकल्प मानेंगे ? अर्थात् पापक्षयके उद्देश्यसे मन्वादिद्वारा आदिष्ट या पुराणोंद्वारा उपदिष्ट, दोनोंमेंसे कोई भी एक करे ? बारह वर्षके व्रत और नामोच्चारण-मात्रमें तो स्पष्ट ही महान् अन्तर है। दूसरी व्यवस्था यह सम्भव है कि दोनोंका समुच्चय कर लिया जाय, अर्थात् मन्वादि-सम्मत प्रायश्चित्त और पुराणादि-सम्मत भगवन्नाम-कीर्तन, दोनोंका साथ-साथ अनुष्ठान किया जाय, केवल एकसे पापक्षय सम्भव नहीं। तीसरी विधि यह भी हो सकती है कि अधिकारिविशेषके लिये नाम-सकीर्तन पापक्षयका साधन है तो दूसरे अधिकारीके लिये मन्वादिप्रोक्त प्रायश्चित्त। इसका नाम 'व्यवस्था' है। इस विधामें अधिकारीका निर्णय अपेक्षित होता है।

निःसंदेह भगवन्नामका माहात्म्य-श्रवण सबके लिये नित्यकर्मवत् है। स्मृतियोंके समान इसका मूल भी वेद ही है। इसे वैकल्पिक बना देना या विशेष प्रकारके अधिकारीके लिये निश्चित कर देना शास्त्रके शब्दोंकी स्वारसिक व्याख्या नहीं। अतः विकल्प और व्यवस्था—दोनोंद्वारा नाम-संकीर्तनकी सीमाको संकीर्ण बनाना कथमपि उचित नहीं।

अब रही बात समुच्चयकी, अर्थात् प्रायश्चित्त और संकीर्तन—दोनों मिलकर पापक्षय करते हैं, अलग-अलग नहीं। इस सम्बन्धमें हमारा निश्चय है कि नाम-कीर्तन पापक्षयका निरपेक्ष साधन है। यदि उसे मन्वादिप्रोक्त प्रायश्चित्तोंके सापेक्ष माना जाय तो पूर्ववत् ज्यों-का-त्यों शास्त्र-वचनोंका स्वारस्यभंग बना ही रहेगा।

क्या संकीर्तन प्रायश्चित्तका अङ्ग है ?

निःसंदेह कहीं-कहीं ऐसे वचन मिलते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि नाम-संकीर्तनादिरूप भक्ति प्रायश्चित्तका अङ्ग है। जैसे भागवतमें 'नारायणसे पराङ्मुखको प्रायश्चित्त पवित्र नहीं कर सकते।' 'नाम-संकीर्तन यज्ञ-यागादिके छिद्रों या हीनाङ्गोंकी पूर्ति कर देता है।' 'जप, होम आदिको भगवद्-भक्ति सफल बनाती है' आदि। इन वचनोंसे सिद्ध है कि नाम-संकीर्तन, नाम-स्मरणादि सभी कर्मोंके अङ्ग हैं। प्रायश्चित्त भी कर्मोंके ही अन्तर्गत है, अतः नाम-सकीर्तन प्रायश्चित्तका अङ्ग होकर ही पापक्षयका साधन हो सकता है, स्वतन्त्र नहीं। किंतु यह निर्णय न तो शास्त्र-सम्मत है और न युक्तियुक्त। अतः इस विषयपर विचार अनिवार्य है।

क्या भक्ति कर्म-कक्षामें नहीं आती ?

परमार्थ यह है कि भगवद्भक्ति और ब्रह्मविद्याकी कक्षा एक

ही है । भगवद्भक्ति कर्मकक्षामें नहीं आती । अतएव श्रीमद्भागवतका सिद्धान्त है कि कर्मद्वारा कर्मोंका आत्यन्तिक विनाश सम्भव नहीं, वासना शेष रह ही जाती है । फलतः पुनः पापाचरण होता है । इसलिये कर्मात्मक प्रायश्चित्त अज्ञानी अधिकारीके लिये है । वास्तविक प्रायश्चित्त तो विमर्श ही है । विमर्शके समान ही केवल भक्ति भी पापराशिका नाश कर देती है । भक्ति चाहे श्रवणरूप हो, कीर्तन हो, स्मरण हो, सबकी शक्ति अनन्त है । उसमें समूल पापोंके विनाशकी शक्ति है । अजामिल-सदृश पापी केवल एक बार पुत्रके उद्देश्यसे 'नारायण' नामका उच्चारण कर सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो गया । पापोंका प्रायश्चित्त तो हुआ ही; बुद्धि भी भगवद्विषया बन गयी । इस प्रसङ्गका एक श्लोक ध्येय है । धर्मराज कहते हैं—

> एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां
> संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ।
> विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि
> नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥

यहाँ मात्र भगवन्नामोच्चारणको सम्पूर्ण पापक्षयका हेतु माना गया है । कितनी विलक्षण वाचोयुक्ति है । 'अलम्' शब्दके साथ 'एतावता' यह तृतीयान्त प्रयोग है । तृतीयान्त प्रयोगका अर्थ है—अलमिति—अलमतिप्रसङ्गेन— अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है । 'अलम्'का अर्थ वारण है । यह जो भगवान्के गुण, कर्म और नामोंका संकीर्तन मनुष्योंके पापोंका क्षय करनेके लिये है, वह अनावश्यक है । निरन्तर इसके अनुष्ठानकी कोई अपेक्षा नहीं है । पाप-क्षयमात्र फल तो अत्यन्त तुच्छ है, जब कि भगवत्कीर्तन बहुत बड़ी वस्तु है । नन्हा-सा हल चलानेके लिये हाथी जोतना ! अब देखिये इसका विवरण । समग्र जीवन महापापमें लिप्त अजामिल शिथिल कण्ठसे 'नारायण' पुत्रको केवल एक बार पुकारकर मुक्त हो गया । उसने भगवान्का कीर्तन नहीं किया, सावधान भी न था । फिर भी उसने समस्त अनर्थ-निवृत्तिपूर्वक परमानन्दप्राप्तिरूप मुक्ति पा ली । पाप तो अनर्थका एक तुच्छ अंश है । उसे मुक्ति प्राप्त हुई—ऐसा नहीं कहा जा रहा है । धर्मराज कहते हैं—देखो, देखो, यमदूतो ! वह मुक्त हो रहा है । उनकी दृष्टिमें मुक्ति वर्तमान है । कैवल्य-मुक्तिके अवैध होनेपर भी सालोक्यादि मुक्तियाँ वैध होती हैं । अतः यमराज किसी इतिहासका वर्णन नहीं, प्रत्यक्ष दर्शन करा रहे हैं । भगवन्नामोच्चारणरूप महादावाग्नि समग्र महापापरूप महावृक्षको समूल भस्म कर देती है । एक जीवनमें होनेवाले पाप तो उसके लिये एक तृणके समान भी नहीं हैं । ऐसी अवस्थामें नामसंकीर्तन किसी दूसरे साधनके सहयोगसे पापक्षय करता है, ऐसी कल्पना करना ही भ्रान्तिमूलक है ।

भक्ति कर्मसे श्रेष्ठ और निरपेक्ष है

भागवतमें कहा गया है कि 'पापी पुरुष तप आदिसे वैसा पवित्र नहीं हो सकता, जैसा अपनी इन्द्रियोंद्वारा श्रीकृष्णका सेवन एवं श्रीकृष्ण-भक्तोंकी सेवासे होता है ।' श्रीकृष्णमें इन्द्रियोंको लगानेका अर्थ है, उनका भजन-पूजन, कीर्तनादि करना । इससे भी स्पष्ट कथन यह मिलता है कि 'वेदवादियों-द्वारा उपदिष्ट व्रतादिरूप प्रायश्चित्तद्वारा पापीकी वैसी शुद्धि नहीं होती, जैसी भगवन्नामके उच्चारणसे होती है ।' तात्पर्य यह कि कर्मसे होनेवाली शुद्धि और है, भक्तिसे होनेवाली और । यदि दोनों साधनोंमें अङ्गाङ्गीभाव होता तो यह सम्भव न होता; क्योंकि अङ्ग और प्रधानका फल एक ही हुआ करता है । विष्णुपुराणमें तपस्या एवं कर्मरूप सभी प्रायश्चित्तोंकी अपेक्षा श्रीकृष्णस्मरणको ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है । यदि कर्म अङ्गी होता और कीर्तन अङ्ग तो ऐसा कहना युक्तियुक्त न होता, क्योंकि अङ्ग अङ्गीसे कभी श्रेष्ठ नहीं होता । एक दूसरे स्थानपर यह वचन भी मिलता है कि 'पश्चात्ताप-युक्त पापीके लिये सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त केवल एक बार भगवान्-का स्मरण ही है ।' जो साधन द्वितीय सजातीय स्मरणको भी सहन नहीं करता, वह विजातीय प्रायश्चित्तको कैसे सहन करेगा ? नृसिंह-पुराणमें 'कृष्ण-कृष्ण', 'श्रीनृसिंह' कहनेमात्रसे ही नरक भोगते हुए पापियोंके उद्धार एवं वैकुण्ठ-प्राप्तिका वर्णन है । शिवपुराणमें भी 'हर-हर', 'नमः शिवाय'के उद्घोषको नरकमें यातना भोगते हुए प्राणियोंके लिये तत्काल शिवलोक-प्रापक बतलाया गया है । श्रीविष्णुधर्ममें जहाँ **'विमुक्तान्यसमारम्भः'** कहकर नारायणपरायणके लिये अन्य साधनोंका परित्याग उपदिष्ट है, वहीं गोविन्दनामोच्चारणसे एक क्षत्रबन्धुको गोविन्दत्वप्राप्तिका समुल्लेख है । यहाँ केवल कीर्तनमात्रसे ही समग्र पापोंका क्षय कहा गया है । निष्कर्ष यह कि केवल हरिसंकीर्तन ही समस्त पापोंके क्षयका साधन है । उसे न तो कर्मादि किसी अन्य साधनोंके समुच्चयकी अपेक्षा है और न वह स्वयं किसी दूसरे साधनका अङ्ग है ।

नाम-संकीर्तनकी केवलता क्या ?

कारणकी पुष्कलता ही केवलता है। इसीको निरपेक्षता भी कहते हैं। वह कार्यके पूर्व क्षणमें नियत रूपसे रहता है। इसीको कार्योत्पत्तिकी सामग्री कहते हैं। जिसके बाद निश्चय ही कार्य सम्पन्न हो जाय, वही पुष्कल कारण है। दूसरे साधनकी अपेक्षा रखनेपर वह 'पुष्कल' नहीं हो सकता। कारणकी यह पुष्कलता कहीं एकमें ही होती है; जैसे संयोगका नाशरूप कार्य केवल विभागमें है। कहीं दोमें होती है, जैसे स्वर्ग-प्राप्तिरूप कार्यके प्रति पुष्कलता दर्श तथा पौर्णमास दोनोंमें ही है, कहीं अनेकमें होती है, जैसे घटरूप कार्यके प्रति दण्ड, चक्र, चीवर, कुलाल आदि सभीमें है। जहाँ अनेक पुष्कलकारणस्वरूप बनते हैं, वहाँ वे अपने आश्रयमें मिल-जुलकर ही बन पाते हैं; किंतु जहाँ एकमें ही पुष्कलकारणता हो, वहाँ उसमें वह सम्पूर्णतया होती है। नामसंकीर्तनरूपा भक्तिमें पापक्षयकी पुष्कलकारणता विद्यमान है, इसलिये पापक्षयके लिये उसे किसी दूसरेसे मिल-जुलकर रहनेकी आवश्यकता नहीं है।

पूछा जा सकता है कि आरम्भवादमें तो अनेक कारण होते हैं; जैसे समवायी, असमवायी, निमित्त कारण। परिणाम एवं विवर्तमें भी उपादान एवं निमित्त दो कारण हैं। फिर एकमात्र भक्तिमें ही पुष्कलकारणता क्यों ? समाधान यह है कि हमने भक्तिको पापक्षयरूप कार्यका एकमात्र निमित्त कारण कहा है, उपादान कारण नहीं। उपादान कारण तो स्वतःसिद्ध आत्मा है और उसे शास्त्रकी कोई अपेक्षा नहीं। शबरस्वामीने स्पष्ट कहा है कि मुझे किस वस्तुकी प्राप्तिके लिये साधन करना है, यह तो पुरुषको ज्ञात ही रहता है। मात्र वह उसका उपाय नहीं जानता, अतः उसे उपायका उपदेश किया जाता है।

यदि यह शङ्का करें कि अकेला निमित्त कारण निरपेक्ष पुष्कलकारण कैसे हो सकता है ? अथवा केवल निमित्त-कारणमात्रसे ही किसी कार्यकी सिद्धि कैसे हो सकती है तो वह भी ठीक नहीं। कारण, प्रकाशके संयोगमात्रसे ही अन्धकार-निवृत्ति सार्वजनिक प्रत्यक्षकी वस्तु है। अतः 'केवलया भक्त्या' भागवत-वचनका यह अर्थ है कि मधुसूदन भगवान्का एक बार किया हुआ नामोच्चारण ही अशेष पाप-प्रध्वंसका पुष्कल कारण है; जैसे गगनाङ्गणमें अवतीर्ण तरणि (सूर्य) तिमिर-पटलको सर्वथा उखाड़ फेंकता है। निष्कर्ष यह कि भगवन्नाम-संकीर्तन बिना किसी अन्य सहकारके ही पापक्षयका साधन है। वह न तो किसीका अङ्ग है, न समुच्चित।

हमारा यह कथन कदापि नहीं कि मन्वादि स्मृतियोंमें कथित प्रायश्चित्त पापीको पवित्र नहीं करते। वे पवित्र करते हैं, परतु सम्यक् पवित्र नहीं; 'पुनन्ति, किंतु सम्यक् न पुनन्ति' अर्थात् भलीभाँति पवित्र नहीं करते। 'भलीभाँति'-का तात्पर्य यह है कि ये कर्मात्मक प्रायश्चित्त पापक्षय करते हैं, वासनाक्षय नहीं। कारण, वासनाक्षय कर्मसाध्य नहीं है। कर्म भगवद्विमुख व्यक्तिपर अपना अधिकार रखते हैं, वासना नाशतक उनकी पहुँच ही नहीं। वासनानाश तो भक्ति और ज्ञानसे ही होता है। नारायणका भक्त कर्मात्मक प्रायश्चित्तोंमें प्रवृत्त ही नहीं होता। साथ ही यह भी ध्यान देनेकी बात है कि कर्मसे कर्मका निर्हार होता है, अर्थात् कर्मसे कर्म कटते हैं, यह तो ठीक है; किंतु आत्यन्तिक रूपसे नहीं कटते—'न ह्यात्यन्तिक इष्यते'। कारण, वासनाएँ शेष रह ही जाती हैं। वे प्रायश्चित्त अभक्त-विषयक हैं। ब्रह्मविद्याके समान ही भक्ति कर्म-निर्हारका आत्यन्तिक साधन है। सवासन पुरुष कभी पाप करता है, कभी छोड़ता है। उसका प्रायश्चित्त तो गजस्नानके समान है। तप, दान, व्रतादिसे पाप मिटते हैं। शत-शत अधर्मसे बना हृदय शुद्ध नहीं होता। उसके लिये तो भगवद्भक्ति ही चाहिये।

यद्यपि नवधा भक्तिके सभी अङ्ग अत्यन्त शक्तिशाली हैं और सबमें सब पाप मिटानेकी सामर्थ्य है, तथापि यहाँ 'भक्ति' शब्दसे केवल कीर्तनरूप भक्तिको ही ग्रहण करते हैं; क्योंकि जैसे प्रत्येक गायका सींग पकड़-पकड़कर उसका परिचय दिया जाय, वैसे ही श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन आदिके भी पृथक्-पृथक् प्रभावोंका वर्णन पुराणोंमें समुपलब्ध होता है।

यह विचारणीय है कि जब मनुष्य एक बार पाप-पथपर चल पड़ता है, तब क्या पापसे पाप और फिर पापसे पाप—इस प्रकार उसकी अधोगतिकी परम्परा प्रारम्भ हो जाती है या नहीं ? पुराणोंमें 'पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी' ऐसे वचन भी मिलते हैं। मानव एक बार पाप करता है, फिर पाप करता है। परमेश्वर भी पूर्वकल्पीय स्वर्ग-नरक-सृष्टिके समान पूर्व-पूर्वकल्पीय पाप-पुण्यपरम्पराको भी जाग्रत् करता है; क्योंकि परम दयालु परमेश्वर कर्मसापेक्ष हुए बिना विषम

सृष्टिका निर्माण ही नहीं कर सकता। वेदान्त-सिद्धान्तमें भी प्राचीन संस्कार आदिकी अपेक्षाको स्वीकार करके ही इस मायामयी सृष्टिमें पक्षपात और निर्दयतारूप दोषोंका समाधान किया जाता है। ऐसी स्थितिमें जीव केवल कर्मानुष्ठानद्वारा पाप-पुण्य और उस फलकी परम्परासे मुक्त नहीं हो सकता। वह तभी मुक्त हो सकता है, जब परिपूर्ण परमेश्वरका अनुधावन कर कर्मपरम्पराके आत्यन्तिक नाशक अन्तः-करणशोधक भगवद्गुणानुवादका आश्रय ग्रहण करे। क्या ही सुन्दर कहा है—

विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्री-
तीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः।
नात्यन्तसिद्धिं लभतेऽन्तरात्मा
यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते॥

अर्थात् अनन्त भगवान्‌के हृदयमें प्रकट रूपसे विराजमान होनेपर आत्यन्तिक शुद्धिकी प्राप्ति होती है। साथ ही हमें यह भी स्वीकार है कि यदि कोई कर्मानुष्ठान करते समय भगवान्‌का नामोच्चारण करे तो इससे उसका गुण बढ़ जाता है, फल बढ़ जाता है। इसमें संदेह नहीं कि भगवान्‌का नाम जहाँ होगा, वहाँ मङ्गल एवं कल्याणका हेतु ही होगा। हमने तो केवल इतना ही प्रतिपादन किया है कि सर्वपुराणोंका परम तात्पर्य भगवन्नाम-कीर्तनकी प्रधानतामें है, वह किसीका अङ्ग अथवा शेष नहीं है। (क्रमशः)

पाँच सौ वर्ष पूर्व श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु

(लेखक—पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

कृष्णकृष्णेति भाषन्तं सुस्वरं सुमनोहरम्।
यतिवेषधरं सौम्यं श्रीचैतन्यं नमाम्यहम्॥

कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये चार युग हैं। कृतयुगमें भी त्रेता, द्वापर और कलि वर्तते हैं तथा कलियुगमें भी कृतयुग, त्रेता और द्वापर वर्तते हैं। इस प्रकार प्रत्येक युगमें शेष तीनों युग वर्तमान रहते हैं।

आजसे पाँच सौ वर्ष पूर्व इस कलियुगमें भी एक बार कृतयुग आ गया था। उस समय सम्पूर्ण भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तमें महापुरुषोंका प्रादुर्भाव हो गया था। वर्तमान वृन्दावन तो प्रत्यक्ष गोलोक ही दृष्टिगोचर होने लगा था। वृन्दावनमें सैकड़ों संत, महात्मा, त्यागी, विरागी, कृष्णानुरागी भगवद्भक्त सभी दिशाओंसे आ-आकर निभृत निकुञ्जोंमें निवास करने लगे थे। भारतके कोने-कोनेमें भक्ति-भागीरथीकी लहरें लहराने लगी थीं।

उन्हीं दिनों चैतन्यदेवने नवद्वीपकी पावन भूमिमें जन्म ग्रहणकर उसे पवित्र बनाया और पं० जगन्नाथ मिश्रको पिताका तथा परम भाग्यवती शचीदेवीको माता बननेका गौरव प्रदान किया। ये नीमके नीचे प्रादुर्भूत होनेसे निमाई और गौर अङ्ग (वर्ण) होनेसे गौराङ्ग कहलाये। "होनहार बिरवानके होत चीकने पात" की उक्ति इनपर पूर्ण चरितार्थ हुई। बाल्यकालमें खेल-खेलमें भी ये ऐसे कौतुक करते कि देखनेवाले आश्चर्यचकित हो जाते।

इन्होंने बाल्यकालमें व्याकरण, न्याय आदि शास्त्रोंका पठन-पाठन किया। ये पढ़कर महान् पण्डित हो गये। इन्होंने अपनी पाठशाला भी बना ली। पं० श्रीवल्लभाचार्यजीकी पुत्री लक्ष्मीदेवीके साथ इनका विवाह भी हो गया। ऊपरसे देखनेमें तो ये अब पूरे गृहस्थ पण्डित बन गये थे, किंतु इनके भीतर भक्ति-भावनाकी प्रचण्ड ज्योति जल रही थी, जो अभी पूर्णरूपसे प्रकट नहीं हुई थी।

इनके पिताश्री तो प्रथम ही परलोकवासी हो चुके थे, कुछ कालके पश्चात् इनकी प्रथम पत्नी लक्ष्मीदेवी भी चल बसीं। तब आपने अपनी माताजीके अत्यन्त आग्रहपर पं० सनातनमिश्रकी पुत्री विष्णुप्रियाके साथ विवाह कर लिया। यह केवल नाममात्रका ही विवाह था। केवल श्रीमती विष्णु-प्रियाके पातिव्रत, धर्म-निष्ठा और महान् त्यागको प्रकट करानेका एक नाटकमात्र ही था।

निमाई पण्डित अपनी जननी शचीदेवीको प्रसन्न करनेके निमित्त सब प्रकारका प्रयत्न करते। गृहस्थीके जो भी पुण्य-कार्य हैं, उन्हें विधिवत् करते थे। इस प्रकरणमें उन्होंने अपने पितरोंका पिण्डदान करनेके निमित्त गया-धामकी यात्रा भी की। शास्त्रोंका वचन है कि बहुत-से पुत्रोंको पैदा करना चाहिये, जिससे उनमेंसे कोई भी तो पितरोंके उद्धारके निमित्त गया जाकर पिण्डदान करेगा। इनके पितर तो इनके जन्मसे ही कृतार्थ हो चुके थे; किंतु लोकसंग्रहके निमित्त इन्होंने

गया-यात्रा की। गया-यात्रा क्या हुई, इनका जीवन ही पलट गया।

× × ×

श्रीचैतन्य गया पधारे। इन्होंने गयाका माहात्म्य सुना और चक्रबेड़ाके भीतर श्रीविष्णुके पादपद्मोंका दर्शन किया। दर्शन करते ही वे आत्म-विस्मृत हो गये। अब निमाई पण्डित प्रेम-पण्डित बन गये। सयोगकी बात, वहीं गयाजीमें ही इन्हे श्रीस्वामीमाधवेन्द्रपुरीजी महाराजके प्रधान कृपापात्र श्रीस्वामी ईश्वरपुरीजी महाराज मिल गये। निमाई पण्डितने नवद्वीपमे भी उनके दर्शन किये थे; किंतु उस समय वे निमाई पण्डित थे। अब तो वे श्रीविष्णुपादपद्मोंके स्पर्शमात्रसे परम प्रेम-पण्डित हो गये थे। लोक-मर्यादाको निभानेके निमित्त इन्होंने हठपूर्वक प्रार्थना करके पुरीजी महाराजको विवश करते हुए उनसे श्रीकृष्ण-मन्त्रकी दीक्षा ले ली।

मन्त्र-दीक्षा प्राप्त करते ही वे मूर्च्छित होकर धराधाम-पर धड़ामसे गिर पड़े। साथियोंने नाना उपचार करके इन्हे किसी प्रकार चैतन्य किया। बस, यहींसे पूर्वसे ही हृदयमें जमा हुआ प्रेम प्रवाहित होकर फूट पड़ा। उस प्रेमप्रवाहके प्रकट होते ही एक भक्तिकी ऐसी अजस्र धारा फूट पड़ी, जिसने सम्पूर्ण जगत्को प्रेम-प्लावित कर दिया।

× × ×

प्रेममें पागल हुए प्रेमी पण्डित पुनः नवद्वीपमे आ गये। अब इनका जीवन ही बदल गया। इन्होंने पाठशालाको तिलाञ्जलि दे दी और विद्यार्थियोंसे विदाई ले ली। व्याकरण-साहित्यके पाठके स्थानपर अब ये प्रेम-पाठ पढाने लगे; सकीर्तनकी धूम मचाने लगे; भक्तोंको जुटाने लगे, ताल-स्वरके साथ श्रीकृष्ण-नामोंका कीर्तन करने लगे, प्रेममें उन्मत्त होकर नाचने लगे; दीन होकर सबसे श्रीकृष्ण-प्रेमकी याचना करने लगे; रोने लगे; तडफड़ाने लगे। ये भक्तिके जो-जो लक्षण हैं, उन्हे अपने श्रीअङ्गोंमें प्रकटित करने लगे और साथियोंको श्याम-सुन्दरकी भक्तिका रसास्वादन कराने लगे। उस समय नवद्वीप प्रेमार्णव बन गया था। नर, नारी, बालक, युवा, वृद्ध—सभी प्रेमसागरमें निमग्न हो गये। जो उस समय थे, जिन्होंने उस प्रेम-महार्णवका दर्शन किया था, वे सभी कृतार्थ हो गये, धन्य हो गये, उनका जीवन सफल हो गया।

× × ×

अब श्रीचैतन्यके चिन्मय श्रीविग्रहमे भक्ति-भाव, धीर-भाव आदि अनेक भाव उत्पन्न होने लगे। इनमे कभी नृसिंह-आवेश तो कभी वाराहका आवेश हो जाता, कभी भक्तभाव तो कभी भगवत्प्रेम-भाव प्रकट हो जाता। इस प्रकार ये अनेक भावोंद्वारा, अनेक लीलाओंद्वारा, अनेक आवेशोद्वारा अपने अनुयायियोंको अत्यधिक आनन्दित करते हुए कालयापन करने लगे। उसी समय कहींसे घूमते-घामते अनन्त कालके अनुगत निमाईके भाई निताई (श्रीनित्यानन्दप्रभु) आ गये। उनके आनेसे आनन्द उमड़ पड़ा। अब निमाई-निताईकी नित्य-नूतन लीला आरम्भ हो गयी और भक्तिकी भागीरथी नवद्वीपमें हिलोरे मारने लगीं।

अब भक्तोंके ऊपर तो कृपाकी वृष्टि होने लगी। जो गुरु थे वे शिष्य बन गये; जो बड़े थे वे तृणसे भी नीचे हो गये; जो असहिष्णु थे वे तरुसे भी बढकर सहिष्णु हो गये; जो परम सम्भ्रान्त महामानी थे, वे अमानी हो गये और जो मानेच्छुक थे, वे मानदाता बन गये! इन्होंने सर्वप्रथम श्रीअद्वैताचार्यपर कृपा की और उन्हे श्यामसुन्दरके दिव्य दर्शन कराये। पुनः पुण्डरीक विद्यानिधिकी बारी आयी। इसी प्रकार अनेकानेक भक्तोंपर कृपाकी कोर पड़ी और उन्हे भगवद्-भावमें भावित कर दिया। अब महाप्रभुके अङ्गोंमें कभी परमदीनता उत्पन्न हो जाती तो ये प्रपन्न भक्तके सदृश सबकी चरणधूलिको मस्तकपर चढ़ाते, रोते, बिलबिलाते, अपनेको दीन बताते; कभी भगवद्-भावमे भावित होकर अपनेको भगवान् प्रदर्शित करते, भक्तोको आशीर्वाद देते तथा उनकी मनःकामनाएँ पूर्ण करते। इसी समय इन्होंने भक्त हरिदास-को अपनी कृपादृष्टिसे कृतार्थ किया—उन्हे यवनसे परम पावन बनाया, नाम-निष्ठाका आदर्श दिखाया। इस प्रकार एकको नहीं, अनेकोको भगवद्-दर्शन कराया तथा अपने यथार्थ रूपका परिचय दिया। इस प्रकार नवद्वीप हरिनाम-सकीर्तन एव भगवद्-भक्तिकी परम पावन पुण्य-स्थली बन गया। घर-घरमे, डगर-डगरमे, मुहल्ले-मुहल्लेमे हरिनाम-संकीर्तनकी दिव्य ध्वनि गूँजने लगी। इसी समय इन्होंने परम क्रूर जगाई-मधाईका उद्धार किया और उनकी क्रूरताको मिटा-कर उन्हें परम भगवद्-भक्त बना दिया।

× × ×

भगवद्-भक्तिके नाम, रूप, लीला और धाम—ये चार उपाय हैं। महाप्रभुने भगवन्नामका प्रचार जन-जनमें, घर-घरमें कर दिया। जिसे देखो, वही "हरि हरि बोल, बोल हरि बोल, मुकुन्द माधव गोविन्द बोल" कहते दिखायी पड़ रहा था।

इन्होंने नाम निष्ठाका ऐसा प्रवाह बहाया, जिसमें समस्त सुकृती-जन अनुप्रवाहित हो गये। सभी भगवद्-रूपके ऐसे लालची हो गये कि रूप-पान करते-करते अघाते ही न थे। सबकी रूप-पिपासा इतनी बढ़ गयी कि महाप्रभुके श्रीअङ्गोंमें ही उन्हें भगवान्‌के रूपका साक्षात्कार होने लगा। अब प्रभुने स्वयं ही श्रीकृष्णलीलाका अभिनय करना आरम्भ कर दिया। स्वय आपने श्रीरुक्मिणीजीका रूप धारण कर भक्तोंको आनन्दित किया, बहुतेरे भक्तोंको श्रीवृन्दावनधाममें भेजकर श्रीवृन्दावनका अधिक महत्त्व प्रकट किया, उसकी महिमा बढायी।

× × ×

उस समय देशमें यवनोंका शासन था। वे भक्तोंके भावोंको देखकर जलते-भुनते थे। इसे वे अपराध मानते थे। न्यायाधीश उस समय काजी होते थे। वे बात-बातपर वर्णाश्रमधर्मी आर्योंको दण्डित करते। इसी प्रकार एक काजीने संकीर्तनकारी भगवद्-भक्तोंको भी दण्डित करना चाहा; किंतु महाप्रभुके परमप्रभावके कारण उसने भी महाप्रभुकी शरण ग्रहण कर ली। इस प्रकार न जाने कितनोंको इन्होंने अपने पुण्य-प्रभावसे अभक्तसे भक्त बना दिया।

× × ×

रात्रि-दिन भगवद्-भक्तिकी ही चर्चा, भगवान्‌के ही सुमधुर मङ्गलमय नामोंका कीर्तन, भगवान्‌की ही कथा, भगवान्‌की ही लीला, भगवान्‌के ही भावोंका प्रदर्शन—कभी गोपी-भाव, कभी दास्यभाव, कभी वात्सल्य-भाव, कभी सख्य-भाव और कभी मधुर-भाव—इस प्रकार सभी भावोंका प्रत्यक्ष दर्शन चलता रहता। इनके लिये मानो ससार समाप्त ही हो गया था। संसारी भाव सदाके लिये समाप्त ही हो गये थे। ऐसी दशामें जनक, जननी, जाया, गृह, कुटुम्ब तथा संसारी सम्बन्ध कैसे अच्छे लगते।

महाप्रभुने भगवद्भक्ति-प्रचारके कार्यको समाप्त करके अब परम त्याग एवं वैराग्यकी शिक्षा देनेके निमित्त परम-त्यागी एव विरागीका पाठ पढ़ानेके लिये सर्वस्व त्यागकर सन्यासीका रूप धारण करनेकी इच्छा प्रकट की। माताने अश्रु प्रवाहित करते हुए रो-रोकर अपने लाड़ले लालको समझाया, अपनी दयनीयता दिखायी और पुत्रको अपनी वृद्धावस्थाकी लकुटी बताया। पत्नीने प्रेमपूर्वक पादपद्मोंको पकड़कर पुनः-पुनः प्रार्थना की। भक्तोंने भावभरित हृदयसे दीनता दिखाते हुए विनती की। वृद्धोंने अपने अनुभवोंकी बातें कहीं। सखाओं, साथियों, स्नेहियों, सगे सम्बन्धियोंने सब प्रकारके प्रयत्न करके निमाईको रोकना चाहा; किंतु ये न रुके, न रुके!! इन्होंने कटकपुरमें जाकर श्रीस्वामी केशव भारतीजीसे संन्यासकी दीक्षा ले ही ली।

× × ×

अब निमाई पण्डित श्रीकृष्णचैतन्य भारती बन गये। सुवर्ण-वर्णके श्रीअङ्गपर अबतक तो श्वेताम्बर शोभित होता था; अब उसपर काषायाम्बर दमकने लगा। एक हाथमें दण्ड तो दूसरेमें कमण्डलु धारणकर श्रीकृष्णचैतन्य श्रीजगन्नाथजी-की ओर दौड़ पड़े। इनके पीछे नित्यानन्दादि भक्त चले। शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यजीके घर भिक्षा पाकर शची मातासे आशीर्वाद ग्रहण करके भक्तोंको अपनी पावनपद-धूलिसे कृतार्थ करते हुए ये भक्तोंके साथ जगन्नाथपुरीमें पहुँच गये। मार्गमें श्रीनित्यानन्द महाप्रभुने इनके दण्डको भंग कर दिया। अब वे व्यक्त-दण्ड सन्यासीका अभिनय करने लगे। इनके लिये सन्यास एक खिलवाड़ था, लोक-सग्रहका नाटक था।

× × ×

श्रीजगन्नाथजीमें रहकर इन्होंने बड़े-बड़े दिग्गज पण्डिता-भिमानी आचार्य वासुदेव सार्वभौम, गोपीनाथाचार्य आदि विद्वानोंपर कृपा की। उन्हें भक्तिपथमें लगाया, भगवद्-भक्त बनाया, महाप्रसादका महत्त्व बताया। महाप्रसादमें, भगवान् गोविन्दमें, भगवन्नाममें, ब्राह्मणोंमे तथा वैष्णवोंमें सबकी निष्ठा नहीं होती, स्वल्पपुण्यवालोंकी भी निष्ठा नहीं होती—

> महाप्रसादे गोविन्दे हरे नाम्नि तथा गुरौ।*
> स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते॥

श्रीकृष्ण-भक्ति, श्रीकृष्णके भक्तोंमें भक्ति एक जन्मके पुण्यका फल नहीं है। जिन्होंने सहस्रों जन्मोंतक तपस्या की हो, अनेक पावन यज्ञ-यागादि किये हों और भी अनेक सत्कर्म करनेसे जिनके पाप क्षीण हो गये हों, ऐसे निष्पाप पुरुषोंके ही हृदयमें भक्त और भगवान्‌के प्रति भक्ति उत्पन्न होती है—

> जन्मान्तरसहस्रेषु तपोयज्ञक्रियादिषु।
> नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते॥

* 'विप्रे च वैष्णवे' पाठान्तर।

भगवद्भक्ति कोई गुड़का पूआ नहीं कि झट तोड़ा और गप-गप खा गये। न जाने कितने जन्मोंके सुकृतोंका फल है। जिसके हृदयमें कृष्ण-भक्ति उत्पन्न हो गयी, वह कृतार्थ हो गया—धन्य हो गया। उसने मानव-जन्म लेनेका फल प्राप्त कर लिया।

जिन-जिन भाग्यशालियोंको महाप्रभुके देवदुर्लभ दर्शन हो गये, मानो उन्हें पुनः संसारका दर्शन नहीं होगा। श्रीजगन्नाथपुरीमें एक ओर तो जड खारा समुद्र हिलोरें ले रहा था और दूसरी ओर चैतन्य-प्रेम-सागर सबको भगवद्-भक्तिमें निमज्जित करके भगवद्-भक्तोंको अलौकिक सुख दे रहा था। महाप्रभुने सोचा—यह भक्ति-सागर पूर्व दिशाकी जगन्नाथपुरीको ही प्लावित न करके सम्पूर्ण ससारको सुखी बनाये तो अच्छा है। यही सोचकर इन्होने कुछ काल पुरीमें निवास करके फिर दक्षिणके तीर्थोंको पावन बनानेके लिये तथा भक्ति-भागीरथीके रसका सभी जन आस्वादन करें, इस निमित्त तीर्थयात्राका सकल्प किया।

× × ×

महाप्रभुने दक्षिण-यात्राके लिये प्रस्थान किया। कृष्ण-दास उनके साथ थे। मार्गमें उन्होंने वासुदेव कुष्ठीका उद्धार किया। उत्कलदेशमें जो कोटदेश नामका राज्य था, वह उत्कल-नरेशके अधीन था। उसकी राजधानी विद्यानगर थी। उत्कल-महाराजकी ओरसे उसके राज्याधिकारी राजा रामानन्द राय थे। महाप्रभुने राय महाशयको दर्शन देकर उन्हें कृतार्थ किया, उनके साथ शास्त्र-चर्चा की, उन्हें भगवद्-भक्तिका दान दिया। राय महाशयपर कृपा करके महाप्रभु दक्षिणके तीर्थोंकी यात्राके लिये आगे बढे। वे गोमती, गङ्गा, मल्लिकार्जुन, अहोबल, नृसिंह, सिद्धवट, स्कन्धक्षेत्र, त्रिपठ, वृद्धकाशी, बौद्धस्थान, तिरुपति, त्रिमल्ल, पन्नानृसिंह, शिव-काञ्ची, विणुकाञ्ची, कालहस्ती, वृद्धकोल, शियाली, भैरव, कावेरी, कुम्भकोणम्, श्रीरगम्, मदुरा, कन्याकुमारी आदि तीर्थोंकी यात्रा करते हुए पण्ढरपुर पहुँचे। यहीं इन्हें अपने पूर्वाश्रमके अग्रजका, जो सन्यासी हो गये थे, जिनका सन्यासका नाम शङ्करारण्य था, परलोकगमनका समाचार श्रीस्वामी रङ्गपुरीजीसे ज्ञात हुआ। इस प्रकार दक्षिणकी यात्रा सम्पन्न करके वे पुनः जगन्नाथपुरीमें लौट आये।

× × ×

श्रीजगन्नाथपुरीमें रहकर महाप्रभु प्रेमरसकी अविरल वर्षा करते रहे। श्रीजगन्नाथपुरीमें आषाढ़ शुक्ल द्वितीयाको रथ-यात्रा होती है। बंगीय भक्त सैकड़ोंकी संख्यामें आकर प्रभुके साथ रथ-यात्राका आनन्द लेते, उनके साथ सकीर्तन करते, नाचते-गाते तथा विविध प्रकारकी क्रीडाएँ करके प्रभुको प्रमुदित करते, चातुर्मास वहीं करते और फिर प्रभुसे विदा लेकर घर जाते थे। इस प्रकार प्रतिवर्ष ऐसा आनन्द होता था। अब इनकी सेवामें सदा श्रीईश्वरपुरीजी महाराजके प्राचीन भृत्य 'गोविन्द' रहने लगे, जिन्होंने अन्त समयतक प्रभुके श्रीअङ्गोंकी सेवा की। दक्षिण-यात्रासे लौटकर चार वर्षोंतक महाप्रभु जगन्नाथपुरीमें ही रहे। वहाँ अनेक भक्त निरन्तर प्रभुके सानिध्यमें ही रहते थे। गौड़ीय भक्त प्रतिवर्ष रथयात्राके समय आकर प्रभुकी प्रसन्नताके निमित्त निरन्तर कथा-कीर्तनमें ही निमग्न रहकर प्रभुके सानिध्यका सुख लेते थे।

× × ×

महाप्रभुकी श्रीवृन्दावन-धामके दर्शनकी उत्कट इच्छा थी। एक बार ये पुरीसे श्रीवृन्दावनकी यात्राके लिये चल भी पड़े थे। नवद्वीपमें आकर इन्होंने अपनी जननी शची-देवीका दर्शन किया। तभी परमसाध्वी सतीशिरोमणि विष्णुप्रियाजीने अपने प्राणनाथके सन्यासी रूपका प्रथम दर्शन किया। विष्णुप्रियाजीकी प्रार्थनापर प्रभुने उन्हें अपनी चरण-पादुकाओंका दान किया। उन्हीं चरण-पादुकाओंके सहारे सती-साध्वी विष्णुप्रियाजीने अपना शेष सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया। महाप्रभु गौड़देशकी राजधानी रामकेलितक आये। वहाँ इन्हें रूप और सनातन, जो गौड़देशके यवन बादशाह हुसेनशाहके मन्त्री थे, मिले। बादशाहने उनके दबिर खास और शाकिर मल्लिक ऐसे मुसलमानी नाम रख रखे थे। वे भी अपने हिंदूपनको भूल गये थे। महाप्रभुकी कृपा होनेपर वे पीछेसे इनके अनुयायी परम भक्त तथा आचार्य हुए और श्रीवृन्दावनमें निरन्तर वास करते हुए कालक्षेप करने लगे। उन्होंने प्रभुको सम्मति दी—इस समय युद्ध-काल है, अतः इतने भक्तोंके साथ वृन्दावन जाना उचित नहीं। उनकी सम्मति मानकर प्रभु वृन्दावन न जाकर पुनः पुरीको ही लौट गये।

× × ×

वृन्दावनकी जिसे लगन लग जाती है, उसे फिर कोई निकाल नहीं सकता। प्रभु कुछ काल पुरीमें रहकर पुनः वृन्दावनको केवल बलभद्र भट्टाचार्यको साथ लेकर चल पड़े। वे काशी, प्रयाग, मथुरा आदि तीर्थोंमें दर्शन करते हुए श्रीवृन्दावन पहुँच गये। वहाँ पहुँचनेपर इन्होंने अनुभव किया, मानों हम अपने यथार्थ स्थानपर आ गये हैं।

× × ×

श्रीवृन्दावनकी यात्रा करके वे पुनः लौटकर प्रयागराजमें आ गये। प्रयागमें इन्हें गौड़देशके प्रधान मन्त्री सनातनजीके छोटे भाई रूप और अनूप (श्रीवल्लभ) मिल गये। वे मन्त्रिपद छोड़कर श्रीगौराङ्गकी खोज करते हुए वृन्दावन जा रहे थे। उन्हें प्रयागराजमें ही महाप्रभुके दर्शन हो गये। प्रभुने उन्हें शिक्षा देकर श्रीवृन्दावन भेज दिया। अरैलमें महाप्रभु वल्लभाचार्यसे भी महाप्रभु गौराङ्गकी भेंट हुई। दोनों ही महाप्रभु प्रेमपूर्वक मिले। श्रीकृष्ण-कथाकी सजीव त्रिवेणी प्रवाहित हो उठी। प्रयागसे प्रभु चलते-चलते काशीमें पहुँचे और वहाँ वैद्य चन्द्रशेखरके घर रहने लगे। भिक्षा करने श्रीतपन मिश्रके यहाँ जाते थे।

× × ×

गौड़देशके नवाब हुसैन शाहके प्रधान मन्त्री श्रीसनातन और रूप महाप्रभुके दर्शन पहिले ही गौड़देशकी राजधानी रामकेलिमें ही कर चुके थे। तभीसे रूप तो लौटकर राजधानी गये ही नहीं। अपने ग्राममें आकर सर्वस्वदान करके प्रयागमें प्रभुके दर्शन करके उनकी आज्ञासे वृन्दावन चले गये। श्रीसनातनने राज-काज करना अब स्वीकार नहीं किया। इससे कुपित होकर बादशाहने उन्हें कारावासमें डाल दिया। वे किसी प्रकार काशीजी आ गये। वहाँ महाप्रभुके दर्शन एवं उपदेश ग्रहण करके उनकी आज्ञासे श्रीवृन्दावन चले गये और वहीं दोनों भाई रूप तथा सनातन और तीसरे भाई श्रीवल्लभजीके सुपुत्र एवं गोस्वामी अन्ततक श्रीवृन्दावन धाममें ही रहे।

× × ×

श्रीकाशीमें श्रीसनातनदेवजीको शिक्षा देकर प्रकाशानन्दजीको प्रेम प्रदान करके काशीके पण्डितोंमें भक्तिका बीज बोकर दो महीने निवास करके महाप्रभु चलते-चलते पुनः जगन्नाथपुरीमें पहुँच गये और फिर अन्तकालतक इन्होंने पुरीमें ही निवास किया। प्रभुके पुरीमें प्रत्यागमनसे सभी भक्तोंको अत्यधिक आनन्द हुआ। इसी समय श्रीवृन्दावनकी यात्रा करके श्रीसनातनजीने भी पुरी आकर प्रभुका दर्शन किया और वे यवन हरिदासजीके समीप आकर रहने लगे। इसी बीच सप्तग्रामके भूम्यधिकारी श्रीगोवर्धनदासजी मजूमदारके पुत्र रघुनाथजी, जिन्होंने शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यजीके घरपर प्रभुके दर्शन किये थे, उत्कट वैराग्यके कारण सर्वस्व त्यागकर पुरी आ गये और प्रभुकी संनिधिमें रहने लगे। अन्य भी बहुत-से त्यागी, विरागी, भगवद्भक्त प्रभुके सत्सङ्ग-लाभके निमित्त पुरीमें वास करने लगे।

× × ×

पुरीमें प्रभुके जीवनकी अनेक घटनाएँ हुईं। उनका उल्लेख इस लघु-ग्रन्थमें करना असम्भव है। अबतक तो प्रभुने पूर्वानुराग-सम्मिलनकी लीलाएँ कीं, अब वे प्रेमकी अन्तिम वियोग-जन्य लीलाओंका भक्तोंको साक्षात्कार कराने लगे। प्रेमके स्तम्भ, कम्प, स्वेद, वैवर्ण्य, अश्रु, स्वरभङ्ग, पुलक और प्रलय—ये आठ विकार हैं। इसी प्रकार विरहकी चिन्ता, जागरण, उद्वेग, कृशता, मलिनता, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, मोह और मृत्यु—ये दस दशाएँ हैं। इन दशाओंके दर्शन उनके कीर्तन-प्रसङ्गमें होने लगे। (इनका विस्तारसे वर्णन पाँच भागोंवाली 'चैतन्य-चरितावली'में किया गया है।) महाप्रभुने अपने अन्तिम जीवनमें गम्भीरा मन्दिरमें रहकर लोकातीत दिव्योन्मादकी अवस्थाओंका प्रत्यक्ष दिग्दर्शन कराया।

अन्तमें इनका यह भौतिक शरीर कहाँ गया, कोई कह नहीं सकता। कोई कहते हैं, वह समुद्रमें विलीन हो गया, कोई कहते हैं श्रीजगन्नाथजीके श्रीविग्रहमें प्रवेश कर गया। कुछ भी हो, इनका दिव्यातिदिव्य प्रेमरूपी शरीर अजर-अमर है। जबतक जगत्में भगवन्नाम-संकीर्तन रहेगा तबतक श्रीचैतन्यका प्रेम-शरीर ज्यों-का-त्यों बना रहेगा और भक्तगण गायेंगे—

श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द। हरे कृष्ण हरे राम राधे-गोविन्द॥

× × ×

महाप्रभु चैतन्यदेवने कहीं भी अपना आश्रम नहीं बनाया। वे अन्त समयतक दूसरेके भवनमें ही रहे। उन्होंने न तो किसीको शिक्षा-दीक्षा दी और न किसी सम्प्रदायकी स्थापना ही की। उनके पश्चात् उनके अनुयायियोंने संप्रदाय संगठित किया। उन्होंने संन्यास लेनेके पश्चात् कामिनी और काञ्चन तथा कीर्तिका स्वेच्छासे त्याग कर दिया। उनका सम्पूर्ण जीवन त्याग, वैराग्य और अनन्य-भक्तिका साकार स्वरूप है। वे प्रेमकी साकार सजीव मूर्ति ही थे—

उच्चैरास्फालयन्तं करचरणमहो हेमदण्डप्रकाण्डौ
बाहू प्रोद्धृत्य सत्ताण्डवतरलतनुं पुण्डरीकायताक्षम्।
विश्वस्यामङ्गलघ्नं किमपि हरिहरीत्युन्मदानन्दनादै-
र्वन्दे तं देवचूडामणिमतुलरसाविष्टचैतन्यचन्द्रम्॥

× × ×

श्रीभगवन्नाम-संकीर्तनमें तन्मयता

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात् परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥

भगवान्‌का नाम कितना पवित्र, कैसा पावन है, उसमें कितनी शान्ति, कैसी शक्ति और कितनी कामप्रदता है, यह कोई नहीं बतला सकता । अथाहकी थाह कौन ले ? जिसके माहात्म्यका आरम्भ बुद्धिसे परे पहुँचनेपर होता है, उसका वाणीसे कैसे वर्णन हो सकता है ? जिस प्रकार भगवान् अनिर्वचनीय हैं, उसी प्रकार उनके नामका माहात्म्य भी अनिर्वचनीय है । शास्त्रोंमें जो भगवन्नाम-माहात्म्य लिखा है, वह वास्तविक माहात्म्यका प्रकाशक नहीं है, वह तो नाम-जप-कीर्तनका लाभ उठानेवाले महानुभावोंके कृतज्ञ हृदयका उद्‌गारमात्र है । वास्तविक माहात्म्य तो कोई कह ही नहीं सकता । जो जिस भावसे भगवान्‌के नामका स्मरण करता है, उसे उस भावके अनुसार लाभ होता है । आज भी भगवन्नामसे लाभ उठानेवाले बहुत लोग हैं । इस विषयमें केवल धार्मिक क्षेत्रके ही नहीं, राजनीतिक क्षेत्रके भी कितने ही महानुभावोंसे लेखककी बातें हुई हैं, उन्होंने कहा ही नहीं, लिखकर भी दिया है कि 'हमें भगवन्नामसे परम लाभ हुआ ।'

आजकल कुछ लोग शङ्का करते हैं कि 'जहाँ भगवन्नामके माहात्म्यके विषयमें इतना कहा जाता है वहाँ देखनेमे उसके विपरीत क्यो आता है ? यदि भगवन्नाममे कोई वास्तविक शक्ति होती तो निरन्तर और अधिक संख्यामें नामजप-कीर्तन करनेवाले लोगोंमें वैसा परिवर्तन क्यों नहीं देखा जाता ? शङ्का कई अंशोमें ठीक है, परतु बहुत-से कर्म ऐसे होते हैं, जिनका परोक्षमें भारी फल होनेपर भी प्रत्यक्षमें नहीं देखा जाता अथवा तत्काल न दीखकर देरसे दीखता है । कई बार पूर्णफल न होनेके कारण आंशिक रूपमें होनेवाले फलका पता नहीं लगता । एक आदमी बीमार है और उसके कई रोग है, दवासे पेटका दर्द दूर हो गया, पर अभी ज्वर नहीं छूटा । इससे क्या यह समझना चाहिये कि उसे दवासे कोई लाभ ही नहीं हो रहा है ? लाभ होनेमे जो विलम्ब होता है उसमें कुपथ्य ही प्रधान कारण है । हम नामजप करनेके साथ ही नामापराध भी बहुत करते है । इसके अतिरिक्त श्रद्धा और विश्वासपूर्वक नाम-जप-कीर्तन नहीं करते । कहीं बहुत थोड़े मूल्यमें उसे बेच देते हैं । मामूली सांसारिक वस्तुओकी प्राप्ति अथवा मान-बड़ाईके बदलेमे उसे खो देते है । हम कीर्तन करते हैं और फिर पूछते है कि 'क्यों जी ! आज मैंने कैसा कीर्तन किया ?' इस प्रकार अश्रद्धा, अविश्वास, सकामभाव अथवा लोगोमें प्रतिष्ठा पानेके लिये किये जानेवाले नाम-जप-कीर्तनका वास्तविक फल देरमें हो तो क्या आश्चर्य ? नाम-कीर्तनका एक सुन्दर क्रम और स्वरूप श्रीमद्‌भागवतमें बतलाया गया है—

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥
एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥
(११ । २ । ३९-४०)

रुचिको, उनके विधानको नहीं देखते । कठोर आघातमें उनके सुकोमल करकमलका स्पर्श नहीं पाते, परंतु भगवान्‌का प्रेमी भक्त किसी कष्टसे नहीं घबराता; क्योंकि वह प्रत्येक वस्तुमें भगवान्‌का स्पर्श पाता है । वास्तवमें भगवान्‌का प्रेमी भक्त सब कष्टोंसे परे पहुँचा हुआ होता है, उसका जीवन भगवत्सेवामय होता है । वह सेवाको छोड़कर मुक्ति भी नहीं चाहता । मुक्ति तो वह चाहता है जो किसी बन्धनका अनुभव करता है । भगवत्प्रेमका बन्धन तो सारे बन्धनोंके छूट जानेपर होता है और इस प्रेमबन्धनसे भक्त कभी मुक्त होना चाहता नहीं । जो इस प्रेमबन्धनसे मुक्ति चाहता है, वह भक्त कैसा ? इसीसे कहा गया है—

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥
(श्रीमद्भा० ३ । २९ । १३)

अर्थात्—'भक्तजन देनेपर भी मेरी सेवाको छोड़कर मुक्ति आदिको स्वीकार नहीं करते ।' इस प्रेमसाधनाके सम्बन्धमें गीताके दो श्लोक बड़े महत्त्वके हैं ।

श्रीभगवान् कहते हैं—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥
(१० । ९-१०)

'जिनका चित्त मुझमें लगा है, जिनके प्राण मुझमें फँसे हैं, जो नित्य आपसमें मेरी महत्ताको समझते-समझाते प्रेम करते हैं, जो मेरी बात कहते हैं, मुझमें संतुष्ट हैं, निरन्तर मुझमें ही रमण करते हैं, उन निरन्तर मुझमें लगे हुए प्रेमपूर्वक मेरा भजन करनेवाले भक्तोंको मैं अपना वह बुद्धियोग देता हूँ, जिससे वे मुझे ही प्राप्त होते हैं ।' इन श्लोकोंमें जिस साधनाकी ओर संकेत है, प्रेमियोंके जीवनका वह स्वभाव होता है । इसीसे भगवान्‌ने भागवतमें इस ज्ञानको स्वीकार किया है कि गोपियोंने अपना मन मुझे अर्पण कर दिया, गोपियोंके प्राण मद्गतप्राण हैं, गोपियाँ मेरी ही चर्चा करती हैं, मैं ही एकमात्र उनका इष्ट हूँ, मुझमें ही उनकी एकान्त प्रीति है ।

गोपियोंने भगवान्‌का नाम रखा था—चित्तचोर । कैसा मधुर नाम है ! अहा ! हम सबकी भी यही इच्छा रहनी चाहिये कि भगवान् हमारा चित्त चुरा लें । कुछ सज्जनोंको भगवान्‌के लिये इस 'चोर' शब्दपर बड़ी आपत्ति है । उनके विचारसे श्रीमद्भागवतमें जो माखन-चोरी आदिकी बात है, वह भगवान्‌के चरित्रमें कलङ्करूप ही है, पर असलमें बात ऐसी नहीं प्रतीत होती । पहली बात तो यह है, उस समय भगवान् बालकस्वरूप थे, इसलिये उनकी चोरी आदिकी प्रवृत्ति किसी दूषित बुद्धिके कारण नहीं मानी जाती, वह केवल उनकी बालसुलभ लीला ही थी, परंतु वास्तवमें सच पूछा जाय तो क्या कोई यह कह सकता है कि भगवान् श्रीकृष्णने कभी किसी ऐसी गोपीका माखन चुराया था, जो ऐसा नहीं चाहती थी । गोपियाँ तो इसीलिये अच्छे-से-अच्छा माखन रखती थीं और ऐसी जगह रखती थीं जहाँ भगवान्‌का हाथ पहुँच सके और हृदयकी अत्यन्त उत्कट इच्छाके साथ यह प्रतीक्षा करती रहती थीं कि कब श्यामसुन्दर आवें और हमारी इस समर्पण-पद्धतिको स्वीकारकर मित्रोंसहित माखनका भोग लगावें और कब हम उस मधुर झाँकीको देखकर कृतार्थ हों । यही तो उनकी प्रेमसाधना थी । इन गोपियोंके माहात्म्यको कौन कह सकता है, जो निरन्तर चित्तचोरकी श्यामसुन्दर-मूर्तिकी झाँकीके लिये उत्सुक रहती थीं और पलकोंका अदर्शन असह्य होनेके कारण पलक बनानेवाले ब्रह्माजीको कोसा करती थीं । गोपियोंकी इस प्रेमनिष्ठाके विषयमें श्रीमद्भागवतमें कहा है—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥
(१०।४४।१५)

'जो व्रजयुवतियाँ गौओंको दुहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकोंको पालना झुलाते समय, रोते हुए बच्चोंको लोरी देते समय, घरोंमें झाड़ू देते समय प्रेमपूर्ण मनसे आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद वाणीसे श्रीकृष्णका नाम-गुणगान किया करती हैं, वे श्रीकृष्णमें चित्त निवेशित करनेवाली गोपरमणियाँ धन्य हैं।' इस प्रकार गोपियोंका चित्त हर समय श्रीश्यामसुन्दरमें ही लगा रहता था। घरके सारे धंधोंको करते हुए भी उन्हें अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी एक क्षणके लिये भी विस्मृति नहीं होती थी। उद्धवने जब गोपियोंको योगकी शिक्षा दी, तब उस समय उन्होने उद्धवसे यही कहा कि आप उन्हें योग सिखाइये जिन्हें वियोग हो, हमारा तो श्रीश्यामसुन्दरके साथ नित्यसंयोग है। वे बोलीं—

स्याम तन, स्याम मन, स्याम है हमारो धन,
आठौं जाम ऊधो हमें स्याम ही सो काम है!
स्याम हिये, स्याम जिये, स्याम बिनु नाहिं तिये,
आँधेकी-सी लाकरी अधार स्याम नाम है॥
स्याम गति, स्याम मति, स्याम ही है प्रानपति,
स्याम सुखदाई सो भलाई सोभाधाम है।
ऊधो तुम भये बौरे, पाती लैके आये दौरे,
जोग कहाँ राखें, यहाँ रोम-रोम स्याम है॥

गोपियाँ हर समय सब कुछ श्याममय ही देखती थीं। कहते है, एक बार जब कुछ गोपियाँ मिलकर बैठीं, तब उनमें चर्चा उठी यह कि 'श्रीकृष्ण श्याम क्यो है? माता यशोदा और बाबा नन्द दोनो ही गौरवर्ण है। बलदेवजी भी गौरवर्ण हैं, फिर ये साँवले क्यो हुए?' इसपर किसीने कुछ कहा और किसीने कुछ। अन्तमें एक व्रजनागरी बोली—

कजरारी अँखियानमें, बसो रहत दिन-रात।
पीतम प्यारो है सखी, ताते साँवर गात॥

'अहो! आठों पहर काजरभरी आँखोंमें स्थित रहनेके कारण ही प्यारे प्रियतम काले हो गये हैं।' कितना ऊँचा सिद्धान्त है! ऐसे महात्माको गीता भी परम दुर्लभ बतलाती है—'वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥' किंतु यहाँ तो यह सिद्धान्त ही नहीं, प्रत्यक्ष प्रकट स्वरूप था। गोपियोंकी आँखोंमें श्यामके सिवा और किसीका प्रतिबिम्ब ही नहीं पड़ता था। उनकी आँखों-के सामने आते ही सब कुछ साकार श्याम-स्वरूप हो जाता था—

बावरी वे अँखियाँ जरि जाएँ
जो साँवरो छाँड़ि निहारति गोरो।

गोपियोंका भगवान्के प्रति प्रियतमभाव था। उनसे बढ़कर 'मच्चित्ता मद्गतप्राणा' और कौन हो सकता है! चित्त भगवन्मय हो जाय, उसपर भगवान्का स्वत्व हो जाय, यह नहीं कि हम उसके द्वारा भगवान्का भजन करें। उसपर भगवान्का ही पूरा अधिकार हो जाना चाहिये। ऐसी स्थिति उन व्रजसुन्दरियोंको ही प्राप्त हुई थी। इसीसे उद्धवको गोपिकाओंके पास भेजते समय भगवान् उनसे कहते हैं—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान्बिभर्म्यहम्॥
(श्रीमद्भा० १०।४६।४)

वे करती क्या थीं? वे जहाँ बैठतीं अपने प्रियतम भगवान्की चर्चा किया करती थीं। उसीका गान करती थीं, उसीमें संतुष्ट रहती थीं और एकमात्र उसीमें रमती थीं। यह भगवत्प्रेमियोका सङ्ग बहुत दुर्लभ है। एक सत्सङ्ग वह है जिससे चित्त शुद्ध होता है, फिर शुद्ध चित्तमें ज्ञानोदय होता है और उसके पश्चात् भगवत्प्राप्ति होती है, किंतु यह वह सत्सङ्ग है जिसके लवमात्रके साथ मोक्षकी भी तुलना नहीं होती। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥
(१।१८।१३)

'भगवत्प्रेमियोंका जो लवमात्रका सङ्ग है, उसके साथ हम स्वर्ग और मोक्षकी भी तुलना नहीं कर सकते, फिर साधारण मानवभोगोंके विषयमें तो कहना ही क्या है ?' इसीसे भक्तजन कभी मोक्ष नहीं चाहते। उनकी तो यही इच्छा रहती है कि भगवत्प्रेमी मिलकर सदा प्रियतम भगवान्की मधुर चर्चा किया करें। यही गोपियोंका भी सत्सङ्ग था।

एक वैष्णव-ग्रन्थमें आता है कि श्रीमती राधाजी कहती हैं—'मन होता है कि मेरे लाखों आँखें हों तो श्यामसुन्दरके दर्शनका कुछ आनन्द आये। लाखों कान हों तो श्यामनामके श्रवणका सुख मिले।' यह कोई कल्पना नहीं है। प्रेम नामक वस्तु ही ऐसी है। जिस दिन हमें भगवान्में प्रेम हो जायगा, उस दिन उनका नाम हमें इतना प्राणप्यारा होगा कि वह हमारे जीवनकी सबसे बढ़कर आवश्यक वस्तु बन जायगा। जबतक हमारा भगवान्में प्रेम नहीं होता तभीतक हमें माला आदिकी आवश्यकता है। प्रेम होनेपर तो प्रियतमके नामोच्चारणमात्रसे हमारी नस-नस नाच उठेगी। हम अपने प्रियतमके प्रेममें इतने उन्मत्त हो जायँगे कि हमारे रोम-रोमसे भगवन्नामकी ध्वनि होने लगेगी। फिर यह जाननेकी इच्छा कभी नहीं होगी कि मैंने कैसा कीर्तन किया। यथार्थ कीर्तनका यही स्वरूप है। मेरा यह कथन नहीं है कि वर्तमान कीर्तन करनेवाले सभीको ऐसी लोकैषणा रहती है। मेरा अभिप्राय केवल यही है कि कीर्तन करते समय हमारा यह लक्ष्य नहीं होना चाहिये कि सुननेवाले लोग हमारे कीर्तनको अच्छा कहें, अपितु यही लक्ष्य हो कि हम उसमें तन्मय हो जायँ। द्रौपदीके एक नामपर ही भगवान् प्रकट हो गये थे, परंतु हुए उसी समय थे जब उसने सबका आश्रय छोड़कर परम निर्भरतासे भगवान्को पुकारा था।

एक कसौटी और है, भगवन्नामका आश्रय लेनेवालेको यह देखते रहना चाहिये कि हमारे अंदर दैवी सम्पत्ति बढ़ रही है या नहीं ? यदि दैवी सम्पत्तिकी वृद्धि दिखायी न दे तो समझना चाहिये कि हमारा भगवन्नाम-कीर्तन नामापराधसहित है। भगवद्भजनसे दैवी सम्पत्तिकी वृद्धि होनी ही चाहिये। जिस प्रकार भगवत्प्रेमीमें दैवी सम्पत्तिका होना अनिवार्य है उसी प्रकार दैवी सम्पत्ति भी बिना भगवत्प्रेमके टिक नहीं सकती। देवर्षि नारदजीने कहा है कि भगवन्नाममें एक विलक्षण शक्ति है। उससे भगवत्प्रेमकी स्वाभाविक ही वृद्धि होती है और भगवत्प्रेममें दैवी सम्पदाका पूरा प्राकट्य होना ही चाहिये। आजकल ऐसा नहीं होता। इससे जान पड़ता है कि हमारे भजनमें कोई दोष है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुमें यह विलक्षण शक्ति बहुत अधिक देखी जाती थी। बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् इसलिये उनके कीर्तनके समीप होकर निकलनेमें डरते थे कि वे कहीं उसी रंगमें न रँग जायँ और यदि कोई उनके कीर्तनको देख लेता, उनका स्पर्श पा लेता तो वह उन्मत्त हुए बिना रहता नहीं। परंतु महाप्रभुको भी बड़ी सावधानीसे यह शक्ति अर्जित करनी पड़ी थी। एक दिन श्रीवासके घर कीर्तन हो रहा था। उस दिन उसमें आनन्दकी स्फूर्ति नहीं हो पा रही थी। तब श्रीमहाप्रभुजीने कहा—'देखो यहाँ कोई बाहरका आदमी तो नहीं है।' इधर-उधर देखनेपर एक ब्राह्मणदेवता मिले, जो कीर्तनके प्रेमी नहीं थे। तब सब लोगोंने प्रार्थना करके उन्हें विदा किया। उसके पश्चात् कीर्तन किया गया, तब रस आया। कीर्तनके श्रवणसे वे ब्राह्मणदेवता भी पवित्र हो गये। अतः भक्तको सब प्रकारके कुसङ्गसे बचना चाहिये।

हमलोगोंको भी इस बातका संकल्प करना चाहिये कि हम तन्मय होकर श्रद्धा-विश्वाससहित निष्कामभावसे प्रेमपूर्वक भगवन्नामका जप, स्मरण और कीर्तन करें। निष्कामभाव यहाँतक हो कि हमें तो बस भगवन्नामका जप और कीर्तन ही करना है, यह देखना है कि इससे भगवान् रीझते हैं या नहीं!

श्रीप्रभु-संकीर्तन ही अमृत है

[संकीर्तनके विविध स्वरूप तथा महत्त्व]

(भोगवर्धनपीठाधीश्वर महानिष्ठ स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी सरस्वती महाराज)

विश्वके जीवमात्र, चाहे वे किसी भी देश, जाति, वर्ण, सम्प्रदाय, आश्रम, अवस्था, पुरुष, साक्षर, निरक्षर आदि श्रेणीके हों, सभी अमर होना—अमृतत्व प्राप्त करना चाहते हैं—'मृत्योर्माऽमृतं गमय' (बृहदा० उप० १।३।२८) की प्रार्थना करते हैं। कहते हैं, एक बार ऋषि-मुनियोंकी सभामें यह चर्चा चल पड़ी कि अमृत पीकर अमर होना तो सभी चाहते हैं, किंतु अमृत है क्या और कहाँ है? सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है। उस सभामें सभी तरहके सज्जन थे। सभीके लिये स्वमत-स्थापन—अभिव्यक्तिकी व्यवस्था थी। वहाँ चार्वाकमतानुयायी भी थे।

'विद्वानोंमें केवल कह देनेमात्रसे किसी वस्तुकी सिद्धि नहीं होती, अपितु लक्षण और प्रमाणसे वस्तुसिद्धि होती है—'लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिर्न हि वचनमात्रेण'। अतः लोगोंने क्रमशः स्व-स्वमतके मण्डनमें लक्षण और प्रमाण देना प्रारम्भ किया।

१—देव-दानवोंद्वारा अमृतार्थ समुद्र-मन्थनके प्रख्यात एवं सर्वज्ञात कथानकसे समुद्रमें अमृत सिद्ध है।

२—'नास्ति वृक्षमनौषधम्'—'छोटी-बड़ी सभी वनस्पतियाँ किसी-न-किसी रोगकी ओषधि हैं।' अतः वे विशेषकर संजीविनी, संधानी आदि भी अमृत हैं। यह औषधराज चन्द्रमाके सम्पर्कसे आता है, अतः चन्द्रमामें भी अमृत है। ओषधियोंका रोगनिवारकत्व गुण प्रत्यक्ष सिद्ध है। इससे सम्बद्ध एक कहानी है।

एक बार भूतभावन चन्द्रमौलीश्वर भगवान् शङ्कर गङ्गा-स्नानके बाद भस्म रमा रहे थे। उस भस्मका एक सूक्ष्म कण उनके भूषण सर्पकी आँखमें पड़ गया। नेत्र स्वच्छ एवं अति कोमलाङ्ग हैं। वह अपनेमें किंचित् भी विजातीय पदार्थको सहन नहीं कर सकता। सर्पने फुँफकार मारी। फिर क्या था, शिवके जटाजूटमें आग लग गयी। उनकी जटामें ही संसारके बड़े-से-बड़े दो अग्निशामक भी बैठे हैं; वे हैं—भगवती भवतापनिवारिणी गङ्गा तथा सुधाकर चन्द्र। दोनोंने ही अपना-अपना काम किया। अमृतमय चन्द्रसे अमृत-वर्षण हुआ तो भगवान् शंकरका गजचर्म, जिसे वे श्रीअङ्गपर ओढ़े थे, जीवित हो उठा। जीवित गजको देखकर शिववाहन वृषभ सहसा भड़ककर भागा। नीलकण्ठ प्रभु उसकी नाथ (नाककी रस्सी) खींचकर सँभालने लगे। स्वसर्वस्व उमानाथकी इस स्थिति-मुद्राको देखकर भगवती उमा हँसने लगीं—

भस्मान्धोरगफूत्कृतिस्फुटभवद्भालस्थवैश्वानर-
ज्वालास्विन्नसुधांशुमण्डलगलत्पीयूषधारारसैः।
संजीवद्गजचर्मगर्जितभयभ्राम्यद्वृषाकर्षण-
व्यासक्तः सहसाद्रिजोपहसितो नग्नो हरः पातु वः॥

(सुभाषितावलि)

इससे स्पष्ट है कि चन्द्रमामें भी अमृत है।

३—परीक्षित्‌को श्रीशुकदेवजीद्वारा भागवती-कथा सुनाते समय देवतालोग स्वर्गसे अमृतकलश लेकर आये। उन्होंने कथामृतसे बदलकर उसे रखनेकी प्रार्थना की! पर श्रीशुकदेवजीने भागवतामृतको श्रेष्ठ बतलाकर उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया (भाग० मा० १।१३—२०)। उस महती प्रथमनिर्दिष्ट सभामें सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी सनकादि एवं भगवान् श्रीराघवेन्द्र प्रभुके गुरुवर ब्रह्मविद्वरिष्ठाग्रगण्य वसिष्ठजी, जनकजी एवं श्रीहनुमान्‌जीसहित श्रीशुक, वामदेव, जाबालि, याज्ञवल्क्य, अष्टावक्र, प्रह्लाद आदि भी पधारे थे। विचार हुआ और अन्तमें यह निर्णय हुआ कि ये सामान्य अमृत हैं, वास्तविक सुधा तो सन्तों-हरिभक्तोंद्वारा कही जानेवाली भगवत्कथा ही है—

अन्धौ विषौ वधुमुखे फणिनां मुखे वा
स्वर्गे सुधा वसति वै विबुधा वदन्ति।
क्षारात् क्षमात् पतिसुतान्वयमृत्युदाहैः
कण्ठे सुधा वसति वै भगवज्जनानाम्॥

तत्त्वज्ञानी भगवद्भक्त परमभागवत वीतराग अमलात्मा मुक्त मुनीन्द्र श्रीपरमहंसोंके श्रीमुख एवं श्रीकण्ठमें श्रीनाम-संकीर्तनामृत, श्रीगुणसंकीर्तनामृत, श्रीचरित्र-संकीर्तनामृत, श्रीरूपसंकीर्तनामृत, कथासंकीर्तनामृतके रूपमें यह मुख्य निरतिशय वास्तविक अमृत विराजता है, जिसका पान करके श्रीशुक-सनक-जनकादि अनन्तानन्त भक्त मुक्त हो गये, हो रहे हैं, होते रहेंगे। जिन्होंने इन संकीर्तनामृतोंका या इनमेंसे किसी भी एक संकीर्तनामृतका पान किया, वे वस्तुतः अजर-अमर, अनन्त, अखण्ड-अच्छेद्य-अदाह्य-अशोष्य-अविकार्य हो गये। यह इन नाम-गुण-चरित्रादि-अभेद्य-संकीर्तनादिकोंका प्रत्यक्ष अद्यावधि चमत्कार है।

कल्याणमयी करुणामयी पराम्बा जगदम्बा जगज्जननी जनकनन्दिनी श्रीजानकीजी स्वप्रियतम-प्राणनाथ परब्रह्म परमात्मा श्रीमद्रामभद्र राघवेन्द्र रामचन्द्र प्रभुके वियोगजन्य मारक तीव्र तापसे अनुतप्त होकर भी श्रीरामनामामृत-संकीर्तनसे ही जीवन पा रही है। यह श्रीरामनाम-संकीर्तनामृत लंकाकी भीषण विकट देश-काल-परिस्थितिमें भी उन्हें सभी प्रकारका स्वतः संरक्षण दे रहा है। अतः नाम-संकीर्तन ही मुख्य अमृत है, नित्य निरतिशय अमृत है। यह नामसंकीर्तन भगवान्‌के परोक्षमें अनवतार दशामें भी अपरोक्ष अवतार दशा-जैसा ही काम कर रहा है। अमृतमय जीवन-दान दे रहा है—

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः॥
(श्रीमद्वल्लभाचार्यपाद)

लंकाकी तत्कालीन भीषण स्थितिमें श्रीमहारानी जानकीजीने इसी श्रीनाम-संकीर्तनके सहारे ही अपनेको तथा स्वनिष्ठाको सुरक्षित रखा, उसी तरह इस समय हम सब भी इस स्थितिमें, जिसे हम सभी अशोभनीय-अवाञ्छनीय अनुभव कर रहे हैं, अपनेको तथा अपनी सभ्यता, संस्कृति, स्वरूप-निष्ठाको केवल श्रीनाम-संकीर्तनसे ही सुरक्षित एवं सुस्थिर रख सकते हैं।

अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डजननी रासेश्वरी नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीवृन्दावनविहारिणी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानीजी भी श्रीनाम-संकीर्तनकी रसिका हैं। इनके हृदयपर श्रीनाम-संकीर्तनका जो प्रभाव पड़ता है, उसमें जो आस्वाद आता है, वह सर्वथा अद्वितीय है। अन्यत्र भी जहाँ-कहीं थोड़ा-बहुत आस्वाद आता है, वह इन्हींकी कृपा-कटाक्षका फल है। ये स्वयं श्रीनामसंकीर्तन करती-कराती और सुनती-सुनाती हैं—

गोपी कदाचिन्मणिपिञ्जरस्थं शुकं वचो वाचयितुं प्रवृत्ता।
आनन्दकन्द व्रजचन्द्र कृष्ण गोविन्द दामोदर माधवेति॥

श्रीनाम-संकीर्तनकी ये इतनी रसिका हैं कि इनके अप्राकृत अलौकिक दिव्य अन्तःकरणपर श्रीकृष्ण-नामसंकीर्तनका ऐसा विचित्र प्रभाव पड़ता है कि ये सब कुछ भूलते-भूलते इतनी तन्मय हो जाती हैं कि अपने-आपको भूलकर आत्मविस्मृत हो जाती हैं—

व्रीडां विलोडयति लुञ्चति धैर्यमार्य-
भित्तिं भिनत्ति परिलुम्पति चित्तवृत्तिम्।
(आन० वृन्दा०)

श्रीधरस्वामिपाद श्रीनाम-संकीर्तनसे ही अविद्या एवं तत्कार्यभूत संसारादिका समूल उन्मूलन बतलाते हुए प्रभुसे प्रार्थना करते हैं—'प्रभो! सदा समभावमें सर्वशरीरमें आपाद-मस्तक अणु-अणुमें व्याप्त होकर भी आप आजतक इस असार संसार-वृक्षकी किसी शाखाके पत्तेको न काट सके? किंतु शरीरान्तर्वर्ती केवल जिह्वाके अग्रभागपर आपका श्रीनाम-संकीर्तन सुविराजित होकर इस समूल संसारका नाश कर देता है। अब आप ही बताइये कि आपको भजें या इस प्रभावशाली आपके श्रीनामका संकीर्तन करें?'—

सदा सर्वत्रास्ते ननु विमलमाद्यं तव पदं
तथाप्येकस्तोकं न हि भवतरोः पत्रमभिनत्।
क्षणं जिह्वाग्रस्थं तव तु भगवन्नाम निखिलं
समूलं संसारं कषति कतरत् सेव्यमनयोः॥

नामपर मायाका प्रभाव नहीं पड़ता, नामका अद्भुत प्रभाव है। अद्भुत मायावी रावणने मायाकी सीताजी तथा मायाके श्रीराम-हनुमानादि सबको बना दिया, किंतु मायाकी मायासे वह मुद्रिका नहीं बना सका; क्योंकि उसपर श्रीरामनाम अङ्कित था—

तब देखी मुद्रिका मनोहर। रामनाम अंकित अति सुंदर॥

श्रीजनकनन्दिनीने, जो रावणकी सभी मायाको भलीभाँति जानती थीं, सम्पूर्ण पक्ष-विपक्षोंको सोचकर अन्तमें सुदृढ निर्णय किया—

जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई॥
(रामचरितमानस)

यह श्रीरामनामका ही अमित प्रभाव था। सच्चे हृदयसे श्रीनाम-संकीर्तन करनेसे मायाका असर नहीं होता। श्रुतियाँ ही श्रीगोपीजनोंके स्वरूपमें अवतीर्ण हुई हैं—

न स्त्रियो व्रजसुन्दर्यः प्रजाताः श्रुतयः किल।
(बृहद्वाम० पुरा०)

ब्रह्माजीने अपने पुत्र भृगु ऋषिसे कहा था—

गोप्यो गावो ऋचस्तस्य यष्टिका कमलासनः।
वंशस्तु भगवान् रुद्रः श्रृङ्गमिन्द्रस्त्वघोऽसुरः॥
(कृष्णोपनिषद् ८)

ये श्रुतियाँ अपनी प्रत्यक्षानुभूतिमें श्रीप्रभुके चरित्र-संकीर्तनको अमृत कह रही हैं। इनका सर्वस्व जीवन श्रीप्रभु-चरित्र-सकीर्तन ही है।

श्रीरासलीलामें प्रभु श्रीकृष्णके अन्तर्धान होनेपर गोपियोंने श्रीयमुनापुलिनमें जाकर श्रीप्रभुके आविर्भावार्थ गीत गाया। पहले बहुत प्रयास करने-करानेपर भी प्रभु प्रकट न हुए; किंतु श्रीगोपियोंके गीत गाते ही प्रभु प्रकट हो गये। इससे उन्होंने कहा भी स्पष्ट है कि जहाँ जब भी प्रभुके नाम-गुण-चरित्र संकीर्तित होते हैं, वहाँ वे तत्काल प्रकट हो जाते हैं। उन्होंने कहा भी है—

'मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।'

अनेकानेक उपाय करते-कराते श्रीप्रेमाचार्यवर्या गोपीजनोंने जब प्रभुको न पाया तब इसी गुण-चरित्र-संकीर्तनका ही आश्रय लिया और प्रभुको पुनः पा लिया। वे कहती हैं (तथा श्रीशुकदेवजी भी कहते हैं)—

तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः॥
पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः।
समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः॥
(श्रीमद्भा० १० । ३० । ४४-४५)

श्रीप्रभुने कहा—'श्रीगोपीजनो! मछली पानीसे स्नेह करती है; क्योंकि जल उसका जीवन है। जलसे वियुक्त होकर वह जी नहीं सकती। शरत्कालीन स्वच्छ जलसे परिपूरित, विकसित रक्त-श्वेत-नील सरसिज-सम्राटोंसे सुशोभित, नानाविध सुगन्धित पुष्पवृक्षों एवं जुही, मालती आदि लताओंसे आच्छादित,शुक-पिक-बक-चातक-हंस-सारस-कारण्डव-कोकिल-मयूरादि पक्षिगणोंसे निनादित एवं रसलुब्ध मधुप आदिद्वारा गुंजारित सरोवरके जब ग्रीष्मकालीन दिन आये, वह सूखने लगा और पक्षी तथा भ्रमरगण वहाँसे धीरे-धीरे खिसकने लगे, सरोवर शुष्कप्राय हो गया, तब मछलियाँ कहाँ जायँ? जलाभावमें वे तड़फड़ाकर प्राणवियुक्त होने लगीं, तब दयार्द्र होकर सरोवरने कहा—'अरे मीनो! आप भी चले जाओ, जो अच्छे दिनोंके साथी थे वे सब तो चले गये, आप मेरे साथ सूखकर प्राण क्यों दे रहे हो?' मत्स्योंने कहा—'हम कहाँ जा सकते हैं, हम मछलियोंका जीवन-मरण-विहरण आप ही हैं, आपके अभावमें हम मीन तो मर ही जायँगे'—

आपेदिरेऽम्बरपथं परितः पतङ्गा
भृङ्गा रसालमुकुलानि समाश्रयन्ति।
संकोचमञ्चति सरस्त्वयि दीनदीनो
मीनो नु हन्त कतमां गतिमभ्युपैतु॥

प्रभुने कहा—'गोपियो! मछलियाँ जलसे वियुक्त होकर प्राण त्याग देती हैं; किंतु तुमलोग तो जी ही रही हो। देखो तो सही, मछलियोंका जलसे कैसा प्रेम है?'

इसके प्रत्युत्तरमें श्रुतिरूपा श्रीगोपियाँ प्रभुको निरुत्तर करती हुई चरित्र-संकीर्तनका अद्भुत अलौकिक माहात्म्य बतलाती हैं। वे कहती हैं—'प्रभो! आपके विरहमें जो हम जी रही हैं, इसका हेतु आपके प्रति प्रेमभाव नहीं, अपितु आपका चरित्र-गुण-संकीर्तनामृत ही है। हम क्यों जी रही हैं? हमको कौन क्यो जिला रहा है? यह तो आप अपने स्वरूपसे भी अधिक महत्त्वशाली अपने इस चरित्र-गुण-संकीर्तनामृतसे पूछिये। यह हमें क्यों जिला रहा है? आप हमें उपालम्भ क्यों दे रहे हैं? इस कथा-कीर्तनको उलाहना दीजिये!

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥
(श्रीमद्भा० १० । ३१ । ९)

हमारे मुखमें आपश्रीका जो कथा-कीर्तनामृत बैठा है, वही हमारे लिये अमृत-स्वरूप हो रहा है।' यह सुनिर्णय है श्रुतियोंका।

श्रीनाम-गुण-चरित्र-कथा-सकीर्तन साधनके साथ साध्य भी है। देवर्षि नारदजी तो मानो दूसरी कीर्तन-भक्तिके सम्राट्

ही हैं। वे सदा-सर्वदा ही अपनी देवदत्त सिद्ध वीणापर उच्च-स्वरसे श्रीनामसंकीर्तन करते हुए एवं उसका प्रचार-प्रसार करते हुए निरन्तर जीवोंको उसमें प्रवृत्त करते रहते हैं। वे जहाँ भी संकीर्तन होता है, वहीं पहुँचकर उसमें सम्मिलित हो जाते हैं—

नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन् गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन्।
गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन् विमदो विमत्सरः॥
(श्रीमद्भा० १।६।२७)

ये सभी सिद्धाग्रगण्य महानुभाव श्रीनाम-कीर्तन, चरित्र-संकीर्तन, गुण-कर्म-रूपादिस कीर्तनके एक-से-एक बढ़कर प्रेमी हैं। इनके जीवनका यह एक व्यसन बन गया है। ये संकीर्तनके बिना रह नहीं सकते। सभी संकीर्तनोंमें आ जुटते हैं और उसमे इतने तन्मय हो जाते हैं कि इनके संकीर्तनसे आविर्भूत प्रभु इन्हे देख रहे है, इनसे कुछ लेनेको भी कह रहे हैं, निहोरा कर रहे हैं, किंतु ये तो देख ही नहीं रहे हैं उनकी ओर, लेने-देनेकी बात दूर रही। यही तो इस कीर्तनका चमत्कार है—

दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं ते चक्रिरे कीर्तनमग्रतस्तदा।
भवो भवान्या कमलासनस्तु तत्रागमत् कीर्तनदर्शनाय॥
(श्रीमद्भा० मा० ६।८५)

इस संकीर्तनमें श्रीप्रह्लादजी ताल दे रहे हैं, भगवान् भव तथा भवानी पधारे हैं। ब्रह्माजी भी हैं ही। उत्सवके स्वरूप श्रीउद्धवजी मजीरा बजा रहे हैं, देवर्षि नारद वीणा बजा रहे हैं, मानो ब्रह्मगान हो रहा है।

उपनिषदे भी इसी सकीर्तनका वर्णन करती हैं।
'तद् य इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति तस्मात्ते धनसनयः'
(छान्दोग्य० १।७।६)

शास्त्रीय संगीतकुशल अर्जुन राग अलाप—आरोह-अवरोह दे रहे हैं, साक्षात् देवराज इन्द्र मृदङ्ग ही बजा रहे हैं, चरित्र एवं नाम-संकीर्तनप्रेमी श्रीसनकादि मुनीन्द्र बीच-बीचमें 'जय हो, जय हो' का पुट दे रहे है, श्रीपरमहंसमुकुटमणि मूर्तिमान् वैराग्य परमरसिक श्रीशुकदेवजी बीच-बीचमे मधुर-सरस व्याख्या कर रहे हैं, मूर्तिमती श्रीभक्ति महारानीजी तथा ज्ञान एव वैराग्य नाच रहे है। इस संकीर्तनने उस कूटस्थ-अचल-अप्रमेय ब्रह्मको हिला दिया, चला दिया तथा दिखा दिया। प्रभु इन सकीर्तन-प्रेमियोंके ऋणसे उऋण होनेके लिये इनसे ऋण-परिशोधकी प्रार्थना करते हुए वर माँगनेके लिये आग्रह करने लगे; क्योकि प्रभुका हृदय तो कुसुमसे भी कोमल है।

इस संकीर्तनमे सभी ब्रह्मविद्वरिष्ठ और कृतकृत्य सिद्धगण हैं तथा वेदान्तवेद्य परमतत्त्व, अखण्डबोधस्वरूप, सर्वाधिष्ठान, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त परब्रह्मका ब्रह्मात्मैक्यभावसे अपरोक्ष साक्षात्कार करके श्रीमन्नारायणपरायण हैं—

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥
(श्रीमद्भा० ६।१४।५)

यह कोई नहीं कह सकता कि ऐसी स्थिति तो आरुरुक्षुकी होती है, योगारूढ सिद्धकी नहीं; क्योंकि जिन्होंने वेदान्त-सिद्धान्त अद्वैत-तत्त्वको अच्छी तरह पचा लिया है, उन अद्वैतसिद्धि एवं भक्तिरसायनादिके रचयिता स्वनामधन्य श्रीमधुसूदन सरस्वतीपादकी अनुभूति कहती है—

उत्पन्नात्मैक्यबोधस्य ह्यद्वेष्टृत्वादयो गुणाः।
अयत्नतो भवन्त्यस्य न तु साधनरूपिणः।
अद्वेष्टृत्वादिवत् तेषां स्वभावो भजनं हरेः॥

यह स्थिति उत्पन्ननात्मैक्यबोधपरिपूर्णोकी है, जो सभी इस सकीर्तनमे सम्मिलित हैं। श्रीप्रह्लादजी अशेषविशेषातीत प्रत्यक्चैतन्याभिन्नात्मतत्त्वमें निमग्न है—

कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरे-
रुपासने स्वे हृदि छिद्रवत् सतः।
स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां
सामान्यतः किं विषयोपपादनैः॥
(श्रीमद्भा० ७।७।३८)

श्रीहनुमन्तलालजी जो बुद्धिमानोंमें वरिष्ठ—श्रेष्ठ और ज्ञानियोंमें अग्रगण्य हैं तथा जिन्होंने श्रीराम-सभामें श्री-मद्राघवेन्द्र प्रभुके सम्मुख पूछे जानेपर अपने सुदृढ़ सर्व-श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासनिगमागमसम्मत अद्वैतवेदान्तसिद्धान्त-को व्यक्त करते हुए कहा है—

देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
आत्मदृष्ट्या त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥

इस तरह उन्होंने अपने प्रातिभासिक, व्यावहारिक तथा पारमार्थिक स्वरूपको व्यक्त करते हुए सत्तात्रयका प्रतिपादन

किया। प्रभो! आप ही सर्व स्वरूप हैं, आपके सिवा किसीका भी और कोई स्वरूप हो ही क्या सकता है? आप ही तो सर्वात्मा—सबके अपने ही आत्मस्वरूप प्रभु हैं। इन हनुमन्तलालजीका श्रीनाम-संकीर्तनमें—चरित्रगुणसंकीर्तनमें अद्भुतानुराग एवं परिपूर्ण प्रेम है। इन्होंने तो इसीके लिये प्रभुसे वरदान माँगा है—'जबतक ये जगत्, सूर्य, चन्द्र, नदी, वन, पर्वतादि रहें, तबतक आपका मङ्गलमय श्रीनाम-गुण-चरित्र-संकीर्तन सुविराजित रहे और उसे सुननेके लिये हम भी सदा-सर्वदा स्थित रहें।' श्रीब्रह्माजी तथा श्रीजनकनन्दिनीजीद्वारा इनको अजरत्व, अमरत्व आदि वरदान प्राप्त हैं। जहाँ-जहाँ श्रीराम-नाम-गुण-चरित्रादिका संकीर्तन होता है, वहाँ ये अवश्य ही तत्काल पहुँच जाते हैं—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥
यावत् तव कथा लोके विचरिष्यति पावनी।
तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्॥
(वाल्मीकिरा० उत्तर० १०८।३३)

यह प्रसिद्ध ही है।

इन ब्रह्मविद्वरिष्ठोंकी कैसी विचित्र स्थिति है। ये रोमाञ्चित, पुलकित, कण्टकित, प्रेमपरिप्लुत अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे युक्त नतमस्तक अञ्जलिबद्ध होकर श्रीरामनाम-संकीर्तनको समादर देते हुए वहाँ बैठ जाते हैं।

ये किंपुरुषवर्षमें सदा-सर्वदा ऋषि-मुनि-गन्धर्व-किंनरोंके साथ-साथ अपने प्रभु भगवान् रामके नामादिके संकीर्तन-गानमें तत्पर ही रहते हैं। संकीर्तन करते-कराते और गाते-बजाते हैं—'किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते। आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति।

(श्रीमद्भा० ५।१९।१-२)

अतः यह संकीर्तन साध्य है, अन्यथा ये लोग इसमें इतना रस न लेते तथा प्रवृत्त न होते! विचार किया जाय तो सभी सच्छास्त्रोंका पर्यवसान श्रीहरिके नाम-गुण-चरित्रके संकीर्तनमें ही है। यथा—

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥

भागवतमें तो इस संकीर्तनका बहुत ही महत्त्व है। इन छः प्रकारके तात्पर्यनिर्णायक लिङ्गोंसे भी भागवतका तात्पर्य संकीर्तनमें ही पर्यवसित दीखता है। सर्वप्रथम माहात्म्यमें ही विलक्षण संकीर्तनका माहात्म्य है। श्रीशुकदेवजीने अपना मङ्गलाचरण संकीर्तन माध्यमसे ही किया है। यह इनका उपक्रम है—

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥
(श्रीमद्भा० २।४।१५)

यद्यपि सभी जगह प्रायः प्रथम श्रवण उसके बाद कीर्तनकी बात आती है। नवधा भक्तिके प्रसंगमें भी 'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः' (श्रीमद्भा० ७।५।२३) 'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो' (बृहदा० उ० २।४।५, ४।५।६) 'यच्छ्रोतव्यमथो जप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो' (श्रीमद्भा० १।१९।३८) यहाँ भी राजर्षि परीक्षित्ने अपने प्रश्नमें प्रथम श्रवणका ही समावेश किया, तथापि श्रीशुकदेवजीद्वारा स्वमङ्गलाचरणमें कीर्तनका प्रथम स्थान उसका विशेष महत्त्व एवं स्वारस्य बतलाता है। यह रहस्यपूर्ण है; क्योंकि श्रवण-नमस्कार-पूजनादि तो केवल तत्-तत् कर्ताओंको ही लाभ पहुँचाते हैं, अतः ये सब कम उदार हैं। उनकी अपेक्षा संकीर्तन अधिक उदार है; क्योंकि यह कर्ताको तथा उससे अन्योंको भी लाभ पहुँचाता है।

भगवान् तो अवतार-दशामें ही जीवका प्रत्यक्ष कल्याण करते हैं; किंतु संकीर्तन तो सभी दशाओंमें सभीका कल्याण करता है। इसमें सभी अधिकृत हैं, अतः संकीर्तनका अधिक महत्त्व है। भगवत्प्राप्तिमें होनेवाले प्रतिबन्धोंको संकीर्तन ही नष्ट करता है। संकीर्तनसे ही पापमुक्त होकर जीवात्मा श्रवण, मनन, नमस्कार, पूजादिमें प्रवृत्त हो सकता है, अन्यथा प्रतिबन्धस्वरूप उसके दुर्दृष्ट उसे प्रभुतक पहुँचने ही नहीं देंगे।

श्रीमद्भागवतका उपक्रम-उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ति—इन छः प्रकारके तात्पर्य-निर्णायक लिङ्गोंसे कीर्तनमें ही तात्पर्य सूचित होता है। श्रीसनकादि कहते हैं—संकीर्तनके रसिकोंको अन्य सब कुछ फीका ही लगता है; यथा—

येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः
कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ।
(श्रीमद्भा० ३ । १५ । ४८)

श्रीप्रह्लादजी सहपाठी असुर बालकोंको उनके पूछनेपर इस ऊँची स्थितिमें आनेका मूल मन्त्र कीर्तन ही बतलाते हैं—

'श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम् ।'
(श्रीमद्भा० ७ । ७ । ३१)

'कीर्तयेच्छ्रद्धया श्रुत्वा कर्मपाशैर्विमुच्यते ।'
(श्रीमद्भा० ७ । १० । ४६)

जो कीर्तन करता तथा सुनता है, वह मुक्त हो जाता है। नारदजी कहते हैं—

अवतारो हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः ।
संकल्पास्तस्य सिध्यन्ति स याति परमां गतिम् ॥
(श्रीमद्भा० ८ । २४ । ६०)

श्रीहरिके चरित्रका जो संकीर्तन करता है, उसके लौकिक-पारलौकिक सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। अक्रूरजी भी कहते हैं—

ममैतद् दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम् ।
विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥
(श्रीमद्भा० १० । ३८ । ४)

विदेहराज जनकने प्रसिद्ध तत्त्व-ज्ञानियोंकी सभामें श्रीयोगीश्वर करभाजन मुनिके माध्यमसे कीर्तनका महत्त्व बतलाते हुए कहा है—

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ।
यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥
(श्रीमद्भा० ११ । ५ । ३६)

यहाँ संकीर्तनके साथ अवधारण शब्द है । यह अयोगव्यवच्छेद एव अन्ययोगव्यवच्छेदकी दृष्टिसे अत्यन्त स्वारस्य तथा गम्भीरता एव रहस्यसे पूर्ण है—

कृष्णवर्णं त्विषा कृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥
(श्रीमद्भा० ११ । ५ । ३२)

कलियुगमें संकीर्तनसे ही सर्वसिद्धि-प्राप्तिके ये विशेष चमत्कारपूर्ण वचन हैं। श्रीशुकदेवजी महाराजका विशेष उद्घोष भी इसी संदर्भमें देखिये, सुनिये, समझिये और कीजिये—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

श्रीभगवच्चरित्र-संकीर्तनके मात्र सात दिनके श्रवणसे राजर्षि परीक्षित्को अमृतत्वकी प्राप्ति हो गयी तथा उन्होंने स्वयं स्वानुभूतिको व्यक्त किया। अपने चित्तमें स्वेष्ट प्रभु परब्रह्म परमात्मा भगवान्को लाकर स्थिर रखनेका परम साधन है—संकीर्तन । इस बातको नैमिषारण्यमें सूतजीने अठासी हजार महातपा ऋषियोंके बीचमें सिंहगर्जनके साथ कहा है और सभीने एकमत-एकस्वरसे इसे स्वीकार किया है। किसीके द्वारा भी विरोध सामने नहीं लाया गया; क्योंकि यही परम सत्य एवं सत्यका सत्य था; यथा—

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः
श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं
यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥
(श्रीमद्भा० १२ । १२ । ४७)

श्रीमद्भागवतका उपसंहार श्रीनामसंकीर्तनमें ही है, जिसका स्वरूप यह है—

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥
(श्रीमद्भा० १२ । १३ । २३)

यहाँ श्रीहरि एवं श्रीनाम-संकीर्तनका सामान्याधिकरण्य है। अतः आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिपूर्वक परमानन्दावाप्तिस्वरूप स्वभक्तचित्तापहारक श्रीनाम-संकीर्तन-रूप हरि भगवान्को नमस्कार है। इस प्रकार उपक्रमोपसंहारादिपर्यालोचनद्वारा श्रीमद्भागवतका तात्पर्य श्रीनाम-संकीर्तनादिमें ही है। संकीर्तनसे सर्वपापप्रमोचन होता है। उपनिषदें कहती हैं—'कीर्तनात् सर्वदेवस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते' (रुद्रह० उप० १७), दुर्गा-सप्तशतीमें भी—'रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम'। 'जन्मनाम्' उपलक्षण है—नाम-गुण-चरित्रादिका।

विष्णुसहस्रनामपर विचार किया जाय तो भी यही तात्पर्य निकलता है। श्रीनाम-संकीर्तन अधिकतम धर्म तथा भगवान्-का विशुद्ध अर्चन है।

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ॥
(श्रीविष्णुसहस्रनाम ८)

'वासुदेवं स्तवैर्गुणसंकीर्तनलक्षणैः स्तुतिभिः सदार्चेत् । अस्य स्तुतिलक्षणस्यार्चनस्याधिक्ये किं कारणम् ? उच्यते—हिंसादिपुरुषान्तरद्रव्यान्तरदेशकालादिनियमानपेक्षत्वम्—आधिक्यकारणम् । (श्रीविष्णुसहस्रनामभाष्य, श्रीशंकराचार्यपाद)

इस धर्म तथा अर्चनमें कोई भी दोष नहीं है ।

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥
(वि० पु० ६ । २ । १७)

इस प्रकार विष्णुपुराण भी संकीर्तनका महत्त्व कहता है ।

बड़े-से-बड़े यज्ञ-यागादि, कर्मकाण्ड, उपासनादि, अनुष्ठानादि—वे चाहे अश्वमेध, ज्योतिष्टोम, वाजपेय, सोमयाग, आप्तोर्याम कोई भी हों—श्रीभगवन्नामसंकीर्तनके बिना पूर्ण नहीं होते, अतः सभीके अन्तमें श्रीभगवन्नाम-संकीर्तनकी विधि है—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

संकीर्तन-भक्तिमें भागवतका महातात्पर्य

(लेखक—स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज लक्ष्मणकिलाधीश)

श्रीमद्भागवत सभी वेदान्तोंका सार है । इसमें स्थल-स्थलपर संकीर्तनकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है । मीमांसकोंके अनुसार षड्विध-तात्पर्यनिर्णायक वाक्योंद्वारा ही किसी भी ग्रन्थके तात्पर्यका निर्णय किया जाता है—उपक्रम-उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ति—ये तात्पर्यनिर्णयके छः अङ्ग हैं ।

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् ।
अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ॥

इनमें उपक्रम प्रारम्भमें एवं उपसंहार अन्तमें होता है । इनमें भी उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास—इन तीन वाक्योंका विशेष महत्त्व है और इन तीनोंमें भी अभ्यासका मुख्य स्थान है । उपर्युक्त षड्विध-तात्पर्य-निर्णायक अङ्गोंद्वारा भागवतके तात्पर्यका निर्णय करना चाहे तो भगवन्नाम-संकीर्तनादिद्वारा भगवत्प्राप्ति ही ग्रन्थका तात्पर्य सिद्ध होगा । संकीर्तनादि भक्तिके अङ्गोंमें ही ग्रन्थका उपक्रम एवं उपसंहार किया गया है । अभ्यासके द्वारा भी स्थल-स्थलपर संकीर्तनकी ही आवृत्ति की गयी है ।

उपक्रममें श्रीपरीक्षित्‌ने महर्षि शुकदेवजीसे छः प्रश्न किये । इसके पूर्व ऋषियोंसे दो प्रश्न किये, जिसके उत्तरमें द्वितीय स्कन्धसे लेकर द्वादश-स्कन्धपर्यन्त भागवत-कथाद्वारा श्रीशुकदेवजीने उत्तर दिये हैं । जीवको सर्वदा क्या करना चाहिये—यह प्रथम प्रश्न है । जो स्वल्पावधिमें ही मरनेवाले हैं, उनका क्या कर्तव्य है—यह द्वितीय प्रश्न है । ऋषियोंसे ये दो प्रश्न पूछनेपर कोई उत्तर नहीं मिला । तब उस सभामें श्रीशुकदेवजी पधारे तथा उनसे श्रीपरीक्षित्‌ने पूछा कि 'सर्वथा मरणासन्न पुरुषको क्या करना चाहिये तथा मनुष्यमात्रको क्या करना चाहिये ? किसका श्रवण, जप, स्मरण तथा भजन करना चाहिये एवं किसका परित्याग करना चाहिये ?' राजाके इस प्रश्नकी महर्षिने प्रशंसा की तथा सर्वप्रथम किसका परित्याग करना चाहिये, इस प्रश्नका उत्तर दिया । तत्पश्चात् श्रोतव्य आदिके सम्बन्धमें पूछे गये प्रश्नोंका उत्तर दिया । महर्षिने कहा—'राजन् ! अभयपद प्राप्त करनेवाले पुरुषोंको भगवान्‌की ही लीलाओंका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिये—

तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवानीश्वरो हरिः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम् ॥
(श्रीमद्भा० २ । १ । ५)

मनुष्य-जन्मका एकमात्र लाभ यही है कि धर्म, ज्ञान, भक्तिके द्वारा जीवनके अन्तकालमें भगवान्‌की स्मृति बनी रहे। मैं भगवान्‌के निर्गुण स्वरूपमें पूर्ण परिनिष्ठित था; किंतु भगवान्‌की मधुर लीलाओंने मेरे हृदयको अपनी ओर बलात् आकृष्ट कर लिया। अतएव मैंने इस पुराणका अध्ययन किया। तुम भगवान्‌के परम भक्त हो, अतः मैं तुम्हें इसे सुनाऊँगा।'

अब महर्षि शुकदेवजी भागवतके प्रतिपाद्य विषय भगवन्नाम-संकीर्तनका सर्वप्रथम प्रतिपादन करते हैं—

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्॥
(श्रीमद्भा० २। १। ११)

'लोक-परलोकके समस्त पदार्थोंकी इच्छा रखनेवाले सकाम जीवोंके लिये तथा संसारके भोगोंसे विरक्त होकर मोक्षकी इच्छा रखनेवाले मुमुक्षुओंके लिये एवं ज्ञानियोंके लिये भी समस्त शास्त्रोंका यही निर्णय है कि सभी भगवान्‌के नामोंका संकीर्तन करें।' श्रीधर स्वामीजी लिखते हैं—

'साधकानां सिद्धानां च नातः परम् अन्यत् श्रेयः अस्ति इति आह—एतत्। इति इच्छतां कामिनां तत् तत् फलसाधनं एतदेव। निर्विद्यमानानां मुमुक्षूणां मोक्षसाधनं एतदेव। योगिनां ज्ञानिनां फलं च एतदेव निर्णीतम्। नात्र प्रमाणं प्रवक्तव्यम् इत्यर्थः।'

'साधक एवं सिद्धोंके लिये नाम-संकीर्तनसे श्रेष्ठ कोई अन्य कल्याणप्रद साधन नहीं है। इस सम्बन्धमें प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है।' श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि इस शास्त्रमें भक्ति ही अभिधेयतत्त्व है। भक्तिके अङ्गोंमें चक्रवर्ती सम्राट्‌की भाँति कोई एक मुख्य अङ्ग क्या है? इस जिज्ञासाका समाधान करते हुए महर्षि कहते हैं—**'हरेर्नामानुकीर्तनम्'**। श्रीहरिनाम-संकीर्तन ही भक्तिका मुख्य अङ्ग है। **'तस्माद् भारत'**—इस श्लोकमें श्रवण, कीर्तन, स्मरण—ये तीन अङ्ग मुख्य कहे गये हैं। इन तीनोंमें भी नाम-संकीर्तन मुख्य है। नाम-कीर्तनका तात्पर्य है—भगवान्‌के गुण, लीला, नाम आदिका कीर्तन। अनुकीर्तनका अर्थ है—अपनी भक्तिके अनुरूप कीर्तन तथा निरन्तर कीर्तन। महर्षि कहते हैं कि **'निर्णीतम्'** केवल मेरा ही यह निर्णय नहीं है, किंतु पूर्वाचार्योंने ऐसा निर्णय किया है। श्रीजीवगोस्वामी कहते हैं कि उच्चस्वरसे नाम-कीर्तन करना चाहिये; क्योंकि श्रीमद्भागवतमें कहा है—**'नामान्यनन्तस्य गतत्रपः पठन्'**। प्रभुके नामोंका कीर्तन लज्जा छोड़कर भक्त करते हैं। पद्मपुराणमें कथित दस नामापराधोंका परित्याग कर नाम-कीर्तन करना चाहिये। श्रीधरस्वामीने इस स्कन्धके आरम्भमें जो मङ्गलाचरण किया है, उससे नाम-संकीर्तनकी महिमा स्पष्टरूपसे परिलक्षित होती है—

यन्नामकीर्तनं दानतपोयोगादिसत्फलम्।
तं नित्यं परमानन्दं हरिं नरमहं भजे॥

'जिनके नामोंका संकीर्तन दान, तप, योग आदि साधनोंका समीचीन फल है, उन नित्य परमानन्दस्वरूप भगवान् श्रीनरसिंहका मैं भजन करता हूँ।'

श्रीमद्भागवतका उपसंहार भी नाम-संकीर्तनसे ही किया गया है—

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥
(१२। १३। २३)

'जिनका नाम-संकीर्तन समस्त पापोंको नाश कर देता है तथा जिनको प्रणाम करनेसे दुःखका शमन हो जाता है, उन श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।' श्रीमद्भागवतका यह अन्तिम श्लोक है। इस प्रकार उपक्रम, उपसंहार—दोनों वाक्योंमें नाम-संकीर्तनका ही प्रतिपादन होनेसे ग्रन्थका मुख्य तात्पर्य नाम-संकीर्तनमें ही सुस्पष्ट है। समस्त ग्रन्थमें अभ्यासके द्वारा भी नाम-संकीर्तनकी ही आवृत्ति की गयी है।

इसी स्कन्धमें महर्षि श्रीशुकदेवजीने सर्वप्रथम मङ्गलाचरण करते हुए कीर्तनका ही स्मरण किया है—

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥
(२।४।१६)

'जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण, पूजन आदि मनुष्यके समस्त पापोंको नष्ट कर देता है, उन मङ्गलमय यशवाले भगवान्‌को बार-बार नमस्कार है।'

तृतीय स्कन्धमें माता देवहूति भगवान् कपिलसे कहती हैं—

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्
यत्प्रह्वणाद् यत्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते
कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥
अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥
(श्रीमद्भा० ३।३३।६-७)

'भगवन्! आपके नामके श्रवण-कीर्तनसे, आपका वन्दन-स्मरण करनेसे कुत्तेका मांस भक्षण करनेवाला चाण्डाल भी सोमयाजी विप्रकी भाँति पूज्य हो जाता है, फिर आपके दर्शनसे मनुष्य कृतार्थ हो जाय इसमें क्या आश्चर्य है? वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है, जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर आपका नाम विराजमान रहता है। उन्होंने तप, हवन, तीर्थस्नान, आचारका पालन एवं वेदाध्ययन आदि सभी साधन कर लिये।'

चतुर्थ स्कन्धमें भी कहा गया है—

यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा
लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम्॥
(श्रीमद्भा० ४।१०।३०)

'भगवान्‌के नामोंके श्रवण-कीर्तनमात्रसे मनुष्य दुस्तर मृत्युके मुखसे अनायास ही मुक्त हो जाता है।'

पञ्चम स्कन्धमें स्पष्ट कहा गया है—

नैवंविधः पुरुषकार उरुक्रमस्य
पुंसां तदङ्घ्रिरजसा जितषड्गुणानाम्।
चित्रं विदूरविगतः सकृदाददीत
यन्नामधेयमधुना स जहाति बन्धम्॥
(श्रीमद्भा० ५।१।३५)

श्रीप्रियव्रत भगवान्‌की उपासनाके बलसे ऐसे पराक्रमी हो गये कि उन्होंने सूर्यके समान वेगशाली रथपर चढ़कर उनके पीछे चलकर पृथ्वीकी सात परिक्रमाएँ कर डालीं। उनके रथके पहियेसे जो सात रेखाएँ बन गयीं, वे ही सात समुद्र हुए। उनसे जम्बू, प्लक्ष आदि सात द्वीप हो गये। श्रीप्रियव्रतके समान भगवद्भक्तोंके लिये पूर्वोक्त पराक्रम कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि उन्होंने भगवच्चरणारविन्दरजके प्रभावसे मनसहित छहों इन्द्रियोंको जीत लिया था। आश्चर्य तो यह है कि नीच योनिमें उत्पन्न चाण्डाल भी भगवान्‌के नामका एक बार भी उच्चारण करनेसे शीघ्र ही संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

भागवतके षष्ठ स्कन्धमें 'पोषण' का प्रतिपादन है। सर्ग-विसर्ग आदि पुराणके दस लक्षणोंमें पोषणका अर्थ है अनुग्रह—**'पोषणं तदनुग्रहः'**। विश्वनाथ चक्रवर्ती लिखते हैं कि धर्म-मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाले भक्तोंका जहाँ भगवान्‌के द्वारा रक्षण हो, उसीको विद्वान् पोषण कहते हैं। इस पोषणके द्वारा ही अजामिलकी रक्षा हुई थी; क्योंकि इसने धर्म-मर्यादाका उल्लङ्घन कर पुत्रके बहाने नारायण नामका उच्चारण किया था। भगवन्नामके संकेतमात्रसे अजामिलका उद्धार होना ही यहाँ पोषण है। भयंकर रूपवाले यमदूत जब मृत्युकाल उपस्थित होनेपर अजामिलको लेनेके लिये पहुँचे, तब उसने

भयभीत होकर दूर खेलते हुए अपने पुत्र नारायणको उच्च स्वरसे पुकारा—

निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम् ।
भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसापतन् ॥
(श्रीमद्भा० ६ । १ । ३०)

'भगवान्‌के पार्षदोंने देखा कि यह मृत्युके समय हमारे स्वामी भगवान् नारायणका नाम-स्मरण कर रहा है—प्रभुके नामका संकीर्तन कर रहा है, अतः बड़ी शीघ्रतासे वहाँ पहुँच गये।' उन्होंने यमदूतोंको बलपूर्वक रोक दिया। यमदूतोंने भगवत्पार्षदोंके समक्ष अपने पक्षको प्रस्तुत करते हुए अजामिलको पापी सिद्ध करनेका महान् प्रयास किया तथा यह भी कहा कि इसने वेश्यागमन, मद्यपान आदि भयंकर पाप किये; किंतु उन पापोंका प्रायश्चित्त नहीं किया। अतः हम इस पापीको दण्डपाणि यमराजके पास ले जायँगे, जहाँ यह अपने पापोंका दण्ड भोगकर शुद्ध हो जायगा। भगवत्पार्षदोंने कहा कि इसने एक जन्मका ही नहीं, किंतु कोटि-कोटि जन्मोंके पापसमूहोंका प्रायश्चित्त कर लिया है। इसने विवश होकर ही सही, भगवान्‌के नामका उच्चारण किया है। भगवन्नामके उच्चारणसे इसने केवल अपने पापोंका प्रायश्चित्त ही नहीं किया, किंतु मोक्षका मार्ग भी प्रशस्त कर लिया है।

यमदूत कहते है कि पुत्रस्नेहके परवश होनेके कारण ही इसके मुखसे नाम निकल गया, इसे नाम-संकीर्तन कैसे मान लिया जाय? भगवत्पार्षद कहते है कि पुत्रादिके संकेतमें, परिहासमें, तान अलापनेमें, अवहेलनामें भी यदि कोई भगवान्‌के नामोंका उच्चारण करता है तो उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य गिरते समय, पैर फिसलते समय, अङ्ग-भंग होते समय, सर्पदंशसे, अग्निमें जलनेसे तथा चोट लगते समय भी विवशतामें भगवन्नामका उच्चारण कर लेता है, वह यमयातनाका पात्र नहीं रह जाता। जैसे जान-अनजानमें लकड़ीसे अग्निका स्पर्श हो जाय तो वह भस्म हो ही जाती है, वैसे ही जान या अनजानमें भगवान्‌के नाम-संकीर्तनसे मनुष्यके सब पाप भस्म हो जाते हैं। वस्तुशक्ति श्रद्धाकी अपेक्षा नहीं करती। इस प्रकार भगवन्नामकी महिमा कहकर भगवत्पार्षदोंने यमदूतोंसे अजामिलकी रक्षा की। यमदूतोंने लौटकर जब यमराजसे इस घटनाका संकेत किया, तब स्वयं यमराजने भी नाम-संकीर्तनकी महिमाका विशद विवेचन किया।

महर्षि शुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌से स्पष्ट कहा है कि भगवान्‌के गुण-नामोंका संकीर्तन बड़े-से-बड़े पापोंको समूल निर्मूल करनेवाला सर्वश्रेष्ठ एवं अन्तिम प्रायश्चित्त है। इसीसे संसारका कल्याण हो सकता है—

तस्मात् संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् ।
महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम् ॥
(श्रीमद्भा० ६ । ३ । ३१)

इस प्रकार वेदान्तसार श्रीमद्भागवतका महातात्पर्य नाम-संकीर्तनमें ही है। जिस भागवतधर्मकी स्थापनाके लिये श्रीमद्भागवतका निर्माण हुआ उसका लक्षण करते हुए स्वयं यमराजने कहा है—भगवन्नाम-संकीर्तन आदिके द्वारा भगवान्‌में भक्ति करना ही परमधर्म—भागवत धर्म है—

भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ।
(श्रीमद्भा० ६ । ३ । २२)

संकीर्तनकी महत्ता

(परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥
(श्रीमद्भा० १२ । १३ । २३)

'जिनके नामका संकीर्तन सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है और जिनको किया गया प्रणाम सम्पूर्ण दुःखोंको शान्त कर देता है, उन परमतत्त्व-स्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ ।'

इस कलियुगमें भगवन्नामकी सबसे अधिक महिमा है । यद्यपि नामकी महिमा सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—इन चारों ही युगोंमें है, तथापि कलियुगमें तो मनुष्योंके लिये भगवन्नाम ही मुख्य आधार है, आश्रय है तथा भगवन्नाम ही कल्याणका सुगम और सर्वोपरि साधन है ।

भगवन्नामका एक मानसिक जप होता है, एक उपांशु जप होता है, एक साधारण जप होता है और एक संकीर्तन होता है । मानसिक जप वह होता है, जिसमें मनसे ही नामका जप-चिन्तन हो तथा जिसमें कण्ठ, जिह्वा और होठ न हिलें । उपांशु जप वह होता है, जिसमें मुख बंद रखते हुए कण्ठ और जिह्वासे जप किया जाय तथा जो अपने कानोंको भी सुनायी न दे । साधारण जप वह होता है, जिसमें अपने कानोंको भी नाम सुनायी दे और दूसरोंको भी सुनायी दे । संकीर्तन वह होता है, जिसमें राग-रागिनियोंके साथ उच्च स्वरसे नामका गान किया जाय । भगवान्‌के नामके सिवाय उनकी लीला, गुण, प्रभाव आदिका भी कीर्तन होता है, परंतु इन सबमें नाम-संकीर्तन बहुत सुगम और श्रेष्ठ है ।

जैसे मानसिक जपमें मन जितना ही तल्लीन होता है, उतना ही वह अधिक श्रेष्ठ होता है, ऐसे ही नाम-संकीर्तनमें ताल-स्वरसहित राग-रागिनियोंके साथ जितना ही तल्लीन होकर जैसे मस्तीमें नामका गान किया जाय, उतना ही वह अधिक श्रेष्ठ होता है ।

नाम-संकीर्तन मस्त होकर, भगवान्‌में मन लगाकर किया जाना चाहिये । मन लगानेका अभिप्राय है कि दूसरे लोग मुझे देख रहे हैं या नहीं, दूसरे लोग कीर्तन कर रहे हैं या नहीं, मेरे कीर्तनका लोगोंपर क्या असर पड़ रहा है—ऐसा मनमें भाव बिल्कुल न रहे । ऐसा भाव तत्त्वमें कल्याण करनेमें बाधक है । संकीर्तनमें दिखलावटीपन आनेसे वह मान-बड़ाई आदिकी लौकिक कामनामें परिणत हो जाता है और उसका प्रभाव औरोंपर कम पड़ता है ।

लोकवासना, देहवासना और शास्त्रवासना—ये तीन वासनाएँ हैं । ऐसे ही वित्तैषणा, पुत्रैषणा और लोकैषणा—ये तीन एषणाएँ (इच्छाएँ) हैं । ये सब बहुत पतन करनेवाली हैं । संकीर्तन करते हुए, शुभ कार्य करते हुए, सत्सङ्ग करते हुए, प्रवचन देते हुए, कथा करते हुए भी यह कूड़ा-करकट (वासनाएँ—इच्छाएँ) साथमें मिल जाता है तो संकीर्तन आदिका जो माहात्म्य है, वह नहीं रहता । यद्यपि नामजप, कथा, कीर्तन, सत्सङ्ग आदि कभी निष्फल नहीं जाते, उनसे लाभ अवश्य होता है, तथापि इन वासनाओं—इच्छाओंके कारण उनसे विशेष लाभ नहीं होता, बहुत थोड़ा लाभ होता है ।

भगवान्‌में मन लगाकर, तल्लीन होकर नाम-संकीर्तन किया जाय तो उससे एक विलक्षण वायुमण्डल बनता है । वह वायुमण्डल सब जगह फैल जाता है, जिससे संसारमात्रका हित होता है । शब्द व्यापक है—इस बातका तो आविष्कार हो चुका है, पर भाव व्यापक है—

इस बातका आविष्कार अभीतक नहीं हुआ है । वास्तवमें भाव शब्दसे भी अधिक व्यापक है; क्योंकि भाव शब्दसे भी अधिक सूक्ष्म है । जो वस्तु जितनी सूक्ष्म होती है, वह उतनी ही अधिक व्यापक होती है । अतः संसार-मात्रकी सेवा करनेमें सेवाका भाव जितना समर्थ है, उतने पदार्थ समर्थ नहीं है । भावोंमें भी भगवद्भाव बहुत विलक्षण है; क्योंकि भगवद्भाव चिन्मय तत्त्व है । भगवान्‌के समान दूसरा कोई सर्वव्यापक तत्त्व नहीं है । अतः भगवद्भावसे भगवान्‌के नामका संकीर्तन किया जाय तो उसका संसारमात्रपर बहुत विलक्षण असर पड़ता है; वह संसारमात्रको शान्ति देनेवाला होता है ।

शब्दमें अलौकिक शक्ति है । जब मनुष्य सोता है, तब उसकी इन्द्रियाँ मनमें, मन बुद्धिमें और बुद्धि अविद्यामें लीन हो जाती है; परंतु जब सोये हुए मनुष्यका नाम लेकर पुकारा जाय, तब वह जग जाता है । यद्यपि दूसरे शब्दोका भी उसपर असर पड़ता है, उसकी नींद खुल जाती है, तथापि उसके नामका उसपर अधिक असर पड़ता है । इस प्रकार शब्दमें इतनी शक्ति है कि वह अविद्यामें लीन हुएको भी जगा देता है* । ऐसे ही भगवन्नाम-संकीर्तनसे जन्म-जन्मान्तरसे अज्ञान-निद्रामें सोया हुआ मनुष्य भी जग जाता है । इतना ही नहीं, नाम-संकीर्तनके प्रभावसे सब जगह विराजमान भगवान् भी प्रकट हो जाते है । भगवान्‌ने कहा है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥
(आदिपुराण १९ । ३५)

'नारद ! न तो मै वैकुण्ठमे निवास करता हूँ, और न योगियोके हृदयमें ही, अपितु जहाँ मेरे भक्त मेरे नाम आदिका कीर्तन करते है, मै वहीं रहता हूँ ।'

भगवन्नामकी अपार महिमा होनेसे उसके मानसिक जपका भी सम्पूर्ण प्राणियोंपर प्रभाव पड़ता है और उससे सबका स्वाभाविक हित होता है; परंतु नाम-संकीर्तनका प्रभाव वृक्ष, लता आदि स्थावर और मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जङ्गम प्राणियोंपर तो पड़ता ही है, निर्जीव पत्थर, काष्ठ, मिट्टी, मकान आदिपर भी उसका प्रभाव पड़ता है ।

जहाँ नामजप, ध्यान, कथा, सत्सङ्ग आदि भगवत्सम्बन्धी बाते हो रही हो, वहाँ जानेसे शान्ति मिलती है, पापोंका नाश होता है, पवित्रता आती है, जीवनपर स्वाभाविक एक विलक्षण प्रभाव पडता है; परंतु इसकी अपेक्षा भी कीर्तनप्रेमीपर नाम-संकीर्तनका विशेष प्रभाव पड़ता है । नाम-संकीर्तनमें संकीर्तन सुननेवाले और देखनेवाले—दोनोपर ही संकीर्तनका प्रभाव पड़ता है । भगवान्‌के दर्शनका जैसा प्रभाव पड़ता है, वैसा ही प्रभाव कीर्तनप्रेमी भक्तपर संकीर्तनका पड़ता है ।

कलियुगमें तो संकीर्तनकी विशेष महिमा है—**'कलौ तद्धरिकीर्तनात्'** (श्रीमद्भा० १२ । ३ । ५२) । बगाल और महाराष्ट्रमें संकीर्तनका विशेष प्रचार है । बंगालमें चैतन्य महाप्रभुने और महाराष्ट्रमें संत तुकाराम आदिने संकीर्तनका विशेष प्रचार किया । वाद्यके साथ एक स्वरमें सबके द्वारा मिलकर संकीर्तन किया जाय तो उससे एक विशेष शक्ति पैदा होती है—**'सङ्घे शक्तिः कलौ युगे ।'** संकीर्तनके समय अपनी आँखे मीच ले और ऐसा भाव रखे कि मै अकेला हूँ और मेरे सामने केवल भगवान् खडे है; दूसरोकी जो आवाज आ रही है, वह भी भगवान्‌की ही आवाज है । इस प्रकार भगवद्भावसे संकीर्तन करनेसे बहुत लाभ होता है और कोई पाप, दुर्गुण-दुराचार नहीं रहता; परंतु भगवान्‌का साक्षात् अनुभव तभी होता है, जब केवल शुद्ध कीर्तन हो ।

* शब्दशक्तेरचिन्त्यत्वाच्छब्दादेवापरोक्षधीः । प्रसुप्तः पुरुषो यद्वच्छब्देनैवावबुध्यते ॥

महाराष्ट्रमें समर्थ गुरु रामदास बाबा एक बहुत विचित्र संत हुए हैं। इनके सम्बन्धमें एक बात (कथा) प्रसिद्ध है। ये हनुमान्‌जीके भक्त थे और इनको हनुमान्‌जीके दर्शन हुआ करते थे। एक बार बाबाजीने हनुमान्‌जीसे कहा कि 'महाराज! आप एक दिन सब लोगोंको दर्शन दें।' हनुमान्‌जीने कहा कि 'तुम लोगोंको इकट्ठा करो तो मैं दर्शन दे दूँगा।' बाबाजी बोले कि 'लोगोंको इकट्ठा तो मैं कर दूँगा।' हनुमान्‌जीने कहा कि 'शुद्ध हरिकथा करना।' बाबाजी बोले कि 'शुद्ध हरिकथा ही करूँगा।'

संत तथा राजगुरु होनेके कारण बाबाजीका ऐसा प्रभाव था कि वे जहाँ जाते, वहीं हजारोंकी संख्यामें लोग इकट्ठे हो जाते। उन्होंने एक शहरमें जाकर कहा कि आज रात शहरके बाहर अमुक मैदानमें हरिकथा होगी। समाचार सुनते ही हरिकथाकी तैयारी प्रारम्भ हो गयी। प्रकाशकी व्यवस्था की गयी, दरियाँ बिछायी गयीं। समयपर बहुत-से लोग इकट्ठे हो गये। सब गाने-बजानेवाले आकर बैठ गये और कीर्तन प्रारम्भ हो गया। बीच-बीचमें बाबाजी भगवान्‌की कथा कह देते और फिर कीर्तन करने लगते। ऐसा करते-करते वे कीर्तनमें ही मस्त हो गये। लोगोंको यह आशा थी कि अब बाबाजी कथा सुनायेंगे, पर वे तो कीर्तन ही करते चले गये। लोगोंके भीतर असली भाव तो था नहीं, अतः उन्होंने सोचा कि यह कीर्तन तो हम घरपर ही कर लिया करते हैं; यहाँ कबतक बैठे रहेंगे! ऐसा सोचकर वे धीरे-धीरे उठकर जाने लगे। थोड़ी देरमें सभी लोग उठकर चले गये। धीरे-धीरे गाने-बजानेवाले भी खिसक गये। बाबाजी तो आँखें बंद करके अपनी मस्तीमें कीर्तन करते ही रहे। प्रकाशकी व्यवस्था करनेवाले भी चले गये। अब दरीवालोंको कठिनाई हुई कि बाबाजी तो मस्तीसे नाच रहे हैं, दरी कैसे उठायें! उन्होंने भी अटकल लगायी। जब बाबाजी नाचते-नाचते उधर गये तो इधरकी दरी इकट्ठी कर ली और जब वे इधर आये तो उधरकी दरी इकट्ठी कर ली और चल दिये। जब सब चले गये, तब हनुमान्‌जी प्रकट हो गये। बाबाजीने हनुमान्‌जीसे कहा कि 'महाराज! सबको दर्शन दें!' हनुमान्‌जी बोले—'सब हैं कहाँ?' वहाँ और तो कोई था ही नहीं, केवल बाबाजी ही थे।

इस प्रकार भावपूर्वक केवल भगवन्नामका संकीर्तन करना 'शुद्ध हरिकथा' है। इस शुद्ध हरिकथासे भगवान् साक्षात् प्रकट हो जाते हैं। वर्तमानमें संकीर्तनकी बड़ी आवश्यकता है। अतः जगह-जगह लोगोंको एक साथ मिलकर अथवा अकेले संकीर्तन करना चाहिये। इससे संसारमात्रमें शान्ति-विस्तार होगा।

'हरि बोल हरि बोल'

हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल॥
बोल हरि बोल, गोविन्द हरि बोल॥
तू हरि हरि बोल, चाहे सीताराम बोल।
तू सीताराम बोल, चाहे राधेश्याम बोल।
तू केशव माधव मुकुन्द बोल॥
तू हरि ॐ बोल चाहे ॐ तत्सत् बोल।
पर बोल हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल॥

तुलसीदासके पहरेदार

नरसीजीका भात

योगक्षेमं वहाम्यहम्

वर्तमान समयमें सबसे सरल साधन—भगवन्नाम-संकीर्तन

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीभजनानन्द सरस्वतीजी महाराज)

यत् फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ।
तत् फलं लभते सम्यक् कलौ केशवकीर्तनात् ॥

'जो फल तपस्या, योग एवं समाधिसे नहीं प्राप्त होता, वही फल कलियुगमें भगवान् श्रीकृष्णका कीर्तन-भजन करनेसे प्राप्त हो जाता है ।'

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

क्षीरशायी भगवान् विष्णु श्रीमुखारविन्दसे कहते हैं-'देवर्षि नारद ! मैं वैकुण्ठमें वास नहीं करता तथा योगियोंके हृदयमें भी नहीं रहता; अपितु मेरे प्यारे भक्त जहाँ मेरे लिये विह्वल होकर कीर्तन-भजन करते हैं, वहीं मै रहता हूँ अर्थात् मेरा निवासस्थान वहीं है ।'

नहीं बसूँ वैकुण्ठमें, ना योगिन हिय माहिं ।
भक्त मेरे गावैं जहाँ, रहूँ मैं संशय नाहिं ॥

कलियुगमें अनेक दोष होनेपर भी यह एक लाभ भी है कि जो भी भक्त 'राम-कृष्ण'का संकीर्तन करेगा, उसके घर कलि कभी नहीं जायगा । कलिसे बचनेका एकमात्र उपाय है—राम-कृष्णका कीर्तन । महापुरुषोंने कहा है—

रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहिं । संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहिं ॥

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥
(श्रीमद्भा० १२ । ३ । ५१)

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

'सत्ययुगमें विष्णुके ध्यानसे, त्रेतायुगमें यज्ञोंसे, द्वापरमें विधिपूर्वक पूजा करनेसे जो फल मिलता था, वही फल कलियुगमें भगवान्के नाम-कीर्तनसे मिलता है ।' जहाँ भक्तलोग भगवान्का गान करते हैं, वहाँ भगवान् निवास करते हैं ।

योगक्षेमं वहाम्यहम्

[तुलसी और नरसी]

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥
(गीता ९ । २२)

उस दयामयकी यह घोषणा किसी व्यक्ति-विशेष अथवा किसी काल-विशेषके लिये नहीं है । यह तो समस्त प्राणियोंके लिये सार्वकालिक घोषणा है और घोषणा करनेवाला है—सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ—उससे प्रमाद हो नहीं सकता ।

दो अनन्यचिन्तक सर्वत्र, सब कालमें उस सर्वेश्वरको देखनेवाले थे—एक काशीमें और एक सौराष्ट्रमें । कोई कहाँ है, कौन है, इसकी महत्ता नहीं है । जो उस जगदीश्वरका अनन्यचिन्तक है, वह तो उसका अपना शिशु है । वह कहीं भी हो, अपने परम पिताकी गोदमें ही है । पिताकी गोदमें शिशु है—किसका साहस है कि उस सर्वेश्वरेश्वरके शिशुकी ओर आँख उठा सके ।

अपने भक्त—अपने अनन्यचिन्तक भक्तके 'योगक्षेम' का वहन वह दयामय स्वयं करता है । किसी दूसरेपर वह इसे छोड़ कैसे सकता है ?

× × ×

काशीमें अस्सीघाट या संकटमोचन—अब ठीक स्थान बता पाना कठिन है । उन दिनों काशी इतना बड़ा नगर नहीं था । अस्सीसे आगेतक खेत और वृक्षोंके झुरमुट थे । वहीं गङ्गातटपर गोस्वामी तुलसीदासजीकी

झोपड़ी थी। रात्रिके घोर अन्धकारमें जब संसार निद्रामग्न हो रहा था, दो चोर उस झोपड़ीके पास पहुँचे। साधुकी झोपड़ीमें चोरोंको क्या मिल सकता था! किंतु काशीके कुछ द्वेषी लोगोंने चोरोंको भेजा था। वे धनके लोभसे नहीं आये थे। कहते हैं कि वे आये थे श्रीरामचरितमानसकी मूल प्रति चुराकर ले जानेके लिये।

गोस्वामी तुलसीदासजी सो गये थे; किंतु अपने जनोंके 'योगक्षेम' की रक्षाका भार जिनपर है, वे श्रीदशरथराजकुमार सोया नहीं करते। चोर झोपड़ीके पास आये और ठिठककर खड़े हो गये। उन्होंने देखा—दो अति सुन्दर तरुण कवच पहिने, तरकस बाँधे, हाथमें चढ़ा धनुष लिये सतर्क खड़े हैं। वे श्याम और गौर कुमार हैं, उनके दाहिने हाथमें बाण हैं एक-एक और धनुषपर चढ़कर उस बाणको छूटनेमें दो पल भी लगेंगे—जो ऐसा सोचे, मूर्ख है वह।

चोरोंने झोपड़ीके पीछेसे उसमें प्रवेश करना चाहा। वे पीछे गये, किंतु जो सर्वव्यापी है, उससे रिक्त स्थान कहाँ मिलेगा। वे दोनों राजकुमार झोपड़ीके पीछे भी दीखे और अगल-बगल वहाँ सर्वत्र दीखे, जहाँसे चोरोंने झोपड़ीमें जानेकी इच्छा की।

क्षेम—रक्षा—केवल वह रक्षा ही नहीं हुई, वे चोर भी धन्य हो गये उन देवदुर्लभ भुवनमोहन रूपोंको देखकर। वहाँसे पीछे लौट जाना किसके वशमें रह सकता था। प्रातः वे गोस्वामी तुलसीदासजीके चरणोंपर गिर पड़े और जब उन्हें पता लगा कि रात्रिके वे चौकीदार कौन थे—उनका पूरा जीवन उन अवध-राजकुमारोंके स्मरणमें लगनेके लिये सुरक्षित हो गया।

× × ×

क्षेम—जो कुछ है, उसका रक्षण ही नहीं, योग—आवश्यकताका विधान भी स्वयं करता है वह करुणा-वरुणालय।

भक्तश्रेष्ठ नरसी मेहताके घर क्या धरा था। उन्हें अपनी लड़कीका भात भरना था। दरिद्र पिता कुछ वैष्णवोंके साथ टूटी-सी बैलगाड़ीमें बैठकर ढोल, करताल, मँजीरे आदि लिये गया और एक जलाशयके समीप कीर्तनमग्न हो गया। वह क्या लेकर कन्याके पतिगृह जाय—किंतु उसे न चिन्ता थी, न खेद। वह तो कीर्तनमें तन्मय था। उसके दृढ़ निश्चयमें कभी बाधा नहीं पड़ी—'साँवरिया—श्यामसुन्दरको जो करना है, कर लेगा वह।'

नरसी मेहताकी पुत्री—एक सम्पन्न परिवारकी कुलवधू। उसपर व्यंग कसे जा रहे थे। उसके पिताका परिहास हो रहा था। ननद और सास—सभीने अपनी बड़ी-बड़ी माँगें उपस्थित कर दी थीं। वह बेचारी लड़की—वह भी अपने पिताके सर्वस्व उस द्वारिकानाथको स्मरण ही कर सकती थी।

'मेरा नाम शामलशाह है। मैं नरसी मेहताका मुनीम हूँ। आप सब भाई सामग्रीको सँभाल लें। रत्नखचित वस्त्रोंके अम्बार, मणिजटित आभूषणोंकी ढेरियाँ—सेवकों और छकड़ोंकी पंक्तियाँ चली ही आ रही थीं। नरसी मेहताने जो सामग्री भेजी थी—लड़कीके श्वशुरकुलके लोग उसकी कल्पना स्वप्नमें भी कैसे कर पाते। भले स्वयं नरसी मेहताको भी उसकी कल्पना न हो, किंतु उनके योगवहनके लिये सदा सतर्क ये शामलशाह—भगवती लक्ष्मी इनकी कृपाकोर ही तो चाहती हैं।

भगवन्नाम-जप-संकीर्तनमें श्रद्धा, प्रीति और तन्मयताकी आवश्यकता

(लेखक—स्वामी श्रीशंकरानन्दजी सरस्वती)

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥
(नारदपु० पूर्वार्ध, १ । ४१ । १५)

'भगवान्‌का नाम ही, नाम ही, नाम ही मेरा जीवन है। कलियुगमें नामको छोडकर दूसरी गति नहीं है, नहीं है, नहीं है।' गीतामें भगवान्‌का कथन है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥
(१० । १०)

'उन निरन्तर मुझमें मन लगाये हुए प्रेमपूर्वक भजन करनेवाले भक्तोंको मैं तत्त्वज्ञान देता हूँ, जिससे वे मुझे प्राप्त हो जाते हैं।' यथा—

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी ॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ ॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

—इन शास्त्र-वचनोंसे स्पष्ट है कि योग, ध्यान आदि साधनोंके बाधक इस कराल कलिकालमें साधकके लिये सकल सिद्धिप्रसाधक भगवन्नाम-जप-कीर्तन ही है। **'भजतां प्रीतिपूर्वकम्'**, **'सादर सुमिरन जे नर करहीं'**। 'साधक नाम जपहिं लय लाएँ'—आदि वाक्योंमें 'प्रीति', 'लय', 'सादर' आदि शब्द सिद्ध कर रहे हैं कि श्रद्धा-प्रेमपूर्वक मन लगाकर नाम-स्मरण करनेपर सिद्धिकी प्राप्ति होती है।

नामापराधपर विचार

शङ्का—भगवन्नाम-जप श्रद्धा-प्रीतिपूर्वक मन लगाकर करना चाहिये—यह शर्त लगाना ठीक नहीं, क्योंकि शास्त्रोंमें किसी प्रकार भी लिया गया भगवन्नाम सम्पूर्ण पापोंका नाशक, यमयातनाका निवारक और कल्याणकारक माना गया है—

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥
पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान् नार्हति यातनाम् ॥
(श्रीमद्भा० ६ । २ । १४-१५)

'संकेत, परिहास, गाने तथा पुकारनेमें भी भगवान् विष्णुके नामका ग्रहण सम्पूर्ण पापोंका नाश कर देता है। गिरते, फिसलते, काटे या डँसे जानेपर, तपते, चोट खाते हुए पुरुषके द्वारा परवश होकर 'हरि' ऐसा कहनेपर उस पुरुषको यम-यातनाका भोग नहीं करना पडता।'

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥
बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥

यदि यह कहा जाय कि ये वचन नाम-जपमें प्रवृत्ति करानेके लिये अर्थवादमात्र हैं, इनका स्वार्थमें तात्पर्य नहीं तो ऐसा कहना ठीक नहीं; क्योंकि नाम-जपके फलको अर्थवाद मानना नामापराध माना गया है—

सन्निन्दासति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधी-
रश्रद्धा गुरुशास्त्रवेदवचने नाम्न्यर्थवादभ्रमः।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागौ च धर्मान्तरैः
साम्यं नामजपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश ॥

'संतोंकी निन्दा करना, नाममाहात्म्यकी कथाओंको असत्य मानना, भगवान् विष्णु और शंकरमें भेदबुद्धि करना, गुरु, शास्त्र और वेदके वचनोंमें अश्रद्धा करना, नामजपके फलमें अर्थवादका भ्रम होना, मेरे पास भगवन्नाम है—ऐसा अभिमान करके निषिद्ध कर्मोंका आचरण करना और विहितका त्याग करना, नामजपको दूसरे धर्मोंके समान मानना—भगवान् विष्णु और शंकरके नाम-जपमें ये दस नामापराध माने गये हैं।'

समाधान—एक पक्षका कथन है कि भागवतके पूर्वोक्त अजामिल-प्रसङ्गके श्लोकोंमें किसी प्रकारसे भी लिये गये भगवन्नामको केवल पापनाशक तथा नरक-यातनारक्षक ही बताया गया है, मोक्षप्रद नहीं। पुत्रके व्याजसे लिये गये भगवन्नामद्वारा अजामिलके पापोंका केवल नाश हुआ, कल्याण तो हरिद्वारमें जाकर साधना करनेपर ही हुआ था, जैसा कि भागवतमें वर्णन है—

गङ्गाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः।
स तस्मिन् देवसदने आसीनो योगमाश्रितः॥
(श्रीमद्भा० ६।२।३९)

'पीछेके सभी बन्धनोंसे मुक्त अजामिल हरिद्वार गया, उस देवसदन (तीर्थ) में उसने योगका आश्रय लिया।' इससे यही सिद्ध होता है कि श्रद्धा-प्रेमरहित किसी भी प्रकारसे लिया गया भगवन्नाम केवल पापनाशक, यम-यातनासे रक्षक होता है और श्रद्धा, प्रेम तथा तन्मयतासे लिया गया भगवन्नाम कल्याणकारी होता है। यदि ऐसा न माना जाय तो शास्त्रोंमें जो श्रद्धा, प्रेम तथा तन्मयताका कथन है, उसकी सार्थकता सिद्ध न होगी तथा शास्त्र-वचनोंमें विरोध उपस्थित होगा। अतः कुभावसे लिये गये नामको भी कल्याणकारी कहनेवाले शास्त्रवचनोंकी संगति यही लगानी चाहिये कि प्रथम तो उनके पापका नाश ही होता है, जिससे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर वे श्रद्धा-प्रेमपूर्वक नामजप करने लग जाते हैं और उनका भविष्यमें कल्याण हो जाता है, ऐसा ही अजामिलका हुआ।

दूसरे मतसे कुभाव आदिसे एक बार भी लिया गया भगवन्नाम पूर्वके सभी पापोंका नाश कर देता है एवं यदि व्यक्ति फिर पाप न करे तो उसका कल्याण हो जाता है। पुनः-पुनः पाप करनेपर पुनः-पुनः लिया गया नाम पापका ही नाश करता रहेगा, मोक्षप्रद नहीं होगा, किंतु मरते समय कुभाव आदिसे भी लिया गया नाम पाप-नाशक तथा मोक्षप्रद है; क्योंकि नामने अपनी शक्तिसे सम्पूर्ण पापोंका नाश कर दिया, नया पाप करे—ऐसा अवसर न आया तो उसका कल्याण हो जाता है।

कुछ अन्य विद्वानोंका कथन है कि कुभाव आदिसे लिया गया नाम सामान्यरूपसे पापका नाश करता है और श्रद्धा-प्रेमपूर्वक लिया गया नाम विशेषरूपसे पापका नाश करता है। यदि आगे पाप न किया जाय और श्रद्धा-प्रेमपूर्वक नामजप करता रहे तो पाप-वासनाका नाश हो जाता है, इसके बाद भगवद्भक्तिका उदय होता है, तब परम कल्याणरूप मोक्ष प्राप्त होता है।

एक बार कुछ नामापराध करनेवाले सच्चे साधकोंके सम्मुख एवं प्रसिद्ध संतके साथ उक्त विद्वानोंके मतोंपर विस्तारपूर्वक विचार चल रहा था। उनमेंसे संत-स्वभावके सच्चे साधकने कहा—

आश्चर्ये वा भये शोके क्षते वा मम नाम वै।
व्याजेन समुच्चरेद्यस्तु स याति परमां गतिम्॥
(ब्रह्मपुराण)

'जो मनुष्य आश्चर्य, भय, शोक, क्षत आदिकी स्थितिमें किसी बहानेसे भी मेरा नाम-स्मरण करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है।' इन शास्त्र-वचनोंमें कुभाव आदिसे एक बार भी लिया गया नाम पाप-नाशक ही नहीं, अपितु परमगति देनेवाला बताया गया है। भगवन्नामकी इस महिमामें जरा भी संदेह करना या संकुचित अर्थ करना तो नाम-महिमामें अर्थवादकी कल्पना करना है। यह तो नामापराध ही होगा। इससे भी नरकमें ही जाना पड़ेगा—

अर्थवादं हरेर्नाम्नि सम्भावयति यो नरः।
स पापिष्ठो मनुष्याणां नरके पतति स्फुटम्॥

'जो मनुष्य भगवान्‌के नाममें अर्थवादकी सम्भावना करता है, वह मनुष्योंमें महापापी है, निश्चय ही वह नरकमें

❀

पड़ता है।' उनके इन वचनोंको सुनकर उनकी भगवन्नाम-निष्ठासे भीतरसे प्रसन्न बाहरसे गम्भीर मुद्रा पाकर मैंने पूछा कि 'आपको बीस वर्षोंसे मै भलीभाँति जानता हूँ। इतने दिनोंमें आपने एक बार नहीं, किंतु करोड़ों बार कुभावसे नहीं सद्भावसे भी भगवन्नाम लिया है। आप सत्य-सत्य बताइये कि क्या आपका कल्याण हो गया? दूसरेका कल्याण करनेमें आप समर्थ हो गये? मेरा भी कल्याण कर सकते हों तो करके दिखाइये?'

मेरे इस प्रकार कहनेपर उन्होंने स्वीकार किया कि यह सत्य है कि बीस वर्षोंमें मैंने करोड़ों बार सद्भावसे नामजप किया है तो भी दूसरोंको तारनेकी बात तो बहुत दूर रही, मैं स्वयं अभीतक नहीं तर पाया, इसका एकमात्र कारण यह है कि जितनी श्रद्धा तथा तन्मयतासे नामजप करना चाहिये था वैसा नहीं कर पाया। सच्चे सरलभावसे कहे सदुत्तरको सुनकर मैंने कहा कि इस प्रकार सदुत्तर देकर आपने अपने मुखारविन्दसे ही यह स्वीकार कर लिया कि श्रद्धा-प्रेमपूर्वक तन्मयतासे लिया गया नाम ही कल्याणकारी होता है। मेरे युक्तियुक्त वचनको सुनकर तथा अपनी अनुभूतिसे समर्थन पाकर मौन-आलम्बन द्वारा उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया।

पूर्वोक्त दस नामापराधोंमें नामको अन्य धर्मकार्योंमें समान मानना भी एक अपराध माना है—**'धर्मान्तरैः साम्यम्।'** इसपर विचार करनेपर यही अर्थ निकलता है कि नामपर सर्वोपरि श्रद्धा होनी चाहिये। इससे तो यही सिद्ध होता है कि नामजपमें 'श्रद्धा'की शर्त लगाना या आवश्यकता बताना नामापराध नहीं, किंतु श्रद्धाकी शर्त न लगाना या आवश्यकता न बताना ही नामापराध है।

श्रद्धापूर्वक नाम-जप तथा कीर्तन करनेवाले भी जो साधक खान-पान आदिके शास्त्रीय विधि-निषेधोंका पालन नहीं करते और ऐसा मानते हैं कि इनका पालन करना तो नामको सर्वसमर्थ माननेमें संदेह करना है, नाममहिमाको घटाना है, उन साधकोंसे प्रार्थना है कि **'नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागौ'** अर्थात् नामके अर्थात् नामके बलपर शास्त्रनिषिद्ध आचरण करना और शास्त्रविहित आचरणका परित्याग करना—इन दो नामापराधोंपर ध्यान दें। इन दोनोंपर ध्यान देनेसे स्पष्ट हो जाता है कि नामजपको कल्याणका मुख्य साधन मानना तो ठीक हैं, किंतु अन्य साधनोंकी अवहेलना करना ठीक नहीं। अन्य साधनोंकी अवहेलनासे नामापराध बनकर नाममहिमा घटती है, उनका आदर करनेसे नहीं।[1]

अनेक बार नामोच्चारणकी आवश्यकता

शङ्का—भगवान्‌के एक नाममें ही यह सामर्थ्य है कि उसका एक बार भी उच्चारण करनेसे मनुष्य तरण-तारण हो जाता है—

बारेक नाम जपत जग जेऊ। होत तरनतारन नर तेऊ॥

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥

'जिसने एक बार 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने मोक्ष-प्राप्तिके लिये कमर कस ली।' फिर ऐसा क्यों नहीं?

समाधान—जिन्होंने एक बार नहीं हजार-हजार बार लगातार वर्षोंतक श्रद्धापूर्वक नामका उच्चारण किया है, वे भी अपने अनुभवसे यही कहते है कि दूसरोंको तारनेकी बात ही क्या, स्वयं हमीं नहीं तर पाये। अतः अनुभवविरुद्ध होनेसे उक्त अर्धाली और श्लोकमें कथित एक 'बार' का अर्थ मरणकालमें उच्चारण किया गया 'एक बार'

१—आदरणीय विश्वनाथ चक्रवर्ती, गिरिधारीलाल शर्मा आदि विद्वानोंने भागवत ६। २ में नामापराधोंपर विस्तारसे विचार किया है, जिज्ञासुओंको वहाँ अवश्य देखना चाहिये।

समझना चाहिये। दूसरी बात यह है कि यदि एक बारके नामके उच्चारणसे ही सम्पूर्ण पापोंका संहार और जीवका संसारसागरसे उद्धार हो जाता हो तो अल्प तथा महान् पापोंसे उत्पन्न रोगोंका नाश करनेके लिये पापकी अल्पता-महत्ताके अनुसार मृत्युंजय-जपकी न्यूनाधिक संख्याका विधान न किया जाता। गायत्रीके चौबीस लाख मन्त्रका एक पुरश्चरण होता है। 'हरे राम' मन्त्रके साढ़े तीन करोड़ जपसे ब्रह्म-हत्यादि पाप नष्ट होकर मनुष्य मुक्त हो जाता है, ऐसा कलिसंतरणोपनिषद् आदिमें कहा हुआ प्रसङ्ग व्यर्थ कैसे जायगा ?

कर्मोंसे नाम-जप-कीर्तनकी विशेषता

शङ्का—पापोंकी मात्राके अनुसार नाम-जपकी संख्याका विधान माननेपर तो नाम-जप भी अन्य पुण्य-कर्मोंके अनुष्ठानके समान ही बारीसे किया जानेवाला पुण्य-कर्मानुष्ठान सिद्ध होगा, ऐसी दशामें नाममें पुण्य-कर्मसे क्या विशेषता रह जायगी ?

समाधान—शास्त्रीय पुण्यकर्मानुष्ठानमें जाति, देश, काल आदिके नियमोंका पालन करना अत्यावश्यक है। इनके नियमोंका पालन किये बिना पुण्य-कर्मानुष्ठान पापनाशक न होकर पाप-उत्पादक भी हो सकते हैं; किंतु भगवन्नाम-जपमें जाति आदिके नियम-पालनकी आवश्यकता नहीं है—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजादयः।
यत्र तत्रानुकुर्वन्ति विष्णोर्नामानुकीर्तनम्॥
सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेऽपि यान्ति सनातनम्।
न देशकालनियमः शौचाचारविनिर्णयः॥
कालोऽस्ति यज्ञदाने वा स्नाने कालोऽस्ति सज्जपे।
विष्णुसंकीर्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीपते॥
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् वापि पिबन्भुञ्जन्जपंस्तथा।
कृष्ण-कृष्णेति संकीर्त्य मुच्यते पापकञ्चुकात्॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र, अन्त्यज जातिके भी लोग जहाँ-तहाँ भगवन्नाम-संकीर्तन करते रहते हैं, वे भी समस्त पापोंसे विनिर्मुक्त होकर सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। नाम-जपमें देश, काल, शौचाचार आदिका नियम नहीं। यज्ञ, दान, पुण्यस्नानमें और (विधिपूर्वक अनुष्ठानरूप) जपके लिये शुद्ध देश-कालादिकी आवश्यकता है, भगवन्नाम-जपमें नहीं। चलते-फिरते, खड़े रहते, ऊँघते, खाते-पीते 'कृष्ण-कृष्ण' ऐसा संकीर्तन करके मनुष्य पापरूपी केंचुलसे छूट जाता है। अपवित्र हो या पवित्र, सभी अवस्थाओंमें जो कमलनयन भगवान्‌का स्मरण करता है, वह बाहर-भीतरसे पवित्र हो जाता है।'

शङ्का—'कालोऽस्ति सज्जपे' अर्थात् सत्-जपमें कालका नियम है, जब ऐसा स्पष्ट कहा है, तब नाम-जपमें कालादिका नियम नहीं, ऐसा कहना परस्पर विरुद्ध है।

समाधान—'सज्जपे' यहाँ जपमें 'सत्' शब्द लगाकर यह बताया गया है कि साधारण रीतिके नाम-जपमें नहीं, किंतु विधिपूर्वक अनुष्ठानरूपमें किये जानेवाले जपमें ही कालादिके नियमकी अपेक्षा है। इसी अभिप्रायसे तुलसीदासजीने भी कराल-कलिकालमें जपको साधन नहीं माना—

एहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥
(७। १३०)

कुछ विद्वानोंका कहना है कि गुरुद्वारा दिये गये मन्त्रविशेषका स्नान आदिसे पवित्र होकर पवित्र देश-कालमें जप करनेका विधान है, उसीको यहाँ 'सज्जप' शब्दसे कहा है, सर्वसाधारण भगवन्नामको नहीं। यही कारण है कि इस रहस्यको जाननेवाले गुरुजन अपने शिष्यको गुरुमन्त्रके अतिरिक्त सर्व अवस्थामें जप करने योग्य छोटा-सा भगवन्नाम अलगसे बताते हैं।

नाम-जप और उसके फलमें भेद

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥
(मनु० २ । ८५)

'विधिपूर्वक किये गये यज्ञसे गायत्री-जप या नाम-सकीर्तनरूप यज्ञ दस-गुना श्रेष्ठ है, उपाशु जप सौगुना तथा मानसिक जप हजार-गुना श्रेष्ठ है।'

इस श्लोकमें मनु महाराजने नामजपके वाचिक, उपांशु और मानसिक—ये तीन भेद बताये हैं। जो जप वाणीसे इतने जोरसे बोलकर किया जाता है कि जिसे दूसरे लोग भी सुन सकते हैं, उस जपको वाचिक जप कहते हैं। जो जप ओष्ठ हिलाते हुए इतने मन्द-स्वरसे किया जाता है कि दूसरे लोग नहीं सुन सकते—जपनेवाला ही सुन पाता है, उसे उपांशु जप कहते हैं। जो जप केवल मनसे ही किया जाता है उसे मानसिक जप कहते हैं।

नाम-जप-कीर्तनमें मन स्थिर क्यों नहीं होता ?

प्रायः नाम-जप करनेवाले यह प्रश्न किया करते हैं कि श्रद्धापूर्वक नाम-जप करते समय भी मन स्थिर क्यों नहीं होता ? इस प्रश्नका उत्तर प्रायः संत यही देते हैं कि नामी या नाममें प्रीति न होनेसे। वे अपने उत्तरकी सत्यता सिद्ध करनेके लिये कहते हैं—देखो, तुम्हारी पुत्र, पैसा और प्रतिष्ठामें प्रीति है, इनमें तुम्हारा मन लग जाता है कि नहीं। अनुभूतिमूलक युक्तियुक्त उत्तर सुनकर प्रश्नकर्ताको तत्काल तो बहुत संतोष हो जाता है, परंतु स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। दस-बीस वर्ष बीत जाते हैं, तब फिर-फिर वही प्रश्न करते रहते हैं और संत वही उत्तर देते रहते हैं। अतः यह विचारणीय हो जाता है कि इस उत्तरमें कुछ कमी है या उनके साधनमें कुछ कमी है।

इस प्रश्नका सत्य उत्तर पानेके लिये यह देखना होगा कि जिसमें मनुष्यकी अति प्रीति है, ऐसे पुत्र, पैसा आदिमें मन स्थिर हो जाता है क्या ? इसका उत्तर युक्ति आदिसे देनेकी आवश्यकता नहीं, जिसकी पुत्र आदि जिस पदार्थमें अति प्रीति हो उस पदार्थको नेत्रके सम्मुख रखकर उसीमें मन स्थिर करके देखे। तब वह यही उत्तर देगा कि घंटे-दो-घंटेकी तो बात ही क्या पाँच-दस मिनट भी ऐसी स्थिति नहीं रही कि उस प्रीतिके आस्पद पदार्थमें ही मन स्थिर रहा हो, बीचमें किसी अन्य पदार्थपर न गया हो।

इस प्रयोगसे यह सिद्ध हो जाता है कि जिस पदार्थमें अति प्रीति भी होती है, उसमें भी मन स्थिर नहीं होता। अतः मनकी स्थिरताके लिये प्रीतिका होनामात्र पर्याप्त नहीं, इसके लिये तो जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँसे खींचकर प्रेमास्पदमें लगानेका अभ्यास ही अपेक्षित है। यही कारण है कि गीता तथा योगसूत्रमें मनका निग्रह करनेके लिये निरन्तर दीर्घकालपर्यन्त अभ्यास करना आवश्यक बताया गया है—

'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।'
(गीता ६ । ३५)

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥
(गीता ६ । २६)

'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।'
(यो०सू० १ । १२)

'स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः'
(यो० सू० १ । १४)

ऐसा होनेपर भी इतना अवश्य मानना होगा कि जिस पदार्थमें प्रीति होती है, उसमें अभ्यासद्वारा मन स्थिर करनेमें वह प्रीति सहायक होती है, इसीलिये मन स्थिर करनेके लिये आलम्बनका ध्यान करते समय अपनेको जो अभिमत अर्थात् जिसमें प्रीति हो, जो रुचिकर हो, ऐसा आलम्बन लेनेका विधान योगसूत्रकारने किया है—**'यथाभिमतध्यानाद् वा'** (यो०सू० १ । ३९)

इसी दृष्टिसे संतजन प्रीतिको मनकी स्थिरतामें हेतु कह देते हैं, परंतु पूर्ण सत्य उत्तर यह है कि प्रीतिके साथ-साथ निरन्तर दीर्घकालीन अभ्यासके बिना मन स्थिर नहीं होता। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि नाम-जपजन्य सात्त्विक सुख प्रारम्भमें तो विषतुल्य अरुचिकर होता है, पर परिणाममें हितकर होता है, अतः इसमें अभ्यासद्वारा ही रमण अर्थात् रसास्वादन होता है—

अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
(गीता १८ । ३६-३७)

इस कराल कलिकालमें विविध विधानोंसे युक्त अनुष्ठानका करना सम्भव न होनेके कारण देश-काल-जाति आदि विधान-निरपेक्ष नाम-जप ही कल्याणका मुख्य साधन है। नाम-जप-कीर्तनमें श्रद्धा, प्रेम तथा तन्मयताकी परम आवश्यकता है, अन्यथा इनका विधान करनेवाले शास्त्रवचनोंसे विरोध होगा। नामापराध-प्रतिपादक शास्त्रवचनोंकी पर्यालोचना करनेपर श्रद्धाकी ही नहीं, किंतु अन्य शास्त्रीय विधि-निषेध-पालनकी आवश्यकता भी सिद्ध होती है। पूर्वके पाप और पापवासनाके तारतम्यके अनुसार नाम-जप और नामवासनाकी सुदृढ़ता होनेपर ही उनका सम्यक् विनाश होता है। इसके बाद ही भगवान्‌में विशुद्ध भक्ति होती है। वाचिक, उपांशु, मानसिक जपोंमेंसे जिस प्रकारके जपसे संसारका सम्बन्ध अधिक कटता हो और भगवान्‌में अधिक सम्बन्ध जुड़ता हो, वही जप श्रेष्ठ है। इसलिये एवं संकीर्तनमें मनको स्थिर करनेके लिये श्रद्धा और प्रीतिके साथ-साथ निरन्तर दीर्घकालपर्यन्त अभ्यासकी आवश्यकता है। इसलिये निरन्तर कीर्तनकी आवश्यकता है।

संकीर्तनके प्रसङ्गमें भगवान् शिवके कतिपय नामोंका अर्थपरिशीलन

(लेखक—महामहोपाध्याय, महाकवि, राष्ट्रपति-पुरस्कृत डॉ० श्रीशशिधरजी शर्मा, विद्यावाचस्पति, एम्० ए०, डी०लिट्०)

शिव-महिमा

भगवान् शिवकी महिमा अनन्त है। संसारमें किसी भी देवताकी अपेक्षा महादेवका प्रभाव अधिक व्यापक है। विष्णुका महत्त्व देवताओंतक ही सीमित रह गया, दैत्योंने उन्हें नहीं अपनाया। उनका एक नाम ही 'दैत्यारि' पड़ गया; किंतु भगवान् शिव देव, दानव, मानव सभीके पूज्य बने। अन्य देवता देव ही रह गये, पर शिव 'महादेव' हैं। यह सब इनकी इस अनुपम महिमाके ही कारण है। इतिहासकी जहाँतक गति है, वहाँतक शिव और उनकी शक्ति—दोनो छाये हुए मिलेंगे। वेदोंमें विष्णु या कृष्णका उल्लेख अत्यन्त सीमित हुआ है; किंतु शिव तो पूरे परिवारके साथ उनमें व्याप्त हैं। यहाँतक कि उनके बेटे अतएव स्वरूपभूत गणेशके वाहन चूहेका भी वहाँ वर्णन है—

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राऽम्बिकया तं जुषस्व ।
स्वाहैष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥
(शुक्लयजुर्वेद, वाजसनेयसंहिता ३ । ५७)

विश्वकी प्राचीनतम सभ्यता मोहंजोदड़ो और हड़प्पाकी सभ्यताएँ मानी गयी हैं। इनकी खुदाईमें न केवल मातृमूर्तियाँ या शिवलिङ्ग मिले; अपितु शिवकी योगिमूर्ति भी प्राप्त हुई है। इतिहास-मनीषियोंद्वारा वर्तमानकालमें किये जानेवाले उत्खननोंमें संसार भरके देशोंमें शिवलिङ्ग, वृषभ एवं शिवमूर्तियाँ मिलनेके समाचार समय-समयपर आते रहते हैं।

आशुतोष और सहजसाध्य

भगवान् शंकरकी प्रसिद्धि 'आशुतोष' रूपमें अधिक है। वे तुरंत रीझ जाते हैं—इस बातमें उनकी कोई तुलना नहीं। लोककल्याण करना उनकी बानि है। वे

प्रदोषका नृत्य-संकीर्तन

औढरदानी हैं। इसमें वे आगा-पीछा नहीं देखते। इसकी कथाएँ जन-जनमें प्रसिद्ध है। पर सबसे बड़ी बात यह है कि वे सहज-साध्य है। अन्यान्य देवताओंकी पूजा-अर्चामें सामग्रीका प्रयास करना पड़ता है, कम-से-कम पुष्प तो अच्छे चाहिये; किंतु यहाँ तो जंगली फूलोंसे भी काम चल जाता है। जिनका भूलकर ही कोई उपयोग करता है, ऐसे आक एवं धतूरेके फूल चढाकर व्यक्ति भोले भूतभावनसे मुक्तितक पा सकता है। तभी तो सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र अप्पय्य दीक्षितजीने लिखा था कि 'प्रभो! आक और द्रोणके फूलोंसे आपकी पूजा करके कोई भी मुक्तिकी साम्राज्यश्रीको ले सकता है। यह जानते हुए भी मै अपना समय व्यर्थ खो रहा हूँ। मै आत्मद्रोही बनकर नीचे-से-नीचे गिरा जा रहा हूँ। शास्त्रोमें कहा है—'अधिक क्या? तीन बार 'महादेव' कह दे तो शंकरजी विवश हो जाते है; क्योकि एक बार नाम लेनेका फल तो मोक्ष दे दिया, अब शेष दो बार लिये गये नामके बदले उन्हे फल देनेके लिये कुछ बचा ही नहीं।

नामके अर्थज्ञानकी प्रयोजनीयता

भगवान्का प्रत्येक नाम एक मन्त्र है। अर्थज्ञानके साथ उसका सेवन करनेसे ही पूरा फल मिलता है। यहाँतक कहा गया है कि बिना अर्थज्ञानके तोतेकी भाँति पढ जानेसे फलकी आशा ऐसी ही है जैसे बिना आगमें सूखी लकड़ियाँ डाल देनेसे उनके जलनेकी कामना—

यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्यते।
अनग्नाविव शुष्केन्धो न तज्ज्वलति कर्हिचित्॥

अतः इष्टदेवके श्रीनामका अर्थ जानना आवश्यक है। भगवान् शंकरके नाम अनन्त है। उनके सहस्र-नाम भी कितने ही हैं। 'महाभारत'-कथित सहस्रनाम प्रसिद्ध है। कुछ श्रीनामोंके अर्थपर यहाँ सङ्क्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है।

ईश्वर, ईशान, परमेश्वर या महेश्वर

संस्कृत-भाषासे अल्पपरिचित लोगोंको कम विदित है कि संस्कृतमें 'ईश्वर' भगवान् शिवका ही नाम है। 'ईश ऐश्वर्ये' धातुसे निष्पन्न होनेके कारण इसका शब्दार्थ चराचर जगत्के प्रशासनमें समर्थ ऐश्वर्यमय परतत्त्व है। 'ईशान' भी शिवका नाम है और शब्दार्थ उसका भी यही है।

सुप्रसिद्ध 'ईश' शब्द भी इसी परिवारका है, किंतु ईशन, शासन दूसरे सुर, असुर, नर, किंनरोंमें भी तो सम्भव है। इसलिये शास्त्रकारोको मानो पूर्वोक्त नामोसे संतोष नहीं हुआ और उन्होंने उक्त नामोसे पूर्व 'परम' या 'महान्' विशेषणको लगाकर परमेश्वर, परमेश, परमेशान अथवा महेश्वर, महेश, महेशान इस रूपमें अपने प्रेमास्पदका स्मरण कर संतोष प्राप्त किया।

भगवती श्रुतिने बतलाया है कि भगवान्की शक्तिरूपा प्रकृतिको 'माया' समझना चाहिये और इस शक्तिरूपा प्रकृतिके अधिपतिको 'महेश्वर'। इस शक्तिके ही अङ्गरूप कारणकार्य-समुदायसे यह समस्त संसार परिपूर्ण हो रहा है—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ४। १०)

ईश्वर तो अन्य भी हो सकता है, किंतु महेश्वर तो केवल शिव है। वे ईश्वरोके भी ईश्वर, देवताओंके भी अन्तिम देव (महादेव) और पतियोके भी परमपति है। श्रुति कहती है कि उन्हे हम सबसे श्रेष्ठ, सबमे विलग और सबके स्तुतिपात्र जानती हैं—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्

कालिदासके अनुरूप 'महेश्वर' नाम त्रिलोचन शिवका ही है, दूसरेका नहीं; 'शतक्रतु' नाम इन्द्रका

ही है, अन्यका नहीं। ये शब्द दूसरेके लिये आते ही नहीं—

हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतो
महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः।
तथा विदुर्मां मुनयः शतक्रतुं
द्वितीयगामी नहि शब्द एष नः॥
(रघुवंश ३। ४९)

ऐसी स्थितिमें अन्य देवताओंको छोडकर शंकरको ही जो 'महादेव' नाम प्रदान किया गया, वह सहज है, क्योंकि वे महान् हैं और महान् (देवताओं)के भी महान् हैं—**महाँश्चासौ देवः। महतां देवादीनां वा देवः।** इसके अतिरिक्त पूजार्थक 'मह' धातुके अनुसार वे पूज्योंके भी पूज्य हैं। इसलिये ऋषियोंने तीन-तीन प्रकारसे इस महनीय पदकी व्युत्पत्ति की है—

पूज्यते यत्सुरैः सर्वैर्महाँश्चैव प्रमाणतः।
धातुर्महेति पूजायां महादेवस्ततः स्मृतः॥

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें एक और विलक्षण व्युत्पत्ति दी गयी है—**'महत्या देवः महादेवः'** 'महती' मूलप्रकृतिको कहते है; क्योंकि इस चराचर संसारका सर्जन करनेके कारण वह सभीकी पूज्या है। जो उसके भी पूज्य हैं, वे स्वभावतः 'महादेव' हैं। अतः सुरासुरमुनिवरनमस्कृत होनेसे ही शिव महादेव नहीं, अपितु मूलप्रकृतिके भी पूज्य होनेके कारण वे 'महादेव' हैं—

ब्रह्मादीनां सुराणां च मुनीनां ब्रह्मवादिनाम्।
तेषां च महतां देवो महादेवः प्रकीर्तितः॥
महती पूजिता विश्वे मूलप्रकृतिरीश्वरी।
तस्या देवः पूजितश्च महादेव इति स्मृतः॥

भगवान् शंकरके रुद्र आदि नाम तो वेदोंमें छाये हुए-से हैं। रुद्र, भव आदि नाम अग्निवाची भी माने गये हैं। वे शिवकी अष्टमूर्तियोंमेंसे अन्यतम हैं। इधर शिवसहस्रनाममें एक नाम 'यज्ञ' भी है। इस पृष्ठ-भूमिमें यजुर्वेदमें महादेवका यज्ञरूपमें आया रूपक भलीभाँति समझमें आ जाता है—

चत्वारि शृङ्गास्त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महादेवो मर्त्यां आविवेश॥
(शु० यजुर्माध्यंदिनसंहिता १७। ९१)

शतपथब्राह्मण६। १। ३। १८में रुद्र, शर्व (सर्व), पशुपति, उग्र, अशनि, भव, महान् देव और ईशान—इन्हें शिवकी अग्निमूर्तिके ही आठ रूप कहा गया है कि—**'एतान्यष्टौ अग्निरूपाणि'**—तो कौषीतकि ब्राह्मण (६। ९) में भी स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है कि—**'एषोऽष्टनामाष्टधा विहितो महान् देवः।'**

आश्वलायन गृह्यसूत्र (४। ८। ९। १९) में शिव-अर्थमें ही इस शब्दका प्रयोग स्पष्ट रूपसे उपलब्ध होता है, जो महत्त्वपूर्ण है। इसी भाँति अथर्ववेद-परिशिष्ट (४२। २), पञ्चविंश ब्राह्मण (६। ९। ७। १८), तैत्तिरीयारण्यक (१०। १। २०), शाङ्खायन श्रौत सूत्र (४। २०। १) आदिमें भी 'महादेव' पदसे शिव ही लिये गये हैं। यहाँ वृषभ रूपमें यज्ञमूर्ति भगवान् 'महादेव'की स्तुति हुई है, जिसके होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा—ये चार सींग हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद तीन पैर हैं, सात होता या सात छन्द उक्त सात हाथ हैं। प्रातः, माध्यन्दिन और सायं सवनोंसे सम्बद्ध ये महादेव ब्रह्मासे लेकर तिनकेतक सारे संसारके उपजीव्य हैं, वे मरणधर्मा मनुष्योंमें आविष्ट हुए हैं। कालिदासने शिवको शब्दमूर्ति कहा है और पार्वतीको अर्थमूर्ति। ये ही हैं न संसारके आदि माता-पिता—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥
(रघुवंश १। १)

इस दृष्टिको आगे रखकर उव्वट और महीधरने शब्दरूपमें महादेवका प्रस्तुत मन्त्रमें निरूपण किया है। उसके नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात—ये चार शृङ्ग हैं; प्रथम, मध्यम और उत्तम पुरुष उसके तीन पैर हैं; नाम और आख्यात दो सिर, सात विभक्तियाँ सात हाथ हैं तथा एकवचन, द्विवचन, बहुवचन उसके तीन स्थान हैं। यह बात ठीक ही है कि सब वेदोंका विलोडन करनेके अनन्तर शिवके नामोंका जप ही भवसागरसे उद्धारका उपाय निश्चित किया गया है। इस प्रकार वेदवेद्य भगवान् शंकरके श्रीनाम भोग और मोक्षके अनन्य साधन हैं। उचित ही कहा गया है कि पूर्वतपके प्रभावसे ही भगवान् शिवके श्रीनामोंमें पुरुषको भक्ति प्राप्त होती है—

अनेकजन्मभिर्येन तपस्तप्तं महामुने।
शिवनाम्नि भवेद् भक्तिः सर्वपापापहारिणी॥
(शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता २३। ३४)

शिवके शुभनामोंमें अनुराग हो जानेपर कलिकाल या संसारका भय जाता रहता है—ऊपरसे यदि अमृतकी वर्षा हो रही हो, तब जंगलमें आग लगी रहे तो उसका क्या भय?—

शिवेति नामपीयूषवर्षधारापरिप्लुताः।
संसाराध्वमध्येऽपि न शोचन्ति कदाचन॥
(शिवपुराण, वि० सं० २३। ३२)

मननयुत शिवनामसंकीर्तनसे सर्वप्राप्ति

प्रभु श्रीशिवके नाम-संकीर्तनसे क्या नहीं मिल सकता? स्वयं ब्रह्माजीने ऋषियोंसे कहा था कि पशुपति भगवान् महादेवके संकीर्तनमें दृढ़ता हो—यही सत्सङ्गका फल है। उसके बाद ही हो सकता है उसका मनन, जिससे साक्षात् भगवान् आशुतोषकी कृपादृष्टिका लाभ हो जाता है। उसके बाद फिर शेष रह ही क्या जाता है?—

सत्सङ्गमेन भवति श्रवणं पुरस्तात्
संकीर्तनं पशुपतेरथ तद् दृढं स्यात्।
सर्वोत्तमं भवति तन्मननं तदन्ते
सर्वं हि सम्भवति शंकरदृष्टिपाते॥
(शि० पु०, विद्ये० स० ४। ५)

मारवाड़ी भजन

नाथ मैं थारो जी थारो।
चोखो, बुरो, कुटिल अरु कामी, जो कुछ हूँ सो थारो॥
बिगड्यो हूँ तो थारो बिगड्यो, थे ही मनै सुधारो।
सुधर्‍यो तो प्रभु सुधर्‍यो थारो, थाँसूँ कदे न न्यारो॥
बुरो, बुरो, मैं भोत बुरो हूँ, आखर टाबर थारो।
बुरो कुहाकर मैं रह जास्यूँ, नाँव बिगड़सी थारो॥
थारो हूँ, थारो ही बाजूँ, रहस्यूँ थारो, थारो।
आँगलियाँ नुहँ परे न होवै, या तो आप विचारो॥
मेरी बात जाय तो जाओ, सोच नहीं कछु म्हारो।
मेरे बड़ो सोच यो लाग्यो, बिरद लाजसी थारो॥
जचै जिसतराँ करो नाथ, अब मारो चाहे त्यारो।
जाँघ उघाड्याँ लाज मरोगा, ऊँडी बात विचारो॥

नाम-कीर्तन

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश')

भगवान्के नामकी महिमा अपार है । शास्त्रोंमें जो नामकी महिमा कही गयी है तथा संत-महात्माओंने नामका जितना भी गुण गाया है, वह अर्थवाद नहीं है । जिस प्रकार भगवान्की महिमा अवर्णनीय है, उसी प्रकार नामकी महिमा भी अनिर्वचनीय है । नामकी महिमा कही नहीं जा सकती । भगवान् भी अपने नामका गुण गा नहीं सकते—*'राम न सकहिं नाम गुन गाई ।'* सामान्यतया लोग नाम और नामीको दो विभिन्न वस्तु मान कर नामको नामीसे छोटा मानते हैं, पर तत्त्वतः यह ठीक नहीं है । नाम भगवान्का चिन्मय स्वरूप है और दोनोंमें तत्त्वतः अन्तर नहीं है । नामी अपने नामसे ही पहचाना जाता है । नामके बिना नामीकी पहचान ही नहीं हो सकती । पद्मरागमणि (लाल) हाथमें है, पर पहचानते नहीं तो हाथमें आया हुआ लाल भी काँच है । घरमें पारस होते हुए भी पहचानके बिना मनुष्य दरिद्र बना फिरता है । सुतरां स्वतः नामका महत्त्व सिद्ध है ।

स्मृतियोंमें नामको पापके प्रायश्चित्तरूपमें वर्णन नहीं किया गया, इसका कारण यही है कि यदि पाप नाश करनेके लिये नामका प्रयोग किया जाता है तो उसमें नामका अपमान है; क्योंकि उसका मूल्य मात्र पाप-नाश हो जाता है । जिस प्रकार सूर्योदय होनेके पूर्व ही अन्धकार नष्ट हो जाता है और प्रकाश छा जाता है, उसी प्रकार भगवान्का नाम लेनेकी इच्छामात्रसे ही पाप स्वतः भाग जाते हैं और परम प्रकाशका उदय हो जाता है । भगवान्का नाम भगवान्को तो प्राप्त करा ही देता है, साथ ही उसके परे भी हमें ले जाता है । वह 'परे' है भगवत्प्रेम, जिसे पञ्चम पुरुषार्थ कहा गया है । जहाँ नाम है वहाँ भगवान् हैं ही । नामका प्रयोग नामके लिये ही होना चाहिये । श्रद्धाका अभाव तथा स्वार्थका भाव ही हमें नामका यथार्थ फल प्राप्त नहीं होने देता । हमारे मनमें यह पाप घुसा हुआ है कि नामकी जो इतनी महिमा शास्त्रों और संतोंने गायी है, उसमें तथ्यकी अपेक्षा प्रशंसा या अर्थवादका अंश अधिक है । पर यह धारणा ठीक नहीं है ।

पार्वतीजीने एक बार शिवजीसे पूछा—'महाराज ! आप रामनाम इतना लेते हैं और इसका इतना माहात्म्य बतलाते हैं, संसारके लोग भी तो इस नामको रटते हैं, फिर क्या कारण है, उनका उद्धार नहीं होता ?' महादेवजी बोले—'उनका रामनामकी महिमामें विश्वास नहीं है ।' वे परीक्षाके लिये काशीके एक घाटपर बैठ गये, जहाँसे लोग रामनाम रटते हुए गङ्गास्नान करके लौटते थे । महादेवजी एक कीचड़भरे गड्डेमें गिर पड़े और पार्वतीजी ऊपर बैठी रहीं । जो भी व्यक्ति उस मार्गसे निकलता, पार्वतीजी उससे कहतीं—'मेरे पतिको गड्ढेसे निकाल दो ।' जो निकालने जाता उससे कहतीं—'जो निष्पाप हो वही निकाले, अन्यथा भस्म हो जायगा ।' इस प्रकार एक-पर-एक लोग आते और शर्त सुनकर लौट जाते । शाम हो गयी, पर कोई निष्पाप निकालनेवाला न मिला । अन्तमें गोधूलि-वेलामें गङ्गास्नान करके एक व्यक्ति आया और रामनाम रटता हुआ वहाँ पहुँचा । वह निकालनेके लिये बढ़ा तो पार्वतीजीने कहा कि निष्पाप व्यक्ति होना चाहिये । इसपर वह बोला, गङ्गा-स्नान कर चुका हूँ और रामनाम ले रहा हूँ, फिर भी पाप लगा ही है । पाप तो एक बारके नामस्मरणसे ही छूट जाता है । मैं सर्वथा निष्पाप हूँ और मैं इस व्यक्तिको निकालूँगा । ठीक इसी प्रकार हम हैं । गङ्गास्नान करते हैं, रामनाम

लेते हैं, परंतु हम सर्वथा निष्पाप नहीं है; क्योंकि नाममें और गङ्गामें हमारा पूर्ण विश्वास नहीं है। जितनी शक्ति नाममें पापनाशकी है उतनी शक्ति महापापीमें भी पाप करनेकी नहीं है। नाम अन्तःकरणको मधुमय, प्रकाशमय, आनन्दमय कर देता है।

'राम-नाम गोपनीय मन्त्र है। इसका मूल्य लोग अपने ज्ञान और अपनी दृष्टिके अनुसार ही लगाते हैं। मणिका गुण शाक-वणिक् क्या जाने? उसका मूल्य तो कोई जौहरी ही लगा सकता है। जिसकी जितनी पहुँच है उतना ही अधिक मूल्यवान् उसके लिये रामनाम है। नामसे नाममें प्रीति और आनन्द बढ़ता है फिर तो नामको छोड़ते ही नहीं बनता। एक सहज आकर्षण उसके प्रति हो जाता है तभी हम नाम कीर्तनमें प्रवृत्त होते हैं और आजीवन नाम-कीर्तन कर जीवनको सफल बनाते हैं।

भक्तिका अमोघ साधन—संकीर्तन

(लेखक—डॉ० श्रीनारायणदत्तजी शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

'कीर्तन' शब्द कीर्तिसे सम्बन्ध रखता है तथा 'कीर्ति'—यशोविस्तारके अर्थमें प्रयुक्त होता है, अतः भगवान्‌का यशोगान ही कीर्तन या संकीर्तन है। परब्रह्म परमात्माके नाम, रूप, गुण और लीला आदिके श्रवण, स्मरण, कीर्तनका विधान है। कीर्तनके व्यक्तिगत और समष्टिगत दो रूप हैं। इधर साज-बाजसे लय-ध्वनिके साथ एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियोंद्वारा भगवान्‌के रूप, गुण आदिके गानकी कीर्तन संज्ञा रूढ है। जब यह कीर्तन अनेक व्यक्तियोंद्वारा सामूहिक रूपसे सम्पन्न होता है, तब उसे 'संकीर्तन' कहा जाता है। संकीर्तन एक पवित्र अनुष्ठान है। उसके सम्पादनकी कुछ मर्यादाएँ हैं, कुछ विधान हैं। उनके अनुपालनसे ही संकीर्तनकी संज्ञा चरितार्थ होती है। मर्यादाहीन संकीर्तनसे परम तत्त्वकी उपलब्धि, जो संकीर्तनका प्रसाद है, कदापि नहीं हो सकेगी। शास्त्रकी आज्ञा है कि गुरुपादाश्रित, निरपराध, आनुगत्य शुद्ध वैष्णवोंद्वारा भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यसे जिस कीर्तनका अनुष्ठान होता है, वही 'संकीर्तन' है। सत्सङ्गमें भगवान्‌के नाम, रूप, गुण और लीलाओंका श्रद्धापूर्वक सेवन करनेसे ही शुद्ध संकीर्तन सम्भव है, अन्यथा नहीं।

कलिपावनावतार, सहज मनोहर, शचीनन्दन, गौरसुन्दर श्रीचैतन्य महाप्रभुने विधि-विधानपूर्वक संकीर्तन सम्पन्न होनेपर सात सुमधुर फलोंकी प्राप्ति बतलायी है—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥

(श्रीचैतन्यशिक्षाष्टक)

शुद्ध श्रीकृष्ण-संकीर्तन कलिकल्मष और जागतिक क्लेशोंसे धूमिल मानवचित्तरूपी दर्पणको निर्मल बना देता है। उससे सांसारिक भीषण दावाग्नि स्वतः शान्त हो जाती है। संकीर्तनसे समुत्पन्न भावरूपी चन्द्रिकासे जीवोंकी कल्याणकारी वृत्तिरूपी कुमुदिनी विकसित होती है और विद्या देवीका यह मानो जीवनरूप ही है। उससे आनन्दाम्बुधिकी लोल लहरियाँ चतुर्दिक् समृद्धि और सदाशाका निरन्तर संवर्धन करती हैं और पग-पगपर पूर्णतया सुस्थिर, निश्चल, निरापद्, अमृततत्त्व (अमर-जीवन) का अनुभव होता है। ऐसा है सुकर्मशील, भगवत्परायण शुद्ध वैष्णवोंद्वारा सम्पादित श्रीकृष्णचरितोंका संकीर्तन, जो लोक-परलोक, सर्वत्र, सर्वदा सद्विजयका आधार है। संकीर्तन निश्चय ही बाहर-भीतरसे देह, ध्वनि, आत्मा और स्वभाव—सभीको निर्मल और शीतल

करनेवाला है एवं संसारकी समस्त आधि-व्याधियोंका उन्मूलनकर सर्वतोभावेन कल्याणकारी होता है।

मुमुक्षुओंके कलि-कल्मष और पापाचारपर संकीर्तनकी विजय-प्रक्रियाका वर्णन भक्ति-ग्रन्थोंमें इस प्रकार मिलता है—जन्म-जन्मान्तरके आविर्भाव-तिरोभावसे संतप्त मायोन्मुख जीव सर्वप्रथम प्रभुकृपासे मनुष्य-योनि प्राप्त करता है। तदनन्तर उसे सत्सङ्गका सौभाग्य मिलता है, जिससे भगवच्चरणोंमें रति उत्पन्न होती है। सत्सङ्ग, श्रवण, कीर्तन आदिसे जब श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण आदिके चिन्तनकी प्रवृत्ति बढ़ती है, तब अनायास ही मायादमनकी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, अर्थात् उसकी अविद्या और अनर्थ दूर हो जाते हैं और जीवका स्वरूप भी निर्मल होने लगता है। प्रापञ्चिक जगत्से संकीर्तनद्वारा जीवात्माकी मुक्तिकी संक्षेपमें यही प्रक्रिया है। इसी निमित्त भगवान् अवतार भी धारण करते हैं। श्रीमद्भागवतमें इस तथ्यका संकेत करते हुए कहा गया है कि भक्तोंके कल्याण-हेतु अपनी लीलाओंका चिन्तन करानेके माध्यमसे भक्तिके प्रचार-प्रसारके लिये ही भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं।

सत्ययुगका धर्म है ध्यान, जिसका प्रचार-प्रसार भगवान् श्वेतावतारमें करते हैं और उनके द्वारा प्रत्येक जीव ज्ञान-विज्ञानसे युक्त होता है। त्रेतायुगका धर्म है यज्ञ, जिसके लिये भगवान् रक्तवर्ण अवतार धारण करते हैं। द्वापरमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण-अवताररूपमें विद्यमान थे। उनका वन्दन ही प्रधान धर्म तथा भगवत्प्राप्तिका साधन था।

कलियुगमें संकीर्तन-प्रधान भक्तिका विधान है। श्रीकृष्ण चैतन्यने कलियुगमें 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥ महामन्त्रके कीर्तनमें स्वयं संलग्न होकर जगत्को संकीर्तनमें प्रवृत्त कराया। संकीर्तन-यज्ञके द्वारा नीच-से-नीच और पापी-से-पापी चाण्डालादि सभीको उन्होंने कृष्ण-प्रेमका आस्वादन कराया।

संकीर्तनकी परम्परा

भगवत्संकीर्तनकी परम्परा बहुत पुरानी है। आदि-कालसे ही मानवमनमें ईश्वरके प्रति आस्तिक भावके उदय होनेपर सभी धार्मिक अनुष्ठानोंके प्रारम्भ और उपसंहारमें संकीर्तनका आयोजन होता आया है। वेद, उपनिषद्, पुराण, इतिहास आदि सभी प्राचीन ग्रन्थोंमें भगवान्‌के स्तवन, उनके यशोगान और उन्हें प्रसन्न करनेके अनेक मन्त्र, स्तोत्र, वन्दनादि संगृहीत हुए हैं, जो संकीर्तनके माध्यम रहे हैं। देवगणमें ब्रह्मा, शिव, शेषनाग, देवराज इन्द्र आदि प्रभु-सुयश-गायकोंमें अग्रणी माने जाते हैं। ब्रह्माजीने सनकादिकोंको संकीर्तनके उपक्रमका आदेश दिया था। सनकादिसे नारद, नारदसे व्यास, व्याससे शुकदेवको संकीर्तनकी शिक्षा मिली। श्रीशुकदेवजी जिस समय राजा परीक्षित्‌को सांसारिक व्यामोह उतारने-हेतु श्रीमद्भागवतकी रसमयी कथाको श्रवण करा रहे थे, उस समय भृगु, वसिष्ठ, गौतम, च्यवन, देवल, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, व्यास, पराशर आदि सभी प्रमुख मुनिगण वहाँ उपस्थित थे और हरिकीर्तन कर रहे थे। वेदादि, नदियाँ, देवगण आदि भी मनुष्य-रूप धारण कर वहाँ उपस्थित थे। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी वहाँ विराजमान थे।

श्रीमद्भागवतके उपसंहारमें माहात्म्यके अन्तर्गत संकीर्तनकी सांसारिक व्यामोह-निवारिणी शक्तिविषयक एक कथा आती है कि श्रीकृष्णके परमधाम पधारनेके अनन्तर उनकी सोलह सहस्र रानियाँ उनकी विरह-वेदनासे महान् दुःखी थीं; परंतु उनकी पटरानी श्रीयमुना-जी सर्वथा प्रसन्न ही थीं। कारण पूछनेपर श्रीयमुनाजीने रानियोंको बताया कि 'श्रीकृष्ण सर्वव्यापक हैं और सब

समय सबके साथ रहते हैं'—यह अनुभूतिसे जाना जाता है। संकीर्तन आदि भक्ति-साधनोंके द्वारा वे आह्वान करनेपर सहज उपस्थित हो जाते है। तुमलोग भी उनको पानेके लिये संकीर्तनका आयोजन करो। जिस प्रकार उद्धवके उपदेशके अनन्तर गोपियोंकी विरहाग्नि शान्त हो गयी थी वैसे ही तुम्हारा भी उद्वेग जाता रहेगा।'

गोवर्धनमें कुसुमसरोवरके निकट, जहाँ व्रजगोपियोंका निवास है, एक विशाल कीर्तनोत्सवका समायोजन कराया गया, जिसके परिणामस्वरूप श्रीकृष्णके परमभक्त उद्धवजीने सबको दर्शन दिया था, जिससे परमानन्द प्राप्त हुआ और सोलह सहस्र रानियोंकी विरह-वेदनाका समाहार हो गया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि द्वापरान्तमें भी विशेष उद्देश्योंकी पूर्ति और कष्टोंके निवारण-हेतु श्रीहरिकीर्तनके विराट् आयोजन किये जाते थे।

महाप्रभुका जीवनदर्शन और साधन-प्रणाली केवल आठ श्लोकोंमें समाविष्ट हैं, जिसे 'चैतन्यशिक्षाष्टक' कहा जाता है। उस शिक्षाष्टकके तीसरे श्लोकमें संकीर्तन-अनुगामी भक्तोंके लक्षणोंका प्रतिपादन करते हुए प्रभुने कहा है कि संकीर्तन मनुष्यमात्रका नित्य-धर्म है। उन्हें सदैव कीर्तनमें संलग्न रहना चाहिये—'कीर्तनीयः सदा हरिः'। उन महानुभावोंके स्वभावमें निम्न विशेषताएँ होनी चाहिये—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

१—तृणादपि सुनीचेन—उन भक्तोंकी पहली विशेषता है विषयोंके प्रति स्वाभाविक विरक्तिजनित दीनता अर्थात् जड़ीय विषयोंसे उनका कोई प्रयोजन न होना। सभी प्राणी स्वरूपतः अणु चैतन्य श्रीकृष्णदास हैं; परंतु जन्म-मरणके चक्रमें पड़े होनेसे प्रभुसे विमुख होनेके कारण सभी अकिञ्चन हैं। 'हे दीनानाथ! हम दीन-हीनोंको कृपाकर शीघ्र ही अङ्गीकार करें'—इस प्रकारकी दीनतापूर्ण विनयमें वे प्रत्येक समय निरत रहते हैं।

२—तरोरिव सहिष्णुना—इससे प्रभुका यह अभिप्राय है कि संकीर्तनकारी भक्त वृक्षोंसे भी अधिक सहनशील हों और अपकारियोंके प्रति भी स्वागतपूर्ण उदार व्यवहार करनेवाला हो। वृक्ष अपनेको कुल्हाड़ीसे काटनेवालोंको भी सहज ही पत्र, पुष्प, छाल, फल, छाया, शीतलता, सुवास सब कुछ देते हैं। यह निर्मत्सरतायुक्त दयालुता उनका दूसरा लक्षण है। ऐसे निरपराध शुद्ध वैष्णव भक्त अपने साथी लोगोंकी श्रीकृष्णविमुखताजनित दुर्दशासे क्लेशित रहते हैं। उनके उद्बोधन-हेतु ही मानो उनकी—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

—वाली सतत उद्बोधनी संकीर्तनधारा प्रवाहित होकर उद्घोष करती रहती है कि वास्तवमें कलियुगमें संकीर्तनके अतिरिक्त प्रभु-प्राप्तिका अन्य सरल साधन नहीं है।

३—अमानिना मानदेन—प्रभुता पाकर सभीके मद होता है। धन, सम्पत्ति, संतति आदि क्षणभङ्गुर वस्तुओंका यह मिथ्याभिमान हरि-चिन्तनमार्गमें भीषण अवरोध है। सभी प्राणधारी उन परम प्रभुके अङ्ग है—श्रीकृष्णदास है। सर्वेश्वर प्रभु सभीमें व्याप्त हैं, अतः सभीका आदर करना वैष्णवताका अपरिहार्य कर्तव्य है। सुकृती ब्राह्मण, साधुजन, ऋषि, संत विशेष सम्माननीय है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि सांसारिक विषयोंका ज्ञान करानेवाली इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति जब निष्कामरूपसे भगवान्‌में लग जाती है, तब उसे भक्ति कहते हैं। इस सबका सारांश यह है कि भगवान् सर्वथा भजनीय हैं। किन्हीं उचित उपायों-

द्वारा मनको भगवान्‌में लगाना चाहिये। जीवकी कोई अन्य गति नहीं है।

भक्तिका निरन्तर अभ्यास करनेसे वह 'प्रेमाभक्ति'-का रूप ले लेती है। यही भक्तिका परम लक्ष्य है। पहले साधन-भक्ति अथवा वैधी भक्तिद्वारा उपासक पूजन-अर्चन करके प्रभु-चरणोंमें आसक्ति और सांसारिक विषयोंसे निरासक्ति पाकर प्रभुकी सुखद शरणमें जानेका अभिलाषी होता है और तदनन्तर उनसे अनुयोग स्थापित करके उनके प्रेमप्रसादका अधिकारी बनता है। इस प्रकार साध्य और साधनके विचारसे भक्तिके वैधी या गौणी और परा अथवा रागानुगा दो प्रमुख भेद हैं। रागानुगा भक्तिमें प्रभुकी सहज अथवा आकस्मिक कृपाका विशेष अवलम्ब रहता है। भक्तिका विवेचन करते हुए आचार्योंने उसके चौंसठ अङ्ग माने हैं, जिनमें भक्तोंकी साधना, मर्यादा, यम, नियम, पूजा, अर्चा, विधान, विविध आराधनका विशद वर्णन हुआ है। श्रीमद्भागवतमें यह सम्पूर्ण विधान नौ प्रकारकी भक्तिमें सीमित हुआ दीख पड़ता है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्‌
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्‌॥
(७।५।२३)

'श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, पूजा, वन्दना, दास्यभाव, सख्यभाव तथा आत्मसमर्पण-भाव—ये विष्णुकी नवधा भक्ति है।' 'दशमूल'में कहा गया है कि जो लोग श्रद्धापूर्वक इस नवधा भक्तिका अनुशीलन करते हैं, वे विमल भगवद्-रति प्राप्त करते हैं।

भक्तिके उक्त नौ प्रकारोंमें भी श्रवण, कीर्तन और स्मरणका भगवान्‌के नाम, रूप, लीला और गुणोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध है; अतः साधनके रूपमें इन तीनोंकी अन्य प्रकारोंसे श्रेष्ठता स्वयंसिद्ध है। पादसेवन, अर्चन और वन्दनकी क्रियाएँ भगवान्‌के अङ्ग (स्वरूप) से अनुस्यूत हैं और दास्य, सख्य, वात्सल्यकी भावसंज्ञा है, जिनका धारण करना अभिधेय है; परंतु भगवत्प्रेमसे संसिक्त तैलधारावत् उनकी अवधारणा दुष्कर है। अतः निरन्तर मनकी एकाग्रता, चिन्तन और भक्ति-भावसे अभिभूत रहनेके लिये श्रवण, कीर्तन और स्मरणको ही भागवतमें श्रेष्ठ साधन माना गया है। सभी प्रकारकी भक्ति करना जीवका नित्यकर्म है। नित्यकर्म करनेमें ही जीवनकी सार्थकता है। उसके न करनेसे दोष होता है।

सगुन करै भव पार

राम नाम जपु रात दिन, हृदय माहिं धरु ध्यान।
बौरे जनि घबराय तू, मिलि जैहैं भगवान॥
राम नाम मन ल्याइ लें, जब लग घटमें प्रान।
को जानै कवने घरी करिहैं प्रान पयान॥
पागल नाव समुद्रमें अटक रही बल खाय।
राम नामके लेत ही निहचै पार लगाय॥
मनमें हरि सुमिरन करै, नाचै दै कर ताल।
नाम प्रेमकी प्यास लखि द्रवैं अवसि नंदलाल॥
निरगुन सगुनहिं भेद यह, मन महुँ लेहु विचार।
निरगुन ब्याप्यो बिस्व महँ, सगुन करै भव पार॥

भगवन्नाम-संकीर्तनका रहस्य

(लेखक—डॉ० श्रीश्यामसुन्दरसिंहजी एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः ॥
शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥
(श्रीमद्भा० ६ । २ । १८, १ । २ । १७)

'जैसे जान या अनजानमें ईंधनका स्पर्श होनेसे अग्नि उसे भस्म कर डालती है, वैसे ही जान या अनजानमें भी कीर्तनसे भगवन्नाम समस्त पापोंको भस्म कर डालता है । जिनके नाम-यशका श्रवण और कीर्तन दोनों ही परम पुण्यप्रद हैं, वे भगवान् कृष्ण हृदयतलमें स्थित होकर उसके सम्पूर्ण पापको भस्मीभूत कर देते हैं ।'

सम्पूर्ण विश्वमें भारतकी विशिष्टता अनादिकालसे इसकी आध्यात्मिक चिन्तनधाराके कारण विख्यात है । यहाँ सभी बातोंकी पुष्टि ज्ञानराशि वेद-शास्त्रोंद्वारा हुई है । संकीर्तन स्मरण-भजनकी सरलतम प्रणाली है । 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृत्' धातुमें ल्युट् प्रत्यय जोड़नेसे 'भाव' अर्थमें संकीर्तन शब्द बनता है । जिससे साम्य रखता हुआ 'भज्' धातुमें ल्युट् प्रत्यय जोड़नेसे सेवार्थक भजन शब्द निष्पन्न होता है । दोनोंके मूलमें विनय एवं सेवाका भाव है, किंतु साधनाकी प्रक्रियामें थोड़ा भेद है । इनमेंसे एक मूकवाचक है तो दूसरा तीव्र ध्वनि-वाचक । भावकी तन्मयता दोनोंमें एक ही है । संकीर्तन-कर्ताको केवल भक्तिकी इच्छा रहती है, वह और कुछ नहीं चाहता—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ॥
× × ×
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि ॥
(रा०च०मा० किष्कि० दोहा २६)

साधना-विधिको दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—१–मौनोपासना, २–संकीर्तन । सगुणोपासना प्रेमोपासना है । इसकी आधारशिला भाववादी है । मनुष्य श्रेष्ठ सात्त्विक भावनाओंद्वारा अपने पूज्यदेवकी उपासना करता है । जनकपुरके यज्ञमण्डपमें उपस्थित नृपगणोंमें भाव-प्रधानताने ही श्रीरामको विभिन्न रूपोंमें दिखलाया था—'जिन्ह कें रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी'—(रामचरितमानस बा० का०) । प्रेम-प्रवाहमें भाववादकी सफलता उपास्यदेवको अपने समीप लानेमें होती है, अर्थात् उपासक और उपास्यदेवसहित भावनाके बीच सरसताका पुट देकर सामञ्जस्य स्थापित करना प्रेमपुञ्जका ही काम है, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् भक्तद्वारा अर्पित वस्तुको ग्रहण करते हैं (गीता ९ । २९) । यही भक्तिका चरम बिन्दु है ।

संकीर्तन प्रक्रिया, तीव्र ध्वनि, शब्दोच्चारण, प्रेमयुक्त भाव और साधकके मानसिक संतुलनके बीच एकाकारता उपस्थित कर देता है । फलतः ध्यानकी प्रक्रिया भी प्रेमोपासनाके साथ प्रारम्भ हो जाती है । इसलिये संकीर्तनमें अन्तर्हृदयमें मनन-चिन्तन भी चलता रहता है ।

कथा-कीर्तनको सत्संगतिके अन्तर्गत रखा गया है । इसमें भक्त आपसमें उपास्यदेवके प्रभाव, गुण आदिकी चर्चा कर उनकी महिमाको दर्शाते रहते हैं । इस प्रकार स्वर्ग और मोक्ष—दोनोंका संयुक्त सुख भी एक क्षणके सत्संगति-सुखकी समता नहीं कर सकता, किंतु इसके लिये संतोंका संग आवश्यक है; क्योंकि इनके विना रामपदमें अनुराग होना असम्भव होता है । संकीर्तनमें प्रायः लोग जोरदार शब्दोंमें गा-गाकर नामामृतका उच्चारण किया करते हैं । ऐसा उच्चारण

ग्रामोंसे लेकर तीर्थस्थलोंतक सुननेको मिलता है। यह सुननेमें कितना सुहावना और सुखदायी होता है, जिसमें श्रोता और वक्ता दोनो मनोरम ध्वनिके साथ प्रेमान्तरङ्गमें अपने प्रभुको एकाकारकी पङ्क्तिमें लाकर रखते हैं, जहाँसे प्रभु अपनेको मुक्त नहीं कर पाते। इसको भगवान् श्रीकृष्णने वाणीसम्बन्धी तप कहा है (गीता १७। १५—'**वाङ्मयं तप उच्यते**')। इसकी इसी महत्ताके कारण दैवी प्रकृतिवाले महात्माजन नाम और गुणोका कीर्तन करते हुए निरन्तर प्रेमसे प्रभुकी उपासना करते हैं—

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥
(गीता ९। १४)

कीर्तनकी महत्ता निर्विवाद है; क्योंकि भगवान् स्वयं कहते हैं कि पृथ्वीमें कीर्तन करनेवाले-जैसा अन्य कोई भक्त न हुआ है न होगा—'**भक्तिं मयि परां कृत्वा**' '**न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः। भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥**' (गीता १८। ६८-६९)

श्रीमद्भागवतपुराण भी इसकी महत्ता दर्शानेमें योगशास्त्र गीतासे किसी प्रकार कम नहीं है। (श्रीमद्भागवत ६। २। ७-८, १३, १७; ६। ३। २४) नरकगामी अजामिलने मात्र भगवन्नाम-संकीर्तनद्वारा ही अपनेको पवित्र कर यमदूतोंके पाशसे स्वयंको मुक्त कराया था। अजामिलकी मुक्ति देखकर यमदूतोंने यमराजसे प्रश्न किया कि 'यह कैसे मुक्त हो गया, जो इतना बड़ा पापी था?' इसपर यमराजने उत्तर दिया कि 'इसने नाम-कीर्तनद्वारा भक्ति प्राप्त कर ली है, जो सर्वोच्च धर्म है। इसीलिये भगवान्ने इसे नवधा भक्तिमें एक स्थान दिया है, जिसके सुनने और सुनानेवाले दोनो लाभान्वित हुए हैं।'

'राम-नाम'का कीर्तन अत्यधिक श्रेष्ठ है—'**निर्गुण ते एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार। कहउँ नाम बड़ राम तें निज बिचार अनुसार** (रा० च० मा० बा० का०)—इसकी गरिमाकी सर्वोच्चताकी पुष्टि मानसके उस एकमात्र कथनसे होती है, जिसके अनुसार भगवान् शंकरने सारस्वरूप सौ करोड़ रामचरितोंमेंसे मात्र अपने लिये एक 'राम' शब्दका चयन किया था—'**राम चरित सतकोटि महँ लिय महेस जियँ जानि**' । (रा० च० मा० बा० का० दो० २५)—इतना ही नहीं 'र', 'आ' और 'म' बीजमन्त्रके रूपमें भी वे नित्य इसका जप किया करते हैं। नामप्रभावके कारण ही गणेश सर्वत्र संसारमें पूजित हुए तथा उलटा नाम जपकर वाल्मीकिने ब्रह्मका साक्षात्कार किया था। 'र' और 'म' भिन्न अक्षरके रूपमें दीखते हुए भी स्वभावसे साथ रहनेवाले ब्रह्म और जीवके समान सदा एकरूप और एकरस हैं। जिसके परिवेशमें नाम और नामीके बीच एकाकारकी सार्थकता रूपकी उपस्थितिमें है, किंतु ध्यान रहे कि नामके अभावमें रूपकी उपस्थिति सम्भव नहीं होती। इसीलिये रामके रूपको नामके अधीन माना गया है, जिसको पाठकर उपासक ब्रह्मसुखकी अनुभूति करता है। भवसागर तरनेहेतु सेतुका काम करनेवाला यह राम-नाम कलियुगके समस्त पापको मूलसे उखाड़नेकी क्षमता रखता है। अतः सगुण रामकी अपेक्षा नामकी सर्वोत्कृष्टता शास्त्रसम्मत है; क्योंकि यदि रामने मात्र व्यक्तिविशेष (अहल्या, शबरी, गीध, रावण आदि) को तारा तो वहीं 'राम-नाम' की अमित गरिमाने असंख्य प्राणियोंका उद्धार किया। यह है नामसंकीर्तनकी महिमा।

महान् विभूतियोंके पत्रोंमें वर्णित संकीर्तन-महिमा

(लेखक—डॉ० श्रीकमल पुंजाणी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

महान् पुरुषोंके पत्र भी बडे महत्त्वके होते हैं। हिंदीमें विगत तीन-चार दशकोंसे एक ओर जहाँ पन्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, दिनकर, बनारसीदास चतुर्वेदी आदिके पत्र पुस्तकके रूपमें प्रकाशित हुए हैं, वहीं दूसरी ओर महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, दयानन्द सरस्वती, विनोबा, श्रीजयदयालजी गोयन्दका, हनुमानप्रसादजी पोद्दार आदिके पत्रोंके संग्रह भी प्रकाशमें आये हैं। इनमें अन्यान्य विषयोंके साथ संकीर्तन-महिमाका वर्णन भी उपलब्ध होता है। संक्षेपमें परमेश्वर और उनके विविध अवतारोंका गुणानुवाद तथा उच्चारण ही संकीर्तन है—**'संकीर्तनं नाम भगवद्गुणकर्मनाम्नां स्वयमुच्चारणम्।'**

यहाँ ऐतिहासिक क्रमानुसार महान् विभूतियोंके इसी प्रकारके पत्रांशोंको प्रस्तुत किया जा रहा है।

स्वामी विवेकानन्द एक क्रान्तदर्शी महापुरुष थे। उनके पत्र उनके सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न दिव्य जीवनपर प्रकाश डालते हैं। श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर द्वारा प्रकाशित 'पत्रावली'—भाग १–२ में स्वामी विवेकानन्दके अनेक महत्त्वपूर्ण एवं मूल्यवान् पत्र संकलित हैं। अपने सहपाठियों, सहयोगियों, शिष्यों आदिको लिखे गये इन पत्रोंमें स्वामीजीने अनेक स्थानोंपर भगवन्नाम तथा संकीर्तनका महत्त्व प्रदर्शित किया है। उदाहरणार्थ—२० मई १८९७ को स्वामी ब्रह्मानन्दके नाम लिखे गये पत्रमें भी स्वामी विवेकानन्दजीने संकीर्तनकी महिमाको सुचारु ढंगसे उजागर किया है। पत्रका अन्तिम परिच्छेद इस प्रकार है—

'मठके सब लोगोंको मेरा प्यार कहना तथा Next Meeting (आगामी सभा) में मेरा Greeting (सादर धन्यवाद) ज्ञापन कर कहना कि यद्यपि मैं सशरीर उपस्थित नहीं हूँ, फिर भी मेरी आत्मा उस जगह विद्यमान है, जहाँ प्रभुका नामकीर्तन होता है—**'यावत्तव कथा राम संचरिष्यति मेदिनीम्'** (हनुमान्)—'राम! जहाँ तुम्हारी कथा होती है, वहाँपर मैं विद्यमान रहता हूँ।' आत्मा सर्वव्यापी है न? यहाँ स्वामीजीने भक्तप्रवर हनुमान्‌जीका कथन उद्धृत कर संकीर्तनकी महिमाको बडे ही कलात्मक ढंगसे व्यक्त कर दिया है। इस पत्रांशसे हमें भगवान् विष्णुके—**'मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।'** इस कथनका स्मरण हो आता है। वस्तुतः ईश्वरका सतत कीर्तन ही सच्ची उपासना है। गीतामें कहा गया है—**'सततं कीर्तयन्तो माम्'** (९।१४) स्वामी विवेकानन्दकी संगीत तथा संकीर्तनमें गहरी अभिरुचि थी, अतएव उनके पत्रोंमें स्थान-स्थानपर संकीर्तनकी महिमाका विशद वर्णन समुपलब्ध होता है।

स्वामी रामतीर्थ भी बडे प्रतिभासम्पन्न महात्मा थे। वे भी संकीर्तन-प्रेमी थे। अपनी अलौकिक मस्तीके कारण वे 'बादशाह राम' कहलाते थे। रामतीर्थ-प्रतिष्ठान, वाराणसीसे प्रकाशित 'राम-पत्र' शीर्षक पत्र-संकलनमें संकीर्तन-महिमाके अनेक अनूठे आकर्षक अंश दृष्टिगत होते हैं। ये पत्र स्वामीजीने अपने गुरु धन्नारामजीको सम्बोधित कर लिखे हैं। सन् १८९८ ई०के मध्यमें रामतीर्थजी घर छोडकर गङ्गा-किनारे जा बसे थे। इनके घरवालोंने धन्नारामजीद्वारा पत्र लिखवाकर रामतीर्थसे घर लौटनेकी प्रार्थना की, जिसके उत्तरमें

ऋषिकेशसे २२ अगस्त, १८९८को जो पत्र लिखा गया, वह प्रेम और मस्तीसे परिपूर्ण है। उस पत्रके प्रत्येक परिच्छेदके अन्तमें संस्कृतके श्लोक और उर्दूके शेर उद्धृत किये गये हैं। यहाँ हम कुछ अंश उद्धृत कर रहे हैं—

'श्रीमहाराज सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, नित्य, अनन्त, परमानन्द, अनिर्वाच्यजी! एक कृपापत्र प्राप्त हुआ, जिसमें घर आनेके लिये प्रेरणा थी। इस पत्रको लेकर मैंने फौरन् परमधामको भेज दिया, (अर्थात् श्रीगङ्गाजीमें प्रवाहित कर दिया।) इस समय रातके बारह बज चुके हैं। न आदमी है, न आदमीकी बात; अंदरसे अनहद (अनाहत)-की घनघोर है और बाहरसे श्रीगङ्गाजीने अनाहतकी गरज लगा रखी है।.......'*

इसके बादवाला, ३० अगस्त १८९८ को लिखा पत्र, संकीर्तनसे प्राप्त आत्मसाक्षात्कारकी अवस्थाका परिचायक है। यह पत्र उपनिषद्के प्रसिद्ध मन्त्र **'पूर्णमदः पूर्णमिदं'**....से प्रारम्भ होता है और 'बांकी अदायें देखो'........पदसे पूर्ण होता है। चार पृष्ठोंका यह सुदीर्घ पत्र संकीर्तनकी महिमाका उत्तम नमूना है। एक-दो अंश द्रष्टव्य हैं—

'मनका मानसरोवर अमृतसे लबालब (भरपूर) हो रहा है और आनन्दकी नदी हृदयमेंसे बह रही है।....

'—परमानन्दकी सरिता या स्रोत बनकर यह तीर्थराम साक्षात् विष्णु पूर्णानन्दकी धारी (नदी) जगत्को कृतार्थ करनेके लिये भेज रहा रहा है।....' वह गङ्गा है, वह तुर्याराम है, वह राम है।'

'धन्य भूमि, धन्य काल देश वह।
धन्य माता, धन्य कुल, धन्य समधी॥...'

'बांकी अदायें देखो। चंद्र-सा मुखड़ा पेखो।'†

ऊपरके उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि बादशाह रामकी सही मस्ती अर्थात् संकीर्तनकी अन्तःसरितामें डूबी उनकी तीर्थस्वरूप पवित्र आत्माका जो साक्षात्कार उनके पत्रोंमें होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

महात्मा गांधी स्वभावसे ही संत थे। उनकी 'राम-नाम'में अपार आस्था थी। उनके अनेकानेक पत्र संकीर्तन एवं राम-नामकी महिमासे ओत-प्रोत हैं। आचार्य काका कालेलकरने बजाज-परिवारके नाम लिखे गये बापूके पत्रोंको 'संत-संवाद' की संज्ञा दी है। इस अभिधानकी प्रतीतिके लिये सेठ जमनालाल बजाजके नाम लिखित बापूका दिनाङ्क ५-१०-१९२२ का एक ही पत्र पर्याप्त है। पत्रका उत्कृष्ट अंश इस प्रकार है—

'ऐसा समझो कि अपवित्र विचारसे जो मुक्त हो गया, उसने मोक्ष प्राप्त किया। अपवित्र विचारोंका सर्वथा नाश बड़ी तपश्चर्यासे होता है। उसका एक ही उपाय है। अपवित्र विचारोंके आते ही उनके विरुद्ध तुरंत पवित्र विचार खड़े कर दें। ईश्वर-प्रसादीसे ही यह सम्भव है। वह प्रसादी चौबीसों घण्टे ईश्वरका नाम जपनेसे तथा वह ईश्वर अन्तर्यामी है, यह जान लेनेसे ही मिलती है। भले रामनाम जीभपर ही हो और मनमें दूसरे विचार आते रहे।' जीभसे रामनाम इतना प्रयत्न-पूर्वक ले कि अन्तमें जो जीभपर हो, वही हृदयमें भी स्थान ले ले............'‡

इस पत्रांशसे प्रकट होता है कि महात्माजी रामनाम अर्थात् संकीर्तनको सबसे बड़ा मन्त्र मानते थे। उनकी रामनाम-सम्बन्धी विभिन्न धारणाओंका विस्तृत विवेचन श्रीरामनाथजी 'सुमन'ने 'कल्याण' के 'भगवन्नाम-महिमा

* यहाँ अनाहत-शब्द संकीर्तनसे अन्तर्मनमें गूँजनेवाली अलौकिक ध्वनिका संकेत करता है।

(राम-पत्र, पृ० २३४-३५)

† (राम-पत्र, पृ० २३९-४०)   ‡ (बापूके पत्र बजाज-परिवारके नाम, पृ० २९)

*

और प्रार्थना अङ्क'में प्रकाशित अपने 'रामनाम और गांधीजी' शीर्षक लेखमें किया है। इस लेखमें बापूके बहुमूल्य पत्रोंसे अनेक उद्धरण भी दिये गये है।*

आचार्य विनोबाभावे पूज्य बापूके सच्चे आध्यात्मिक उत्तराधिकारी थे। जिस प्रकार बजाज-परिवारका पूज्य बापूसे घनिष्ठ सम्बन्ध था, उसी प्रकार विनोबाजी भी उस परिवारके अत्यन्त निकटका सम्बन्ध रखते थे। सेठ जमनालालजी बापूको अपने पिता और विनोबाजीको अपना गुरु मानते थे। सस्ता-साहित्य-मण्डलसे प्रकाशित 'विनोबाके पत्र' शीर्षक पुस्तकमें जो पत्र दिये गये है, वे सभी बजाज-परिवारके सदस्योको ही सम्बोधित करके लिखे गये है। इन पत्रोमें भी प्रसंगोपात्त सकीर्तनकी महत्ताका यथोचित उद्‌घाटन हुआ है। कहीं संत कबीरकी—

'कोरा कागद काली स्याही। लिखत पढत वाको पढ़वा दे॥ तू तो राम सुमर…' 'इन पंक्तियोसे पत्रका समापन किया गया है; जैसे—'विष्णु-सहस्रनाम, तुलसी, गङ्गाजल इत्यादि वस्तुएँ हिंदुओके लिये मनका मैल धोनेके लिये उपयोगी है। मुझपर भी उनका विलक्षण परिणाम होता है। वह क्यो है, यह नही कहा जा सकता। होता है सही। इसीलिये हम 'हिंदू' कहलाते है।'…… †

इससे स्पष्ट है कि महात्मा गांधीकी भाँति आचार्य विनोबा भी परम आस्तिक और सच्चे संत-पुरुष थे। गांधीजीने समय-समयपर राम-नामके बारेमें जो कहा और लिखा है, वह 'राम-नाम' शीर्षक पुस्तकमें संकलित है। विनोबाजीने उस 'राम-नाम' पर गहराईसे विचारकर जो निष्कर्ष निकाले है, उन्हे 'राम-नाम एक चिन्तन' शीर्षक पुस्तकमें लिपिबद्ध किया गया है। संकीर्तन-प्रेमियोंके लिये ये दोनो ही पुस्तके पठनीय तथा संग्रहणीय है।

भक्तवर श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने अपने सम्बन्धियो एवं संगियोके प्रश्नोंके उत्तरमें जो 'सीखने योग्य बातें' लिखी हैं, उन्हे गीताप्रेस, गोरखपुरद्वारा 'परमार्थ पत्रावली'—शीर्षकसे पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया है। अब तो इस पत्रावलीके अनेक भाग प्रकाशमें आ चुके है और प्रत्येक भागके कई संस्करण भी निकल चुके है, जिनमें यथाप्रसंग संकीर्तनकी महिमाका सविस्तृत, सरल-सुबोध वर्णन किया गया है। दो-एक उदाहरण लें—

'भजन-ध्यान और सत्संग-प्रतापसे मल, विक्षेप और आवरणके क्षीण होनेपर साधकका भगवान्‌में प्रेम होता है'…… ‡

'भजन अधिक होनेका उपाय पूछा—सो भगवान्‌के नाम-जपको सर्वोत्तम समझ लेनेपर भजन अधिक हो सकता है।'§

श्रद्धेय भाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दारके पत्र तो सर्वत्र भगवन्नामसे परिपूर्ण रहे है। श्रीहरिः, सादर सप्रेम हरिस्मरण,से आरम्भकर प्रतिवाक्य नामचर्चा करते हुए, शेष भगवत्कृपाकी परिपाटी उन्हींकी चलायी है। नाम-जपकी प्रार्थना, अखण्ड नामकीर्तनानुष्ठानके साथ 'भगवन्नाम-महिमा-अंक' आदिका प्रकाशन उन्हींके समयमें सम्पन्न हुआ। 'लोक-परलोक-सुधार' (कामके पत्र) शीर्षक पुस्तकमें भी संकलित है। यह पुस्तक भी अनेक भागोमें प्रकाशित है और इसमें भी संकीर्तनके महत्त्वको भली प्रकार प्रतिपादित किया गया है।

उपर्युक्त विवेचनसे कहा जा सकता है कि महान् विभूतियोंके पत्रोंमें संकीर्तनकी जो महिमा वर्णित की गयी है, वह उनके ग्रंथों एवं भाषणोंमें वर्णित सकीर्तन-महिमासे कहीं अधिक रोचक और रम्य है। इसी कारण यह अधिकाधिक मार्मिक एवं मननीय है।

---

* द्र०—भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना अंक, पृ० १७४–१८०। † विनोबाके पत्र, पृ० ९९।
‡ परमार्थ पत्रावली भाग १, पृ० २३। § परमार्थ पत्रावली भाग २, पृ० ६५।

कीर्तन

[कहानी]

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु ।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु ॥

बबूलोंकी अच्छी हरियाली है। उनकी पङ्क्ति सटी हुई और सघन है। भले उनके नीचे कोई विश्राम न कर सके, पर नेत्रोंको बड़ी अच्छी लगती है, वह हरी-हरी रेखा। झड़बेरियोंके झुरमुट प्रकृति-बालिकाने यत्र-तत्र बिखेर दिये हैं और खेतोंकी मेंड़ोंपर पत्थर रखे हैं। उन्हें खेतोंसे चुनकर अलग किया गया है। जाड़ेमें किसी गरीबके पैरकी भाँति खेतोंकी काली मिट्टी शतशः विदीर्ण हो रही है। छोटे-छोटे काले पाषाण उनमें बिखरे पड़े हैं, कौन चुन पायेगा इन्हें ?

उस झोपड़ीके समीपसे यह सब आप देख सकते हैं। गाँव कुछ बड़ा न होगा। उसमें चालीसके लगभग घर हैं और वे भी सब कच्चे। कुछपर खपरैले हैं और कुछपर फूस। यह एक झोंपडी सबसे अलग दक्खिन ओर क्यों है ? है तो स्वच्छ, लिपी-पुती और आकर्षक। गाँव है ब्राह्मणोंका, उसमें एक-दो घर कुर्मी भी हैं और सम्भवतः एकाध घर कोष्टी भी। यह चाण्डालकी झोंपड़ी है।

चाण्डालकी झोपड़ी ? इतनी स्वच्छ, लिपी-पुती ! और उसकी दीवालपर गेरूसे क्या लिखा है—'गोविन्द, नारायण, विट्ठल, पाण्डुरङ्ग !' सामने तुलसी-चबूतरा और गेंदोंके पेड़। तुलसीजीपर पुष्प चढ़ाये गये जान पड़ते हैं। घरमें बालक नहीं, तभी तो इतनी शान्ति है। बच्चे होते तो बाहर अवश्य आ जाते। घरमें किसीके बोलनेतकका शब्द क्यों नहीं होता ?

झोंपड़ी बड़ी नहीं है। एक या दो कोठरियाँ होंगी उसमें। अवश्य ही एक छोटा आँगन है। झाँककर देखनेसे सब कुछ नहीं, तो भी बहुत कुछ देखा जा सकता है। एक गाय बँधी है, सिरसे पैरतक काली। उसे अच्छी सेवा मिलती होगी, यह उसका शरीर कह रहा है। गलेमें एक फूलोंकी माला पड़ी है। दूध-जैसा उज्ज्वल बछड़ा उसके समीप शान्त खड़ा है। दूध उसने पी लिया होगा, नहीं तो पीता नहीं ? ऐसे सुघर, सजे बछड़े मैंने कम देखे हैं। अपने गलेकी माला उसे अच्छी नहीं लगती। फूलोंसे उसे प्रेम नहीं। रह-रहकर गर्दन हिलाता है उसे निकालनेको। वह फुदकता क्यों नहीं ? क्या देख रहा है ?

एक काला-कलूटा आदमी लेटा है, पेटके बल हाथ फैलाकर। वह सम्भवतः गो-माताको प्रणाम कर रहा है। हड्डीके ढाँचेपर मढ़ा हुआ काला चमड़ा। स्नायुजाल बाहर आ जानेको उतावले हैं। कमरमें एक मैली, फटी कछनी है। दोनों हाथोंके समीप, जो गायके पैरोंके पासतक लंबे फैले हैं, कुछ फूल बिखरे हैं। गो-माता बड़े प्रेमसे अपने चतुष्पादको छोड़कर इस द्विपाद वत्सका मस्तक चाट रही है। बछड़ा बड़े आश्चर्यसे देख रहा है उसे। वह समझ नहीं पाता कि वह भी उसे चाटे या केवल चौकड़ी भरते हुए बार-बार सूँघे।

'यह चाण्डालका घर है।' यह बात विस्मृत हो गयी। घरके सामने जो चबूतरा था, मैं उसपर चढ आया था और मेरी भीतर जानेकी इच्छा हो रही थी; किंतु 'उसके काममें बाधा होगी' इसी विचारसे मैं ठिठक रहा था। पूजा समाप्त हो गयी। उसने धीरेसे हाथ समेटे, घुटनोंके बल बैठकर फिर एक बार गायके खुरोंपर मस्तक रख, हाथसे वहाँकी धूल नेत्रोंमें लगाकर उसने बछड़ेके पैरोंके पास सिर रखा। अब उस चञ्चलने

सिर सूँघा और उछल पड़ा वह। हाथसे पैर छूनेका अवसर दिया नहीं उसने। अब उसके पास जाना व्यर्थ था। उछल रहा था वह तो। दरवाजेकी ओर उस काले आदमीने देखा नहीं। उसने केवल हाथ फैलाकर एक जोड़ी करतालें उठायीं। वे आड़में रखी थीं। वह तो उछल-उछलकर नाचने लगा—आकाशकी ओर मुख करके दोनों हाथ उठाये। करतालकी लयमें कीर्तनके स्वरमें आँगन गूँज उठा। बछड़ा फुदकना भूल गया और गाय एकटक उसे देखने लगी।

'गोविन्द हरि नारायण, विट्ठल पाण्डुरंग!'

× × ×

उस दिन मुझे सबसे अधिक कष्ट हुआ प्रणाम करनेसे। यों अनेकों लोग प्रणाम करते हैं। जब कोई प्रणाम करता है, यदि वह अवस्थामें बहुत छोटा न हुआ तो बहुत बुरा लगता है। अच्छा होता यदि प्रणाम करनेके बदले उसने गाली दी होती या चपत मारी होती। ऐसा क्यों होता है, कह नहीं सकता। जब उस बुड्ढेका कीर्तन समाप्त हुआ, उसकी दृष्टि द्वारकी ओर गयी। पृथ्वीपर सिर रखकर उसने कहा—'महाराज'। वह समझ ही न पाता था कि क्यों एक सफेदपोश उसकी झोपड़ीपर आया है। वह डर गया था। 'क्या करे वह,' यह समझ नहीं पा रहा था। समीप जाय तो छाया पड़ जायगी, बैठनेके लिये कहनेका साहस वह करे कैसे? वहींसे बोला—'क्या आज्ञा है, सरकार?'

'इधर आओ!' मैंने संकेत किया और वह आकर पाँच हाथ दूर खड़ा रहा। मैं पृथ्वीपर बैठ गया और मेरे संकेतपर वह भी पृथ्वीपर हाथ जोड़े बैठ गया। सभ्यताके नाते मैंने पूछ लिया—'तुम्हारे किसी काममें बाधा तो न पड़ेगी?' पर प्रश्न व्यर्थ था। वह एक उच्चवर्णके पुरुषसे कैसे कह सकता था कि 'अमुक काम करना है।' मेरे प्रश्नोंके उत्तरमें उसने बताया कि 'उसने बचपनमें एक ईसाई पाठशालामें कुछ पढ़ा है। उसके पास एक भजनोंकी पोथी है और वह उसे अच्छी प्रकार पढ़ लेता है।'

आजसे दस वर्ष पहलेकी बात है। शहरमें एक बुआजी आये थे। बड़ी प्रसिद्धि थी उनकी। वह भी उनके दर्शनोंको गया था। उस नन्हीं नदीके किनारे बड़े मैदानमें उनका कीर्तन हो रहा था। सबसे दूर, एक कोनेमें वह खड़ा था। उसे कुछ भी सुनायी नहीं पड़ा। भीड़ बहुत थी और लोगोंको वह छू न सकता था। दूर खड़ा था, वह। बस! केवल बुआजीके दर्शन कर सका था। उनके हाथ करताल लिये आकाशमें उठे थे और वे आकाशकी ओर देखते नाचते थे। बीचमें खड़े होकर कुछ कहते भी थे। इतना देख सका, यही क्या कम सौभाग्य था उसका।

उसी दिन उसने ये करतालें खरीदी थीं। ठाकुरजी तो चाण्डालके घर प्रतिष्ठित हो नहीं सकते थे। वह तुलसीजी और गो-माताकी पूजा करता है। खजूरके पत्ते काटकर झाड़ू बना लेता है और बाँसकी टोकरियाँ बनाता है। बाँस टोकरियोंको बेचकर खरीद लेता है। इतनेसे उसका पेट भर जाता है। उसकी स्त्रीको मरे बीस वर्ष हो गये। फिर दूसरी स्त्री नहीं लाया। कामसे बचे समयमें अब वह अपनी करतालें लेकर भजन गाता है।

पूछनेपर इतना और भी ज्ञात हो गया कि गो-माता केवल पूजाके लिये हैं। दूधसे उसे कोई मतलब नहीं। वह तो उनके प्यारे बछड़ेकी वस्तु है। उसका काम उनकी सेवा करना है और जहाँतक उसकी शक्ति है, वह उनकी सेवामें कोई त्रुटि नहीं करता।

एक ही इच्छा है, उसमें। वह एक बार पण्ढरपुर जाना चाहता है, मन्दिरमें तो जा सकेगा नहीं, केवल कलश और गरुड़-स्तम्भके दर्शन करेगा। इतनेके लिये

उसकी लालसा मचल उठी है। वर्षोंसे वह दो पैसे जुटानेमें लगा है। पता नहीं, कब उस लोकका बुलावा आ जाय, इसी वर्ष जायगा वह। मार्गमें टोकरियाँ और झाड़ू बनाकर पेट भर लेगा, पर गो-माताका क्या हो? वह इसी उलझनमें था। अभी चल दे दो-चार दिनमें तो आषाढी एकादशीतक पहुँच जायगा। मेरा मन भारी हो गया था। मैंने गाय रखनेकी प्रस्तावना की। गायके विषयमें बहुत कुछ बातें बताकर उसने उसी समय गाय खोल दी। मेरे पीछे चल पड़ा वह उनको लेकर।

× × ×

हाथोंमें करताले, बगलमें झंडा और झोलेमें बाँस काटने-छीलनेकी 'बाँकी'! आजतक ऐसा पण्ढरपुरका यात्री किसीने नहीं देखा था। अभी तो यात्रा प्रारम्भ होनेको तीन महीने हैं और यह एकाकी चाण्डाल! लोगोने बड़े कौतुकसे देखा उसे। यह करेगा क्या वहाँ जाकर? दर्शन तो होनेके नहीं। कानो-कान समाचार फैलने लगा।

अब उसे भूख कम लगती है। दो-तीन दिनपर कहीं बनाता है। रात्रिको जो गाँव दिखायी पड़ा, उसके बाहर कहीं पानीकी सुविधा देखकर अपना गैरिक झंडा गाड़ देता है। गर्मीके दिन हैं, रात्रिमें ओढनेको कुछ चाहिये नहीं। दिनकी धूप तो सदासे सहता आया है। कभी-कभी तीसरे-चौथे दिन वह विश्राम करता है दिनको भी। उस दिन खजूरके पत्ते काटता है, झाड़ू बनाता है और बेचता है। इन्हीं पैसोंसे उसके कई दिन कट जाते हैं। यात्रामें बाँसकी खटखट उसने की नहीं।

उसे गिरकर मूर्च्छित होना नहीं आता। हाथ-पैर बचाकर गिरना सीखे भी तो क्या लाभ। उसे क्या मञ्चपर या भीड़में कीर्तन करना है। उसकी करतालकी ध्वनि नीरव पहाड़ियोंमें टकराकर लौट आती है। उसका 'गोविन्द, हरि, विट्ठल' मार्गके टीलों, बबूलके वृक्षों, बेरकी झाड़ियों और काले खेतोंपर घूमकर, ढेलेके नीचे दुबके पतंगोंको सावधान कर, बबूलपरकी चिड़ियोंको चहकाकर, मार्गमें चरती गायों और उनके चरवाहोंको चौंकाकर उस नीले मार्गसे सीधे कहीं चली जाती है। सम्भवतः पण्ढरपुर, जहाँ वह ईंटपर खड़ा देवता मुसकरा रहा है, उसीके समीप।

नेत्रोंसे दो धाराएँ अवश्य झरती रहती हैं। उसे पता नहीं रहता कि वह खड़ा है, चल रहा है या नाच रहा है। ऊपरके उस नीचे पर्देपर उसकी भीतर घुसी छोटी-छोटी निस्तेज आँखें कुछ देखती हैं, पता नहीं क्या। उसके इस कीर्तनको देखने और सुननेवाला कोई नहीं। कोई होता तो वह ऐसा नृत्यमय कीर्तन शायद ही कर पाता।

साधारण मानव सुने या न सुने, पर सभी तो साधारण नहीं होते। भक्तमण्डली चौंकी। योगीजी अपने व्याघ्रचर्मसे उठे। उन्होंने न तो ऊपर मृगचर्म डाला और न त्रिशूल लिया, जैसा वे सदा नीचे उतरते समय करते हैं। पैदल पहाड़ीसे नीचेकी ओर झपटे। मार्ग छोड़ दिया उन्होंने। चिलम जली नहीं थी। एकने उसे हाथमें लेकर खड़े-खड़े दम लगाया और फिर डाल दिया। धूनी छोड़कर सब नीचे उतरने लगे। वे मार्गसे उतर रहे थे। पाँच भक्तोंकी मण्डली थी वहाँ। पहाड़ीके ठीक नीचेसे पण्ढरपुरका मार्ग जाता है। योगीजी ऊपर रहते हैं। नीचेसे एक ध्वनि पहुँची और उसने बलात् उस साधकको खींचा। एक नंगा काला आदमी करताल उठाये नाच रहा है। बगलमें झंडा गिरकर एक पेड़के सहारे टिका खड़ा है। कंधेपर झोली है। एक क्षण योगीजी रुके और फिर वे दुगुने वेगसे उधर झपटे। मार्गसे भक्त-मण्डली चिल्ला रही थी—'वह चाण्डाल है!' वे लोग इस यात्राका वर्णन सुन चुके थे। योगीजीने सुना नहीं। वे उसके आगे दण्डवत् गिर पड़े।

उसके नेत्र ऊपर थे। पैर हाथपर पड़ते ही ध्यान टूटा। चौंककर पीछे हट गया। 'गुरुदेव!' योगीजी रो रहे

थे। झपटकर उन्होने दोनों पैर भुजाओंमें कस लिये। वह स्तब्ध खड़ा था। भक्तोंने देखा और समझा योगीजी पागल हो गये। 'मै अब नही छोड़ता इन चरणोंको! आज ही रात्रिमें तो पाण्डुरङ्गने मुझसे कहा है।' उसकी समझमें कुछ आया नहीं। भक्तमण्डली खिसक चली।

जीवनमें आज ही उसे ऐसी विपत्तिमें पड़ना पड़ा था। वह कुछ भी समझ न पाता था। चाण्डाल बतानेपर भी उसे छुटकारा नहीं मिला। ये साधु उसके पैर पकडे हैं। इस पापसे कैसे छूटेगा वह। उधर योगिराजको, जब वे रोते-रोते दुःखी होकर सो गये थे, रात्रिमें स्वप्नमें भगवान्‌ने कहा था कि 'कल पहाड़ीके नीचे मेरा एक प्यारा भक्त इधरसे कीर्तन करता आयेगा, उसके साथ पण्ढरपुर आओ।' अन्तमें योगीजीके साथ चलनेकी बात उसने मान ली, इस शर्तपर कि वे आगे-आगे चलेंगे।

× × ×

वह भीड! उतना बड़ा जनसमुदाय! कैसे गरुड़-स्तम्भके दर्शन होगे? योगीजी उसे किसी भी भॉति जनसमूहमें ले जानेको राजी न कर सके। मार्गमें वह प्रायः आपेमें नहीं रहा है। उसे पकड़कर लाये है योगीजी। जंगलके कंद वे खोद लाते थे और कभी भूनकर और कभी कच्चा दोनों खा लेते थे। वह तो अपने कीर्तनमें इतना मग्न हो गया कि खजूरके पत्ते काटनेकी स्मृति ही न रही उसे। वस्तुतः जब कन्द मिल जाते थे, तब वह क्यो उधर ध्यान देने लगा।

एकादशीको यो ही भीड़ होती है। इस देवशयनीको तो पूरा वारकरी-सम्प्रदाय आता ही है, दूसरे भक्तवृन्द भी आते है। सड़कपर शरीर छिला जाता है। नगरके बाहर ही दोनोने अपने झंडे गाड़ दिये। निश्चय हुआ कि रात्रिमें जब भीड़ कुछ घटेगी, दर्शन हो जायँगे। कलश-दर्शन तो हो ही गये, गरुडस्तम्भ दूरसे भी दीख जाय तो पर्याप्त है। भीड़ तो रात्रिभर रहेगी ही।

जबसे कलश दृष्टि पडा, वह आपेमें है नहीं। उसकी करताल बंद नहीं होती और न उसके पैर रुकते। उसे न कुछ सुनायी पड़ता और न कुछ दीखता। वह अपने कीर्तनमें मस्त है और योगीजी उसकी सम्हालमें। रात बढती जाती है, पर भीड़ भी सड़कपर बढती जाती है। उसके घटनेके कोई लक्षण नहीं।

'आपलोग दर्शन करने नहीं चलेगे?' दो बजे रात्रिको ये लंबे गौरवर्ण पीताम्बरधारी पुरुष है कौन जो सेवकके साथ पूछने आये है? योगीजी चकित थे। सेवकके हाथमें लालटेन थी। इस भीड़में दूसरेको पूछनेवाला कहॉसे निकल सकता है कोई। 'आइये चलें।' उन्होने आग्रह किया।

वह तो आपेमें था नहीं। योगीजीने एक कंधा पकड़ा और खींच ले चले उसे। 'जहॉतक भीड़ न मिले, वहाँतक पहुँचनेमें तो कोई बाधा नहीं। आगे देखा जायगा।' उन्हे रुकना नहीं पडा। काईकी भॉति भीड हटती जाती थी और उनके लिये स्थान बनता जाता था।

'हमें आगे नहीं जाना है।' योगीजी गरुडस्तम्भके पास रुक गये। 'हमारे गुरुदेव चाण्डाल है।' उन्होने कहकर उसकी ओर संकेत किया। वह ज्यों-का-त्यों नाच रहा था।

'आप तो आ सकते है', वे भद्र पुरुष मुसकराये।

'मै श्रीगुरुचरणोसे आगे नहीं जा सकूँगा।' योगीजीने गम्भीरतासे उत्तर दिया। उन्होने कुछ कहा नहीं। खुलकर हँस पडे और मन्दिरमें चले गये। नाचते-नाचते पैर लड़खड़ाये। योगीजी न सम्हालते तो गरुडस्तम्भसे सिर टकरा जाता और·········। फिर भी वह गिरा और कुछ चोट भी आ ही गयी उसे। 'यह क्या?' योगीजी चौंके। 'भगवान्‌की मूर्ति गरुडस्तम्भसे तो दीखती नहीं थी। वे पहले भी पण्ढरपुर आ चुके है। नेत्र धोखा देते है या वे ही भूल रहे है?' सामने

ही कमरपर हाथ रखे ईंटोंपर खड़े रुक्माई और विठोबाकी पुष्पसज्जित मूर्तियाँ स्पष्ट है। कह नहीं सकते—वे मन्दिरमे है, बरामदेमें या प्राङ्गणमें ? यह देखनेका अवकाश किसे था।

योगीजीने देखा—उसने पृथ्वीपर मस्तक रखा। दोनों मूर्तियोंके दक्षिण कर लंबे फैले आशीर्वाद देने और वह दृश्य अदृश्य हो गया। वे तो नगरके बाहर उसी बबूलके नीचे खड़े हैं और वह नाच-नाचकर गा रहा है 'रुक्माई-विट्ठल।'

तो क्या वे सो रहे थे ? स्वप्न देख रहे थे ? पर अब भी हाथमें वह गेंदेका पुष्प है, जिसे उन्होंने उठाया था और मस्तकमें प्रणाम करते समय लगा जल भी सूखा नहीं है। उन्होंने अपने गुरुदेवके श्रीचरणोंमें मस्तक रख दिया।

संकीर्तन

(लेखक—आचार्य श्रीमधुसूदनजी शास्त्री)

'कीर्तन' शब्द भक्त एवं भक्तिसे सम्बद्ध है। भक्त और भक्ति शब्द **'भज्'** धातुसे बने हैं। **'भज्'** धातु—(१) भज-विश्राणने, (२) भजि-भाषणे, (३) भञ्जो-आमर्दने एवं (४) भज-सेवायाम्—इन चार अर्थोवाली है। इनमें विश्राणन अर्थवाले धातुमें **'क्त'** प्रत्यय करनेपर भक्त बनता है, जिसका अर्थ **'भक्तमन्तम्'** इस अमरकोषके अनुसार 'अन्त' है। भाषण अर्थवाले भजि धातुसे करणमें **'क्तिन्'** प्रत्यय करने और आगमशास्त्रके अनित्य होनेसे **'तुम्'**के न होनेपर भक्ति शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—लक्षणा-भक्ति। आमर्दन अर्थवाली 'भञ्जो' धातुसे **'क्तिन्'** प्रत्यय करने और **पृषोदरादिसे** न्-के लोप होनेपर भक्ति शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—पाणिनीय सूत्र-भक्तिः ४ । ३ । ९५ के अनुसार सीमा। सीमाका निर्धारण हो जानेसे उस देश या स्थानमें रहनेवालोंका पारस्परिक कलह आमर्दित अर्थात् नष्ट हो जाता है। इन तीन अर्थोवाली तीन धातुओंसे बने भक्त एवं भक्ति शब्दोंके अर्थोंसे कीर्तनके प्रसङ्गसे कोई विलक्षण अर्थ है, जिसे यों समझा जा सकता है।

भगवान् अपनी मायारूप उपाधिद्वारा उपरिनिर्दिष्ट सब कार्य करते-कराते हैं। वह माया है—नर्तकी। वह अपने नृत्यसे त्रैलोक्यके प्राणियोंको मोहमें डाले रहती है, जिससे प्राणिमात्र विह्वल रहते हैं। अतः उसको हटा देने—उलटा देनेसे प्राणी मोहमें नहीं फँसता है; क्योंकि उस माया नर्तकीका हटाना—उलटा देना ही कीर्तन है, जो भगवान्की भक्तिका स्वरूप है, एक साधन है। सेवा अर्थवाले 'भज' धातुसे कर्तामें **'क्त'** प्रत्यय करते हैं तब भक्त बनता है। इसका अर्थ है भगवान्का एवं अपने पूज्य माता-पिता और गुरुका सेवक—सेवा करनेवाला। इसी धातुसे करणमें **'क्तिन्'** करनेसे भक्ति शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—भगवान् आदि पूज्योंमें अनुराग-प्रेम; क्योंकि सेवा करनेवाला भक्त तभी सेवा करेगा या कर सकता है, जब पूज्योंमें उसकी श्रद्धा हो, प्रेम हो, अनुराग हो। यदि श्रद्धा, प्रेम या अनुराग न होगा तो वह न सेवा करेगा या न कर सकता है, अतः भक्ति शब्दका अर्थ है पूज्योंमें श्रद्धा, प्रेम, अनुराग। अतः भगवान्में अनुराग करनेवाला भक्तिमान् एवं भक्त कहलाता है। इसीलिये भगवान् कहते हैं कि **'भक्तिमान् मे प्रियो नरः', 'भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः', 'यो मद्भक्तः स मे प्रियः'** आदि। प्रकृतिमें भगवान्की भक्ति आठ प्रकारकी है, जिसका निर्देश श्रीगौतमीय तन्त्रमें किया गया है—

देवतायां च मन्त्रे च तथा मन्त्रप्रदे गुरौ।
भक्तिरष्टविधा यस्य तस्य कृष्णः प्रसीदति।
भक्तिरष्टविधा ह्येषा म्लेच्छैरपि विधीयते॥

देवतामें, मन्त्रमें तथा मन्त्रप्रद गुरुमें जिसकी अष्टविधा भक्ति होती है, उसपर भगवान् कृष्ण प्रसन्न होते हैं। वह भक्ति आठ प्रकारकी है, किंतु म्लेच्छ लोग भगवान्‌की जो भक्ति करते हैं, वह नौ प्रकारकी है। इसका उल्लेख भागवतके सातवें स्कन्धमें है—**इति पुंसार्पिता विष्णोर्भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।** किन्हींके मतसे भक्ति सोलह प्रकारकी भी है, जिसका वर्णन पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें शिव-पार्वती-संवादमें आया है—**भक्तिः षोडशधा प्रोक्ता भवबन्धविमुक्तये।**

संसारके बन्धनसे छुटकारा पानेके लिये सोलह प्रकारकी भक्ति कही गयी है। इस तरह आठ, नौ एवं सोलह प्रकारकी साधन-भक्तियोंमें कीर्तन एक अङ्ग है, अन्यतम भेद है। 'कीर्तन' शब्द **'कॄत संशब्दने'** धातुसे **'उपधायाश्च'** सूत्रसे **'ॠ'** को इत्त्व एवं रपरत्व और **'उपधायां च'** सूत्रसे **इ** को दीर्घ, **'युच्'** प्रत्ययकी **'यु'**को अन-आदेश होनेपर बना है। इसका अर्थ है—नामका संशब्दन-उच्चारण। इसके पर्याय अनुकीर्तन, उत्कीर्तन, संकीर्तन एवं उच्चारण है। इस कीर्तनके विषयमें देवीमाहात्म्यके अन्तमें लिखा है—**'रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम।'** देवीका चरित्र-कीर्तन भूतोंसे प्राणियोंकी रक्षा करता है। **'प्राणिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्।'** (श्रीमद्भा० स्क० २)—राजन्! प्राणियोंके लिये निर्णय कर दिया है कि वे हरिके नामका अनुकीर्तन करें। **ताभिः सार्धं जले क्रीडा हरेः सत्कीर्तनं कुरु'।** (ना० पं० रा०) नायिकाओंके साथ जलक्रीडा करते हुए हरिका सत्कीर्तन करो; भला होगा, विजय होगी, सुख होगा। उत्कीर्तन—ऊँचे स्वरसे कीर्तन कल्याणकारी होता है। **'यज्ञैः संकीर्तनप्रायैः'** (श्रीमद्भा० ११।५।१) संकीर्तनबहुल यज्ञोंसे, **'संकीर्तनध्वनिं श्रुत्वा'** (ना० पु०)—संकीर्तनकी ध्वनिको सुनकर, **'नामसंकीर्तनं श्रुत्वा'** (प० पु०) नामके संकीर्तनको सुनकर सुख होगा। वस्तुतः हरिका नामोच्चारण मोक्षकी यात्राका आरम्भ है—

सकृदुच्चारितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥
(ना० पु०)

'जिसने 'हरि'—इन दो अक्षरोंका एक बार भी उच्चारण कर लिया उसने मोक्षकी ओर जानेके लिये कमर कस ली है।' इसके विषयमें लिखा है कि एक ही क्रियाका जहाँ दो स्थानोंपर उपयोग होता है, वहाँ संयोगपृथक्त्व-न्याय लगता है। प्रकृतमें स्वतन्त्रतासे हरिके नामका उच्चारणरूप कीर्तन मोक्षका हेतु हो गया है। अन्यत्र किसी कार्यके प्रसङ्गमें भी हरिके नामका कीर्तन फलदायक होता है। जैसे भक्त प्रह्लाद अध्ययनके समय हरिके नामका कीर्तन कर महान् उपद्रवोंसे बचकर परम भागवत हो गये।

यहाँ एक विवेचनीय सिद्धान्त उपस्थित हो गया है। जैसे भागवतमें आया है—

तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम्॥
(२।१।५)

'इसलिये भारत! अभयको चाहनेवाले भक्तोंको सर्वात्मा सर्वस्वरूप भगवान् हरि ईश्वरका श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण करना चाहिये।'

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान् नृणाम्॥
(२।२।३६)

'इसलिये राजन्! मनुष्योंको हरि भगवान्‌का सब जगहोंमें तथा सब समयोंमें श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण करना

चाहिये ।' ये तीन बातें भक्तिके लिये मुख्य हैं । फिर भी आठ, नौ या सोलह प्रकारकी भक्तिकी बात भी है ? वास्तवमें सर्वमान्यता दो प्रकारकी हैं—एक सगुणकी दूसरी निर्गुणकी । सगुण मान्यताके ग्राहक गृहस्थ और शिक्षापथके पथिक बालक ब्रह्मचारी है, जिनके ऊपर भावी गार्हस्थ्य निर्भर है । निर्गुण मान्यताके ग्राहक वानप्रस्थ एवं संन्यासी है । इन दोनों ही प्रकारकी मान्यताओंके विषयमें (ग्राहकोंकी) ज्ञान-भूमिका एवं अज्ञान-भूमिका भावोंके अनुसार होती है । इन भावोंको परमात्मामें समर्पण करना ज्ञान-भूमिका है और परमात्माको भूलकर शरीर या शरीरके उपकरण स्त्री-पुत्र-भृत्य-पशु-धन-धान्य-धाम आदि अनित्य वस्तुओंमें समर्पण करना अज्ञान-भूमिका है । इन भावोंके परिष्कृत करनेके लिये श्रवण, मनन, निदिध्यासन या श्रवण, कीर्तन एवं स्मरणको साधकतम करण कहा गया है; क्योंकि सुनेंगे तभी तो कीर्तन और स्मरण करेंगे । यदि सुनेंगे नहीं तो किसका कीर्तन एवं स्मरण करेंगे । अतः श्रवणके बिना कीर्तन और स्मरण नहीं होते । इसी तरह यदि स्मरण नहीं करेंगे तो श्रवण एवं कीर्तन किसका होगा ।

छात्रगण अध्ययनकालमें गुरुके मुखसे शास्त्रको सुनते हैं तभी उनका कीर्तन अर्थात् अभ्यास और स्मरण अर्थात् गान करते है, अन्यथा नहीं करेंगे । कर ही कैसे सकते हैं; क्योंकि सिद्धान्त है—'शृणोति कीर्तयति जानाति इच्छति **यतते** ।' पहले सुनता है, तब कीर्तन करता है और समझता है अर्थात् पढ़े हुएका स्मरण करता है । तब उसके लिये इच्छा करता है कि वह या यह हमें मिल जाय, फिर उसे प्राप्त करनेके लिये यत्न करता है, अतः श्रवण, कीर्तन किये बिना स्मरण नहीं होगा । यदि गुरुसे श्रुतका—अधीतका स्मरण नहीं होगा तो अध्यापन-कालमें अध्यापक किसका अध्यापन—कीर्तन या उच्चारण करेगा । इस तरह श्रवण, कीर्तन एवं स्मरणके विषयमें **यह** सुदृढ़ सिद्धान्त है कि ये तीनों परस्पर निर्वाहक, पूरक एवं साधक हैं, अतः निष्कर्षरूपमें ये ही तीन भक्तियाँ हैं । इन्हींको सिद्ध करनेके लिये व्यासजीने भागवतमें दो बार 'श्रोतव्यः कीर्तितव्यः स्मर्तव्यः' कहा है । दूसरी बात यों है—

योगशास्त्रमें अधिमात्र पाँच उपायोंका वर्णन किया गया है । इन पाँचोंमें स्मृतिको—स्मरणको मध्यमें स्थान दिया है, जिसके कारण वह पूर्वके दोनों उपायोंमें अनुस्यूत है । इस स्मरणके आधार प्राग्भवीय अर्थात् जन्मान्तरीय संस्कार तथा गुरु-उपदेश अर्थात् अध्ययन, सामयिक श्रवण एवं शास्त्राभ्यास अर्थात् पुनः-पुनः कीर्तनसे समुद्भूत एतद्-भवीय संस्कार हैं । इन संस्कारोंसे उद्भूत स्मृति-स्मरण है । इस तरह कीर्तन श्रवण एवं स्मरणमें मुख्यरूपसे अनुस्यूत है, अतः कीर्तनका माहात्म्य लोकोत्तर है । कहाँतक कहें, अन्य सभी भक्तियाँ कीर्तनके ही भेद हैं । इसीलिये कहा है—

ब्रह्म राम तें नाम बड़ बरदायक बरदानि ।
रामचरित सतकोटि महँ लिय महेस जियँ जानि ॥
नाम प्रसाद संभु अबिनासी । साजु अमंगल मंगल रासी ॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी । नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी ॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू । जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू ॥
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भगत सिरोमनि भे प्रहलादू ॥
ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ । पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ॥
सुमिरि पवन सुत पावन नामू । अपने बस करि राखे रामू ॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ । भए मुकुत हरिनाम प्रभाऊ ॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई । राम न सकहिं नाम गुन गाई ॥

भक्तिके सभी भेद कीर्तनके आधारपर हैं । जब कीर्तन होगा, तभी तो श्रवण होगा, बिना उच्चारणके सुनायी क्या पड़ेगा ? जब सुनायी पड़ेगा, तब स्मरण होगा कि गुरुजीने समझाया था या शास्त्रोंमें पढ़ा था—'**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः । स एकाकी नारमत् । एकोऽहं बहु स्याम प्रजायेय । तदैक्षत**' —'हाँ, भगवान् सर्वव्यापक है । उन्हींकी क्रीडा यह

सब जगत् है। अतः उन्हींके चरणोकी सेवा करनेसे यह भाव आ जायगा कि 'सब सुख लहै तुम्हारी सरना। तुम रच्छक काहू को डर ना॥' ऐसा भाव जागेगा तब जीव कर्ममें, अर्चनमें और वन्दनमें प्रवृत्त होगा। वन्दन करनेमें लग जानेसे 'मैं हूँ दास आस जग तेरी' ऐसा दास्यभाव जागेगा। दास्यभावसे प्रसन्न हुए भगवान् उसको अपने समान मानने लगते है। जब सख्यभाव जग जाता है और उससे तेरा-मेराका भेद मिट जाता है, तब भगवान् भी कहने लगते है—'हम भगतन के भगत हमारे।' उस अवस्थामें भक्त अपने-आपको भजनीयके चरणोंमें न्योछावर कर देता है—'मेरा तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।' फिर तो वह अन्तमें आत्मसमर्पण कर देता है। इस तरह भक्त भगवत्स्वरूप हो जाता है। यही साधनाओंका मुख्य फल है। अतः तीन ही भक्तियाँ हैं, अन्य भक्तियाँ इनके भेद है। प्राणिमात्र इस कीर्तन-भक्तिके अधिकारी है। यह नहीं है कि अमुक ही हरिका कीर्तन कर सकता है, अमुक नहीं तथा ऐसी स्थितिमें ही वह कीर्तन कर सकता है अन्य स्थितिमें नहीं, अतः संकीर्तन सदा, सर्वत्र, सभीके लिये सभी प्रकार मङ्गलमय है।

कलिजुग महि किरतन परधाना

(लेखक—प्रोफेसर लालमोहरजी उपाध्याय, एम्० ए०,)

सिखधर्ममें नाम-जप एवं नाम-कीर्तनके महत्त्वके प्रतिपादक अनेक पद बडे मार्मिक एवं प्रभावशाली है। सिखधर्मके पाँचवें गुरु अर्जुनदेवजी महाराजकी वाणीमें, जिन्होने १६०४ ई०में श्रीगुरु-ग्रंथ-साहबका संकलन-सम्पादन किया था, कीर्तनकी महिमा देखिये—

कलिजुग महि किरतन परधाना।
गुरु मुख जपिए लाए धिआना॥

'कलियुगमें कीर्तनकी प्रधानता है। ध्यान लगाकर गुरु-मन्त्रवत् जप करना चाहिये।' और भी देखिये—

कीरतन निरमोलक हीरा।
सदा सुख कल्याण कीर्तन प्रभु लगा मीठा भाना।
जो जो कथै सुनै हरि कीरतनु ता की दुरमति नासा॥

सच बात तो यह है कि कीर्तनसे साधककी बुद्धि निर्मल हो जाती है, यह सुखदायक भी है। इसीलिये तो सिख धर्ममें कहा गया है—

'मोती मानक हीरा हरि जसु गावत मनु तनु भीना है।'

संत, सिपाही, साहित्यकार श्रीगुरु गोविन्दसिंह कीर्तनके बारेमें कहते है—

कहुँ पवन हारी, कहुँ बैठे लाए तारी,'
कहुँ लोभ की खुमारी सों अनेक गुन गावही।
निरबान कीरतनु गावहु करते का निमख सिमरत जितु छुटै।
भले भले है कीरत नीया
राम रमा रामा गुन गाउ। छोडि माया के अंध सुभाउ॥

वास्तवमें उस निरंकारकी कीर्तिका गान करना। हमारी जीभका श्रेष्ठ कर्म ही है। यथा—

कीरत प्रभु की गाउ मेरी रसना।
× × ×
हे जिभवा तुम राम गुन गाउ।

एक बार जब गुरु नानकदेवजी बेई नदीमें डुबकी लगाकर अन्तर्लीन हो गये और उस अकाल पुरुषके दरबारमें पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि वहाँपर सभी लोग हरि-कीर्तन कर रहे हैं; फिर क्या कहना, गुरु नानकदेवजी भी कीर्तन करनेमें ही लीन हो गये। सिखधर्मके तीसरे गुरु अमरदास तथा पाँचवे गुरु अर्जुनदेवने भी

अपने आपको उस काल पुरुष परमात्माका ढाढी (कीर्तनिया) कहा है—

हउ ढाढी वेकार कारे लाइया-ढाढी गुन गावे नित सवारिया।

गुरुजी सोदरकी वाणीमें कहते हैं—सभी जीव तेरा यश गा रहे हैं। चौथे गुरु रामदास कहते हैं कि घनी आबादीसे दूर जंगली जीव, पशु, पक्षी आदि अपनी-अपनी बोलीमें सवेरे-शाम प्रभुका यश गाते हैं—

जो बोलत है मिरग मीन तंखेरू, सो बिनु हरि जापत है नहीं होर।

शहीदोंके सिरताज सिखधर्मके पाँचवें गुरु अर्जुनदेवजीका कहना है कि 'मेरे मित्र सज्जन! मुझे वह स्थान बताओ, जहाँ हर समय कीर्तन होता है, मेरा मन वहाँ जाकर उस प्रभुकी यादमें जुड़ जाता है—

सो स्थान बतावहु मीता। जाके हरि हरि कीरतन नीता॥

× × ×

सुन बेनती सुआमी अपने नानक इह सुख माँगै
जह कीरतन तेरा साधु गावहि तह मन लागै।

इसका उत्तर गुरु-वाणीमें ही है—

साध कु संग हरि कीरतन गाइए। इहु असथान गुरु ते पाइये॥

गुरु अमरदासने गुरु रामदासजीको ऐसा स्थान बता दिया जहाँ अमृतसरका निर्माण हुआ, जहाँ आज भी रसभीना कीर्तन होता रहता है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जब एक बार अपने पिताजीके साथ अमृतसर गये, तब वहाँ हरिमन्दिरमें हो रहे कीर्तनसे इतने प्रभावित हुए कि एक मासतक प्रतिदिन कीर्तन सुनते रहे। प्रेम एवं मस्तीमें सराबोर होकर कीर्तन करनेवाले एवं सुननेवालेके बारेमें गुरु-ग्रंथसाहबमें लिखा है—

हरि कीरतनु सुनै हरि कीरतनु गावै।
तिस जन दुख निकट नहीं आवै।

सिख-साहित्यके विद्वान् भाई गुरुदासजीने अपने वाद १८में लिखा है—

निरवान कीरतन गावहु करते का निमख सिमरत जितु छुटै।
नानक आखै इहु विचार। सिफती गंध परै दरबार।

जो जो कथै सुनै कीरतन ताकि दुरमति नास
कुरबानी तिन गुर सिखा गुरु वाणी नित गाइए सुनिए।
जब नानक प्रनि मंगै तिस गुर सिख की जो आपि जपै अवरहु नाम जपावै।

सिख-धर्ममें कीर्तनके लिये कोई समय निर्धारित नहीं है। यहाँतक कि रात-दिन, उठते-बैठते, चलते-फिरते समय भी कीर्तनमें मन जोड़नेके निर्देश दिये गये हैं। इसीलिये तो गुरुग्रन्थसाहबमें कीर्तनके प्यासे मनकी अवस्था इस प्रकार बतायी गयी है—

१—कब कोउ मीलै पंच सत गाथन कब को राग धुनि उठावै।
२—मीलक चुनत बिनु पपुचसा लागै जब लगु मेरा मन राम गुन गावै।
३—उठत बैठत सेवत धिआइए। मारगा चलत हरे हरि गाइये॥
४—रैन दिवस प्रभातु तुहैं ही गावना॥
५—दिवसु रैन हरि कीरतन गाइए-सो जनु जम की बाट मथाइये
६—कहै नानक सदा गावहु एह सची वानी।
७—हमरा ठाकुर सम ते ऊँचा रवि दिनसु तिस गावउ रे।

श्रीगुरुनानकदेवजी जीवनपर्यन्त हरिकीर्तनमें लगे रहे। उनके साथमें बाला और मरदाना दो-दो बाबी कीर्तनिये भी रहते थे, जिनके नाम भी उनके साथ अमर हो गये। वे भारतके कोने-कोनेमें जाकर कीर्तनके द्वारा प्रचार करते रहे तथा संगतको धर्मशाला बनाकर नाम जपने तथा कीर्तन करनेका उपदेश देते रहे—

घरि घरि अंदर धरमसाल उचे कीरतन सदा बसो आ॥

गुरु अर्जुनदेवजी डंकेकी चोटपर कहते हैं—

जैसे गुरु उपदेसिया मै तैसे कहिआ पुकार।
नानक कहै सुनि रे मना करि कीरतन होए उधार॥

कीर्तनसे उद्धार होता है और कलियुगमें यही प्रधान साधन है, अतः सभीके लिये कीर्तन करना बहुत आवश्यक है। यह हमारी आत्मिक खुराक है। जैसे शारीरिक भूख मिटानेके लिये हम लज्जा नहीं करते, उसी तरह आत्मिक भूख मिटानेके लिये कीर्तन करनेमें संकोच नहीं करना चाहिये। इसीलिये तो सिख-धर्ममें कीर्तनकी

महत्ताको दृष्टिमें रखते हुए वाहिगुरु परमात्मासे कीर्तनकी मिक्षा माँगनेपर बल दिया गया है—

भूखे खावत लाज न आवे । तिउ हरिजन हरि गुन गावै ।
माँगना मागन नीका हरि जस गुर ते मागना ॥
गुन गावा दिनु रति नानक चाह ऐहु ॥
हरि कीरतन का आहार हरि देहु नानक के मीत ॥

इसीलिये गुरु अमरदासने कहा है—

आवहु सिख सतगुरु के प्यारे गावहु सचो बानी ॥

सिख-धर्ममें कहा गया है—कलियुग आ गया है, अतः कीर्तनका बीज बोवे । यही बीज फल देगा जिसे हम ग्रहण कर प्रभुके दरबारतक पहुँच सकते हैं । अतः गुरुवाणीमें स्पष्ट रूपसे उद्घोष किया गया है—

हब कतु आयउ । एकु नाम ध्यावहु

अथवा—

बीज मंत्र हरि कीरतन गाउ । आगे मिली निभावे भाउ ॥

इस तरह हम देखते हैं कि श्रीगुरुग्रन्थसाहबमें गुरुवाणीके माध्यमसे विशेषकर कलियुगमें कीर्तनकी महत्तापर पूर्णतया प्रकाश डाला गया है । सिक्ख-धर्मका महोपदेश है—

गुरुद्वारे हरि कीरतन सुनिए ।

श्रीनाम-संकीर्तन

(लेखक—श्रीहरिहरनाथजी चतुर्वेदी)

भक्ति और कीर्तनमें शास्त्रीय संगीतका भारी योगदान रहा है । यद्यपि संकीर्तनमें सबको बिना किसी भेदभावके भाग लेनेकी खुली छूट है—'मानउँ एक भगति कर नाता', तथापि यह बे-लगाम घोड़ोंकी अनियन्त्रित दौड नहीं है । भावक्षेत्र भक्तिकी उर्वरक भूमि है, जो अत्यन्त पवित्र है । इसका स्थान मानव-हृदय है, जहाँ वह श्रद्धा और प्रेमसे सिञ्चित हो फलती-फूलती है । 'सुमति कुमति सब के उर रहहीं'—सुमतिकी सुरक्षा और कुमतिका शमन इसका स्वाभाविक व्यापार है । भगवान्‌के प्रति लगाव एक भावना-पूर्ण आचरण है, जिसके अन्तर्गत भक्त स्वयंको समर्पण कर अपने अहंकारको नकारता है । संकीर्तन स्वतन्त्र होता हुआ भी विनयशील साधन है ।

स्वरका सृष्टिमें सार्थक योगदान है । बुरा शब्द वातावरणको विकृत करता है और अच्छा शब्द समस्त सृष्टिमें रस पैदा कर रसीला बनाता है । इसी कारण आदिकालसे भारतीय ऋषि-महर्षि, पादरी, पैगम्बर, मुल्ले और मसीहे भी अच्छी सौम्य शालीन शब्दावलिके प्रयोगपर सतत बल देते रहे हैं । अच्छी भाषा और अच्छे आचरणको ही समस्त संसारमें एक स्वरसे सभ्यता और सदाचार माना गया है । श्रीहरिनाम-संकीर्तन भक्ति-रसस्वरूप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीरामका नामोच्चारण है, जो उत्कर्षपूर्ण है । यह स्वयंका एवं लोकका कल्याणकारी तत्त्व है । जहाँ-जहाँ भी यह पावन नामोच्चारणका शब्द सुनायी देता है, वहाँ-वहाँ समस्त वायुमण्डलको ही शुद्ध एवं सुरभित कर सात्त्विक सङ्गीतमय बना देता है ।

नाम-संकीर्तन उस परमपिताके प्रति अभिवादन है, उसके अमित उपकारोंकी स्वीकारोक्ति है और उसके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन है । यह दैन्यका प्रदर्शन है, गरीबकी गुहार है और शरणागतभावकी अभिव्यक्ति है । यह खाली समयका सदुपयोग है तथा भगवन्नामद्वारा प्रभुकी पावन पूजाकी खुली छूट है । नियमबद्धता जीवनका बडा गुण है, परंतु कलियुगके इस प्रमादी वातावरणमें प्रत्येक प्राणी अपनी अस्तित्वरक्षामें ही व्यस्त और उलझा है । नियमपूर्वक उससे किसी कठिन साधनाकी आशा नहीं की जा सकती ।

ऐसे आस्तिक हृदयोंमें भक्तिको सदैव सींचनेवाला एकमात्र सरल साधन संकीर्तन-रस है। इसका न कोई निश्चित समय है और न नियम। यह तो भजनमार्गके समस्त अवरोधोंको पार कर, नियमोंका नियमन कर सर्वसुलभ सरल सीधी क्रिया है।

आचार्य वल्लभाचार्यने अपने पुष्टिमार्गमें मोक्षमार्गको पर्याप्त सरल किया था; परंतु जब वह पूजास्थान तथा नियमित पूजापद्धति भी यवनकालमें मानवको कठिन एवं असुविधाजनक प्रतीत होने लगी, तब चैतन्य महाप्रभुने इस बिगड़ी पूजा-व्यवस्थाके पर्यायस्वरूप संकीर्तन-यज्ञकी उपयोगिता एवं सार्थकता सिद्ध की। उसके सांनिध्यमें तोता-मैना-जैसे पक्षी भी अबाध गतिसे सतत नाम-संकीर्तन करके समस्त वनको ही सुरीला शब्दमय कर देते थे। उस कलरवसे समस्त वृन्दावन ही मानो आज भी संकीर्तन करता है—

वृन्दावनके वृक्ष कौ मरम न जानैं कोइ।
डार डार अरु पात पात पै राधे राधे होइ॥

सद्वातावरणमें ही सद्विचार, सद्वर्तन और सत्-संकल्प सम्भव होते है। संसारके प्रति अनासक्ति ही ईशोपासनाके लिये उपजाऊ भूमि है। भगवान् शिव ध्यान करते है, हनुमान्‌जी भजन करते है, नारदजी कीर्तन करते हैं, ध्रुव तपस्या करते हैं, प्रह्लादजी जगत्‌को प्रभुमय देखते है और गौराङ्ग महाप्रभु संकीर्तनमात्र स्वीकारते है। यह सब यथासमय भगवान्‌की कृपासे ही सर्वथा सम्भव है—'बिनु हरि कृपा मिलै नहिं संता।' संतके बिना सत्सङ्ग सम्भव नहीं और सत्सङ्गके बिना भक्ति सम्भव नहीं, जिसके बिना संकीर्तन नहीं होता। यह सबके लिये सुलभ होकर भी सम्भव नहीं है। इसके बिना संकट भी नहीं टलते।

'तैसेहि बिनु हरिभजन खगेसा। मिटै न जीवन केर कलेसा॥'

रावण भी भगवान् रामकी महत्ताको स्वीकार करता था, भजनके प्रभावसे भी परिचित था, परंतु शय्यापर सोते समय ही यह विचार उसके मानसमें आता था और····'होइहि भजनु न तामस देहा' कहकर वह अपनी असमर्थतामात्र स्वीकार करता था। फिर भी वह प्रभु-प्राप्तिके लिये तो लालायित था ही और उसीके द्वारा भवसागर भी तरना चाहता था, भले ही वह जीवनके अन्तिम समयमें ही सम्भव हो—'प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।'

भगवान् श्रीहरि सर्वोपरि तत्त्व हैं। नाम-महत्त्व भी सर्वोच्च है। हरिनाम हरि-प्राप्तिका साधन है और साध्य भी। श्रीहरि अनन्त हैं; जिनका नाम लेते ही 'सकल अमंगल मूल नसाहीं।' परंतु सर्वसमर्थ होकर भी वे एक जगह असमर्थ भी हैं····'राम न सकहिं नाम गुन गाई।' और रामभक्त तो स्वयं रामसे भी कहीं अधिक है—'राम तें अधिक राम कर दासा'; क्योंकि वह श्रीहरिका नित्य चिन्तन करता है। भजन, चिन्तन एवं संकीर्तन सुलभ होकर भी सबको प्राप्य नहीं है।

सुग्रीव भगवान्‌का भक्त था और मित्र भी। वह उनकी सेवा भी करना चाहता था, परंतु स्थायी भक्ति तो चाहते हुए भी प्राप्त न कर सका; क्योंकि भक्ति-प्राप्ति प्रत्येक प्राणीके लिये सम्भव नहीं है। वह कहता ही रहा—
अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिन राती॥
क्योंकि इस पुण्य-कार्यमें अनेक बाधाएँ है।

संकीर्तन सर्वसुलभ है, परंतु इसकी गरिमा सदैव रक्षणीय है। यह अनुशासित एवं श्रद्धा-विश्वास-समन्वित क्रिया यज्ञ है। 'मन कपटी तन सज्जन चीन्हा'—जैसे लंपटोंको यह सम्भव भी नहीं है। यह तो हृदय-मन्थन है, हृदयकी मलिनताको भावोन्मादसे धो-धोकर अश्रु-बिन्दुओंद्वारा बाहर निकालनेका प्रयास है। 'नम गुन

गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन वह नीरा'—युक्त यथार्थ कीर्तन-शब्द हृदयका विशुद्ध आचरण है। नशामें मस्त होकर छैल-छबीले रसिया बनकर संकीर्तन करना बडा अटपटा लगता है। जैसे गंदी बोतलमें गङ्गा-जलकी पवित्रता कम हो जाती है, इसी तरह अनुचित वातावरणमें संकीर्तन भी मन्द प्रभावी हो जाता है। यह न प्रदर्शन है और न उत्सव है; परंतु वाञ्छित कल्याणकारी व्यसन अवश्य है। इसके राहित्यमें सब हानि-ही-हानि है—'हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई॥' इसके विपरीत 'एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास' और एक ही मात्र आकाङ्क्षा है—

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति॥

श्यामसुन्दर! वह दिन कब आयेगा जब तुम्हारा नाम लेकर मेरी आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होगी, गद्गद होकर मेरा कण्ठ रुद्ध हो जायगा और सारा शरीर रोमाञ्चसे भर जायगा।'

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥
(श्रीमद्भा० १२।१३।२३)

'जिसका नाम-संकीर्तन सम्पूर्ण पापोंको नाश करनेवाला है और जिनके प्रति किया हुआ प्रणाम सारे सांसारिक दुःखोंको शान्त कर देता है, उन परम पुरुष श्रीहरिको मेरा नमस्कार है।'

मानव-जीवनमें हरि-कीर्तनका विशिष्ट महत्त्व

(लेखक—प० श्रीकेशवदेवजी शास्त्री, बी० ए०, साहित्यरत्न, धर्मरत्न)

संसारमें मानव-देहकी प्राप्ति प्रभुकृपासे होती है। उस मानव-स्वरूपको प्राप्तकर भी यदि हमारा ध्यान मानवोचित कृत्य करने एवं प्रभु-स्मरणकी ओर न गया तो न तो हम प्रगति कर सकते है और न हमे सुगति ही प्राप्त हो सकती है, जो परम लक्ष्य है। संसारमें धर्मका उदात्त स्वरूप ही कर्मके मर्मको सिखाता है और मानव-जीवनमें प्रगति एवं कल्याणका सोपान दिखाता है, जिसके सहारे हम ऐहलौकिक एवं पारलौकिक कल्याण प्राप्त कर सकते है। जिसके द्वारा हमारी उन्नति एवं कल्याण हो, वही सत्यरूपसे धर्म है। महर्षि कणाद कहते है-—'**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।**' इस धर्मको प्राप्त करनेके साधनोंके अनेक प्रकार है। श्रीमद्भागवतमहापुराणमें उक्ति है—

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥
(१२।३।५२)

'सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतायुगमें यज्ञादि, द्वापरमें भगवान्की उपासनाकी विधि है, पर कलियुगमें केवल हरिकीर्तनसे सब धर्म प्राप्त हो जाते है।'

नाम-प्रभावसे उद्धार-प्राप्त जीवोंमें गणिका, गज, गीध, ध्रुव, प्रह्लादके साथ-साथ अजामिलका नाम भी आता है। इसका जन्म अच्छे कुलमें होनेपर भी कुसंगतिके प्रभावसे इसमें मांस-मदिरा-सेवन, वेश्या-गमन प्रभृति सभी दोष आ गये थे। फलत. वह गिरता ही गया। अन्तमे मरते समय मोहवश उसके मुखमें पुत्रका नाम 'नारायण' आया और प्राण प्रयाण कर गये। कुत्सित कर्मके कारण यमदूत आकर घसीटते ले चले। इसी मध्य नारायण-नाम-प्रभावसे पापसे मुक्त हो जानेपर विष्णु-पार्षदोंने आकर उसे छुडाया और कहा—'अन्त समयमे भगवान्-का नाम लेकर प्राण त्यागनेसे वह पापमुक्त होकर वैकुण्ठका अधिकारी हो गया—

एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम्।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम्॥
अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥
(श्रीमद्भा० ६। २। ८, १८)

'जाने-अनजानेमें भी हरिनाम-प्रतापसे पाप-मुक्तिका कितना उत्तम सरल मार्ग है, अतः नाम-जप और प्रभु-संकीर्तन मानव-जीवनमें परम कल्याणकारी है। इसी प्रकार राज दैत्य दुष्ट हिरण्यकशिपुने जब प्रिय पुत्र राम-जापक प्रह्लादको द्वेषी मानकर तप्त लौहस्तम्भमें बाँधकर जलाना चाहा, तब नाम-प्रभावसे भक्त प्रह्लादका बाल-बाँका न हुआ। उन्होंने पिताजीसे कहा, 'जिस रामसे आपका द्रोह है, उनका नाम-प्रताप हमारा स्तम्भ शीतल बनाये हुए है।' महर्षि व्यासका श्रीमद्भागवतमें कथन है कि यद्यपि कलियुग महान् दोषमय है, किंतु वह एक विशेष गुण भी लेकर आया है कि सत्ययुग, त्रेता, द्वापर आदिमें धारणा, ध्यान, जप, यज्ञ आदिसे जो फल प्राप्त होता था, वह कलियुगमें केवल कृष्ण-नामसे प्राप्त हो जाता है—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी भी इस भावकी पुष्टि करते हैं—

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल, भव तर बिनहिं प्रयास॥

किंतु श्रद्धा एवं विश्वासके अभावमें कोई कार्य सफल नहीं होता, अतः भक्तिभावनामय साधनासे नाम-जप एवं हरि-कीर्तन जीवनमें शान्ति एवं सौख्य लानेमें परम सहायक होते हैं। इसीलिये इनका विशेष महत्त्व है। जब हम सांसारिक क्रियामें केवल स्वार्थवश अपनेको किसी सक्षम व्यक्तिको समर्पित कर देते हैं और उसका लाभ प्रायः मिलता है, तब सर्वशक्तिमान् महाप्रभुके आगे सत्यरूपमें समर्पित होनेपर हमारा कल्याण अवश्य होगा, यह सुनिश्चित है। भगवान् रामकी उक्ति है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

जो एक बार भी 'मैं आपका हूँ' इस प्रकार शरणागत होकर अभयकी याचना करता है, मैं उसे ऐसे सभी प्राणियोंसे अभयदान देता हूँ; यह मेरा व्रत ही है। इस प्रकार मानव-जीवन प्राप्तकर कलिकालमें अपने सुविधानुसार प्रतिदिन हरि-कीर्तन एवं नाम-जप अवश्य करना चाहिये, इससे उत्थान और कल्याणकी प्राप्ति होगी।

संसारकी असारता

तूने हीरो सो जनम गमायो, भजन बिना बावरे॥ टेर॥
ना तू आयो संतां शरणे, ना तू हरि गुण गायो।
पचि-पचि मर्यो बैलकी नाईं, सोय रह्यो उठ खायो॥ १॥
यो संसार हाट बनियेकी, सब जग सौदे आयो।
चतुर तो माल चौगुना कीना, मूरख मूल गमायो॥ २॥
यो संसार फूल सेमरको, सूवो देख लुभायो।
मारी चोंच निकल गई रूई, शिर धुनि-धुनि पछितायो॥ ३॥
यो संसार मायाको लोभी, ममता महल चिनायो।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हाथ कछू नहिं आयो॥ ४॥

संकीर्तन और तन्मयता

(लेखक—साहित्याचार्य श्रीमदनजी साहित्यभूषण, साहित्यरत्न)

अपने इष्टके गुणगानकी अभिव्यक्तिके संदर्भमें प्रयुक्त 'कीर्तन' या 'संकीर्तन' दोनों शब्द प्रायः एक ही भावनात्मक प्रक्रियाके द्योतक हैं। अपने आराध्यके प्रति अगाध निष्ठा, अनन्यता तथा समर्पणकी प्रगाढ भावना संकीर्तनके लिये प्रेरित करती है। इसकी प्रचलित दो पद्धतियाँ हैं—एक 'ऐकान्तिक' तथा दूसरी 'सामूहिक'। प्रभुके गुणगान या लीला-कीर्तन तथा नाम-कीर्तन दोनों ही लोक-परलोक-कल्याणकारी एवं प्रभावोत्पादक तो हैं ही, अभीष्टदायी और सुख-शान्तिकी सृजनात्मक प्रेरक शक्तियोंसे विभूषित भी हैं। नाम या गुणानुवाद-सम्बन्धी संकीर्तन ऐकान्तिक भी सम्भव है और सामूहिक भी; किंतु कीर्तनकी तन्मयता ही सफलता-सोपानके संनिकट ले जाती है।

आर्तस्वरमें किया जानेवाला संकीर्तन सर्वाधिक प्रभावी और प्रियतमसे सांनिध्य स्थापित करानेवाला होता है। ऐसे कीर्तनकार प्रायः भावाविष्ट होते हैं। अपने प्रेमास्पदके प्रति भाव-विभोर होते ही वे अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं। उनके नयनाश्रु गङ्गा-यमुनाकी तरह उमड़ पड़ते हैं, जिसके कारण भावुक श्रोता भी उस धारामें प्रवाहित होनेसे बच नहीं पाते। उनके हृदय भी उद्वेलित हो उठते हैं। भावनाके स्नेह-सागरकी तरंगें उन्हें भी स्थिर नहीं रहने देतीं। उनके रोम-रोममें अभूतपूर्व सिहरन होने लगती है और लगता है, जैसे उनकी तन्मयता भी कीर्तनकारकी तन्मयतासे एकाकार होकर परमानन्दकी उपलब्धिका सृजन करने लगती है।

जहाँ नाम-कीर्तनमें कीर्तनकारका स्वर क्रमशः मुखर होने लगता है, कण्ठ-स्वर क्रमशः नादस्वरमें परिवर्तित हो जाता है और अन्तमें उसके तन, मन तथा प्राण मूर्च्छावस्थामें पहुँच जाते हैं, वहाँ लीलागुणानुवादके माध्यमसे कीर्तनकारकी स्नेह-अभिव्यञ्जना आद्योपान्त मधुर, सरस, उल्लसित-तरंगित एवं संवेदन शील होती है और प्रियतमके भावनात्मक अभिन्नता एवं सुखानुभूतिकी स्थिति प्राप्त कर लेती है। जो संकीर्तन लोकरञ्जनार्थ होता है, उसमें प्रायः ऐसी रसानुभूति नहीं हो पाती; किंतु जो स्वान्तःसुखायवाला उपासनायुक्त संकीर्तन होता है, वह कीर्तनकारको अनन्य साधनाकी उपलब्धिके चरमोत्कर्षतक पहुँचा देता है।

दोनों प्रकारके संकीर्तनमें प्रायः एकाधिक मधुर वाद्योंका संयोग विशेष तन्मयकारी होता है, चाहे वह वीणा या एकतारा, सितार या करताल, ढोलक या चाँद-खोल हो अथवा कोई तारयन्त्र ही क्यों न हो। कीर्तनकी तन्मयताके साथ परिपाटी आदिकालसे ही चली आ रही है और सृष्टिके अन्ततक रहेगी, ऐसा विश्वास है। ऋषि-मुनि, सुर-गन्धर्व, मानव तथा शास्त्रकारोंने भी भगवत्प्राप्तिके सुगम-सरलमार्ग—संकीर्तनको ही प्रधानता दी है। इस कलियुगमें तो इस पद्धतिकी अत्यधिक सराहना की गयी है। यही कारण है कि भावपूर्ण संकीर्तनको चतुर्युगीन, सार्वकालिक एवं सर्वानुमोदित मान्यता प्राप्त है।

संकीर्तनकी सुगम विधि

(लेखक—श्रीहरवल्लभजी जौहरी, एम्० ए०)

कीर्तन भगवत्प्राप्तिका सुगम उपाय है। यहाँ उसके कुछ अनुभूत नियम निवेदित किये जा रहे हैं। हमारा विश्वास है कि उनका नित्य पालन करनेसे प्रेमरसकी प्राप्ति हो सकती है। इस बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि विधि-नियम केवल पथपर अग्रसर करनेके लिये पथप्रदर्शकका काम करते हैं; किंतु कीर्तनसागरको मथकर प्रेमरत्नको उत्पन्न करना साधकका ही कार्य है। जबतक प्रेम नहीं उमड़ता तभीतक नियमोंका बन्धन रहता है। प्रेमसागरके उमड़ते ही सब विधि-नियम उसमें अनायास ही बह जाते हैं, अतएव नीचे लिखे हुए नियम केवल मुझ-सरीखे नवसिखियोंके लिये ही हैं। कीर्तनके लिये कीर्तनस्थानकी सजावट, पूजन-सामग्री एवं भगवान्‌की मूर्ति या चित्र, बाजा आदिकी अपेक्षा होती है। कीर्तन स्थान पवित्र होना चाहिये। वह देवोंके चित्रोंसे सुसज्जित हो। कम-से-कम एक चित्ताकर्षक प्रभुका चित्र तो ऊँचे स्थानपर अवश्य विराजमान करना चाहिये। चित्रोंका ऐसा स्थान प्रत्येक घरमें, वनमें, देवालयमें हो सकता है। भगवान् भावके भूखे है। अतएव गरीब-अमीर सभी अपनी-अपनी अवस्थाके अनुकूल यह सजावट कर सकते हैं। कीर्तनमें जितने अधिक मनुष्य एक साथ सम्मिलित हो सकें, उतना ही अच्छा है। सब एक साथ उच्च-स्वरसे भगवन्नामका उच्चारण करें। इन सब प्रेमियोंको आदरसहित आसन दीजिये और इनको प्रभुकी प्राप्तिमें अपना सहारा समझिये—'राम ते अधिक राम कर दासा' इस बातपर बराबर ध्यान रखिये।

सम्भव हो तो बाजा—हार्मोनियम, खड़ताल आदि अवश्य होने चाहिये। इनके साथ कीर्तनका आनन्द बढ़ता है, मन घबराकर भागता नहीं, कीर्तनमें सम्मिलित होनेवाले प्रत्येक प्रेमीके पास यदि खड़ताल हो तो बड़ा ही अच्छा हो। यदि ढोल, तबला आदि अन्यान्य बजानेकी वस्तुएँ मिल सकें तो उन्हें भी रखना चाहिये। यदि हो सके तो धूप-बत्ती और कपूर या आरतीका सामान भी रखना चाहिये; क्योंकि ये सभी प्रभुके पूजनके लिये आवश्यक वस्तुएँ है। भगवान्‌ने कहा है कि **'पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।'** अतः पत्र, पुष्प, फल, जल—यह तो होना ही चाहिये। प्रसादमें यथाशक्ति कुछ भगवान्‌की भोगसामग्री भी रखी जाय तो बड़े आनन्दकी बात है। शुद्ध चीनीके बताशे ही सही, उन्हे तुलसीदलसे संयुक्त कर प्रसाद बना लिया जाय। फिर श्रीभगवान्‌के आवाहनके लिये निम्नलिखित श्लोक, गान तथा पदोंको गाना चाहिये—

एह्येहि कृष्ण सकृदेव भवातिथिस्त्वं
हे भक्तवत्सल गृहाण निमन्त्रणं मे।
प्रेमाश्रुपाद्यपरिधौतपदाम्बुजे ते
आत्मानमेव कुसुमाञ्जलिमुत्सृजामि॥
एह्येहि जीवेश्वर जीवबन्धो
भवाब्धिमन्थोत्थितरत्नसार।
हृदो निधे त्वां हृदये निधाय
प्रमीलिताक्षो हृदि निर्विशामि॥
मयार्प्यते त्वच्चरणेऽयमात्मा
प्रतीच्छ हे स्वस्य धनं स्वयं त्वम्।
किंचिन्निजस्त्वं न हि विद्यते मे
यद् दीयते त्वच्चरणे मुकुन्द॥

'कृष्ण! आइये, आइये, एक बार आप हमारे अतिथि हो जाइये। भक्तवत्सल! मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर लीजिये। मै आपके चरणकमलोंको अपने प्रेमाश्रुओंसे धोऊँगा और पुष्पके स्थानपर अपनी आत्माकी ही पुष्पाञ्जलि चढ़ा दूँगा। जीवेश्वर! जीवबन्धो! पधारिये,

※

पधारिये। संसार-समुद्रके मथनेसे प्राप्त हुए रत्नसार! हृदयके निधि! मै आपको अपने हृदयासनपर आसीन करूँगा और आँखरूपी कपाटोको बंदकर हृदयमें सदैवके लिये धारण कर लूँगा। मैं अपनी आत्माको आपके चरणकमलोमें अर्पण करता हूँ। प्रभो! अपने इस धनको स्वीकार कीजिये! मुकुन्द! मेरे पास मेरी कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे मै आपके चरणकमलोमें भेंट करूँ।'

पुनः प्रार्थना कीजिये——

दीनानाथ! आओ नाथ! करुणाहस्त बढ़ाओ नाथ!
दीन दुखिया रटत निशिदिन देत उनको साथ॥
॥ दीना०॥
तुम्हरे गुण गावत महेश काटत सगरे क्लेश।
जपत योगीजन हमेश पत है तुम्हरे हाथ॥
॥ दीना०॥

इसको बार-बार गाइये, फिर भी यही अनुभव कीजिये कि प्रभु अभी नहीं सुनते। अच्छा, अबकी बार तो इनको सुनना ही पडेगा। प्रत्येक बार स्वर उच्च तथा प्रेम बढ़ते रहना चाहिये——

एहि मुरारे कुञ्जविहारे एहि प्रणतजनबन्धो
हे माधव मधुमथन वरेण्य केशव करुणासिन्धो।
रासनिकुञ्जे गुञ्जति नियतं भ्रमरशतं किल कान्त
एहि निभृतपथपान्थ। त्वामिह याचे दर्शनदानं
हे मधुसूदन शान्त॥ ॥ एहि मुरारे०॥
शून्यं कुसुमासनमिह कुञ्जे शून्यः केलिकदम्बः
दीनः शिखीकदम्बः। मृदुकलनादं किल सविषादं
रोदिति यमुनास्वम्भः॥ ॥ एहि मुरारे०॥
नवनीरजधरश्यामलसुन्दर चन्द्रकुसुमरुचिवेश
गोपीगणहृदयेश। गोवर्द्धनधर वृन्दावनचर
वंशीधर परमेश॥ ॥ एहि मुरारे०॥
राधारञ्जन कंसनिषूदन प्रणतिस्तावकचरणे
निखिलनिराश्रयशरणे। एहि जनार्दन पीताम्बरधर
कुञ्जे मन्थरपवने॥
एहि मुरारे कुञ्जविहारे एहि प्रणतजनबन्धो!

'कुञ्जमें विहार करनेवाले प्रणतजनोके बन्धु मुरारी! आइये। माधव! केशव! मधुमथन! सर्वश्रेष्ठ! करुणासिन्धो! पधारिये। कान्त! रासनिकुञ्जमें सैकड़ों भ्रमर गूँज रहे है। गुप्तपथके पथिक! पधारिये। शान्त-स्वभाववाले मधुसूदन! आपके दर्शनदानकी हम याचना करते है। आपके विना इस कुञ्जमें यह कुसुमासन शून्य मालूम होता है और यह क्रीडा-कदम्ब भी आपके विना शून्य-सा हो रहा है। मोर आदि सब पक्षी दीन हो रहे हैं। उनका मधुर कलनाद विषादयुक्त हो गया है। श्रीयमुनाजीका जल भी आपके वियोगमें रोता दीखता है। नवीन मेघकी-सी श्यामल सुन्दरतावाले! चमेलीके पुष्पके सदृश कान्तिवाले! गोपीगणोके हृदयेश्वर! गोवर्धनधारी! वृन्दावनमें विचरनेवाले! वंशीधर! परमेश्वर! राधिकाजीको प्रसन्न करनेवाले! कंसको मारनेवाले! आपके समस्त निराश्रित जनोंको आश्रय देनेवाले चरणोंमें हम प्रणाम कर रहे है। जनार्दन! पीताम्बरधारी! इस मन्द पवनसे युक्त कुञ्जमें पधारिये।'

पुनः जय हो! जय हो! जय हो! ऐसा कहते हुए अनुभव कीजिये कि प्रभु आ गये। तब सब लोग एकदम उठ खडे हो जाइये और झट निम्नलिखित भक्तवर सूरदासजीका पद सादर, सप्रेम, उच्च स्वरसे समर्पित कीजिये——

बन्दौं चरन सरोज तिहारे॥
सुन्दरश्याम कमलदललोचन,
ललित त्रिभङ्गी प्राणन पियारे॥
जे पद-पदुम सदा सिव के धन,
सिंधु-सुता उर ते नहिं टारे।
जे पद-पदुम परसि जलपावन,
सुरसरि-दरस कटत अघ भारे॥
जे पद-पदुम परसि रिषि-पत्नी,
बलि-मृग-व्याध पतित बहु तारे।
जे पद-पदुम तात-रिस-आछत,
मन-बच-क्रम प्रहलाद सँभारे॥

जे पदपद्म रमत वृन्दावन,
अहिसुर धरि अगणित रिपु मारे।
जे पदपद्म परसि व्रजभामिनि,
सर्बस दै सुत-सदन बिसारे ॥ बन्दौं० ॥
जे पदपद्म रमत पाण्डव-दल,
दूत भये सब काज सँवारे।
'सूरदास' तेई पदपङ्कज,
त्रिविध ताप-दुख हरन हमारे ॥ बन्दौं० ॥

फिर आनन्दसे जयध्वनि करते हुए कहिये—

जय राधे गोविन्द ! जय राधे गोविन्द !
भजो राधे गोविन्द ! भजो राधे गोविन्द !
बोलो राधे गोविन्द ! बोलो राधे गोविन्द !

इसके बाद कोई सूरदास या तुलसीदासका विनय-सम्बन्धी पद सुनाकर यह अनुभव कीजिये कि प्रभु सच्चे न्यायाधीश हैं। उन्हें उन्हींके बनाये हुए प्रमाण सदा मान्य अवश्य होते हैं, इसलिये ध्रुव, प्रह्लाद, गणिका, अजामिल आदिके प्रमाण देकर प्रभुसे सच्चे दिलसे प्रार्थना कीजिये कि नाथ! हमें भी अपनाइये।

फिर इसके बाद यह ध्वनि लगाइये—

राम ध्वनि लागी, गोपाल ध्वनि लागी ॥
हरि ध्वनि लागी, गोविन्द ध्वनि लागी।
कृष्ण ध्वनि लागी, राधाकृष्ण ध्वनि लागी।
राम ध्वनि लागी, सीताराम ध्वनि लागी।
गोपाल ध्वनि लागी, गोविन्द ध्वनि लागी ॥

जबतक प्रेम न उमड़े, तबतक इसे गाते जाइये और श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्‌की जय-जयकार कर अनुभव कीजिये कि आपको प्रभुने अपना लिया। अब प्रभुके इन आदेशोंका ध्यान कीजिये, मानो वे कह रहे हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां हि विस्मरेत्।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम् ॥

'एक बार भी जो मेरी शरण होकर मैं, आपका हूँ'—ऐसा कहता है उसे मैं सब प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है। सब धर्मोंको छोड़कर केवल एक मेरी शरणमें आ जाओ, मैं तुम्हें सब पापोंसे मुक्त करता हूँ—सोच मत करो। वात आदिके दोषसे मेरा भक्त मुझे भूल भी जाय, पर मैं अपने भक्तको स्मरण रखता हूँ और उसे परमगतिकी प्राप्ति कराता हूँ।' बस, अब अपने प्रभुकी इस ध्वनिमें जय-जयकार बोलिये—

जय मीराके गिरधर नागर जय तुलसी के सीताराम।
जय नरसीके साँवरिया जय सूरदासके राधेश्याम ॥

आपके पास जितना समय हो, उसमें आप उतनी ही ध्वनिका प्रयोग बदलकर कर सकते हैं। कीर्तनके योग्य आप अन्य पद भी चुन सकते हैं। इतना करनेके पश्चात् भगवान्‌के भोग लगानेका यदि सामान हो तो भोग लगाकर आरतीकी तैयारी कीजिये, घंटा आदि जो हो उसे बजाइये और नीचे लिखे पदका गान कीजिये—

जय जय जगदीश राम।
श्यामधाम पूर्णकाम।
आनन्दघन-ब्रह्मविष्णु,
सच्चित्सुखकारी ॥ जय० ॥
कंस रावणादि काल,
सतत प्रणत-भक्त-पाल।
शोभित गल मुक्त-माल,
दीन-तापहारी ॥ जय० ॥
प्रेमभरण, पापहरण,
असरणजन शरणचरण।
सुखहि करन, दुखहि हरन,
वृन्दावन-चारी ॥ जय० ॥
रमावास, जगनिवास,
रमारमन शमन त्रास।
विनवत हरिचन्ददास,
जय जय गिरिधारी ॥ जय० ॥

बोलो श्रीकृष्णचन्द्रकी जय! श्रीरामचन्द्रकी जय! पवनसुत हनुमान्‌की जय! भक्तवर सूरदासकी जय! श्रीतुलसीदासकी जय! सब भक्तोंकी जय! जय! जय! जय!

संकीर्तन कैसे करें ?

(लेखक—आचार्य श्रीप्रणवेश घोष, एम्० ए० (द्वय), एल्-एल्०बी०, धर्मरत्न, एम्० डी० एच्०)

संकीर्तनके द्वारा ही कुण्डलिनी-शक्तिका जागरण, यहाँतक कि समाधि भी सम्भव है; किंतु इसके लिये कुछ आवश्यक बातोंपर ध्यान देना उचित होगा। सर्वप्रथम इस बातका ध्यान रहना चाहिये कि संकीर्तन आत्म-विज्ञापनका साधन न बन जाय। आप अपने मित्रों, पड़ोसियों या उच्च अधिकारियोंसे 'भक्त'का प्रमाणपत्र पानेके लिये संकीर्तनका आयोजन कदापि न करें। ऐसा करनेसे उत्थानके स्थानपर पतन ही होता है। सारा वातावरण शुद्ध भक्तिकी पावनधारासे परिप्लावित हो जाय—आपका उद्देश्य यही होना चाहिये। अतः आप संकीर्तनमें उन परिचित या स्वल्प-परिचित व्यक्तियोंको ही आमन्त्रित करें, जो सत्त्व-प्रधान, धर्म-प्राण और सरल हृदयके भक्त हों। यह संख्या बारहसे अधिक न हो तो अच्छा है। वैसे आठ-दस व्यक्ति ही पर्याप्त होते हैं।

जिस कमरेमें संकीर्तनका आयोजन हो, उसमें साफ-सुथरी दरी बिछाइये। सम्भव हो तो उसपर साफ धुली चादर भी डाल दें। वहाँ एक ओर लकड़ीके पटोंपर देवी-देवताओंके सुन्दर सुरुचिपूर्ण चित्र और मूर्तियाँ रखें। अखण्ड दीप जलायें। दीवालोंपर भक्त और ब्रह्मज्ञानियोंके चित्रोंको छोड़कर सारे चित्र हटा लें। तथाकथित अन्य कलाकृतियाँ भी हटा लें। उस कमरेको कम-से-कम संकीर्तनके समयतक एक मन्दिरका स्वरूप दे दें। घीका दीपक जला लें और घृत-मिश्रित सुगन्धित धूपका हवन करें। चन्दनकी अगरबत्ती भी जला लें। इस तरह सारे कमरेको दिव्य सुगन्धसे भर दें। देवी-देवताओंके चित्रों और मूर्तियोंको यथासम्भव फूलमालासे सजा लें। उनके सामने नैवेद्य ढाँककर रख दें।

संकीर्तनके पूर्व, उसके बीच और उसके अन्तमें भी लौकिक चर्चाको पूर्णरूपसे निषिद्ध कर दें। संकीर्तनमें वाद्य-यन्त्रोंका बाहुल्य न होने पाये—इसका भी ध्यान रखें। यदि वाद्य-यन्त्रोंकी व्यवस्था हो भी तो उन्हें धीरे-धीरे बजानेका निर्देश दें। मौखिक संकीर्तन-का ही प्राधान्य होना चाहिये। संकीर्तनके पूर्व निम्नाङ्कित श्लोकको अवश्य पढ़ें—

> यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
> तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
> बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
> मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

'जहाँ-जहाँ रघुनाथजीका कीर्तन होता है, वहाँ-वहाँ अपने मस्तकपर अञ्जलि बाँधे हुए आँखोंमें प्रेम और भक्तिके अश्रु भरकर श्रीमारुति भगवान् उपस्थित रहते हैं। उन राक्षसान्तक हनुमान्‌जीको हम नमन करते हैं।' इसके बाद (या पूर्व) अन्य देवी-देवताओंसे सम्बन्धित श्लोकों (लम्बे-लम्बे स्तोत्र नहीं)का मधुर वाचन भक्तिगद्गद कण्ठसे शुद्ध उच्चारणके साथ होना चाहिये। संस्कृतके श्लोकोंका अपना प्रभाव और माधुर्य होता है, जब कि उनका सही, स्पष्ट और लयात्मक उच्चारण किया जाय। इसके बाद वहाँ उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति ऐसी धारणा करे कि उसके ऐसे सभी दिवंगत सम्बन्धी वहाँ उपस्थित हो गये हैं, जिन्हें ईश्वरपर आस्था रही है और जिनका पार्थिव जीवन पवित्र रहा है। अन्य संत-महात्मागण तथा देव-देवियाँ भी जैसे उन्हें आशीर्वाद देनेके लिये तथा संकीर्तनका आनन्द लेनेके लिये वहाँ उपस्थित हो गये हैं—ऐसे दृढ़ विश्वासको मनमें जमा लेना चाहिये। इसके बाद संकीर्तनका आरम्भ करना चाहिये।

संकीर्तन अत्यन्त भाव-विह्वल होकर और मधुरतम स्वरमें ऐसा सोचकर करना चाहिये कि कहीं ध्वनिकी सामान्यतम कर्कशतासे ठाकुरजीके कानोंको कष्ट न हो जाय। संकीर्तनके समय अपनी 'अस्मिता' को पूरी तरह गला देनेका प्रयास करना चाहिये। अतः आँखोंसे बहते हुए आँसूको रोकनेकी आवश्यकता नहीं है, किंतु चेतन अवस्थाके रहते वह पवित्र धारा दूसरे न देख लें, इसकी थोड़ी व्यवस्था कर सकें तो उत्तम है। भक्तिके कारण यदि अनायास स्वर-भंग हो जाय तो उसे कर्कशता न समझें। भगवान्‌के लिये ऐसी ध्वनि तो मुरलीकी ध्वनिसे भी अधिक मीठी होती है, यदि वह बनावटी न हो।

इस तरह एक घंटेका संकीर्तन पर्याप्त है। ऐसे संकीर्तनमें अलौकिक रसकी प्राप्ति सम्भव है। संकीर्तनके बाद सभीको प्रेमपूर्वक प्रसाद वितरण करें और कुछ देर चाहें तो केवल भगवच्चर्चा भी करें और फिर सबको कृतज्ञतापूर्वक विदा करें। ऐसा करनेसे संकीर्तनका पूर्ण फल उपलब्ध होता है।
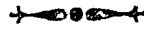
भगवान्‌का भजन

(लेखक—पं० श्रीलक्ष्मणप्रसादजी शास्त्री)

सुसङ्ग अथवा सुसंस्कारसे प्रेरित होकर हमने भजन करनेका नियम बनाया। अपने निश्चित समयपर भजन आरम्भ और समाप्त होता रहा। हम संतुष्ट थे कि नित्य नियमसे भजन चल रहा है। भजन न करनेवालोंको प्रायः अपने-जैसा भजन करनेका उपदेश भी देते थे। बहुत समय बीतनेपर ज्ञात हुआ कि जो कुछ भी हम नाम-जप करते हैं या भक्तोंके रचे हुए गीतोंको गाते हैं, यही भजन नहीं है; यह एक शुभ कर्ममात्र है। इससे पवित्र भावनाकी जागृति होती है, सद्भावसे सम्बन्ध जुड़ता है। जप करते हुए, गीत गाते हुए भी यदि भगवान्‌के ऐश्वर्य, सौन्दर्य और माधुर्यका मनन-चिन्तन नहीं चलता तो भगवदाकार वृत्ति नहीं बन पाती। जपकी संख्या पूरी होनेपर अहंकारको संतोष अवश्य हो जाता है और भगवत्सम्बन्धी गीत-गानसे यदि श्रोता प्रसन्न हो गये तो मानका रस मिलता रहता है; परंतु ऐसे भजनसे वर्षों बीत जानेपर भी भगवान् नहीं मिलते। भले ही धन तथा भोग एवं सम्मानकी प्राप्ति होती रहे। नाम-जप, कीर्तन अथवा भगवद्गुणगानके फलरूपमें अनेक मङ्गल अवसर सामने आते हैं और उन्हींके द्वारा हम जान सके हैं। कि भगवद्भजनका स्वरूप क्या है।

सच्चा भजन वह है, जिसका आरम्भ होनेके पश्चात् अन्त ही नहीं होता। जीवनके समस्त कर्म, समग्र भाव, समस्त सद्विचार और हृदयकी प्रीति-प्रभृति वृत्तियाँ—सब कुछ भजनकी पूर्णताके साधन बन जाते हैं। परम गुरु भगवान्‌का निर्णय है—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद् भजति मां सर्वभावेन भारत॥

'अर्जुन! इस प्रकार जो ज्ञानी पुरुष तत्त्वसे मुझको पुरुषोत्तम जान लेता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझे—वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।' भगवान्‌के इस निर्णयके अनुसार जबतक साधक पुण्य-कर्मोंके द्वारा पापोंको नष्ट नहीं कर लेते, तबतक उनकी बुद्धि सुख-दुःख, लाभ-हानि, मानापमान, संयोग-वियोगादि द्वन्द्वोंके मोहमें फँसी रहती है और भजनमें उनकी दृढ़ता नहीं हो पाती। भजनके कुछ अंशमात्रसे वे अहंकारको

संतुष्ट करते रहते है। भजनका ज्ञान तो हो नहीं पाता, पर अभिमान अवश्य बढ़ जाता है। इस प्रकारके भजनाभिमानी अनेक साधक कभी-कभी दुःखी एवं अशान्त होकर प्रश्न करते हैं कि 'भजन करते वर्षों बीत गये, न तो शान्ति मिलती है, न भगवत्कृपाका ही अनुभव होता है।' अतः साधकोंको सावधान होकर प्रथम विवेकपूर्वक तन, मन, धन और अधिकारसे धर्मका आचरण करना चाहिये और धर्मयुक्त प्रवृत्तिसे ही लोभ, मोह और अभिमान आदि दोषोंकी निवृत्ति अथवा विरति करनी चाहिये। जप भी एक यज्ञ है। जपसे सिद्धि मिलती है; परंतु यह समझ लेना आवश्यक है कि जपमात्र ही भजन नहीं है, सर्वभावसे भगवान्‌की सेवामें प्रवृत्ति ही भजन है। भजन वही है, जिससे वृत्ति भगवदाकार बन जाय। पर जबतक साधक परमेश्वरसे अपने-आपको पृथक् मानता है, भेद-दृष्टि रखता है, तबतक उनका सर्वतोभावेन भजन नहीं कर सकता। भजन-कीर्तनमें तन्मयता ही मूल्यवती होती है। भगवान्‌ने **'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु'** कहकर साधकको इसी दिशामें प्रवृत्त किया है। सच्चे साधक भीतरी जप-कीर्तनकी महिमा नहीं भूलते। वे भीषण तपपूर्वक ज्ञानार्जनसे आन्तरिक स्तरपर आ जाते हैं। यहीं उनके भजन-भावकी सिद्धि होती है।

संकीर्तन और सनातन-धर्म

(दण्डी स्वामी श्रीमाधवाश्रमजी महाराज, स्वामी 'शुकदेवजी')

सनातन-धर्म अनादि एवं अपौरुषेय वेदों और शास्त्रोंद्वारा अनुमोदित है। यह विश्वके प्राणिमात्रके ऐहिक और आमुष्मिक अभ्युदय तथा निःश्रेयसके लिये अपने-अपने अधिकारानुसार एकमात्र साधन है। भगवान्‌की अचिन्त्य एवं अप्रमेय लीलाओं तथा उनके मङ्गलकारी नामोंके गायन, उनके पादारविन्दके दर्शन तथा उनके लीलाधामके दर्शन एवं अटन-भ्रमण करनेसे तन्मयता प्राप्त होती है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः॥

श्रीमन्नारायणके परम कल्याणकारी नामोंका श्रवण-मनन-निदिध्यासन मानवके जन्म-जन्मान्तर एवं युग-युगान्तरके अनन्तानन्त, अभद्र, अकल्याणका समूलोन्मूलन कर भगवत्प्राप्तिकी योग्यता सम्पादन कराता है। इसीलिये परमानन्दको प्राप्त योगीन्द्र-मुनीन्द्र अमलात्मा, पूर्णकाम, परम निष्काम होते हुए भी भगवान्‌के मङ्गलमय नामोंका कीर्तन करते हैं। प्रभुके नामोंका महत्त्व सभी मानव किसी-न-किसी रूपमें स्वीकार करते आये हैं। गोस्वामीजीने भी कहा है—

राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं॥

प्रभुका नाम लेकर जो जमुहाई भी लेता है, उसके पाप-पुञ्ज दग्ध हो जाते हैं। पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि भगवान्‌का नाम भी लेते रहो और भरपूर पाप एवं पर-पीड़न भी करते रहो। प्रयत्नपूर्वक अपना आचरण शुद्ध रखते हुए, स्ववर्ण-आश्रमके समस्त शास्त्रीय नियमोंका पालन करते हुए अमङ्गलहारी भगवन्नाम सार्थक होता है। इसीलिये शास्त्रकारोंका डिण्डिम घोष है—

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लङ्घ्य वर्तते।
आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥
(वाधूल-स्मृ०)

भगवान् कहते है—'श्रुति और स्मृति हमारी आज्ञा हैं, जो इनका उल्लङ्घन करता है, वह मेरी आज्ञाका उच्छेदक और द्रोही है। वह मेरा भक्त होते हुए भी वैष्णव नहीं है।'

श्रीमद्भगवद्गीता तो 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' आदि वचनोंद्वारा भगवद्भक्तोंके लिये स्वधर्म-निष्ठाकी आवश्यकता बतलाती है। आजकलके भक्तोंके मतमें संध्या, गायत्री, बलि-वैश्वदेव, श्राद्ध-तर्पणकी आवश्यकता ही नहीं है और पूजा-पाठ आदिके स्थानमें नाम-कीर्तन-की ही नियुक्ति उचित समझी जाती है। यद्यपि भगवन्नाम सर्वोत्कृष्ट एवं परम माननीय है, तथापि यज्ञ, तप, दान आदि सभी कार्योंमें उसीका उपयोग करना उचित नहीं है; क्योंकि इसमें भी देश-कालकी अपेक्षा होती है। जैसे—'राम नाम सत्य है' यह बात सोलह आने ठीक है, किंतु यदि किसीके पुत्रोत्सव या विवाहोत्सवमें उक्त वाक्यका उच्चारण करें तो अशुभ समझा जाता है, वैसे ही भिन्न-भिन्न कार्योंमें वेदबोधित भिन्न-भिन्न विधियाँ ही उचित हैं।

संकीर्तनकी एक विधि है। प्रचलित संकीर्तन, जिसमें प्रणव तथा अन्य जाप्य मन्त्रोंका गान होता है, सर्वथा निषिद्ध है। जैसे—

राकारो बिन्दुना युक्तश्चैकवर्णात्मको मनुः।
अयं सदा जपनीयः कीर्तनीयो न वै कदा॥
मन्त्रशास्त्रेषु ये मन्त्रास्ते जप्या एव मानवैः।

संकीर्तनवाले गीत दूसरे हैं, यथा—

राजीवलोचन मेघश्याम। सीतारञ्जन राजाराम॥
दशरथनन्दन मेघश्याम। रविकुलमण्डन राजाराम॥
इमे मन्त्राः कीर्तनार्थे ज्ञातव्या मानवोत्तमैः॥
(आनन्दरामायण)

स्मरण रहे, गीतामें स्वधर्म-पदसे तत्तद्वर्णाश्रमियोंके असाधारण कृत्य ही कहे गये हैं। भगवन्नाम-संकीर्तन स्वधर्म नहीं अर्थात् असाधारण नहीं है; क्योंकि वह तो सभी वर्णियों तथा आश्रमियोंका कर्तव्य है। इससे भगवन्नाम-संकीर्तनकी न्यूनता समझ लेना नितान्त अनभिज्ञता है। किंबहुना स्वधर्म-साध्य भगवत्तत्त्व-ज्ञान भी सर्वजनसाधारणकी अभिलाषा तथा अधिकारका विषय होनेसे साधारण ही धर्म है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी 'निज निज धरम निरत श्रुति नीती' पूर्वक कीर्तनका उल्लेख करते हैं।

कलियुगमें मोक्षका सर्वोत्तम उपाय—नाम-संकीर्तन

(लेखक—डॉ० श्रीमहानामव्रतजी ब्रह्मचारी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

मानव-जीवन आधिभौतिक, आधिदैविक और दैहिक दुःखोंसे व्याप्त रहता है। यद्यपि जीवकी यही कामना रहती है कि उसे दुःख कभी न हो, सदा सुख ही मिलता रहे, उसकी सब प्रकारकी चेष्टाओंका मूल कारण भी यही है, तथापि मानवके विचार, विद्या-बुद्धि और वैज्ञानिक आविष्कार आदिमें चाहे जितनी उन्नति हुई हो, पर व्यक्तिगत या समष्टिगत रूपमें इस उद्देश्यकी प्राप्ति अभी नहीं हो रही है। दुःख दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। सभी जानना चाहते हैं कि दुःखसे मुक्ति और शान्तिकी प्राप्ति कैसे होगी? भारतीय शास्त्र ही इस विषयमें मार्ग-दर्शन करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता कहती है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥
(६।२२)

जिस भगवद्ध्यान-योगको प्राप्त कर लेनेपर सब कुछ प्राप्त हो जाता है और कोई अभाव नहीं रहता तथा भारी-से-भारी दुःख भी उसे रंचमात्र विचलित नहीं कर पाता, वह जीवके जीवनकी चरम सार्थकता श्रीभगवान्‌की सांनिध्य-प्राप्तिमें ही है; क्योंकि वह केवल महान् ही नहीं है, उसे जानकर एवं उसे पाकर जीव भी बड़ा हो जाता है—'बृहत्वाद् बृंहणत्वाद् ब्रह्म'। ब्रह्म शान्तिमय है। उसे जो पाता है, वह भी नैष्ठिकी शान्ति प्राप्त करता है। ब्रह्म अमृतमय

है। उसे प्राप्त करनेपर जीवकी मरणशीलता छूट जाती है, वह अमृत हो जाता है। भगवत्प्राप्तिमें सभी श्रेय निहित हैं। पर इस समय वे किस मार्गके आश्रयसे प्राप्त होंगे, यह विचार्य है। शास्त्र कहते हैं कि 'सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञके द्वारा यजन और द्वापरमें परिचर्याके द्वारा जो परम वस्तु प्राप्त होती है, वह कलियुगमें केवल हरिनाम-संकीर्तनसे प्राप्त हो जाती है'—

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥
(श्रीमद्भा० १२। ३। ५२)

कलियुगमें बहुत-से दोष होनेपर भी यह एक महान् गुण है कि इसमें श्रीहरिनामका बहुत प्रचार होता है। नाम ही युगधर्म है। नामी श्रीहरि स्वयं अवतीर्ण होकर नाम प्रदान करते हैं, अतएव यह युग धन्य है—

धन्य धन्य कलियुग सर्वयुग सार।
हरिनाम संकीर्तन जाहाते प्रचार॥

कलियुगके जीवोंके प्रति परम करुणाके वश होकर महावदान्यशिरोमणि श्रीगौरसुन्दरने नाम-प्रेममय इस अभिनव उपायको करके जगत्के जीवको धन्य कर दिया है। वर्तमान श्रीगौरहरि संकीर्तनके जनक थे। नाम-दान करने-हेतु उनका आविर्भाव हुआ और आर्यलीलामें उन्होंने महाभाव-दशामें गम्भीराके निभृत प्रकोष्ठमें नाममाहात्म्य-सूचक शिक्षाष्टकके अपूर्व श्लोकोंका आस्वादन किया। श्री-श्रीचैतन्यचरितामृत-ग्रन्थमें बहुत-सा अमृत वितरण करनेके पश्चात् अन्तिम अध्यायमें मानो सर्वातिशय माधुर्य प्रदान किया गया है। इससे दुःखी कलिग्रस्त जीवको एक रसमय और आनन्दमय भगवत्प्राप्तिका मार्ग प्राप्त हुआ। वह मार्ग नाम-प्रेममय है। फिर भी ये श्लोक जीवको शिक्षा देनेके उद्देश्यसे महाप्रभुके श्रीमुखसे उच्चरित नहीं हुए, प्रत्युत उनके महाभावदशाजनित आस्वादनकी विभोरावस्थामें स्वतः स्फुरित हुए हैं।

काहाँ कृष्ण, कहाँ जाई। कोथा गेले कृष्ण पाई॥

श्रीजगन्नाथक्षेत्र श्रीमहाप्रभुके इस महान् क्रन्दन और हाहाकारसे व्याप्त है। इस गौर-विरह-विषाद-सिन्धुसे अकस्मात् हर्षरूप संचारी भावका उदय हुआ। कृष्ण-वियुक्त अभिनव कृष्ण श्रीगौरसुन्दरके मनःप्राण आनन्दसे उद्वेलित हैं। कृष्ण-विरहके गम्भीर दुःखमें अचानक इतना आनन्द कैसे हो गया? क्या उनको श्रीकृष्ण मिल गये हैं?— नहीं, ऐसा तो नहीं है। केवल श्रीकृष्णकी प्राप्तिका एक मार्ग उनके देखनेमें आया है। इसीसे इतना आनन्द है महाप्रभुको। राधाभावमय श्रीकृष्णविरही प्रभुके पास मानो कोई उपाय नहीं था। श्रीमद्भागवतके एक श्लोकमें उनको उपाय दीख पड़ा—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥
(११। ५। ३२)

संकीर्तन-यज्ञ श्रेष्ठ उपाय है। महाप्रभु सोच रहे हैं कि श्रीमद्भागवत जब कह रहा है, तब फिर कोई संदेह नहीं। निश्चय ही श्रीकृष्ण मिलेंगे। इसीसे आनन्दित होकर वे कह रहे हैं—

संकीर्तन यज्ञे करे कृष्ण आराधन।
सेइ तो सुमेधा पाय कृष्णेर चरण॥

जीव तो अनादिकालसे बहिर्मुख है। उसे श्रीकृष्ण-की स्मृति नहीं है। श्रीकृष्णका दास जीव श्रीकृष्णको खोकर स्वरूपभ्रष्ट है। श्रीकृष्ण ही परम सम्पद् हैं। श्रीकृष्णविहीन जीवन व्यर्थ और अधन्य है—यह बोध भी इसे नहीं है। मायाने इसे अज्ञानान्धकारमें डालकर दुःख-सागरमें डुबा रखा है। कृष्णोन्मुख होनेपर ही इसका दुःखसे उद्धार हो सकता है; परंतु जो अनादिकालसे बहिर्मुख है, उसके लिये क्या उपाय है? इसे कृष्णविरहित होनेकी वेदना नहीं है। इसी कारण श्रीकृष्ण-प्राप्तिकी आशा भी नहीं है। इसके जीवनमें विषयोंके लिये, भोगोंकी प्राप्तिके लिये क्रन्दन है, श्रीकृष्णके लिये क्रन्दन नहीं है। वह होता तो

श्रीकृष्णके लिये वेदनाजनित महासौभाग्यका उदय होता। विरह-रसके अवतार महाप्रभुकी कृपासे जीवन धन्य हो जाता। विषय-वैराग्य और कृष्णप्रेम प्राप्त होता तथा विषय-विस्मृति जाग्रत् होती। यह प्रेम ही परम प्रयोजन है। अनादिकालसे बहिर्मुख जीवके लिये उपाय क्या है? किस प्रकार इस प्रयोजनकी सिद्धि होगी? इसके लिये स्वयं श्रीहरिने ही भुवनमङ्गल श्रीहरिनामका दान किया है, तब चिन्ता क्या है? नामका आश्रय लेनेसे ही प्रेम-चिन्तामणिकी प्राप्ति होगी। श्रीहरिदासठाकुरने स्वयं कहा है—

> नाम फले कृष्णपदे प्रेम उपजय।
> नाम-फलसे उपजता कृष्ण-चरणमें प्रेम॥
> कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।
> नामाश्रयके सिवा इस युगमें और कोई धर्म नहीं है।
> केह बले नाम हइते हय संसारेर क्षय।
> केह बले नाम हइते जीवेर मोक्ष हय॥

नामके फलस्वरूप पार्थिव अभाव-अभियोग तथा सांसारिक दुःख दूर होना अथवा मोक्षका प्राप्त करना कोई बड़ी बात नहीं है। ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये भी दुर्लभ शुद्ध व्रज-प्रेमतककी प्राप्ति नामसे हो जाती है। तीर्थमें वास, लक्ष-लक्ष गोदान अथवा कोटि जन्मके सुकृत—कुछ भी श्रीगोविन्दनामके तुल्य नहीं है। नामकी सामर्थ्य असीम है, अचिन्तनीय है। केवल नामाभाससे ही जन्म-जन्मान्तरके सारे पाप भस्मीभूत हो जाते हैं और मोक्षकी प्राप्ति होती है। जब नामाभासका यह फल है, तब नामकी महिमा वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? श्रीरामभक्त तुलसीदासजीने कहा है—'राम न सकहिं नाम गुन गाई।' अर्थात् राम-नामकी महिमा स्वयं श्रीराम भी नहीं कह सकते, फिर औरोंकी तो बात ही क्या?

नामकी महिमा देखिये—भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका अभी अवतार नहीं हुआ था। राजा दशरथने एक दिन भूलसे शब्दवेधी बाणके द्वारा मृग समझकर सिन्धु मुनिका वध कर डाला। अन्ध मुनि और उनकी पत्नीने पुत्र-शोकसे राजाके सामने ही प्राण त्याग दिये। तीन निरपराधी ईश्वरानुरागियोंके प्राण-नाशका कारण होनेसे राजा दशरथने अपनेको महान् अपराधी माना। उनके मनमें असह्य वेदना होने लगी। किसी भी प्रकार उन्हें शान्ति न मिल सकी। अब उनकी मानसिक दशा ऐसी न रही कि वे राजधानी लौट आते। उन्होंने सोचा कि प्रायश्चित्त करनेपर चित्तमें शान्ति आ सकती है। इस उद्देश्यसे वे गुरु वसिष्ठके आश्रममें गये। वसिष्ठजी आश्रममें न थे। उनके पुत्र वामदेवने राजा दशरथसे आनेका कारण पूछा। राजाके मुखसे सारा वृत्तान्त सुननेके बाद वे बोले—'मैं प्रायश्चित्त करा देता हूँ, आप स्नान करके आइये।' राजाके आनेपर वामदेवने कहा—'आप तीन बार राम-नाम उच्चारण करें।' राजा दशरथने वैसा ही किया। नामके प्रभावसे उनके सारे पाप दूर हो गये। उनके प्राणोंको शान्ति मिली। राजा दशरथ राजधानी लौट गये। वसिष्ठजी जब आश्रममें आये, तब उनके पुत्रने राजाके आगमन तथा उनके प्रायश्चित्तका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। पुत्रके द्वारा तीन बार राम-नामका विधान सुनकर वसिष्ठजी आश्चर्यचकित और क्रोधान्वित हो उठे। एक बारके स्थानमें तीन बार क्यों? राम-नाममें अविश्वास? एक बार 'रा' वर्णका उच्चारण करते ही सारे पाप चले जाते हैं और 'म' वर्णके बोलते ही मुख बंद हो जानेपर फिर पाप लौटकर नहीं आते—

> तुलसी 'रा' के कहत ही निकसत पाप-पहार।
> फिर आवन पावत नहीं देत 'म', क्वार किवार॥

—इस प्रकारके नाममें अविश्वास चाण्डाल ही कर सकता है। नामके प्रति मर्यादाका उल्लङ्घन करनेपर वसिष्ठजी पुत्रसे क्रुद्ध होकर बोले—'तुम मेरी संतान होने योग्य नहीं हो। तुम चाण्डाल हो, मैं तुम्हारा मुख भी नहीं देखना चाहता, दूर हो जाओ।'

अपराधी पुत्र पिताके चरणोंमें शरणापन्न हुआ। मुनिने पुत्रको क्षमा कर दिया; परंतु कहा कि 'मेरा वचन अन्यथा नहीं हो सकता। तुम्हें जन्मान्तरमें चाण्डाल होना ही पड़ेगा। वह शाप भी वर हो गया। जिस राम-नामका इतना माहात्म्य सुना, वे ही परब्रह्म शीघ्र नरलीला करने आयेंगे। चाण्डाल-देहमें भी तुम उनकी अपार कृपा प्राप्त करोगे। केवल उनकी कृपा ही नहीं, श्रीरामचन्द्रजीकी मित्रता और उनका आलिङ्गन प्राप्तकर तुम धन्य हो जाओगे।' इसके बाद वामदेवने प्राण-विसर्जन कर गुह चाण्डालके रूपमें जन्म लिया। उनके पिताकी वाणी सफल हुई।

नामकी शक्तिका वर्णन वाणीद्वारा नहीं हो सकता। प्रभु जगद्बन्धुने ठीक ही कहा है—'नाम-माहात्म्य लेखनीसे लिखना सम्भव नहीं, इसे गुरुमुखसे सुनना चाहिये। मनुष्य अपने पापके कारण, दुर्भाग्यके कारण नाम-माहात्म्य सुनकर भी उसमें विश्वास नहीं कर पाता; इस नामापराधके कारण नाम लेनेपर भी नामकी कृपा नहीं होती; होती भी है तो देरसे। नहीं तो नामका इतना माहात्म्य है कि इसपर सहज ही विश्वास किया जा सकता है।' चैतन्य-चरितमें कहा गया है—

एक बार कृष्ण नामे जत पाप हरे।
जीवेर साध्य नाइ तत पाप करे॥
एक बारका 'कृष्ण' नाम ही हर लेता है जितने पाप।
नहीं जीवकी शक्ति, कर सके वह जीवनमें उतने पाप॥

प्रभु जगद्बन्धुसुन्दरने और भी कहा है कि 'यह स्वकीय और परकीय उद्धारका साधन बनता है अर्थात् जो नाम-कीर्तन करते हैं, केवल उनका ही मङ्गल नहीं होता, अपितु जहाँतक नाम-कीर्तनकी ध्वनि जाती है वहाँ-तक वह लोगोंका उद्धार करती है।' इसके अतिरिक्त यह विशेषता है कि नाम-ग्रहणके सभी अधिकारी हैं। ऐसे भुवन-मङ्गल नामके रहते लोग व्यर्थ ही अपने कल्याणके लिये इधर-उधर भटकते फिरते हैं। हमारा कैसा दुर्भाग्य है।

अब देखना है कि नाममें इतनी शक्ति आयी कहाँसे? श्रीभगवान् जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये युग-युगमें अवतार लेते हैं। अपने परिकरोंके साथ आते हैं और कार्य हो जानेपर अपने गणोंके साथ नित्यधामको लौट जाते हैं। दुःखी जीवोंके लिये वे छोड़ जाते हैं अपना अभय और अमृतप्रद नाम-चिन्तामणि। केवल यही नहीं, नामके भीतर वे अपनी भारी शक्तिका भी आधान कर जाते हैं—

'सब शक्ति दिला नामे करिया विभाग।'

नामकी निजी शक्ति तो थी ही, प्रभुकी शक्तिको पाकर नाम नामीकी अपेक्षा भी महीयान् बन जाता है। श्रीरामचन्द्रने एक पाषाणमयी अहल्याका उद्धार किया था; पर नाम युग-युगमें शत-शत अहल्याओंका उद्धार करता है। अब इतनी अहल्या हैं कहाँ? तो सुनिये—'हल्या'का अर्थ है कृषियोग्य, अहल्याका अर्थ है कृषिके अयोग्य अर्थात् पाषाण। जड सभ्यताके आनेपर जीव-हृदय पाषाण हो जाता है। साधन-भजनका कर्षण उस अहल्याके समान पाषाण-हृदयमें चलता नहीं। श्रीरामचन्द्र तो प्रकट हैं नहीं, जो उनका उद्धार करते। परंतु राम-नाम तो है ही। नामके आश्रयसे शत-शत घोर बहिर्मुख पाषाणहृदय निश्चय ही द्रवित हो जाते हैं। नामी उद्धारलीला करके चले गये हैं, नाम इस समय महान् उद्धारलीला प्रकट करके शत-शत जीवोंका उद्धार कर रहा है। हरिनामके मूर्तविग्रह श्रीश्रीप्रभु जगद्बन्धुसुन्दरकी यह महान् वाणी सार्थक है—

'हरि शब्द उच्चारण हरि पुरुष उदय।'

श्रीरामचन्द्रजीका सर्वश्रेष्ठ कार्य था समुद्रको बाँधकर लङ्का जाना और रावणका वध करके सीताजीका उद्धार करना। महान् वानरसेनाकी सहायतासे श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रको बाँधा और सीताजीका उद्धार किया। यह काम अन्य कौन करेगा? हम सबके सामने दुस्तर भवसागर है। इसके सिवा दुर्दैवरूपी रावणने हमारी

भक्तिरूपी सीताका अपहरण कर लिया है। श्रीराम प्रकट नहीं हैं, परंतु राम-नाम है। सागर-बन्धनके समय नामीको अन्योंकी सहायताकी आवश्यकता पड़ी, परंतु नामको किसीकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है। राम-नाम लेकर श्रीहनुमान्‌जीने अनायास ही समुद्रको पार कर लिया था। नामका आश्रय लेकर विषय-संकुल दुःखमय भवसागरको कितने ही लोग पार करते जा रहे हैं। नामकी इतनी सामर्थ्य है कि वे हमारे दुर्दैवरूपी रावणको अनायास ही मारकर भक्तिरूपी सीतादेवीका उद्धार कर देंगे। श्रीश्रीमहाप्रभुने कहा है—

एक कृष्ण नामे करे सर्वपाप नाश।
प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश॥

नाममें सर्वशक्ति प्रदान करके ही—भगवान्‌की करुणाशक्ति शान्त न हुई। उसने मनुष्यकी प्रकृतिकी पृथक्ता देखकर अनेक नामोंको प्रकट किया। फलतः जिसकी जिस नाममें रुचि हो, वह उसी नामके आश्रयसे परमपद प्राप्त कर सकता है—

अनेक लोकेर वाञ्छा अनेक प्रकार।
कृपा ते करिल अनेक नामेर प्रचार॥
(महाप्रभु)

फिर नाम-ग्रहण करनेके विषयमें स्थान और कालका भी कोई विधि-निषेध नहीं रखा। जिस-किसी अवस्थामें, जिस-किसी समयमें नाम लेनेवालेपर नामकी कृपा हो सकती है—

खाइते शुइते जथा तथा नाम लय।
देश काल नियम नाइ सर्व सिद्धि हय॥
खावत सोवत जहाँ तहाँ, लेय जो हरिको नाम।
देस-कालके नियम बिनु सिद्ध होय सब काम॥

ऐसी असीम करुणाशक्ति नाममें छिपी हुई है। स्वरूपतः नाम और नामी अभिन्न ही नहीं हैं, अपितु नामीके लिये निज नाम परम प्रिय भी होता है। इसी कारण नामकी कृपा होनेपर क्षणमात्रमें अनादि बहिर्मुख जीवके जन्म-जन्मान्तरकी विषयवासना तिरोहित हो जाती है। व्रजलीलामें भगवान् महान् बहिर्मुख भोगसर्वस्व कालियनागकी शत कामनाके प्रतीक जो शत फण थे, उनके ऊपर अपने चरणोंको अङ्कित करके यमुनाको विषमुक्त और निज लीलाके लिये उपयोगी बनाते हैं। अनन्त वासनाएँ जीवकी अशान्ति और दुःखके कारण हैं। हृदयरूपी यमुनाको भोगवासनारूपी विषसे मुक्त करके श्रीराधाकृष्णकी लीलाका क्षेत्र कौन बनायेगा? श्रीकृष्ण तो अन्तर्धान हो गये हैं, परंतु चिन्ता क्या है? अभिन्न कृष्ण-नाम तो है ही—

जेइ नाम सेइ कृष्ण, भज निष्ठा करि।
नामेर सहित आछेन आपनि श्रीहरि॥
'कृष्ण' नाम स्वयं कृष्ण ही हैं भजो सहित निष्ठा अविराम।
सदा नामके सहित विराजित रहते हैं हरि स्वयं ललाम॥

महाप्रभुने कहा है कि श्रीकृष्ण-कीर्तन ही भोग-वासना-जनित मलिन चित्तका मार्जन (**चेतोदर्पण-मार्जनम्**) तथा सर्वग्रासी संसारकी दुःख-यन्त्रणाका निवारक '**भवमहादावाग्निनिर्वापणम्**' है। नामका आश्रय लेनेपर ही जीवन सब प्रकारसे मङ्गलकी खानि बन जाता है। अतएव ऐसा लगता है कि वर्तमान कालके दुःख-दुर्दशापूर्ण और समस्या-बहुल युग-संकटके समय नाम-संकीर्तन ही सर्वोत्तम उपाय है। समस्त जीव निरन्तर नामरूपी अमृत-पान करके धन्य और कृतार्थ हो जायँ।

इस युगकी रामबाण औषध

(श्री १०८ दण्डी स्वामी श्रीविपिनचन्द्रानन्दजी सरस्वती महाराज, 'जजस्वामी')

भगवान् श्रीकृष्ण जब भूतलसे अन्तर्हित हुए तभीसे कलियुगका प्रवेश हुआ और शनैः-शनैः सर्वत्र व्याप्त हो गया। फलतः प्रजा अत्यन्त कलहप्रिय, अल्पायु, अशुचि, असत्य-रत, लोभी, स्वार्थी, एक-दूसरेको कष्ट देनेवाली, कायिक, वाचिक और मानसिक दुःखोंसे सर्वदा पीड़ित हो गयी। हमारा अनुभव यह है कि हम सुखकी प्राप्तिके उद्देश्यसे बाल्यकालसे वृद्धावस्थापर्यन्त निरन्तर सभी प्रकार श्रम करते तथा अपने बुद्धिचातुर्य और बलका अथक प्रयोग करते, धर्म-अधर्म, ईमानदारी-बेईमानी, क्रूरता, खुशामद, हिंसा-अहिंसा और सत्य-असत्य—इन सबका निःसंकोच प्रयोग भी करते हैं, फिर भी सुख हाथ नहीं आता। इसका कारण यह है कि हमने धर्मका मार्ग छोड़ दिया है तथा सुखके मूल स्रोत सच्चिदानन्द परमात्मासे अपना सहज सम्बन्ध बिसार दिया है और अनात्म एवं अनित्य पदार्थोंमें अपना मन रमा लिया है। ऐसी दशामें क्या उपाय है? शास्त्रोंकी आज्ञा है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥

(विष्णुपुराण ६। २। १७)

'सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञसे, द्वापरमें अर्चनसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल कलियुगमें केशव-कीर्तन करके प्राप्त हो जाता है।' भगवती देवीके वचन हैं—

रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम।

(मार्कण्डेयपुराण)

'मेरे प्रादुर्भावोंका कीर्तन समस्त भूतोंसे रक्षा करता है।'

मत्कथाश्रवणे पाठे व्याख्याने सर्वदा रतिः।
मत्पूजापरिनिष्ठा च मम नामानुकीर्तनम्॥

(अध्यात्मरामायण ३। ४। ४९)

'मेरा भक्त मेरी कथाके सुनने, पढ़ने और व्याख्यानमें सदा प्रेम रखता है और मेरी पूजामें निष्ठा तथा मेरे नामका कीर्तन करता है।'

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥

(श्रीमद्भा० १२। ३। ५१)

'राजन्! यद्यपि कलियुग दोषोंसे भरा हुआ है; किंतु इसका एक महान् गुण है कि इसमें कृष्णके कीर्तनसे ही मुक्त होकर परमपदकी प्राप्ति हो जाती है।' अतः निष्कर्ष यह है कि शास्त्रानुसार कलिकालके समस्त दोषोंसे बचनेका एकमात्र उपाय भगवन्नाम-संकीर्तन है। कीर्तनकी परिभाषा है—**'देवतानामोच्चारणम्'** तथा संकीर्तनका अर्थ है—**'सम्यक् प्रकारेण उच्चारणम्।'** अर्थात् **'बहुभिर्मिलित्वा तद्गानसुखम्, तत्सुखाय तन्नाम (श्रीकृष्ण-) गानम्'**—बहुत लोगोंका एक जगह मिलकर श्रीकृष्णके सुखके निमित्त उच्चस्वरसे नाम-गान करना। अकेले भी उच्चस्वरसे नाम-गान कीर्तनके अन्तर्गत आता है, किंतु इसका रूढि अर्थ अधिक जनोंका सम्मिलित गान ही है। वैदिक एवं पौराणिक कालमें भगवान्का नाम-जप करना तथा **'विष्णवे नमः, विष्णवे नमः'** कहकर यज्ञ आदि शुभ कर्मोंको पूर्ण करना अथवा स्तोत्र, स्तुति, गान आदि करना प्रचलित थे, किंतु कुछ विद्वानोंके मतानुसार संकीर्तनके वर्तमान रूपके प्रवर्तक आचार्य श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु हैं, जिनकी पञ्चशताब्दि इस वर्ष भारतवर्षमें मनायी जा रही है। उन्होंने सर्वप्रथम श्रीवास पण्डितके प्राङ्गणमें संकीर्तन आरम्भ किया, जिसमें ढोल, मृदङ्ग लेकर, गोल घेरा बनाकर नाचते-नाचते उच्चस्वरसे भक्तजन 'हरिबोल-हरिबोल—

'कृष्णाय नमः, यादवाय नमः, माधवाय नमः' आदि कृष्णनामसे भावविभोर होकर गाते थे। प्रथमतः संकीर्तन द्वार बंद करके एकान्तमें होता था, पुनः काजी-उद्धारके निमित्त समस्त नगरमें विशाल कीर्तन-यात्रा निकाली गयी। फलतः संकीर्तनका सम्यक् प्रचार देशभरमें फैल गया। फिर तो अन्य संतोंने भी समय-समयपर इसके प्रसार-प्रचारमें विशेष सहयोग दिया।

शब्दकी महिमा अपार है। वेदोंमें इसका पर्याप्त वर्णन है, जैसे **'ओमिति ब्रह्म'**—(यजुर्वेद तै० उ० १।८।१) **'ओमित्येदक्षरमिदं सर्वम्,' 'ओंकार एवेदं सर्वम्'**—(सामवेद, छा० उ० २।२३।३) **'ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्'**—(अथर्ववेद, माण्डूक्य) से स्पष्ट है। भगवद्गीताका वचन भी अवलोक्य है— **'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्...याति परमां गतिम्'** (८।१३)। पूर्वमीमांसकोंका कथन है कि शब्द नित्य है तथा इसकी शक्ति अचिन्त्य है। जैसे सुप्त पुरुष श्रवण-इन्द्रियोंके सुप्त रहते हुए अपना नाम उच्चारित होनेपर केवल शब्दकी अचिन्त्य शक्तिद्वारा जाग्रत् होता है, श्रवणसे नहीं। मीमांसकोंका मत है कि देवताओंका शरीर भी विधिवत् उच्चारित मन्त्रोंद्वारा निर्मित होता है तथा शब्द भी प्रत्यक्ष आदिके समान एक प्रबल प्रमाण स्वीकृत किया गया है। आधुनिक विज्ञानोंद्वारा भी सिद्ध हुआ है कि शब्द नित्य है तथा इसकी अचिन्त्य शक्ति अपार है। एक स्थान एवं कालमें बोला हुआ शब्द अन्य देश एवं कालमें श्रुत होता है और इस सिद्धान्तके आधारपर टेलीफोन, वायरलेस, टेलिविजिन आदिका निर्माण भी हुआ है। खिलौने भी ऐसे देखनेमें आते हैं, जो केवल शब्दद्वारा 'गो', 'स्टाप' आदि बोलनेसे आज्ञा-पालन करते हैं। सेनामें भी प्रहार करनेसे पूर्व हुंकार आदि शब्दोंका प्रयोग करनेकी शिक्षा दी जाती है। कहाँतक कहें, नित्य व्यवहारमें देखनेमें आता है कि गालीके शब्द (जिनका अर्थ निरर्थक है) सुनकर अत्यधिक दुःख एवं प्रशंसाके शब्द मात्र सुननेसे अपार हर्ष होता है। अतः सिद्ध होता है कि शब्दोंका हमारे मन एवं जीवनपर प्रबल प्रभाव पड़ता है।

यदि प्राणोंका बल लगाकर एवं बहुव्यक्तियोंद्वारा सम्मिलित रूपसे एक ही शब्द पुनः-पुनः उच्चरित किया जाय तो निश्चय ही उसका प्रभाव बहुत अधिक होगा और यदि साथमें संगीतका योग हो तो पाषाण-हृदयके अतिरिक्त किसी भी व्यक्तिका मन प्रभावित एवं एकाग्र हुए बिना नहीं रह सकता। भगवान्का नाम ब्रह्म है, उनके नाम एवं नामीमें किञ्चित् भी भेद नहीं है, अतः सर्वाधार, सर्वाविष्ठित, सर्वाभासक ब्रह्मकी समस्त स्थिति एवं शक्तिका बोध नामोच्चारणसे हो सकता है। भगवन्नाममें अनन्त शक्ति है, इसमें शास्त्र प्रमाण है—

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

'भगवान् श्रीहरिके नाममें पाप दूर करनेकी जितनी शक्ति है, उतना पाप कोई पापी मनुष्य कर ही नहीं सकता।'

यन्नामकीर्तनं भक्त्या विलायनमनुत्तमम्।
मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः॥

(विष्णुपुराण ६।८।२०)

'मैत्रेय! (उन भगवान्के नामकी महिमा क्या कही जाय) जिनका भक्तिपूर्वक किया हुआ नामसंकीर्तन सम्पूर्ण धातुओंको पिघलानेवाली अग्निके समान समस्त पापोंका सर्वोत्तम विलय कर देनेवाला है।'

कलिकल्मषमत्युग्रं नरकार्तिप्रदं नृणाम्।
प्रयाति विलयं सद्यः सकृद्यस्य च संस्मृतेः॥

'जिनका एक बार भी स्मरण करनेसे मनुष्योंका नरकमें वास देनेवाला अति उग्र कलि-कल्मष (कलियुग-का पाप) तुरंत दूर हो जाता है।'

नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति।

(कलिसंतरणोपनिषद्)

'नारायणके नामोच्चारणमात्रसे कलि शुद्ध हो जाता है अर्थात् पाप नष्ट हो जाते हैं।' फलतः भगवन्नाम-संकीर्तनमें अतुलित शक्ति सिद्ध होती है, जो शक्तिमान् परमेश्वरसे भिन्न नहीं है। पाप-ताप मिटाने तथा परमानन्दकी प्राप्तिके अनेक अन्य साधन शास्त्रोंमें वर्णित हैं, किंतु वे सरलता एवं सफलतापूर्वक साध्य नहीं हैं। सर्वसाधारणको उनमें कठिनाई अनुभूत होती है। अतएव संकीर्तन इस युगके लिये उचित मार्ग है। कलिसंतरणोपनिषद्में स्पष्ट प्रश्न उठाया गया है कि भगवन्नाम लेनेकी विधि क्या है? इसका उत्तर भी वहीं है कि इसकी कोई विधि नहीं है। प्रत्येक प्रकारकी शुचि एवं अशुचि-अवस्थामें इसका उच्चारण एवं साधन इष्ट है।

हमारे दु:खोंका वर्गीकरण कायिक, वाचिक और मानसिक—तीन रूपोंमें होता है। संकीर्तनका साधन करनेमें शरीर तथा प्राणोंका पर्याप्त व्यायाम हो जाता है, जो स्वास्थ्यके लिये लाभदायक है। वाणीका सम्यक् संयम होता है—पवित्र भगवन्नाम एवं गुणके अतिरिक्त किसी अन्य शब्द या अपशब्दका उच्चारण नहीं होता; अपि च संकीर्तनमें ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय—दोनोंका प्रबल संयोग होता है और संगीत-पुटके सहयोगसे मनके एकाग्र होनेमें अलौकिक सहायता प्राप्त होती है। साथ ही वातावरण शुद्ध होता है। अतः इस युगमें दु:ख-निवारणका सर्वोपरि उपाय संकीर्तन है। इसके अधिकारकी प्राप्तिमें किसी वर्णाश्रम, पवित्रता, अपवित्रताके नियमका किञ्चित् भी प्रतिबन्ध नहीं है।

संकीर्तन-साधनमें एक लौकिक लाभ भी है, जिसकी ओर ध्यान आकृष्ट करना उचित होगा। विदेशी एवं पाश्चात्त्य शिक्षामें प्रभावित विद्वानोंका कथन है कि 'भारतीय हिंदुओंका दार्शनिक एवं धार्मिक विचार अतीव उन्नत एवं सूक्ष्म है; किंतु इनका सामाजिक एवं सार्वजनिक जीवन शिथिल है और यही इनकी लौकिक दुर्दशाका हेतु है।' वे विद्वान् उदाहरण देते हैं कि 'हिंदू परस्पर न स्पर्श करते हैं, न भोजन करते हैं और न समाजमें इकट्ठे उठते-बैठते हैं; किंतु अपनी वैयक्तिक साधना एवं स्वार्थ-सिद्धिमें तल्लीन रहते हैं। इसी कारण, जैसा इतिहास प्रमाण है, व्यक्तिगत अतुलित वीरता दिखाकर भी संगठित न होनेके कारण शत्रुओंसे प्रायः पराजित हो जाते हैं।' ऐसे विद्वानोंका तर्क सत्य हो अथवा असत्य या अंशतः सत्य-असत्य, किंतु यह निर्विवाद है कि इस आक्षेपका अवसर ही प्राप्त न हो—यदि समस्त हिंदू किसी मन्दिर अथवा सार्वजनिक स्थानपर नित्य एक निश्चित समयपर एकत्रित हों और प्रेमपूर्वक भगवान्‌के नामोंका सम्मिलित रूपसे गान करें तथा संकीर्तनकी समाप्तिपर अपनी सामाजिक समस्याओंपर विचार-विनिमय करें और सामूहिक रूपसे कार्यवाही करनेका निश्चय करें। भौतिक दृष्टिसे भारतदेशके लिये यह परम लाभ होगा; क्योंकि कहा है—**'संघे शक्तिः कलौ युगे'** एवं वेदकी आज्ञा है कि—**'संगच्छध्वं संवदध्वं'** (ऋग्वेद १०। १९१। २) साथ चलो, साथ बोलो।' अतएव सिद्ध हुआ कि वर्तमान युगमें संकीर्तन करनेसे अनेक लाभ हैं और कल्याणका यही सर्वोपरि एवं सरलतम मार्ग है।

अन्तमें एक विशेष शङ्का उपस्थित होती है, जिसका समाधान किये बिना यह विषय अपूर्ण रहेगा। शङ्का यह है कि आजकल कीर्तन-मण्डलियोंकी तथा कीर्तन-समारोहोंकी धूम-सी मची हुई है, किंतु उनमें भाग लेनेवालोंके चित्त अथवा व्यवहारमें दैवी गुणोंके अर्जनका कोई लक्षण प्रायः प्रतीत नहीं होता। इस शङ्काका पूर्ण समाधान करनेका दायित्व महापुरुषों एवं प्रामाणिक धर्माचार्योंपर है और ऐसा करना उनके लिये

शोभनीय भी है, फिर भी यहाँ इस विषयपर कुछ विचार प्रकट किये जाते हैं ।

भगवन्नाम-कीर्तन-विधानमें आता है कि नामजपका साधन नामापराधको त्यागकर किया जाय । दस नामापराधोंमेंसे दो हैं—गुरु-शास्त्र-निन्दा तथा नामके बलपर पाप करना । इन अपराधोंको करनेवालोंकी संख्या आजकल बहुत अधिक है । भवरोग-निवारणमें भगवन्नाम औषध है एवं नामापराधत्याग पथ्य है । औषध तथा पथ्य दोनोंके योगसे रोग-निवृत्ति शीघ्र होती है । यही व्यवस्था भगवन्नाम-कीर्तनके साधनकी है । यह ठीक है कि भगवन्नाममें इतनी शक्ति है कि समस्त पापोंको भस्म कर दे और यदि वह पुनः पाप न करे तो उसका महान् फल उपलब्ध होगा । शास्त्रोंके अनुसार नामापराधका प्रायश्चित्त भी नामजप ही है, अतः साधक नामका कीर्तन निरन्तर करता रहे । वह जितनी श्रद्धासे नाम-कीर्तन करेगा उतनी शीघ्रतासे श्रेयको प्राप्त करेगा । जिस प्रकार भगवान् रामका बाण कभी लक्ष्य-भेदसे च्युत नहीं होता था, उसी प्रकार श्रद्धासे किया गया नाम-सकीर्तन कभी सफलतासे अलग नहीं हो सकता । हाँ, केवल उसकी अनुभूतिमें सापेक्ष समयकी प्रतीक्षा अवश्य होती है ।

ऊपर नाम-संकीर्तनमें महान् शक्ति तथा उससे अतुलित सफलता-प्राप्तिकी चर्चा आयी है, क्या किसीने कभी ऐसा अनुभव किया है ? इस युगमें संकीर्तनके इतने चमत्कार देखे गये हैं कि उनके वर्णनसे बड़े-बड़े ग्रन्थ भर जायँगे । यहाँ उदाहरणार्थ केवल दो-चार घटनाओंका स्मरणमात्र कराना उपयुक्त होगा । अस्तु ।

श्रीचैतन्य महाप्रभुने जब श्रीवास पण्डितके प्राङ्गणमें संकीर्तन आरम्भ किया, तब इतनी श्रद्धा एवं तल्लीनता थी कि श्रीवासके पुत्रकी मृत्यु हो गयी; परंतु उन्होने उसका शव घरसे बाहर रख दिया और किसीको रोने नहीं दिया, जिससे कीर्तनमें विघ्न न हो । कितना बड़ा धैर्य एवं साहस था श्रीवास पण्डितका ! चैतन्य महाप्रभुने समाचार ज्ञात होनेपर लड़केको जीवित कर दिया; किंतु लड़केने कहा—'मैं अब यहाँ रहना नहीं चाहता ।' दूसरे बंगालके मुसलमान नवाबके नियुक्त धर्माधिकारी काजीने कीर्तन करनेवालोंपर अत्याचार आरम्भ किया; किंतु चैतन्य महाप्रभुके नगर-संकीर्तनके फलस्वरूप काजी अनुकूल होकर उनका भक्त बन गया और कीर्तन करनेकी सबको सुविधा मिल गयी ।

एक दिन प्रसिद्ध संत तुकारामजीके संकीर्तनमें छत्रपति शिवाजी पधारे । उसी समय औरंगजेब बादशाहके सिपाही शिवाजीको पकड़नेके लिये उसी स्थानपर आ गये । शिवाजी भाग निकलना चाहते थे; परंतु संत तुकारामके आग्रहसे वहीं बैठे रहे और कीर्तन होता रहा । फलस्वरूप मुसलमान सिपाही ढूँढ़नेमें असफल होकर चले गये, वहाँ बैठे शिवाजी उनके दृष्टिगोचर नहीं हुए ।

महात्मा गाँधीने १९४७ में नोआखालीमें बीमार हो जानेपर डॉक्टरको बुलाने तथा औषध लेनेका निषेध कर दिया, केवल राम-नाम-उच्चारण करनेका आग्रह किया और स्वस्थ हो गये । वे कहते थे कि 'राम-नाम जब गलेसे उतरकर हृदयमें प्रविष्ट हो जाता है, तब सब प्रकारके रोग एवं शोकसे मुक्ति मिल जाती है ।'

कुछ समय पहले श्रीहरिबाबाजी महाराजने रामेश्वरनामक एक मृतक प्राणीको भगवन्नाम-संकीर्तन सुनाकर पुनः जीवित किया और उन्होंने ही पुनः भगवान्‌का नाम उच्च स्वरसे लेकर अनूपशहरके पास बदायूँ जिलेमें एक बड़े बाँधकी स्थापना की, जिससे गङ्गाजीके बाढ़से प्रतिवर्ष होनेवाली जान एवं मालकी महती हानि रुक गयी । उस स्थानपर अभीतक अखण्ड कीर्तन चलता है । इन्हीं श्रीहरिबाबाजी महाराजका सर्वप्रथम संकीर्तनका चमत्कार वर्षोंमें डॉक्टर प्राञ्जपेयजीके

संकीर्तनमें हुआ। कीर्तनमें बैठे-बैठे बाबाको चैतन्य महाप्रभुके दर्शन हुए; जिन्होंने इन्हें गलेसे लगा लिया और वह आनन्द प्रदान किया कि ये अपने शरीरकी सुधि भूलकर प्रेम-विभोर हो गये। यही इनके जीवनका परम साधन बन गया।

संकीर्तनकी महिमा कहाँतक कही जाय। कलियुगके सर्वदोष एवं दुःखोंसे बचनेके लिये यह रामबाणके समान अमोघ औषध है। भगवान्‌ने आदिपुराणमें नारदजीको अपना रहस्य बतलाते हुए ऐसा कहा है कि हमारे मिलनेका स्थल वैकुण्ठ नहीं है और न योगियोंका हृदय ही है; अपितु जहाँ हमारे भक्त कीर्तन करते हैं, वहींपर हमारा साक्षात्कार हो जाता है—

> नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
> मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

अतएव भक्तोंने अतीव उपयुक्त कहा है कि हमारा जीवन केवल हरिका नाम ही है; कलिमें अन्य कोई गति नहीं है—

> हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।

भगवन्नाम-संकीर्तन-महत्त्व

(लेखक—डॉ० श्रीउमाकान्तजी 'कपिध्वज' एम्० ए०, आचार्य, पी-एच्० डी०)

श्रुति-स्मृति-पुराणादि शास्त्रोंमें भगवन्नाम-कीर्तनको सर्वोपरि पापरोगादिनाशक एवं मोक्षसाधक माना गया है। संसार-सागरसे पार होनेके लिये नाम-संकीर्तनसे बढ़कर कोई भी सरल साधन नहीं है। मङ्गलमय भगवन्नामसे लोक-परलोकके सारे अभावोंकी पूर्ति तथा दुःखोंका नाश हो जाता है। अतएव सांसारिक सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान, भाव-अभाव, सम्पत्ति-विपत्ति—सभी अवस्थाओंमें प्रतिक्षण भगवन्नाम-संकीर्तन करते रहना चाहिये।

व्याख्यान, प्रवचन, स्तवन, स्तोत्र-पाठ, कथा—ये सब कीर्तनके ही विविध रूप हैं। श्रीमद्भागवत-महापुराणमें श्रवणके अनन्तर 'कीर्तन'को रखा गया है[1]। इससे सिद्ध होता है कि शास्त्र-श्रवणका फल पुनः उसका कीर्तन है। कीर्तनके दृढीभूत होनेपर भगवान् विष्णुका स्मरण तथा भक्तिके अन्य अङ्गोंका सम्पादन हो सकता है। अन्य युगोंकी अपेक्षा कलियुगमें नाम-कीर्तनकी विशेष महिमा है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर आदिमें ध्यान, यज्ञ तथा पूजनसे जो फल लोगोंको प्राप्त होता था, वह फल कलियुगमें कीर्तन करनेसे मिल जाता है।[2] कीर्तनके लिये देश, काल तथा कर्ताका नियम नहीं है। अर्थात् सभी कालमें, सभी देशोंमें, सभी लोग कीर्तन कर सकते हैं। इसलिये कलियुगमें भगवान्‌की कीर्तिका कीर्तन करना परम धर्म है[3]। कीर्तनके विषयमें यहाँतक कहा गया है कि अनजानमें अथवा जानकर उत्तमश्लोक भगवान्‌का

१—श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ (७। ५। २३)

२—(क) ध्यानेनेष्टया पूजनेन यत् फलं लभ्यते जनैः। कृतादिषु कलौ तद् वै कीर्तनादाशु लभ्यते॥ (सात्वततन्त्र ५। ४३)

(ख) कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः। द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥ (श्रीमद्भा० १२। ३। ५२)

(ग) कलौ संकीर्त्य केशवम्। (विष्णुपुराण ६। २। २७, नारद० १। ४१। १२)

३—न देशकालकर्तॄणां नियमः कीर्तने स्मृतः। तस्मात् कलौ परो धर्मो हरिकीर्तेः सुकीर्तनम्॥ (सात्वततन्त्र ५। ४४)

कीर्तन करनेवाले पुरुषके पाप तत्काल जलकर वैसे ही भस्म हो जाते हैं, जैसे अग्निसे ईंधन।[४] भगवान्‌के मङ्गलमय बाल-चरित एवं अवतारोंके पराक्रमसूचक अन्य चरित्रोंका कीर्तन करनेवाले महापुरुषको परमहंसगति अर्थात् परमात्मामें पराभक्तिकी प्राप्ति होती है।[५]

कीर्तनकी महिमा प्रदर्शित करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने तो यहाँतक कहा है कि 'मैं वैकुण्ठमें नहीं रहता और न योगियोंके हृदयमें ही मेरा वास है, प्रत्युत मेरे भक्तजन जहाँ मेरा कीर्तन करते हैं, वहीं मैं निवास करता हूँ।[६] प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजीने तभी तो दृढ़तापूर्वक कहा है कि 'भले ही जलके मन्थनसे घृत उत्पन्न हो जाय और बालूके पेरनेसे तेल निकल आये, परंतु भगवद्भजनके बिना संसार-समुद्रसे नहीं तरा जा सकता—यह अटल सिद्धान्त है।'

भगवन्नाम-संकीर्तनका महत्त्व श्रीमद्भागवतके अनेक प्रसङ्गोंमें वर्णित है। भगवान् वेदव्यासजीके यह पूछनेपर कि 'मेरेद्वारा वेदोंका विस्तार, वेदान्त-दर्शन और महाभारत तथा पुराणादिकी रचना किये जानेपर भी मेरा चित्त अकृतार्थकी भाँति क्यों है, मुझमें क्या न्यूनता है, जिससे मुझे शान्ति नहीं मिल रही है', देवर्षि नारदने कहा था कि आपने प्रायः भगवान्‌के यशका कीर्तन नहीं किया। वह ज्ञान, जिससे भगवान् संतुष्ट न हों, न्यून ही है, अर्थात् आपकी अशान्तिका कारण एकमात्र भगवान्‌के गुणानुवादका अभाव ही है;[८] क्योंकि तपका, शास्त्रोंके श्रवणका, यज्ञादि विहित कर्मोंका, सूक्त अर्थात् अच्छी प्रकारकी वाक्यरचनाके ज्ञानका और दानादिका अविच्युत अर्थ (परम फल) कवियोंने यही निरूपित किया है कि उत्तमश्लोक भगवान्‌के गुणोंका कीर्तन किया जाय।[९]

भगवान्‌की लीलाओंका कीर्तन, गुणोंका कीर्तन तथा नाम-कीर्तन—ये कीर्तनके भेद हैं, जिनमें नाम-कीर्तन मुख्य है। भगवन्नाम-कीर्तन केवल साधकोंके लिये ही नहीं, अपितु समाधिप्राप्त शुद्धान्तःकरण निष्काम योगी जनोंके लिये भी परमावश्यक बताया गया है[१०]। सभी प्रकारके पापोंके प्रायश्चित्तके लिये भगवान्‌के दिव्य नामोंका कीर्तन सर्वोपरि है। अजामिलोपाख्यानमें आया है कि यमदूतोंसे भगवान् विष्णुके पार्षदोंने कहा था कि यदि भगवान्‌का नाम-कीर्तन श्रद्धा-भक्तिसे किया जाय तो उसका कहना ही क्या, किंतु अवज्ञादिसे लिया गया नाम भी सब पापोंको हर लेता है[११]। इतना ही नहीं, संकेतसे, हँसीसे, गानके आलापको पूरा करनेके लिये, अवहेलनासे—किसी भी प्रकारसे लिया गया भगवान्‌का नाम सब पापोंको हरनेवाला

४—अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्। संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥
(श्रीमद्भा० ६। २। १८

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः। पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्वृकैरिव॥
(विष्णुपुराण ६। ८। १९)

दुराचाररतो वापि मन्नामभजनात् कपे। सालोक्यमुक्तिमाप्नोति न तु लोकान्तरादिकम्॥
(मुक्तिकोपनिषद् १८। १९)

५—(श्रीमद्भागवत ११। ३१। २८)

६—नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥
(पद्मपु० ७। ९५। २३, आदिपु० १९। ३५)

७—बारि मथें घृत होय बरु सिकता ते बरु तेल। बिनु हरिभजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥

८—श्रीमद्भागवत १। ५। ८, ९—श्रीमद्भागवत १। ५। २२, १०—तदेव २। १। ११, ११—तदेव ६। २। ९-१०।

*

है। घबराकर गिरा हुआ, मार्गमें ठोकर खाकर पड़ा हुआ, अङ्ग-भङ्ग हुआ, सर्पादिसे डँसा हुआ, ज्वरादिसे संतप्त और घायल मनुष्य विवश होकर भी यदि 'हरि' कहकर पुकार उठता है तो वह यातनाओंको नहीं भोगता।[१२]

वैष्णवोंके संग्रह 'श्रीहरिभक्तिविलास' के एक श्लोकमें नाम-कीर्तनकी महत्ताका वर्णन इस प्रकार है—'मनुष्यो! प्रदीप्त पापानलको देखकर भयभीत मत होओ; क्योंकि मेघजलसमूहसे जिस तरह आग शान्त हो जाती है, उसी तरह 'गोविन्द'-नामसे पाप नष्ट हो जायगा[१३]।' चैतन्य-चरितामृतमें श्रीकृष्ण-प्रेमधनको पञ्चम पुरुषार्थके रूपमें स्वीकार किया गया है तथा कहा गया है कि नाम-संकीर्तनका यही परम पुण्य फल है। महाप्रभुने नवधा भक्तिमें नाम-संकीर्तनको ही सर्वोपरि स्वीकार किया है[१४] तथा उसे कलिमें 'परम' उपाय बताया है[१५]। वेदमें परमेश्वरका 'चारुनाम' गानेवाले कई मन्त्र है, किंतु उन सभीमें निम्नलिखित मन्त्र भक्तजनोंमें विश्रुत हैं—

मर्त्या अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे। विप्रासो जातवेदसः॥ (ऋक्सं० ८। ११। ६)

'परमेश्वर! हम मरणधर्मा है, तू अमृतस्वरूप है। हम ज्ञानके उत्सुक हैं, तू जाननेवाला ज्ञानमय है। हम तेरे विशाल नामका मनन करते हैं।' इसमें नामके मननका उल्लेख है, न कि केवल उसके उच्चारणका। परंतु 'भूरि नाम वन्दमाने दधाति' (ऋक्सं० ५। ३। १०) में नामकी वन्दना आयी है। साथ ही 'सुष्टुतिमीरयामि', (ऋक् ३। ३३। ८), 'प्रसम्राजम्', (ऋक् ८। १६। १), 'इमा उ त्वा' (साम० १। २। १) आदि मन्त्रोंमें कीर्तन-भक्तिका संकेत है।

बाइबिलमें कीर्तनके महत्त्वका वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'जो कोई प्रभुका नाम लेंगे वे मुक्त हो जायँगे।'[१६] मुस्लिम-मतमें भी कीर्तनका विशेष महत्त्व है। यह प्रतिदिनका आवश्यक कर्तव्य है[१७]। यहूदियोंका धर्मग्रन्थ 'ओल्ड टेस्टामेंट' भी प्रार्थनाओंसे भरा पड़ा है। भगवन्नामके महत्त्वका वर्णन करते हुए एक जगह कहा गया है—'सब चेतन और अचेतन सृष्टिको प्रभुके नामकी प्रशंसा करनी चाहिये; क्योंकि उसका नाम ही सबसे उत्तम है।' अस्तु।

इस युगमें भगवन्नाम-संकीर्तनकी महिमा अपार है। यह भगवान्‌का ही प्रत्यक्ष रूप है, अतः जीवनके चरम लक्ष्यकी प्राप्तिके इच्छुक साधकको उसका श्रद्धासे आश्रय लेना चाहिये।

१२—तदेव ६। २। १४-१५।

१३—पापानलस्य दीप्तस्य मा कुर्वन्तु भयं नराः। गोविन्दनाममेघौघैर्नश्यते नीरबिन्दुभिः॥ (११। ३१६)

१४—भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नवविध भक्ति। कृष्णप्रेम कृष्ण दिते धरे महाशक्ति॥
तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नामसंकीर्तन। निरपराधे नाम लेते पाय प्रेमधन॥
(चै० च० ३। ४। ६५-६६)

चैतन्यदेवका प्रेमधनके विषयमें कथन है—
एइ मत परम फल—परम पुरुषार्थ। यार आगे तृण तुल्ये चारि पुरुषार्थ॥ (२। १९। १४६)

१५—नामसकीर्तन कलौ परम उपाय (चै० च० ३। २०। ७)

१६—For whosoever shall call upon the name of the Lord, shall be saved. (The New Testament, Romans 10—13)

१७—परमात्माके महान् नामको गाओ। (कुरान ५६। ९६)

संकीर्तनकी शास्त्रीय परिभाषा और मर्यादा

(लेखक— श्रीकन्हैयालालजी पाण्डेय 'रमेश', एम्०ए०, बी०एल्०)

संकीर्तन शब्दका व्युत्पत्तिके अनुसार अर्थ है— सम्यक् रूपसे गुणानुवाद अथवा गुणोंका वर्णन। 'संकीर्तन' भगवान्की लीलाओं एवं उनके गुणों, नामों तथा धामोंके वर्णनमें रूढ़ि है। अर्थात् भगवान्के नाम, रूप, लीला एवं धामका विवेचन, गान तथा उनके कथा-प्रसङ्गोंकी व्याख्याके द्वारा भगवद्भावमें प्रवण होना ही संकीर्तनका उद्देश्य है। शास्त्रकारोंने भक्तिके दो भेद माने हैं—१–रागानुगा और २–वैधी। वैधी भक्तिके नौ भेद माने गये हैं, जिन्हें नवधा भक्तिके नामसे भी अभिहित किया गया है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
(श्रीमद्भा० ७। ५। २३)

'भगवान् विष्णुके नाम, गुण, प्रभाव, तत्त्वकी बातोंको सुनना 'श्रवण-भक्ति', उनका वर्णन करना 'कीर्तन-भक्ति' और उनको मनसे चिन्तन करना 'स्मरण-भक्ति' है। भगवान्के चरणोंकी सेवा करना 'पाद-सेवन-भक्ति', भगवान्के मानसिक या मूर्त विग्रहकी पूजा करना 'अर्चन-भक्ति' और भगवान्को नमस्कार करना 'वन्दन-भक्ति' है। प्रभु हमारे स्वामी और हम प्रभुके सेवक हैं, यह 'दास्य-भक्ति' है। भगवान् हमारे सखा हैं, यह 'सख्य-भक्ति' है और अपनी आत्माको सर्वस्वसहित प्रभुके पादपद्मोंमें समर्पित कर देना 'आत्मनिवेदन-भक्ति' है। उपर्युक्त नवधा भक्तिमें दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन उच्चकोटिके महापुरुषोंको ही सुलभ है। श्रवण, स्मरण आदिमें भी बाह्य साधनों और पाण्डित्यकी अपेक्षा होनेसे सभी प्रवृत्त नहीं हो सकते।

इस संकीर्तनके दो प्रकार हैं—(१) गुण-कीर्तन और (२) नाम-कीर्तन। पाण्डित्यकी आवश्यकता होनेसे गुणकीर्तनमें भी सर्वसाधारणकी उदार प्रवृत्ति नहीं हो सकती। अतः नामकीर्तन सुगम होनेसे ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रियसे लेकर चाण्डालतकका कल्याण करनेवाला है। जब मनुष्य परम प्रभुके पवित्र नामका संकीर्तन करता है, तब उसका हृदय समस्त सांसारिक विकारोंसे उपराम होकर स्वच्छ हो जाता है। अपने शिक्षाष्टकके प्रथम श्लोकमें श्रीचैतन्यमहाप्रभु कहते हैं—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥

'श्रीकृष्णनाम-संकीर्तन सर्वश्रेष्ठ है, उसकी जय हो। यह अनन्तकालसे मलिन चित्तरूपी दर्पणको स्वच्छ करनेवाला, पुनः-पुनः जन्म-मरणरूप संसाररूपी दावानलका शामक परम कल्याणरूपी कुमुदके लिये चन्द्र-ज्योत्स्नाका वितरक समस्त दिव्य विद्यारूपी कुलवधूका जीवन-सर्वस्व, आनन्दके महासागरका उद्वर्धक, प्रत्येक शब्दमें पूर्णरूपसे अमृतका आस्वादन करानेवाला और प्रत्येक जीवको उस लोकोत्तर आनन्दमें मग्न करनेवाला है, जिसके लिये हम सदा उत्सुक रहते हैं।' भगवान्के नामामृतका सेवन शास्त्रविहित कर्मोंके परिपालन तथा शास्त्रनिषिद्ध कृत्योंके परिवर्जनसे ही पूर्णतया लाभकारी होता है।

'जगत्पवित्रं हरिनामधेयं क्रियाविहीनं न पुनाति जन्तुम्।'

इस प्रसङ्गमें किसीको यह शङ्का हो सकती है कि गीतामें कथित—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
(९। ३०)

—इस उक्तिकी तथा—

'भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥'

—रामचरितमानसमें वर्णित इस कथनकी संगति कैसे लगेगी ? तो इसका उत्तर यह है कि भगवन्नाम तो पावन ही है, किंतु जैसे अग्निमें दाहकत्वादि गुणके रहनेपर भी मणि-मन्त्रादिसे उसकी शक्तिका स्तम्भन कर दिये जानेपर वह दाह नहीं कर सकती, वैसे ही शास्त्रादिकी अवहेलना करनेपर तज्जनित महापातकसे संकुचित शक्तिसम्पन्न श्रीभगवन्नाम भी शास्त्रमें कहे हुए अपने फलोंका पूर्णतया सम्पादक नहीं होता। **'अपि चेत्सुदुराचारः'**—इस उक्तिका तात्पर्य यह है कि यदि कोई अतिशय दुराचारी भी प्रायश्चित्तपूर्वक अपना दुराचार छोड़कर मेरा भक्त बनकर अनन्य-भावसे मुझे निरन्तर भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है; अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है, किंतु जो व्यक्ति भगवन्नामका समाश्रयण कर अनवधानतासे नहीं, अपितु यह समझकर कि 'भगवन्नाम तो सब पापोंको दूर करनेवाला है ही, अतः पाप करनेमें क्या भय है, भगवन्नामसे सब पाप नष्ट ही हो जायँगे'—इस बुद्धिसे पाप करता है तथा शास्त्र अथवा शास्त्रीय मर्यादाका उल्लङ्घन करता है, वह तो भगवन्नामपर कलङ्क ही लगाता है, अतः नामापराधी है। उसका संतरण कठिन है; क्योंकि

'हरेरप्यपराधान् यः कुर्याद् द्विपदपांसनः।'

इस संदर्भमें यह शङ्का हो सकती है कि अनुस्मृतिमें जो यह कहा गया है—

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
श्वपचोऽपि नरः कर्तुं क्षमस्तावन्न किल्बिषम्॥

'श्रीहरिके नाममें पाप नाश करनेकी जितनी शक्ति है, उतने पाप करनेमें चण्डाल भी समर्थ नहीं है।' इस उक्तिके अनुसार नामके अनन्तपापनाशानुकूलशक्ति-सम्पन्न होनेपर भी यदि भगवदपराधीके पापका नाश न हो तो यह अर्थवाद-सा प्रतीत होता है।

इस प्रसङ्गमें ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजी महाराजने बतलाया है—'यह कोई दोष नहीं। जैसे लोकमें सर्वानुग्राहकत्वादि-गुणगणविशिष्ट साम्राज्याधिपति अपने अपराधीपर अनुग्रह न कर उलटा कठोर दण्ड देता है, तथापि वह सर्वानुग्राहकत्व, सर्वपालकत्वादि गुणविरहित नहीं कहा जाता, वैसे ही श्रीमद्भगवन्नाम समस्त पापोंका व्यापादक होता हुआ भी स्वापराधीका पाप नाश न कर कदाचित् भयंकर दण्ड दे तो भी उसकी अनन्तपापापनाशानुकूलशक्तिमत्तामें कोई व्याघात नहीं है।' अतएव शास्त्रमर्मज्ञ निःस्पृह ब्राह्मणोंसे अपने अधिकारानुसार अपने उपयुक्त भगवन्नामादि तथा उसमें सहायक रुचिसम्पादक—शास्त्रप्रतिपादित प्रतिबन्धक एवं नामापराधादिको शास्त्रानुसार जानकर अनुष्ठान करनेसे लाभ होता है, अन्यथा सर्वस्व नाश हो सकता है। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
(१६। २४)

'इसलिये अर्जुन! कौन-सा वैदिक स्मार्त कृत्य किस तरह करना चाहिये, कौन किस तरह नहीं करना चाहिये, ऐसी व्यवस्थामें तेरे लिये एकमात्र शास्त्र ही प्रमाण है।' इसके विपरीत भगवान् श्रीमुखसे ही कहते हैं—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
(गीता १६। २३)

'शास्त्र-विधिका उल्लङ्घन कर स्वेच्छाचारपूर्वक कार्य करनेवालेको न तो सिद्धि प्राप्त होती है और न सुख ही प्राप्त होता है तथा परमगति प्राप्त होनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता।' भगवान्‌का कथन है—

श्रुति तथा स्मृति उनकी आज्ञा है, जो उन्हें उल्लङ्घित करता है, वह उनका द्रोही है—

> श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लङ्घ्य वर्तते।
> आज्ञाच्छेदी मम द्रोही मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥
> (वाधूल०)

भगवान्‌का भक्त वही होता है, जो भगवान्‌की आज्ञाका पालन करे—'आग्या सम न सुसाहिब सेवा।' वेदशास्त्रानुमोदित सिद्धान्तोंका उल्लङ्घन कर जो भगवान्‌के द्वारा निर्मित नियमोंकी अवहेलना करता है, वह कभी भी भक्त नहीं हो सकता। शास्त्रानुसार विधि-सम्मत पूजा पूज्य तथा पूजक—दोनोंके ही कल्याणका कारण है। अतएव भगवान्‌का कीर्तन शास्त्रीय मर्यादाके अनुकूल ही भगवन्नामापराध*-रहित होकर करना चाहिये।

श्रीमद्भगवद्गीतामें संकीर्तन

(लेखक—श्रीरामनन्दनप्रसादजी चौरसिया संतजी महाराज)

संकीर्तनका वास्तविक प्रयोजन है कि भगवान्‌में यहाँतक लीन हो जाय कि किसी दूसरे तत्त्वका ध्यान ही न रहे। संकीर्तनका अर्थ सम्मिलित रूपसे कीर्तन करना है, जिसमें प्रायः वाद्ययन्त्रका भी प्रयोग किया जाता है। कुछ लोगोंने कीर्तन और संकीर्तनमें भेद दर्शाया है। 'कीर्तन' शब्द उच्च स्वरसे गानेके अर्थमें आता है तथा एकसे अधिक लोग मिलकर कीर्तन करें तो उसका नाम 'संकीर्तन' होता है। कीर्तन और संकीर्तनमें यदि अन्तर कहा जाय तो यही कहा जा सकता है कि कीर्तनमें अन्तःकरणका योगदान नहीं भी हो सकता है, जबकि संकीर्तनमें अन्तःकरणका योगदान रहना आवश्यक है अर्थात् अन्तःकरण और बाह्य उपादानोंका सम्यक् योगदान कीर्तनमें होनेसे 'संकीर्तन'की संज्ञा दी जाती है।

भगवान् तो एक ही हैं। नाम, रूप, लीला और धाम—चारों उनके ही सच्चिदानन्दमय विग्रह हैं। इन चारोंमेंसे किसीका गुणगान प्रेमसे करना ही सच्चा संकीर्तन है। श्रीमद्भगवद्गीतामें प्रायः सर्वत्र भगवान्‌ने संकीर्तनकी महिमा सर्वोपरि बतायी है। 'भजन' शब्दका प्रयोग भगवान्‌ने संकीर्तनके लिये ही किया है। दूसरे शब्दोंमें भजन 'संकीर्तन' ही है। भगवान् कहते हैं—

> **तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।**
> **ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥**
> (१०।१०)

श्रीधरस्वामीजीने इस श्लोककी टीकामें कहा है कि संकीर्तन ही भजनका सर्वश्रेष्ठ रूप है। **'सततयुक्तानाम्'**-का तात्पर्य संकीर्तन-भजनद्वारा भगवान्‌में मनको सदा जोड़े रखना ही है। संकीर्तन-भजन करनेवाले भक्तको भगवान् स्वयं बुद्धियोग प्रदान करते हैं और अपनी प्राप्ति करा देते हैं। संकीर्तन करना ही भक्तिका सर्वोच्च रूप है। श्रीधरस्वामीने तो स्पष्ट ही कहा है कि ज्ञान तो भक्तिका अवान्तर व्यापार है अर्थात् भजन करनेपर स्वयं ही भगवान् भक्तको ज्ञान प्रदान करते हैं। ज्ञानके लिये उसे परिश्रम नहीं करना पड़ता। ज्ञानकी ऊँचाई प्राप्त करनेपर भी ज्ञानियोंको संकीर्तन-भजनका आश्रय लेना पड़ता

---

* सत्पुरुषोंकी निन्दा, असत्पुरुषोंके बीच नाम-माहात्म्यका कथन, शिव और विष्णुमें भेद-बुद्धि, श्रुति, शास्त्र तथा आचार्यके वाक्योंमें अविश्वास, नाम-माहात्म्यको अर्थवाद मानना, नामके सहारे शास्त्रोक्त कर्म-धर्मोंका त्याग तथा शास्त्र-निषिद्ध पापकर्मोंका आचरण और नाम-जपकी धर्मान्तरोंके साथ बराबरी करना—ये दस नामापराध हैं।
(पुराणसर्वस्व-हलायुध)

है, जैसे शंकराचार्य, मधुसूदन सरस्वती आदिने लिया है। इसीलिये गीताके सभी ज्ञानी भाष्यकारोंने संकीर्तन-भजनपर बहुत ही बल दिया है और इन्हें ही गीताका सार बताया है। संकीर्तनके बिना किसीका आत्यन्तिक कल्याण नहीं हो सकता, अर्थात् गुणातीतकी अवस्था संकीर्तन-भजनसे ही प्राप्त होती हैं। भगवान्‌की वाणी देखिये—

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥
(गीता ९। १४)

'सततं कीर्तयन्तो माम्' में भगवान्‌का तात्पर्य संकीर्तनसे ही है। इसीको भगवान्‌ने श्रेष्ठ उपासना कहा है। संकीर्तन करते हुए भक्त सदा भगवान्‌के साथ जुड़े रहते हैं, इसीको **'नित्ययुक्ताः'** शब्दद्वारा बताया गया है। संकीर्तन करनेवाले भक्त भगवान्‌में **दृढनिश्चयी होते हैं;** अर्थात् भगवान्‌में दृढ विश्वास करके भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धामका गुणगान प्रेमसे करते हैं। प्रेमपूर्वक कीर्तन ही 'संकीर्तन' है। कीर्तन करते-करते भक्तका भगवान्‌में दृढ़ प्रेम हो जाता है, तब वह दृढ़व्रतीके रूपमें निरन्तर गुणगान करता है, जिसे भगवान्‌ने **'सततं कीर्तयन्तः'** कहा है। कहनेका भाव यह है कि दृढ निश्चयवाले भक्त भगवान्‌के अनन्य प्रेमी होते हैं और वे सदा संकीर्तन ही करते रहते हैं।

संकीर्तनका मार्ग प्रपत्ति (शरणागति)-भक्तिका मार्ग है। जिसका संकीर्तन-भजनमें प्रेम हो जाता है, उसके लिये भगवान् ही सब कुछ करते हैं—जैसे संकीर्तनप्रेमी प्रह्लाद, मीरा, सूरदास, नरसी मेहता आदि भक्तोंका योग-क्षेम भगवान्‌ने वहन किया। संकीर्तनप्रेमी भक्त भगवान्‌का ही शरणागत भक्त होता है। भगवान्‌ने संकीर्तन करनेवालेको सभी योगियोंमें श्रेष्ठ योगी कहा है—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥
(गीता ६। ४७)

'जो श्रद्धासे भगवान्‌के नाम, गुण, लीला आदिका संकीर्तन करते हैं, वे भगवान्‌को सबसे अधिक प्रिय हैं। गीतामें भगवान् ज्ञानी भक्तोंकी प्रशंसा इसीलिये करते हैं कि वे सर्वदा सर्वभावसे नाम-गुण आदिका संकीर्तन-भजन करते ही रहते हैं।' भगवान् स्वयं कहते हैं—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥
(१५। १९)

'जो मोहग्रस्त है, वह मूढ़ है। जो पूर्ण रूपसे मोहग्रसित है, वह सम्मूढ है। यहाँ 'असम्मूढ' शब्दका प्रयोग किया गया है। जिसे कभी मोह नहीं होता है, वही असम्मूढ है अर्थात् ऐसा तो ज्ञानी भक्त ही है।' ज्ञानी भक्त निरन्तर संकीर्तन करता है। गीताके बारहवें अध्यायमें भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे संकीर्तनकी महिमा कही है; जैसे—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥
(१२। २)

इस श्लोककी व्याख्यामें श्रीवल्लभाचार्यजी महाराजने यह बताया है कि संकीर्तन स्वयं भक्तको योग्यता प्रदान करता है। अयोग्यको योग्य बनाना संकीर्तनका सहज गुण है। संकीर्तनमें भगवान्‌का प्रत्यक्ष बल रहता है, जिसे श्रीवल्लभाचार्यजीने 'प्रमेय बल' कहा है। भगवान्‌में आसक्त होकर जो निरन्तर उनका संकीर्तन करते हैं, उन्हें भगवान्‌ने सर्वश्रेष्ठ कहा है। जैसे जलती हुई अग्निको शान्त करनेमें जल सर्वोपरि साधन है, घोर अन्धकारको नष्ट करनेके लिये सूर्य ही सर्वसमर्थ है, वैसे दम्भ, कपट, मद, मत्सर आदि अनन्त दोषोंको नष्ट करनेके लिये श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन ही सर्वसमर्थ है। संकीर्तनमें भगवान् जीव-की श्रद्धा-अश्रद्धा, ज्ञान-अज्ञान, पवित्रता-अपवित्रतापर ध्यान न देकर सबका अवश्य ही कल्याण करते हैं। इसी बातका आश्वासन देते हुए भगवान् गीतामें कहते हैं—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
(९ । ३०)

'यदि कोई अत्यन्त दुराचारी भी अनन्यभावसे नामसंकीर्तन-भजन करता है तो वह सचमुच साधु ही मानने योग्य है।' पापी-से-पापी, दुष्ट-से-दुष्ट, नीच-से-नीच और मूर्ख-से-मूर्ख भी यदि भगवान्‌का नामसंकीर्तन करता है तो भगवान् उसे अपनी शरणमें रख लेते हैं और उसके सारे दोषोंको स्वयं ही मिटा डालते हैं एवं उसे धर्मात्मा बना देते हैं। भगवान् पुनः कहते हैं—

'क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।'
(गीता ९ । ३१)

क्योंकि संकीर्तन-भजन करनेवाला भगवान्‌में निवास करता है और भगवान् उसमें निवास करते हैं। देखिये, भगवान् स्वयं कहते हैं—

'ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।'
(गीता ९ । २९)

इस प्रकार सम्पूर्ण गीतामें संकीर्तन-भजनकी ही महिमा है। गीता भगवान्‌की वाणी है, यह कहनेका तात्पर्य यही है कि भगवान् सारे जीवमात्रका कल्याण चाहते हैं। मनुष्यके कल्याणका मुख्यतम, सर्वसुलभ और सरल साधन श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन ही है। आज देशकी विषम परिस्थितियोंमें तथा विश्वके अशान्त वातावरणमें जनकल्याणार्थ श्रीभगवन्नाम-संकीर्तनका ही अधिक प्रचार होना चाहिये। इसके प्रचार-प्रसारसे प्राणिमात्रका वास्तविक कल्याण तो होगा ही, साथ ही आजके भौतिक वातावरणमें विश्वप्रेम, सद्भाव और सौहार्द भी अवश्य बढ़ेंगे। इसके द्वारा व्यक्ति, समाज, देश तथा विश्वका मङ्गल होगा। लम्बी परतन्त्रताके बाद इस देशमें जो स्वतन्त्रताकी लहर आयी, इसके मूलमें विश्ववन्द्य पूज्य महात्मा गाँधीके प्रतिक्षण श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन—
'रघुपति राघव राजा राम। पतित पावन सीताराम ॥'
का महत्त्वपूर्ण योगदान स्वीकार करना चाहिये। आज देशके निरन्तर गिरते हुए जीवनको उन्नत तथा उच्चतम बनानेके लिये श्रीभगवन्नाम-संकीर्तनकी आवश्यकता हम सभी लोगोंको स्वीकार करनी चाहिये। देशवासियों तथा मनुष्यमात्रके प्रति हमारा यह विनम्र अनुरोध है कि वे स्वयं भगवन्नाम-संकीर्तन करें—करायें तथा इसके आनन्दास्वादनका अनुभव भी अवश्य करें। नामसंकीर्तनकी गङ्गामें स्नान करनेवाले जीवोंका सभी प्रकारका कलुष धुल जायगा और आत्यन्तिक कल्याण होगा। भगवान्‌की कृपासे मानव-मात्रमें सद्वृत्तियोंका उदय होगा तथा विश्वकल्याण एवं विश्वशान्तिकी दिशामें अवश्य ही प्रगति होगी, ऐसा हमारा पूर्ण विश्वास है। सम्भव है, हमारे इस कथनमें सहसा किसीको विश्वास न भी हो, किंतु फिर भी हमारा पुनः-पुनः विनम्र अनुरोध अवश्य है कि कुछ दिन भगवान्‌का नाम-संकीर्तन एवं गुण-संकीर्तन करके देख लें। इसके अद्भुत प्रभावोंका अनुभव स्वतः ही हो जायगा। हृदयके कलुष धोनेके लिये नाम-संकीर्तन एवं गुण-संकीर्तनके समान कोई भी अन्य साधन नहीं है। इसीलिये परम दयालु भगवान्‌ने गीतामें सर्वत्र संकीर्तन-भजनपर ही बल दिया है और इसीके आधार-पर सभी महापुरुषों, शास्त्रों, संत-महात्माओं तथा भगवद्भक्तोंने भगवान्‌के नाम-संकीर्तन, गुण-संकीर्तन आदिका प्रचार-प्रसार किया है।

जब भगवान् ही स्वयं संकीर्तन-भजनका प्रचार-प्रसार करते हैं, तब हमलोगोंका भी कर्तव्य है कि स्वयं संकीर्तन-भजन करें और इसका प्रचार भी अवश्य करें। संकीर्तनके प्रचार करनेवालोंसे भगवान् अधिक प्रसन्न होते हैं, यह बात भी भगवान्‌ने गीता (१८ । ६८-६९) में स्वयं ही कही है। अतः लोग संकीर्तनसे अपना तथा विश्वका भी कल्याण करें। भगवन्नाम-संकीर्तनद्वारा सबका मङ्गल हो—यही हमारी शुभ कामना है।

संकीर्तनकी विधि और महिमा

(लेखक—मध्वगौडेश्वराचार्य डॉ० श्रीवराङ्ग गोस्वामी)

कलिकालके जीवोंको आवागमनसे मुक्त होनेके लिये प्रेमावतार श्रीचैतन्य महाप्रभुने इस विषयपर विशेष आग्रह किया है कि 'कृष्ण-कीर्तन' एक ऐसी प्रभावी शक्ति है, जिससे भयंकर पापोंसे भी मुक्ति हो सकती है। श्रीप्रभुके नाम-गुणगानसे जीव मुक्त हो जाता है; क्योंकि इससे तन्मयताकी प्राप्ति होती है, जो 'हठयोग', 'सांख्ययोग' तथा 'कर्मयोग' से बढ़कर है।

कीर्तनके समय श्रीप्रभुका एक चित्रपट परमावश्यक है। कीर्तन प्रातःकाल ब्रह्मवेलामें प्रारम्भ हो जाय तो परमोत्तम। एक दिन पूर्व उस स्थानपर मङ्गल-कलश तथा द्वारपर पञ्चपल्लवका तोरण भी बँधा हुआ हो। कीर्तन-स्थलपर पुष्प, चन्दन, अखण्डदीप, अगरबत्ती और श्रीप्रभुकी भोग-सामग्री भी अति आवश्यक है। जो भक्तजन कीर्तन प्रारम्भ करें, उनके कण्ठ-स्वर सरस, सुन्दर हों। कीर्तनके साथ जो ढोल, करताल, मृदङ्ग आदि बजाये जायँ, उनमें भी सरसता अति आवश्यक है। तभी परमानन्दकी प्राप्ति होती है; क्योंकि उससे जो प्रेमका आवेश होता है, उससे भौतिकता नष्ट होती है और तन्मयताकी वृद्धि होती है। वही भाव जब विशेषरूपसे बढ़ जाता है तब 'भावावेश' के कारण उसे उसी क्षण इष्टदेवके दर्शन होने लगते हैं। **'कीर्तनीयः सदा हरिः'** की युक्ति कलिकालके जीवोंके लिये वेदों, शास्त्रों, उपनिषदों और पुराणोंमें भी बतलायी गयी है—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥

(विष्णुपुराण ६। २। १७)

'सत्ययुगमें ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञादि कर्मसे, द्वापरमें अर्चन आदि करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, कलिकालमें केवल केशवके कीर्तनसे उस फलकी प्राप्ति हो जाती है।' श्रीचैतन्य महाप्रभु अपने अनन्यभक्त श्रीवासके आँगनमें अपने भक्तोंके साथ कीर्तन करते-करते जब महाभावमें आ जाते थे, तब कभी नृसिंह-लीला, कभी रामलीला, कभी व्रज-लीलाओंके द्वारा अपने अनन्य भक्तोंको परमानन्दकी प्राप्ति कराते थे। इस प्रकारकी कीर्तन-व्यवस्थाको बंद करानेके लिये बंगाल और नदियाके यवन शासकोंने बड़ी चेष्टाएँ कीं, किंतु वे परास्त होकर उनकी शरणमें आ गये। संकीर्तनके अविरोधरूप-आन्दोलनसे सारे भारतके यवन-अत्याचारोंका अन्त हो गया और नयी चेतना हिंदू-धर्म-समाजको प्राप्त हुई। एक ऐसी धार्मिक राष्ट्रिय आचार-संहिता स्वयं तैयार हुई कि उससे ऊँच-नीचके भेदभावका लोप हो गया और संगठनने सारे भारतको शक्तिशाली बना दिया। इसी शान्तिमय आन्दोलनसे, जिसमें सत्य और अहिंसाका पुट था, राष्ट्रपिता गाँधीजीने भारतको स्वाधीन करनेके लिये मार्ग-दर्शन प्राप्त किया।

एक बार भक्तोंके साथ कीर्तन करते-करते श्रीनित्यानन्द प्रभु गङ्गातटपर पहुँचे। उसी समय जगाईने श्रीनित्यानन्द प्रभुपर प्रहार किया, जिसे सुनकर तत्काल श्रीमहाप्रभु स्वयं भागीरथीके पुनीत तटपर कीर्तन करते हुए भक्तोंके साथ जा पहुँचे और रक्तरञ्जित श्रीनित्यानन्दको देखकर 'महाभावसे' श्रीचक्रको याद किया। उसी समय सुदर्शन चक्र आकाशमें चक्कर काटने लगा;—किंतु श्रीनित्यानन्दके विशेष आग्रहपूर्ण नम्र निवेदनसे कलिकालके जीवोंके उद्धारके लिये प्रभुने अस्त्र-शस्त्र न धारण करनेकी प्रतिज्ञा की। फलतः श्रीप्रभुके संकेतसे तत्काल सुदर्शन चक्र अन्तर्हित हो गया। श्रीप्रभुने जगाई-मधाईसे उनके भयंकर पापोंकी भिक्षा झोली फैलाकर उसमें ले ली। कुछ क्षणके लिये श्रीचैतन्यमहाप्रभुका गौर वर्ण मलिन हो गया और जगाई-मधाई पापोंसे मुक्त

होकर परम वैष्णव हो गये। श्रीप्रभुकृपासे वे नाम-कीर्तन करने लगे। इसलिये श्रीमहाप्रभुने कलिकालके जीवोंके उद्धारके लिये और भगवत्प्राप्तिके लिये यही युक्ति बतायी—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

कलिकालके जीव अल्पायु होनेके कारण भगवन्नाम-संकीर्तनसे ही भवसागरसे पार हो सकते हैं, दूसरा उपाय नहीं है, नहीं है, नहीं है। कीर्तनकी अजेय वैज्ञानिक शक्तिद्वारा देवर्षि नारद अपनी वीणाद्वारा हरिगुण-गान करते हुए तीनों लोकोंमें विचरते थे। भक्त प्रह्लाद, भक्त ध्रुव, अम्बरीषने इसी साधना-द्वारा भगवत्प्राप्ति की। और तो और—'उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥' इसी नाम-कीर्तनद्वारा सिद्ध हुई नामनिष्ठासे राजमहिषी मीरा हलाहल विष पान करके अजर-अमर हो गयी। भक्त नरसी मेहता, नामदेव, ज्ञानेश्वरने इसी नाम-कीर्तनसे प्रभुका साक्षात्कार किया।

नाम-कीर्तनसे कलिकालके जीव भयंकर रोगों एवं महान् संकटोंसे बच जाते हैं। इसमें छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष न हो तो इसके द्वारा अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति होती है। जो सच्ची लगन और निष्ठासे श्रीप्रभुको आत्मसमर्पण कर देता है उसका कोई कार्य नहीं रुकता। निमाईने संन्यास लेनेके उपरान्त श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीकृष्ण चैतन्य-महाप्रभुके नामसे भारतके तीर्थोंका भ्रमण किया और वाराणसीसे श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीको वृन्दावन भेजा, जिन्होंने 'श्रीराधासुधानिधि'की रचना की। कलिकालके जीवोंको सदैव केशव-कीर्तन करते रहना चाहिये; क्योंकि उनके लिये अन्य कोई सरल साधना इस युगमें नहीं है और न हो सकती है। केवल नाम-कीर्तनद्वारा ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

निरन्तर संकीर्तनार्थ सुझाव

(लेखक—श्रीअवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव 'प्रेमनिधि')

प्रेमी भक्तजनो! संकीर्तन करो, केवल संकीर्तन ही किया करो। संकीर्तनसे हमारा, आपका—सबका परम कल्याण हो सकता है। इसलिये निरन्तर संकीर्तन ही करो। श्रद्धासे-अश्रद्धासे, प्रेमसे-बिना प्रेमसे, कामनासे-निष्कामभावसे,—जैसे भी कर सको, प्रभुके मङ्गलमय नामका संकीर्तन करो। संकीर्तन करते-करते आनन्दमें मग्न हो जाओ; प्रभुके प्रेमामृत-रसधाराका मधुर पानकर धन्य-धन्य हो जाओ। मन लगे या न लगे—इसकी चिन्ता छोड़कर नाम-धुनमें मग्न हो जाओ। जैसे बिना मन लगे संसारके अनेकों काम करने पड़ते हैं और वे सब पूरे भी हो जाते हैं, वैसे ही संकीर्तन भी बिना मन लगे भी करते रहेंगे तो भी प्रभुकी कृपा तो प्राप्त हो जायगी। हमको तो—

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

—इस संतवाणीपर पूरा विश्वास रखकर संकीर्तन करते ही रहना है। मन क्यों नहीं लगेगा, जब संकीर्तनकी मधुर ध्वनि ही सभी इन्द्रियोंको परम सुखप्रद है—

नामामृतेन रसनामसकृत् पुनाति
श्रोत्रंश्च एजयति गायनवादनाभ्याम्।
प्रीणाति बोधवचनैश्च मनो नितान्तं
संकीर्तनं सुखकरं सकलेन्द्रियाणाम्॥

'बारंबार नामोच्चारण करनेसे जिह्वा पवित्र हो जाती है, गाने-बजानेके साथ भजन करनेसे कानोंको परमानन्द प्राप्त होता है, संतोंके बोध-वचनोंको सुनकर मनको अत्यन्त प्रसन्नता होती है, इस प्रकार संकीर्तन सभी

इन्द्रियोंको सच्चिदानन्दमय परमसुख प्रदान करता रहता है ।' इसीलिये ब्रह्मानन्दकी मस्तीमें रहनेवाले योगियोंने निर्णय किया है—

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥
(श्रीमद्भा०)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'राजन् ! जो सांसारिक सुखोंका त्यागकर सभी प्रकारसे अभय चाहनेवाले हैं, ऐसे महान् योगियोंने आत्मकल्याणके लिये श्रीहरि-नामका संकीर्तन करना ही अन्तिम निर्णय किया है ।' परंतु जो हिंसापरायण तामसी जीव हैं, उन्हें यह प्रिय नहीं लगता । तभी तो कहा गया है—

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्
भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्
पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥

'जिनकी सम्पूर्ण तृष्णाएँ निवृत्त हो गयी हैं, ऐसे संत भी जिसका निरन्तर गान करते हैं, जो संसार-रोग-निवारण करनेका महान् औषध है तथा जो सुननेमें कानोंको और मनको अत्यन्त आनन्द देता है, ऐसे प्रभुके गुणानुवाद गानेसे कौन ऐसा अभागा मनुष्य होगा, जो उस दिव्य प्रेमरसका पान करना न चाहेगा ! हाँ, एक पशुघाती हिंसा-परायण इसको न चाहे—यह हो सकता है । यदि मनुष्य सब प्रकारसे आनन्द-मङ्गल चाहता है तो—

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥

'जब प्रभुके नाम-रूप-लीला-गुणोका संकीर्तन होता है तभी नित्य नये-नये रमणीय आनन्दप्रद महोत्सव होते रहते है, जो मनको परमसुख प्रदान करते रहते है और तभी समस्त शोक-संताप नष्ट हो जाते हैं ।'

तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥

'इसीलिये मन लगाकर एकमात्र महाभागवतोंके प्राणनाथ प्रभुका ही नित्यप्रति भजन, कीर्तन, पूजन तथा ध्यान करते रहना चाहिये ।' मानव-जीवनका यथार्थ फल यही है—

रामकृष्णादिनाम्नां तु रटनं च मुहुर्मुहुः ।
भगवतो यशोगानं कीर्तनभक्तिरुच्यते ॥
(भक्तिरत्नाकर)

'श्रीराम, कृष्ण आदि प्रभुके नामोंका प्रेमपूर्वक बारंबार रटन-कीर्तन करना अथवा प्रभुके गुणानुवादको निरन्तर गाते रहना कीर्तन-भक्ति कहलाती है ।' भगवान्‌के नामका किसी भी प्रकारसे कीर्तन करनेपर परम कल्याण होता है—

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥
(श्रीमद्भा० ६ । २ । २४)

'प्रभुका नाम परम दयालु है, उसे प्रेमसे, बिना प्रेमसे, किसी संकेतके रूपमें, हँसी-मजाक करते हुए, किसी डाँट-फटकार लगानेमें अथवा अपमानके रूपमें भी ग्रहण करनेसे मनुष्यके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ।'

भाव कुभाव अनख आलसहूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥
(रा० च० मा०)

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी नरः ॥
वर्तमानं च यत्पापं यद् गतं यद् भविष्यति ।
तत्सर्वं निर्दहत्याशु गोविन्दानलकीर्तनम् ॥

'जितना पाप श्रीरामनाम-संकीर्तन नाश कर सकता है, उतना पाप तो महान्-से-महान् पापी कर भी नहीं सकता ।' ऐसा महान् प्रतापी प्रभुके नामका संकीर्तन है ! हमारे जन्म-जन्मान्तरके तथा वर्तमानके सभी पाप तो नष्ट हो ही जाते है, परंतु अभ्यासवश नामजापकसे न चाहते हुए भी यदि कोई पाप हो जाय तो परम कृपालु प्रभुका

नाम उसे भी नष्ट कर देता है। जान-बूझकर तो संकीर्तन-प्रेमी कभी कोई पाप-अपराध करेगा ही क्यों! परंतु अनजानमें प्रमादवश हो जाय तो पश्चात्ताप करते हुए प्रभुका नाम-कीर्तन करनेसे सभी पाप सद्यः नष्ट हो जाते हैं। अमृत जान-बूझकर पिये अथवा अनजाने ही पी जाय तो यह अपना प्रभाव दिखाता ही है, अमर बनाता ही है एवं अग्नि अनजाने छू जाय तो भी जलाती ही है। उसी प्रकार प्रभुके नामका दिव्य मङ्गलमय संकीर्तन सदैव कल्याण करता ही है। ऐसे प्रभु-नाम-संकीर्तनकी सदा विजय हो—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥

'चित्तरूपी दर्पणको परम स्वच्छ करनेवाला, संसारके त्रिविध तापरूपी भयंकर अग्निका शामक जीवोंके परम कल्याणस्वरूप शीतल चन्द्रकिरणोंका विस्तारक विद्या-सद्बुद्धिरूपी वधूका प्राण-जीवनधन, दिव्य परमानन्दसे भरे हुए पावन समुद्रको लहरानेवाला, पद-पदपर निरन्तर प्रभु-प्रेमसे परिपूर्ण दिव्य अमृतका रसास्वादन करानेवाला, सर्वप्रकारसे ताप-संतापको नष्टकर अत्यन्त सुखप्रद शीतलता प्रदान करनेवाला जो प्रभुके नामका संकीर्तन है, उसकी विजय हो।'

प्रह्लादनारदशुकादिभिरुप्तबीजो
वाल्मीकिभीष्मविदुरप्रमुखेन सिक्तः।
गौराङ्गनाथतुकगोकुलरायमुख्यैः
संवर्धितो जयति कीर्तनकल्पवृक्षः॥

'श्रीप्रह्लादजी, श्रीनारदजी, श्रीशुकदेवजी आदि महापुरुषोंने जिसका बीज बोया, श्रीवाल्मीकिजी, श्रीभीष्मपितामह, श्रीविदुरजी आदि संतोंने जिसे स्नेह-सुधासे सींचकर प्रफुल्लित-पल्लवित किया तथा गौराङ्गदेव श्रीचैतन्य महाप्रभु, तुकारामजी, गोकुलराय आदि प्रभुके प्यारे महात्माओंने जिसे बढ़ाया (फैलाया), उस संकीर्तनरूपी कल्पवृक्षकी सदा विजय हो।'

कितने लोग ऐसा प्रश्न किया करते हैं कि प्रभुका नाम तो मन-ही-मन जपना चाहिये, चिल्ला-चिल्लाकर लोगोंको सुनानेसे क्या लाभ! परंतु शास्त्र एवं संतोंका एक मत है तथा अनुभव भी कहता है कि संकीर्तन ऊँचे स्वरसे प्रेमोन्मत्त होकर करनेमें जो आनन्द, जो दिव्य सुख, जो मनकी एकाग्रता-तन्मयता होती है, वह चुपचाप जप करनेमें नहीं होती तथा दूसरा लाभ परमार्थ अर्थात् दुरितान-विनाश करनेका महान् पुण्यफल नहीं मिलता—

रामनामात्मकं शब्दं शृण्वन् मुनिशिरोमणे।
रामनामसमं पुण्यं लभते नात्र संशयः॥

श्रीरामनाम सुननेसे भी वह फल प्राप्त होता है, जो श्री-रामनाम-कीर्तनसे मिलता है। 'कहत सुनत सब कर हित होई।'

पशु पक्षी कीट आदि बोलिते न पारे।
मुनि लेइ हरिनाम तारा सब तरे॥
अतएव उच्च करि कीर्तन करिले।
शतगुण फल हय सर्वशास्त्र बले॥
जपिले से हरिनाम आपनिसे तरे।
उच्च संकीर्तने पर उपकार करे॥

प्रभुने स्वयं श्रीमुखसे कहा है—

गीत्वा तु मम नामानि नर्तयेन्मम संनिधौ।
सत्यं ब्रवीमि सत्यं ते क्रीतोऽहं तेन चार्जुन॥

'जो मेरे नामोंका उच्च स्वरसे गान करते हुए प्रेमपूर्वक मेरे सम्मुख नाचता है, अर्जुन! मैं सत्य-सत्य कहता हूँ, वह मुझे खरीद लेता है।' अतः शास्त्र आज्ञा करते हैं कि—

विष्णोर्गानं च नृत्यं च वादनं च मुहुर्मुहुः।
सदा ब्राह्मणजातीनां कर्तव्यं नित्यकर्मवत्॥
(श्रीनारायणसारसंग्रह)

'भगवान्‌का गुणगान, नृत्य तथा बाजोंका बजाना बार-बार नित्यकर्मके समान ब्राह्मणजातीय मानवोंको

सदैव करना चाहिये' । (जिससे अन्य जातीय भी संकीर्तनका महत्त्व समझकर करते रहें ।)

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

भगवान् कहते हैं—'नारद ! न तो मैं वैकुण्ठमें निवास करता हूँ, न योगियोंके हृदयमें ही; अपितु जहाँ मेरे भक्त गान करते हैं, मैं वहीं रहता हूँ ।'

इन सब शास्त्र और संतोंका सारभूत सिद्धान्त यही है कि कलियुगमें श्रीहरिनाम-संकीर्तन ही एकमात्र प्रभु-प्राप्तिका सरल, सरस और सहज उपाय है । इसलिये अपनी रसनाको एक बार आप भी समझाइये तथा निरन्तर संकीर्तन करनेमें लगाइये—

रसना मेरी लाड़िली लेहु लाड़िलो नाम ।
महारानी श्रीजानकी, महाराजा श्रीराम ॥
महाराजा श्रीराम सदा सेवक सुखदायक ।
निज भक्तन के काज, धरे कर धनु अरु सायक ॥
बलदुदास अरु स्वामि, ताहि भजु तजु सब करना ।
गावहु सीताराम, बिमल जस मेरी रसना ॥

संकीर्तनका फल—भगवत्प्राप्ति

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

संकीर्तनका अर्थ, स्वरूप एवं व्यापक क्षेत्र

'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृत—संशब्दने' चुरादि (धातु सं० ११८, सि० १२१) परस्मैपदी सेट् धातुसे उपधा-दीर्घ एवं '**नन्दिग्रहिपचादिभ्यः**' सूत्रसे 'ल्युट्' होकर कीर्तन तथा 'ऊतियूति' 'कीर्तयश्च' (३ । ३ । ९७) सूत्रद्वारा निपतित संकीर्ति शब्द सिद्ध होता है । सभी लक्षणकोशों, भागवत ७ । ५ । २३ '**श्रवणं कीर्तनं**' वंशीधरी, क्रमसंदर्भ टीका-टिप्पणियों तथा संस्कृत-हिंदी-अंग्रेजी कोशोंमें इसका व्यापक अर्थ लिया गया है । यहाँ सम्यक्रूपसे कीर्ति, यश, लीला आदिका वर्णन, गान, कथा, उपदेश, नाम-कीर्तन आदि अनेक अर्थ निर्दिष्ट है। संकीर्तनके 'यशोज्ञान' एवं 'समाज्ञा' भी पर्याय कहे गये हैं । स्तुति, नुति, स्तव, स्तोत्र आदिको भी संकीर्तनका निकटतम भेद माना गया है (अमरकोश० १ । ६ । ११) । 'धात्व-प्रकाश'के अनुसार श्लाघा, शक्ति, जयोदाहृति, गुणावली-कथन आदि भी संकीर्तनके पर्याय हैं । यदि केवल नाम-कीर्तनादि इष्ट होगा तो हरिनाम-संकीर्तन, अखण्ड नामकीर्तन, शिवनामकीर्तन आदि शब्द प्रयोज्य होंगे । संकीर्तनका सर्वप्रथम प्रयोग महर्षि वाल्मीकिने किया है । उनका यह प्रयोग हनुमान्जी-द्वारा सीताजीके सामने किये गये सर्वोत्तम राम-संकीर्तनके लिये हुआ है । आदिकवि कहते हैं—

सा रामसंकीर्तनवीतशोका
रामस्य शोकेन समानशोका ।
शरन्मुखेनाम्बुदशेषचन्द्रा
निशेव वैदेहसुता बभूव ।[२]

(वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड ३६ । ४७)

उपसर्गान्तरमें संकीर्तयेत्की तरह प्रकीर्तयेत्, परिकीर्तयेत्, अनुकीर्तयेत् आदिका भी प्रयोग हुआ है ।

१—काशिका ७ । ४ । ७ के अनुसार लुङ्में अचिकीर्तत् तथा अचीकृतत्—ये दो रूप होते हैं । चुरादि गणके 'कृत' धातुमें 'उपधायाश्च' (७ । १ । १००-१०१) आदिसे ऋका इत्व तथा रपरत्व और 'उपधायां च' (८ । २ । ७८) से दीर्घ होकर 'कीर्तयति' और ल्युट्से 'कीर्तन' बनता है ।

२—सीताजी रामजीकी चर्चा-कथा सुनकर स्वयं पूर्ण शोकरहित हो गयीं, पर रामके दुःखसे पुनः शरदागमकालमें रात्रिमें हल्के बादलसे घिरे चन्द्रके समान थोड़ी दुःखी—मलीन भी दीख रही थीं ।

इसी संकीर्तनको नवधा भक्तिमें दूसरा[3] तथा दशाङ्ग[4] उपासनामें सर्वाधिक मुख्य अङ्ग कहा गया है।

इस दृष्टिसे वेदों और पुराणोंमें सर्वत्र संकीर्तन ही भरा है। उनमें अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, शौनक, गृत्समद् ऋषि एवं संकीर्ति वैश्य आदिद्वारा अनेक वैदिक छन्दोंमें भगवत्स्तुति-प्रार्थना—संकीर्तनका निरन्तर उल्लेख मिलता है (बृहद्देवता, बृहदृगनुक्रमणिका)। गोस्वामीजी महाराज भी लिखते हैं—

बंदउँ चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जसु ॥
(रामच०, बालका० १४ ङ०)

अर्थात् वेद अहर्निश हरियश आदिके कीर्तन करते हुए कभी श्रमलेशका अनुभव नहीं करते।

संकीर्तनसे भगवत्प्राप्ति

श्रीमद्भगवद्गीतामें **'सततं कीर्तयन्तो माम्'**, **'कथयन्तश्च मां नित्यम्'** और विष्णुपुराणमें—**'कलौ केशव-कीर्तनात्,'** **'कलौ तद्धरिकीर्तनात्'** आदिमें संकीर्तनकी अपार महिमा कही गयी है। इन दोनोपर आधृत एवं पल्लवित भागवत ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ तथा उसका पाद्मोक्त माहात्म्य संकीर्तनके सर्वाधिक प्रतिपादक, प्रचारक, प्रवर्तक एवं उज्जीवक हैं। इसमें कीर्तन दूसरी भक्ति होकर प्रथम श्रवण-भक्तिसे सम्बद्ध हो महा-महिम बन जाता है। इससे **'तस्याहं सुलभः पार्थ'** **'भक्त्या लभ्यः'** आदि भगवत्प्राप्ति कही गयी है। पर कीर्तनका अर्थ वहाँ भी मूलतः कथा, गान, रूप-यश-कीर्तन ही है। भागवत-माहात्म्यके पहले पाँच अध्यायोंमें कथाकी ही चर्चा है, पर साथ-ही-साथ अन्तमें संकीर्तनके आदिप्रवर्तक नारद, शुकदेव, चारों कुमार, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य एवं प्रह्लाद, अर्जुन आदिके मध्यमें अवतरित विष्णु—श्रीकृष्णके समक्ष शुकदेवजीके 'पिबत भागवतं रसम्'से सम्मिश्रित कीर्तनकी घटना तो अपार सम्मोहक है एवं सभी तप, योगादि साधनोंका प्रस्तुतीकरण है। इसे देखनेके लिये शिव-पार्वती, ब्राह्मण आदि भी वहाँ आ गये थे—

दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं
ते चक्रिरे कीर्तनमग्रतस्तदा।
भवो भवान्या कमलासनस्तु
तत्रागमत् कीर्तनदर्शनाय ॥
प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया
चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः
स्वरकुशलतया रागकर्ताऽर्जुनोऽभूत्।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः
कीर्तने ते कुमारा
यत्राग्रे भाववक्ता सरस-
रचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥
ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र
भक्त्यादिकानां नटवत् सुतेजसाम्।
अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य
हरिः प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत् तत्॥
मत्तो वरं भावबृताद् वृणुध्वं
प्रीतः कथाकीर्तनतोऽस्मि साम्प्रतम्।
(६। ८५—८७-½)

'भगवान्को प्रसन्न देखकर देवर्षिने उन्हें एक विशाल सिंहासनपर बैठा दिया और सब लोग उनके सामने संकीर्तन करने लगे। उस कीर्तनको देखनेके लिये श्रीपार्वतीजीके सहित महादेवजी और ब्रह्माजी भी आये। कीर्तन प्रारम्भ हुआ। प्रह्लादजी तो चञ्चल-गति (फुर्तीला) होनेके कारण करताल बजाने लगे, उद्धवजीने झाँझें उठा लीं, देवर्षि नारद वीणाकी ध्वनि करने लगे, स्वर-विज्ञान (गान-विद्या) में कुशल होनेके कारण अर्जुन

३—'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्' (श्रीमद्भा० ७। २। ३)

४—मन्त्र-जप, ध्यान, कवच, कीलक, पटल-पद्धति, उपनिषद्रहस्य, शतनाम, स्तवराज, सहस्रनामपाठ और इष्टदेवताके चरित्रका सम्यक् अध्ययनज्ञान—ये उपासनाके दस अङ्ग हैं।

राग अलापने लगे, इन्द्रने मृदङ्ग बजाना प्रारम्भ किया, सनकादि बीच-बीचमें जयघोष करने लगे और इन सबके आगे शुकदेवजी तरह-तरहकी सरस अङ्गभङ्गियोंद्वारा भाव बताने लगे। इन सबके बीचमें परम तेजस्विनी भक्तिदेवी, सुपुष्ट ज्ञान और वैराग्य नटोंके समान नाचने लगे। ऐसा अलौकिक कीर्तन देखकर भगवान् प्रसन्न हो गये और इस प्रकार कहने लगे—'मैं तुम्हारी इस कथा और कीर्तनसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारे भक्तिभावने इस समय मुझे अपने वशमें कर लिया है। अतः तुमलोग मुझसे वर माँगो।'

संकीर्तनका भाव वस्तुतः अत्यन्त व्यापक है। श्रीमद्भागवत १।५।२८, ६।२।१८, ६।३।२४ आदिमें **'संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्'** आदिमें सम्मिलित रूपसे गुण-कर्म-नाम-कथनमें भी भगवद्-यश-गुण-कर्म-कीर्तनको ही विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। १२।१२।४७ आदिमें भी वही बात है; क्योंकि नाम भी तो भगवान्के रूप-गुण-कर्मोंके ही द्योतक है, अतः दोनोंकी अपार महिमा है। नामार्थ समझनेके लिये विविध सहस्रनाम-भाष्यों, निरुक्त एवं वेद, पुराण, रामायण आदिकी रचना हुई है। महर्षि वाल्मीकि-द्वारा रामके अर्थके ज्ञानार्थ लव-कुशसे रामकथाका गान कराना—कुशीलवोंकी संकीर्तन-परम्परा अन्य सभी रामायणोंका मूल बन गया। आचार्य शंकरने विष्णुसहस्रनाम-भाष्यकी नाम-निरुक्तिमें हरिवंश, महाभारत, गरुडपुराण २२२ आदिका मुख्य रूपसे आश्रय लिया है। इस प्रकार नामकीर्तनसे नामार्थ-तत्त्वार्थ ज्ञानकी प्रवृत्ति होती है और हरिलीलाका आकर्षण होता है। चरित्रकी सम्यक् जानकारीके बिना न तो देवता—'औपनिषद पुरुष'का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है, न परमानन्दस्वरूप विशुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति, न सच्चे रूपमें प्रभुकी प्राप्ति ही होती है*। अतः सभी सम्प्रदायोंकी उपासनाओंमें जप, स्तुति, चरित्रगान, श्रवण एवं समाधिके द्वारा भगवत्प्राप्तिका निर्देश है। शांकर सम्प्रदायके कई आचार्योंने संकीर्तनपरक सैकड़ों ग्रन्थ बनाये, उनमें नाम-स्तुतियाँ संगृहीत हैं।

सूर, तुलसी, लक्ष्मीधर आदिके सभी ग्रन्थोंमें भी सम्मिलित रूपसे नाम-यश-संकीर्तनकी महिमा है। नामदेव, तुकाराम, नरसी मेहता, मीराबाई आदिके भजन भारतमें विख्यात हैं, उनमें भी दोनों भाव समादृत हैं। सूरदासजी प्रायः सभी पदोंके आरम्भमें **'हरि हरि हरि हरि कीर्तन करो'** लिखते, पुनः आगे कृष्णादिका यशोगान ही करते हैं; गोस्वामीजी भी **'रामहिं गाइअ सुमिरिअ रामहिं। संतत सुनिअ राम गुनग्रामहिं।'** आदिमें संयुक्त कीर्तन-पद्धतिको ही मुख्य भक्ति, भजन या श्रेयका उपाय कहते हैं। सर्वश्री-नित्यानन्द एवं चैतन्यके भक्तिभावसे भावित—रूप, सनातन, जीव, कृष्ण-कर्पूर आदिने भी गोपालचम्पू, वृन्दावनचम्पू, स्तवमाला आदि संकीर्तन-साहित्यके निर्माणमें बड़ा योगदान किया है। कहते हैं कि चैतन्यके नाम-कीर्तनके प्रभावसे सिंह-व्याघ्र आदि हिंस्र वन्य पशु भी दो पैरसे खड़े होकर कीर्तन करने लगते थे—

'कृष्ण कृष्ण कहि व्याघ्र नाचिने लागल।
हरे कृष्ण कहै करि प्रभु जबे बले।
कृष्ण कहि व्याघ्रमृग नाचिते लागिल॥
(चैतन्यचरितामृत २।१७।२८)

श्रीरूप गोस्वामीके 'स्तवमाला'मे स्पष्ट रूपसे कीर्तन ही सर्वस्व है। शंकराचार्यके **'भज गोविन्दम्'** आदि स्तोत्रोंमें मिश्रित कीर्तनकी ही प्रधानता है। वैसे

* 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि।' से वेद-शास्त्रवर्णित रूपानुसार प्राप्त भगवान्को ही सच्ची भगवत्प्राप्ति माना गया है। 'सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदय सनेह बिसेषें॥'का यही क्रम एवं रहस्यार्थ है।

प्रवत्गीता, उपमन्यु आदिकी स्तुतियाँ एवं जगद्धरभट्टकी 'स्तुति-कुसुमाञ्जलि' आदि ग्रन्थ भी शिव-विष्णु-नाम-स्तवन-कीर्तन-प्रधान हैं। ऐसे सभी श्रेष्ठ वैदिक-पौराणिक स्तुतियों, सूक्तों, स्तोत्रोंकी संख्या लगभग दस सहस्रकी होती है। पुराणोंमें ही प्रायः चार हजार स्तोत्र होंगे। स्तोत्रस्तवकगुच्छहारादि स्तोत्रान्तर्गत (गुज० प्रेस, निर्णय सा० तीन खण्ड आदिमें) दो हजारके लगभग स्तोत्र संगृहीत हैं। बादमें तुलसीके विनयपत्रिका आदि सूर, मीरा, नरसी, नामदेवके स्तोत्र, दण्डक, हिंदी, मराठी आदि भी पर्याप्त महत्त्वके हैं। इनकी कुछ झलक भक्तिरत्नावली, भजन-रत्नावली, भजनसंग्रह, 'कल्याण'के संतवाणी-अङ्क आदिमें भी मिलती है। इनका भी लक्ष्य—'धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।' 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' 'ज्ञानविहीनं सर्वमतेन भवति न मुक्तिर्जन्मशतेन' आदिद्वारा भगवत्प्राप्ति ही है। इतिहास साक्षी है कि इसमें सारा भारत निरन्तर निरत रहा है। अस्तु!

यहाँ संक्षेपमें भारतके विभिन्न प्रान्तोंकी संकीर्तन-पद्धति और साहित्य सूची प्रस्तुत की जा रही है—

वंगप्रदेशीय संकीर्तन-साहित्य—लव-कुशके द्वारा संकीर्तित सङ्गीतमय रामायण प्रथम कीर्तनसंग्रह है। द्वितीय श्रीमद्भागवत-ग्रन्थ भी संकीर्तनमय है। बादके बालरामायण, आनन्दरामायण, मानसादि इन्हींपर आधृत हैं। इसीके आधारपर बंगालमें जयदेवने संकीर्तनमय 'गीतगोविन्द' ग्रन्थकी रचना की। आज भी सभी प्रान्तोंकी संकीर्तन-मण्डलियाँ इसे प्रारम्भमें ही बड़े सरस भाव और स्वरसे गाती हुई आत्मविभोर हो जाती हैं। चैतन्य महाप्रभुको यह ग्रन्थ अत्यन्त प्राणप्रिय था। इसके कुछ ही बाद बिल्वमङ्गलने 'कृष्णकर्णामृत' नामक गीतिपूर्ण कीर्तनकाव्यकी रचना की। चण्डीदास और विद्यापतिके संकीर्तनमय पद्य भी बंगदेशकी ही देन हैं। यद्यपि विद्यापति बादमें मिथिलामें ही विशेष-रूपसे रहने लगे थे, पर मिथिला भी उन दिनों पञ्चगौड़में था और सनातन मिश्र आदि मैथिल ही थे। नदिया भी इससे पूर्ण प्रभावित था। कुछ अंशोंमें लोग पयार छन्दोंमें रचित 'चैतन्य-मङ्गल,' 'चैतन्य चरितामृत' आदिके पदोंका भी संकीर्तन उतनी ही भक्तिभावनासे करते हैं। ऐसे कृष्णलीला, चैतन्य-लीलादिके पदकर्ताओंमें रूप, जीव, मुरारि (गुप्त), लोचनदास, वृन्दावनदास, जयानन्द, गोविन्ददास, चाँद-काजी, कवि अलाउद्दीन, मुर्तजा अली आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। कृत्तिवासका सप्तकाण्डी रामायण भी उन्हीं पयारछन्दोंमें निर्मित रामसंकीर्तनका अनुपम ग्रन्थ है और सम्पूर्ण बंगालमें तुलसी-रामायण-जैसा लोकप्रिय है। (द्रष्टव्य—भुवनवाणी-भाषासेतु० कार्यालय, मौसमबाग, लखनऊ 'का संस्करण०')।

उत्कल (उड़ीसा)की संकीर्तन-पद्धति और साहित्य—महाप्रभुकी मुख्य लीलाभूमि उत्कल (जगन्नाथपुरी) ही रही है। उनके पदार्पणसे यहाँ मानो संकीर्तन-समुद्रमें बड़ा भारी ज्वार आ गया और वह उत्ताल तरङ्गोंसे क्षुब्ध एवं उद्वेलित हो उठा। यहाँके बलरामदास, जगन्नाथदास, अनन्तदास आदि पञ्चसखा अवतारी माने जाते हैं। ये लोग स्तुतिके साथ षोडश नाम-मन्त्रका ही मुख्य रूपसे कीर्तन करते थे। इनके संकीर्तन-ग्रन्थ 'महाभाव' एवं 'केशव-कोइली' बहुत विख्यात हैं। इसके बाद अनेक कवियोंने कृष्णलीला-कीर्तनयुक्त काव्य लिखे। इनमें शिशु-शंकर, रहस्यमञ्जरीकार तथा देवदुर्लभ आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। शंकरकी एक पंक्ति है—'गायन्ति वादन्ति नृत्यन्ति बाला। उन्मतमदन सखी संग भोला।' यह राससंकीर्तनसे सम्बद्ध है।

महाराष्ट्रका वारकरी नामक-कीर्तन-सम्प्रदाय—कीर्तनके लिये यह सम्प्रदाय विश्वविख्यात है; विशेषकर महाराष्ट्रमें सर्वाधिक। ये लोग विट्ठलके पास एकादशी

विशेषकर आषाढ़, कार्तिकमें जाकर कीर्तन करते हैं। यहां तुकाराम, नामदेव, बहिणाबाईके अभय-कीर्तन विशेष प्रचलित है। ज्ञानेश्वरका अमृतानुभव, चांगदेवकी पासष्टी, एकनाथका रुक्मिणी-स्वयंवर, समर्थगुरु रामदासका हरि-पञ्चक, दासबोध, मनाँचे श्लोक विशेष कीर्तनीय हैं।

कर्णाटक प्रदेश—'उत्पन्ना द्रविडे चाहं वृद्धिं **कर्णाटके गता**'से कर्णाटक प्रदेश प्रारम्भसे ही भक्ति-सङ्गीतके लिये प्रसिद्ध रहा है। यह प्रदेश बहुत पहले भी महाराष्ट्रसे अलग ही था। अब पुनः अलग हुआ है। यहाँ वीर वल्लालका 'जगन्नाथ-विजय' बहुत प्रचलित है। इसी प्रकार विठठलनाथ एवं महाकवि लक्ष्मीशकी भी रचनाएँ कीर्तनमें प्रयुक्त होती हैं। यहाँके पुरंदरदास तो सम्पूर्ण भारतमें ही विख्यात हैं। कनकदासजी-की 'मोहनतरंगिणी', 'हरिभक्तिसार' आदि भी सादर उल्लेख्य है। इसी प्रकार आन्ध्र, तमिलनाडु, गुर्जरका भी कीर्तन-साहित्य कर्म विपुल नहीं है। उनमें वामाघोसाकी भक्त-भारती आदिका नाम तो सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुका है।

नामकीर्तनसे सच्ची भगवत्प्राप्तिकी प्रक्रिया

यद्यपि इष्टदेवता-शिवनाम-हरिनामादिमें बड़ा आकर्षण है, तथापि एक ही नामकी अज्ञानपूर्वक पुनरावृत्ति कभी कुछ नीरस लगती है, अतः जिज्ञासुकी बुद्धि कीर्ति-कीर्तन, मङ्गल-कथा-श्रवण, देवस्वरूपज्ञान-दर्शनके लिये अग्रसर होकर उनमें प्रवृत्त होती है। यह प्रवृत्ति रामायण, महाभारत, भागवत, पुराण, योग-वासिष्ठ, वेद-वेदाङ्ग आदिके ज्ञानके लिये तथा निरुक्त, कोश, कल्प आदिके आवश्यक आलोडनके लिये बाध्य करती है। इससे शनैः-शनैः शुद्ध तत्त्वज्ञान, भगवद्बोध-भगवत्प्राप्ति होकर कामादिशून्य होनेसे जीवन्मुक्ति मिलती है, अन्यथा कभी-कभी उपदेवता ही शिव-विष्णु आदिके रूपमें दर्शन देकर कामादिकी वृद्धि करते हैं। इस प्रकार—'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः' होनेपर 'राम' के ज्ञानके लिये समस्त भारतीय वाङ्मयका परिनिर्मथन-ज्ञान परमावश्यक हो जाता है। इस प्रक्रियामें श्रीरामकृपासे उसे योगवासिष्ठ, रामपूर्वोत्तरतापनी, विभिन्न रामायणों आदिसे परतत्त्व श्रीरामके ज्ञानकी समग्ररूपसे उपलब्धि हो जाती है। अतः कोशोका'कीर्तनका कीर्तिकीर्तन' अर्थ अत्यन्त व्यापक, विवेकपूर्ण एवं रस-सारगर्भित ही है।

अन्य पुण्यकीर्तन

कई स्तोत्रोंमें पाण्डुपुत्रोंके कीर्तनसे धर्म, आयु, यशका लाभ और प्रायः रोगोंका नाश कहा है।[1] कर्कोटक नाग, राजर्षि ऋतुपर्ण, नल-दमयन्ती आदिका कीर्तन-उच्चारण कलि-प्रभावका नाशक कहा है।[2] हनुमान्जी, सनत्कुमारादिका कीर्तन कामनाशक, कल्याणमित्र, जैमिनि आदिका कीर्तन वज्रवारक कहा गया है[3]। इसी प्रकार शिवपुराणमें शिवनामानुकीर्तनको एकमात्र शरण कहा है—

एकमात्रं गतिः साधो शिवनामानुकीर्तनम्।

इस प्रकार इन सबका तात्पर्य भी एकमात्र शीघ्राति-शीघ्र परमात्मप्राप्ति है।

संकीर्तनका फल और उपसंहार

आजकल लोकमें अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन तथा अखण्ड मानस-गानका विशेष प्रचार है। संकीर्तनसे लोग हरि-नामकीर्तनको ही समझने लगे हैं। अखण्ड मानस-पाठ भी कीर्तनका रूप ले रहा है। जो भी हो, इस

१–धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन आयुर्विवर्धति वृकोदरकीर्तनेन।
शत्रुः प्रणश्यति धनंजयकीर्तनेन माद्रीसुतौ कथयतां न भवन्ति रोगाः॥ (प्रपन्नगीता ४)

२–कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च। ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम्॥

३–मुनेः कल्याणमित्रस्य जैमिनेश्चापि कीर्तनात्। विद्युदग्निभयं नास्ति गृहेऽपि लिखितेन वा॥
(पठितेऽपि गृहोदरे।—पाठान्तर)

प्रकार भी नामजप-कीर्तन एवं यशःकीर्तन-ज्ञानसे भगवत्स्वरूप एवं शुद्धतत्त्वकी पूर्ण बोधोपलब्धि हो जाती है। इस प्रकार गीताके अनुसार **'भजतां प्रीतिपूर्वकम्।' 'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति' 'तेषामादित्य-वज्ज्ञानम्' 'तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः। गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः' 'तस्याहं सुलभः'** का क्रम तत्क्षण या फिर **'पूर्वाभ्यासेन' 'ह्रियते'** से विशुद्ध तत्त्वज्ञानद्वारा तत्त्वोपलब्धि और **'ततो याति परां गतिम्'** का क्रम होता है, जिसकी सुस्पष्ट झाँकी भागवतमाहात्म्य-कीर्तनमें प्राप्त होती है। इस तरह सभी प्रकारसे कीर्तनका फल भगवत्प्राप्ति एवं भगवत्सांनिध्य सिद्ध है, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं। **'संकीर्त्य नारायणशब्दमात्रम्'** (प्रपन्नगीता २७)। हाँ, **'तीव्रसंवेगानामासन्नः'** और **'मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः।'** (योगदर्शन १।२१।२२, योगवासिष्ठ) जिनकी वैराग्य-लयादि साधनाएँ तीव्र होती हैं, उन्हें शीघ्रतर और शीघ्रतम तत्त्वसाक्षात्कार एवं भगवत्प्राप्ति हो जाती है। यही सभी शास्त्रों एवं सत्पुरुषोंके कथनका निष्कर्ष है।

संकीर्तनरत महाराष्ट्रका वारकरिसम्प्रदाय

(लेखक—डॉ० श्रीगोविन्द रघुनाथजी सतर्षि, साहित्याचार्य, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

संकीर्तनसे ईश्वरके नाम, रूप, गुण, प्रभाव, चरित्र, तत्त्व एवं रहस्यका श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक उच्चारण करते-करते शरीरमें रोमाञ्च, कण्ठावरोध, अश्रुपात, हृदयकी प्रफुल्लता, मुग्धता आदि तात्पर्यित हैं। यह नवधा भक्तिका द्वितीय अङ्ग है। इस नवधा भक्तिका श्रीमद्भागवतादि पुराणोंमें पूर्ण एवं विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ हमारा विवेच्य विषय महाराष्ट्रका 'वारकरिसम्प्रदाय' है, जो विशेषरूपसे संकीर्तन-प्रधान है।

महाराष्ट्र प्रान्तके पाँच उल्लेख्य सम्प्रदायोंमें वारकरि-सम्प्रदाय प्रमुख है। वारकरीका शाब्दिक अर्थ है—वारी—यात्रा, करी-करनेवाली संस्था। परंतु महाराष्ट्रमें 'वारकरी' उसे कहते है, जो पंढरपुरस्थित श्रीविट्ठलमूर्तिका उपासक एवं यात्री है। इस सम्प्रदायका मुख्य उद्देश्य हरिसंकीर्तन एवं समाजसेवा है। इसका प्रारम्भ कब हुआ, यह कहना कठिन है। कुछ लोगोंका कथन है कि इसका प्रारम्भ संत ज्ञानेश्वरजीने ही किया था। इस सम्प्रदायमें विभिन्न जातियोंके लोग भक्तिके कारण अपनी जातिका अभिमान छोड़कर भगवान् विट्ठलेशके नाम-संकीर्तनमें तल्लीन रहते है। इस सम्प्रदायके लोग प्रतिवर्ष संकीर्तनरत होते हुए आषाढ़ एवं कार्तिककी एकादशीको लाखोंकी संख्यामें एकत्र होकर पंढरपुरकी यात्रा करते हैं। इस सम्प्रदायका लक्ष्य धार्मिक होते हुए देशोत्थानकी ओर भी है। प्रसिद्ध वारकरी संत बहेणाबाईका, जो संत तुकारामजीकी शिष्या थीं, यह अभंग बहुत प्रसिद्ध है—

संत कृपा जाली। ईमारत फळा आली॥
ज्ञानदेवे घातला पाया। उभारिले देवालया॥
नामा तयाचा किंकर। तेणे रचिले आवार॥
जनार्दन एकनाथ। ध्वज उभारिला भागवत॥
तुका जालासे कळस। भजन करा सावकास॥
बहेणि फडकती ध्वजा। निरोपण केल वोणा॥

(संत बहेणाबाईचा गाथा)

'संतोंकी कृपासे वारकरी-सम्प्रदायरूपी मन्दिरका निर्माण हुआ। ज्ञानेश्वरजीने इसकी नींव रखी। मन्दिरका निर्माण-कार्य आरम्भ हुआ। नामदेवजीने इसका प्रचारद्वारा विस्तार किया। जनार्दनस्वामीके शिष्य एकनाथजीने इसपर भक्तिरूपी ध्वजा खड़ी कर दी। संत तुकारामजीने मन्दिरका काम पूरा होते ही कलश चढ़ा दिया। अब केवल भगवान्‌का भजन करनेका काम ही शेष है। बहेणाबाईने ध्वजाको लहराया एवं संत-बचनोंका विशदीकरण किया।' इस अभंगमें वारकरी-

*

सम्प्रदायरूपी मन्दिरके निर्माणका बड़ा ही सुन्दर आलंकारिक वर्णन है।

बहेणाबाईके मतानुसार इस संकीर्तनप्रेमी सम्प्रदायका आरम्भ तेरहवीं शताब्दीमें हुआ, परंतु यह सिद्धान्त समुचित नहीं प्रतीत होता। ज्ञानदेवके नींव रखनेका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने इस मतका समारम्भ किया। सच तो यह है कि ज्ञानेश्वर और नामदेवके पूर्व भी यह सम्प्रदाय महाराष्ट्रमें प्रचलित था। इधर-उधर बिखरे सूत्रोंको एकत्र करके सम्प्रदायको सुव्यवस्थित करनेका कार्य ज्ञानेश्वरजीने किया। इसीलिये वे इस सम्प्रदायके मान्य आचार्य हैं। इस सम्प्रदायमें केवल ब्राह्मण ही नहीं, अपितु धेड़जातितकके भी संत हुए हैं। केवल पुरुषोंको ही नहीं, प्रत्युत स्त्रियोंको भी भक्तिका अधिकार मिला और सभीको समानभावसे कीर्तन-भजन करनेका अवसर दिया गया। फलतः संत ज्ञानेश्वर, गोरा कुम्हार, सॉवता-माली, नरहरिसुनार, चोखामेला धेड़, जनाबाई, कान्होपात्रा (वेश्या) आदि संतों एवं भक्तोंका अभ्युदय हुआ। इसके पश्चात् संत एकनाथ, संत तुकाराम एवं उनके शिष्य निलोबा, बहेणाबाई, महिपति बुवा आदि प्रधान माने जाते हैं।

इस वारकरी-सम्प्रदायके कार्यको तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। प्रथम सामाजिक, दूसरा धार्मिक और तीसरा साहित्यिक। सामाजिक कार्यके विषयमें इस सम्प्रदायने वैदिक परम्पराको कुछ सुधारोंके साथ दृढ किया है। इसके संतोंने अपने उदाहरणोंसे यह सिद्ध कर दिया है कि गृहस्थीमें रहते हुए भी पवित्र आचरण एवं भक्तिके बलपर परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। इस सम्प्रदायमें गृहस्थाश्रमको अधिक महत्त्व देनेके कारण मानव-जीवन सुखमय बना और स्त्रियोंको उच्च स्थान मिला तथा योगसाधना, अनुष्ठान, ज्ञानार्जन आदि साधनोंका त्याग कर नामसंकीर्तन-जैसे सर्वसुलभ साधनका महत्त्व बढाया गया। वारकरी-सम्प्रदायने निम्नश्रेणीकी जातिके दुर्बल हिंदुओंका संगठन कर उनमें ईश्वर, धर्म, संकीर्तन, भाषा, संस्कृति आदिके प्रति निष्ठा उत्पन्न करनेका महान् कार्य किया है। इस सम्प्रदायमें सदाचरणपर अत्यन्त बल देकर समाजमें सद्गुणोंका संवर्धन किया गया है। किसी भी व्यक्तिकी श्रेष्ठता उसके सदाचरणपर ही निर्भर होती है, न कि उसकी जातिपर—इस सिद्धान्तको वारकरी-सम्प्रदायने व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया। इसमें जातिको नहीं, तपस्याकी उच्चताको मान्य किया गया। वारकरी-सम्प्रदायने अनमोल साहित्यका सृजन कर मराठी वाङ्मयको समृद्ध बनाया। यह श्रेष्ठ साहित्य मानव-जीवनके नित्य-नैमित्तिक, धार्मिक और सामाजिक मूल्योंसे ओत-प्रोत है। उस समय साधारण जनता धर्मके प्रति उदासीन थी। उच्चवर्णके लोग साहित्य-रचना संस्कृतमें करते थे और लोक-भाषाको तुच्छ समझते थे। वारकरीमें लोकभाषामें रचनाकर सद्गुण एवं सदाचरणके साथ भगवद्भजन-संकीर्तनको प्रवृद्ध किया गया।

वारकरी-सम्प्रदायने बहुजन किंवा समाजके लाभकी दृष्टिसे ओवी, अभंग, पद आदि छन्दोंमें मराठी तथा हिंदी-भाषामें प्रचुर रचना की। तत्काल ही यह साहित्य लोकप्रिय बन गया। जनतामें काव्यके प्रति रुचि उत्पन्न हुई। संत-काव्य महाराष्ट्रमें जनताके कण्ठमें गूँजने लगा। सामाजिक उन्नतिके साथ आत्मिक उन्नति करना भी इस काव्यका परम ध्येय था। इस संत-साहित्यने परमार्थ-विषयक भ्रामक कल्पना, रूढ़ि एवं अत्याचारोंकी मुक्तकण्ठसे आलोचना कर शुद्ध एवं सरल भक्ति-मार्गका बोध जन-सामान्यको कराया। इसका संत-साहित्य शुद्ध, समृद्ध एवं विशद होनेके साथ रसमय भी है। इस प्रकार महाराष्ट्रका यह वारकरी-सम्प्रदाय नितान्त लोकसंग्रही एवं लोकोपकारी है। वर्तमानमें भी इस सम्प्रदायकी प्राचीन परम्परा विद्यमान है, लाखों व्यक्ति संकीर्तनरत होते हुए ईश्वर-भक्तिको सुदृढ बनाये हुए हैं।

भारतीय लोक-गीतोंमें संकीर्तन

(लेखक—डॉ० श्रीशुकदेवरायजी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

भारतीय गीत-साहित्यमें लोक-गीतोंका विशिष्ट स्थान है। धर्मप्राण भारतीय परिवारोंमें स्त्रियोंके लोकगीत बड़े माङ्गलिक तथा संकीर्तन-गरिमासे युक्त हैं। जैसे हरिनाम-स्मरणसे किसी भी मङ्गल कार्यका आरम्भ होता है, वैसे ही कोई भी माङ्गलिक संस्कार लोकगीतसे आरम्भ होता है। ये लोकगीत एक प्रकारसे शास्त्रीय कर्मकाण्डोंकी प्रतिध्वनि हैं। इन गीतोंमें संकीर्तनके विविध रूप प्रत्यक्ष या परोक्षरूपसे प्रतिबिम्बित होते हैं, अतः ये संकीर्तनकी परिसीमाके भीतर हैं। लोक-गीतोंके विभिन्न वर्ग हैं। विविध संस्कारपरक गीत—यथा सोहर, मुण्डन-गीत, यज्ञोपवीत-गीत, नहछू तथा विवाह आदिके गीत हैं। इसी प्रकार नचारी, वन्दना-गीत, लीला-गीत तथा कथा-गीत भी हैं। इन गीतोंमें भी सबका अलग-अलग स्थान है और अपना अलग-अलग महत्त्व भी। इनकी लोकमान्यता और महत्त्वको परखनेके लिये, इनके भीतर संकीर्तनके विविध रूपोंके परिदर्शनके लिये इनका संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत है।

गीत भगवन्नामकी तरह मङ्गलवाचक, वेद-मन्त्रोंकी तरह स्वस्तिवाचक तथा समस्त विघ्नोंके उपशामक माने जाते हैं। इन गीतोंमें नानाविध संस्कार और उनकी सम्पन्नताके विधि-निषेधों, विधानों और उपकरणोंका-वर्णन है। ये गीत वैदिक मन्त्रोंके सहचर-जैसे हैं। पण्डितसे मन्त्र भले ही छूट जाय, पर गीतोंसे विधि और विधानके संकेत नहीं छूट पाते। संस्कारपरक गीतोंमें पहला है—सोहर। यह जन्मकालका गीत है। परिवारमें शिशुके जन्म-ग्रहणका संकेत पाकर नारीका सहज आनन्द-विह्वल हृदय हर्षातिरेकसे गद्‌गद हो जाता है और उसके कोकिल-कण्ठ सहज ही गुनगुना उठते हैं—'सोहर' के गीतोंमें। सोहरके अधिकांश गीत श्रीराम और कृष्णके जन्मोत्सवका चित्र उपस्थित करते हैं। मुण्डनके गीतोंमें बालकके केश-विन्यास, शोभा तथा केश काटनेके अनेकविध नियमोंका वर्णन मिलता है। इसी प्रकार यज्ञोपवीतके गीतोंमें जनेऊके लिये बटुककी उत्सुकता, परिवारकी विह्वलता और विधिका वर्णन प्राप्त होता है। नहछूकी भी यही परम्परा है। विवाह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। इसमें वर श्रीराम या शिवके रूपमें तथा वधू सीता या पार्वतीके रूपमें चित्रित होते हैं। वैवाहिक गीतोंमें वर-वधूकी शोभा, झाँकी और हास-परिहासका सजीव चित्र मिलता है। इन गीतोंमें भिन्नताओंके रहते हुए भी एक बातकी समता दीखती है कि ये सारे गीत प्रतीकात्मक हैं। प्रतीक कहीं श्रीरामका, कहीं श्रीकृष्णका, कहीं शिवका, कहीं सतीका, कहीं सीताका तो कहीं पार्वतीका है। एक-एक वर श्रीराम हैं और एक-एक वधू श्रीसीता। सीता-रामका ऐसा साधारणीकरण लोक-गीतोंके सिवाय अन्यत्र कहाँ उपलब्ध है? इन गीतोंमें ब्रह्मका साधारणीकरण है। अतएव इनका आध्यात्मिक महत्त्व है। संस्कारपरक ये सारे लोक-गीत लौकिक रूप लेते हुए भी परमब्रह्मके, लीला ब्रह्म (सगुण)के लीलागान हैं।

अब संस्कार-गीतोंकी कोटिसे हटकर 'विविध' वर्गके भीतर आनेवाले लोक-गीतोंपर भी दृष्टि-प्रक्षेप करना है। इन गीतोंमें कुछ तो स्तवन हैं और कुछ कुलदेवता-वन्दना। मिथिलाञ्चलमें इन्हें 'गोसाईं-गीत' या 'गोसाउनिकगीत' कहते हैं। आरम्भमें कुलदेवताके गीत गाये जाते हैं। इन गीतोंमें देवता या देवीके पराक्रमका वर्णन होता है तथा यज्ञके निर्विघ्न समापनके लिये याचना होती है। ऐसे गीत विशुद्ध रूपसे संकीर्तन

हैं। लगभग समस्त आञ्चलिक भाषाओंमें विशुद्ध कीर्तनके रूप स्पष्ट हैं। ये कीर्तन पुरुषवर्गके बीच प्रख्यात तो हैं ही, लोकगीतोंमें विस्तारसे हैं। इन गीतोंमें कहीं भगवान्‌के सुयश, कहीं लीला, कहीं पराक्रमका वर्णन प्राप्य है। विशेषतया विवाहसम्बन्धी कार्यव्यापारों और झाँकियोंका उल्लेख मिलता है। ये गीत मुख्यरूपसे विवाह-कीर्तनके नामसे प्रचलित हैं और भगवान्‌के माधुर्यरूपका वर्णन प्रस्तुत करते हैं। सखी-सम्प्रदायके साधुओंके बीच इस प्रकारके माधुर्यपूर्ण लोकगीत विशेष प्रचलित हैं। मिथिलाकी महिलाओंमें वैवाहिक कीर्तनका विशेष स्थान है।

नचारी भी संकीर्तनका एक अनोखा रूप है। नचारीमें कहीं शिवका विकट रूप-वर्णन है तो कहीं लीला-वर्णन। कहीं उनका उपहास है तो कहीं परिहास। पारिवारिक नोंक-झोंक, दैन्य, विकट परिवार, विषम स्थिति आदिका बड़ा ही मर्मभेदी, पर रोचक वर्णन नचारीका विषय होता है। नचारी अन्यतम रूपसे शिवलीला-गान है, शिव-कीर्तन है। यह लोक-साहित्यकी महान् उपलब्धि है—

माइ हे सुनह लछिमन शिव औता रथ पर।
माइ हे देखइछि ऐ न बूढ़ बरद पर॥

लोक-गीतोंमें कथा-गान भी उपलब्ध है। अनेक कथा-प्रसङ्गोंको लोक-गीतोंमें पिरोकर उपस्थित किया गया है। इन कथा-गीतोंमें प्रबन्धात्मकता, रोचकता और लयात्मकता है। यों तो कथा-गीत बहुतेरे प्राकृत आख्यानोंका आधार लेकर चलते हैं, पर कुछ ऐसे हैं जिनमें सगुण-साकार ब्रह्मका चरित्र-गान होता है। इन कथा-गीतोंका रूप भक्तिपरक होता है, अतः इनकी परिगणना संकीर्तन-वर्गमें होनी चाहिये। समाजमें इनका उसी कोटिका समादर है।

लोक-गीतोंमें लीला-गीत भी होते हैं। ये कथा-गीतोंसे अधिक आकर्षक और लोक-रुचिके अनुकूल पड़ते हैं। इनमें भगवान्‌की लीला-विशेषका भंगिमापूर्ण चित्रण होता है। उदाहरण-स्वरूप नाग-लीला, दधि-लीला आदिका जो साहित्यिक स्वरूप उपलब्ध है, लोक-गीतोंमें तद्विषयक लीलाएँ गेय रूपमें प्राप्य है। ये गीत लीला-गीत हैं और स्पष्टरूपसे संकीर्तनसे सादृश्य रखते हैं। अतः ये भी संकीर्तनके रूप ही है।

भगवान्‌की विभूतिके चार भेद माने गये हैं। नाम, रूप, लीला, धाम। इन विभूतियोंका नानाविध स्मरण, वर्णन, श्रवण और जप ही कीर्तन है। नाम जपका और रूप ध्यान तथा वर्णनका विषय होता है। लीला और धामका विषय गान है और वर्णन भी। लीलाका सम्बन्ध कृत्य अथवा कीर्तिसे होता है। अधिक सम्भव है कि लीला, कीर्ति, नाम और गुणके गानकी इस पद्धतिको इसीलिये कीर्तनकी संज्ञा दी गयी हो।

कीर्तनके दो रूप देखे जाते हैं—सम्यक् और सामवेतिक। सम्यक् रूपका प्रचलन कम है, जिसके आचार्य हैं श्रीनारद और श्रीहनुमान्। समवेतरूपवाले कीर्तनको ही मुख्यरूपसे कीर्तन कहा जाता है। लोक-मान्यतामें इसीका स्थान है। इसमें अनेक लोग एक साथ कीर्तन करते है। सम्प्रति समाजमें कीर्तनका जो रूप प्रचलित है, वह है वाद्य-ध्वनियुक्त भगवान्‌के नाम, रूप, लीला और ऐश्वर्यका सामूहिक गायन।

इन लोकगीतोंमे बहुतेरे तो कीर्तन मान लिये गये है और हैं भी, शेषको भी लोकसमादर प्राप्त है। संकीर्तनका जो सर्वमान्य रूप प्रचलित है, वह सारा-का-सारा यथावत् लोक-गीतोंमें उपलब्ध है। कहीं वन्दना है तो कहीं लीला-गान, कहीं गुण-कथन है तो कहीं रूप-वर्णन। सबसे बड़ी बात यह है कि ऐश्वर्य या माधुर्यका गायन जो लोक-गीत प्रस्तुत करता है, जो रुझान और तन्मयता लोक-गीत-कीर्तनसे

प्राप्त होती है, वह अनुपमेय है। नामके कृत्रिम घेरेसे हटकर यदि कीर्तन और लोक-गीतोंपर दृष्टिपात किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछको छोडकर शेष लोकगीत संकीर्तन-वर्गके हैं और लोकगीतके रूपमें ही उन्हें विशेष गरिमा, लोकप्रियता, महत्त्व और अनिवार्यता प्राप्त हैं। ये गीत सामान्य जनताके हृदयमें भक्ति और श्रद्धाका संचार तो करते ही हैं, साथ ही भक्त-प्रवरोंको भी आकृष्ट करते हैं। भक्तशिरोमणि तुलसीदास-जीकी रचना 'जानकीमंगल', 'पार्वतीमगळ' तथा 'रामललानहछू' इन्हीं लोकगीतोंसे अनुप्राणित हैं और उन्हींमें निहित भावनाओंके साहित्यिक स्वरूप हैं। लोक-गीतका 'सोहर' भक्तवर सूरदासजीके काव्यका 'सोहिलो' बन गया। ग्राम्यगीतका नाम नारी-कण्ठसे निःसृत होकर तुलसीदासजीका 'बरवै' बन गया।

ग्राम्य-गीतोंकी, लोक-गीतोंकी सम्भावनाएँ युगके साथ उभरती आ रही हैं। वह दिन दूर नहीं, जब लोक-गीत अपने भीतरके संकीर्तनके विविध रूपको पूर्वाग्रह-तिमिर-ग्रसित समाजकी आँखोंमें आलोकित कर देगा।

मालवी लोकजीवनमें संकीर्तनकी महिमा

(लेखक—श्रीरामप्रतापजी व्यास, व्याख्याता, एम्० ए०, एम्० एड्०, साहित्यरत्न)

भारत-भूमिमें हजारों वर्षोंसे भक्तिकी अजस्र धारा बहती चली आ रही है। यहाँ संतों, महापुरुषों, मनीषियोंने अपनी अमृतमयी वाणियोंसे इसे और भी अधिक पुष्ट और बलवती बनाया है। चैतन्य महाप्रभु, नरसी मेहता, सूरदास, मीरा-जैसे संतों एवं भक्तोंने तो अपने गीतों तथा भजनोंद्वारा इस भक्ति-गङ्गामें विशेष अवगाहन किया है; वैसे तो सम्पूर्ण भारतमें ही भजन-कीर्तनकी सरिताएँ बहती रही हैं तथा समय-समयपर मानव-मन इनमें निमज्जनकर अपनेको धन्य मानता रहा है। भारतवर्षमें अन्य प्रदेशोंकी भाँति मालव-धरतीपर भी भक्तिका अजस्र स्रोत बहता रहा है। साथ ही यह स्रोत गीतों, भजनों एवं संकीर्तनके माध्यमसे प्रकट होकर अविरल धाराके रूपमें प्रवाहित होता रहा है।

मालवाके देव-मन्दिरोंमें रामजन्म, कृष्णजन्म और अन्य धार्मिक उत्सवोंपर भजन-मण्डलियोंद्वारा गीत और कीर्तनका आयोजन होता है। इस अवसरपर पौराणिक गाथाओंके विभिन्न रोचक प्रसङ्गोंको वर्ण्य विषय बनाकर भजन गाये जाते है। सत्यनारायण-कथा, रामायणपारायण, भागवत-कथा-जैसे धार्मिक आयोजनोंपर भी भजन-कीर्तनकी धूम-सी रहती है। जहाँ कथाकी समाप्तिपर पुरुषोंकी मण्डली ढोल-मजीरे लेकर हारमोनियमपर मधुर भजनोंद्वारा भक्तिका रस बहाती है, वहीं महिला-वर्ग भी अपनी मीठी वाणीमें सरस गीतोंद्वारा हरि-गुणगान करता है। निम्न भजनमें यह तथ्य उल्लेखनीय है—

अणाँवो साँवलियाँ के पागा वो सोवे,
तो पेंचाकी छबि न्यारी वो साँवलिया
म्हारे मंदर आवो राम, भगति करांगा॥
अणाँवो साँवलियाके . मोती भी सोहे,
तो लाला की छबि न्यारी वो साँवलिया
म्हारे मंदर आवो राम, भगति करांगा॥
तेरी भगति करांगा भरपूर वो साँवलिया॥

'रामजी! आप मेरे घर पधारें। मैं आपकी भक्ति करूँगी। सत्यनारायण भगवान्की पाग शोभायमान हो रही है और उनमें पेंचोंकी छबि अलग ही दिखायी दे रही है। साँवलियाके मोती भी सोह रहे हैं, जिनमें लालोंकी छवि न्यारी ही दिखायी देती है।' इस प्रकार इस गीतमें साँवलियाकी शोभाका उल्लेख किया गया है। साथ ही उसकी भक्ति करनेकी अनुनय-विनय भी एक मालवी रमणीद्वारा व्यक्त की गयी है।

प्रतिमाहमें आनेवाली महत्त्वपूर्ण तिथियाँ—पूर्णमासी, एकादशी, अमावस्या आदिपर धार्मिक स्थलों, शिवालयों, मन्दिरोंमें भजन-कीर्तन होते ही रहते है। किंतु जब-जब गुरुपूर्णिमा, संक्रान्ति, शिवरात्रि, ऋषि-पञ्चमी-जैसे पर्व आते हैं, तब-तब देवालयों आदिमें भजन-कीर्तनोंकी भरमार-सी रहती है। इन भजनोंमें विशेषतया गणेश, शंकर, राम, कृष्ण, दुर्गा, पार्वती, सीता, हनुमान् आदिका उल्लेख किया जाता है। एक गीतमें राम-रसकी महिमा इस प्रकार गायी गयी है—

राम रस बिंदराबींदसे आयो रामा !
हरिको रस बिंदराबींदसे आयो,
श्रीब्रह्माजीने बिजक दियो रामा !
श्रीराधे राम शुकदेव बाँच सुणायो,
यो रस सिव पीयो, सनकादिक पीयो
श्रीराधे रामा शेष शेष मुख गायो
राम रस बिंदराबींदसे आयो ॥

संत कबीरने कहा है—

'दुखमें सुमिरन सब करे, सुखमें करे न कोय।'

यह कहावत पूर्णरूपसे तो मालव-भूमिपर चरितार्थ नहीं होती, फिर भी दुःखकी घड़ियोंमें ईश्वरको विशेषतया स्मरण किया जाता है। अनावृष्टि, अतिवृष्टि, भूकम्पका आना, फसलोंका नष्ट होना, महामारीका फैलना आदि ऐसी भौतिक घटनाएँ हैं, जिनके कारण मानव-मन विचलित हो उठता है। ऐसे अवसरोंपर भी संकीर्तन आयोजित होते हैं। अनावृष्टिके लक्षण प्रकट होते ही मन्दिरों, देवस्थलों, गुरुद्वारोंमें अखण्ड भजन-कीर्तन प्रारम्भ हो जाते है। सभी आबाल-वृद्ध सामूहिकरूपसे निम्न पंक्तियोंद्वारा अपने-अपने इष्टदेवोंको स्मरण करते हैं—

'हनुमान बलधारी रे, सीताजीका पता लगाया—
लंका जारी रे।'
'बीर हनुमाना, अति बलवाना, राम राम रसिया रे—
मारे मन बसिया रे।'

पहले मण्डलीमेंसे एक व्यक्ति एक पंक्ति बोलता है तथा शेष उसे दोहराते चलते हैं। कभी-कभी यह पंक्ति भी बोली जाती है—

अब तो दरस दिखादे, सिलोने साँवलिया।
नैया को पार लगा दे, ओ नटवर नागरिया ॥

जब मालव-प्रान्तका मनुष्य बार-बार आकाशकी ओर देखकर जलकी एक बूँद भी नहीं पाता, तब अन्तमें वह निराश होकर 'इन्द्रदेव'से हाथ जोड़ प्रार्थना करता है—'इन्द्र बरसा दो पानी के दुनिया सारी घबरानी।' यदि यहाँ भी सफलता न मिली तो बजरंगबलीके पास जाता है। उन्हें पानीसे स्नान कराता है तथा उनपर पानीके घड़े उस समयतक डालता ही रहता है, जबतक पानीका प्रवाह पासकी किसी नदी या छोटे खाल (नाले) आदिमें मिल नहीं जाता।

इस गहन गम्भीर काली माटीमें गाये जानेवाले इन उज्ज्वल गीतोंके अन्तमें कबीर, सूर, मीरा, तुलसी, चंद्रसखी आदिकी छाप स्पष्ट देखी जा सकती है। चंद्रसखी-रचित एक गीत देखिये, जिसमें बालकृष्णको माता यशोदाद्वारा दूर खेलने न जानेकी सलाह दी गयी है—

कान्हा दूर खेलन मत जाय रे
अली गलीमें कीच मचो है—
तू रपट पड़ जाय रे।
अण ग्वालन की राय बुरी रे।
नत को झगड़ो लाय रे।
बरजे जशोदा मानो कन्हैया।
थने राकस पकड़ ले जाय रे।
'चंद्रसखी' ब्रज बालकी शोभा
हरिका चरन गुन गाय रे॥

भक्तिका कीर्तन-भजनसे अटूट सम्बन्ध है। बिना कीर्तन-भजनके भक्ति अधूरी है। मालवी लोक-जीवनमें भक्तिकी धाराके साथ-साथ भजन-कीर्तनकी यह बाढ़ भी स्पष्ट देखी जा सकती है। यहाँके जन्म एवं मरण-जैसे संस्कारोंमें भी भक्तिके ये लोकगीत ऐसे घुलमिल-से गये

है कि जिन्हें जीवनसे अलग किया ही नहीं जा सकता। यहाँकी काली मिट्टीवाली धरतीके कण-कणमें भजनों-कीर्तनोका यह स्वर स्पष्ट सुना जा सकता है। मालवा अन्य प्रदेशोंकी भाँति संकीर्तन-रंगमें रँगा प्रदेश है। इसकी संस्कृतिमें संकीर्तनकी ध्वनियाँ स्पष्टतया परिलक्षित होती हैं।

तमिल प्रदेश और संकीर्तन

(लेखक—श्रीआर० वेंकटरत्नम्)

तमिलनाडु भारतवर्षके पूर्व-दक्षिणका भाग है। नाम-संकीर्तन और भजन सारे भारतमें अत्यन्त लोक-प्रियरूपमें प्रचलित है। तमिल प्रदेश भी इससे अलग कैसे रह सकता है? यहाँ इस लेखमें तमिल-भाषी प्रदेशमें नाम-संकीर्तन और भजनका संक्षिप्त परिचय देनेका प्रयत्न किया जा रहा है। संकीर्तनको तीन भागोमें विभक्त किया जा सकता है—१—शिवजीसे सम्बद्ध, २—भगवान् विष्णुसे सम्बद्ध और ३—स्वामी कार्तिकेयसे सम्बद्ध।

परमेश्वरपर तमिल-भाषामें शिव-भक्तोने अनमोल गीतोंकी रचना की है। ऐसे तिरसठ भक्त विख्यात हैं, जिनकी जीवनकथा स्वयं 'महापुराणम्' नामसे प्रसिद्ध है। उन भक्तोंमे खासकर तीन महापुरुषोंकी रचनाएँ शैवलोगोंमें सुप्रसिद्ध है। वे स्तुतियाँ 'देवहारम्' कहलाती हैं। इनके रचयिता ज्ञानसम्बन्ध मूर्ति, वागीश और सुन्दरम् हैं।

इन रचनाओंको शिवालयोंमें, ईश्वर-संनिधिमें, अर्चन-आराधनके समयमें वाद्य-वृन्दके साथ गानेके लिये 'ओदुवार' नामके विशेष गायक हैं। प्रत्येक गीतके लिये नियत राग और ताल निश्चित है। उक्त तीनों शिवभक्तोंने अपने दिनोंमें शिव-दर्शन करते हुए क्षेत्र-से-क्षेत्र घूमते-घूमते प्रत्येक मन्दिरमें विराजमान मूर्तिपर स्तुति रची। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इन गीतोंका संकलन है—'देवहारम्'। इन गीतोंको गानेके पहले तथा अन्तमें भी गायकगण 'तिरुचिट्रम्बलम्'का नारा लगाते हैं। शिव-क्षेत्रोंमें चिदम्बरम्की विशेष महिमा है। इसी दिव्य क्षेत्रमें परमेश्वरने अखण्ड आकाशमें अपना आनन्द-ताण्डव किया था। चिदम्बरम्को तमिल-भाषामें 'तिरु' अर्थात् श्री या पुनीत+चित्+अंबरम्' कहते हैं। यह शिव-भक्तोका परम पावन मन्दिर माना जाता है। उत्सवके दिनोंमें जब वीथिपर ईश्वरकी मूर्ति जुलूसमें आती है, तब भी 'देवहारम्'को गाते हुए ओदुवार साथ आते हैं। इन गीतोंके प्रचारमें तमिलनाडुके प्रसिद्ध शैव सिद्धान्ती मठोंका भी पर्याप्त योगदान रहा है।

उक्त तीनों भक्तोंके अतिरिक्त माणिक्यवाचकर नामक एक संतका भी उल्लेख मिलता है। उनका प्रधान ग्रन्थ तिरुवाचकम्' कहलाता है, जिसमें भक्ति और ज्ञान—दोनोंका उच्चकोटिका समावेश मिलता है। कहा जाता है कि ज्ञानसम्बन्ध मूर्ति, वागीश, सुन्दरम् और माणिक्य-वाचकर क्रमशः सत्पुत्र-मार्ग, दास्य-मार्ग, सख्य-मार्ग और शिष्य-मार्गके शिवभक्त हुए हैं।

वैष्णव सम्प्रदायमें बारह नित्यसूरी 'आलवार' कहलाते हैं और उनकी स्तुतियोंका भण्डार है—चार हजार पद्यात्मक 'दिव्यप्रबन्धम्', जो संकलनका संग्रह है। इसका पारायण वैष्णव भक्त मन्दिरोंमें करते है और इसे तमिल-भाषाका वेद मानते है। ये 'तमिल वेद' संस्कृतके वेदोपनिषद्वत् मान्य है। देवहारम्को प्रस्तुत करनेमें जितनी संगीतात्मकता है, सम्भवतः उतना संगीतांश दिव्य-प्रबन्धम्में नहीं है; परंतु साक्षात् वेद मानकर वैष्णव लोग इसका समादर करते हैं। यह 'दिव्यप्रबन्धम्' की विशेषता है।

वैष्णव लोकका भी मानो मूल-स्थान हो, ऐसे साक्षात् भूवैकुण्ठ माने जानेवाले क्षेत्र श्रीरङ्गम्में प्रतिवर्ष मार्गशीर्षमें गीता-जयन्तीके लगभग होनेवाले उत्सवके अवसरपर बीस दिनमें रँगनाथजीके समक्ष सारे 'प्रबन्धम्' का पाठ होता है। उस उत्सवका नाम है—'अध्ययन-उत्सव'। भगवान् कार्तिकेयको तमिल लोग अपना विशेष देवता मानते है। वहाँ ये 'सुब्रह्मण्य स्वामी' तथा 'कुमारस्वामी' नामसे प्रसिद्ध है। उनके भक्तोंमें एक विशेष संत हुए हैं—श्रीअरुणगिरिनाथ। उन्होने भी कार्तिकेयजीके स्थलोंका क्षेत्राटन किया और प्रत्येक क्षेत्रमें सुन्दर पद्य गाये। उनकी वाणी 'तिरुप्पुगक्' नामसे प्रचलित है। 'तिरु' माने श्री, 'पुगक्' माने स्तुति अर्थात् 'श्रुतिश्री'। उन रचनाओंमें मोहक छन्द और शब्दका गठन है। भक्तगण उन्हें उत्साहसे गाते है। वे प्रधानतया स्कन्द-भक्त थे, अनेक स्थानोंमें वे कुमारजीके मामा श्रीविष्णुकी भी महिमा गाते है। उन रचनाओंके प्रचारमें सच्चिदानन्द स्वामी प्रचार-सभाका बड़ा हाथ है।

तमिळनाडुमें कई सत्संग और भजनकी मण्डलियाँ है। खासकर एकादशी और शनिवारकी रातको भजन होते है। तमिल प्रदेशमें अनेकानेक परिवारोंके इष्ट-देवता बालाजी श्रीवेंकटेश्वर है और यही कारण है—शनिवारकी कीर्तन-परम्पराकी विशेषताका। इन भजनोंमें संस्कृत, तमिल, तेलुगु एवं मराठी, हिंदी संतोकी रचनाएँ श्रद्धासे प्रस्तुत होती हैं। ये भजन राष्ट्रिय एकताके परिचायक है। इस क्षेत्रमें श्रीकाँचीकामकोटि-मठके एक पूर्वाचार्य श्रीभगवन्नाम बोधेन्द्र सरस्वतीने बड़ी सेवा की। कहते है उन्होंने भजन-पद्धतिको निर्धारित किया। उसमें भागवतके श्लोक, तुकारामके अभंग, मीरा-सूरदासके भजन, श्रीकृष्ण-लीला-तरङ्गिणीके तरङ्ग, जयदेवविरचित गीतगोविन्दम्के चौबीस अष्टपदी—सबका समावेश है। श्रीसदाशिव ब्रह्मेन्द्र नामके एक संतने परमहंस बनकर ज्ञान-भक्तिपूर्ण कीर्तन प्रदान किया है। **मानस संचर रे, भज रे गोपालम् ब्रूहि मुकुन्देति, खेलति मम हृदये रामः**—ऐसे भावपूर्ण गीत भजनमें श्राव्य है।

कर्नाटकीय (या दक्षिणी) संगीतकी त्रिमूर्तिमें त्यागराज बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके कीर्तन अधिकतर रामचन्द्रजीपर गाये हुए हैं, परंतु इतर देव-देवताओंपर भी सुन्दर तेलुगु-भाषामें संगीतशास्त्रकी विलक्षणतासे गायी हुई मन-मोहक रचनाएँ है। उन संतका वार्षिक आराधन-महोत्सव दक्षिण देशभरमें बड़ी लोकप्रिय सार्वजनिक समाराधना है।

इन दिनों महात्मा गाँधीकी **'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम'**—यह रामधुन लोगोंके बीच प्रचलित है। गाँधीजीके निधनके बाद गाँधी-भक्तों तथा सर्वोदय-संघोंके द्वारा आश्रम-भजनावलिका प्रसार हुआ है। **'स्थितप्रज्ञस्य का भाषा'**से प्रारम्भ होनेवाले वे अठारह गीताके श्लोक तथा नरसी मेहताकी 'वैष्णवजन-तोषिणी' उसमे विशेषरूपसे गाये जाते हैं।

भगवन्नामके प्रसारमें श्रीकाँचीकामकोटिपीठाधीश्वरने एक नया मार्ग दिखाया है। **श्रीरामजयम्, श्रीरामजयम्, श्रीरामजयम्**—हजार, लाख, करोड़ बार लिखकर समर्पण करनेवाले छोटे बालक-बालिकाओंको वर्षोंसे स्वामीजी पुरस्कार देते है। ऐसे ही एक वैष्णवीय जीयर स्वामीजी करोड़ों राम-नामोंको संग्रह कर, भूमिके अन्तर्गत गाड़ कर, ऊपर राम-स्तूपियोंका निर्माण कर, रामस्तूजीयर नामसे जपप्रिय बन गये है। वे स्तूपियाँ वैष्णव क्षेत्रोंमें दर्शनीय है।

पौषमास इधर कृष्ण भगवान्से उत्कृष्ट बन गया है। उसी महीनेमें वैकुण्ठ एकादशी होती है और प्रातःकाल उठकर भक्तगण भजन-गानोंके साथ मुख्य वीथियोंकी परिक्रमा करते हैं। इतर गीतोके साथ, माणिक्यवाचकर और आण्डाळ (गोदा नामसे प्रसिद्ध भक्तिमती आळवार)-के प्रभात गीताको गायन करते हुए, संतजन वीथियोंमें सोते हुए इतर भक्तोंको ईश्वरीय चिन्तनमें जगाते हुए

जाते हैं। कभी-कभी तीसों दिन भजन करके फिर एक दिन सीता-कल्याण या राधा-कल्याणका उत्सव मनाकर पूर्ति करते हैं।

तमिलनाडुकी वीथियोंमें भिक्षा माँगनेवाले, अपढ़ साधारण भिखारियोंके मुखसे भी रामलिंग स्वामीकी कीर्तन-रचनाएँ, जो 'अरुल्पा' या 'अनुग्रह गान' कहलाती हैं, सुनी जाती हैं। पटिनत्तार, तायुमानवर-जैसे सिद्ध-ज्ञानी-महापुरुषोंकी अमृत वाणी सर्वत्र सुनी जा सकती है; यद्यपि तमिल-भाषा अन्य भाषाओंसे थोड़ा पृथक् रहती है, तथापि भारतकी भक्ति-ज्ञान-संकीर्तन-परम्परासे तमिल प्रदेश न कभी भिन्न रहा है और न रहेगा।

वीणावासवदत्त-नाटकमें नामस्मरण

(लेखक—डॉ० श्रीभगवतीलालजी राजपुरोहित)

इस देशमें अज्ञात कालसे भक्ति जनताकी रग-रगमें समायी हुई है, जो उसके दैनन्दिन जीवनमें जाने-अनजाने व्यक्त होती रहती है। उदाहरणके लिये 'राम' शब्द विभिन्न संदर्भों और काकुमें विभिन्न अर्थ देता आया है। रामस्वामी-सम्प्रदायसहित जनसाधारण भी रामनामका स्मरण करते ही हैं—राम राम राम राम आदि। नमस्कारके लिये 'राम' या 'राम राम', किसीपर दयावश 'राम राम' का उच्चारण, यहाँतक कि मृत्यु-पर 'राम नाम सत्य है' के उच्चारणकी परम्परा है। इस प्रकार 'राम' शब्दका प्रयोग अधिकांश स्थलोंपर पाया जाता है।

यह परम्परा कबसे चली आ रही है—यह कहना कठिन है। नामस्मरण तो शरणमें जानेकी स्थिति है। बौद्ध-परम्परामें **'बुद्धं शरणं गच्छामि'** वाक्य तो भारतमें ईसवी-पूर्वकी सदियोसे ही गूँज रहा है, जो विदेशोंतक अपनी मूल सांस्कृतिक छाप देकर व्याप्त हो गया। यही कारण है कि जापानतक माला-जपका प्रचार हुआ। माला जपनेकी परम्परा इस्लाममें भी प्रचलित है। साहित्य भी इस भावनाकी परम्परासे अछूता नहीं रह पाया। संकेतात्मक अथवा आंशिकरूपसे तो यह तथ्य कई ग्रन्थोंसे प्रमाणित होता है, परंतु इसका बहुत अच्छा प्रमाण ईसवीकी आरम्भिक सदियोंमें कभी विरचित **'वीणावासवदत्तम्'** नाटकमें प्राप्त होता है। वहाँ तृतीय अंकके आरम्भमें ही वत्सराज उदयनका प्रधानमन्त्री यौगंधरायण विष्णुके नामोंका जप करता (**विष्णोर्नामानि पठन्**) हुआ प्रवेश करता है। मूल पाठ इस प्रकार है—

> **विष्णुस्त्रिधामा भगवानुपेन्द्रो**
> **नारायणश्चक्रधरो मुरारिः।**
> **दामोदरः शौरिरनन्तमूर्तिः**
> **कृष्णोऽच्युतः कंसरिपुर्मुकुन्दः॥**

जैसे विष्णुसहस्रनाममें विष्णुके विभिन्न नामोंकी अनवरत परम्परा है, उसी तरह इस श्लोकमें भी विष्णुके विभिन्न चौदह नामोंका स्मरण किया गया है। बोधायनके 'भगवदज्जुकम्' रूपकमें भी जपके संकेत प्राप्त होते हैं। रूपगोस्वामीकी रचनाओंमें तो यह परम्परा पूर्णरूपसे विद्यमान है। मानसकार तुलसीदासजी तो ललकार कर कहते है—'राम जपु राम जपु राम जपु बावरे।' और कबीर सावधान करते हैं—

करका मनका डारिके मनका मनका फेर।

वस्तुतः नामस्मरणकी दो पद्धतियाँ स्पष्ट ही दिखायी देती हैं—एक ही नामका पुनः-पुनः स्मरण और ईश्वरके विभिन्न नामोंका स्मरण। पूर्वोक्त यौगन्धरायण ईश्वरके विभिन्न नामोंका विष्णुसहस्रनामकी परम्परामें

स्मरण करता है। ऐसे सहस्रनाम भी विविध देवी-देवताओंके विभिन्नरूपमें उपलब्ध होते हैं, जो नामस्मरणकी महती और व्यापक परम्पराको ही व्यक्त करते हैं। कितने ही सहस्रनाम, शतनाम, अष्टोत्तरशतनाम आस्तिक जनताके कण्ठहार बने हुए हैं, जिनका दैनन्दिन पूजा-अर्चामें पाठ किया जाता है।

संकीर्तनका राष्ट्रिय एकतामें योगदान

(लेखक—श्रीविष्णुदत्तजी शर्मा, एम्० ए०)

प्राचीनकालसे जनसमुदायकी यह धारणा रही है कि ईश्वर ही इस विश्वका स्रष्टा है। ईश्वरके स्वरूपके विषयमें विद्वानोंकी विभिन्न मान्यताएँ हैं। यही कारण है कि सर्वव्यापी, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् रहकर वह विराट् ईश्वर सदैव रहस्यमय बना रहा। उसकी इस सत्ताको **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** कहा गया है और उसके अस्तित्व तथा उसकी शाश्वत व्यवस्थामें विश्वास दिलानेका काम किया है ऋतुचक्र, वृक्षों एवं वनस्पतियोंके जीवन, आकाशमें स्थित सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र, दिन-रात आदि-आदिने।

व्यवस्था या विधान स्वयमेव किसी-न-किसी आचार-संहिताकी देन होते हैं और सांसारिक विधानकी आचार-संहिता है—हमारे नैतिक गुण। ईश्वरकी कृपा पाने अथवा उसके प्रकोपसे बचनेके लिये ही मनुष्य युगों-युगोंसे नाना प्रकारके नैतिक नियमों तथा संस्कारोंका पालन करता चला आ रहा है। ईश्वरके प्रति उसकी अगाध आस्था (भक्ति) ही उसे संयमित, व्यवस्थित एवं आदर्श बनाये रहती है।

मानवके संस्कारोंमें धर्मकी जड़ें चाहे कितनी भी दृढ और गहरी सत्य हों, किंतु समय-समयपर होनेवाले परिवर्तनों और वैचारिक क्रान्तियोंने धर्मके बाहरी स्वरूपको प्रभावित किया है। धर्मका हृदय भक्ति है। भक्तिके प्रचार-प्रसारमें प्राचीन युगमें अनेक परिष्कार हुए और भक्तिकी महिमाका निखार सामने आता गया। भक्ति-आन्दोलनको ऐतिहासिकोंने तीन उत्थानोंमें विभक्त किया है। प्रथम उत्थान (१५०० ई० पूर्वसे ५०० ई०तक)—इसमें उन्होंने सात्वत पाञ्चरात्र एवं भागवत-भक्तिका उल्लेख किया है। द्वितीय उत्थान (७०० ई०से १४०० ई०तक)—इसमें आल्वार भक्तों एवं आचार्योंकी भक्तिका उल्लेख किया गया है। तृतीय उत्थान (१४०० ई० से १९०० ई०तक)—यह विशुद्ध जन-आन्दोलन था, जिसे भक्तिकालकी संज्ञा दी गयी है। इस कालमें भक्ति-साहित्य अधिक उपलब्ध हुआ। भक्तिकी विधाओंका परिष्कार इस युगमें विशेष हुआ।

भक्ति शब्द (सेवार्थक) 'भज्' धातुसे बना है। अतः भगवान्‌की सेवा ही भक्तिका वाच्यार्थ है। गीतामें कर्म, ज्ञान और भक्ति—तीनोंका समन्वय किया गया है। सातवीं और आठवीं शताब्दियोंमें पौराणिक धर्मका पुनर्गठन हो रहा था और उस समय बौद्ध विचारधाराके साथ-साथ शैव, सात्वत, पाञ्चरात्र तथा भागवत-धर्म चल रहे थे। पाञ्चरात्र शास्त्रके अनुसार इष्टदेवताको मन्दिरमें स्थापन कर सात्वत विधिसे अर्चना करनी चाहिये। भगवान्‌की भक्ति बुद्ध (जीव)को संसारके दुःखोंसे मुक्ति दिलानेका एकमात्र साधन है। सर्वस्वभावसे अपने-आपको भगवान्‌के प्रति समर्पण कर देना ही भक्तिकी परिणति—शरणागति है। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न नदियोंका जल सागरमें जाकर तद्रूप हो जाता है, उसमें किसी प्रकारका भेद दिखलायी नहीं पड़ता, उसी प्रकार जीव भी भगवान्‌में मिलकर 'ब्रह्मभाव' को प्राप्त करता है।

भक्ति भारतवर्षकी भावात्मक साधनाका मधुरतम फल है। वेदोंसे लेकर आजतक भारतीय वाङ्मय इसके

अमृतमय स्वादसे भरपूर रहा है। सामान्यतः अपनेसे किसी भी बड़े पुरुष या देवताके प्रति आदर-श्रद्धाके भावका नाम भक्ति है, किंतु अधिकतर इस शब्दका प्रयोग ईश्वरके प्रति श्रद्धा अथवा उपासनाके अर्थमें किया जाता है। श्रीमधुसूदन सरस्वतीके मतानुसार भागवत-धर्म-सेवनसे द्रवीभूत चित्तकी सर्वेश्वरके प्रति जो अविच्छिन्न वृत्ति है, वही भक्ति है—

द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते॥
(भक्तिरसा०सिं० १।१।३)

उत्तम भक्तिका स्वरूप स्पष्ट करते हुए श्रीरूप-गोस्वामीजी कहते हैं—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृता।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥
(भक्तिरसा०सिं० १।१।११)

'जिस भक्तिमें आराध्यके अतिरिक्त किसी अन्यकी अभिलाषा न हो, जो ज्ञान तथा कर्मसे आवृत न हो और जिसमें कृष्णकी अनुकूलता प्राप्त करते हुए उनका चिन्तन-मनन किया जाय, वह उत्तम भक्ति है।' महर्षि शाण्डिल्यने इस सम्बन्धमें अपना मत प्रकट करते हुए कहा है—**सा परानुरक्तिरीश्वरे।** (शा०भक्ति० १।२)

संकीर्तनके आदि आचार्य देवर्षि नारदजीके मतसे अपने समस्त कर्मोंको भगवान्‌को समर्पित करना और उनका थोड़ा-सा भी विस्मरण होनेपर परम व्याकुल होना भक्ति है। यह अमृतस्वरूपा है—

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। अमृतस्वरूपा च।
(नारदभक्तिसूक्त २, ३)

गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसमें भक्तिकी विशेषता इस प्रकार बतलायी है—

जाते बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥
(अरण्यकाण्ड १५।२)

प्रह्लादने इसकी नौ विधाएँ बतायी हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
(श्रीमद्भा० ७।५।२३)

भगवान् विष्णुके नाम, गुण, प्रभाव आदि बातोंको सुनना श्रवण-भक्ति है, उसका वर्णन करना कीर्तन-भक्ति है और उनको मनसे चिन्तन करना स्मरण-भक्ति है। भगवान्‌के चरणोंकी सेवा करना पादसेवनभक्ति, भगवान्‌के मानसिक या मूर्त-विग्रहकी पूजा करना अर्चन-भक्ति और भगवान्‌को नमस्कार करना ही वन्दनभक्ति है। प्रभु हमारे स्वामी और हम प्रभुके सेवक हैं—यह दास्य-भाव है। भगवान् हमारे सखा हैं—यह सख्यभाव है और अपनी आत्माको सर्वस्वसहित उनके समर्पण कर देना—यह आत्मनिवेदन है।

इन प्रकारोंमें कीर्तन द्वितीय प्रकार है। कीर्तन एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा भक्त अपने आराध्यदेवके पास पहुँचनेका प्रयास करता है। सामूहिक रूपमें ईश्वरका गुणगान तथा कीर्तन ही संकीर्तन है, किंतु यदि इस कीर्तनको बिना ध्वनि अथवा गायनके बार-बार दोहराया जाय तो यह जप कहलायेगा। जप, कीर्तन तथा संकीर्तन आराध्यदेवकी पूजाके एक ही साधनके तीन अलग-अलग रूप हैं। हाँ, संकीर्तन विशेषतया सामूहिक और वाद्यसहित होता है। संकीर्तनका महत्त्व कलियुगमें विशेष है। श्रीव्यासजी कहते हैं—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
(विष्णुपु० ६।२।१७)

'जो फल सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञोंके अनुष्ठानसे और द्वापरमें देवपूजासे प्राप्त होता है, वही कलियुगमें केशवका नाम-कीर्तन करनेसे मिल जाता है।' वही महामुनि पराशरजी कहते हैं—

अत्यन्तदुष्टस्य कलेरयमेको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत्॥
(विष्णुपु० ६।२।४०)

'इस अत्यन्त दुष्ट कलियुगमें यह एक महान् गुण है कि इस युगमें केवल भगवान् श्रीकृष्णका नाम-संकीर्तन करनेसे ही मनुष्य समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो परमपदको प्राप्त कर लेता है।' इससे मिलता-जुलता श्लोक श्रीमद्भागवत (१२ । ३ । ५१) में भी आता है। उसमें कहा गया है कि दोषोंके निधान कलिमें एक बहुत बड़ा गुण है। वह यह कि श्रीकृष्णके संकीर्तनसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। सत्ययुगकी अपेक्षा कलियुगमें थोड़े समयमें ही कल्याण हो जाता है।

यह देखा गया है कि कोई भी अभीष्ट कार्य बिना साधनके सफल नहीं होता। अतः भविष्यमें सफलता पानेके लिये हम कीर्तन या संकीर्तन-जैसे सुगम साधनका सहारा लेते हैं और तभी अभीष्ट-सिद्धि—ईश्वर-प्राप्तिमें सफलता मिलती है। आत्मा सदैव ही आनन्द-स्वरूप परमात्मामें विलीन होनेके लिये विकल रहती है। कीर्तन ही वह सरल उपाय है, जिसके द्वारा आनन्द-स्वरूप परमात्माकी प्राप्ति होना सम्भव है। यही कारण है कि हिंदी-साहित्यके भक्तिकालमें प्रचलित विभिन्न काव्यधाराओंमें परस्पर पर्याप्त भिन्नता रहते हुए भी एक मूल विशेषता यह रही है कि जप, कीर्तन, भजन आदिके रूपमें भगवान्‌का गुण-कीर्तन संतों, सूफियों और भक्तोंमें समान रूपसे पाया जाता है। कृष्ण-भक्तों और सूफियोंमें कीर्तनका महत्त्व अपेक्षाकृत अधिक रहा है। तुलसीदासजी भी रामके नामको रामसे बड़ा मानते हैं; क्योंकि नाममें निर्गुण और सगुण 'ब्रह्म' के दोनों रूपोंका समन्वय हो जाता है।

कीर्तनके मूल प्रवर्तक देवर्षि नारद कहे जाते हैं। राम-नामके गुणकी महिमा भक्त हनुमान्‌ने भी कीर्तनरूपमें बखानी है। महाराष्ट्रके संत ज्ञानेश्वर, वारकरी-सम्प्रदायके प्रवर्तक संत नामदेव, संत एकनाथ, संत तुकाराम, संत सूरदास, चैतन्य महाप्रभु, संत वल्लभाचार्य, मीराबाई आदि सभीने कीर्तन-भक्तिका सहारा लेकर समाजको एक सूत्रमें बाँधे रखा और जाति-पाँतिके भेदभावको दूर करनेका सफल प्रयास किया। चैतन्य महाप्रभु बंगालमें कृष्णके सर्वश्रेष्ठ भक्त तथा महान् संत माने जाते हैं। इनके संकीर्तनने इन्हें सर्वाधिक भावुक-भक्तके रूपमें प्रस्तुत किया। चैतन्यने भावावेशमें झूमती कीर्तन-मण्डलियोंमें प्रेम और आनन्दकी जो रसधारा बहायी, उसने समस्त देशको आप्लावित कर दिया।

पंद्रहवीं शताब्दीमें सिख-धर्मके संस्थापक गुरु नानक-देवने 'जपुजी'के अन्तर्गत अपने विचारोंको बड़े सुन्दर ढंगसे व्यक्त किया। आजकल प्रतिदिन जिस धार्मिक पुस्तक 'गुरुग्रन्थ-साहिब'से कीर्तन होता है, उसमें सिखधर्मके गुरुओंकी वाणियाँ संकलित हैं। सिखधर्ममें संकीर्तनकी प्रथा गुरु अर्जुनदेवद्वारा आरम्भ की गयी। इन्होंने ही 'रागमाला'की रचना की थी। प्रातःकालका कीर्तन 'जपुजी', सोनेसे पूर्वका कीर्तन 'सोहिला' और तत्पश्चात् 'रागमाला' एवं अन्तमें भोगके समय 'उपसहार' कीर्तन गाया जाता है। इन सबको मिलाकर 'ग्रन्थसाहिब'का संकलन और सम्पादन पाँचवें गुरु अर्जुनदेवने किया।

उत्तरी भारतमें ही नहीं, अपितु दक्षिण भारतमें भी कीर्तनका प्रचलन हुआ। भारतकी भक्ति-परम्पराके विकास-प्रवाहमें 'आळवार' भक्तोंका महत्त्वपूर्ण स्थान है। तमिलमें आळवारका अर्थ होता है—भगवान्‌के अनन्त गुणवारिधिमें आत्मविभोर होकर सदैव मग्न रहनेवाला वैष्णव संत। ये आलवार पहुँचे हुए भक्त एवं आध्यात्मिक थे। इन आलवारोंकी मूर्तियाँ आज भी दक्षिणके देव-मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित हैं। आलवार संतकवि समय-समयपर भक्तिके आवेशमें आकर हृदयके अनुराग सुन्दर गीतोंमें व्यक्त करते थे, जो तत्कालीन संकीर्तनका रूप था। देशकी भावात्मक एकतामें इनका भी योग प्रशंसनीय है।

मुसलमानोके अध्यात्मवाद और रहस्यवादका कारण भी भारतीय भक्तिवाद ही था। हिंदुओंने उदारतापूर्वक मुस्लिम पीरो और मजारोंका पूजन आरम्भ किया, मुसलमानोंके संतोंके प्रति हिंदुओंने श्रद्धा प्रकट की तथा मुसलमानोने हिंदू साधु-महात्माओंको मान्यता दी। मूर्ति-पूजाके कट्टर विरोधी होनेपर भी बंगालमें मुसलमानोंने हिंदुओके शीतला, काली, दुर्गा, धर्मराज, वैद्यनाथ आदि देवी-देवताओंको अपना लिया। सामञ्जस्य, सम्मिश्रण और सामीप्यकी सहृदय भावनाका प्रभाव इस्लामपर ऐसा पड़ा कि उसमें कोमलता और सरसता आ गयी तथा सूफी-सम्प्रदायका प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार भारतीय एकताके सूत्रमें बँधते चले गये।

संत, कवि, भक्त, विचारक और दार्शनिक हिंदू, सिख तथा मुसलमान—सभी समय-समयपर प्रेम-भावसे एक दूसरेके सम्पर्कमें आते रहे। अतः भक्ति-मार्गका संकीर्तन एक ऐसा साधन सिद्ध हुआ, जिसने राष्ट्रिय एकतामें पूर्ण योगदान दिया; भले ही वह जगदम्बा भगवतीका गुणगान, गुरु-वाणीका कीर्तन, अथवा कीर्तन-कव्वाली ही क्यों न हो। भारतमें इस प्रकारका संकीर्तन पूर्वसे पश्चिम, उत्तरसे दक्षिण तथा प्रत्येक धर्म एवं समुदायमें गाया जाता है। ऐसे कीर्तनकी महिमा स्वयं भगवान्ने श्रीमद्भागवतमें गायी है—

> **वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं**
> **रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।**
> **विलज्ज उद्गायति नृत्यते च**
> **मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥**
> (११। १४। १४)

'प्रेमका प्रादुर्भाव हो जानेसे जिस प्रेमी भक्तकी वाणी गद्गद और चित्त द्रवीभूत हो जाता है, वह प्रेमावेशमें बार-बार रोता है, कभी हँसता है, कभी लज्जा छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने और नाचने लगता है। ऐसा मेरा परम भक्त त्रिभुवनको पवित्र कर देता है।' भला, जिस कीर्तनसे तीनो भुवन पवित्र हो जाते हैं, उसकी भावात्मक एकताकी शक्तिका क्या कहना। यही कारण है कि भक्तिके इस अङ्गने राष्ट्रिय एकतामें उल्लेख्य ही नहीं, स्तुत्य योगदान दिया है।

संकीर्तनमें राष्ट्रिय एकताके बीज

(लेखक—डॉ० श्रीसूर्यमणिजी त्रिपाठी)

प्रस्तुत शीर्षकपर दृष्टिपात करनेपर विषयके दो पक्ष उद्देश्य एवं विधेयकी तरह उपस्थित होते है—प्रथम संकीर्तन और दूसरा राष्ट्रिय एकता। इन दोनों पक्षोंको जोड़ना यद्यपि वाक्यकी दृष्टिसे सरल दिखायी पड़ता है, किंतु व्यावहारिक दृष्टिसे दोनोंमें समन्वय स्थापित करना कोई सहज कार्य न होगा। सर्वप्रथम हम संकीर्तन शब्दकी व्यापकतापर विचार करना चाहेंगे। व्याकरणकी दृष्टिसे संकीर्तन शब्द (सम्-कृत-ल्युट्) प्रशंसा या किसी देवताकी महिमाका वर्णन या स्तवनका भाव व्यञ्जित करता है। राष्ट्र शब्द (राज्-ष्ट्रन्-त्व) राज्य, साम्राज्य, देश और मुल्कका वाचक है। किसी देवताकी प्रशंसा या महिमाको जनमानसके समक्ष रखना मूल भाव है। आजतक विश्वके इतिहासमें असंख्य महापुरुष हो चुके है। शिव-विष्णु-देवी आदिके अवतारोंकी संख्या कम नहीं है। वह भी जैन-बौद्धादि सभी धर्मोके अवतारोंकी गणना की जाय तो असंख्य भले ही न हो, किंतु बहुसंख्यक तो हैं ही। इस प्रकार इन अवतारोंके उपासक भी भिन्न-भिन्न धर्मोंमें मिलते हैं। सभी धर्मोंमें अनेक सम्प्रदाय या उपसम्प्रदाय भी मिलते है। इन सब बातोपर विचार करनेपर यह स्पष्ट होता है कि यह मत-मतान्तरका स्पष्ट विवरण प्रस्तुत करना कोई सहज कार्य नहीं है।

अवतारोंके द्वारा जो आचरणोपदेश मानवके मानस-पटलपर अङ्कित हुआ, वह भी समय-समयपर परिस्थितियोंके
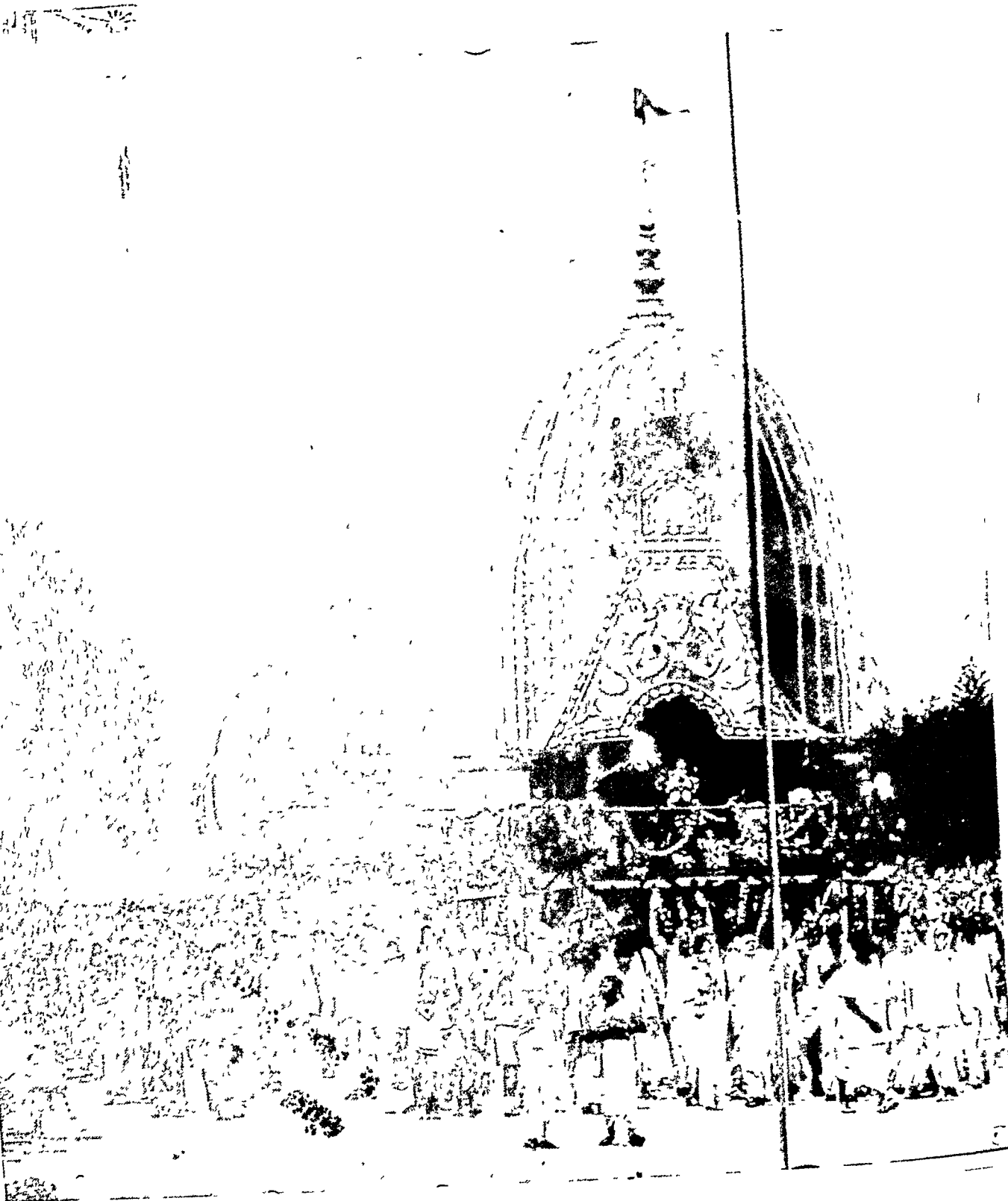
विदेशमें संकीर्तनका एक दृश्य

अनुसार परिवर्तित होता रहा। अवतारोंकी आलोक-शिखाको ग्रहण कर ऋषियों एवं मुनियोंने अपनी विचार-वीथीमें भ्रमण किया। इन ऋषियों, मुनियो, संतों, सूफियों, पैगम्बरों एवं दूतोंने जनजीवनको सदा आलोकित किया। देवता शब्दसे भी दिव्-आलोककी ध्वनि निकलती है। व्यष्टि स्वरूपमें कोई देवताको स्वीकार भले ही न करे, किंतु विश्व-प्रपञ्चमें समष्टि स्वरूपमें देवताओंके अस्तित्वको नास्तिक भी स्वीकार ही करेगा। शीर्षकपर मुख्य चर्चा हमें भारतीय परिप्रेक्ष्यमें ही करना है।

संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक—इन तीनों वैदिक साहित्योंमें देवताओंके महत्त्वके विषयमें बहुत कुछ कहा गया है। प्रत्येक मन्त्रमें देवता एवं ऋषिका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। अष्टादश महापुराणोंके सृष्टि-प्रकरणमें देव-सृष्टिका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इन देवताओंके आदर्शपर मानव अपनेको दैनिक लोक-व्यवहारमें लगाना चाहता है। देव-चरितोंके अनुकरणसे वह लोगोंमें अपनेको श्रेष्ठतर सिद्ध करना चाहता है।

महापुराणोंके साथ ही रामायण एवं महाभारतमें देवताओंके माहात्म्य, अवतारोंकी गणना एवं चरितोंपर प्रकाश डाला गया है। तात्पर्य यह है कि देवताओंके अस्तित्वके विषयमें वेदों एवं महापुराणोंका स्पष्ट प्रमाण हमारी भारतीय संस्कृतिको प्राप्त है। इसी प्रकार वेदोंमें विष्णु, इन्द्र, मरुतादि देवताओंकी स्तुतियोंमें मन्त्र कहे गये हैं। महापुराणोंमें ऋषभदेव, कच्छप, कपिल, कल्कि, कूर्म, कृष्ण, दत्तात्रेय, धन्वन्तरि, नर-नारायण, नरसिंह, बलराम, बुद्ध, यज्ञ, राम, वामन, व्यास आदि अवतारोंका उल्लेख स्थल-स्थलपर मिलता है। देवांशोंमें अर्जुन, नारद, मान्धाता, शंकराचार्यका उल्लेख महापुरुषोंमें किया गया है। इन प्रमाणोंके आधारपर यह स्पष्ट है कि देवताओंका अस्तित्व प्राचीनकालसे ही सबको विदित रहा है। देवताओंके चरितोंको लोग ग्रहण करना चाहते थे। इन्हीं चरितोंको ग्रहण कर अपनेको श्रेष्ठतर मानवके रूपमें उपस्थित करनेके लिये मानव सृष्टिकालसे प्रयत्नरत था। इसी प्रयत्नका यह परिणाम है कि आस्तिक और नास्तिक सभी देवप्रशंसामें अपनेको अधिक-से-अधिक समर्पित करना चाहते थे। तीर्थ, तपःस्थली, मठ, मन्दिर, देवालयोंमें देव-प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठाके पीछे भी यही भावना थी कि व्यक्ति इन देवताओंके दर्शनसे अपनेमें देवत्व अर्जित करनेके लिये प्रयत्नशील हो। उत्सवों एवं संकटकी वेलामें सम्बल प्राप्त करनेके लिये देवाराधन एवं पूजनका विधान किया जाता है।

इस देवाराधनके दो दृष्टिकोण हैं—एक ओर **'स्वान्तःसुखाय'** तो दूसरी ओर **'सर्वे भवन्तु सुखिनः।'** एक ओर व्यक्तिशः कल्याणके लिये देवाराधन होता था तो दूसरी ओर जनसामान्यके कल्याणार्थ। इस आराधनामें स्तुति या प्रशंसापरक वाक्यों, मन्त्रों या श्लोकोंका प्रयोग किया जाता है। यहाँपर हमें व्यक्तिगत क्षेत्रसे आगे उठकर जनसामान्यके लिये कीर्तन या स्तुतिके विधानपर चर्चा करनी है। कीर्तन शब्दके पूर्व 'सम्' उपसर्ग लगानेसे 'संकीर्तन' शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है अच्छी तरह कीर्तन करना।

अब हमें राष्ट्रके विषयमें समझना है। राज्य, प्रदेश, देश, राष्ट्र, मुल्क आदि शब्द बार-बार अपने सामने आते हैं, किंतु इनके गर्भस्थ भावपर हम न जाकर सामान्य अर्थसे ही संतोष कर लेते हैं। राष्ट्र शब्द स्वतन्त्र देशकी आत्मीयताकी चरम सीमाका स्पर्श करता है। आत्मकल्याणवत् पर-कल्याणकी कल्पनाको साकार करनेके लिये संकीर्तन करना हमारा मुख्य लक्ष्य होना चाहिये। सृष्टिमें आये हुए प्रत्येक जीवधारीका यही परम कर्तव्य है।

संकीर्तनके माध्यमसे राष्ट्रिय एकताका बीजारोपण करनेके लिये ही ईश्वरने मनुष्यको यह दुर्लभ शरीर प्रदान किया है। कीर्तनमें स्वाभाविक रूपसे जनमानस आकृष्ट होता है। आकृष्ट मानव-मन व्यक्तिगत सीमासे ऊपर उठकर समष्टि कल्याणके लिये सामूहिक रूपसे लग जाता है।

किसी भी राष्ट्रमें अनेक धर्म, भाषा एवं लोकाचार होते हैं, किंतु संस्कृतिके सूत्रमें ये सब समाविष्ट हो जाते हैं। भेदभावकी गङ्गा-यमुना भावनात्मक सरस्वतीमें मिलकर त्रिवेणी बन जाती है। त्रिवेणीके संगम-स्थलपर एकत्र जनसमुदाय राष्ट्रिय कल्याणकी मशाल लेकर घर-घरको दीपक जलानेके लिये बाध्य कर देता है। यह एकताका मशाल महलोंसे लेकर झोपड़ियोंको एक साथ ही एक तरहकी दीपशिखासे आलोकित कर देता है। वस्तुतः संकीर्तनमें भाई-भाईकी राष्ट्रिय भावनाको विकसित होनेका उदात्त अवसर मिलता है।

वर्तमान भारतमें राष्ट्रिय स्तरपर अनेक समस्याएँ मुँह बाये खड़ी हैं। जठराग्निसे झुलसा भारत आज बडवाग्निसे जल रहा है। बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश एवं गुजरात आरक्षणकी लपटोंसे, असम, मिजोरम, नागालैंड क्षेत्रीयताकी लपटोंसे तथा शान्त क्षेत्र कहे जानेवाले प्रान्त सत्ताकी लपटोंसे झुलसते रहे हैं। चतुर्दिक् दानव मानवके सामने सीना ताने खड़ा है। अनेकानेक समस्याएँ हैं, विसंगतियोंके अम्बार खड़े हैं। ऐसी विषम परिस्थितियोंमें संकीर्तनके द्वारा ही राष्ट्रिय समस्याओंको हल किया जा सकता है। संकीर्तन ऐक्य और सौहार्दको बढ़ानेमें सर्वथा समर्थ साधन है। राष्ट्रिय नारोंमें लोकतन्त्र, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादको बार-बार प्रचारित किया जा रहा है, किंतु लोकतन्त्रके स्थानपर व्यक्तितन्त्र, धर्मनिरपेक्षके स्थानपर धर्मसापेक्ष और समाजवादके स्थानपर व्यक्तिवाद फूल-फल रहा है।

यदि गम्भीरतासे देखा जाय तो प्रतीत होगा कि संकीर्तन ही लोकतन्त्र, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादकी आत्मा है, ध्रुवीकरणकी धुरी है। इस धुरीके चारो ओर ये तीनो राष्ट्रियसत्र (लोकतन्त्र, धर्मनैरपेक्ष्य और समाजवाद) परिक्रमण एवं परिभ्रमण करते हैं। आवश्यकता है, भगवन्नाम-गुण-यश-कीर्तनको सम्यक्त्व प्रदान करनेकी। कोटि-कोटि कण्ठोंसे निकली ऐसी संकीर्तन-स्वरधारा भारत-वसुन्धराको स्वर्ग बनानेमें सक्षम है।

कीर्तन-भक्त

(रचयिता—श्रीपृथ्वीसिंहजी चौहान 'प्रेमी')

बंगमें मृदंग पै गौरांगने उमंग भर,
बाँट्यो हरि-कीर्तनको आनन्द अपार है।
तानपूरो सूरको त्यौं खंजरी कबीरजीकी,
दूर-दूर कीन्हों नीकी भक्तिको प्रचार है॥
तुकाराम हरि-नाम-गान तैं भंडारा गिरि,
नरसी गुँजायो जूनागढ़-गिरनार है।
घूँघरू-झनक, करतालकी खनक मीराँ,
भक्तिकी मेवाड़में बहाई गंग-धार है॥

ऐकान्तिक कीर्तनका महत्त्व

(लेखक—श्रीरामहर्षणदासजी महाराज)

जनमानसकी मलिन वासनाओंको विनष्ट करनेके लिये भगवन्नाम एवं भगवच्चरित्र उसी प्रकार समर्थ है, जैसे सूखे तृणके पर्वतको भस्म करनेके लिये दियासलाईकी एक काड़ीमें छिपी हुई अग्नि। अतएव भगवान्‌के नाम या उनके गुण, वैभव एवं चरित्रका संकीर्तन सभी युगोंमें सभी श्रेष्ठतम साधकोंके द्वारा अनवरत होता चला आया है। शिव, शिवा, ब्रह्मा, नारद, सरस्वती, प्रह्लाद, ध्रुव, हनुमान्, जनकसुवन लक्ष्मीनिधि, व्यास, शुकदेव, तुलसी, मीरा, चैतन्य आदि अनेक कीर्तनप्रिय भगवद्भक्त इसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

कीर्तनकार भक्तोंकी तीन श्रेणियाँ हैं—साधक, ऐकान्तिक और परमैकान्तिक। तदनुसार कीर्तन भी साधनस्वरूप, ऐकान्तिक और परमैकान्तिक होता है। साधक अपने पाप-ताप एवं दुःख-दोषको नष्ट करनेके लिये दस नामापराधोंका त्याग करके साधनस्वरूप कीर्तनका अवलम्बन करता है। ऐकान्तिक कीर्तन-प्रिय प्रेमी कीर्तनका अनवरत अभ्यास इसलिये करता है कि उसके स्वरूपानुकूल होनेसे उसके स्वरूपकी हानि न हो और वह अपने इष्ट आराध्यका दर्शन शीघ्र कर सके। परमैकान्तिक भक्तोंसे परमैकान्तिक कीर्तन किये बिना क्षणभर भी रहा नहीं जाता, इसलिये उनसे ही नहीं, अपितु उनके रोम-रोमसे कीर्तन-ध्वनि अपने-आप निकलती रहती हैं—उन्हें कीर्तन करनेका प्रयास नहीं करना पड़ता।

कीर्तनके अधिकारीको दैवी सम्पत्ति स्वयं वरण करने लगती है तथा उसके हृदयमें प्रभुके नाम, रूप, लीला एवं धामके प्रति अनुरक्ति उत्पन्न हो जाती है। वह कीर्तनकार सबके सम्मानका पात्र बनकर अपनी दिनचर्या एवं सदुपदेशोंसे जगत्-कल्याणका हेतु बन जाता है। ऐकान्तिक कीर्तन करनेवाला भगवद्भक्त बाह्य जगत्‌से चित्तको हटाकर एकमात्र अपने भगवान्‌में ही केन्द्रित कर कीर्तन एवं प्रभुके ध्यानजनित आनन्दका उपभोग करता है तथा ध्यानमें एकमात्र पुरुषोत्तम भगवान्‌के समीप रहनेका अभ्यासी बनकर दृश्य जगत्‌को अदृश्यके उदरमें डालकर उसे सदाके लिये भूल जाता है। वह कीर्तन करनेका व्रत लेकर प्रभु-प्रेममें सदा सराबोर रहकर समीपवर्ती प्रान्तको प्रभु-प्रेममय बना देनेकी सहज वृत्तिवाला हो जाता है—

जबहिं राम कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा॥
द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना॥

ऐकान्तिक कीर्तनकारके शरीरमें अश्रु, कम्प आदि अष्ट सात्त्विक भावोंका सदा उदय होता है। वह उसके हृदयके अन्तरालमें छिपे हुए प्रेमका प्रकाश है, जो प्रेमास्पदके नाम, रूप, गुण, लीला एवं धामकी स्मृति-रूप स्पर्शसे दृष्टिगोचर होता रहता है। ऐकान्तिक कीर्तनकार सदा दैन्यानुसंधानी, दैन्यकी साक्षात् प्रतिमा, तरुसे भी अधिक सहिष्णु, परहितापेक्षी, अमानी और दूसरेको मान देनेवाला होता है। शास्त्र-सम्मत प्रेमी संतोंकी रहनी उसके स्वभावमें उतर आती है, वह कामना, अहं और ममतासे सर्वथा अछूता रहकर अपने प्रेमास्पदकी प्रतिमूर्ति ही बन जाता है। वह जो चेष्टा करता है, वह उसके प्यारेकी लीला ही होती है, इसलिये '**भक्ता ऐकान्तिनो मुख्याः**' अर्थात् ऐकान्तिक कीर्तन करनेवाले भक्त श्रेष्ठतम हैं या यों कहिये कि ऐकान्तिक कीर्तनकी महिमा ही श्रेष्ठतम है।

ऐकान्तिक कीर्तन जब उच्चतम भावको प्राप्त होता है, तब वही परमैकान्तिक संज्ञाको प्राप्त हो जाता है।

इस अवस्थामें वह अनिवार्य ही नहीं, अपितु अन्यके अनुभवमें न आनेवाला हो जाता है। कीर्तनप्रियके हृदयमें विरहकी दस दशाएँ (चिन्ता, जागरण, उद्वेग, कृशता, मलिनता, प्रलाप, उन्माद, मोह, व्याधि और मरण) उत्पन्न हो जाती हैं तथा नाम-स्मरण करते ही अश्रुप्रवाह एवं मूर्च्छा आदि होते रहते हैं। उसके जीवनमें नित्य जीना और नित्य मरना है। विदेह-वंश-वैजयन्ती श्रीसीताजी, वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी और श्रीचैतन्य महाप्रभुके अन्तिम बारह वर्षोंके जीवनमें सर्वोच्च परमैकान्तिक कीर्तनकी स्थितियोंका दर्शन किया जा सकता है।

परमैकान्तिक कीर्तनकार प्रेमके उच्चस्तरीय महाभावकी स्थितिमें पहुँचकर प्रभुके संयोग-वियोगकी लीलाओंका नित्य दर्शन करता रहता है। उसकी विरह-व्यथा जैसे उसे तड़पाती रहती है वैसी ही स्थिति उसके प्रेमास्पदमें भी उत्पन्न हो जाती है। प्रेमास्पद भी अपने प्रेमीका नाम लेते ही विरहके प्रवाहमें बह जाता है और मिलनेकी त्वराको लेकर शीघ्र प्रेमीके सामने प्रकट होता है तथा उसे अपना सर्वविध अनुभव कराये बिना कृतकृत्य नहीं होता (**कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति, अनुभावयति च भक्तान्**)। इतना ही नहीं, वह प्रेमास्पद स्वयं प्रेममें मत्त होकर भक्तके नामका कीर्तन करने लगता है—**'भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम रामु जपु जेही।'** और **'पीछे पीछे प्रभु फिरैं कहत कबीर कबीर'**॥'—इस प्रकार परमैकान्तिक कीर्तनकार परम प्रभुका परम प्यार पाकर सब कुछ पा लेता है, फिर उसके लिये कोई प्राप्तव्य वस्तु अवशिष्ट नहीं रह जाती।

अनन्यशेषत्व, अनन्यभोगत्व, अनन्यशरणत्व, तदेक-निर्वाहकत्व, वियोगमें विकलता और योगमें आनन्दकी स्थितियाँ उसमें सहज ही स्थित रहती हैं, जो प्रभुके आकर्षणकी कारण होती हैं। वह अपने प्रेमास्पदका प्राण, हृदय और आत्मा हो जाता है। इतना ही नहीं, त्रिपुटीके विलीन होनेपर तो वह एक अचिन्त्य, अतर्क्य, अविनाशी, अद्वय तत्त्वके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं रहता। ऐसे प्रेमी कीर्तनकारकी महिमाका अनुभव उसके आराध्य करते हैं। संसारके पाप-ताप, दुःख-दोष, शोक-मोह तो भगवन्नामके आभासमात्रसे दूर हो जाते हैं। हाँ, इसके लिये नाम-संकीर्तन करनेवाले साधकके हृदयमें गुरु-वचनोंमें प्रीति-प्रतीतिको प्रसव करनेवाली बुद्धिका वैशद्य अति आवश्यक है, जिससे वह सुरीतिसे साधन-पथमें चलकर साध्यको सुलभतासे प्राप्त कर ले। कीर्तनकारके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं—

य एतद्देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च।
कीर्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

'जो मनुष्य इन देवाधिदेव विष्णुके जन्म और कर्मोंका श्रद्धापूर्वक कीर्तन करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

नामु लेत भव सिंधु सुखाहीं। करहु बिचार सुजन मन माहीं॥

× × × ×

तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तो भजु राम काम सब पूरन करहिं कृपानिधि तेरो॥

× × × ×

रामनामजपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम्'''॥

'रामनाम' जपनेवालोंको भय कहाँ? वह तो समस्त तापको शमन करनेके लिये एकमात्र औषध है।' अतएव अविद्याजनित जगज्जालके क्लेशों और कषायों एवं वर्तमान समयकी भीषण भयावह दुःखदावाग्निसे बचनेके लिये तथा शान्तिकी शय्यापर सुखपूर्वक सोनेके लिये मनुष्यमात्रको भगवन्नामका कीर्तन अनिवार्यरूपसे नित्य करना चाहिये; अन्यथा इस कलिकालमें अन्य उपाय तो अपाय ही बन जायँगे और श्रममात्र ही हाथ लगेगा। इसलिये **'तुलसी अजहुँ सुमिरु रघुनाथहिं तरो गयंद जाके एक नायँ'**··

*

जो सज्जन ऐहिक कामनाओंसे मुक्त होकर भगवत्-प्रेमकी पिपासासे परमार्त हो रहे हैं, वे ही ऐकान्तिक कीर्तनके सच्चे अधिकारी हैं। वेदान्तवादियोंका जो तुरीय तारुण्य है, अष्टाङ्गयोगियोंके योगरूपी कल्पद्रुमका जो कैवल्य-फल है, कर्मठोंकी कर्मवासनाकी परिसमाप्ति-रूप निष्काम भावनाका जो भव्य रूप है, वही भक्तोंके भगवान्‌के विग्रहकी कान्ति है, जिसे प्रत्यक्ष करना (आत्मा और परमात्माका प्रत्यक्ष अनुभव) प्रभु-प्रेमियोंके प्रेमका प्रथम सोपान है। यह प्रेमप्रवाह ऐकान्तिक कीर्तनकी प्रबल वर्षासे परिवृद्धिकी सीमाको पारकर भगवद्रूप-सिन्धुमें समाविष्ट हो जाता है, तब अपने अस्तित्वका दर्शन प्रयत्न करनेपर भी नहीं प्राप्त किया जा सकता।

ऐकान्तिक कीर्तन-प्रिय भक्तको 'एक' अर्थात् परब्रह्म परमात्मा भगवान् जब वरण करके अपने 'अन्तिक' अर्थात् समीपमें अङ्कवत् रख लेते हैं, तब वह भक्त ऐकान्तिक कहलाता है और उसके द्वारा किया गया गुण, नाम एवं वैभवका कीर्तन ऐकान्तिक संज्ञाको प्राप्त होता है। ऐसे अधिकारी भक्तोंके दर्शन एवं स्पर्शसे अपात्र भी प्रभु-प्रेमी बन जाते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके अचेत शरीरका स्पर्श कर एक मांसभोजी मछहारा प्रेमोन्मत्त होकर नाचने लगा था एवं जगाई-मधाई-जैसे पापमूर्ति कीर्तन करके नृत्य करने लगे थे।

ऐकान्तिक कीर्तनकार पारसके समान लोहेको सोना ही नहीं बना देते, अपितु अपने समान पारस बना देते हैं। इसलिये ये त्रिभुवनको पवित्र करनेकी क्षमता रखते हैं; क्योंकि इनके रूपमें पतितपावन भगवान् ही विचरण किया करते हैं—**'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।'** इसलिये ऐकान्तिक कीर्तन-प्रिय बननेके लिये उक्त प्रकारके महापुरुषोंका संग अवश्य अपेक्षित है; क्योंकि उन्हींकी कृपासे हृदयमें ऐकान्तिकप्रियता उत्पन्न होगी। इन ऐकान्तिक कीर्तन-भक्तोंकी महिमा कहते हुए भरद्वाज मुनि शपथ खाकर श्रीभरतजीसे कहते हैं—

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा॥

अब पाठक स्वयं अपने मनमें ऐकान्तिक कीर्तन-प्रिय भक्तोंकी महिमा समझकर स्वयं ऐकान्तिक कीर्तन करनेकी प्रेरणा प्राप्त करें, जिससे वे भी ऐकान्तिक भक्तोंकी पङ्क्तिमें बैठकर लोक और परमार्थप्रियताको अपनाकर परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान्‌के परम प्रेमको प्राप्त कर सकें।

मनको सीख

जो तू रामनाम चित धरतौ।
अबको जन्म आगिलो तेरो दोऊ जन्म सुधरतौ॥
जमको त्रास सबै मिटि जातो भक्त नाम तेरो परतौ।
तंदुल घिरत सँवारि स्यामको संत परोसो करतौ॥
होतो नफा साधुकी संगति मूल गाँठते टरतौ।
सूरदास बैकुंठ पैंठमें कोऊ न फैंट पकरतौ॥

संकीर्तन-ध्वनिसे पर्यावरणमें शुद्धि

(लेखक—डॉ० श्रीराधाकान्तजी, एसोसिएट प्रोफेसर)

अब समय आ गया है कि वैज्ञानिक मस्तिष्कको भी चिन्तन करना पड़ रहा है। विश्वके समक्ष एक महान् भयंकर समस्या है, दूषित पर्यावरणकी। उसका समाधान क्या हो? जिनके हाथमें सत्ता है, वे भी चिन्तित हैं कि अतिशीघ्र जिस-किसी भी प्रकारसे दूषित पर्यावरणकी समस्याका निकट भविष्यमें ही समाधान अपेक्षित है। सभी सम्भव उपाय—पेड़-पौधे लगाना, वनोंकी सुरक्षा करना आदि वैज्ञानिकोंद्वारा किये भी जा रहे हैं; किंतु वे इसी प्रकार है, जैसे एक जलाशयमेंसे जलका उपयोग तो कई गुना अधिक (तीव्र) गतिसे किया जाय; परंतु उसमें जलसंचयका प्रयत्न अति मन्द गतिसे हो। इससे तो निश्चय ही वह शीघ्र विनाशकी ओर उन्मुख हो जायगा।

विगत दो दशकोंसे दूषित पर्यावरणकी समस्या इतनी गहन हो गयी है, जितना उससे पूर्व कई शताब्दियोंमें भी न हुई थी। वायु, जल और शब्द—इन तीनोंसे प्रदूषण बढ़कर पर्यावरण प्रदूषित हो जाता है। आज यह प्रदूषण चिन्त्य-स्थितिमें पहुँच गया है। प्रचार-साधनोंमें ध्वनि-विस्तारक यन्त्र (लाउडस्पीकर आदि) और दूकानोंके शटरोंके खोलने एवं बंद करनेसे भी ध्वनि-प्रदूषण बढ़ रहा है। इनके सिवा नदियोंके किनारे बसे नगरोंके गंदे नालोंसे उनका जल प्रदूषित होता जा रहा है। उसका कारण है, एकमात्र आधुनिक सभ्यता। स्कूटर, मोटर, रेलगाड़ी तथा कल-कारखानोंकी ध्वनि और धुआँ ही नहीं, अपितु लाउडस्पीकर, रेडियो, टेपरिकार्डर, सिनेमा, टेलीवीजन आदिका अत्यधिक प्रचलन भी पर्यावरणको अशुद्ध करनेमें प्रधान हेतु बन गया है। निकट भविष्यमें इनका प्रचलन और अधिक बढ़ेगा; क्योंकि विश्वके महान् सम्पन्न देश अमेरिकामें सामान्य नागरिकोंको स्नानघर, शौचालय आदि-जैसे स्थानोंमें भी टेपरिकार्डर-रेडियोको सुननेका व्यसन हो गया है। कभी-कभी किन्हीं व्यक्तियोंको जीवनयापन व्यसनकी वस्तुके अभावमें दुष्कर हो जाता है। किसी भी वस्तुका प्रारम्भमें धीरे-धीरे अभ्यास होता है, तत्पश्चात् उस वस्तुके सेवनकी आदत पड़ जाती है। अन्तमें जब आदत दीर्घकालतक निरन्तर चलती रहती है, तब वह स्वभाव बन जाती है और स्वभाव छूटता नहीं—**'स्वभावो दुरतिक्रमः'**। बुरी वस्तुके सेवनका स्वभाव ही व्यसन कहलाता है। आधुनिक सभ्यताकी इन वस्तुओंका प्रचलन आगामी दशकसे पूर्व ही इतना अधिक हो जायगा कि घर-घरमें टेलीवीजन, स्कूटर आदि हो जायँगे। इससे ध्वनि-प्रदूषणमें और अधिक वृद्धि होगी।

आयुर्वेदके मतानुसार जल, तेज और वायु जैसे जगत्को धारण करते हैं, उसी प्रकार वात (वायु), पित्त (तेज) और कफ (जल-तत्त्व) प्रत्येक प्राणीकी देहको धारण करते हैं—

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद् देहे कफपित्तानिलास्तथा॥
(सुश्रुत-सू० २१। ८)

जल और तेजसे भी अधिक महत्त्व वायुका है। आचार्य चरकने अपनी संहिताके सूत्र-स्थानमें **'वातकलाकलीय'** का वर्णन किया है। उसमें वायुके गुण, कर्म आदिका वर्णन करते हुए उसे नियन्ता माना है—**वायुस्तन्त्रयन्त्रधरः प्राणोदानसमानव्यानापानात्माप्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानां नियन्ता प्रणेता च मनसः।** (चरकसूत्र १२। ८)

आचार्य चरकके मतानुसार जनपदके विनाशको **'जनपदोद्ध्वंस'** नामसे सम्बोधित किया गया है और जनपदोद्ध्वंसका मूलकारण 'अधर्म' माना गया है। आगे प्रसङ्गानुसार वायु, जल, देश और कालकी विशेष व्याख्या करते हुए इन चारोंको भी जनपदोद्ध्वंसका कारण बतलाया है, जो सम्भवतः सहायक कारण ही कहे जा सकते हैं—**१-प्रागपि चाधर्मादृते नाशुभोत्पत्तिरन्यतोऽभूत्।**

(चरक-विमान ३। २५)

२-युगे युगे धर्मपादः क्रमेणानेन हीयते।
गुणपादश्च भूतानामेवं लोकः प्रलीयते॥

(चरकविमान ३। २८)

३-तमुवाच भगवानात्रेयः—सर्वेषामग्निवेश! वाय्वादीनां यद्वैगुण्यमुत्पद्यते तस्य मूलमधर्मः, तन्मूलं वासत्कर्म पूर्वकृतम्, तयोर्योनिः प्रज्ञापराध एव। (चरक-विमान ३। २३)

४-वाताज्जलं जलाद् देशं देशात् कालं स्वभावतः।
विद्याद् दुष्परिहार्यत्वाद् गरीयस्तरमर्थवित्॥
वाय्वादिषु यथोक्तानां दोषाणां तु विशेषवित्।
प्रतीकारस्य सौकर्यं विद्याल्लाघवलक्षणम्॥

(चरकसं० विमा० ३। १३-१४)

वैयाकरणोंकी परम्परामें 'शब्द'को 'ब्रह्म' कहा गया है। 'शब्द' आकाशमहाभूतका गुण है। आकाश अतिसूक्ष्म तत्त्व है और वायुकी अपेक्षा अति दिव्यगुणसम्पन्न है। नाम-संकीर्तनसे जो ध्वनि-तरङ्गें उत्पन्न होती हैं, उनसे आकाश-महाभूतपर दिव्य प्रभाव पड़ता है। आकाशके अति सामीप्य होनेसे वायु-तत्त्व तुरंत भगवन्नामसंकीर्तनसे प्रभावित होता है। भगवन्नामसंकीर्तनकी दिव्यध्वनिके प्रभावसे आकाश और वायु महाभूतोंमें ही नहीं, अपितु समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त तमोगुण और रजोगुण स्वतः ही शान्त होने लगते हैं तथा सत्त्वगुणका अचिन्त्य प्रभाव व्याप्त हो जाता है, जैसे सूर्यके प्रकाशसे स्वतः ही अन्धकार विलुप्त हो जाता है। इस प्रकार भगवन्नाम-संकीर्तनसे जनपदोद्ध्वंसके हेतु वायु, जल, देश और कालकी शुद्धि होती है। परिणाम-स्वरूप पर्यावरणकी शुद्धि हो जाती है। भगवन्नाम-संकीर्तनसे जनपदोद्ध्वंसके मूल कारण अधर्मका भी नाश हो जाता है। कविकुलचूडामणि गोस्वामी तुलसीदासजीने संकीर्तनको कलियुगमें कल्याणका एकमात्र उपाय बतलाया है—

कलिजुग केवल हरिगुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

अन्यत्र भी कहा है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

समस्त संसार यत्किञ्चित् आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक रोगोंसे ग्रस्त है। रोग-प्रतिबन्धक तथा रोग-निवारक औषधके रूपमें भगवन्नाम-संकीर्तन दिव्य प्रभावकारी है—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

दास्य-भक्तिके आचार्य श्रीहनुमान्‌जी रोग और उसकी औषधके सम्बन्धमें अपने स्वामी श्रीरामसे स्पष्ट कहते हैं—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

श्रीहनुमंतलालके मतानुसार श्रीरामका सुमिरन-भजन (संकीर्तन) न होना ही रोग है। आयुर्वेदके आचार्य विजयराघवने टीका करते हुए रोगकी संक्षिप्त चिकित्साका एक सूत्र बतलाया है—

'संक्षेपतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनम्॥'

अर्थात्—रोगोत्पादक कारणका त्याग ही संक्षिप्त चिकित्सा है। विपत्ति (रोग) को दूर करनेकी

एकमात्र औषध सुमिरन-भजन (संकीर्तन) करना ही है—

'रा' अक्षरके कहत ही निकसत पाप पहार।
पुनि भीतर आवत नहिं देत 'म'कार किंवार॥

उच्चस्वरमें संकीर्तन करनेसे—१–समस्त पाप बाहर निकलकर नष्ट हो जाते हैं, २–प्राणायाम सहज-रूपसे हो जाता है। शुद्ध प्राणवायु तन-मनको शुद्ध कर देता है। ३–ताल-स्वरकी एकता होनेपर संकीर्तनसे दिव्य चमत्कार—अश्रु, पुलक आदि होकर प्रेमका प्रादुर्भाव होता है। जिससे न केवल मानस रोग, अपितु समस्त प्रकारके रोगोंसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है तथा ४–शब्दब्रह्मका अचिन्त्य प्रभाव संकीर्तनसे प्रत्यक्ष अनुभव होता है। संकीर्तनसे दिव्य ध्वनि-तरङ्गें उत्पन्न होती हैं, जिनसे पर्यावरणकी शुद्धि हो जाती है। अतः प्रदूषण दूर करनेके लिये जगह-जगह संकीर्तनका आयोजन करना चाहिये।

श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव और संकीर्तनानन्दकी झाँकी

(लेखक—श्रीओमप्रकाशजी शर्मा)

श्रीरामकृष्ण परमहंसदेवकी जीवनीमें हम पढ़ते हैं—

"भक्त निर्वाक् होकर यह अवतार-तत्त्व सुन रहे हैं। कोई-कोई सोच रहे हैं, 'क्या आश्चर्य है। वेदोक्त अखण्ड सच्चिदानन्द—जिन्हें वेदने मन-वचनसे परे बताया है—क्या वे ही हमारे सामने साढ़े तीन हाथका मनुष्य-शरीर लेकर आते है? जब श्रीरामकृष्ण कहते है तो वैसा अवश्य ही होगा। यदि ऐसा न होता तो 'राम राम' कहते हुए इन महापुरुषको क्यों समाधि होती! अवश्य इन्होंने हृदयकमलमें रामका रूप देखा होगा।'

× × ×

थोड़ी देरमें कोन्नगरसे कुछ भक्त मृदंग और झाँझ लिये संकीर्तन करते हुए बगीचेमें आये। मनमोहन, नवाई आदि बहुत-से लोग नामसंकीर्तन करते हुए श्रीरामकृष्णके पास उसी उत्तर-पूर्ववाले बरामदेमें पहुँचे। श्रीरामकृष्ण प्रेमोन्मत्त होकर उनसे मिलकर संकीर्तन कर रहे हैं। नाचते-नाचते बीच-बीचमें समाधि हो जाती है। वे संकीर्तनके बीचमें निःस्पन्द होकर खड़े रहते हैं। उसी अवस्थामें भक्तोंने उनको फूलोंकी बड़ी-बड़ी मालाओंसे सजाया है। भक्त देख रहे हैं, मानो सामने ही गौराङ्ग खड़े हैं। गहरी भावसमाधिमें मग्न हैं। श्रीगौराङ्गकी तरह श्रीरामकृष्णकी भी तीन दशाएँ हैं, कभी अन्तर्दशा—तब जड़ वस्तुकी भाँति आप बेहोश और निःस्पन्द हो जाते हैं, कभी अर्धबाह्य दशा—तब प्रेमसे भरपूर होकर नाचते हैं और फिर बाह्य दशा—तब भक्तोंके साथ संकीर्तन करते हैं।

श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न हो खड़े हैं। गलेमें मालाएँ हैं। कहीं गिर न पड़े, इसलिये एक भक्त आपको पकड़े हुए हैं। चारों ओर भक्त खड़े होकर मृदंग और झाँझके साथ कीर्तन कर रहे हैं। श्रीरामकृष्णकी दृष्टि स्थिर है। श्रीमुखपर प्रेमकी छटा झलक रही है। आप पश्चिमकी ओर मुँह किये हैं। बड़ी देरतक सब लोग यह आनन्दमूर्ति देखते रहे।

× × ×

समाधि छूटी। दिन चढ़ गया है। थोड़ी देर बाद कीर्तन भी बंद हुआ। भक्तगण श्रीरामकृष्णको भोजन करानेके लिये व्यग्र हुए। कुछ देर विश्रामके पश्चात् श्रीरामकृष्ण एक नया पीला वस्त्र पहने अपनी छोटी खाटपर बैठे। आनन्दमय महापुरुषकी उस अनुपम ज्योतिर्मय रूपछविको

श्रीरामकृष्ण परमहंस

संकीर्तनकी भावमग्नता
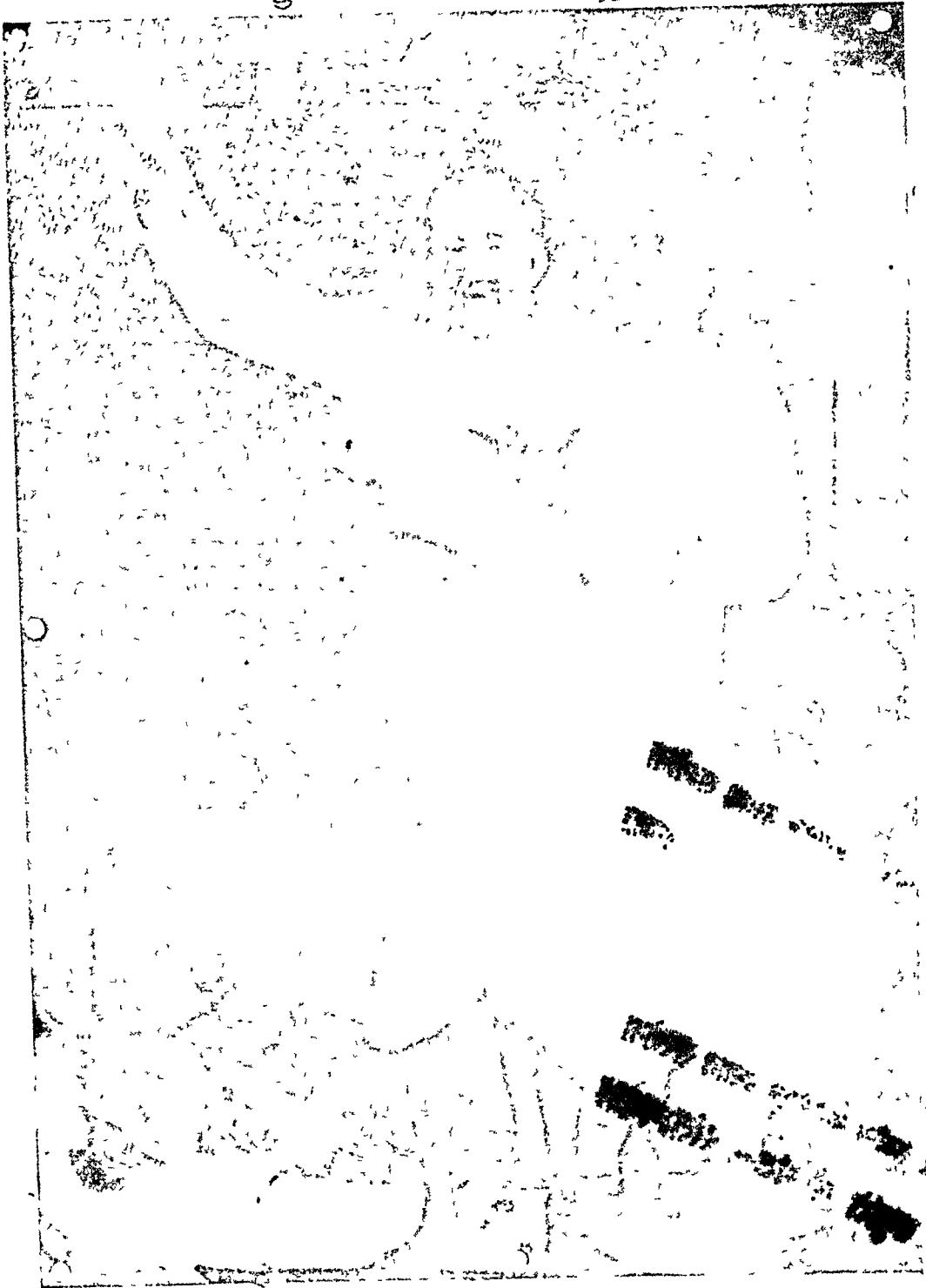
भक्त देख रहे हैं, पर देखनेकी प्यास नहीं मिटती। वे सोचते हैं कि इसे देखते ही रहें, इस रूपसागरमें डूब जायँ !"

यह संकीर्तनका और उसके सुपरिणाम-स्वरूप भाव-समाधिका एक अनुपम दृश्य है। एक आनन्दका हाट-सा लगा हुआ है। जब भगवत्प्रेम इतना प्रगाढ हो जाता है और व्यक्ति इतना तन्मय एवं भाव-विभोर हो जाता है तब उसकी ऐसी ही दिव्य अवस्था हो जाती है। उन सब लोगोंको भी जो परम सौभाग्यवश उसके सम्पर्कमें आ जाते हैं, वह अपने साथ इस मृत्युलोकमें ही आनन्दधामकी यात्रा करा देता है। (ऐसे संकीर्तनानन्दके अलौकिक तथा अत्यन्त मनमोहन दृश्य 'श्रीरामकृष्णवचनामृत'के पन्ने-पन्नेपर बिखरे पड़े हैं। जिस कारण इस ग्रन्थको भक्ति-साहित्यमें इतना श्रेष्ठ माना गया है। श्रीरामकृष्णदेवकी उक्त अवस्थाको देखकर सहजमें ही भगवद्गीताके उन श्लोकोंका स्मरण हो आता है, जिनमें भगवान् श्रीकृष्ण ऐसे आत्मासे परमात्मामें रमण करनेवाले महापुरुषके सम्बन्धमें कहते हैं कि उसकी परम आनन्दमय ईश्वरी-स्थितिकी तुलनामें संसारका सबसे बड़ा सुख, सबसे बड़ा लाभ भी नगण्य है।

फ्रांसके प्रसिद्ध लेखक रोमाँ रोलाँ श्रीरामकृष्णदेवकी अद्भुत लीलामें लिखते हैं—'जिसके द्वारा इस युगमें अनेक लोगोंका उद्धार हुआ है और होगा, कोई काल्पनिक स्वर्गलोककी नहीं, अपितु इसी पृथ्वीकी है; कोई पौराणिक कालके इतिहासकी नहीं, किंतु अपने ही समयकी है—इतनी निकट कि मानो हमारे ही समक्ष घटी हो और उसके प्रमुख पात्रको हम आज भी थोड़ी चेष्टा करके हाथ बढ़ाकर छू सकते हैं।'

'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत'में हम आगे चलकर पढ़ते हैं—एक अन्य संकीर्तनकी समाप्तिपर—

'कीर्तनके बाद श्रीरामकृष्ण भावमें विभोर होकर बैठे हैं। राखालसे कह रहे हैं—यहाँका जल श्रावण मासका जल नहीं है। श्रावण मासका जल पर्याप्त तेजीके साथ आता है और फिर निकल जाता है। यहाँ पातालसे निकले हुए स्वयम्भू शिव हैं, स्थापित किये हुए शिव नहीं।'

उनके कीर्तन, भजन, गायनके दीर्घ और व्यापक प्रभावका कारण था कि वह कभी भी केवल औपचारिक या यन्त्रवत् नहीं होता था, किंतु पूरी तरह तन्मय तथा ईश्वरीय भावसे प्रेरित होकर किया जाता था—इतना कि उस समय उनको अपने शरीरकी भी सुध-बुध नहीं रहती थी। यदि कोई ऐसी कीर्तन-मण्डली उनके सामने कीर्तन करने आ जाती जिसके सदस्योंमें उपर्युक्त अनिवार्य गुण नहीं होते, या वे चरित्रहीन होते तो श्रीरामकृष्णमें कोई भाव उदय नहीं होता। ऐसी परिस्थितिमें वे स्वयं अपने सुमधुर कण्ठसे, भक्ति या प्रेम-भावसे ओत-प्रोत होकर भजन गाने लगते और सारे वातावरणका एक प्रकारसे आध्यात्मिक विद्युतीकरण कर सबके मनको बहुत ऊँचे स्तरपर उठा ले जाते। वास्तवमें यथार्थ संकीर्तनकार स्वामी विवेकानन्दजी कहते थे, मनुष्यके जीवन और चरित्रपर स्थायी रूपसे प्रभाव पड़ना चाहिये; अन्यथा वह संकीर्तन ही नहीं कहा जा सकता। उस भूमिको, जहाँपर पूर्ण ईश्वरानुरागसे भजन-कीर्तन तथा नाच हुए हों, श्रीरामकृष्णदेव अत्यन्त पवित्र मानते थे और भूमिष्ठ होकर वहाँ प्रणाम करते थे। अन्ततः ईश्वर भावको ही तो ग्रहण करते हैं अतः सही भावको किसी भी प्रकारसे बनाये रखना अति आवश्यक है।

श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे कि इस युगमें सामान्यतः लोगोंके प्राण अन्नगत होते हैं तथा कई कारणवश जप, ध्यान, योगादि साधन सुलभ नहीं होते। ऐसी अवस्थामें नारदीय भक्ति (सकीर्तन-प्रधान भक्ति)

ही ईश्वरोपलब्धिका सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। इस कारण इस समय संकीर्तनका विशेष महत्त्व तथा प्रयोजन है। ज्ञानहीन एवं क्रियाहीन दुर्बल मनुष्य जब सामूहिक रूपसे ईश्वरकी उपासना अथवा नाम-गुण-गान करते हैं, तब उसमें विशेष शक्तिका सञ्चार हो जाता है और वही अवस्था उसकी सहजमें हो जाती है जो बहुत जप-तप करनेपर संत-महात्माओंकी होती है। संकीर्तन सहज योग है और सहज ध्यान भी। वह हृदयमें जो हृदयनाथ बैठे हैं, उनके साथ भावात्मक एकता करानेका सरल और आनन्दपूर्ण साधन है। इसके अतिरिक्त इसमें एक और विशेषता है—यह 'बहुजन-हिताय और बहुजनसुखाय'की उपलब्धिका माध्यम भी है। ऋग्वेदमें हमें यह आदेश मिलता है कि हमारे समान एवं उच्च विचार हों, समान लक्ष्य, समान चेष्टा आदि हों। यदि हम सम्मिलित होकर समान रूपसे प्रभुभाव-प्रेरित हो संकीर्तन करें तो वहाँका आध्यात्मिक वातावरण कुछ और ही हो जाता है—अद्भुत, व्यापक, गहरा और शक्तिशाली—सहयोगकी परिभाषामें एक और एक मिलकर दो नहीं, ग्यारह हो जाते हैं। ईसाइयोंके धर्म-ग्रन्थ बाइबिलमें भी लिखा है—

आनन्दपूर्ण ध्वनिके द्वारा ईश्वरकी आराधना करो। तथा ईसामसीह भी कहते हैं—'जहाँ भी सामूहिक रूपसे दो या तीन भक्त मुझे पुकारते हैं, वहाँ मैं उपस्थित हो जाता हूँ।' इसकी उपयोगिता देखते हुए ही रामकृष्ण-आश्रममें भक्त लोग बड़े चावसे 'खण्डन भव-बन्धन'आदि आरती गाते हैं तथा प्रत्येक एकादशीको राम-नाम-संकीर्तन करते हैं। अन्ततोगत्वा प्रभु स्वयं कहते हैं कि वैकुण्ठमें या योगियोंके हृदयमें वे निवास नहीं करते, किंतु जहाँ भी उनकी भक्तमण्डली प्रेमसे उनका नाम-गुणगान करती है, वहीं वे बसते हैं।

संकीर्तनप्रेमी श्रीरामकृष्ण परमहंस

(ब्रह्मचारी श्रीप्रज्ञाचैतन्यजी महाराज)

स्वामी विवेकानन्दजीने एक बार अपने परम श्रद्धेय गुरु श्रीरामकृष्णके विषयमें कहा था कि वे बाहरसे भक्त तथा अन्तर्हृदयसे ज्ञानी थे। उनके जीवनमें सर्वोच्च भक्ति तथा परम ज्ञानका अद्भुत एवं अपूर्व समन्वय है। उनका चरित्र लोकविश्रुत है, अतः हम उनके जीवन तथा वाणीके केवल उन्हीं अंशोंकी चर्चा करेंगे, जो हमारे प्रकृत विषयसे सम्बद्ध हैं। अपने पास आनेवाले अनगिनत साधकोंमेंसे अधिकांशको वे भक्ति-मार्गमें ही प्रवृत्त करते हुए नाम-संकीर्तनका उपदेश दिया करते थे। उनके कुछ उपदेश निम्नलिखित हैं—

'कलिकालमें भगवदीय भक्ति है—सदा उन प्रभुके नाम और गुणोंका कीर्तन करना। जिन्हें समय नहीं है, उन्हें कम-से-कम शामको तालियाँ बजाकर एकाग्रचित्त हो 'श्रीमन्नारायण, नारायण' कहकर उनके नामका कीर्तन करना चाहिये। अन्य युगोंमें नाना-प्रकारके कठोर साधनयुक्त तपका नियम था, पर इस युगमें उनका अनुष्ठान बहुत कठिन है। एक तो जीवकी आयु बहुत अल्प है, उसमें भी अनेक बीमारियाँ उसे निर्बल बना देती हैं, वह कठिन तपस्या करे तो कैसे करे? अतः नामकीर्तन ही उसका कर्तव्य है। नामका गुणगान करनेसे देहसे सब पाप भाग जाते हैं। देहरूपी वृक्षमें पाप-पक्षी हैं, उनके लिये नामकीर्तन मानो हथेली बजाना है। हथेली बजानेसे जिस प्रकार वृक्षके ऊपरके सभी पक्षी भाग जाते हैं, उसी प्रकार उनके नाम-गुणकीर्तनसे सभी पाप भाग जाते हैं। फिर देखो, जैसे मैदानके तालाबका जल

धूपसे स्वयं ही सूख जाता है, वैसे ही नाम-गुणकीर्तनसे पापरूपी तालाबका जल स्वयं ही सूख जाता है।

'सदा ही उनका नाम-गुण-गान, कीर्तन और प्रार्थना करनी चाहिये। पुराने लोटेको प्रतिदिन मॉंजना होगा, एक बार मॉंजनेसे क्या होगा? भगवान्‌का नाम लेनेसे देह-मन शुद्ध हो जाते हैं। ईश्वरके नामपर ऐसा विश्वास होना चाहिये—क्या मैंने ईश्वरका नाम लिया, अब भी मेरा पाप रहेगा? मेरा अब बन्धन क्या है? पाप क्या है?'

'चैतन्यदेवने इस नामका प्रचार किया था, अतएव अच्छा है। देखो, चैतन्यदेव कितने बड़े पण्डित थे! वे प्रेममें हँसते, रोते, नाचते, गाते हैं।... एक बार वे मेडगॉंवके पाससे जा रहे थे। उन्होंने सुना कि इस गॉंवकी मिट्टीसे ढोल बनता है। बस, भावावेशमें विह्वल हो गये; क्योंकि संकीर्तनके समय ढोलका ही वाद्य होता है।

'जानकर, अनजान या भ्रमसे अथवा और किसी प्रकारसे क्यों न हो, श्रीभगवान्‌का नाम लेनेसे उसका फल अवश्य मिलेगा। कोई तेल लगाकर स्नान करने जाय तो उसका जैसा स्नान होता है, वैसा ही यदि किसीको ढकेलकर पानीमें गिरा दिया जाय तो उसका भी स्नान होता है तथा यदि कोई घरमें सोया हो और उसके बदनपर पानी डाल दिया जाय तो उसका भी वैसा ही स्नान हो जाता है।

'कलिकालके लिये है भक्तियोग, नारदीय भक्ति। ईश्वरका नाम-गुणगान और व्याकुल होकर प्रार्थना—'हे ईश्वर! मुझे ज्ञान दो, भक्ति दो, दर्शन दो!'...भक्ति ही सार है।' भगवान्‌के नाम-गुणोंका कीर्तन करते-करते भक्ति प्राप्त होती है। सब काम छोड़कर तुम्हें सन्ध्याके समय उनका नाम लेना चाहिये। अँधेरेमें ईश्वरकी याद आती है। यह भाव आता है कि अभी तो सब दीख रहा था, किसने ऐसा किया!'

अब हम उनके जीवनकी कुछ ऐसी घटनाओंका वर्णन करेंगे जो उनकी नाम-संकीर्तनके प्रति अभिरुचि प्रदर्शित करती है।

उनका संकीर्तन-प्रेम

बाल्यकालसे ही श्रीरामकृष्णको प्रातः-सायं तालियाँ बजाकर नाम-संकीर्तन करनेका अभ्यास था। कभी-कभी वे भावविभोर होकर नृत्य करते हुए, 'हरि बोल हरि बोल', 'हरि गुरु गुरु हरि,' 'हरि मेरे प्राण, गोविन्द मेरे जीवन,' 'मन कृष्ण, प्राण कृष्ण, ज्ञान कृष्ण, ध्यान कृष्ण, बोध कृष्ण, बुद्धि कृष्ण, तुम जगत् हो—जगत् तुममें है।' 'मै यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री हो' आदिका उच्च स्वरसे कीर्तन किया करते थे। अद्वैत वेदान्तकी साधनाकर निर्विकल्प-समाधिकी अनुभूति कर लेनेके पश्चात् भी वे प्रतिदिन ऐसा ही नाम-सकीर्तन किया करते थे। एक दिन दक्षिणेश्वरके पञ्चवटीनामक स्थानमें तीसरे पहर वे अपने वेदान्तके आचार्य स्वामी तोतापुरीजीके साथ बैठकर धर्मचर्चा कर रहे थे। संध्या हो जानेपर श्रीरामकृष्णने उनसे वार्तालाप करना बंद कर दिया और वे ताली बजा-बजाकर संकीर्तन करने लगे। उनके इस आचरणको देखकर श्रीमान् तोतापुरी अवाक् होकर सोचने लगे कि ये परमहंस रामकृष्ण, जो वेदान्त-मार्गके इतने उत्तम अधिकारी है, जिस निर्विकल्प-समाधिको पानेमें मुझे चालीस वर्ष लगे, उसे वे एक दिनमें उपलब्ध कर लेनेवाले है, तथापि वे इस प्रकार हीन अधिकारीके समान आचरण क्यों कर रहे है? उनसे रहा न गया। वे हँसी करते हुए बोल उठे—'अरे, रोटी क्यों ठोकते हो?' यह सुनकर श्रीरामकृष्णदेवने भी हँसते हुए कहा—'वाह रे! मै ईश्वरका नाम ले रहा हूँ। और आप कह रहे हैं कि "मै रोटी ठोक रहा हूँ।"' पुरीजी भी उनकी बालक-जैसी बातोंको सुनकर हँसने लगे एवं उन्होंने अनुभव किया कि श्रीरामकृष्णका यह आचरण निरर्थक नहीं है, उसके भीतर अवश्य ही ऐसा

कोई गूढ़ तात्पर्य निहित है, जिसे वे ठीक-ठीक समझ नहीं पा रहे हैं। अतः उन्होंने इस कार्यका प्रतिवाद न करना ही उचित समझा।

चैतन्य महाप्रभुका कीर्तन देखना

एक बार श्रीरामकृष्णदेवके मनमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके सर्वजन-मनोमोहक नगर-संकीर्तन देखनेकी इच्छा हुई। जगन्माताने उनकी इस इच्छाको पूर्ण करनेके लिये उन्हें निम्नलिखित दर्शन कराया था। उस समय वे अपने कमरेके बाहर उत्तरकी ओर मुँह किये खड़े थे, उन्होंने देखा कि आध्यात्मिक भावोंमें विभोर एक अपार जनसमूह अद्भुत अलौकिक संकीर्तन करता हुआ तरंगकी भाँति बढ़ा चला आ रहा है। इस दलके आगे चल रहे हैं भगवत्प्रेममें मतवाले चैतन्य महाप्रभु और उनके दोनों ओर उनके पार्षद नित्यानन्द एवं अद्वैत भी धीरे-धीरे कदम रखते आगे बढ़ रहे हैं। उनमेंसे कोई-कोई भक्त प्रेममें उन्मत्त होकर उद्दाम ताण्डव करते हुए अपने हृदयका उल्लास व्यक्त कर रहे हैं। इतने लोगोंका समागम हुआ है कि कोई ओर-छोर नहीं दीख पड़ता। यह टोली आगे बढ़ती हुई वृक्षोंके पीछे लुप्त होती जा रही थी। एक अन्य समय इस घटनाकी चर्चा करते हुए श्रीरामकृष्णने कहा था कि यह पूरा दर्शन उन्हें भाव-नेत्रोंसे नहीं, वरन् खुली आँखोंसे हुआ था।

श्यामबाजारमें कीर्तनानन्द

१८७५ ई० में जब श्रीरामकृष्ण अन्तिम बार अपनी जन्मभूमि कामारपुकुरका दर्शन करने गये, तब वहाँसे वे अपने भानजे हृदयरामके ग्राम शिहड़ भी गये। वहाँ पहुँचकर उनके सुननेमें आया कि उस स्थानसे थोड़ी ही दूर फुलुई-श्यामबाजार नामक ग्राम है, जहाँ अनेक वैष्णव रहा करते हैं। वे संकीर्तन आदिके द्वारा उस स्थानको आनन्दमय बनाये रखते हैं। श्रीरामकृष्ण भी वहाँ जाकर उस कीर्तनको देखने एवं उसमें भाग लेनेको उत्सुक हो उठे। अतः हृदयरामके साथ वहाँ जाकर उन्होंने बेलटेके श्रीयुत नटवर गोस्वामीके घर सात दिन निवास किया तथा श्यामबाजारमें वैष्णवोंका कीर्तनानन्द देखा। श्यामबाजार ग्राममें उन्होंने ज्यों ही प्रवेश किया, त्योंही उन्हें चैतन्यदेवका दर्शन मिला, जिससे वे समझ गये कि इस गाँवके निवासी महाप्रभुके भक्त हैं।

एक बार कामारपुकुरके रईस श्रीईशानचन्द्र मल्लिकने उन्हें अपने घरके कीर्तनानन्दमें सम्मिलित होनेका निमन्त्रण दिया। वहाँ कीर्तनके समय उनका भावावेश देखकर स्थानीय वैष्णवोंने उनके प्रति तीव्र आकर्षण अनुभव किया। उनकी भावसमाधिकी बात विद्युद्वेगसे चारों ओर फैल गयी और उनके साथ आनन्द प्राप्त करनेके लिये दूर-दूरके गाँवोंसे संकीर्तन-दल क्रमशः वहाँ जुटने लगे। इस प्रकार श्यामबाजार एक विशाल जन-समुद्रमें परिणत हो गया तथा वहाँ दिन-रात संकीर्तन होने लगा। उस सम्पूर्ण अञ्चलमें ऐसी चर्चा फैल गयी कि एक ऐसे भक्तका आगमन हुआ है, जो भजन करते समय सात बार मरकर सातों बार जी उठता है। यह सुनकर श्रीरामकृष्णको देखनेके लिये लोग वृक्षों तथा घरकी छतोंपर चढ़ने लगे और आहार-निद्रातक भूल गये। इस प्रकार तीन दिनोंतक वहाँ संकीर्तनानन्दकी धारा प्रवाहित होती रही। और उन्हें देखने एवं उनका चरणस्पर्श करनेके लिये लोग इतने उतावले हो उठे कि उन्हें स्नान एवं भोजनके लिये भी अवकाश न रहा। तदनन्तर वे हृदयरामको साथ लेकर धीरे-से शिहड़को खिसक गये, तब जाकर कहीं आनन्दोत्सवका विराम हुआ। इसी अवधिमें एक बार बेलटेमें नटवर गोस्वामीके घर एक भोजके अवसरपर इन्हें श्रीकृष्ण और गोपियोंका दर्शन मिला। इन्हें ऐसा लगा कि इनका सूक्ष्म-शरीर श्रीकृष्णके चरणोंका अनुसरण किये चला जा रहा है।

पानीहाटीका महोत्सव

कलकत्तेसे कुछ मील उत्तरकी ओर गङ्गातटपर पानीहाटी नामका एक ग्राम है। वहाँपर प्रतिवर्ष ज्येष्ठ मासकी शुक्ला त्रयोदशीको वैष्णव सम्प्रदायका एक विशेष मेला लगा करता है। चैतन्य महाप्रभुके अन्तरंग पार्षद नित्यानन्द एक बार धर्मप्रचार करते हुए वहाँ आये थे। गोस्वामी रघुनाथदास, जो महाप्रभुका आदेश पाकर घरमें ही निवास कर रहे थे, उनसे मिलनेके लिये आये। तब नित्यानन्दने रघुनाथदाससे कहा था—'अरे, तू घरसे केवल भाग-भाग कर आता है और हमसे छिपाकर प्रेमका स्वाद लेता रहता है! हमें पतातक नहीं लगने देता। आज तुझे दण्ड दूँगा, तू चिउडेका महोत्सव कर और भक्तोंकी सेवा कर।' रघुनाथने उस आदेशको सानन्द शिरोधार्य किया तथा नित्यानन्दके दर्शनार्थ आये सैकड़ो लोगोंको गङ्गातटपर भोजन कराकर परितृप्त किया। बादमें जिस दिन वे गृहत्याग करके सदाके लिये महाप्रभुके पास नीलाचल चले गये, उसी दिन उनकी स्मृतिमें वहाँके भक्तगण प्रतिवर्ष 'चिउड़ा-महोत्सव' मनाया करते हैं। उस दिन वहाँ विविध स्थानोंके वैष्णवभक्त एकत्र होते हैं और पूरा दिन भजन, कीर्तन तथा नाम-स्मरणमें बीतता है।

श्रीरामकृष्ण प्रारम्भसे ही प्रायः प्रतिवर्ष उक्त उत्सवमें भाग लेने जाया करते थे; परंतु १८८० ई०से अपने जीवनके अन्तिम कुछ वर्ष वे विविध कारणवश वहाँ नियमित रूपसे न जा सके थे। तथापि १८८३ ई० तथा १८८५ ई०में उन्होंने उक्त उत्सवमें भाग लिया था।

१८ जून, १८८३ ई० सोमवारका दिन था। भक्त रामचन्द्र मास्टर महाशयके साथ कलकत्तेसे दक्षिणेश्वर आये। श्रीरामकृष्णको प्रणाम कर वहीं उत्तरवाले बरामदेमें उन्होंने प्रसाद पाया। राम कलकत्तेसे जिस गाड़ीमें वहाँ आये थे, उसीमें बैठकर श्रीरामकृष्ण पानीहाटीको चले। उनके साथ राखाल, मास्टर, राम, भवनाथ तथा और भी दो-एक भक्त रवाना हुए।

पानीहाटीके महोत्सव-स्थलपर गाड़ीके पहुँचते ही राम आदि भक्त यह देखकर विस्मित रह गये कि श्रीरामकृष्ण, जो अभी-अभी बैठे विनोद कर रहे थे, यकायक अकेले ही उतरकर बड़े वेगसे दौड़ रहे हैं। बहुत ढूँढनेपर उन्होंने देखा कि वे नवद्वीप गोस्वामीके संकीर्तन-दलमें नृत्य कर रहे हैं और बीच-बीचमें समाधिस्थ भी हो रहे हैं। समाधिकी अवस्थामें वे कहीं गिर न पड़ें, इसलिये नवद्वीप गोस्वामी उन्हें बड़े यत्नसे सँभाल रहे हैं। संकीर्तनके समय श्रीरामकृष्णका दर्शन करनेके लिये लोग चारों ओर कतार बाँधकर खड़े हैं। कोई-कोई सोच रहे हैं कि क्या श्रीगौराङ्ग ही पुनः प्रकट हुए हैं। चारों ओर हरि-ध्वनि सागरकी तरंगोंके समान उमड़ रही है। चारों ओरसे लोग उनके चरणोंपर फूल चढ़ा रहे हैं और बतासे लुटा रहे हैं तथा एक बार उनका दर्शन पानेको धक्कमधक्का कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण अर्धबाह्य दशामें नृत्य करते हुए फिर बाह्य दशामें आकर गाने लगे, जिसका भावार्थ यों है—

'हरिका नाम लेते ही जिनकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग जाती है, वे दोनों भाई आये हैं, जो स्वयं नाचकर जगत्‌को नचाते हैं, वे दोनों भाई आये हैं, जो स्वयं रोकर जगत्‌को रुलाते हैं और जो मार खाकर भी प्रेमकी याचना करते हैं, वे आये हैं। श्रीरामकृष्णके साथ सब उन्मत्त हो नाच रहे हैं और अनुभव कर रहे हैं कि गौराङ्ग और निताई हमारे सामने नाच रहे हैं।'

श्रीरामकृष्ण फिर निम्नाङ्कित भावका गाना गाने लगे—

'गौराङ्गके प्रेमकी हिलोरोंसे नवद्वीप डाँवाडोल हो रहा है।' आदि।

संकीर्तनकी तरंग राघवके मन्दिरकी ओर बढ़ रही है। वहाँ परिक्रमा और नृत्य आदि करनेके बाद श्रीविग्रहको प्रणाम कर वह तरंगायित जनसंघ गङ्गातटपर अवस्थित श्रीराधाकृष्णके मन्दिरकी ओर बढ रहा है। संकीर्तनकारोंमेंसे ही लोग श्रीराधाकृष्णके मन्दिरमें घुस पाये हैं। अधिकांश लोग दरवाजेसे ही एक दूसरेको ढकेलते हुए झाँक रहे है।

श्रीरामकृष्ण श्रीराधाकृष्ण-मन्दिरके आँगनमें पुनः नृत्य कर रहे है। वे बीच-बीचमें समाविष्ट हो रहे है और चारों ओरसे फूल-बतासे उनके चरणोंपर पड रहे है। आँगनके भीतर बारंबार हरिध्वनि हो रही है। वही ध्वनि सड़कपर आते ही हजारों कण्ठोंसे उच्चारित होने लगी। गङ्गापर नावोंसे आने-जानेवाले लोग चकित होकर इस सागर-गर्जनके समान उठती हुई ध्वनिको सुनने लगे और वे स्वयं भी 'हरिबोल', 'हरिबोल' कहने लगे।

श्रीरामकृष्णके उपदेश तथा उनके जीवनकी उपर्युक्त घटनाएँ आधुनिक युगके त्रितापदग्ध जीवको भगवन्नाम-संकीर्तनके द्वारा अपने जीवन तथा समाजमें सुख-शान्तिका विस्तार करनेके लिये प्रेरित करती हैं।

संकीर्तन-प्राण देवर्षि नारद

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥
(श्रीमद्भा० १।६।३४)

देवर्षि नारदजी स्वयं अपनी स्थितिके विषयमें कहते हैं—'जब मै उन परमपावनचरण उदारश्रवा प्रभुके गुणोका संकीर्तन-गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु अविलम्ब मेरे चित्तमें बुलाये हुएकी भाँति प्रकट हो जाते है।'
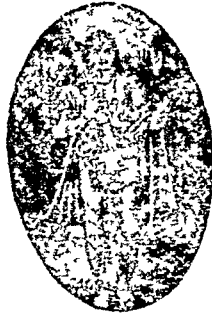
नारदजी सदा घूमते रहते हैं। उनका काम ही है—अपनी वीणाकी मनोहर झंकारके साथ भगवान्‌के गुणोका कीर्तन-गान करते हुए सर्वत्र पर्यटन करना। वे कीर्तनके परमाचार्य है, भागवतधर्मके प्रधान बारह आचार्योंमें है और भक्तिसूत्रके निर्माता भी है। उन्होंने प्रतिज्ञा भी की है—सम्पूर्ण पृथ्वीपर घर-घर एवं जन-जनमें भक्तिकी स्थापना करनेकी। वे निरन्तर भक्तिके प्रचारमें ही लगे रहते है। ये कहीं भी कभी भी आ-जा सकते है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार नारदजी ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। वे उनके कण्ठसे उत्पन्न हुए थे। पिताद्वारा सृष्टि-कार्यके निमित्त आज्ञा देनेपर इन्होंने उसका पालन नहीं किया। इससे क्रुद्ध पिताके शापवश ये गन्धर्वयोनिमें उत्पन्न हुए। इनका नाम उपबर्हण था। ये शरीरसे बडे सुन्दर थे। इन्हे अपने रूपका गर्व भी था। एक बार ब्रह्माके यहाँ सभी गन्धर्व, किन्नर आदि भगवान्‌का गुण-कीर्तन करनेके लिये एकत्र हुए। उस समूहमें उपबर्हण भी अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर गये। जहाँ भगवान्‌में चित्त लगाकर उन मङ्गलमयके गुणगानसे अपनेको और दूसरोंको भी पवित्र करना चाहिये, वहाँ कोई स्त्रियोको लेकर शृङ्गारके भावसे जाय और कामियोकी भाँति हाव-भाव दिखाये, यह बहुत बड़ा अपराध है। ब्रह्माजीने उपबर्हणका यह प्रमाद देखकर उन्हे शूद्रयोनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया।

ब्रह्माजीके शापसे उपबर्हण गन्धर्व ही सदाचारी, संयमी, वेदवादी, ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाली शूद्रा दासीके पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए। भगवान् ब्रह्माकी कृपासे बचपनसे ही उनमें धीरता, गम्भीरता, सरलता, समता, शील आदि सद्गुण आ गये। उस दासीके और कोई नहीं रह गया था। वह अपने इकलौते पुत्रसे बहुत ही स्नेह करती थी। जब बालककी अवस्था पाँच वर्षके लगभग थी,

संकीर्तनके आचार्य देवर्षि नारदजी

कुछ योगी संतोने वर्षाऋतुमें एक जगह चातुर्मास्य था। बालककी माता उन साधुओंकी सेवामें लगी रहती । वहीं वे भी उनकी सेवा करते थे । स्वयं नारदजीने [भग]वान् व्याससे कहा है—'व्यासजी ! उस समय यद्यपि बहुत छोटा था, फिर भी मुझमें चञ्चलता नहीं थी । जितेन्द्रिय था । दूसरे सब खेलोंको छोड़कर साधुओंके [आ]ज्ञानुसार उनकी सेवामें लगा रहता था । वे संत भी [मु]झे भोला-भाला शिशु जानकर मुझपर बड़ी कृपा करते [थे] । मैं शूद्राका बालक था और उन ब्राह्मण-संतोकी [अ]नुमतिसे उनके बर्तनोमें लगा हुआ अन्न दिनमें एक बार [खा] लिया करता था । इससे मेरे हृदयका सब कल्मष दूर हो गया और मेरा चित्त शुद्ध हो गया । संत जो परस्पर भगवान्की चर्चा करते थे, उसे सुननेमें मेरी रुचि हो गयी । चातुर्मास्य समाप्त कर जब वे साधुगण जाने लगे, तब मुझ दासीके बालककी दीनता, नम्रता आदि देखकर मुझपर उन्होने कृपा की । मुझे उन्होने भगवान्के स्वरूपका ध्यान तथा नामके जपका उपदेश किया ।'

साधुओके चले जानेके कुछ समय पश्चात् उनकी माँ दासी रातको अँधेरेमें अपने स्वामी ब्राह्मणदेवताकी गाय दुह रही थी कि उसके पैरमे सर्पने डँस लिया । सर्पके काटनेसे उसकी मृत्यु हो गयी । नारदजीने माताकी मृत्युको भी भगवान्की कृपा ही समझा । स्नेहवश माता इन्हे कहीं जाने नहीं देती थी। माताका वात्सल्य भी एक बन्धन ही था, जिसे भक्त-वत्सल प्रभुने दूर कर दिया । पाँच वर्षकी अवस्था थी, न देशका पता था और न कालका । नारदजी दयामय विश्वम्भरके भरोसे ठीक उत्तरकी ओर वनके मार्गसे चल पड़े और बढते ही गये । बहुत दूर जाकर जब वे थक गये, तब एक सरोवरका जल पीकर उसके किनारे पीपलके नीचे बैठकर साधुओके बतानेके अनुसार भगवान्-का ध्यान करने लगे । ध्यान करते समय एक क्षणके लिये सहसा हृदयमें भगवान् प्रकट हो गये । फिर क्या था, नारदजी आनन्दमग्न हो गये; परंतु वह दिव्य झाँकी विद्युतकी भाँति आयी और चली गयी । अत्यन्त व्याकुल होकर नारदजी उसी झाँकीको पुनः पानेका प्रयत्न करने लगे । बालक नारदजीको बहुत ही व्याकुल होते देख आकाशवाणीने आश्वासन देते हुए बतलाया—'इस जन्ममें तुम मुझे देख नहीं सकते । जिनका चित्त पूर्णतया निर्मल नहीं है, वे मेरे दर्शनके अधिकारी नहीं है । यह एक झाँकी मैंने तुम्हे कृपा करके इसलिये दिखलायी है कि इसके दर्शनसे तुम्हारा चित्त मुझमें लग जाय ।'

नारदजीने वहाँ भूमिमें मस्तक रखकर दयामय प्रभुके प्रति प्रणाम किया । फिर वे भगवान्का गुण गाते हुए पृथ्वीपर घूमने लगे । समय आनेपर इनका वह शरीर छूट गया । उस कल्पमे इनका फिर जन्म नहीं हुआ । सृष्टिके प्रारम्भमें नारदजी विष्णुके मानस-पुत्ररूपमें प्रकट हुए । दयामय भक्तवत्सल प्रभु जो कुछ करना चाहते है, देवर्षि उसीके अनुरूप चेष्टा करते है ।

पुराणोमें नारदजीके जन्मके सम्बन्धमें कई कथाएँ उपलब्ध होती है । प्रह्लादजी जब माताके गर्भमें थे, तभी गर्भस्थ बालकको लक्ष्य करके देवर्षिने उन दैत्य-सम्राज्ञीको भगवन्नाम-यश-कीर्तनका उपदेश किया था । देवर्षिकी कृपासे प्रह्लादजीको वह उपदेश भूला नहीं । उसी ज्ञानके कारण प्रह्लादजीको इतना दृढ संकीर्तन-प्रेम तथा भगवद्विश्वास हुआ । वे सदा राम-राम, नारायण-नारायणका कीर्तन करते रहते थे । इसी प्रकार ध्रुव जब सौतेली माताके वचनोसे रूठकर वनमे तप करने जा रहे थे, तब मार्गमे उन्हे नारदजी मिले । नारदजीने ही ध्रुवको मन्त्र देकर उपासनाकी पद्धति बतलायी । ध्रुवने भी नाम-कीर्तनसे अचल पद प्राप्त किया ।

उन्होने आदिकवि वाल्मीकिके प्रश्नोका जो उत्तर दिया था, उसीका उपबृंहितरूप सर्वकाव्यप्रधान रामचरितमय आदिकाव्य रामायण है । इसी प्रकार

श्रीमद्भागवत-संहिताकी परम्परामें नारायण एवं ब्रह्माजीके बाद इनका ही स्थान है। ये सभी शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। इन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी पत्नियोंकी दीर्घकाल तक सेवा कर संगीत—कीर्तनका ज्ञान प्राप्त किया था। भक्तिका विश्वव्यापी प्रचार करना इनका प्रधान लक्ष्य था। इन्होंने अनेक भक्तिपरक ग्रन्थोंकी रचना की है, जिनमें नारद-पाञ्चरात्र, नारद-भक्ति-सूत्र, नारद-स्मृति और नारदपुराण मुख्य हैं। भगवन्नाम-कीर्तनके प्रचारक देवर्षि नारद धन्य हैं—

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः।
गायन् माद्यन्निमं लोकं रमयत्यातुरं जगत्॥

श्रीरामचरितके आदि-संकीर्तनकार महर्षि वाल्मीकि

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥

'रामकाव्यरूपी कल्पवृक्षकी लोकोत्तर कविता-शाखापर बैठकर राम-रामका मधुर कीर्तन करनेवाले वाल्मीकिरूपी कोकिलकी मैं वन्दना करता हूँ।'

कहते हैं विश्वसाहित्यमें 'संकीर्तन' पदका प्रयोग वाल्मीकिने ही किया, जो श्रेष्ठ भावपूर्ण भी है—

सा रामसंकीर्तनवीतशोका
रामस्य शोकेन समानशोका।
शरन्मुखेनाम्बुदशेषचन्द्रा
निशेव वैदेहसुता बभूव॥

(वा० रा० सु० ३६। ४७)

रामनामका विपरीत कीर्तन करनेसे महर्षि वाल्मीकि ब्रह्मके तुल्य पूज्य एवं शक्तिशाली हो गये थे—

उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

(मानस)

भगवन्नाम-यश-कीर्तनकारोंमें महर्षि वाल्मीकिका नाम अद्वितीय है। सौ करोड़ श्लोकोंमें प्रायः प्रतिश्लोक रामनामयुक्त भगवान् श्रीरामके यशका इन्होंने विस्तारपूर्वक गान किया। योगवासिष्ठ-महारामायण, वाल्मीकि-रामायण, आनन्द-रामायण, अद्भुतरामायण, योगवासिष्ठसार आदि इनकी रचनाओंके संक्षेप हैं। ये सभी देवताओंके उपासक थे। श्रीअप्पय्यदीक्षितने रामायण-सार-संग्रहमें सिद्ध किया है कि श्रीरामायणमें सर्वत्र भगवान् शंकरके परत्वकी ही ध्वनि सुनायी देती है। 'स्कन्दपुराण' में इनके द्वारा कुशस्थलीमें वाल्मीकेश्वर लिङ्गकी स्थापनाकी भी बात आयी है।

वाल्मीकि-रामायणके युद्धकाण्डमें श्रीब्रह्माद्वारा की गयी श्रीराम-स्तुतिमें इनकी गूढ़ भक्ति प्रस्फुटित होती है। वहाँ ये कहते हैं—'अग्नि आपके क्रोध तथा श्रीवत्सलक्ष्माङ्क चन्द्रमा आपकी प्रसन्नताके स्वरूप है। पहले वामनावतारमें आपने अपने पराक्रमसे तीनों लोकोंका उल्लङ्घन किया था। आपने ही दुर्धर्ष बलिको बाँधकर इन्द्रको राजा बनाया था। भगवती सीता लक्ष्मी तथा आप प्रजापति विष्णु हैं। रावणके वधके लिये ही आपने मनुष्य-शरीरमें प्रवेश किया है और यह कार्य आपने सम्पन्न किया है। देव! आपका बल, वीर्य तथा पराक्रम सर्वथा अमोघ है। श्रीराम! आपका दर्शन और स्तुति अमोघ हैं तथा पृथ्वीपर आपकी भक्ति करनेवाले मनुष्य भी अमोघ होंगे। जो पुराण-पुरुषोत्तमदेव आपकी भक्ति एवं उपासना करेंगे, वे इस लोक तथा परलोकमें भी अपनी समस्त काम्य वस्तुओंको प्राप्त कर लेंगे'—

अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि॥

ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् ।
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥
(११७ । ३०-३१)

श्रीमदध्यात्मरामायण तथा आनन्दरामायणमें यह प्रसङ्ग आता है कि वनयात्रामें भगवान् श्रीराम वाल्मीकिके आश्रमपर पधारे और उन्होने इनसे अपने रहनेके लिये उचित स्थानका संकेत पूछा। इसपर इन्होने हँसकर कहा—प्रभो ! जब सम्पूर्ण प्राणियोंके आप ही एकमात्र उत्तम निवास-स्थान है और सारे जीव आपके निवास-स्थान है, तब आपको उचित स्थान भला मै क्या बताऊँ। तथापि जब आपने पूछा है, तब सुनिये—जो शान्त, समदर्शी और राग-द्वेषसे मुक्त है तथा अहर्निश आपका भजन करते है, उनके हृदयमे आप विराजिये। जो आपके मन्त्रका जप करता तथा आपकी शरणमें रहता है, उसके हृदयमें आप सीतासहित सदा सुखपूर्वक निवास करे। जो सदा चित्तको वशमें रखकर आपका भजन करता तथा आपके चरणोंकी सेवा करता है, आपके नाम-जपसे जिसके सब पाप नष्ट हो गये है, उसका हृदय आपका निवासगृह है—

पश्यन्ति ये सर्वगुहाशयस्थं
त्वां चिद्घनं सत्यमनन्तमेकम् ।
अलेपकं सर्वगतं वरेण्यं
तेषां हृदब्जे सह सीतया वस ॥
(आनन्द० अध्या० २ । ६ । ६२)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने भी अपने मानसमें इस प्रसङ्गको विस्तारसे निरूपित किया है। वे इनकी भक्ति, कथा-कीर्तन आदिसे बहुत प्रभावित हैं। कवितावली आदिमें उन्होने इनके निवास-स्थानका बडी श्रद्धासे चित्रण किया है और उसकी महिमा गायी है। व्यासदेवने 'बृहद्धर्मपुराण'में इनकी तथा इनके रामायण-की बहुत प्रशंसा की है। कालिदास आदि कवियोंकी भी इनमे अतुल श्रद्धा थी। इनकी पवित्र भक्तिके परिणाम-स्वरूप मूर्तिमती भक्ति भगवती सीताने इनके यहाँ निवास किया। इनकी वह परिचर्या, लव-कुशका पालन-शिक्षण आदि अवाङ्मनसगोचर ही है।

एक दिन उन्हीं कृपालुके सामने एक व्याधने क्रौंच पक्षीके जोडेमेंसे एकको मार दिया। दयाके कारण अकस्मात् ऋषिके मुखसे एक श्लोक निकल पडा। वैदिक छन्द अनादि है, किंतु लौकिक छन्दोंका वही प्रथम छन्द हुआ। इसी छन्दमें निर्मित रामायण आदिकाव्य और महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हुए।

वनवासके समय मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम भाई लक्ष्मण एवं जानकीजीके साथ वाल्मीकिजीके आश्रममे पधारे। वहाँ श्रीरामके पूछनेपर जो चौदह स्थान ऋषिने उनके रहने योग्य बताये, उनमें भक्तिके सभी साधन आ जाते है। इनमेंसे कुछका सुन्दर वर्णन गोस्वामीजीकी भाषामें ही देखिये—

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥
जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु॥

और इसे उन्होने प्रत्यक्ष भी कर दिखलाया। देवर्षि नारदसे रामगुणगान श्रवण कर पूरे चौबीस हजार श्लोकोमे आदिरामायणकी रचना की। योगवासिष्ठ भी उनकी ही रचना प्रसिद्ध है। इस प्रकार उन्होंने शतकोटि प्रविस्तार रामायणका कीर्तन किया—'शतकोटिप्रविस्तरम्' और इसके एक-एक अक्षरका कीर्तन महापातक-नाशक है—

एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ।

कीर्तनके सिद्धि-प्राप्त साधक श्रीहनुमान्‌जी

(लेखक—श्रीरामपदारथसिंहजी)

कीर्ति-कथनको कीर्तन कहते हैं। भगवन्नाम-गुण-कीर्तिका कीर्तन नवधा भक्तिमें द्वितीय स्थानपर है। भक्ताग्रगण्य श्रीहनुमान्‌जीको सब प्रकारकी भक्ति-साधनामें सिद्धि प्राप्त है, पर कीर्तन तो इनका जीवन ही है। यह तथ्य **'तदेकसत्कीर्तिकथैकजीवनः'** (श्रीबृहद्भागवतामृतम् १ । ६ । ६६) कहकर श्रीनारदजीद्वारा की गयी इनकी स्तुतिमें प्रकट है। श्रीमारुति रात-दिन भगवान्‌की गुणावलीका गान करते रहते हैं। इनकी इस विशेषताका स्मरण करते हुए 'श्रीरामरसायन'में इनकी स्तुति की गयी है—

सीतारामपदाम्बुजे मधुपवद् यन्मानसं लीयते
सीतारामगुणावली निशिदिवा यज्जिह्वया पीयते ।
सीतारामविचित्ररूपमनिशं यच्चक्षुषोर्भूषणं
सीतारामसुनामध्याननिरतं तं मारुतिं सम्भजे ॥

सच तो यह है कि श्रीहनुमान्‌जीने भगवन्नाम-कीर्तनकी साधनाद्वारा भगवान् श्रीरामको अपने वशीभूत कर रखा है—यह उनकी साधनाका सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है।

सुमिरि पवनसुत पावन नामू । अपने बस करि राखे रामू ॥
(रा०च०मा० १ । २५)

श्रीभगवान्‌के नाम-गुण-चरित्रका कीर्तन करनेसे संसारासक्ति क्षीण होती जाती है, जिससे अन्तःकरणकी शुद्धि होती जाती है और भगवत्प्रेमका संस्कार बलवान् होता जाता है। जब कीर्तन प्रेममें डूबकर निष्कपट-भावपूर्वक किया जाने लगता है, तब कीर्तन-भक्तिको सिद्धावस्थामें पहुँची हुई समझना चाहिये। अन्याभिलाषासे भगवन्नाम-गुण-कीर्तन करना कपटयुक्त कीर्तन है। कपटयुक्त कीर्तन भी उपयोगी ही है, पर उसका शुद्ध स्वरूप 'कपट तजि गान' करनेपर अर्थात् अन्य प्रयोजन-हीन होकर कीर्तन करनेपर बनता है। भक्तिशास्त्र श्रीमद्भागवतमें कीर्तनके साधकोंको असंग होनेका सत्परामर्श दिया गया है—

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥
(११ । २ । ३९)

'भगवान् चक्रपाणिके जन्म-कर्मकी लोक-प्रसिद्ध कथाएँ सुनते हुए और उनकी लीलाओंके अनुसार रचित गाथाओं और नामोंका लाज-संकोच छोड़कर गान करते हुए जगत्‌में असङ्गभावसे विचरण करना चाहिये।' यहाँ साधकोपयोगी तीन सूत्रोंका संकेत है—१–कीर्तन श्रवण करना चाहिये, २–कीर्तन करनेमें लाज-संकोच नहीं करना चाहिये और ३–कीर्तन सुनते और करते हुए जगत्‌में असङ्गभावसे विचरण करना चाहिये। श्रीहनुमान्‌जीकी कीर्तन-साधना इन तीनों सूत्रोंसे संयुक्त है।

सत्संगके बिना भक्ति नहीं होती—'बिनु सतसंग भगति नहिं होई' (विनय० १३६)। यह बात कीर्तन-भक्तिके साथ भी है। कीर्तन-भक्ति भी कीर्तनप्रेमी संतोंकी कृपासे उनके मुखसे सुननेपर प्राप्त होती है। इसलिये कीर्तन-साधकोंको रससिद्ध संतोंसे कीर्तन सुननेकी रुचि होनी है। श्रीहनुमान्‌जी भगवान्‌की यशोगाथा सुननेके रसिक हैं। यह हनुमान्-चालीसामें उल्लिखित है—'प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया'। इनकी बाल्यावस्थामें ही देवर्षि नारद इन्हें भगवान्‌के जन्म-कर्मकी कथाएँ सुनाया करते थे। यह गोस्वामी तुलसीदासजीकी रचनासे प्रकट होता है—

राम जनम सुभ काज सब कहत देवरिषि आइ ।
सुनि सुनि मन हनुमान के प्रेम उमँग न अमाइ ॥
(रामाज्ञाप्रश्न ४ । ४ । १)

भगवान्‌की लीला-कथा सुनते ही ये भावुक हो उठते हैं। इनका शरीर पुलकित हो जाता है, नेत्रोंमें अश्रु भर आते हैं और वाणी गद्गद हो जाती है। विनय-पत्रिका (२९)में इनकी इस भावदशाका संश्लिष्ट वर्णन है—'जयति रामायण-श्रवण-संजात-रोमांच-लोचन-सजल-सिथिल-बानी'। यह लक्षण सहृदय श्रोतामें प्रकट हुआ करता है।

२—श्रीहनुमान्‌जीको हरिनामयश-कीर्तनमें तनिक भी संकोच नहीं होता। इसके लिये ये अपमान सहन करनेमें भी नहीं सकुचाते। इसका प्रमाण रामचरितमानसके सुन्दरकाण्डमें विद्यमान है। श्रीहनुमान्‌जी प्रभु श्रीरामके कार्यसे रावणके दरबारमें पहुँचना चाहते थे। इन्हें ज्ञात है कि भगवान्‌का अवतार-कार्य मुख्यतः अज्ञानके बन्धनमें फँसे लोगोंको शिक्षा देना है—'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्' (श्रीमद्भा० ५।१९।५)। सामान्य अवस्थामें रावणके पास पहुँचकर शिक्षा देनेका कोई उपाय न था। इसके लिये हनुमान्‌जीको मेघनादके नागपाशमें बँधना पड़ा। जिन प्रभु श्रीरामका नाम ज्ञानी मनुष्योंके भवबन्धनको काट देता है, उनका दूत कहीं बन्धनके नीचे आ सकता है? यह तो प्रभुने ही कार्यके लिये हनुमान्‌जीको बँधवा दिया—'प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा।' बन्धनमें डालकर श्रीहनुमान्‌जी रावणके समक्ष लाये गये। उस अपमान-जनक स्थितिमें भी इन्होंने रावणको भक्ति, विवेक, वैराग्य और नीतिमें सनी हुई वाणीसे प्रभु श्रीरामके ऐश्वर्य-माधुर्यकी गाथा सुनाकर उपदेश किया और कहा मुझे बँध जानेकी कोई लज्जा नहीं है; क्योंकि मैं अपने प्रभुका काज कर लेना चाहता हूँ—

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥

अमृतसे भी अनन्तगुना अधिक आस्वादमधुर कीर्तनमें संकोच न होना सौभाग्य है। श्रीहनुमान्‌जी श्रीसीतारामजीको सिंहासनासीन देखकर हर्षातिरेकमें नाचने लगे। गोस्वामीजीने विनयपत्रिकामें इसका उल्लेख करते हुए इनकी स्तुति की है—

जयति सिंहासनासीन सीतारमण निरखि निर्भरहरष नृत्यकारी।

श्रीहनुमान्‌जीको इस नृत्यमें किसी प्रकारका संकोच नहीं। भगवान्‌के उत्कर्षके स्मरणसे नाच-गा उठनेवाले ऐसे ही निःसंकोच नर्तक और गायक भक्तसे जगत् पवित्र हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्णकी उक्ति है—

विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।
(श्रीमद्भा० ११।१४।२४)

३—श्रीहनुमान्‌जीकी कथा-कीर्तनके निमित्त विचरण-शीलता विख्यात है। लोकमें प्रसिद्ध है कि जहाँ-कहीं भगवन्नाम-गुण-कथा होती है, वहाँ ये किसी-न-किसी रूपमें अवश्य जाते हैं। इस सम्बन्धमें श्रीवाल्मीकि-रामायणकी पाठ-विधिमें संकलित यह श्लोक भी प्रमाण-स्वरूप है—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

ब्रह्मलोकादि वैभवविरागी श्रीपवनकुमार प्रबल वैराग्य-के मूर्तरूपमें मान्य हैं। इसलिये संसारसे इनकी असंगता असंदिग्ध है। श्रीरामचरितमानसमें एक उदाहरण दर्शनीय है। इन्होंने लङ्का जाकर श्रीसीताजी-को भक्ति, प्रताप, तेज और बलसे सनी हुई वाणीमें प्रभु श्रीरामकी चर्चा सुनायी, जिससे उनके मनको संतोष हुआ। तब उन्होंने इन्हें भगवान् श्रीरामका प्रिय मानकर बलनिधान, शीलनिधान, अजर, अमर और गुणनिधि होनेका आशीर्वाद दिया—

मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी॥
आसिष दीन्ह राम प्रिय जाना। होउ तात बल सील निधाना॥
अजर अमर गुन निधि सुत होहू।
(रामच० मा० ५।१७)

वरदान तो उत्तरोत्तर उत्कर्षशाली है, किंतु हनुमान्‌जी उन्हें अपने कामका नहीं समझते। जब उन वरोंके प्रति हनुमान्‌जीमें कुछ भी आसक्ति नहीं जागी, तब श्रीसीताजीने कहा—'करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥' 'प्रभु तेरे ऊपर बड़ी कृपा करेंगे', ऐसा ज्यों ही कानोंसे सुना त्यों-ही हनुमान्‌जी प्रेमसे भर उठे और उसमें मग्न हो गये तथा वार-वार प्रणामकर बोले—'माता! अब मैं कृतकृत्य हो गया; क्योंकि आपका आशीर्वाद अमोघ है—

करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥
बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता॥
(रा० च० मा० ५। १७)

इस प्रसङ्गसे प्रकट होता है कि श्रीहनुमान्‌जीको प्रभु श्रीरामकी कृपाके अतिरिक्त अन्य विषयमें तनिक भी रुचि नहीं है। उपरिलिखित कीर्तन-साधनाके श्रीमद्भागवतोक्त तीनों सूत्र श्रीहनुमान्‌जीकी कीर्तननिष्ठामें समाविष्ट हैं। श्रीभगवान्‌के गुण-गानमें श्रीहनुमान्‌जीका मन ऐसा रमता है कि ये 'सेवा-सावधान' होकर भी भगवत्सेवाके दूसरे अत्यावश्यक कार्यको भी कभी-कभी भूल जाते हैं।

कीर्तनकी अति उच्च भूमिकामें पहुँचे हुए साधकके शरीरका कण-कण भगवन्नाममय हो जाता है। श्रीहनुमान्‌जीके चरित्रसे इस बातकी पुष्टि होती है। समुद्र-देवताने अपने पासके उत्तमोत्तम रत्न विभीषणजीको भेट-स्वरूप दिये। भक्त तो अच्छी वस्तु भगवान्‌को अर्पित करते हैं, अतः विभीषणजीने भी उन रत्नोंकी माला बनायी और भगवान् श्रीरामकी सभामें आकर उन्हें भेट कर दी। भगवान्‌ने उस सुन्दर मालाको, जिसपर सबकी दृष्टि बार-बार जाती थी, अपने पास रखकर सभासदोंसे पूछा कि यह अनुपम माला किसे दी जाय। सब सोचने लगे, फिर निर्णय हुआ कि माला हनुमान्‌जीको मिलनी चाहिये; क्योंकि भगवान्‌को सर्वाधिक प्रिय वे ही हैं। सभासदोंके अनुरोधपर वह माला हनुमान्‌जीके गलेमें डाल दी गयी। उस समय श्रीहनुमान्‌जी भगवान्‌की विजयके उत्साहमें भगवान्‌का नाम-कीर्तन करते हुए परमानन्दमें मग्न थे। गलेमें माला डाली जानेपर विक्षेप हुआ। तब मालापर उनकी दृष्टि पड़ी, पर दानेपर रामका नाम अङ्कित नहीं दिखायी पड़ा। हनुमान्‌जी मणियोंके बहुमूल्य मनकेको अपने लिये अनुपयोगी समझकर फोड़कर फेंकने लगे। विभीषणजी उन अनमोल रत्नोंकी दुर्गतिको सहन न कर सके। उन्होंने हनुमान्‌जीसे पूछा कि ऐसा क्यों कर रहे हैं? हनुमान्‌जी बोले कि राम-नामरहित मणियाँ बिल्कुल बेकार हैं, फोड़कर फेंक देने योग्य ही हैं। विभीषणजी हँसे और हँसीमें ही पूछ बैठे कि क्या आपकी देहमें भी रामनाम अङ्कित है? भावुक हनुमान्‌जीने तुरंत देहकी त्वचा जगह-जगहसे फाड़कर देखा तो सर्वत्र राम-नाम अङ्कित था। यह दृश्य सभी सभासदोंने देखा। सबकी बुद्धि अचम्भेमें पड़ गयी। भक्तमालके यशस्वी टीकाकार स्वामी श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका सारतः वर्णन एक कवित्तमें किया है—

रतन अपार खार सागर उद्धार किये
लिये हिय चाव सो बनाय माला करी है।
सब सुख साज रघुनाथ महाराज जू को
भक्त जो विभीषण सो आनि भेंट धरी है।
सभी केरी चाह अवगाह हनुमान गरे
डारि दई सुधि भई मति अरबरी है।
राम बिन काम कौन फोरि मणि डारि दिये
खोल त्वचा नाम सो दिखायो बुद्धि हरी है।
(भक्तमालकी रसिकप्रिया टीका—२७)

यदि कोई कहे कि भगवन्नामके प्रभावसे कोमल कीचमें जन्म लेनेवाला कमल शुष्क शिलापर जनम गया तो सच मान लेना चाहिये—'नाम प्रभाव सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो'। अतः श्रीहनुमच्चरित्रकी इस घटनाको असम्भव नहीं समझना चाहिये।

*

श्रीरामप्रेमकी मूर्ति श्रीभरतलाल नित्य नियमसे श्रीराम गुण-गाथा सुना करते थे। लङ्का-विजयके उपरान्त जब हनुमान्‌जी श्रीअयोध्याजीमें निवास करने लगे, तब श्रीभरतलाल इन्हींसे श्रीरामचरित्र सुनने लगे—

भरत सत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपबन जाई॥
बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा॥
(रा०च०मा० ७। २५)

श्रीराम-गुण-गाथाके रससिद्ध गायक श्रीहनुमान्‌जी अपनी सुन्दर बुद्धिसे भगवद्गुणोंमें गोता लगाकर वर्णन करते थे। श्रीरघुनाथजीके निर्मल गुणोंको हनुमान्‌जीसे सुनकर दोनो भाई अत्यन्त सुख पाते थे और विनय-पूर्वक बार-बार कहलवाते थे—

सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं।
बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं॥
(रा०च०मा० ७। २५)

हनुमान्‌जी घबराते नहीं थे, कहते जाते थे। प्रातःकाल नित्य ही सभामें सब बैठते थे और वसिष्ठजी वेद-पुराणपर व्याख्यान देते थे, जिसे ससमाज भगवान् श्रीराम सुनते थे। यह नित्यका नियम था——

प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन॥
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥
(रा०च०मा० ७। २५)

वसिष्ठजीसे नित्य सुनते रहनेके बाद भी श्रीभरत-शत्रुघ्न रामचरित सुनानेके लिये नित्य ही हनुमान्‌जीसे आग्रह करते थे। इससे ध्वनित होता है कि श्रीहनुमान्‌जी ही भगवान् श्रीरामकी दिव्य लीलाके रहस्यके सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता और उद्गाता हैं। श्रीहरिनामयश-कीर्तनकी साधनामें इनकी अद्वितीय सिद्धिने भरतलालजी-जैसे प्रेमसिद्ध साधकको भी आकर्षित कर लिया और वे इनसे ही भगवान् श्रीरामकी लीला-कथा नित्य नियमसे सुनने लगे।

भगवद्गुणगायक भक्त भीष्म

भगवान् श्रीकृष्णने महाभारतके युद्धमें शस्त्र ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा की थी। दुर्योधनद्वारा उत्तेजित किये जानेपर भीष्मजीने प्रतिज्ञा कर ली कि 'भगवान्‌को आज शस्त्र ग्रहण कराकर ही रहूँगा।' दूसरे दिन युद्धमें भीष्मजीने अर्जुनको अपनी बाण-वर्षासे विकल कर दिया। भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तके प्रणकी रक्षा करनेके लिये अपनी प्रतिज्ञा भंग करके सिंहनाद करते हुए अर्जुनके रथसे कूद पडे और हाथमे रथका टूटा पहिया लेकर भीष्मजीकी ओर दौडे। सेनामें हाहाकार मच गया। लोग चिल्लाने लगे—'भीष्मजी मारे गये।' उस समय पृथ्वी कॉपने लगी, किंतु भीष्मजी देख रहे थे कि श्रीकृष्णचन्द्रका पीताम्बर कंधेसे गिरकर भूमिपर घसीटता जा रहा है। उन श्यामसुन्दरके चरण युद्धभूमिमें रक्तसे लथपथ हुए दौडे आ रहे है। उनकी अलकें उड़ रही है। उनके भालपर स्वेद तथा शरीरपर कुछ रक्तकी बूँदें झलमला रही है। भृकुटियॉ कठोर किये श्रीकृष्ण हुकार करते आ रहे है। भीष्मजी मुग्ध हो गये भगवान्‌की भक्तवत्सलतापर। वे उनका स्वागत करते हुए बोले—

'पुण्डरीकाक्ष! देवदेव! आइये, आइये। आपको मेरा नमस्कार। पुरुषोत्तम! आज इस युद्धभूमिमें आप मेरा वध कीजिये। परमात्मन्! श्रीकृष्ण! गोविन्द! आपके हाथसे मरनेपर अवश्य मेरा कल्याण होगा। आज मै त्रिलोकीमे सम्मानित हो गया। निष्पाप प्रभो! इच्छानुसार आप अपने इस दासपर प्रहार कीजिये।' अर्जुनने दौड़कर पीछेसे भगवान्‌के चरण पकड लिये और बडी कठिनाईसे उन्हे रथपर लौटा ला सके। भीष्मजीके हृदयमें भगवान्‌की यह मूर्ति बस गयी। वे उसे अन्ततक नहीं भूल सके। सूरदासजीने भीष्मजीका मनोभाव इस प्रकार प्रकट किया है—

वा पट पीत की फहरान।
कर धरि चक्र चरन की धावनि, नहिं बिसरति वह बान॥
रथ तें उतरि अवनि आतुर ह्वै कच-रज की लपटान।
मानों सिंह सैल तें निकस्यो, महामत्त गज जान॥
जिन गुपाल मेरो प्रन राख्यो, मेटि वेदकी कान।
सोई सूर सहाय हमारे निकट भए हैं आन॥

एक बार युधिष्ठिरने पुलकितशरीर श्रीकृष्णको ध्यानस्थ देखा। यह देखकर वे दंग रह गये। जब उन्होंने इसका रहस्य पूछा, तब भगवान्ने बताया—'शरशय्यापर पड़े हुए पुरुषश्रेष्ठ भीष्म मेरा ध्यान कर रहे थे, उन्होंने मेरा स्मरण किया था, अतः मैं भी उनका ध्यान करनेमें लगा था। मैं उनके पास चला गया था।'

भगवानने फिर कहा—'युधिष्ठिर! वेद एवं धर्मके सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता, नैष्ठिक ब्रह्मचारी पितामह भीष्मके न रहनेपर जगत्में ज्ञानका सूर्य अस्त हो जायगा; अतः वहाँ चलकर तुम्हें उनसे उपदेश लेना चाहिये।' युधिष्ठिर श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर भाइयोंके साथ जहाँ भीष्मजी शरशय्यापर पड़े थे, वहाँ गये। बड़े-बड़े ब्रह्मवेत्ता ऋषि-मुनि वहाँ पहलेसे ही उपस्थित थे। श्रीकृष्णचन्द्रने भीष्मजीसे कहा—'आप युधिष्ठिरको उपदेश करें।' भीष्मजीने बताया कि 'मेरे शरीरमें बाणोंकी अत्यधिक पीड़ा है, इससे मन स्थिर नहीं है।' तत्पश्चात् उन्होंने स्पष्ट कहा—'आप जगद्गुरुके सामने मैं उपदेश करूँ, यह साहस मैं नहीं कर सकता।'

भगवान्ने स्नेहपूर्ण वाणीमें कहा—'भीष्मजी! आपके शरीरका क्लेश, मूर्च्छा, दाह, ग्लानि, क्षुधा-पिपासा, मोह आदि सब अभी नष्ट हो जायँ और आपके अन्तःकरणमें सब प्रकारके ज्ञानका स्फुरण हो। आप जिस विद्याका चिन्तन करेंगे, वह आपके चित्तमें प्रत्यक्ष हो जायगी।' भगवान्ने बताया—'मैं स्वयं उपदेश न करके आपसे इसलिये उपदेश करनेको कहता हूँ, जिससे मेरे भक्तकी कीर्तिका विस्तार हो।' भगवान्की कृपासे भीष्मजीकी सारी पीड़ा दूर हो गयी। उनका चित्त स्थिर हो गया। उनके हृदयमें भूत, भविष्य, वर्तमानका समग्र ज्ञान प्रकट हो गया। उन्होंने बड़े उत्साहसे युधिष्ठिरको धर्मके समग्र अङ्गोंका उपदेश किया।

भक्तराज भीष्मद्वारा की गयी स्तुतियोंमें विष्णु-सहस्रनाम तथा भीष्मस्तवराज परम श्रेष्ठ हैं। महाभारतमें देवता-ऋषियोंके हजारों शतनाम, सहस्रनाम आदि हैं। पर विष्णुसहस्रनाम तथा शिवसहस्रनाम इन सभीमें श्रेष्ठ माने गये हैं। इसका अधिकतर भारतवासी मन्त्रवत् पाठ करते हैं। इसपर आचार्य शंकर, रामानुज, नीलकण्ठ आदिके कई भाष्य, व्याख्या, टीका आदि हैं। इसके संकीर्तनसे यश, तेज, धृति, बल, रूप, सुख, भक्ति, सत्सङ्ग, ज्ञान आदि परम श्रेयस्कर पदार्थोंकी प्राप्ति ध्रुव है—

भक्तिमान् यः सदोत्थाय नाम्नामेतत् प्रकीर्तयेत्।
यशः प्राप्नोति विपुलं श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम्॥
(म०भा० अनु० १४९। १२५—२७)

इसी प्रकार उनके अन्तिम क्षणोंकी ध्यानमयी श्रीकृष्णस्तुति भागवत (१। ९) में संगृहीत है। उसकी शब्दावली तथा उसके भाव बड़े ही हृदयहारी तथा आकर्षक हैं।

इस प्रकार सूर्यके उत्तरायण होनेपर एक सौ पैंतीस वर्षकी अवस्थामें माघ शुक्ल अष्टमीको सैकड़ों ब्रह्मवेत्ता ऋषि-मुनियोंके बीचमें शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीने अपने सम्मुख खड़े पीताम्बरधारी श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन करते हुए शरीरका त्याग कर वैष्णव सालोक्य मुक्ति प्राप्त की। सारा भारत उस दिन उनका तर्पण करता है। भीष्मपञ्चक एवं भीष्माष्टमी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। अन्त समयमें भी वे अपने चित्तको उन परम पुरुषमें एकाग्र करके स्तुति-कीर्तन कर रहे थे।

महात्मा विदुर

माण्डव्य ऋषिके शापसे यमराज ही दासी-पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए थे। यमराज भागवताचार्य हैं। अपने इस रूपमें मनुष्य-जन्म लेकर भी वे भगवान्‌के परम भक्त तथा धर्मपरायण रहे। विदुरजी धृतराष्ट्रके मन्त्री थे और सदा इसी प्रयत्नमें रहते थे कि वे धर्मका पालन करें। ये नीतिशास्त्रके महान् पण्डित और प्रवर्तक थे। इनकी विदुरनीति बहुत ही उपादेय और प्रख्यात है।

जब कभी पुत्र-स्नेहवश धृतराष्ट्र पाण्डवोंको क्लेश देते या उनके अहितकी योजना सोचते, तब विदुरजी उन्हें समझानेका प्रयत्न करते। स्पष्टवादी और न्यायके समर्थक होनेपर भी इन्हें धृतराष्ट्र बहुत मानते थे। दुर्योधन अवश्य ही इनसे जला करता था। धर्मरत पाण्डुके पुत्रोंसे ये स्नेह करते थे। जब दुरात्मा दुर्योधनने लाक्षाभवनमें पाण्डवोंको जलानेका षड्यन्त्र रचा, तब विदुरजीने उन्हें बचानेका प्रयत्न किया और गुह्य भाषामें संदेश भेजकर युधिष्ठिरको पहले ही सावधान कर दिया तथा भयंकर षड्यन्त्रसे बच निकलनेकी युक्ति भी बता दी।

कुन्तीदेवी पाण्डवोंके वनवासके समय तेरह वर्षोंतक विदुरजीके यहाँ रही थीं। जब श्रीकृष्णचन्द्र संधि कराने पधारे, तब उन्होंने दुर्योधनका स्वागत-सत्कार अस्वीकार कर दिया। उन्होंने धृतराष्ट्र, भीष्म, भूरिश्रवा आदि समस्त लोगोंके आतिथ्य भी अस्वीकार कर दिये और विदुरजीके घर वे बिना निमन्त्रणके ही पहुँच गये। उन्होंने राजाओंके मधुर मिष्टान्नसे युक्त आतिथ्यको छोड़कर विदुरजीके शाकको बड़े चावसे ग्रहण किया। इसका एकमात्र कारण था महात्मा विदुरका श्रीभगवन्नाम-संकीर्तनमें प्रेम। पति-पत्नी कई वर्षोंसे श्रीनाम-संकीर्तन करते हुए प्रभुकी प्रतीक्षा करते थे। कई वर्षोंकी साध आज पूरी हुई। विदुरानीके केलेके छिलकेकी कथा भी प्रसिद्ध है। उस समय विदुर-दम्पत्ति भगवन्नाम-स्तुति-कीर्तनमें विह्वल हो रहे थे। महाभारतके अनुसार विदुरजीने विविध व्यञ्जनादिसे उनका सत्कार किया था।

महाराज धृतराष्ट्रको भरी सभामें श्रीकृष्णचन्द्रके सम्मुख तथा केशवके चले जानेपर अकेले भी विदुरने समझाया—'दुर्योधन पापी है। इसके कारण कुरुकुलका विनाश होता दीखता है।' इससे दुर्योधन बिगड़ पड़ा। उसने उन्हें कठोर वचन कहे। पर विदुरजीको युद्धमें किसीका पक्ष लेना नहीं था, अतः शस्त्र छोड़कर वे तीर्थाटन करने चले गये। कृष्णनाम-गुण-कीर्तन करते हुए, उनके मन्दिरोंका दर्शन करते हुए वे अवधूत वेशमें तीर्थोंमें घूमते रहे। बिना माँगे जो कुछ मिल जाता वही खा लेते। नंगे शरीर कन्द-मूल खाते हुए वे प्रभास आदि तीर्थोंमें लगभग छत्तीस वर्षतक विचरते रहे। एक दिन यमुनातटपर इनकी उद्धवजीसे भेंट हुई। उनसे इन्हें महाभारतके युद्ध, यदुकुलके क्षय तथा भगवान्‌के स्वधाम-गमनका समाचार मिला। भगवान्‌ने स्वधाम पधारते समय महर्षि मैत्रेयको आदेश दिया था कि आप विदुरजीको मेरे तत्त्वका उपदेश करें। उद्धवजीसे यह समाचार पाकर विदुरजी हरिद्वार गये। वहाँ मैत्रेयजीसे उन्होंने भगवदुपदिष्ट तत्त्वज्ञान प्राप्त किया। उद्धवजीसे भी उन्होंने श्रीकृष्ण-यश-कीर्तन-श्रवणका आनन्द लिया। सारी रात यमुनाके बालूपर श्रीकृष्ण-कीर्तनमें क्षणभरके समान बीत गयी। श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

> इति सह विदुरेण विश्वमूर्ते-
> गुणकथया सुधया प्लावितोरुतापः।
> क्षणमिव पुलिने यमस्वसुस्तां
> समुषित औपगविर्निशां ततोऽगात्॥
> (श्रीमद्भा० ३। ४। २७)

'इस प्रकार विदुरजी और उद्धवजीके एक साथ मिलकर विश्वमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णके नाम-गुणोंका संकीर्तन करनेसे बड़ा आनन्द हुआ। भगवन्नाम तथा

कथामृतके द्वारा उद्धवजीका श्रीकृष्ण-वियोगजनित महान् ताप भी दूर हो गया। यमुनाजीके तीरपर उनकी वह रात्रि इस कीर्तनमें एक क्षणके समान बीत गयी। प्रातःकाल होनेपर दोनों वहाँसे चल दिये। उद्धवजी बदरीवन और विदुरजी पुनः हरिद्वारमें मैत्रेयके पास पहुँचकर भगवन्नाम-गुण-कीर्तनका लाभ लेने लगे।

खौलते तेलमें संकीर्तनरत भक्त सुधन्वा

भगवान्‌के भक्त बड़े अद्भुत होते हैं। उनकी भाव-धारा कब क्या रूप पकड़ेगी, इसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। भीष्मपितामह-जैसे भक्तने अर्जुनके रथपर बैठे श्रीकृष्णका पूजन बाणोंसे किया। इसी प्रकार एक दिन समाचार आया कि धर्मराज युधिष्ठिरके अश्वमेध-यज्ञका अश्व चम्पकपुरी राज्यकी सीमामें आ पहुँचा है। पूरे भारतवर्षमें उस समय, जब कि धर्मराज युधिष्ठिर सम्राट् थे, ऐसा धर्मनिष्ठ प्रदेश दूसरा नहीं था। जो भगवद्भक्त न हो और जो एकपत्नीव्रतका पालन न करता हो, वह चाहे कितना भी बड़ा विद्वान्, कलाविज्ञ या शूर क्यों न हो, उसे इस राज्यमें आश्रय नहीं मिलता था। जिस राज्यका प्रत्येक जन एकपत्नीव्रती, धर्म-परायण तथा भगवद्भक्त था, उसीके अधिपति राजा हंस-ध्वजने आज्ञा दे दी—'इस अश्वमेधीय अश्वको पकड़कर बाँध लो।'

धर्मराज युधिष्ठिरके यज्ञिय अश्वकी रक्षा वीरवर धनंजय कर रहे थे। श्रीकृष्णके सबसे बड़े पुत्र प्रद्युम्न भी उनके साथ थे। विशाल पाण्डव-सेना एवं यादव-सेना भी साथ थी। भगवद्भक्तोंका यह नन्हा-सा राज्य चम्पकपुरी, ऐसे स्थानपर अर्जुन तथा प्रद्युम्नके स्वागत होनेकी आशा थी, पर भय तो वहाँ किसीको छू-तक नहीं गया था। इधर महाराज हंसध्वजका कहना था—'मैं वृद्ध हो गया, परंतु अबतक भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे मेरे नेत्र सफल नहीं हुए। अब मुझे उन पुरुषोत्तम-का दर्शन करना ही है, अतः उस अश्वको अवश्य रोक लेना है और जबतक श्रीकृष्ण न पधारें, तबतक पाण्डव-यादव-वाहिनीको प्राण-संकटमें डाल देना है। अपने जनोंपर विपत्ति पड़नेपर वे करुणामय आये बिना रह नहीं सकते।' शङ्ख और लिखित महाराजके गुरु थे। राजासे मन्त्रणा कर उन्होंने घोषणा कर दी—'कल प्रातःकाल अमुक समयतक जो रणभूमिमें पहुँच नहीं जायगा, उसे खौलते तेलके कड़ाहेमें डाल दिया जायगा।'

महाराज हंसध्वज युद्धभूमिमें पहुँच गये। उनके प्रजाजन—युवकोंकी बात करना व्यर्थ है, वृद्धोंतकने कवच पहिने और शरासन सँभाले। श्रीकृष्णचन्द्रको सम्मुख करके उनके श्रीचरणोंमें प्राणार्पणका यह पुनीत पर्व क्या जीवनमें बार-बार मिलना था। राजाके चारों पुत्र—सुगल, सुरथ, सम तथा सुदर्शन शस्त्रसज्ज रथोंपर बैठे युद्धारम्भके आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे थे, किंतु महाराजके नेत्र यह देखकर अंगार बन गये कि उनके सबसे छोटे कुमार सुधन्वाका कहीं पता नहीं है। सुधन्वाको पकड़ लानेके लिये उन्होंने सैनिक भेज दिये।

राजकुमार सुधन्वाका कोई दोष न था। युद्धकी घोषणा होनेपर वे माताके समीप आज्ञा लेने गये। माताने सोल्लास आज्ञा दे दी। वहाँसे विदा लेकर वे नव-विवाहिता पत्नीके समीप गये। उनकी बहन कुबलाने उन्हें प्रेरित किया था कि वे पत्नीसे मिलकर जायँ। पत्नीने आग्रह किया—'आपके चले जानेपर एक अञ्जलि जल देनेवाला पुत्र रहना चाहिये।' उस साध्वीका हृदय कह रहा था कि उसे पतिका दर्शन पुनः नहीं होनेवाला है। पत्नीका आग्रह धर्मसंगत था। सुधन्वाको उसे स्वीकार करना पड़ा। वहाँसे पुनः स्नान कर, कवच

धारणकर जब वे चले, उन्हें कुछ देर हो गयी थी। मार्गमें ही उन्हे अपने पिताके भेजे सैनिक मिले।

'तू मूर्ख है! पुत्र होनेसे ही सद्गति हो तो सब कूकर-शूकर उत्तम गति पा जायँ।' सुधन्वाके सामने आकर प्रणाम करनेपर उसकी बात सुनकर राजा हंसध्वज और क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने पुत्रको लताड़ते हुए कहा—'श्रीकृष्णका पावन नाम सुनकर भी तू कामके वश हो गया। ऐसे कामुक कुपुत्रका उबलते तेलमें जल मरना ही उचित है।'

राजाने पुरोहितोंके पास व्यवस्थाके लिये दूत भेजा तो वहाँसे संदेश आया—'जो मन्दबुद्धि लोभ, मोह या भयसे अपने वचनका पालन नहीं करता, उसे नरकके दारुण दु:ख अवश्य मिलते है। जब सबके लिये एक ही आदेश था, तब राजा व्यवस्था क्यों पूछता है? ऐसा लगता है कि उसे अपने पुत्रका मोह हो गया है। ऐसे अधर्मीके राज्यमें हमें नहीं रहना है।' यह समाचार पाकर राजा अपने पुरोहितोको मनाने चल पड़े। उन्होंने मन्त्रीको आदेश दे दिया था—'सुधन्वाको तेलके खौलते कड़ाहेमें डाल दिया जाय।'

तेलका कडाहा अग्निपर चढ़ गया। तेल खौलने लगा। मन्त्रीको बहुत दु:ख था, किंतु सुधन्वाको पकड़कर कड़ाहेमें किसीको डालना नहीं पड़ा। सत्पुत्र स्वयं पिताकी आज्ञाका पालन करना अपना कर्तव्य मानता है। सुधन्वाने तुलसीकी माला पहनी और हाथ जोड़कर वे भगवन्नाम-संकीर्तन करते हुए कहने लगे—'गोविन्द! दयाधाम! मुझे देहका मोह नहीं है। मृत्युका वरण करनेका निश्चय करके तो मै यहाँ आया ही था। मुझे एक ही दु:ख है कि आपके श्रीचरणोका प्रत्यक्ष दर्शन मुझे नहीं हुआ। मै आपका ध्यान करते हुए शरीर छोड़ रहा हूँ, अतः आपकी प्राप्ति तो मुझे होगी ही, किंतु लोग कहेंगे कि सुधन्वा खौलते तेलमें जल मरा। मै आपके भक्त अर्जुनके बाणोको यह शरीर अर्पित करना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि मेरा यह शरीर आपके श्रीचरणोंमे पडकर धन्य हो। आपने भक्तोकी टेक रखी है, अपने जनोकी बार-बार रक्षा की है, मै भी आपका ही चरणाश्रित हूँ, मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये। इस अग्निदाहसे बचाइये और इस देहको अपने श्रीचरणोमें गिरने दीजिये।'

प्रार्थना पूर्ण कर 'श्रीकृष्ण! गोविन्द!' नामका कीर्तन करते सुधन्वा कड़ाहेमें कूद पडे। कोई आर्त-हृदय पुकारे और उसे श्रीकृष्ण न सुने, नहीं, यह कदापि सम्भव नहीं। प्रह्लादके लिये उन्होने अग्निको शीतल कर दिया था। ग्वालोके लिये उन्होने दावाग्निका पान किया था। क्या आश्चर्य कि सुधन्वाके लिये आज खौलता तेल शीतल न हो जाय? किंतु सुधन्वाको यदि शरीरका पता हो तो पता लगे कि शीतल है या उष्ण। वे तो 'श्रीकृष्ण! गोविन्द!' कहकर संकीर्तनावेशमें अपने शरीरका भान भूल चुके थे। वे तल्लीन थे नाम-कीर्तनमें।

'सुधन्वा खौलते तेलमें तैर रहे हैं। उनका एक रोम भी झुलसा नहीं है।' आश्चर्यचकित मन्त्रीने राजाके पास यह संदेश भेजा। राजाके साथ उनके दोनो पुरोहित भी उत्सुकतावश आये।

'इसने शरीरमें कुछ लगाया होगा, कड़ाहेमें कूदनेसे पूर्व। कोई मन्त्र आदि जानता है यह!' पुरोहितोकी यह पूछताछ व्यर्थ हुई। जब ऐसा कुछ भी तथ्य न मिला, तब उन्हे संदेह हुआ कि तेल गरम भी है या नहीं? उन्होने उस कड़ाहेके तेलमें एक नारियल डलवाया। नारियल तेलमें पडते ही तड़ाकसे फूटा और उसके दो टुकडे हो गये। एक टुकड़ा शंखके और दूसरा लिखितके सिरमें पूरे वेगसे लगा। अब उन्हें भान हुआ कि मैं एक सच्चे भगवद्भक्तपर संदेहका पाप किया। वे स्वयं

कूद पड़े उस कड़ाहेमें, किंतु सुधन्वाके प्रभावसे उनके लिये भी तेल शीतल हो गया।

सुधन्वाको उन्होंने तेलसे निकाला। गद्गदकण्ठसे वे कह रहे थे—'राजकुमार! तुम्हारे स्पर्शसे आज मेरी यह अधम देह पवित्र हुई। शास्त्रका ज्ञान और आचारपालन उसीका सफल है, जिसका प्रेम श्रीकृष्णमें है। त्रिभुवननाथ श्रीकृष्ण जिनका सारथ्य करते हैं, उन गाण्डीवधन्वाको युद्धमें तुम्हीं संतुष्ट कर सकते हो। इस सेनाका सेनापतित्व आज तुम्हीं करो।'

सुधन्वा कड़ाहेसे निकले। पिताकी आज्ञासे उन्होंने कवच धारण किया और सेनानायक बने। अर्जुनकी सेनासे उस दिनका युद्ध अद्वितीय था। महाभारतके पूरे युद्धमें व्याकुल न होनेवाले सात्यकि-जैसे महारथी सुधन्वाके सम्मुख टिक न सके। पाण्डव-सेनामें हाहाकार मच गया। अन्तमें अर्जुनको सम्मुख आना पड़ा।

'पार्थ! आपके रथपर श्रीकृष्ण सारथि होकर सदा बैठे रहते हैं, इसलिये आप विजयी है। अपने उन समर्थ सारथिको आपने आज कहाँ छोड़ दिया? कहीं मेरे साथ युद्ध करनेमें उन्होने ही आपका साथ तो नहीं छोड़ दिया है? मुकुन्दसे रहित आप मुझसे युद्ध कर सकेंगे?' सुधन्वाने अर्जुनको देखते ही उत्तेजित किया।

इन बातोंको सुनकर अर्जुन क्रोधसे आग हो गये; किंतु उनका आवेश व्यर्थ था। उनके बाणोको सुधन्वा हँसते हुए टुकड़े-टुकड़े कर देते थे। गाण्डीवधारीके दिव्यास्त्र इस राजकुमारने व्यर्थ कर दिये। स्वयं धनंजय घायल हो गये और उनका सारथि मारा गया। सुधन्वाने अर्जुनको ललकारकर कहा—'मैने आपसे पहले ही कहा था कि यह सारथि आपका साथ नहीं दे सकता। युद्धमें मेरे सामनेसे भागना नहीं है तो अपने उस नित्य सारथिका स्मरण कीजिये।'

अर्जुनने एक हाथसे रथके घोड़ोंकी बागडोर सँभाली और एक हाथसे युद्ध करते हुए मन-ही-मन वे श्रीकृष्णका स्मरण करने लगे। श्रीकृष्णको कहींसे आना तो था नहीं। वे सर्वव्यापी तत्काल प्रकट हो गये। अर्जुनके रथकी रश्मि उन्होने सँभाल ली। सुधन्वा तथा अर्जुनने एक ही साथ उन्हें प्रणाम किया। सुधन्वाका उद्देश्य पूरा हो गया। अर्जुनको युद्धमें जिस लिये उसने संत्रस्त किया था, वह काम बन गया। मयूरमुकुटी घनश्याम सम्मुख आ गये। जीवन धन्य हो गया। कृतकृत्य सुधन्वाने पार्थको ललकारा—'आप धन्य हैं, जिनके सारथि ये त्रिभुवननाथ बनते हैं; किंतु इनके आ जानेपर तो आप अब दुर्बल रहे नहीं। अब तो मुझपर विजय पानेके लिये कोई प्रतिज्ञा कीजिये।'

'मेरे पूर्वज पुण्यहीन हो जायँ, यदि इन तीन बाणोंसे मैं सुधन्वाका सुन्दर मस्तक न काट दूँ।' आवेशमें क्रोधसे काँपते अर्जुनने त्रोणसे एक साथ तीन बाण निकाले और सुधन्वाको उन्हें दिखाते हुए प्रतिज्ञा कर ली। सुधन्वाने हँसते हुए कहा—'विजय! जिसके रथपर ये वनमाली हैं, विजय तो उसकी निश्चित है, किंतु ये श्रीकृष्ण साक्षी हैं, मै भी इन्हींके श्रीचरणोंके सम्मुख प्रतिज्ञा करता हूँ—यदि आपके इन तीनों बाणोंको काट न दूँ तो मुझे घोर गति प्राप्त हो।' प्रतिज्ञा करके सुधन्वाने बाणोंकी झड़ी लगा दी। अर्जुन तथा श्रीकृष्ण दोनों घायल हो गये। अर्जुनके दिव्य नन्दिघोष रथका एक अंश टूट गया और वह रथ सुधन्वाके शरोंकी चोटसे कुम्हारके चाककी भाँति घूमने लगा। श्रीकृष्ण बोले—'अर्जुन! मुझसे पूछे बिना प्रतिज्ञा करके तुमने अच्छा नहीं किया। तुम भूल गये कि तुम्हारी प्रतिज्ञाने जयद्रथवधके समय कितना संकट उपस्थित किया था। इस राज्यमें सब एकपत्नी-व्रती हैं। इस व्रतके प्रभावसे सुधन्वा महान् है और इस विषयमें हम दोनो ही दुर्बल हैं।'

'श्यामसुन्दर ! आपकी उपस्थितिमें मुझपर कोई संकट आ कैसे सकता है ? आप आ गये है, अतः मेरी प्रतिज्ञा तो पूरी होगी ही ।' यह कहकर अर्जुनने उन तीनो बाणोमेंसे एकको धनुपपर चढ़ाया ।

'मेरे गोवर्धन-धारणका पुण्य इस बाणके साथ है ।' श्रीकृष्णने अर्जुनके बाणको शक्ति प्रदान की । कालाग्नि-के समान वह बाण छूटा, किंतु सुधन्वाने—'गिरिधारी प्रभुकी जय ।' कहकर बाण चला दिया । अर्जुनका बाण दो टुकड़े होकर गिर पड़ा । पृथ्वी कॉप गयी । देवता आश्चर्यमें पड़ गये ।

'अच्छा, दूसरा बाण संधान करो ।' श्रीकृष्णने आज्ञा दी और बोले—'मेरे अनेकानेक पुण्य इस बाणको अर्पित है ।'

'श्रीकृष्णचन्द्रकी जय ।' अर्जुनके धनुषसे बाण छूटते ही सुधन्वाने उच्चस्वरसे कहा और उसके धनुषसे भी बाण छूट गया । इस बार भी सुधन्वाने अर्जुनका बाण काट दिया । देवता सुधन्वाकी प्रशंसा करने लगे । युद्धभूमिमें हाहाकार मच गया । अर्जुन उदास हो गये ।

अर्जुनके तीसरे बाणको श्रीकृष्णने अपने रामावतार-का समस्त पुण्य दे दिया । बाणके पुच्छभागमें ब्रह्माजी-को तथा मध्यमें कालको स्थापित करके बाणाग्रपर एक रूपसे स्वयं विराजे । सुधन्वाने तत्काल कहा—'मेरे स्वामी ! मै जान गया कि आप स्वयं मेरा वध करने—कण्ठका स्पर्श करके मुझे धन्य करने बाणपर बैठकर आ रहे हैं । आओ, नाथ ! मुझे कृतार्थ करो । धन्य पार्थ ! ये निखिल लोकके नाथ तुम्हारे बाणको अपना पुण्य ही नहीं देते, स्वयं उसपर आरूढ़ होते है, अतः विजय तो तुम्हारी निश्चित है; किंतु धनंजय ! स्मरण रखो, इन श्रीकृष्णकी ही कृपासे मै तुम्हारे इस बाणको भी काट दूँगा ।'

अर्जुनका बाण छूटा । इधर सुधन्वाने भी 'भक्तवत्सल गोविन्दकी जय' कहकर बाण छोड़ दिया । काल-देवताकी शक्ति नहीं थी कि वे भक्तके प्रभावको रोक लेते । अर्जुनका बाण ठीक बीचमेंसे कटकर दो टुकड़े हो गया ।

सुधन्वाकी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी । अब अर्जुनकी प्रतिज्ञा पूरी होनी थी । कटे बाणका अग्रभाग गिरा नहीं कि उसने सुधन्वाका मस्तक काट दिया । सुधन्वाका कटा मस्तक 'गोविन्द ! मुकुन्द ! हरि !' नामोंका कीर्तन करता श्रीकृष्णके चरणोंपर जा गिरा । श्रीकृष्णने रथ-रश्मि छोड़ दी और झटसे उस सिरको दोनों हाथोंमें उठा लिया । इसी समय उस मुखसे एक ज्योति निकली और सबके देखते-देखते श्रीकृष्णचन्द्रके श्रीमुखमें लीन हो गयी ।

जीवन दो दिनका

हरि नाम सुमिर सुखधाम, जगतमें जीवन दो दिनका ॥
पाप कपट कर माया जोड़ी, गर्व करे धनका ।
सभी छोड़कर चला मुसाफिर, बास हुवा बनका ॥
सुन्दर काया देख लुभाया, लाड़ करे तनका ।
टूटा साँस बिखर गइ देही, ज्यों माला मनका ॥
यह संसार सपन की माया, मेला पल-छिनका ।
'ब्रह्मानंद' भजन कर बन्दे नाथ निरंजन का ॥

संकीर्तन-प्रेमी चन्द्रहास

बालो वा तरुणो वृद्धः स्त्री पुमान् देवकीसुतम् ।
स्मरत्यहर्निशं पार्थ कृच्छ्रान्मुक्तो न संशयः ॥
(जैमि० आश्व० ५१ । २)

'अर्जुन ! बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष जो कोई भी श्रीकृष्णका रात-दिन कीर्तन-स्मरण करता है, वह निःसंदेह संकटसे छुटकारा पा जाता है ।'

संकीर्तनप्राण चन्द्रहासकी कथाके प्रति अर्जुनका अपार प्रेम था । वे घोडेकी चिन्ता छोड और गीता-श्रवणसे भी अधिक उत्कण्ठित हो नारदजीसे कृष्णप्राण चन्द्रहासकी कथा पूछने लगे । नारदजीने कहा—पहले केरलमें एक सुधार्मिक नामक बुद्धिमान् राजा राज्य करते थे । उनके पुत्रका नाम था—चन्द्रहास । उसका जन्म मूल नक्षत्रमें हुआ था । कुछ दिन बाद शत्रुओंने उनके देशपर चढाई की । युद्धमें महाराज मारे गये । उनकी रानी पतिके साथ सती हो गयीं । राजकुमारकी अभी शैशवावस्था ही थी । धायने चुपकेसे उन्हें नगरसे निकाला और कुन्तलपुर ले गयी । वह स्वामिभक्ता धाय मेहनत-मजदूरी करके राजकुमारका पालन-पोषण करने लगी । चन्द्रहास बडे ही सुन्दर, बहुत सरल तथा विनयी थे । सभी स्त्री-पुरुष ऐसे भोले सुन्दर बालकसे स्नेह करते थे ।

भगवान्की प्रेरणासे एक दिन नारदजी कुन्तलपुर आकर उस बालकको एक शालग्रामकी मूर्ति देकर 'रामनाम'के कीर्तनकी विधि बतला गये । नन्हा-सा चन्द्रहास देवर्षिकी कृपासे हरि-भक्त हो गया । वह आत्मविस्मृत होकर कोमल कण्ठसे भगवन्नामका संकीर्तन करते हुए नृत्य करने लगता था । सभी देखनेवाले मन्त्र-मुग्ध हो जाते थे ।

कुन्तलपुरके राजा परम भगवद्भक्त एवं संसारके विषयोंसे पूरे विरक्त थे । उनके कोई पुत्र न था, केवल चम्पकमालिनी नामकी एक कन्या थी । महर्षि गालव राजाके गुरु थे । उनके उपदेशानुसार महाराज भी संकीर्तन-भजनमें ही लगे रहते थे । उनके राज्यका पूरा प्रबन्ध मन्त्री धृष्टबुद्धि ही करता था । मन्त्रीकी स्वयंकी भी बहुत बड़ी सम्पत्ति थी । वह एक प्रकारसे कुन्तलपुरका शासक था । उसका सुयोग्य पुत्र मदन भी राज्यकार्यमें उसकी सहायता करता था । मदन भी साधु-संतोंका सेवक था । अतः कभी-कभी मन्त्रीके यहाँ भी संत एकत्र हो जाते थे । मदन अतिथि-सत्कार तथा भगवन्नाम-कीर्तन भी करता था । इन कार्योंमें रुचि न होनेपर भी मन्त्री अपने पुत्रको रोकता न था । एक दिन मन्त्रीके महलमें ऋषिगण पधारे थे । भगवान्की कथा और संकीर्तन चल रहा था । उसी समय सड़कपर भवनके सामनेसे भगवन्नाम-कीर्तन करते हुए चन्द्रहास बालकोंकी मण्डलीके साथ निकले । बच्चोंकी अत्यन्त मधुर संकीर्तन-ध्वनि सुनकर ऋषियोंके कहनेसे मदनने सबको वहीं बुला लिया । चन्द्रहासके साथ बालक नाचने-गाने एवं कीर्तन करने लगे । मुनियोंने तेजस्वी बालक चन्द्रहासको तन्मय होकर कीर्तन करते देखा । वे मुग्ध हो गये । कीर्तन समाप्त होनेपर स्नेहपूर्वक समीप बुलाकर ऋषियोंने उन्हें बैठा लिया और वे उनके शरीरके लक्षणोंको देखने लगे । ऋषियोंने चन्द्रहासके शारीरिक लक्षणको देखकर राजमन्त्री धृष्टबुद्धिसे कहा—'मन्त्रिवर ! तुम इस बालकको अपने घर रखकर प्रेमपूर्वक पालन करो । यह इस देशका नरेश तथा तुम्हारी सम्पत्तिका भी संरक्षक होगा ।' पर यह बात धृष्टबुद्धिके हृदयमें तीर-सी लगी । वह तो अपने लड़केको राजा बनानेका स्वप्न देख रहा था । उसने एक विश्वासी वधिकको बुलाकर उसे चन्द्रहासको वनमें ले जाकर वध करनेका आदेश दिया और एक चिह्न लानेको भी कहा । पर चन्द्रहासने

रियासत हरिनाम-गुण-संकीर्तनसे भर गयी। घर-घर संकीर्तन होने लगा। सब लोग वैष्णव व्रत करने लगे। पाठशालाओंमें भी संकीर्तन होने लग गया।

चन्दनपुर रियासतकी ओरसे कुन्तलपुरको दस हजार स्वर्णमुद्राएँ 'कर'के रूपमें प्रतिवर्ष दी जाती थीं। चन्द्रहासने उन मुद्राओंके साथ और भी बहुत-से धन-रत्नादि उपहार भेजे। धृष्टबुद्धिने जब चन्दनपुर-राज्यके ऐश्वर्य एवं वहाँके युवराजके सुप्रबन्धकी बहुत प्रशंसा सुनी, तब स्वयं वहाँकी व्यवस्था देखने वह चन्दनपुर आया। राजा तथा राजकुमारने उसका हृदयसे स्वागत किया। यहाँ आकर जब धृष्टबुद्धिने चन्द्रहासको पहचाना, तब उसका हृदय व्याकुल हो गया। उसने इस लड़केको मरवा डालनेका पुनः निश्चय किया। स्नेह दिखाते हुए उसने राजकुमारको एक पत्र देकर कहा—'युवराज! बहुत ही आवश्यक काम है और दूसरे किसीपर मेरा विश्वास नहीं। तुम स्वयं यह पत्र लेकर कुन्तलपुर जाओ। मार्गमें पत्र खुलने न पाये तथा कोई इस बातको न जाने। इसे मदनको ही देना।'

चन्द्रहास घोड़ेपर चढ़कर अकेले ही पत्र लेकर कुन्तलपुरको चल पडे। दिनके तीसरे पहर वे कुन्तलपुरके पास वहाँके राजाके बगीचेमें पहुँचे। वे बहुत प्यासे और थके थे, अतः घोड़ेको पानी पिलाकर एक ओर बाँध दिया और स्वयं सरोवरमें जल-[illegible]वृक्षकी शीतल छायामें लेट गये। लेटते ही शालग्रामकी मूर्तियी। उसी समय उस बगीचेमें राजकुमारी [illegible] गये। नन्द अपनी सखियों तथा मन्त्रीकी पुत्री 'विषया' [illegible] गया। घूमने आयी थी। संयोगवश विषया अकेली उधर ही [illegible], जहाँ चन्द्रहास सोये थे। उन परम सुन्दर युवकको देखकर वह मुग्ध हो गयी और ध्यानसे देखने लगी। उसे निद्रित कुमारके हाथमें एक पत्र दीख पड़ा। कुतूहलवश उसने धीरेसे पत्र खींच लिया और पढ़ने लगी। पत्र उसके पिताका ही था। उसमें मन्त्रीने अपने पुत्रको लिखा था—'इस राजकुमारको पहुँचते ही विष दे देना। इसके कुल, शूरता, विद्या आदिका कुछ भी विचार न कर मेरे आदेशका तुरंत पालन करना।' मन्त्रीकी कन्याको एक बार पत्र पढ़कर बड़ा दुःख हुआ। उसकी समझमें ही न आया कि पिताजी ऐसे सुन्दर देवकुमारको विष क्यों देना चाहते हैं। फिर उसे लगा सम्भवतः मेरे पिता इससे मेरा विवाह करना चाहते हैं। वे मेरा नाम लिखते समय भूलसे 'या' अक्षर छोड़ गये। उसने भगवान्‌के प्रति कृतज्ञता प्रकट की कि 'पत्र मेरे हाथ लगा, कहीं दूसरेको मिलता तो कितना अनर्थ होता!' अपने नेत्रके काजलसे उसने पत्रमें 'विष'के आगे उससे सटाकर 'या' लिख दिया, जिससे 'विषया दे देना' पढ़ा जाने लगा। फिर पत्रको बंद कर उसे निद्रित राजकुमारके हाथमें ज्यों-का-त्यों रखकर वह शीघ्रतासे चली गयी।

इधर चन्द्रहासकी निद्रा खुली। वे शीघ्र ही मन्त्रीके घर पहुँचे। मदनने पत्र देखते ही ब्राह्मणोंको बुलाकर तुरंत गोधूलि मुहूर्तमें चन्द्रहाससे अपनी बहनका विवाह कर दिया। विवाहके समय कुन्तलपुर-नरेश स्वयं भी पधारे। चन्द्रहासको देखकर उन्हे लगा कि 'मेरी कन्याके लिये भी यही योग्य वर है।' उन्होंने चन्दनपुरके इस युवराजकी विद्या, बुद्धि, शूरता आदिकी प्रशंसा बहुत सुन रखी थी। अब उन्होने राजपुत्रीका विवाह भी चन्द्रहाससे करनेका निश्चय कर लिया।

तीन दिन बाद धृष्टबुद्धि लौटा। यहाँकी स्थितिको देखकर वह तो पागल हो गया। उसने सोचा—'भले मेरी कन्या विधवा हो जाय, पर इस शत्रुका वध मैं अवश्य कराके रहूँगा।' द्वेषसे अंधे हुए हृदयकी यही स्थिति होती है। अपने हृदयकी बात मन्त्रीने किसीसे न कही। नगरसे बाहर पर्वतपर एक देवीका मन्दिर

था। धृष्टबुद्धिने एक क्रूर वधिकको वहाँ यह समझाकर भेज दिया कि 'जो कोई आज वहाँ देवीकी पूजा करने आये, उसे तुम मार डालना।' चन्द्रहासको उसने यह बताकर कि 'भवानीकी पूजा उसकी कुलप्रथाके अनुसार होनी चाहिये' सायंकाल देवीकी पूजा करनेका आदेश दिया।

इधर कुन्तलपुर-नरेशके मनमें वैराग्य हुआ। ऐसे उत्तम कार्यको करनेमें सत्पुरुष देर नहीं करते। राजाने मन्त्रिपुत्र मदनसे कहा—'बेटा! तुम्हारे बहनोई चन्द्रहास बड़े सुयोग्य है। उन्हे भगवान्‌ने ही यहाँ भेजा है। मैं आज ही उनके साथ राजकुमारीका व्याह कर देना चाहता हूँ। प्रातःकाल उन्हे सिंहासनपर बैठाकर मै तपस्या करने वन चला जाऊँगा। तुम उन्हें तुरंत मेरे पास भेज दो।'

मनुष्यकी कुटिलता, दुष्टता, प्रयत्न क्या अर्थ रखते हैं। वह दयामय गोपाल जो करना चाहे, उसे कौन टाल सकता है। चन्द्रहास पूजाकी सामग्री लिये मन्दिरकी ओर जा रहे थे। मन्त्रिपुत्र मदन राजाका संदेश लिये बड़ी उमंगसे उन्हे मार्गमें मिला। मदनने पूजाका पात्र स्वयं ले लिया यह कहकर कि 'मै देवीकी पूजा कर आता हूँ'—चन्द्रहासको उसने राजभवन भेज दिया। जिस मुहूर्तमें धृष्टबुद्धिने चन्द्रहासके वधकी व्यवस्था की थी, उसी मुहूर्तमें राजभवनमें चन्द्रहास राजकुमारीका पाणिग्रहण कर रहे थे और देवीके मन्दिरमें वधिकने उसी समय मन्त्रीके पुत्र मदनका सिर काट डाला।

धृष्टबुद्धिको जब पता लगा कि चन्द्रहास तो राजकुमारीसे विवाह करके राजा हो गया, उसका राज्याभिषेक हो गया और मारा गया मेरा पुत्र मदन, तब वह व्याकुल होकर देवीके मन्दिरमें दौड़ा गया। पुत्रका शरीर देखते ही शोकके कारण तलवार निकालकर उसने अपना सिर काट डाला। धृष्टबुद्धिको उन्मत्तकी भाँति दौडते देख चन्द्रहास भी अपने श्वसुरके पीछे दौड़ पड़े। वे तनिक देरमें ही मन्दिरमें आ गये। अपने लिये दो प्राणियोंकी मृत्यु देखकर चन्द्रहासको बड़ा क्लेश हुआ। उन्होंने निश्चय करके अपने बलिदानके लिये तलवार खींची। उसी समय भगवती साक्षात् प्रकट हो गयीं। मातृहीन चन्द्रहासको उन्होंने गोदमें उठा लिया। उन्होंने कहा—'बेटा! यह धृष्टबुद्धि तो बड़ा दुष्ट था। यह सदा तुझे मारनेके प्रयत्नमें लगा रहा। इसका पुत्र मदन सज्जन और भगवद्भक्त था, किंतु उसने तेरे विवाहके समय तुझे अपना शरीर दे डालनेका संकल्प किया था, अतः वह भी इस प्रकार उऋण हुआ। अब तू वरदान माँग।'

चन्द्रहासने हाथ जोड़कर कहा—'माताजी! आप प्रसन्न हैं तो ऐसा वर दें, जिससे श्रीहरिमें मेरी अविचल भक्ति जन्म-जन्मान्तरतक बनी रहे और आप इस धृष्टबुद्धिके अपराधको क्षमा कर दें। मेरे लिये मरनेवाले इन दोनोंको आप जीवित कर दें और धृष्टबुद्धिके मनकी मलिनताका नाश कर दें।'

देवी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गयीं। धृष्टबुद्धि और मदन जीवित हो गये। धृष्टबुद्धिके मनका पाप मर गया। चन्द्रहासको उन्होंने हृदयसे लगाया और वे भी भगवान्‌के परम भक्त हो गये। मदन तो भक्त था ही, उसने चन्द्रहासका बड़ा आदर किया। सब मिलकर सानन्द घर लौट आये। [जा० श०]

(जैमि० अश्वमेध ५०-६०)

कीर्तनकार सुतीक्ष्ण

कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥
(रामचरितमा० ३। १०। ७)

महर्षि अगस्त्यके शिष्य सुतीक्ष्णजी जब विद्याध्ययन कर चुके, तब गुरुदेवसे उन्होंने दक्षिणाके लिये प्रार्थना की। महर्षिने कहा—'तुमने जो मेरी सेवा की है, वही बहुत बड़ी दक्षिणा है। मै तुमसे प्रसन्न हूँ।' किंतु सुतीक्ष्णजीको गुरुदेवकी कुछ सेवा किये विना संतोष नहीं हो रहा था। वे बार-बार आग्रह करने लगे। उनके हठको देखकर सर्वज्ञ महर्षिने उन्हें आज्ञा दी—'दक्षिणामें तुम मुझे भगवान्के दर्शन कराओ।' गुरुकी आज्ञा स्वीकार करके सुतीक्ष्णजी उनके आश्रमसे दूर उत्तर और दण्डकारण्यके प्रारम्भमें ही आश्रम बनाकर रहने लगे। उन्होंने गुरुदेवसे सुना था कि भगवान् श्रीराम अयोध्यामें अवतार लेकर इसी मार्गसे रावणका वध करने लङ्का जायँगे। अतः वे वहीं तप तथा कीर्तन-भजन करते हुए उनके पधारनेकी प्रतीक्षा करने लगे। जब श्रीरामने पिताकी आज्ञासे वनवास स्वीकार किया और चित्रकूटसे वे विराधको भूमिमें गाड़कर सद्गति देते, शरभङ्ग ऋषिके आश्रमसे आगे बढ़े, तब सुतीक्ष्णजीको उनके आनेका समाचार मिला। समाचार पाते ही वे उसी ओर दौड़ पड़े। उनका चित्त भावनिमग्न हो गया। वे कहने लगे—

हे विधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया॥
सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥
नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥
होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन॥
(रा० च० मा० ३। १०। २—५)

प्रेमकी इतनी बाढ़ हृदयमें आयी कि मुनि अपनेको भूल ही गये। उन्हें यह भी स्मरण नहीं रहा कि वे कौन हैं, कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं और कहाँ जा रहे हैं। कभी वे कुछ दूर आगे चलते, कभी खड़े होकर 'श्रीराम, रघुनाथ, कौसल्यानन्दन' आदि दिव्य नाम लेकर संकीर्तन करते हुए नृत्य करने लगते और कभी पीछे लौट पड़ते। श्रीराम, लक्ष्मण और जानकीजी वृक्षकी आड़में छिपकर मुनिकी यह अद्भुत प्रेम-विभोर दशा देख रहे थे। नृत्य करते-करते सुतीक्ष्णजीके हृदयमें श्रीरामकी दिव्य झाँकी हुई। वे मार्गमें ही बैठकर ध्यानस्थ हो गये। आनन्दके मारे उनका एक-एक रोम खिल उठा। उसी समय श्रीराम उनके पास आ गये। उन्होंने मुनिको पुकारा, हिलाया, अनेक प्रकारसे जगानेका प्रयत्न किया; किंतु वे तो समाधिदशामें थे। अन्तमें श्रीरामने जब उनके हृदयसे उनका आराध्य द्विभुज रूप दूर करके वहाँ अपना चतुर्भुज रूप प्रकट किया, तब मुनिने व्याकुल होकर नेत्र खोल दिये और अपने सम्मुख ही श्रीजानकीजी तथा लक्ष्मणजीसहित श्रीरामको देखकर वे प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े। श्रीरघुनाथजीने दोनों हाथोंसे उठाकर उन्हे हृदयसे लगा लिया।

सुतीक्ष्णजी बडे आदरसे श्रीरामको अपने आश्रमपर ले आये। वहाँ उन्होने प्रभुकी पूजा की, कन्द-मूल-फलसे उनका सत्कार किया और उनकी स्तुति की। श्रीरामने उन्हें वरदान दिया—

अबिरल भगति ग्यान बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना॥
(रा० च० मा० ३। ११। १२)

कुछ दिन श्रीराम मुनिसे पूजित-सत्कृत होकर उनके आश्रममें रहे। वहाँसे जब वे महर्षि अगस्त्यके पास जाने लगे, तब मुनिने साथ चलनेकी अनुमति माँगी। उनका तात्पर्य समझकर प्रभुने हँसकर आज्ञा दे दी। जब प्रभु अगस्त्याश्रमके पास पहुँचे, तब आगे जाकर दण्डवत्-

संकीर्तन में तल्लीन भक्तिमती मीराजी

प्रणाम करके सुतीक्ष्णजीने अपने गुरुदेवसे निवेदन किया—

नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥
राम अनुज समेत वैदेही। निसि दिन देव जपत हहु जेही॥
(रा० च० मा० ३। १२। ४)

गुरुदेवकी गुरुदक्षिणाके रूपमें इस प्रकार उनके द्वारपर सर्वेश्वर, सर्वाधार श्रीरामको लाकर खड़ा कर देनेवाले सुतीक्ष्णमुनि धन्य हैं और धन्य है उनका श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन-रूपी भक्तिका प्रताप।
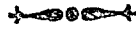
कीर्तनशीला मीराबाई

भारतकी नारी-जातिको धन्य करनेवाली भक्तिपरायणा मीराबाईका जन्म मारवाड़के कुडकी नामक ग्राममें संवत् १५५८ के लगभग हुआ था। इनके पिताका नाम श्रीरतनसिंह राठौड था। मीरा अपने पिता-माताकी एकलौती लड़की थी। वह बडे लाड-चावसे पाली गयी थी। मीराके चित्तकी वृत्तियाँ बचपनसे ही भगवान्‌की ओर झुकी हुई थीं। एक दिन मीराके घर एक साधु आये। साधुके पास भगवान्‌की एक सुन्दर मूर्ति थी। मीराने साधुसे कहकर वह मूर्ति ले ली। साधुने मूर्ति देकर मीरासे कहा कि 'ये भगवान् है, इनका नाम श्रीगिरधरलालजी है। तू प्रतिदिन प्रेमके साथ इनकी पूजा किया कर।' सरलहृदया बालिका मीरा सच्चे मनसे भगवान्‌की पूजा करने लगी। यद्यपि मीरा उस समय दस वर्षकी थी, तथापि वह दिनभर उसी मूर्तिको नहलाने, चन्दन-पुष्प चढ़ाने, भोग लगाने और आरती उतारने आदिके काममे लगी रहती। सूरदासजीका एक पद उसने याद कर लिया और उसे वह भगवान्‌के सामने बारंबार गाया करती थी—

जो बिधना निज बस करि पाऊँ।
तो सब कहो होय सखि मेरो, अपनी साध पुराऊँ॥
लोचन रोम-रोम प्रति माँगौं पुनि पुनि त्रास दिखाऊँ।
इकटक रहैं पलक नहिं लागे, पद्धति नई चलाऊँ॥
कहा करौं छबि राशि श्यामघन, लोचन है न अघाऊँ।
येते पर ये निमिष सूर सुनु यह दुख काहि सुनाऊँ॥

मीरा इस पदका कीर्तन करते-करते कई बार बेहोश हो जाती। सम्भवतः उसे 'छबिराशि श्यामघन' के दर्शन होते रहे हों! मीरा अबतक स्वयं पद-रचना भी करने लगी थी। जब वह स्वरचित सुन्दर पदोंको भगवान्‌के सामने मधुर स्वरमें गाती, तब मानो प्रेमका प्रवाह-सा बहने लगता। सुननेवाले नर-नारियोंके हृदयमें प्रेम उमड़ने लगता। इस प्रकार भावतरङ्गोंमें हिलोरे लेते हुए उसके पाँच वर्ष बीत गये। संवत् १५७३ में मीराका विवाह चित्तौड़के सीसोदिया-वंशमें महाराणा साँगाजीके ज्येष्ठ कुमार भोजराजके साथ सम्पन्न हुआ। विवाहके समय एक अद्भुत घटना घटी। कृष्ण-प्रेमकी साक्षात् मूर्ति मीराने अपने श्याम श्रीगिरधरलालजीको पहलेसे ही मण्डपमें विराजित कर दिया और कुमार भोजराजके साथ फेरा लेते समय श्रीगिरधरगोपालजीके साथ भी फेरा ले लिया। मीराने समझा कि आज भगवान्‌के साथ मेरा विवाह भी हो गया।

मीराकी माताको इस घटनाका पता था। उसने मीरासे कहा—'पुत्रि! तूने यह क्या खेल किया?' मीराने मुसकराते हुए कहा—

माई म्हांने सुपनेमे बरी गोपाल।
राती पीती चुनड़ी ओढ़ी मेहदी हाथ रसाल॥
काँई और को बरु भाँवरी म्हांके जग जंजाल।
मीराके प्रभु गिरधरनागर करी सगाई हाल॥

मीराके भगवत्प्रेमके इस अनोखे भावको देखकर माता बड़ी प्रसन्न हुई। जब सखियोको इस बातका पता लगा, तब उन्होने हँसी करते हुए मीरासे गिरधरलालजीके साथ फेरे लेनेका कारण पूछा। मीराने कहा—

ऐसे वरको के वरूँ जो जन्मे और मर जाय।
वर वरिये गोपालजी म्हारो चुड़लो अमर हो जाय॥

प्राणोंकी पुतली मीराको माता-पिताने दहेजमें बहुत-सा धन दिया; परंतु मीराका मन उदास ही देखा तो माताने पूछा—'बेटी ! तू क्या चाहती है ? तुझे जो चाहिये सो ले ले ।' मीराने कहा—

दे री माई अब म्हांको गिरधर लाल।
प्यारे चरणकी आन करति हौं, और न दे मणि लाल॥
नात सगो परिवारो सारो, मने लगै मानो काल।
मीरा के प्रभु गिरधर-नागर, छवि लखि भई निहाल॥

भक्तको अपने भगवान्‌के अतिरिक्त और क्या चाहिये ? माताने बड़े प्रेमसे गिरधरलालजीका सिंहासन मीराकी पालकीमें रखवा दिया । कुमार भोजराज नव-वधूको लेकर राजधानीमें आये । वर-घर मङ्गल-बधाइयाँ होने लगीं । रूप-गुणवती बहूको देखकर सास प्रसन्न हो गयी । कुलाचारके अनुसार देव-पूजाकी तैयारी हुई; परंतु मीराने कहा कि मैं तो एक गिरधरलालजीके सिवा और किसीको नहीं पूजूँगी । यह सुनकर सासु बड़ी रुष्ट हुई । उसने मीराको दो-चार कड़ी बातें भी सुनायीं; परंतु मीरा अपने प्रणपर अटल रही ।

राजपूतानेमें प्रतिवर्ष गौरी-पूजन हुआ करता है । छोटी-छोटी लड़कियाँ और सुहागिन स्त्रियाँ सुन्दर रूप-गुण-सम्पन्न वर और अचल सुहागके लिये बड़े चावसे 'गौर'-पूजा करती हैं । मीरासे भी गौर पूजनेको कहा गया । मीराने स्पष्ट उत्तर दे दिया । सारा रनिवास मीरासे अप्रसन्न हो गया । सास और ननद ऊदाबाईने मीराको बहुत समझाया; परंतु वह नहीं मानी । उसने कहा—

ना म्हें पूजा गौर ज्याजी ना पूजा अनदेव।
म्हें पूजा रणछोड़जी सासु थे, काँई जाणो भेव॥

सासु और भी रुष्ट हुई । समवयस्क सहेलियोंने मीरासे कहा—'बहन ! यह तो सुहागकी पूजा है, सभीको करनी चाहिये ।' मीराने उत्तर दिया—'बहनो ! मेरा सुहाग तो सदा ही अटल है । जिसे अपने सुहागमें संदेह हो, वह गिरधरलालजीको छोड़कर दूसरेको पूजे ।' मीराके इन शब्दोंका मर्म जिसने समझा, वह तो धन्य हो गयी; परंतु अधिकतर स्त्रियोंको यह बात अच्छी न लगी । मीराकी इस भक्ति-भावनाको देखकर कुमार भोजराज पहले तो कुछ रुष्ट हुए; परंतु अन्तमें मीराके सरल हृदयकी शुद्ध भक्तिसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने मीराके लिये अलग श्रीरणछोडजीका मन्दिर बनवा दिया । कुमार भोजराज एक साहसी वीर और साहित्यप्रेमी युवक थे । मीराकी पदरचनासे उन्हें बड़ा हर्ष होता और इसमें वे अपना गौरव मानते । जब वे मीराके प्रेम-पुलकित मुखचन्द्रको देखते तभी उनका मन मीराकी ओर खिंच जाता । जब मीरा नये-नये पद बनाकर पतिको गाकर सुनाती, तब कुमारका हृदय आनन्दसे भर जाता ।

यद्यपि मीरा अपना सच्चा पति केवल श्रीगिरधरलालजीको ही मानती थी और प्रायः अपना सारा समय उन्हींकी सेवामें लगाती, तथापि उसने अपने लौकिक पति कुमार भोजराजको कभी अप्रसन्न नहीं होने दिया । अपने सुन्दर और सरल स्वभावसे तथा निःस्वार्थ सेवा-भावसे उसे सदा प्रसन्न रखा । कहते हैं, कुछ समय बाद मीराकी अनुमति लेकर कुमारने दूसरा विवाह कर लिया । मीराको इस विवाहसे बड़ी प्रसन्नता हुई । उसे इस बातका सदा संकोच रहता था कि मैं स्वामीकी मनःकामना पूरी नहीं कर पाती । अब दूसरी रानीसे पतिको परितृप्त देखकर और पतिके भी परमपति परमात्माकी सेवामें अपना पूरा समय लगनेकी सम्भावना समझकर मीराको बड़ा आह्लाद हुआ ।

मीरा अपना सारा समय भजन-कीर्तन और साधु-सङ्गतिमें लगाने लगी । कभी विरहसे व्याकुल होकर रोने लगती, कभी ध्यानमें भगवान्‌से वार्तालाप करती हँसती, कभी प्रेमसे नाचती, भूख-प्यासका कोई पता नहीं । लगातार

कई दिनोंतक बिना खाये-पीये प्रेम-समाधिमें पडी रहती। कोई समझाने आता तो उससे भी केवल कृष्ण-प्रेमकी ही बातें करती। दूसरी बात तो उसे सुहाती ही नहीं। शरीर दुर्बल हो गया, घरवालोंने समझा कि बीमार है, वैद्य बुलाये गये। मारवाड़से पिता भी वैद्य लेकर आये। यह देखकर मीराने कहा——

हेरी मैं तो राम दीवानी, मेरा दरद न जाणे कोय॥
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय।
गगन मँडलपै सेज पियाकी, किस विध मिलणा होय॥
घायलकी गत घायल जाने, की जिन लाई होय।
जौहरिकी गत जौहरि जाने, की जिन जौहर होय॥
दरदकी मारी बन बन डोलूँ, बैद मिल्या नहिं कोय।
मीराकी प्रभु पीड़ मिटैगी, जद बैद सॉवलिया होय॥

वैद्य देख गये; परंतु इन अलौकिक प्रेमके दीवानोंकी दवा इन बेचारे वैद्योंके पास कहाँसे आती! तब मीराने श्याम-वियोगमें यह पद गाया——

नातो नाँवको जी म्हांसू तनक न तोड्यो जाय॥टेक॥
पाना ज्यूँ पीली पड़ी रे, लोक कहें पिंड रोग।
छाने लाँघण म्हें किया रे, राम मिलणके जोग॥
बाबल बैद बुलाइया रे, पकड दिखाई म्हारे बाँह।
मूरख बैद मरम नहिं जाणै, कसक कलेजे माँह॥
जासो बैद घर आपणे रे, म्हारो नाव न लेय।
मैं तो दाझी बिरहकी रे, काहेकूँ औषध देय॥
मांस गलि गलि छीजिया रे, करक रह्या गल माँह।
आँगलिया की मूँदरी म्हारे, आवण लागी बाँह॥
रह रह पापी पपीहड़ा रे, पियको नॉव न लेय।
जो कोई बिरहण साम्हले रे, पिव कारण जिव देय॥
छिन मदर छिन आँगणो रे, छिन छिन ठाढ़ी होय।
घायल ज्यूँ घूमूँ खड़ी, म्हारी बिथा न बूझै कोय॥
काढ कलेजो मैं धरूं रे, कागा तू ले जाय।
जिण देसाँ म्हारो पिव बसे रे, वॉ देखत तूँ खाय॥
म्हारे नातो नामको रे, और न नातो कोय।
मीरा व्याकुल बिरहणी, पिव दर्शण दीज्यो मोय॥

कैसी उत्कण्ठा है! कैसा उन्माद है! कितनी मनोहर लालसा है! भगवान् इसीसे वशीभूत होते हैं, इसीसे वे बिक जाते हैं। मीराने मूल्यपर उनको खरीदा था। मीराने कहा——

माई रे मैं तो गोविंद लीन्यो मोल।
कोई कहै सस्तो कोई कहै महँगो लीन्यो तराजू तोल॥
कोई कहै घरमें, कोई कहै बनमें राधाके सँग किलोल।
मीराके प्रभु गिरधर नागर आवत प्रेम के मोल॥

जिसका मन-भ्रमर श्यामसुन्दरके चरणारविन्द-मकरन्द-पानमें रम जाता है, उसे दूसरी बात कैसे अच्छी लग सकती है। जिसने एक बार उनकी अनूप रूपराशिका स्वप्नमें भी दर्शन कर लिया, जिसके हृदयमें उस पुनीत प्रेमका जरा-सा भी अङ्कुर उत्पन्न हो गया, जिसने उस मधुर प्रेमसुधाका भूलसे भी रसास्वादन कर लिया, वह कभी इस जगत्के भोगोंकी ओर नहीं देख सकता।

नवयुवती राजपुत्री एवं राजवधू मीराने भी इसी प्रेम-रसका पान करनेके कारण द्वापरकी गोपरमणियोंकी भाँति अपना सर्वस्व उस विश्व-विमोहन मोहनके चरणोंमें अर्पित कर दिया। संसारका कोई भी प्रलोभन या भय उसे विचलित नहीं कर सका। मीरा अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे गद्गद-कण्ठ होकर रणछोड़जीसे प्रार्थना करने लगी——

मीराको प्रभु साँची दासी बनाओ।
झूठे धंधोंसे मेरा फंदा छुड़ाओ॥
लूटे ही लेत विवेकका डेरा।
बुधि बल यदपि करूँ बहुतेरा॥
हाय! राम नहिं कछु बस मेरा।
मरती बिबस प्रभु धाओ धाओ॥
धर्म उपदेश नित ही सुनती हूँ।
मन कुचालसे बहु डरती हूँ॥
सदा साधु सेवा करती हूँ।
सुमिरण ध्यानमें चित धरती हूँ॥
भक्ति मार्ग दासीको दिखाओ।
मीराको प्रभु साँची दासी बनाओ॥

विवाहके बाद इस प्रकार भक्तिके प्रवाहमें दस वर्ष बीत गये। संवत् १५८३ में कुमार भोजराजका देहान्त

हो गया। महाराणा साँगाजी भी परलोकवासी हो गये। राजगद्दीपर मीराके दूसरे देवर विक्रमाजीत आसीन हुए। मीरा भगवत्प्रेमके कारण वैधव्यके दुःखसे दुःखित नहीं हुई। साधु-महात्माओंका सङ्ग बढता गया, मीराकी भक्तिका प्रवाह उत्तरोत्तर जोरसे बहने लगा। राणा विक्रमाजीतको मीराका रहन-सहन, बिना किसी रुकावटके साधु-वैष्णवोंका महलोंमें आना-जाना और चौबीसों घंटे कीर्तन होना बहुत अखरने लगा। उन्होंने मीराको समझानेकी बहुत चेष्टा की। चम्पा और चमेली नामकी दो दासियाँ इसी हेतु मीराके पास रखी गयीं। राणाकी बहन ऊदाबाई भी मीराको समझाती रही; परंतु मीरा अपने मार्गसे जरा भी नहीं डिगी। मीराने समझानेवाली सखियोंसे पहले तो नम्रतापूर्वक अपना संकल्प सुनाया, अन्तमें स्पष्ट कह दिया—

बरजी मैं काहू की न रहूँ।
सुनो री सखी तुम चेतन हो के मन की बात कहूँ॥
साधु संगत कर हरि सुख लेऊँ जग सूँ मैं दूर रहूँ।
तन धन मेरो सबही जाओ भल मेरो सीस लहूँ॥
मन मेरो लाग्यो सुमरण सेती सब का बोल सहूँ।
मीरा के प्रभु गिरधरनागर सतगुरु-शरण गहूँ॥

सखियोंने कहा—'मीराजी! आप भगवान्से प्रेम करती हैं तो करें, इसमें किसीको कोई आपत्ति नहीं; परंतु कुलकी लाज छोड़कर दिन-रात साधुओंकी मण्डलीमें रहना और नाचना-गाना उचित नहीं। इससे महाराणा अप्रसन्न हैं।' मीराने कहा—

सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हारो काँई कर लेसी,
म्हें तो गोबिंद गुण गास्यां हो माई॥
राणाजी रूठ्यो ता वाँरो देश रखाली,
हरि रूठ्याँ किठे जास्याँ हो माई॥
लोक लाजकी काण न मानाँ,
निरभै निसाण घुरास्याँ हो माई॥
रामनाम की झँयाझ चलास्याँ,
भवसागर तिर जास्याँ हो माई॥
मीरा शरण सबल गिरधरकी,
चरणकमल लपटास्याँ हो माई॥

कैसा अटल निश्चय है! कितना अचल विश्वास है! कितनी निर्भयता है! कैसा अद्भुत त्याग है! ऊदा और दासियाँ आयी थीं समझानेको, परंतु मीराकी शुद्ध प्रेमाभक्तिको देखकर उनका चित्त भी उसी ओर लग गया। वे भी मीराके इस गहरे प्रेम-रंगमें रँग गयीं। अन्तमें राणाने चरणामृतके नामसे मीराके पास विषका प्याला भेजा। चरणामृतका नाम सुनते ही मीरा बड़े प्रेमसे उसे पी गयी। भगवान्ने अपना विरद सँभाला, विष अमृत हो गया, मीराका बाल भी बाँका नहीं हुआ। बलिहारी है! भगवत्कृपासे क्या नहीं हो सकता? मीराने प्रेममें मगन होकर गाया—

राणाजी जहर दियो मैं जानी।
जिन हरि मेरो नाम निबेर्‍यो, छर्‍यो दूध अरु पानी॥
जबलग कंचन कसियत नाहीं, होत न बाहर बानी।
अपने कुलको परदो करियो, मैं अबला बौरानी॥
श्वपच भक्त वारौं तन मनते, हौं हरि हाथ बिकानी।
मीरा प्रभु गिरधर भजिबेको संत चरण लिपटानी॥

यह पद गाकर मीरा नाचने लगी—
'पग बाँध घुँघरू मीरा नाची रे।'

दासियोंने जाकर यह समाचार राणाजीको सुनाया। वे तो दंग रह गये कि कलियुगमें यह दूसरा प्रह्लाद कहाँसे आ गया! मीराके आठों पहर भजन-कीर्तनमें बीतने लगे। नींद-भूखका कोई पता नहीं। शरीरकी सुधि नहीं। वह दिनभर रोती और हरिकीर्तन किया करती। मीरा रातको मन्दिरका पट बंद करके भगवान्के आगे उन्मत्त होकर नाचती। मानो भगवान् प्रत्यक्ष प्रकट होकर मीराके साथ बातचीत करते हो। महलोंमें तरह-तरहकी चर्चा होने लगी। सखियोंने कहा—'मीरा! तुम युवती स्त्री हो, दिनभर किसकी बाट देखती हो, किसके लिये यों क्षण-क्षणमें सिसक-सिसककर रोया करती हो?'

दासियोंने समझाया—'बाईजी ! यह सारी बात तो ठीक है, परंतु इस तरह करनेसे आपका कुल लज्जित होता है ।' मीराने कहा—क्या करूँ, मेरे वशकी बात नहीं है—

आली री, मेरे नयनन बान पड़ी ।
हृदय बसी वह माधुरी मूरति उर बिच आन अड़ी ॥
इकटक कभी पंथ निहारूँ, अपने भवन खड़ी ।
मीरा प्रभुके हाथ बिकानी लोग कहैं बिगड़ी ॥

कितना पवित्र भाव है ! परंतु 'जाकी जेती बुद्धि है, तेती कहत बनाय' के अनुसार लोगोंने कुछ-का-कुछ बना दिया । मनुष्य प्रायः अपने ही मनके पापका दूसरेपर आरोप किया करता है । किसीने जाकर राणाजीके कान भर दिये । उन्हें समझा दिया कि मीराका तो चरित्र भ्रष्ट हो गया है । दिनभर तो वह विरहिणीकी तरह रोया करती है और रातको आधी रातके समय उसके महलसे किसी दूसरे पुरुषका शब्द सुनायी देता है । हो न हो, कुछ-न-कुछ दालमें काला अवश्य ही है ।

राणाको यह बात सुनकर बड़ा क्रोध आया । उसी दिन वे आधी रातके समय नंगी तलवार हाथमें लेकर मीराके महलमें गये । किवाड़ बंद थे । राणाको भी भीतरसे किसी पुरुषका शब्द सुनायी पड़ा । नहीं कह सकते कि यह राणाके दृढ़ संकल्पका फल था या भगवान्‌की लीला थी । राणाने अकस्मात् किवाड़ खुलवाये । देखते हैं तो मीरा प्रेम-समाधिमें बैठी है । दूसरा कोई नहीं है । राणाने मीराको चेत कराकर पूछा—'बताओ ! तुम्हारे पास दूसरा कौन था ?' मीराने झटसे उत्तर दिया—'मेरे छैलछबीले गिरधरलालजीके सिवा और कौन होता ? जगत्‌में दूसरा कोई हो तो आवे ।' राणा इन वचनोंका मर्म क्यों समझने लगे ? उन्होंने बड़ी सावधानीसे सारे महलमें खोज की, परंतु कहीं कोई नहीं दीख पड़ा । तब वे लज्जित होकर लौटने लगे । मीराने पद गाया—

राणाजी ! मैं साँवरे रँग राची ।
सज सिणगार पद बाँध घूँघुरू, लोक लाज तजि नाची ॥
गई कुमति लहि साधुकी संगति, भक्ति रूप भइ साँची ।
गाय गाय हरिके गुण निसिदिन, काल ब्यालसे बाँची ॥
इन बिनु सब जग खारो लागत, और बात सब काँची ।
मीरा के प्रभु गिरधरनागर, भक्ति रसीली जाँची ॥

राणाके विलासविभ्रमरत, मोहावृत मलिन मनपर मीराकी अमृत वाणीका कोई असर नहीं हुआ । वे वापस लौट गये । मीरा उसी तरह 'लोकलाज-कुलकान' को बहाकर बेधड़क हरिकीर्तन करने लगी । मीराके पदोंकी प्रशंसा सुनकर एक बार तानसेनको साथ लेकर बादशाह अकबर वैष्णवके वेषमें मीराके पास आये थे और मीराकी भक्तिका अद्भुत प्रभाव देखकर रणछोड़जीके लिये एक अमूल्य हार देकर लौट गये थे । इससे भी लोगोंमें बड़ी चर्चा फैली । राणाने क्रुद्ध होकर मीराका अस्तित्व मिटा देनेके लिये एक पिटारीमें काली नागिनको बंद करके शालग्रामजीकी मूर्तिके नामसे उसके पास भेजा । शालग्रामका नाम सुनते ही मीराके नेत्र डबडबा आये । उसने बड़े उत्साहसे पिटारी खोली; देखती है तो सचमुच उसमें श्रीशालग्रामजीकी एक सुन्दर मूर्ति और एक मनोहर पुष्पमाला है । मीरा प्रभुके दर्शन कर नाचने लगी—

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥
साँप पिटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दिया जाय ।
न्हाय धोय जब देखन लागी, सालिगराम गई पाय ॥
× × ×
मीरा के प्रभु सदा सहाई, राखे बिघन हटाय ।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय ॥

राणाजीने और भी अनेक उपायोंसे उसे डिगाना चाहा, परंतु मीरा किसी तरह भी नहीं डिगी । जब राणा बहुत सताने लगे, तब मीराने गोस्वामी तुलसीदासजीको एक पत्र लिखा—

स्वस्ति श्रीतुलसी गुण-भूषण दूषण-हरण गोसाँई ।
बारहिं बार प्रणाम करहुँ अब हरहु सोक समुदाई ॥
घरके स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई ।
साधुसंग और भजन करत मोहिं देत कलेस महाई ॥

सो तो अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरियाई ।
बालपनेमें मीरा कीन्हीं गिरधरलाल मिताई ॥
मेरे मात तात सम तुम हो हरिभक्तन सुखदाई ।
मोकों कहा उचित करिबो अब सो लिखिये समझाई ॥

गोस्वामीजी महाराजने उत्तरमें यह प्रसिद्ध पद लिख भेजा—

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ॥
× × × × ×
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान तें प्यारो ।
जाते होइ सनेह रामपद एतो मतो हमारो ॥

इस पत्रको पाकर मीराने घर छोड़कर वृन्दावन जानेका निश्चय कर लिया । राणाजीको तो इस बातसे बड़ी प्रसन्नता हुई, परंतु ऊदाजी और मीराकी अन्यान्य प्रेमिका सखियोंको बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने मीराको रोकना चाहा, परंतु मीराने किसीकी कुछ भी न सुनी । वह झटपट महलसे निकलकर वृन्दावनकी ओर चल पड़ी । प्रीतमकी खोजमें जानेवाले कभी पीछेकी ओर नहीं देखा करते । मीरा भी आज उस परमप्यारे श्यामसुन्दरकी खोजमें उन्मादिनी होकर घर छोड़ रही है । धन्य है ! मीरा वृन्दावन पहुँची और वहाँ श्यामसुन्दरके प्रत्यक्ष दर्शनके लिये विरहके गीत गाती कुञ्ज-कुञ्जमें भटकने लगी । जो उसे देखता, वही भक्तिरससे भीग जाता था ।

प्रेमरसमें छकी हुई मीरा यों विरहके गीत गाती फिरती । जब भक्त भगवान्‌के लिये व्याकुल हो जाते हैं, तब भगवान् भी उनसे मिलनेके लिये वैसे ही व्याकुल हो उठते हैं । भक्त भगवान्‌को बाध्य कर देते हैं । मीराके निकट बाध्य होकर भगवान्‌को आना पड़ा । उस मनोहर छविको निरखकर मीराका मन मोहित हो गया । वह नाच-नाचकर कीर्तन करने लगी—

आजु मैं देख्यौं गिरधारी ।
सुन्दर बदन मदनकी सोभा चितवन अनियारी ॥
बजावत बंसी कुंजनमें ।
गावत ताल तरंग रंग ध्वनि नचत ग्वाल बनमें ॥
माधुरी मूरति वह प्यारी ।
बसी रहै निसिदिन हिरदै बिच टरै नहीं टारी ॥
वाहि पर तन मन मैं वारी ।
वह मूरति मोहिनी निहारत लोक लाज टारी ॥
तुलसी बन कुंजन संचारी ।
गिरधर लाल नवल नटनागर मीरा बलिहारी ॥

उस रूपराशिको देखकर किसका चित्त उन्मत्त नहीं होता ? जो उसे देख पाया, वही पागल हो गया । मीरा पागलकी तरह चारों ओर उसकी मधुर छविका दर्शन करती हुई गाती फिरती थी ।

एक बार मीरा वृन्दावनमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुके शिष्य परम भक्त जीवगोस्वामीजीका दर्शन करनेके लिये गयी । गुसाँईजीने भीतरसे कहला भेजा—'हम तो स्त्रियोंसे नहीं मिलते ।' मीराने इसपर उत्तर दिया—'महाराज ! सुना आजतक तो वृन्दावनमें पुरुष एक श्रीनन्दनन्दन ही थे, और सभी स्त्रियाँ ही थीं, पर आज आप भी पुरुष प्रकट हुए हैं ।' मीराका रहस्यमय उत्तर सुनकर जीवजी महाराज नंगे पैरों बाहर आकर बड़े प्रेमसे मीरासे मिले ।

मीराके कई पदोंसे पता लगता है कि वे भक्तप्रवर रैदासजीकी चेली थीं, परंतु एक पदसे यह भी प्रतीत होता है कि वे श्रीचैतन्यमहाप्रभुके सम्प्रदायकी वैष्णव-दासी थीं और कुछ लोग उन्हें वल्लभ-सम्प्रदायमें दीक्षित बतलाते हैं । अस्तु ! श्रीचैतन्यकी स्तुतिका पद इस प्रकार है—

अब तो हरी नाम लौ लागी ।
सब जगको यह माखन चोरा, नाम धर्‌यो बैरागी ॥
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ी सब गोपी ।
मूँड मुँडाइ डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी ॥
मात जसोमति माखन कारन, बाँधे जाको पाँव ।
श्याम किशोर भये नव गौरा, चैतन्य ताको नाँव ॥
पीताम्बरको भाव दिखावै, कटि कौपीन कसै ।
गौर-कृष्णकी दासी मीरा, रसना कृष्ण बसै ॥

कुछ कालतक वृन्दावनमें निवास कर मीरा द्वारकाजी चली गयी और वहाँ रणछोड़ भगवान्‌के दर्शन और भजनमें अपना समय बिताने लगी। कहते हैं, एक बार चित्तौड़से राणाजी उसे वापस लानेके लिये द्वारकाजी गये थे। मीराके चले जानेके बाद चित्तौड़में बड़े उपद्रव होने लगे थे। लोगोंने राणाको समझाया कि आपने मीरा-सरीखी भगवत्-प्रेमिकाका तिरस्कार किया है, उसीका यह फल है। इसीलिये राणा मीरासे क्षमायाचनाकर उसे लौटाकर ले जाना चाहते थे, परंतु मीराने किसी तरह भी जाना स्वीकार नहीं किया।

मीरा श्रीद्वारकाधीशजीके मन्दिरमें आकर प्रेममें उन्मत्त होकर कीर्तन करने लगी—

सजन सुध ज्यों जानो त्यों लीजै।
तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरी कीजे॥
दिन नहिं भूख रैन नहिं निद्रा यों तन पलपल छीजे।
मीरा कह प्रभु गिरधर नागर मिलि बिछुरन नहिं दीजे॥

यों कहकर मीरा नाचने लगी और अन्तमें भगवान् रणछोड़जीकी मूर्तिमें समा गयी—

नृत्यत नूपुर बाँधिके गावत लै कर तार।
देखत ही हरिमें मिली तृण सम गनि संसार॥
मीराको निज लीन किये नागर नन्दकिशोर।
जग प्रतीत हित नाथ मुख रह्यो चूनरी छोर॥

कहा जाता है कि संवत् १६३० के लगभग मीराका शरीर भगवान्‌में लीन हुआ था। मीराने कुछ ग्रन्थ भी रचे थे, जो इस समय उपलब्ध नहीं हैं। मीराके भजन प्रसिद्ध हैं। जो उन्हे गाता और सुनता है, वही प्रेममें मत्त हो जाता है। मीराने अवतार लेकर भारतवर्ष, हिंदू-जाति और नारी-कुलको पावन और धन्य कर दिया।

बोलिये भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

श्रीचैतन्यमहाप्रभुका चरित्र—स्वयंमें संकीर्तन

(लेखक—आचार्य डॉ० श्रीशुकरत्नजी उपाध्याय)

प्रेमकी प्रचण्ड शक्ति और उसके दुर्निवार आकर्षणसे किसका परिचय नहीं है? धर्म और जीवनके सारतत्त्व तथा परम मधुर विवशताका नाम ही प्रेम है। आजका देश और काल जिस प्रकार अनास्थामण्डित होकर अपने भीतर-ही-भीतर बिखर रहा है, उसे सँभालनेकी शक्ति कोरे तर्कजालमें नहीं है। अनास्थाकी मरुभूमिको सींचनेके लिये प्रेमकी दृष्टि चाहिये। सम्पूर्ण जगत्‌के द्वारोंमें केवल यही प्रवेश कर सकता है। प्रेमरूपी फलके ऊपर काम, क्रोध आदि छः छिलकोंका आवरण है। परम करुणामयी भक्तिकी कृपासे ही इसके विशुद्ध रूपका अनुभव किया जा सकता है। महाप्रभु चैतन्यने एक गहरे आवेग और भावनात्मकताके साथ जन-सामान्यतक प्रेम-भक्ति या वैष्णव-धर्मको पहले बंगालमें, फिर सम्पूर्ण देशमें पहुँचानेका काम किया। आज उसका प्रकाश 'कृष्ण-चैतन्य-आन्दोलन'के रूपमें सारे विश्वमें फैलने लग गया है। महाप्रभु चैतन्यदेवका आगमन एक युगान्तरकारी घटना है। यदि उनका आगमन न होता तो इस्लामके प्रभावसे केवल विधि-निषेधद्वारा बंगालका समाज नहीं बच पाता। उनके प्रेमधर्मने मिलनकी एक बाढ़-सी बहायी थी। उनके प्रेमके आदर्शमें समन्वयकी अद्भुत शक्ति थी। उन्होंने लाखों पतित और पददलितोंका उद्धार किया। जो समाजमें पदच्युत थे, उन्हें नया सम्मान दिया। पूरे समाजको जीनेके लिये एक नयी आस्था प्रदान की। भगवान्‌की भक्ति करनेका अधिकार सबको है। जाति, कुल, धर्म, देश आदिकी कोई भी मर्यादा मनुष्यको
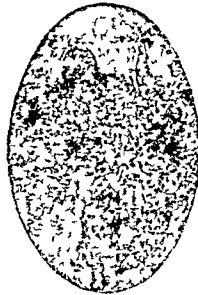
भक्ति करनेसे नहीं रोक सकती। भगवान्‌का नाम लेनेवाला व्यक्ति पवित्र होता है।

उन्होंने अपने रस-कीर्तनको जन-आन्दोलनका रूप दे दिया, जिसकी धुनोंसे आसमान गा उठता और धरती झूम उठती। नदी-कछार, सागरकी लहरों और वृक्षोंके हिलते हुए कोमल पत्तोंसे टकराकर लौटती हुई वह ध्वनि सायंकालके सूनेपन और रातके सन्नाटेमें गूँजती रहती। विजेता शासकके डरसे जहाँ मुँहसे शब्द नहीं निकलते थे, वहाँ 'हरि हरये नमः'की ध्वनिसे गलियाँ गूँजने लगतीं। लोगोंको ऐसा लगा कि उनमें भी साहस आ गया है, हम अपनी आस्थाको पोषित करके उसपर सगर्व और सानन्द टिके रह सकते हैं। पूरे समाजमें हलचल हुई और उन्हें ऐसा लगा, जैसे उनकी चेतना नयी और तेजस्वी बनकर फिर लौट आयी हो। वे अपने मानसिक पतनसे मुक्त होनेके लिये जाग उठे।

महाप्रभु चैतन्यका जीवन संदेहपूर्ण प्रश्नोंसे घिरा नहीं है। उनके समसामयिक शिष्यों और अनुयायियोंने ही अपनी आँखोंसे प्रत्यक्ष किये गये उनके जीवन-चरितका वर्णन किया है। चैतन्यचरितामृत (बंगला), चैतन्यचन्द्रोदय नाटक, श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत (संस्कृत) आदि ग्रन्थोंमें विस्तारसे उनका जीवन-चरित उपलब्ध होता है। चैतन्य महाप्रभुका जन्म-संवत् १५४२, शकाब्द १४०६ (१३८६ ई०) है। बंगालके प्रसिद्ध स्थान नवद्वीपमें ब्राह्मणवंशीय जगन्नाथ मिश्रके यहाँ आपका जन्म हुआ था। मेधावी एवं प्रखर बुद्धिमान् होनेके कारण उन्होंने छोटी-सी ही अवस्थामें व्याकरण, न्यायशास्त्र आदिमें अद्भुत सफलता प्राप्त कर ली। इनके वैदुष्य और पाण्डित्यकी गाथा सर्वत्र फैल गयी। इनके द्वारा स्थापित की हुई पाठशालामें लोग दूर-दूरसे आने लगे। संवत् १५५८ में इनका प्रथम विवाह लक्ष्मीप्रिया नामक सुन्दरी कन्यासे हुआ; किंतु एक वर्षके भीतर ही उसकी मृत्यु हो गयी। इनका पुनः दूसरा विवाह संवत् १५६२में विष्णुप्रियाके साथ हुआ।

स्वर्गीय पिताके श्राद्ध और पिण्डदानके लिये गया-धामकी यात्राके समय उनका सम्पर्क भक्ति-बीजको अङ्कुरित करनेवाले श्रीमन्माधवेन्द्रपुरीजीके प्रिय ईश्वरपुरीसे हो गया। उनके आध्यात्मिक ज्ञान और भक्तिभावसे प्रभावित होकर श्रीचैतन्य उनके शिष्य हो गये; उनके सत्संगसे चैतन्यके जीवनमें महान् परिवर्तन हो गया। वहींसे उनके जीवनका वह अध्याय प्रारम्भ हुआ, जिससे उमड़ती हुई प्रेम-गङ्गाके अखण्ड और तूफानी प्रभावमें बंगाल ही नहीं, समस्त उत्तरी भारत रससिक्त हो उठा था। भक्ति-भावनाके तीव्र वेगके कारण चौबीस वर्षकी अवस्थामें ही इन्होंने गृह त्यागकर केशव भारतीसे संन्यासकी दीक्षा ले ली। यहाँ सिद्धार्थका स्मरण होता है। अन्तर इतना ही है कि सिद्धार्थ लोक-दुःखसे पीड़ित होकर घरसे निकले और चैतन्यने प्रेमानन्दमें डूबकर सर्वसुलभ हरि-संकीर्तनका विशेष प्रचार किया। सार्वभौम, निःस्वार्थ प्रेमकी पुकार उनके मधुर, मोहक संकीर्तनोंमें अभिव्यक्त हुई, जिनमें असंख्य प्राणकमलोंको निछावर करते हुए झुंड-के-झुंड लोग लालायित होकर सम्मिलित होते थे। आकाशको चीरती हुई संकीर्तनकी तुमुल ध्वनिने लाखों-करोड़ों भक्तोंके हृदयमें रसका परम मधुर सागर उड़ेल दिया। वे श्रीकृष्णके विरहमें व्याकुल होकर अपने नेत्रोंसे असंख्य अश्रुधाराओंको प्रवाहित करते हुए एक दूसरी नदी ही बहाते रहते थे।

बड़े-बड़े मनीषी इस युवा कृष्णभक्तके उत्साही अनुरागी हो गये। चैतन्यने लौकिक आकर्षणके सारे चिह्नोंका परित्याग कर दिया। भरी जवानीमें संन्यास-ग्रहण करनेके कारण उस प्रदेशके सैकड़ों लोकगीतोंमें गहन दुःख प्रकट किया गया है। ये लोकगीत आजतक गाये जाते हैं। कहा जाता है

कि जब उनके सुन्दर चमकदार केश उतारे गये, तब अनेको देखनेवालोंकी आँखे आँसुओंसे भर गयीं। तीव्र भक्तिपरक आकर्षणसे भारी संख्यामें लोग उनकी ओर आकृष्ट हुए। अत्यन्त दृढ़ पुरुष भी चैतन्यके प्रभावके मोहक आकर्षणमें पड़े बिना न रह सके। उनके तेजस्वी आध्यात्मिक व्यक्तित्वका गहरा प्रभाव तीरकी तरह भीतर घुसकर लोगोके प्राणोको बेध डालता था।

भक्तिके कर्मकाण्ड-पक्षको श्रीवल्लभाचार्यने सुदृढ़ किया एवं उसके संवेग-पक्षको चैतन्यने। श्रीकृष्णकी स्मृतिसे गरिमामण्डित वृन्दावनके पवित्र स्थानोंके पुनरुद्धार-की अपनी हार्दिक इच्छाको पूरा करनेके लिये वृन्दावनमें ही रहनेकी उनकी बड़ी अभिलाषा थी; किंतु अपनी माँकी इच्छासे उन्होंने नीलाचलको ही अपना स्थायी निवास बनाया। वृन्दावनके विलुप्त गौरवकी पुनः प्रतिष्ठा-का कार्य लोकनाथ तथा अपने प्रिय एवं मेधावी शिष्य श्रीरूपगोस्वामी एवं श्रीसनातन गोस्वामीको सौंप दिया। जिन्होने वैष्णव साधना और भक्ति-रस-शास्त्रकी अपूर्व व्याख्यासे मण्डित अनेक शास्त्रीय तथा काव्य ग्रन्थोंका प्रणयन भी किया। नीलाचलमें रहते हुए महाप्रभुने तत्कालीन प्रकाण्ड पण्डित सार्वभौम भट्टाचार्यको अपने वैदुष्य, उच्च आध्यात्मिक ज्ञान एवं भक्तिभावसे प्रभावित कर अपना अनुयायी बना लिया।

चैतन्य अपनी तीव्र आध्यात्मिक प्रेरणासे निर्दिष्ट होकर तीर्थयात्रा तथा एकके बाद एक धार्मिक महत्त्वके स्थानपर जाते रहे। दक्षिणयात्रामें उनकी भेंट विद्वान् तथा भक्त राय रामानन्दसे हो गयी। उनके साथ श्रीचैतन्यकी साधना-राज्यसे सम्बन्धित परम रहस्यमय चर्चा हुई। राय रामानन्दने चैतन्यके भाव-विह्वल धार्मिक उत्तापका अनुभव किया और उनके प्रबल अनुयायी बन गये। इस यात्रामें उन्होंने संकीर्तन और कृष्ण-भक्तिका व्यापक प्रचार किया। संवत् १५७१में चैतन्यने बंग प्रदेशकी यात्रा की। उस यात्रामें वे 'रामकेलि' नामक स्थानमें भी गये। वहाँ श्रीरूपगोस्वामी एवं श्रीसनातन गोस्वामीके साथ उनका प्रथम मिलन हुआ। संवत् १५७३मे उन्होंने व्रजयात्रा की। व्रजमें पहुँचकर उनकी अद्भुत दशाका वर्णन उनके जीवनचरित्र-लेखकोंने किया है। आनन्दविभोर होकर वे कभी पेड़ोसे लिपट कर कहने लगते—'ओरे! मेरे वंशीधर मनमोहन! अन्ततः मुझे मिल ही गये'—जब किसी पेड़से जा लिपटते, तब उन्हें यथार्थका बोध होता और मुरली-मनोहरकी छवि आगेके पेड़ोंपर वैसी ही हँसती दिखायी देती थी। हारकर गौराङ्ग स्वयं आँसुओंका महासागर बन गये। वे व्रजकी पावन रजमें लोटकर इस प्रकार परमानन्दका अनुभव करने लगे, जैसे जलसे पृथक् हुई मछली फिर महासागरमें डाल देनेसे परमानन्दका अनुभव करती है। उनकी इस व्रजयात्राका अत्यन्त महत्त्व है। उनके आदेशसे ही गोस्वामियोंने अतिशय उत्साहसे व्रजतीर्थोके उद्धारका अपूर्व कार्य किया।

व्रजसे लौटकर प्रयागमें श्रीरूपगोस्वामीसे मिलकर एवं श्रीवल्लभाचार्यसे भी भेंटकर चैतन्य भारतकी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक राजधानीके रूपमें प्रसिद्ध वाराणसी गये। वहीं प्रसिद्ध अद्वैतवादी विद्वान् प्रकाशानन्द उनके मोहक व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर उनके अनुयायी हो गये। यहाँसे लौटकर वे पुनः नीलाचल आ गये। इस प्रकार संन्यास लेनेके अनन्तर चैतन्यने प्रायः आठ वर्षतक देश-भ्रमण किया। अपनी इस यात्रामें उन्होंने मन-प्राणको भिगो देनेवाली प्रेमरसकी पावन धारा सर्वत्र प्रवाहित कर दी। अगणित नर-नारी और बड़े-बड़े मनीषी उनके अनुयायी बन गये। जिनमें प्रसिद्ध विद्वान् ही नहीं, मुसलमान भक्त हरिदास भी सम्मिलित थे। उनके इस कार्यमें सेवाकी सान्द्रता, उपदेश एवं आचरणकी एकता,

आत्माकी गहनता एवं गूढ़तम पुकार थी, जिसने उन्हें इतना मोहक तथा प्रभावशाली बना दिया।

अपनी यात्राओंके बादसे वे नीलाचलमें रहने लगे। चैतन्यदेवद्वारा प्रवर्तित रस-कीर्तन आँसुओंका राज्य और आँसुओंका इतिहास है। श्रीकृष्णके अतिरिक्त उनके लिये कोई और विषय नहीं रह गया था। मनुष्य, पशु, पक्षी, नदी-नद, सागर, घरकी दीवालें, आकाशके चाँद-तारे, इस भूलोकमें दिखायी पड़नेवाली किसी भी वस्तुमें उनके लिये कृष्णका मनोहर रूप सहसा प्रकट हो जाता। चैतन्य उस रूपको देखते ही तन्मय हो जाते, नाचते, कीर्तन करते और बेसुध होकर गिर पड़ते थे। भाव-लीन होनेपर उनके शरीरसे ऐसी कान्ति फूटने लगती कि देखनेवालोंकी आँखें एक अनूठे चमत्कारसे भर उठती थीं। लोगोंको ऐसा लगा, जैसे उन-जैसा रूप और तेज इस लोकमें प्रायः दुर्लभ है। कीर्तिरूपी गुच्छोंकी नवीन सुगन्धसे परिपूर्ण जिनके व्यक्तित्वके लिये श्रीरूपगोस्वामीने भावविह्वल होकर गान किया—

मुखेनाग्रे पीत्वा मधुरमिह नामामृतरसं
दृशोर्द्वारा यस्तं वमति घनबाष्पाम्बुमिषतः।
भुवि प्रेम्णस्तत्त्वं प्रकटयितुमुल्लासिततनुः
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु॥

'जो पहले मधुरनामामृत-रसको अपने श्रीमुखसे पानकर फिर उसे नेत्रोंसे गाढ़ अश्रुओंके बहाने बरसाते हैं, पृथ्वीतलपर प्रेमतत्त्वको प्रकटित करनेके लिये जिनका श्रीविग्रह सदा उल्लसित रहता है, वे सच्चिदानन्द विग्रहधारी श्रीचैतन्यदेव हमपर अतिशय कृपा करें।' उनके जीवनका अन्तिम भाग भक्तिकी चरम तल्लीनता, प्रेमोल्लास एवं आध्यात्मिक अनुभवोंसे भरा पड़ा है। उनका संन्यासी जीवन राजाओं या शासकों-की तरह सदैव घटनाओंसे भरा नहीं रहा; किंतु उनकी भावुकताके उफान, चरम भावोन्मेष और आध्यात्मिक सत्य-बोधसे लोगोंपर उनका प्रभाव अमिट और जादू-जैसा पड़ता था। उनके जीवन और व्यक्तित्वके अद्वितीय उदाहरणसे प्रेरित होकर लोग बिना दीक्षाके ही उनके शिष्य बन जाते थे। कभी मनुष्य सारी दौलत और सुखोंके बीच आन्तरिक तौरपर असंतुष्ट—अतृप्त रहता है। उसकी अशान्ति प्रतिदिन बढ़ती चली जाती है; किंतु जब प्रेमकी नन्हीं बूँद समुद्र बनकर लहरा उठती है, जब प्रेमका छोटा-सा बीज भी अक्षयवट बनकर अपनी शाखाएँ चारों ओर फैलाने लगता है, तब ऐसा प्रतीत होता है जैसे असंतुष्टि, अतृप्ति और अशान्तिका एक जलभरा समुद्र भाप बनकर उड़ता चला जा रहा है और प्रेम, तृप्ति तथा शान्ति-का दूसरा सागर कहीं सोते-से उमड़कर पुराने जलके स्थानको भरता चला जा रहा है। इस अनूठे, अद्भुत प्रेमने ही सारे जीवनपर फैलकर अपनी गन्धसे उनके अणु-अणुको सुवासित कर दिया था, किंतु अपनी मोहक भावुकताके होते हुए भी वे कभी भी संन्यासके कठोर आदर्शसे विचलित नहीं हुए। उनका चरित्र एकदम निष्कलङ्क था।

एक समय मार्गमें जाते हुए चैतन्य गीत-गोविन्दकी चित्ताकर्षक तान सुनकर बेसुध होकर मुग्धावस्थामें उस ओर भागने लगे, जिधरसे वह धुन आ रही थी, किंतु वह गीत किसी नायिकाद्वारा गाया जा रहा था। चैतन्यने अपने शिष्यसे सुना कि यह कोई नारी गा रही है। 'नारी' शब्द सुनते ही चैतन्यकी चेतना लौट आयी और उस दिशासे मुड़कर वापिस चले आये। फिर उन्होंने अपने शिष्य गोविन्दसे कहा—'आज तुमने मेरे जीवनकी रक्षा की। यदि मैं इस मनोदशामें अनजाने उसके पास पहुँच जाता तो मेरी मृत्यु हो जाती।' इस घटनासे आलोचकोंको गोपी-भक्तिकी चरम पवित्रताको समझानेका प्रयत्न करना चाहिये। वैष्णवधर्मके उद्धार-पथके विकासमें उनका महत्त्वपूर्ण और अद्वितीय योगदान है। पराजित

हिंदूजातिको एक नयी आस्था और नये आलोकसे संयुक्त करनेका भी काम चैतन्यमहाप्रभुने किया । इसीके साथ वैष्णवधर्मने एक नये युगमें प्रवेश किया । प्रेमकल्पलता श्रीराधा एवं प्रेमकल्पतरु श्रीकृष्णके अनन्त रसवैचित्री तथा अनन्त भाववैचित्रीके मूर्तरूप श्रीकृष्ण-प्रेमकी अलौकिक कस्तूरी वितरित करनेवाले महाप्रभुका जीवन श्रीकृष्णके प्रेमसे मत्त हुई राधाके अश्रु और नृत्यद्वारा लिखा हुआ एक खण्ड-काव्य ही था । अन्तिम वर्षोंमें उनके दिव्योन्मादकी अवस्थाका विस्मयकारी वर्णन उनके जीवन-चरित-लेखकोने किया है । कितनी करुणा और रसधारा थी उनके जीवनमें ! कितनी मधुरिमा और आकर्षण था ! यह उनके समसामयिक और पश्चाद्वर्ती सैकड़ों संस्कृत, बंगला और ब्रजके कवियों-की अगणित रचनाओसे कुछ-कुछ जाना जा सकता है । नीलाचलमें रहते हुए अड़तालीस वर्षकी अवस्थामें शकाब्द १४५५, संवत् १५६० में उस प्रेमावतारका तिरोभाव हो गया ।

चैतन्य महाप्रभुने अन्य आचार्योंके सदृश स्वयं किसी ग्रन्थका प्रणयन नहीं किया, किन्हीं भाष्य और प्रकरण ग्रन्थोंकी रचना भी नहीं की । केवल छिटफुट श्लोक ही उनके नामसे प्राप्त होते है । उनके प्रतिपल प्रेमोन्माद-युक्त जीवनको यह सब करनेका अवकाश ही कहाँ था ? उनका जीवन-प्रवाह इतना दुर्धर्ष और वेगमय था कि जो कोई उनके सम्पर्कमें आया, वह उनका ही होकर रह गया । फलतः उनके चारो ओर सम्प्रदाय-जैसी गरिमा इकट्ठी होती चली गयी और अनजानेमें ही चैतन्य-मतका उदय हो गया । श्रीरूपगोस्वामीके चैतन्य-मनोऽभीष्ट-संस्थापक-शास्त्रकर्ता और भक्त आचार्य होनेके कारण इस सम्प्रदायको 'श्रीरूपानुगम-सम्प्रदाय' भी कहते हैं । श्रीरूपगोस्वामीने इसे 'रसिक-सम्प्रदाय' कहा है—

> अनावेद्यां पूर्वैरपि मुनिगणैर्भक्तिनिपुणैः
> श्रुतेर्गूढां प्रेमोज्ज्वलरसफलां भक्तिलतिकाम् ।
> कृपालुस्तां गौडे प्रभुरतिकृपाभिः प्रकटयञ्
> शचीसूनुः किं मे नयनसरणीं यास्यति पुनः ॥

'भक्ति एक लता है, जिसका फल उज्ज्वल रसमय प्रेम है एवं जिसके तत्त्वको वेद भी नहीं जान सकते तथा भक्तिमार्गमें प्रवीण प्राचीन मुनिगण भी जिस भक्तिके स्वरूपको सहजमें नहीं जान सके, उसी उज्ज्वल रसमयी भक्तिको जिन्होने अपनी अतिशय करुणासे गौडदेशमें प्रकट किया अर्थात् आचरणपूर्वक प्रचार-प्रसार किया, वे परमकरुणामय महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव क्या फिर मुझे दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे ।'

हरिनाम भजो !

हरि नाम भजो मन मेरा, क्यों वृथा फिरावत फेरा ॥ टेक ॥
झूठे जगसे प्रीत लगाकर, करता मेरा मेरा ।
मात पिता सुत वान्धव नारी, कोई नहीं है तेरा ॥
इस जगमें स्वारथके नाते, किसको जानत नेरा ।
हरि सम जगमें कोइ न तेरो, मेटे जमका फेरा ॥
मोह भुलाना कदर न जाने, साँचा नाम न हेरा ।
विरथा जगके काज पियारे, धंधा करे घनेरा ॥
जगके जाल छोड़ कर सारे, रहो नामसे नेरा ।
"लाल" भरोसे हरि चरणोंके, छूटे वन्धन मेरा ॥

गुजरातके कीर्तनप्रेमी भक्त नरसी मेहता

(लेखक—श्रीहुसैनखाँ गग 'शिक्षक')

गुजरातमें संत महीदास, संत लालबापु, संत मोरारदास, गुणातीतानन्दजी, संत मीठा माराज, संत भीम साहेब, संत होथीजी तथा संत दासी जीवणजी आदि अनेक कीर्तनप्रेमी भक्त हो चुके हैं। इन्हींमें नरसी मेहता भी एक थे, जिनका जन्म लगभग विक्रम सं० १४९०में हुआ था। ये जातिसे नागर ब्राह्मण एवं सद्गृहस्थ थे। इनके पिताका नाम कृष्णदास एवं माताका नाम दयाकुँवर था। बचपनमें माता-पिताका देहान्त हो गया था। चाचा पर्वतदासने फिर चचेरे भाई वंशीधरने इनका पालन-पोषण किया। सत्रह वर्षकी आयुमें माणेकबाई नामक कन्याके साथ इनका विवाह हुआ। इनकी दो संतानें थीं—कुँवरबाई एवं शामलदास। बाल्यावस्थामें ये साधु-संतोंकी मण्डलियोंमें बैठकर भजन सुनते, गाते तथा नृत्य भी करते थे। संसार-व्यवहारकी ओरसे ये उदासीन रहते थे। मेहताकी प्रभुप्रेममें असीम श्रद्धा थी। मेहताके जीवन-प्रसंगोंमें—हार, हूँडी, नानीबाईका माहेरा, विवाह एवं श्राद्ध मुख्य हैं। जूनागढ़के राजाके दरबारमें एक दिव्य पुरुषद्वारा हार-प्रदान एक अलौकिक घटना है।

नरसी मेहताकी जीवनी एक करुण-घटना है। इनकी पत्नी तथा पुत्र शामलशाह अकाल ही मृत्युके ग्रास हो गये। पुत्री कुँवरबाई भी विधवा हो गयी, किंतु श्रीमेहताने अपने प्रभुप्रेमको अक्षुण्ण बनाये रखा। इनका स्वर्गवास छाछठ वर्षकी आयुमें हुआ। भक्त नरसीकी काव्य-कृतियोंमें हूँडी, चातुरी, षोडशी, छत्रीशीपद, ज्ञानभक्तिके पद, रासलीला, सहस्रपदी रास, शामलशाहका विवाह, सुदामा-चरित्र, श्रीशृङ्गारमाला, सुरतसंग्राम आदि मुख्य हैं। मेहताजीकी कवितामें भक्ति एवं तत्त्वज्ञान—दोनोंका सुन्दर समन्वय है। इनके भजन एवं पद गुजरात, राजस्थान आदि कई प्रान्तोंमें भक्तगण बड़े चावसे गाते हैं। मेहताजी प्रभुके कीर्तनप्रेमी भक्त थे, जैसा कि इनके पदोंमें स्पष्ट है—

जेने घेर हरिजन हरिजशगाय।
ते तो नित्य गंगामां न्हाय।
अड्सठ तीरथ गुरुने आंगणे।
दूर गये शू थाय।
सहुसंत मली धारण घांध्युं।
ज्ञानु गंगा तोलाय।
जप तप तीरथ जोडेमल्यां।
तेमा सट साधन मली जाय ॥जेने०॥
ज्ञान गंगा नो महिमा मोटो।
मुखे कह्यो नव जाय।
भले मल्या मेहता नरसी ना स्वामी।
हेते हरिना गुण गाय ॥जेने०॥

उक्त भजनमें भक्त नरसीने संकीर्तनका महत्त्व स्पष्टतासे प्रकट किया है। इसका आशय है—'जिसके घर भक्तलोग हरिके यशका कीर्तन करते हैं, वह सदा ही ज्ञानरूपी गङ्गामें स्नान करता है। सभी संत पुरुषोंने हरियश-संकीर्तनरूपी गङ्गाको तराजूके एक पलड़ेमें रखा और अन्य पलड़ेमें भक्तिके साधन जप, तप, तीर्थाटनादि रखे, किंतु हरिनाम-संकीर्तनका ही पलड़ा भारी रहा। इस प्रकार भगवद्यशोगानरूपी गङ्गामें भक्त नरसी मेहता नित्य स्नान करते रहे।

मेहताजी नारायणके नाम-संकीर्तनमें बाधक सांसारिक प्रिय-से-प्रिय वस्तु अथवा व्यक्तिके त्यागका निर्देश करते हैं, अर्थात् नारायणके नामसे इन्हें इतना प्रेम है कि वे अपनी सर्वप्रिय वस्तुको छोड़नेमें नहीं हिचकते थे, जैसा इस पदसे स्पष्ट है—

नारायण नूं नाम केतां, वारे तेने तजिये रे।
मनसा वाचा, कर्मणा करीने, लक्ष्मीवरने भजिये रे॥

कुल ने तजिये कुटुम्ब ने तजिये, तजिये माँ ने बाप रे।
भागनी सुत दारा ने तजिये, जेम तजे कंचुकी साप रे॥

हरिकीर्तनको नरसीने कलिकालका सिद्धिदायक अमोघ साधन कहा है, जो विना मूल्यके केवल हरि-हरि रटनेसे सिद्ध हो जाता है—

हरिरटण कर, कठण कलिकालमां,
दाम बेसे नहीं काम सरशे।
भक्त आधीन छे श्यामसुंदर,
ते कारज सिद्ध करशे॥
परपंच परहरो, सार हृदिये धरो,
उचरो हरि मुखे अचल वाणी।
नरसैया हरि भक्ति भूलीरामां,
भक्ति बिना बीजुं धूल धांणी ॥हरि०॥
संतो अमेरे वेवारिया श्रीराम नाम ना।
वेपारी आवे छे बधा गाम गामना॥

उक्त पदमें नरसी कहते हैं कि मै तो राम-नामका व्यापारी हूँ। मेरे पास अन्य सभी गाँवोंसे इस व्यापार-हेतु व्यापारी आते हैं। वे कहते हैं कि मैं उस वस्तु (नाम-संकीर्तन)का व्यापार करता हूँ जो काल, अकाल या तीनों कालमें अक्षय रहती है, जिनको न तो राजाके दण्डका भय रहता है और न ही चोर लूट सकते हैं। हरिनाम-कीर्तन मेहताका नित्य अभ्यास था। वे कहते हैं—मैं एक क्षण भी बिना हरिनामके नहीं रह सकता, मुझे हरिनामरूपी चिन्तामणि प्राप्त हो गयी है, अतः अन्य किसी भी वस्तुमें मेरी रुचि नहीं है। इस चिन्तामणिसे मेरे भवभयभ्रमणका नाश हो गया है। यह भाव निम्न पदमें स्पष्ट है—

मने हरिगुण गावानी टेव पड़ी।
मारा नाथ ने मूँकू ना एक घड़ी॥ मने०॥
बीधायुँ मन सुजना रहे,
अलगूं प्रभु साथे मारे प्रीत जड़ी॥ मने०॥
ए विठा हवे अन्य नव रूचे,
चिंतामणी मुज हाथे चड़ी॥ मने०॥
भणे नरसैयो प्रभु भजतां एम,
भवभय-भ्रमणा सघली टली॥ मने०॥

हरिस्मरण-सेवा-भक्तिके साधनोंका वर्णन करते हुए भक्त नरसी अपने पदमें लिखते हैं—

रात रहे जाहरे, पाछली खट घड़ी,
साधु पुरुष ने सूई न रहेवूं।
निद्राने परहरी समरवा श्रीहरी एकवूँ एकवूं एम कहेवूं।
जो जिवाहोय तेणे जोग संभालवा,
भोगिया होय तेणे भोग तजवा।
वेदिया होय तेणे वेद विचारवा,
वैष्णव होय तेणे कृष्ण भजवा।
...नरसैया ना स्वामी ने स्नेह थी समरतां,
फरी नव अवतरे नरने नारी॥ रात०॥

उपर्युक्त पदका तात्पर्य है कि साधक पुरुषको रात्रिके चौथे प्रहरमें जगकर हरिस्मरण, सेवायोग, तप आदि साधनमें लग जाना चाहिये। उक्त प्रकारसे हरिभक्ति-परायण नर-नारीका पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् वे मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

भक्त नरसीने अपने पदोंमें भक्तिको ईश्वर-प्राप्तिका सर्वोत्तम साधन कहा है। भक्ति-तुल्य पदार्थ ब्रह्मलोकमें भी नहीं माना है। मेहताजी कहते है कि मनुष्ययोनि दुर्लभ योनि है। चौरासी लक्ष योनियोंमें मानव-योनि ही मुक्तिका द्वार है। प्रभु-प्रेमानुरागी भक्तगण तो मुक्तिकी कामना नहीं करते, अपितु प्रत्येक जन्ममें मनुष्यावतारकी कामना करते है, जिससे नित्य प्रभु-सेवा-कीर्तनादिका आनन्द प्राप्त होता रहे—

भूतल भक्ति पदारथ मोटूं,
ब्रह्म लोकमां नाही रे।
पुण्य करी अमरापुरीपाम्या,
अंते चोरासी माही रे॥ भूत०॥
हरिना जन तो मुक्ति न मागे,
जन्मो-जन्म अवतार रे।
नित सेवा नित्य कीर्तन ओच्छव,
नीरखवा नन्दकुमार रे॥ भूत०॥
भरत खंड भूतलमां जन्मी,
जेणे गोविन्द गुण गाया रे।
धन धन रे एना मात पिता ने,
सफल करी एणे काया रे॥ भूत०॥

भक्त नरसीने प्रभुकीर्तन-साधनद्वारा सिद्धावस्था प्राप्त कर ली थी। इनके पदोंमें प्रभुप्रेमके तत्त्वके अतिरिक्त वेदान्तकी भाषाका भी वर्णन अछूता नहीं रहा है। वे कहते हैं—

समर ने श्रीहरि मेल ममता परी;
जोने विचारी ने मूल तारूँ।
तू अल्या कोण ने कोने धजगी रह्यो,
वपर समझ्ये कहे मारूं मारूं॥ समर०॥
देह तारी नहीं जो तू जुगते करी,
राख मां नव रहे निश्चे जाये।
देह सम्बन्ध तजे नवनवा बहु धरो,
पुत्र कलत्र परिवार वहाये॥

उपर्युक्त पद्यांशोंसे यह प्रकट है कि श्रीनरसी मेहता प्रभु-भक्ति-परायण संत थे, जिनका हरिनामकीर्तन ही सुगम साधन था। हरिनाम-संकीर्तनद्वारा मेहताजीने अपने हृदयारूढ़ प्रभुको प्रकट कर दर्शनका पुण्य प्राप्त किया। वे अपने अनेकों असम्भव कार्य सम्भव कर तत्कालीन समाजके हरिनाम-संकीर्तनरूपी साधनके प्रेरणास्रोत बने।

गुजरात एवं देशके कई प्रान्तोंमें भक्तगण भक्त नरसीके पदोंको आज भी बड़े प्रेमसे गाते हैं तथा हरिनाम-कीर्तनद्वारा अपना एवं जनताका पथ-प्रदर्शन करते हैं। जबतक मेहताजीका काव्य जीवित रहेगा, हरिनाम-कीर्तनकी धूम मचाता रहेगा। महात्मा गाँधीके कीर्तनमें मेहताजीके निम्न पदने प्रधान स्थान लिया है—

वैष्णव जन तो तेणे कहिये जे पीर पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तोय, मन अभिमान न आणे रे॥
× × × ×
रामनाम शू ताली वाजी, सकल तीरथ तेना तन मा रे।
भणे नरसैयो तेनू दरसन करतां, कुल एकोतर तार्या रे॥
वैष्णव०

संत कबीरका राम-संकीर्तन-प्रेम

(लेखक—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०)

संत कबीरकी जीवनीके विषयमें बहुत-से मत-मतान्तर हैं। ये महात्मा श्रीरामानन्दजीके शिष्य थे, इसमें कोई संदेह नहीं। महात्मा रामानन्दजीने इन्हें कब और कैसे अपना शिष्य बनाया, इसमें भी मतभेद है। संत कबीर किसके बालक थे, किस जातिके थे—इसका भी ठीक पता नहीं है। अनुमान है कि वे स्वामी रामानन्दजीके वैसे ही शिष्य बने होंगे, जैसे एकलव्य गुरु द्रोणाचार्यका शिष्य बना था। कहते हैं कि रात्रिके अन्तिम प्रहरमें स्वामी रामानन्दजी स्नान करने गङ्गाजी जा रहे थे और कबीर गङ्गाके किनारे सीढ़ीपर लेटे रहे। अचानक स्वामीजीका पाँव एक मानवपर पड़ गया और उनके मुखसे 'सीताराम' निकल पड़ा। बस, कबीरको इतनेसे ही प्रयोजन था। चाहे बादमें जितना भी वाद-विवाद छिड़ा होगा, किंतु कबीर तो अपना गुरु पा ही गये थे। वे डंकेकी चोटपर कहते हैं—

सतगुरु के परताप से मेट गयो दुख द्वन्द।
की कबीर दुविधा मिटी गुरु मिलिया 'रामानन्द'॥

इस पद्यसे यह स्पष्ट हो गया कि गुरुकी खोजमें कबीरके सामने अनेकों कठिनाइयाँ आती रहीं। उन कठिनाइयोंका अन्त इसी समय हो गया, जब महात्मा रामानन्दजीने 'सीताराम' कहकर अपने मनके संतापको जो मानवको पाँव-तले आ जानेपर हो गया था, मिटाया था। वही कबीरके लिये महामन्त्र हो गया और कबीरजी कबीरसाहब बन गये। कबीरके मनकी वह दुविधा भी मिट गयी, जो बिना गुरुकी दीक्षा पाये खल रही थी। कबीरदासने हिंदी-साहित्यमें कितना महत्त्व पाया—इस विषयपर यहाँ लिखना अभीष्ट नहीं। संत कबीरके

रहा। नाम-जपके विषयमें भक्त कबीरदासजीने बहुत स्पष्ट कहा है—

'राम मणि' राम मणि 'राम चिन्तामणि'।
बड़े भाग पायो अब याहि तू छाड़ जिनि॥

'रामनाम-चिन्तामणिको पाकर उसे छोड़ो नहीं' इस तथ्यको संत कबीर ललकारकर कह रहे हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि संत कवि कबीरदास 'राम-नाम' को चिन्तामणि मानकर हृदयमें रखना चाहते थे और उसी बल-बूतेपर उन्हें काशीमें रहकर प्राण त्यागनेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। वे अपने 'राम'का इतना भरोसा और विश्वास रखते थे। कबीरदास परम वैष्णव थे और वैष्णवोंकी नवधा भक्तिमें नवोंके उपासक थे। वे 'आत्मनिवेदन'पर बहुत जोर देते थे। साथ ही स्मरण, श्रवण, कीर्तन, दास्य आदिके भी समर्थक एवं उपासक थे।

संत कबीरके 'राम' भले ही 'दाशरथि' राम न रहे हों, किंतु अनन्त, अनादि, अरूप, अलख, अखण्ड ब्रह्माण्डके नायक रहे हों, जिन्हें योगिजन अपने मनमें ध्यान करते हैं, जिन 'राम'में योगी लोग रमते हैं, वे ही राम कबीरके राम थे। कबीर उन्हीं रामका कीर्तन करते थे। अतः यह कहना उचित नहीं कि कबीर 'राम'-संकीर्तन-विरोधी थे।

कबीर संकीर्तन-प्रेमी राम-भक्त थे

'राममणि,' 'राममणि,' 'रामचिन्तामणि'के उपासक कबीर संकीर्तनका झंडा उठाये सारे भारतमें भ्रमण कर आये। हाँ, वे जाति-पाँतिके विरोधी कहे जा सकते हैं। इसका प्रमाण भी है—

कहै कबीर मधिम नहीं कोई।
सो मधिम जा मुख 'नाम' न होई॥

कितनी पवित्र घोषणा थी! 'जिसके मुखसे 'राम'का नाम नहीं निकलता, वही नीच जातिका है।' यदि ब्राह्मण 'राम' नामका जप नहीं करता तो वही नीच जातिका है। इस रहस्यको उद्घाटित करके कबीरदासजीने क्या उच्च जातिका अपमान कर दिया? नहीं, यह अपमान नहीं है; अपितु कर्त्तव्यके प्रति ब्राह्मणादिको जागरूक करनेकी प्रेरणा है। कबीरके विषयमें 'राम'-भक्तिपरक एक दोहा और मिलता है—

जप माला छापै तिलक सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाचे वृथा साँचै राँचै 'राम'॥

वैष्णव-सम्प्रदायमें जपमाला, बाहोंपर धनुष-बाणकी छाप और मस्तकपर तिलक वैष्णवोंकी पहचान मानी गयी है। संत कबीर इसके भी विरोधी थे। वे केवल सच्चे मनसे भगवान्की उपासनामें रत रहना ही वैष्णवोंकी पहचान स्वीकार करते थे। इन सब बातोंसे कबीरका विरोध भी हुआ, किंतु वे किसीके आगे झुके नहीं। उन्होंने मुल्लाओं और कुरानका भी विरोध किया। मस्जिदपर चढ़कर 'अजान'की निन्दा तो पहले ही लिखी गयी है। कुरानकी कुछ बातोंका भी कबीरको विरोध करना पड़ा था। मुल्ला लोगोंके और पोंगा पण्डितोंके विरोधमें कबीरदास अवश्य ही थे—

कहै कबीर यह मुल्ला झूठा। काजी कौन कतेब बखाने॥

कबीर—रामके अनन्य उपासक

संत कबीरने अपने 'राम'को निर्गुण और सगुण—दोनोंसे परे माना है। कबीरके रामको न तो निर्गुण कहा जा सकता है, न तो सगुण ही। वे 'राम' न तो एक हैं न अनेक। कबीरदासजीके विचारसे 'राम'के विषयमें भाव-अभाव या स्थूल-सूक्ष्म कुछ भी कहना सम्भव नहीं है। 'राम' कैसे हैं? यह वे राम ही जानते हैं। किसी दूसरेको उनके विषयमें कुछ कहना सम्भव नहीं है।

'निर्गुन सगुन के परे तहाँ हमारा ध्यान।'
(कबीर-वचनावली दो० १०)

कबीरके राम 'आनन्दस्वरूप' हैं।

'है तो आदि आनन्द-स्वरूपा'

(कबीर-ग्रन्थावली पृष्ठ १७१)

पुरुषोत्तम राम सदा आनन्दस्वरूप हैं।

'आनन्द मूल सदा परसोत्तम।' (वही पद--२९३)

कबीरके राम सदा एक-स्वरूप हैं। वे जैसे आदिमें थे, वैसे ही मध्यमें और अन्तमें भी वैसे ही रहेंगे। उनके लिये 'राम'-नामके अतिरिक्त सारा संसार मिथ्या है।

'आदि मध्य अरु अन्त लौं अविहड़ सदा अभंग।

राम नाम जिन पाया सारा।

अविरथा झूठ सकल संसारा॥'

(रमैनी-पृष्ठ १७८)

कबीरके राम सत्य-स्वरूप हैं। न तो उनका आदि, है, न मध्य और न अवसान ही है। इससे सिद्ध होता है कि कवि एवं संत कबीर 'राम'के संकीर्तन-विरोधी नहीं; अपितु श्रीरामके अनन्य-उपासक थे।

संत नामदेव तथा उनका संकीर्तन

(लेखक —श्रीगिरककुमारजी)

एक छः-सात वर्षका बालक भोजनकी थाली लिये हुए मन्दिरमें प्रवेश करता है और भोजनकी थाली विट्ठल (कृष्ण) भगवान्के सामने रखकर उन्हे प्रणाम करता है। फिर हाथ जोड़कर वह भगवान्से प्रार्थना करता है—'भगवन्! भोजन कीजिये।' परंतु न तो उत्तर मिलता है, न भगवान् भोजन ही करते हैं। कुछ देर बाद बालक फिर कहता है—'प्रभो! भोजन करें, क्या आप मुझसे रूठे हैं? आज मेरी माँने मुझे भोजन देकर भेजा है। मेरे पिताजी दूसरे गाँव गये हैं, इसलिये वे नहीं आ सकते। मेरे पिताजीद्वारा दिये जानेपर तो आप प्रतिदिन भोजन करते हैं। किंतु मेरेद्वारा अर्पित किये जानेपर क्यो नहीं कर रहे हैं? मै बालक हूँ इसलिये!'

कुछ देर बाद बालक करुणाभरे शब्दोंमें फिर प्रार्थना करने लगता है—'भगवन्! भोजन करें। यदि आप भोजन नहीं करेंगे तो मेरी माँ मुझे मारेगी और लोग मेरी निन्दा करेंगे। यदि आप भोजन नहीं करेंगे तो मैं यहीं दीवालसे सिर फोड़कर प्राण दे दूँगा।' फिर भी भगवान्ने भोजन नहीं किया, तब बालक दीवालसे सिर फोड़ने लगता है। तभी स्वर गूँज उठता है—'भक्त! तुम यह क्या कर रहे हो?' बालक मुड़कर देखता है तो मन्दिरमें चारों ओर प्रकाश फैला हुआ है और भगवान् भोजन करने जा रहे है। भगवान्को देखकर बालक बहुत प्रसन्न हो जाता है। आप जान लें कि ये बालक नामदेवजी ही थे।

महाराष्ट्र-राज्यके शोलापुर जिलेके अन्तर्गत पंढरपुरमें श्रीदामसेठके घर भक्तराज श्रीनामदेवजीने शक-संवत् ११९२, कार्तिक शुक्ला ११ रविवार, प्रातःकाल सूर्योदयके समय, २६ अक्टूबर १२७० ईस्वीको माता गोणाबाईकी कोखसे जन्म लिया। संतशिरोमणि श्रीनामदेवजी महाराज उच्चकोटिके संत कवि थे। वे सच्चे कर्मयोगीके रूपमें संसारमें रहकर भी कमल-दल-पुष्पकी तरह संसार-सागरसे अलिप्त थे। उन्हे अपने जीवनमें न किसीसे राग था और न किसीसे द्वेष। अपनी वाणी एवं लेखनीके द्वारा जनता-जनार्दनको जिस अमृत-ज्ञानका उपदेश उन संत-शिरोमणिने दिया, वह अन्यत्र दुर्लभ है। अपने जीवनके द्वारा उन्होंने सम्यक् दर्शनका नैसर्गिक उदाहरण प्रस्तुत किया है। वे सच्चे संत थे। करनी और कथनीका अन्तर उन्होंने अपने आचरणमें प्रविष्ट नहीं होने दिया।

प्रभुके नूपुरोंकी रुन-झुनमें अपने हृदयकी गति मिलाकर, प्रभुके वंशीनादमें अपना प्राण डालकर, प्रभुके पीताम्बरपर अपनेको न्योछावरकर, प्रभुकी मन्द मुस्कानमें अपना सब कुछ अर्पणकर इस भारतवर्षके कल्याण-हेतु

सामाजिक, राष्ट्रिय, जागतिक उन्नति एवं समाज-सुधार आदि सब कार्योंका मूल कारण है।

संतशिरोमणि श्रीनामदेवजी महाराजने लोगोंका कल्याण और भगवान्‌की सेवा करते हुए जीवनके अस्सी वर्ष व्यतीत किये। उन्हें अपनी भौतिक देहके पर्यवसानका पूर्वाभास प्राप्त हो चुका था। उनका निश्चय था कि यह शरीर श्रीपंढरीनाथके पावन चरणोंमें ही विसर्जित होना चाहिये। चन्द्रभागा नदीके तटपर बने भगवान् विट्ठलके मन्दिरकी पौड़ीपर संत नामदेवजी पिता दामसेठ, माता गोणाबाई, पत्नी रानाबाई, नारायण, गोविंद, विट्ठल, महादेव—ये चार पुत्र, गोंडाबाई, येसाबाई, साखराबाई—ये तीन पुत्रवधुएँ, बहिन आऊबाई तथा दासी जनाबाई—इन सबके साथ आषाढ़ वदी त्रयोदशी शनिवार, शक-संवत् १२७२ तदनुसार ३ जुलाई १३५० ई०को समाधिमें बैठ गये। पुत्र नारायणजीकी पत्नी लाडाबाई उस समय प्रसवके लिये मायके गयी हुई थी, जिससे वह समाधिमें नहीं बैठ सकी थी। उसके पुत्रसे नामदेवजीका वंश अबतक चल रहा है।

संत नामदेवजी हमारे बीचमें न होकर भी अमूर्तरूपसे हमारे मध्य वर्तमान हैं। उनका दिव्य संदेश हमें आज भी पग-पगपर मार्ग-दर्शकका काम कर रहा है, प्रेरणा दे रहा है। महात्मा गाँधीजीकी आश्रम-भजनावलीमें नामदेवजीके अभङ्गोंका समावेश है तथा उन्हें बड़े प्रेम और उत्साहसे गाया जाता है।

संत तुकाराम-प्रतिपादित संकीर्तन-पद्धति

(लेखक—डॉ० श्रीकेशव रघुनाथजी कान्देरे)

महाराष्ट्रमें भगवद्भक्तिकी पताका अखण्ड एवं अविरत-रूपसे फहराने-हेतु मराठी भाषाके आदिकवि परम भगवद्भक्त संत ज्ञानेश्वर महाराजने वारकरी-सम्प्रदायकी स्थापना कर भगवद्भक्ति-मन्दिरकी नींव डाली। उस भक्ति-मन्दिरका कलश आज भी सर्वत्र प्रकाश-पुञ्जके रूपमें पूजनीय है। वह कलश ये संतशिरोमणि महान् विट्ठल-भक्त संत तुकाराम हैं।

संत तुकारामने अपनी अमृत-तुल्य वाणीसे अभङ्गोके माध्यमसे नाम-संकीर्तनकी जो महिमा गायी—प्रतिपादित की, वह अपने-आपमें अद्वितीय है। 'वेदांचा तो अर्थ आम्हांसी च ठावा' ऐसा निरहंकारवृत्तिसे कहनेवाले संत तुकारामने नाम-संकीर्तनको एक सरल एवं सहजसाध्य साधन प्रतिपादित किया है। वे अपने अभङ्गमें कहते हैं—

नाम संकीर्तन साधन पैं सोपें। जलतील पापें जन्मांतरिंची॥
न लगे सायास जावे वनांतरा। सुखें ये तो घरा नारायणा॥
ठायीं च बैसोनि करा एक चित्त। आवडी अनंत आलवावा॥
रामकृष्ण हरि विठ्ठल केशवा। मंत्र हा जपावा सर्वकाल॥
याविण असतां आणीक साधन। वाहातसे आण विठोबाची॥
तुका म्हणे सोपें आहे सर्वांहूनि। शाहाणा तो धणी घेत असे॥
(तुकाराम गाथा अभंग क्र० २४५८)

'भगवान्‌का नाम लेना (संकीर्तन करना) अत्यन्त सरल साधन है। संकीर्तनसे केवल इसी जन्मके नहीं, अपितु जन्म-जन्मान्तरोंके पाप जलकर राख हो जाते हैं। नाम-संकीर्तनके लिये जंगलोमें भटकनेकी आवश्यकता नहीं होती। घरमें ही एक स्थानपर बैठकर एकचित्तसे तन्मय होकर 'राम-कृष्ण-हरि-विठ्ठल-केशव' इस मन्त्रका अखण्ड जप करो। भगवान् अपने-आप आपके घर बड़े आनन्दसे आयेंगे।' संत तुकाराम अपने आराध्य देवता 'विठ्ठल'की शपथ लेकर प्रतिज्ञा-पूर्वक कहते हैं—'नाम-संकीर्तनके सिवाय अन्य कोई सरल साधन नहीं है। जो सदा-सर्वदा भगवन्नामस्मरण

*

करता है, वही समझदार है, बुद्धिमान् है। वे अपना अनुभव व्यक्त करते हुए कहते हैं—

देव माझा ऋणी आहे सहकारी। परस्परें वारी भवभय॥
विष केलें पोटी अमृतमय॥
(तु० गा० अ० क्र० ४२०१)

एक स्थानपर वे कहते हैं—

कीर्तन चांग कीर्तन चांग। होय अंग हरिरूप॥

भगवान्का कीर्तन इतना अच्छा है कि स्वयंका शरीर हरिरूप बन जाता है। नाम-भक्ति संत तुकारामको अत्यन्त प्रिय थी। वे जानते थे कि नाम-संकीर्तनरूपी पंछीका मधुर कूजन प्रारम्भ होते ही दसों दिशाएँ नाद-मुग्ध हो जाती हैं। नाम-संकीर्तनकी महिमा अनादि-सिद्ध है।

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः॥

इस प्राचीन सूत्रकी कल्पना होनेके कारण ही उन्होने कहा है—

मुखी नाम हाती मोक्ष। ऐसी समक्ष बहुतांसी॥
(तु० गा० अ० २२९५)

समुद्रवलयाङ्कित पृथ्वीका दान करनेकी अपेक्षा भगवन्नामसंकीर्तन करना अधिक श्रेष्ठ है। शास्त्र-वेदपठन प्रयाग-काशी आदि तीर्थ तथा देश-भ्रमण—ये सारे साधन नाम-संकीर्तनकी तुलना नहीं कर सकते। वे अपने अभङ्गमें स्पष्टरूपसे कहते हैं—

समुद्र वलयांकित पृथ्वी चें दान। करितां समान न ये नामा॥

संत केवल ईश्वर-भक्त ही नहीं, अपितु द्रष्टा भी होते हैं। बहुजन-समाजके उद्धारकी उन्हें चिन्ता लगी रहती है। संत तुकारामने तत्कालीन बहुजन-समाजकी अवस्था देखी तो उनका अन्तःकरण द्रवित हो उठा। इसीलिये उन्होने कहा—

बुडती हे जन न पाहवे डोळां। ये तो कळकळा॥

भवसागरमें डूबती हुई सर्वसाधारण जनताको बचानेका इस कलियुगमें एकमात्र सरल एवं सहजसाध्य साधन है—'नाम-संकीर्तन'का प्रचार और प्रसार। नाम-स्मरणके लिये धन-दौलतकी आवश्यकता नहीं होती।

नाम घेता न लगे मोल। नाम मंत्र नाही खोल।

नाम-संकीर्तन करनेवालेका जीवन व्यर्थ गया, ऐसा कभी न सुना न देखा। तुकाराम स्पष्टरूपसे प्रश्न करते हैं—

नाम घेतां वायां गेला। ऐसा कोणे आइकिला॥
सांगा विनवितो तुम्हांसी। संत महंत सिद्ध ऋषी॥

इसके विपरीत अत्यन्त कठिन परिश्रमोंसे कमाया हुआ धन मानवके साथ नहीं जाता। धनसे मोक्ष प्राप्त नहीं होता और न ईश्वर-प्राप्ति ही—

धन मेळ वूनि कोटी। सवें नये ने लंगोटी॥
पाने खाशील उदंड। अंती जासी सुकल्या तोंडें॥
पलंग न्याहाला सुपती। शेवटी गोवऱ्या सांगाती॥

इस स्थितिसे उबरनेके लिये अमृतमय 'विट्ठल'का नाम तथा प्रभु श्रीरामका स्मरण करनेका सरल उपाय प्रतिपादित किया।

संत तुकारामने हिंदी भाषामें भी कुछ पदों, अभंगों और दोहोंकी रचना की है। अपनी वाणीसे संत तुकारामने नामका महत्त्व बताया है—

तुका और मिठाई क्या करूँ रे। पाले विकार पिंडु॥
राम कहावे सो भलि राखी। माखन खांड खीर॥
(तु० गा० अ० क्र० १२०२)

राम कहे सो मुख भला रे। बिन रामसे बीख॥
(तु० गा० अ० ११८१)

संकीर्तनकी महिमा अगाध है। थके-माँदे-भटके हुए पथिकोंके लिये हरिकथा एवं संकीर्तन विश्रान्तिकी छाया है। ईश्वर, भक्त और नाम इनका त्रिवेणी-संगम हरि-संकीर्तनमें होनेके कारण साधकको अन्य साधनोंकी अपेक्षा यह साधन अधिक उपकारी होता है। संकीर्तनके सुखका वर्णन करनेमें ब्रह्माजी भी असमर्थ हैं, ऐसा तुकारामका वचन है। इस संदर्भमें वे कहते हैं—

कथा त्रिवेणी संगम देव भक्त आणि नाम ।
अनुपम्य हा महिमा नाही पावया उपमा ॥
तुका म्हणे ब्रह्मा नेणे वर्णूं या सुखा ॥
(तु० गा० अ० २३५७)

संकीर्तन अर्थात् कथाकी फलश्रुति प्रतिपादित करते हुए संत तुकाराम लिखते हैं—

पुण्य आणीक नाहीं सर्वथा कथे माजी उभा देव ॥
म्हणता नाराण क्षणे जळती महा दोषा ॥
आपे करितां कीर्तन तरे तारे आणीक जन ॥
भेदे नारायण संदेह नाही म्हणे तुका ॥
(तु० गा० अ० २३५६)

'भगवत्-कीर्तन-जैसा पुण्य नहीं, नारायण नामका उच्चारण करते ही क्षणभरमें सारे दोष भस्म हो जाते हैं। भक्ति-भावसे कीर्तन करनेवाला स्वयं तो भवसागर तर ही जाता है, साथ-साथ संकीर्तन-श्रवण करनेवाले भी भवसिंधु पार कर लेते हैं और सर्वशक्तिमान् परमपिता परमेश्वर श्रीनारायणकी प्राप्ति हो जाती है, इसमें कोई संदेह नहीं'—ऐसा तुकाराम कहते हैं।

आज भारतवर्षकी विषम परिस्थिति तथा विश्वके अशान्त वातावरणमें सम्पूर्ण मानवजातिके लिये कल्याणका सर्वोत्तम, सर्वसुलभ और सरल साधन श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन ही है।

संकीर्तन-भजनानन्दी रैदासजी

संकीर्तन-सर्वस्व रैदास संत कबीरके सम-सामयिक थे और उनसे इनका कई बार साक्षात्कार भी हुआ था। इनका जन्म काशीमें ही हुआ था और वहीं इन्होंने जीवन व्यतीत किया। कहते हैं, ये पूरे भारतमें घूमते रहते थे और राजस्थानकी प्रसिद्ध संकीर्तनप्राणा भक्तिमती मीराबाई इन्हींकी शिष्या थीं। ये बचपनसे ही साधुसेवी तथा निःस्पृह थे। इनका विवाह बाल्यकालमें ही हो गया था। इनके पिताका नाम रघु था। पर पिता-पुत्रमें पटती नहीं थी। रैदास एक झोपड़ी बनाकर पत्नीके साथ अलग रहने लगे थे। जूते बनाकर जीवन-निर्वाह, साधु-सेवा तथा नाम-रटन करना—यह उनका जीवन-क्रम था। वे जूते टाँकते जाते और सदा भजन-कीर्तन करते रहते।

कहा जाता है कि इनकी गरीबी दूर करनेके लिये स्वयं भगवान् साधुरूपमें आये और हठपूर्वक इन्हें पारस पत्थर देने लगे तथा एक लोहेके औजारको सोना बनाकर दिखाया भी। साधुका हठ देखकर रैदासजीने पारसको छप्परमें रख देनेको कह दिया। तेरह महीने बाद साधु लौटे तो उन्हें पारस वहीं छप्परमें मिला, जहाँ उसे वे रख गये थे। पर रैदासजीने पारसका स्पर्शतक नहीं किया था।

नाभाजीके भक्तमालमें रैदासके अनेक चमत्कारोंका वर्णन है। इनकी प्रसिद्धिसे प्रभावित होकर मीराबाईकी भावज चित्तौड़की रानीने इन्हें अपना गुरु बनाया था। रैदासजीने एक सौ बीस वर्षकी आयु प्राप्त की थी। वे भजन-संकीर्तन करते हुए ही भगवद्धाम पधारे। इन्होंने अपनी वाणीमें भगवान्के नामकी महिमा तथा अपना दैन्य प्रमुख रूपसे गाया है। भक्त रैदासके संकीर्तन-भजनके कुछ नमूने देखिये—

ऐसी भगति न होइ रे भाई।
राम नाम बिन जो कछु करिये, सो सब भरम कहाई ॥
भगति न रस दान, भगति न कथै ग्यान।
भगति न बन में गुफा खुदाई।
भगति न ऐसी हाँसी भगति न आसापासी
भगति न यह सब कुलकान गँवाई ॥
भगति न इंद्री बाधा, भगति न योग-साधा
भगति न आहार घटाई, ये सब करम कहाई ॥
भगति न इंद्री साधे, भगति न बैराग बाँधे
भगति न ये सब बेद पढ़ाई।

भगति न मूड़ मुड़ाये, भगति न माला दिखाये
भगति न चरन धुवाये, से सब गुनीजन कहाई ॥
भगति न तौलो जाना, आपको आप बखाना।

वे कीर्तन-भजनमें अहंकारको भारी बाधा मानते हैं—

जोड़-जोड़ करे सो-सो दरस बड़ाई।
आपा गया तब भगति पाई, ऐसी भगति भाई।
राम मिल्यो, आपो गुन खोयो, रिधि-सिधि सबै गँवाई।
कहै रैदास छूटी आस सब, तब हरि ताहीके पास,
आत्मा थिर भई, तब सबही निधि पाई ॥

कीर्तनके विषयमें वे कहते हैं—

रे मन ! राम-नाम सँभारि।
मायाके भ्रम कहाँ भूल्यो, जाहुगे कर झारि ॥
देखि धौं इहाँ कौन तोरो, सगा सुत नहिं नारि।
तोरि उभंग सब दूर करिहैं, देहिंगे तन जारि ॥
प्रान गये कह कौन तेरो; देखि सोच-बिचारि।
बहुरि यहि कलिकाल नाहीं, जीति भावे हारि ॥
यह माया सब थोथरी रे, भगति-दिस प्रतिहारि।
कह रैदास सत बचन गुरुके, सो जित ते न बिसारि ॥

उनकी दृष्टिमें संकीर्तन बिना सभी साधन निःसार हैं। नामकीर्तन-संस्मरण-भजन ही संसारमें सार है—

थोथो जनि पछोरे रे कोई।
सोई रे पछोरो, जामें जिन कन होई ॥
थोथी काया, थोथी माया,
थोथा हरि बिन जनम गँवाया।
थोथा पंडित, थोथी बानी,
थोथी हरि बिनु सबै कहानी ॥
थोथा मंदिर, भोग-बिलासा।
थोथी आन देवकी आसा।
साँचा सुमिरन नाम-बिसासा, मन-बच-कर्म कहै रैदासा ॥

ये भगवत्संकीर्तनको ही भगवान्‌की सम्पूर्ण उपासना मानते हैं—

नाम तुम्हारो आरत-भंजन मुरारे।
हरि के नाम बिन झूठे सकल पसारे ॥
नाम तेरो आसन, नाम तेरो उरसा,
नाम तेरो केसरि लै छिड़का रे।
नाम तेरो अम्भिला, नाम तेरो चन्दन,
घसि जपे नाम ले तव चढ़ा रे ॥
नाम तेरो दीवा, नाम तेरो बाती,
नाम तेरो तेल लै माहिं पसारे।
नाम तेरे की जोति जगाई,
भयो उजियार भवन सगरा रे ॥
नाम तेरो धागा, नाम फूलमाला,
भाव अठारह सहस जुहारे।
तेरो कियो तुझको अरपूँ,
नाम तेरो चँवर ढुरारे ॥
अष्टादस अठसठ चारि खानिहू,
बरतन है सकल संसारे।
कह रैदास नाम तेरो आरति,
अंतरगति हरि भोग लगा रे ॥

'जाही बिधि राखे राम ताही बिधि रहिये'

सीताराम सीताराम सीताराम कहिये। जाही बिधि राखे राम ताही बिधि रहिये ॥
सुखमें हो राम-नाम जन-सेवा हाथमें। तू अकेला नाहीं प्यारे राम तेरे साथमें ॥
बिधिका बिधान जान हानि-लाभ सहिये। जाही बिधि राखे राम ताही बिधि रहिये ॥
किया अभिमान तो फिर मान नहीं पायेगा। होगा प्यारे वही जो श्रीरामजीको भायेगा ॥
फल-आशा त्याग शुभ कर्म करते रहिये। जाही बिधि राखे राम ताही बिधि रहिये ॥
जिंदगीकी डोर सौंप हाथ दीनानाथके। महलोंमें राखें चाहे झोंपड़ीमें वास दे ॥
धन्यवाद निर्विवाद राम राम कहिये। जाही बिधि राखे राम ताही बिधि रहिये ॥
आशा एक रामजीकी दूजी आशा छोड़ दे। नाता एक रामजीसे दूजा नाता तोड़ दे ॥
साधु-संग राम-रंग अंग-अंग रँगिये। काम-रस त्याग प्यारे राम-रस पगिये ॥
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये। जाही बिधि राखे राम ताही बिधि रहिये ॥

सालबेगकी माताकी कीर्तन-निष्ठा

कटकके शक्तिशाली मुगल शासक लालबेगके पुत्र सालबेगके मस्तकमें युद्धकला सीखते समय तेज तलवार धँस गयी थी। उपचार करते महीनों बीत गये पर कोई लाभ न हुआ। उसने कराहते हुए अपनी मातासे कहा—'माँ ! जिस प्रकार भी घाव अच्छा हो जाय, वही करो।' माता हिंदू-कन्या थी। सालबेगका पिता लालबेग उसे अपहरण कर लाया था और अब युवावस्था बीत जानेपर छोड़ दिया था। उसके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णके प्रति विश्वास और प्रेम था। उसने कहा—'मेरी बात मानो तो तुम शीघ्र अच्छे हो सकते हो।'

'तुम्हारी बात नहीं मानूँगा तो किसकी बात मानूँगा, माँ !'

'भगवान् श्रीकृष्णका सहारा लेनेपर तू रोगमुक्त तो हो ही जायगा, साथ ही तुझे फिर कभी कोई भी व्याधि न होगी।'

'श्रीकृष्ण कौन है, माँ !'

'वे नन्द और यशोदाके पुत्र हैं। राधा उनकी रानी है। वे हर जगह रहते है। तुम्हारे मनमें भी हैं। पुकारते ही प्रकट हो जायँगे। संसारके सबसे बड़े वीर, सबसे बड़े धनी और समस्त शक्तियोंके केन्द्र वे ही हैं। आकाश, पवन, तारे उन्होंने ही बनाये हैं। सूरज-चाँद उन्हींके संकेतपर नाचते रहते हैं।' वर्षोंके बाद श्रीकृष्ण-चिन्तनका अवसर सालबेगकी माताको आज ही मिला था। उसका मन शान्तिका अनुभव कर रहा था।

'कितने दिनोंमें अच्छा हो जाऊँगा, माँ !' आशान्वित होकर सालबेगने पूछा।

'प्रेमसे, शुद्ध अन्तःकरणसे पुकार सका तो तू बारह दिनोंमें ही उनके दर्शन कर सकेगा। घाव तेरा सूख जायगा। नहीं तो बारह सौ दिनोंमें भी कुछ नहीं हो सकेगा।'

'श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण !! श्रीकृष्ण !!!' सालबेग पुकार उठा। उसे अपनी पीड़ाका ध्यान नहीं था। वह श्रीकृष्णके मङ्गलमय नामको अनवरत-रूपसे रट रहा था। माँकी बतायी काल्पनिक, पर अत्यन्त मनोहर मूर्ति उसके मानसिक नेत्रोंके सामने थी।

× × ×

'माँ ! तेरे श्रीकृष्णका नाम रटते आज दस दिन बीत गये, पर मुझे तो अबतक कोई लाभ नहीं हुआ।' सालबेग निराश होकर बोला।

'घबरा मत बेटा !' माताका मन पुत्रके भजन और प्रेमाश्रुओंको देखकर उत्फुल्ल था। उसने कहा—'उनकी लीला बड़ी विचित्र है। कष्टमें भी तू उन्हें भूल सकता है कि नहीं, वे यही देख रहे हैं। लाल ! तू किसी प्रकारका संदेह न करके वंशीधरका भजन-कीर्तन अत्यन्त प्रेम और विश्वाससे कर।'

'ग्यारहवाँ दिन भी बीत गया, माँ !' सालबेगने दूसरे दिन कहा। 'तू संशय न कर, यही कहती जाती है; मेरी मृत्यु ही कदाचित् उन्हें अभीष्ट है।'

'धैर्य रख बेटा !' कलपते पुत्रको देखकर भी माताने दूसरा उपदेश नहीं दिया। उसकी श्रीकृष्ण-भक्ति दृढ़ थी। उसने कहा—'संदेह त्यागकर श्रीकृष्ण-को स्मरण किये जा।'

× × ×

'माँ ! माँ ! ओ माँ !!!' सालबेगने अपनी माताको जगाते हुए कहा। 'आज मुझे तेरे श्यामसुन्दरके दर्शन हो गये। मेरे घावका केवल चिह्न ही अवशिष्ट रह गया। पीड़ाका तो पता ही नहीं रहा।'

'बेटा !' श्रीकृष्णके प्रेमसे छकी माताने आँखें खोलीं। उसे तो कोई आश्चर्य नहीं था। बेटेको छातीसे चिपकाते हुए उसने कहा—'अब तो विश्वास हुआ बेटा !'

'माँ !' सालबेगने कहा, 'अब मैं श्रीकृष्णको इस जीवनमें कभी नहीं भूल सकूँगा। उनके-जैसा सुन्दर और मनको लुभानेवाला मैंने आजतक देखा ही नहीं माँ !'

'ठीक कहता है बेटा !' माँकी आँखोंसे धीरे-धीरे अश्रु लुढ़क रहे थे।

'अब मैं उन्हींके नाम-गुणका प्रचार करूँगा।' सालबेगपर प्रभु-कृपा हो गयी थी। वह कृतार्थ हो गया था। दृढ़ताके साथ उसने कहा—'साधु होकर अब मैं जन्म सफल करूँगा माँ !'

'मैं नहीं रोकती बेटा !' सालबेगकी माता सामान्य माता न थी। वह श्रीकृष्ण-भक्ता थी। उसका मन वशीभूत था। हँसते-हँसते उसने कहा—'वही जीवन सफल है, जो भगवान्‌के काम आ जाय।'

× × ×

'मैं प्रभुको कभी न भूलूँगा। तू भी उन्हें कभी न भूलना माँ !' सालबेगने माताका चरण-स्पर्श किया और श्रीजगन्नाथपुरीके लिये चल पड़ा।

'भगवान् मङ्गल करें।' माताकी आँखें बरस रही थीं, परंतु मुँहमें श्रीकृष्णका नाम और हृदयमें प्रेम तथा आनन्द उमड़ा आ रहा था।

संकीर्तनभक्ता लीलावती

लगभग दो सौ वर्ष पहलेकी बात है। बंगालके चन्द्रनगरके पास मधुपुर नामक एक छोटे-से गाँवमें नारायणकान्त और रत्नेश्वरी नामके ब्राह्मण-दम्पति निवास करते थे। इनके कोई पुत्र न था। मात्र लीलावती नामकी एक कन्या थी। लीलावती बड़ी सुन्दर और चञ्चल थी। वह अपनी बालक्रीडाओंसे माता-पिताका मन मुग्ध किये रहती थी। उसके माता-पिता दोनों ही परम धार्मिक और भगवत्-परायण थे। रत्नेश्वरी घरका कोई भी काम करती तो मधुर स्वरमें धीरे-धीरे 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव'॥ यह पद गुनगुनाती रहती। प्रतिदिन सुनते-सुनते लीलावतीको भी यह पद याद हो गया। अब वह भी कोई काम करती, धूर-धूरेटे खेलती, माँका आँचल पकड़-कर खेलती या दूध पीने लगती, तो भी बीचमें रह-रहकर अपनी तोतली बोलीमें गा लेती—

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव॥

माँके स्नान और पूजाके समय लीलावती साथ ही रहती। माँको प्रणाम करते देखकर वह भी प्रणाम करती। तुलसीके पौधेको दीपक चढ़ाते देखकर स्वयं दीपक चढ़ाती। इसी प्रकार उसके मनपर धार्मिक संस्कार पड़ते गये। लीलावती बढ़कर सयानी हुई। उसका विवाह भी हो गया। आँखोंमें आँसू भरे माता-पिताको बिलखते छोड़कर वह ससुराल चली गयी। ससुरालमें सम्पत्ति पर्याप्त थी। लीलावतीके सुखकी समस्त सामग्रियाँ वहाँ भरी पड़ी थीं। वह धीरे-धीरे विलासके दलदलमें फँसती गयी और उसकी धार्मिक भावना दबती गयी। पाँच-सात वर्षके भीतर उसे दो संतानें भी हो गयीं—गोपालकृष्ण और कालिन्दी। बच्चोंको नहला-धुलाकर उन्हें सजाने तथा भोगसामग्रियोंको जुटानेके अतिरिक्त उसका जैसे और कोई काम ही नहीं रह गया था।

अचानक उस गाँवमें जोरोंसे हैजेकी बीमारी फैल गयी। उसके गोपालकृष्ण और कालिन्दी भी हैजेकी चपेटमें आ गये। लीलावती घबरा गयी। अर्धरात्रिकी वेला थी। चारपाईपर उसका प्राणाधार बच्चा छटपटा रहा था और सिरहाने बैठकर वह सिसक रही थी। प्रायः आपत्तिके समय नास्तिक भी भगवत्प्रार्थना करने लगता है। लीलावती तो संस्कार-सम्पन्न थी ही। उसे अपने शैशवका प्रभु-प्रेम स्मरण हो आया। क्योंकि बाद आज पुनः सहसा उसके मुँहसे निकल पड़ा—

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव॥

अपने विलासी जीवनपर उसे बहुत खेद हुआ। उसका हृदय हाहाकार कर उठा। मन-ही-मन क्रन्दन करते हुए वह प्रार्थना करने लगी। भगवान्‌ने उसकी प्रार्थना सुन ली; साथ ही मनकी विशुद्ध प्रार्थनाके पवित्र तीर्थमें अवगाहन करनेसे उसका सांसारिक कल्मष धुल गया। लीलावती प्रभुकी सच्ची चेरी बन गयी।

लीलावतीकी पति-सेवा और बच्चोंके पालनमें किसी प्रकारकी शिथिलता नहीं आयी; पर वह अपने मनको केवल भगवान्‌में लगाये रखती थी। गोपालसहस्रनामका पाठ तो वह करती ही थी, श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव॥ का कीर्तन भी उसका चलता रहता। उसके होंठ हर समय हिलते रहते। उसने अपने यहाँ बालकृष्णकी स्वर्ण-प्रतिमा प्रतिष्ठित करवायी और श्रद्धा-भक्ति एवं प्रेमसे उसकी सेवा-अर्चामें मग्न रहने लगी। अब वह पहलेसे भी अधिक उल्लाससे काम कर रही थी; पर अब उसके समस्त कर्मोंके केन्द्र भगवान् थे। जगतसे उसे वैराग्य हो गया था।

लीलावतीके साधनमें क्रमशः वृद्धि होती गयी। उसकी वाणीमें नाम और उसके मनमें बालकृष्णका रूप अच्छी तरह उतर गया था। वह श्रीकृष्णको गोदमें लेने और उन्हें स्तनपान करानेके लिये कभी-कभी अधिक विकल हो जाया करती थी। ध्यानमें वह कभी श्रीकृष्णका मुख-चुम्बन करती तो कभी उलझी लटें सुलझाकर सँवारने लगती। अंदर-ही-अंदर वह श्रीकृष्णकी परिचर्या दत्तचित्त होकर करती थी।

एक बार देवोत्थानी एकादशीके दिन घरमें श्रीकृष्णकी झाँकी सजायी गयी। आधी राततक जागरण कर चरणामृत लेकर सब लोग सोने चले गये; पर लीलावतीकी आँखोंमें नींद कहाँ? वह तो अपने बालगोपालको गोदमें लेकर स्तनपान करानेके लिये अधीर हो गयी थी। उसके स्तनोंसे दूध झर रहा था। लीलावती प्रतिमाकी ओर देख रही थी। उसकी तरसती और बरसती हुई आँखोंने देखा कि स्वर्णप्रतिमा प्रतिमा नहीं है, वे तो साक्षात् बालकृष्ण ही हैं और मचलते हुए उसीके पास आ रहे हैं। देखते-ही-देखते वे उसके पास आ गये। लीलावतीने उन्हें अपनी गोदमें ले लिया। लीलावतीकी प्रसन्नताका वर्णन किस प्रकार किया जाय? उसे दुर्लभ अनमोल रत्न मिल गया था। दूध उसके स्तनोंसे जोरोंसे झरने लग गया था। बालकृष्णका मुँह उसने स्तनसे लगा दिया। श्रीकृष्ण दुग्धपान करने लगे। लीलावतीकी सारी अभिलाषा पूरी हो गयी। उसकी कोई इच्छा शेष नहीं रही।

दूसरे दिन प्रातःकाल पूजा-घर खुलनेपर लोगोंने देखा कि लीलावतीके अङ्कमें बालकृष्णकी स्वर्णप्रतिमा पड़ी है और उसके प्राणपखेरू दिव्य लोकमें प्रयाण कर चुके हैं।

राम-नामका बल

राम-नामके दो अक्षरमें क्या जानें क्या बल है!
नामोच्चारणसे ही मनका धुल जाता सब मल है॥
गद्‌गद होना कण्ठ, नयनसे स्रावित होना जल है।
पुलकित होना हृदय ध्यान आना प्रभुका पल-पल है॥
यही चाह है नाथ! नाम-जपका यह तार न टूटे।
सब छूटे तो छूटे प्रभुका ध्यान कभी नहिं छूटे॥

लोक-भजनगायिका चन्द्रसखी

(लेखक—पं० श्रीरामप्रतापजी व्यास एम्० ए०, एम्० एड्०)

हिंदी-साहित्यके रीतिकाल (सं० १७०० वि० से १९०० वि० तक)में हमें एक ऐसी लोक-गायिकाके दर्शन होते हैं, जिसने अपने सरस एवं मधुर लोकगीतोंसे व्रजमण्डल, राजस्थान एवं मालव-धरतीके नर-नारियोंका मन मोह लिया है। वह गायिका है—चन्द्रसखी। चन्द्रसखीके समय तथा निवास-स्थलके विषयमें भी विद्वानोंमें पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वान् उसे राजस्थानकी, कुछ व्रजभूमिकी और कुछ उसे मालवाकी निवासिनी बताते हैं तथा मालवाकी मीरासे सम्बोधित करते हैं। श्रीअगरचंद नाहटाने उसकी सं० १७०० वि०के आसपासकी, मोतीलाल मेनारिया सं० १८८० की और मिश्रबन्धु दो चन्द्रसखियोंका उल्लेख कर एकका समय सं० १६६८ वि० तथा दूसरेका सं० १९८० वि०के आसपासकी बतलाते हैं। चन्द्रसखीके एक लोक-गीतमें उसके मालवा छोड़कर गोकुल जानेकी बात कही गयी है—

छोड़ मालवो चन्द्रसखी चल गोकुल यमुना तीर।
कृष्णचंद की मुरली सुन छुटि जावे मनकी पीर॥

हमें इस विवादमें अधिक न पड़कर केवल उसके द्वारा श्रीकृष्णचन्द्रकी भक्ति-धाराके प्रवाहका ही उल्लेख करना है, जिसमें उसके भजनरूपी पुष्प प्रवाहित हुए हैं। चन्द्रसखीके गीतोका विषय राधा-कृष्ण और उनकी लीलाओंपर आधारित है, जिसमें उनकी मुरली, वेनु, रासलीला, नागलीला, राधा-मिलन, कृष्णका चूड़ियाँ बेचना, वैद्य बनना आदि प्रसङ्ग सम्मिलित हैं। चन्द्रसखीका एक लोकगीत देखिये, जिसमें कृष्णके ऐश्वर्यका उल्लेख यों किया गया है—'लालजीके सोना-रूपाके महल हैं। रत्नोंसे जिनके सम्पूर्ण जड़ाव जड़ा हुआ है। उनकी दाढ़ीमें हीरा जगमगा रहा है। आमकी डालीपर झूला बाँधा गया है, जहाँ कृष्ण कदम्बकी छायाके नीचे झूला झूल रहे हैं'—

सोना रूपाका मन्दर लालजी के रतन जड़या जड़ाव।
अम्बा की डारे कदंब की छाया जण पर झूलो बाँधियो।
झूलेजी कृष्णचन्द्रका लोचन महादेवजी झूले झूलना॥

चन्द्रसखीके गीतोंमें कुछ हदतक मीरा-जैसी सरलता, सरसता, तन्मयता तथा अपने इष्टदेवके प्रति सच्ची लगन दिखायी पड़ती है। इसके गीतोंमें एक ओर मीरा-जैसी टीस है तो दूसरी ओर माधुर्य भी। जहाँ मीरा अपने पियाका महल गगनमण्डलमें ढूँढती है, वहीं चन्द्रसखी अपने इष्टदेवको व्रजकी गलियोमें ही खोजती है। एक भजन देखिये, जिसमें श्रीकृष्ण मनिहार बनकर राधासे मिलने आते हैं। निम्नचित्रण कितना मनोहारी बन पड़ा है—

श्रीकृष्ण मणिहार बने वृसभान भवनमें लाई चुड़ियाँ।
बिंद्रावन की कुंजगलिन में केत फिरे कोई पेरो चुड़ियाँ॥
गोरा बदन राधे जी ठाड्या हमके पेरई दो हरि चुड़ियाँ।
अंगली पकड़ पौंचों पकड़्यो हँस-हँस मोड़ी गोरी बहियाँ॥

एक अन्य प्रसंगमें भजनकारने व्रजनगरीमें न आनेकी विवशता प्रकट की है। कारण बतलाया है कि 'कन्हैया! तेरी नगरी बहुत दूर है। फिर बीचमें यमुना पड़ती है, जिसमें बह जानेका खतरा है। मार्गमें गुजरियाद्वारा रोके जानेका भय भी है। सुना है कि तू बंशी बहुत अच्छी बजाता है। उसे सुनकर मै तन-मनकी सुध भूल जाऊँगी।

कैसे जाऊँ रे साँवरिया दूर त्हारी नगरी।
त्हारी नगरी में जमन बहत है वाँ बह जाऊँ सगरी॥
थारी नगरीमें फाग बहुत है रोके गुजरिया सब डगरी।
भर पिचकारी मारत अंग पर भींजत चुनरी आँगवरी॥
त्यारी नगरीमें बंसी बजत है भूल जाय सुध-कुछ सगरी।
चन्द्रसखी भज बाल कृष्ण छवि लूट लेय माखन गगरी॥

इतनेसे भी जब संतोष न हुआ, तब लोक-गायिकाने नन्दलालपर यह आरोप भी लगा दिया और कह उठी—'नन्दलाला! तुम जन्मसे ही कपटी रहे हो।

अन्यको तो गागर भर-भर देते हो और मेरी गागरको सिरसे पटक देते हो। दूसरोंको दर्शन देते हो, जबकि मै दर्शनके बिना वन-वन भटक रही हूँ। औरोंकी नैया पार लगाते हो और मेरी नैया बीच भँवरमें ही अटकी पड़ी है।' उक्त आरोप निम्नपंक्तियोंमें द्रष्टव्य है—

तुम नंदलाला जनम के कपटी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै। गले बैजंती माला लटकी।
और गागर भर भर देवे। हमरी गागर सिरसे पटकी॥
औरनको प्रभु दरस दिखावे। हम दरसन बिन वन-वन भटकी॥
औरनकी नैया पार लगावे। मेरी नैया भँवर बिच अटकी॥
चंद्रसखी भज बालकृष्ण छबि। हरिके चरणसे राधा लपटी॥

अन्तमें जब श्यामरंगमें रँग जानेकी भावना प्रबल हो उठती है, तब चन्द्रसखी लगे हाथो अपनी चुंदड़िया भी रँगानेका अनुनय-विनय करती हैं। 'नन्दलाल! मेरी चुनरी ऐसी रँगना कि फिर कभी उसका रंग न निकले, चाहे उसे धोबी सारी आयु धोता रहे। निम्न कथनमें यह बात देखिये——

राधे श्याम मेरी रँग दो चुंदड़िया, नंदलाल मेरी रंग दो चुंदड़िया॥
आप रँगो चाहे मोल रँगा दो, प्रेमनगरकी खुली है बजरिया॥
चूंदड़ ओढ़े बिन घर नी जाऊँ।
ऐसो रँग रंग जो धोबी धोये चाहे सारी उमरिया॥
भाई रे भतीजा वाट तेवारे, आपी उड़इयो चाहे सारी उमरिया॥

चन्द्रसखीके भजनोका जनमानसपर अधिक प्रभाव पड़ा है। आज भी गाँव-गाँवमें उसके गीतोंको बड़े प्रेम एवं श्रद्धासे गाया जाता है। कहते है यदि चन्द्रसखीके गीतोंका संग्रह किया जाय तो वे गिनतीमें कम-से-कम तीन सौतक पहुँचेंगे। '**ब्रज मंडल** देस दिखाओ रसिया'—गीत चन्द्रसखीका प्रसिद्ध भजन है, जिसे गायक एवं श्रोता दोनों ही गाकर और सुनकर मस्त हो जाते हैं। वस्तुतः चन्द्रसखीका अपने इष्टदेव श्रीकृष्णके प्रति प्रेम अद्भुत है। खेद है, इनके भजन 'मीरा' आदिके समान सुदूर प्रसिद्धि नहीं पा सके।

स्वामी श्रीप्राणनाथजी एवं उनकी संकीर्तन-प्रणाली

(प्रेषक—श्रीकृष्णमणि शास्त्री, साहित्याचार्य)

प्राचीनकालसे ही इस विशाल भारतवर्षमें विभिन्न प्रकारकी विचारधाराएँ चलती आ रही हैं। संत महापुरुषोंने इन धाराओंको एक ही परमात्माकी ओर मोड़कर '**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति**'—इस वेदवाक्यको चरितार्थ करनेकी चेष्टा की है। ऐसी ही महान् विभूतियोंमें अर्वाचीन संत महामति स्वामी श्रीप्राणनाथजीकी प्रमुख भूमिका रही है।

इनका आविर्भाव गुजरातके जामनगरमें वि०सं० १६७५ (सन् १६१८ ई०)में हुआ था। इनके पिताका नाम श्रीकेशव ठाकुर और माताका नाम धनबाई था। इनका बचपनका नाम इन्द्रवती था। इनके गुरु श्रीदेवचन्द्रजी महाराज थे। इनका देहावसान वि० सं० १७५१ (सन् १६९४ ई०)में हुआ।

सत्रहवीं शताब्दीमें भारतवर्ष आततायी मुगलोंसे त्रस्त था। हिंदूधर्ममें भी बाह्य आडम्बर उग्र रूप ले रहा था। हिंदू-हिंदूमें जातिगत भेद, हिंदू-मुसलमानोंमें धार्मिक भेद तीव्र गतिसे आगे बढ़ रहा था। तब महामति प्राणनाथजीने प्रकट होकर '**पण्डिताः समदर्शिनः**'—गीताके इस वचनको आगे रखा। उन्होंने कहा—भेदभाव केवल शारीरिक सम्बन्धसे होते है। शरीर नश्वर है, जला दें तो राख बनेगा, दबा दें तो मिट्टी बनेगा। आत्मा एक रूप है, मनको पवित्र कर परमात्माको सौंप दो—

हिंदू कहे हम उत्तम,
मुसलमान कहे हम पाक।
दोऊ मुट्ठी एक ठौर की,
एक राख दूजीका खाक॥

हिंदू और मुसलमानके लिये कोई अलग-अलग परमात्मा नहीं हैं। परमात्मा सभीके एक हैं, केवल भाषाका अन्तर है—

नाम सारों जुदे धरे,
लई सबों जुदी रस्म।
सबमें उमत और दुनियाँ
सोई खुदा सोई ब्रह्म॥

वेद, पुराण और कुरानका आध्यात्मिक रहस्य एक है, परंतु न समझ पानेसे ऐसा वातावरण बना है—

जो कछु कह्या कतेब ने,
सोई कह्या वेद।
दोउ बन्दे एक साहेब के,
पर लड़त बिना पाये भेद॥

सारे संसारके लिये उन्होने नयी दिशा प्रशस्त की—

यत्फलं नास्ति तपसा न दानेन न चेज्यया।
तत्फलं लभते सम्यक् कलौ केशवकीर्तनात्॥

'जो फल न तपसे, न दानसे और न यज्ञानुष्ठानसे ही प्राप्त होता है, वह फल कलियुगमें सम्यक् रूपसे केशवका कीर्तन करनेसे प्राप्त हो जाता है।' उन्होने इन वचनोको जनमानसमें रखकर सभीको कृष्ण-भक्तिकी ओर उन्मुख किया। कहा भी है—

'कलौ तु केवला भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी॥'

'कलियुगमें केवल भक्ति ही ब्रह्मसायुज्यकी प्राप्ति करानेवाली है।' महाभारतमें प्रसङ्गवश भीष्मपितामहने पाण्डवोंसे कहा है—

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥
(महा० १२। ४८)

'अनन्य रूपसे गोपियोंकी तरह यदि एक बार भी श्रीकृष्णको प्रणाम किया जाय तो वह दस अश्वमेधयज्ञके अवभृथ-स्नानके समान होता है;' क्योंकि **'स्वर्गकामो यजेत'** यज्ञसे स्वर्गकी प्राप्ति होगी और **'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'** अर्थात् 'पुण्यके क्षीण होनेपर पुनः जन्म लेना पड जाता है', परंतु अनन्य रूपसे प्रणाम करनेवाला व्यक्ति मोक्षको प्राप्त कर लेता है।

महामति प्राणनाथजीने शास्त्रोंके वचनोको, संतोंकी वाणीको और अपने अनुभवको सुन्दर पद्योमें गायन किया, जो 'तारतमसागर'के नामसे चौदह भागोमें संकलित है, जिसमें अठारह हजार चौपाइयॉ हैं। यह महान् ग्रन्थ विश्वकी धार्मिक परम्पराओका अनूठा संगम है। हिंदू-धर्म-ग्रन्थ—वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण तथा अन्य धर्मके ग्रन्थ जंबूर, तौरेत, अंजील, कुरान आदि अपना अलग-अलग अस्तित्व रखते हुए 'तारतमसागर'में एकाकार हो जाते हैं। महामति प्राणनाथजीकी संकीर्तन-प्रणाली विशिष्ट है। उपदेश, प्रार्थना, आत्मिक विरह, लीलाका गायन आदि विभिन्न प्राचीन रागद्वारा कीर्तनके रूपमें उन्होंने अभिव्यक्त किया है। इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

रासका एक दृश्य, (राग बसन्त, भाषा गुजराती)

कोणियॉ रमिये रे मारा वाला,
गाईये वचन सनेह।
भरमा वाचा करी करमना,
सीखो तमने सीखवूँ एह॥ १॥
ए रामतडी जोरावर रे,
दीजे टेक अंग वाली।
रमता सोभा अनेक धरिए,
गाईए वचन कर चाली॥ २॥
करें रमिएँ कोणियॉ रमिएँ,
चरण रामतडी कीजे।
छली रामतमॉ विलास विलसी,
प्रेमतणॉ सुख लीजे॥ ३॥

झुओ रे सखियो काळो कोणियाँ रमताँ,
भाँत भाँत अँग वाळे ।
सखियो रामत बीजी करी नव सके,
कमळी जोइ गिहाळे ॥ ४ ॥
कर मे लीने कोणियाँ रमिए,
कोणी मेळीने फरे ।
अंगडा वाळे नयणा चाळे,
मनडा सकळना हरे ॥ ५ ॥
ए रामतनारस कहूँ केटला,
धाए निरतना रंग ।
अस चरणना भूपण सर्वे
हाले वंनेना एक अंग ॥ ६ ॥
लटके गाए लटके नाचे,
लटके मोडे अंग ।
लटके रामत रेहेम लटके,
लटके साँईं किये संग ॥ ७ ॥
मारा वालाजीमाँ एक गुण दीसे,
जाणे रामत सीख्या रुह पहेली ।
इन्द्रावतीमाँ वे गुण दीसे,
एक चतुरने रमताँ गेहेली ॥ ८ ॥

इस प्रकार इन्होंने भगवद्भक्तिपरक विभिन्न विषयोका भिन्न रागोंद्वारा गान किया है, जो 'तारतमसागर'में द्रष्टव्य है।

हरिकीर्तनाचार्य अन्नमाचार्य

(लेखक—डॉ० एम्० सगमेशम्, डी०लिट्०)

ईसाकी पंद्रहवीं-सोलहवीं सदियोंमें भारतके प्रायः प्रत्येक प्रान्तमें एक-न-एक महान् भक्त कवि हुए, जो संयोगसे गायक भी थे। उन भक्त गायकोंके संकीर्तन-गानसे उस समय इस देशका आकाशमण्डल इस छोरसे उस छोरतक गूँज उठा था। ऐसे भक्तोंमें अन्नमाचार्य (ई० १४२४-१५०३) भी एक थे, जो आन्ध्र-प्रान्तके कडपा जिलेके ताल्लपाका गाँवमें पैदा हुए थे। ये ऋग्वेदके आश्वलायनसूत्री, भारद्वाज-गोत्री, नंदवरीक ब्राह्मण-परिवारके थे और वचपनसे ही तिरुमल-तिरुपतिमें व्यक्त भगवान् श्रीवेंकटेश्वरकी भक्तिमें अनुरक्ति दिखाते रहे। उस समयसे ही वे भगवान्‌के नाम-गीत रचकर गाया करते थे। कहते हैं, इनका जन्म श्रीवेंकटेश्वरकी कृपासे उन्हींके खड्ग—नंदकके अंशसे हुआ था।

आठ वर्षकी आयुमें अन्नमाचार्य अपने घरवालोंसे कहे विना ही कुछ यात्रियोके साथ तिरुमल-तिरुपति जा पहुँचे। तिरुमले पर्वतपर चढ़ते समय बालक होनेके कारण वे अत्यधिक थककर एक जगह बेहोश होकर गिर पडे। उसी स्थितिमें इन्हें देवी अलमेलमङ्गा (पद्मावती) का स्वप्न-साक्षात्कार हुआ और उनके हाथका प्रसाद भी मिला। होश आनेपर आँखोंके साथ इनकी जिह्वा भी खुली, तब इन्होंने मार्गमें ही देवीके यशोवर्णनमें सौ पद्योंका एक शतक रचा। यह शतक यद्यपि देवीकी स्तुतिमें रचा गया, तथापि इसका प्रत्येक पद्य 'श्रीवेंकटेश्वर' की मुद्रा (मुकुट)से शोभित है।

पहाड़के ऊपर पहुँचकर मन्दिरमें अपने भगवान्‌के संनिधानमें खड़े होकर बालक अन्नमय्याने कई पदों एवं शतककी रचना कर गान किया। बालककी भक्ति और प्रतिभाको देखकर वहाँके धनविष्णु नामक विशिष्टाद्वैताचार्यने इन्हें श्रीवैष्णवधर्ममें दीक्षित कर दिया। बादमें इनके घरवाले इन्हें ढूँढ़ते तिरुमल पहुँचे और गुरुकी अनुमति लेकर इन्हें फिर अपने साथ घर वापस ले गये। कुछ दिनोंके बाद तिरुमलम्मा और अक्कलम्मा नामक दो कन्याओंके साथ एक ही मुहूर्तमें इनका विवाह-संस्कार सम्पन्न किया गया।

विवाहके बाद अन्नमाचार्य अहोबल जाकर वहाँके मठाधिपति शठगोपयतिके शिष्य हो गये। वहाँ इन्होंने विशिष्टाद्वैत वेदान्त और द्राविड़ वेद (आलवार-प्रबन्ध)का नियमपूर्वक अध्ययन किया। वहाँसे लौटनेके बाद ये

कभी अपने गाँवमें और कभी तिरुपतिमें रहते तथा कभी अन्यत्र यात्राके लिये चले जाते तो भी अपने स्वामी श्रीवेंकटेश्वरके यशोवर्णनमें नित नये गीत रचते, भगवन्महिमा और प्रपत्ति-मार्गकी भक्तिका प्रचार करते जीवन बिताने लगे। ये दक्षिणमें श्रीरंगम्से लेकर उत्तरमें श्रीजगन्नाथपुरीतकके सभी वैष्णव क्षेत्रोंकी यात्रा कर आये। ये जहाँ-कहीं भी जाते, वहाँके भगवान्‌को अपने इष्टदेव श्रीवेंकटेश्वरसे अभिन्न मानकर, उन्हींकी मुद्रा देकर, उनका यश गाते थे। इनके पदोंमें नरसिंह 'वेंकट नरसिंह' होकर मिलता है, तो राम 'वेंकट राम' करके वर्णित होते हैं।

नित्य संकीर्तन रचकर गाते रहनेके कारण और हजारोंकी संख्यामें अध्यात्म एवं श्रृङ्गारपरक संकीर्तन रचकर भगवान्‌के श्रीचरणोंमें समर्पित करते रहनेसे अन्नमाचार्यको इनके जीवनकालमें ही संकीर्तनाचार्य, हरिकीर्तनाचार्य, पदकविता-पितामह-जैसी उपाधियाँ मिल गयीं। उनकी कविता और गानकलाकी ख्यातिको सुनकर समीपके टंगुटूरमें रहनेवाले विजयनगर-राज्यके मण्डलाधिपति सालुव नरसिंहरायने इनसे मित्रता कर ली और वह इनका शिष्य बन गया। भक्तकवि अन्नमाचार्यके आशीर्वादसे वह क्रमशः उन्नति करते हुए अन्तमें सन् १४८५-९० के बीच विजयनगर-साम्राज्यका अधिपति बन गया।

एक बार पेनुगोंडामें रहते समय राजा नरसिंहरायने अन्नमाचार्यको वहाँ बुलवाया और अपना यशोवर्णन करनेका आदेश दिया। भक्त कविने 'हरी-हरी' कहकर अपने दोनो कानोंपर हाथ लगाकर राजासे कहा—'हम लोग परम पतिव्रता-भावसे भगवान्‌का यश गानेवाले हैं। मुकुन्द-नाम-स्मरणके लिये अर्पित मेरी जिह्वा तुम्हारा यश नहीं गा सकती।' यह सुनकर राजा रुष्ट हो गया और कविको पैरोंमें साँकल पहनवाकर जेल भेजवा दिया। उस समय कविने 'आकटि वेळल', 'नी दासुळ भंगमुलु', 'दासवर्गमुनकु' आदि पदोंका गानकर अपने आराध्यदेव श्रीवेंकटेश्वरको अपनी आर्तभरी विनती सुनायी, तब अकस्मात् उनके पैरोंका बन्धन टूट गया और राजाका गर्व भी छूट गया।

एक बार अन्नमाचार्यके यहाँसे इनकी पूजा-मूर्तियोंकी चोरी हो गयी। उस संदर्भमें भी भक्तकविने भगवत्संकीर्तन-को ही अपना एकमात्र सुनिश्चित सहायक माना और 'इन्दिरा रमणुनि देच्चि इय्यरो' आदि पद रचकर गान किया, तब भगवत्-कृपासे वे मूर्तियाँ फिर मिल गयीं। उत्तर वयमें ये महात्मा शापानुग्रहदक्ष बन गये, इनकी ऐसी कई कहानियाँ प्रचलित हैं। अन्नमाचार्य आजीवन गृहस्थ ही रहे। इनके पुत्र-पौत्रोंने उन्हींके आदर्शपर चलकर संकीर्तन-रचना और विशिष्टाद्वैत-भक्तिके प्रचारमें उत्साह दिखाया। इनके परिवारमें तीन पीढ़ियोंतक लोग कवि, पण्डित, भक्त, गायक और आचार्य होकर बड़े यशस्वी हुए हैं। इनके पुत्रके समयमें इनके तथा अन्नमाचार्यके सभी संकीर्तन-पदों और अन्य रचनाओंको ताम्रपत्रोंपर लिखवाकर तिरुमल-तिरुपतिके श्रीवेंकटेश्वर-मन्दिरमें तदर्थ निर्मित 'संकीर्तन-भंडार'में सुरक्षित रखवाया गया है। अन्नमाचार्यके पौत्र चिनन्नाने 'अन्नमाचार्य-चरित्र'की रचना की है, जिसके अनुसार मालूम पड़ता है कि अन्नमाचार्यने कुल बत्तीस हजार संकीर्तन-पद रचे थे, किंतु आज ताम्रपत्रोंमें इनके लगभग बारह हजार संकीर्तन-पद मात्र मिल रहे है। वैसे ही एक शतक और 'श्रृङ्गार-मञ्जरी' नामक एक छोटा काव्य भी प्राप्त हुआ हैं। शेष रचनाएँ खो गयीं।

अन्नमाचार्यके संकीर्तन-पद अध्यात्म और श्रृङ्गार नामक दो शीर्षकोंमें विभक्त हुए मिलते हैं, जो क्रमशः विनय और लीलाके पद कहे जा सकते है। इनमें श्रृङ्गारपरक पद संख्यामें अधिक हैं। इनमें कुछ पद संस्कृतमें रचे

गये हैं। अध्यात्मपदोंमें भक्ति, वैराग्य, लोकरीति, नीति, वेदान्त, भगवन्नाम-स्तुति, स्तोत्र, अवतार-वर्णन आदिके साथ पूजा, उत्सव, सेवा-विधि आदिका भी वर्णन हुआ है। साथ-साथ इनमें उस समयके मुस्लिम-आतङ्क, स्थानीय राजाओंके परस्पर कलह, स्वार्थपूर्ण षड्यन्त्र-जैसोंका भी वर्णन मिलता है। इन गीतोंमें कविने अपने भगवान्से प्रजाको इन कष्टोंसे बचानेकी विनती की है। शृङ्गार-संकीर्तनोंमें जीवात्मा और परमात्माके मधुर शृङ्गारका उज्ज्वल वर्णन हुआ है। यहाँ नायक श्रीवेंकटेश्वर हैं तो नायिका देवी अलमेलमंगा (पद्मावती) हैं, जो कविकी आत्माका प्रतीक हैं। कवि कभी-कभी अपनेको उन दोनोंके यहाँ सखा, सखी या दूतीके रूपमें भी प्रस्तुत करते है। श्रीवेंकटेश्वरका मन्दिर पहाड़पर है, अतः वहाँके कोल, किरात और गोप-कामिनियोंका भी अन्नमाचार्यकी रचनामें नायिकारूपमें अवतरण हुआ है; किंतु वहाँ भी कविका आत्म-तादात्म्य स्पष्ट झलकता है। इनका शृङ्गार ऐश्वर्यमय है और लौकिकतासे सर्वथा असम्पृक्त है। अध्यात्म-संकीर्तनोंमें शरणागति तथा शृङ्गार-संकीर्तनोंमें आत्मसमर्पण एवं भगवत्-स्वीकृतिकी व्यञ्जना अन्नमाचार्यके पदोंकी विशिष्टता है।

भाषा और साहित्यकी दृष्टिसे भी अन्नमाचार्यके पद बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ये सभी पद राग-रागिनियोंमें बँधे हैं और ताल छन्दोगतिके अनुसार निर्दिष्ट होता है। अन्नमाचार्यने संस्कृतमें 'संकीर्तनलक्षण' नामक ग्रन्थ भी रचा था; किंतु वह अब अप्राप्य है। उनके पौत्रद्वारा निर्मित उसका आन्ध्रपद्यानुवाद मिलता है। अविकृत अनुवादके रूपमें मिलनेवाला यह ग्रन्थ तेलुगुमें इस विषयपर रचे गये ग्रन्थोंमें सबसे प्राचीन है। अन्नमाचार्यके वंशवाले अब भी प्रतिदिन श्रीवेंकटेश्वर-मन्दिरमें रातको एकान्त-सेवाके समय संकीर्तन-सेवा निभाते आ रहे हैं।

भक्त हरिनाथका संकीर्तन-प्रेम

(लेखक—पं० श्रीसुरेशजी पाठक, एम्० ए०, डिप इन-एड, साहित्याचार्य, आयुर्वेदरत्न)

भगवान्तक पहुँचनेके अनेक मार्ग हैं। प्रभुकी कीर्तिका गान उन मार्गोंमेंसे एक है। उनकी कीर्तिके गानको ही कीर्तन कहते हैं। भगवत्प्राप्तिके लिये ध्यानयोग, जप-तप आदि साधन कुछ कठिन एवं नीरस भी हैं, वे सर्वसुलभ नहीं है। वेद-वेदान्तोंका अध्ययन-मनन साधन भी विद्वानोंके लिये है, किंतु कीर्तन पढ़े-अनपढ़े सभीके लिये सुलभ है। इसकी परम्परा भी बहुत प्राचीन है। श्रीमद्भागवतमें कीर्तनको नवधा भक्तिके अन्तर्गत रखा गया है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

व्याख्यान, प्रवचन, स्तवन, स्तोत्र-पाठ, कथा-कीर्तन सभी इसीके अङ्ग हैं। व्यास-नन्दन श्रीशुकदेवजी इस अङ्गमें आदर्श हैं, जिनके सत्सङ्गसे महाराज परीक्षित्का उद्धार हुआ था। उस समय कलियुगका प्रादुर्भाव हो चुका था। अतः श्रीशुकदेवजीके मुखसे भगवत्-कीर्तिका गायन होनेसे उनको गति मिली। विष्णुपुराणमें कहा है—

'जो फल सत्ययुगमें ध्यान करनेसे, त्रेतायुगमें यज्ञ-याग, जप करनेसे, द्वापरमें पूजन-अर्चनसे प्राप्त होता है, वही फल कलियुगमें केशवका कीर्तन करनेसे प्राप्त होता है।' इस प्रकार कलियुगको श्रेष्ठ बतलाया गया है।

श्रीराधाकृष्णके महान् भक्त कविवर हरिनाथ[१]

१—'कल्याण' वर्ष ५७, १९८३, दिसम्बरके अङ्कमें इनका परिचय प्रकाशित है। सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता स्व० डॉ० कालिंकिंकर दत्तद्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'दी कंप्रीहेन्सिव हिस्ट्री आफ बिहार' जिल्द २, भाग २ में इनका नाम आया है। राष्ट्रभाषा-परिषद् पटनासे प्रकाशित 'पञ्चदश लोक-भाषा-निबन्धावली'में कृष्णदेवप्रसादने भी इनका नाम लिया है। इस प्रकार भक्त हरिनाथ बहुचर्चित हैं।

पाठकजीका जीवन अपने-आपमें कीर्तनमय था। आप चैतन्य महाप्रभु, भक्त रैदास, भक्तिमती मीराबाई, सूर, तुलसी आदिकी परम्पराके कीर्तन-प्रेमी थे। आपके कीर्तन-प्रेमका बीज उस समय अङ्कुरित हुआ, जब आप पाठशालामें पढ़ते थे। पाठ-समाप्तिके अनन्तर अन्य छात्रगण तो पढ़ाये गये पाठकी पुनरावृत्ति करते थे, पर आप पाठशालाके ही एक कमरेमें बंद होकर हरि-कीर्तनमें तल्लीन होकर नृत्य करते रहते थे।

एक दिन इन्हें स्वप्नमें भगवान् वंशीधरका दर्शन प्राप्त हुआ। जागनेपर प्रभु-वियोगमें भटकते हुए आप मथुरा पहुँचे। वहाँ यमुना-तटपर श्रीराधाकृष्णके दर्शनतक निराहार रहकर साधना चालू रखनेका संकल्प किया। तीन दिनोंकी ही साधनासे विश्वका धारण-पोषण करनेवाली करुणामयी जगज्जननी राधिकाजीको अपने दिव्यदर्शन देने पड़े। यह आपके कीर्तनका चरमोत्कर्ष है; क्योंकि भगवत्प्राप्तिके उपरान्त भक्तको और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता।

आप अपनी कीर्तन-साधनाका ज्ञान जनसाधारणको कराते रहते थे। कारण यह है कि भक्तलोग जिस परमानन्दका रसास्वादन स्वयं करते है, वह आनन्द दूसरोंको भी सुलभ करा देते है। इसीलिये ऐसे लोग यदा-कदा सर्वसाधारणको चमत्कारपूर्ण दृश्य दिखाते हैं, जिससे लोग भगवान्‌की लीलाओंसे आकर्षित होकर उन्हें प्राप्त कर अपने जीवनको सार्थक बनावें। जीवनके अन्तिम समयमें आप हियापुर ग्राम-(गया, बिहार) स्थित श्रीराधाकृष्णके मन्दिरमें रहते थे। यह मन्दिर वृन्दावनके आधारपर बनाया गया था, अतः उस स्थानको वृन्दावन कहते थे। एक दिन आपने मन्दिरके पुजारीसे कहा कि लली (राधाजी) लाला-(श्यामसुन्दर-) से लड़ती रहती हैं। पुजारीजीको उनकी ऊँची साधनापर विश्वास न था। अतः उन्होने कहा—'महाराज! आपको रातमें नींद नहीं आती। यही कारण है कि आप ऐसी बात कहते है। भला पाषाणमूर्ति कहीं चल सकती है जो लड़ेगी?' तब उन्होने अपने परम प्रिय भक्त एवं मन्दिर-निर्माताको बुलाकर पूजनोपरान्त मन्दिरकी कुंजी दे दी और दूसरे दिन लड़ाईकी यह बात प्रमाणित करनेका वचन दिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल सभीके सामने मन्दिरका पट खोला गया। श्रीराधाकृष्ण अदृश्य थे। उन युगल मूर्तियोंकी खोज करनेपर श्रीकृष्णकी मूर्ति तो मिली, पर वंशी न मिली। वह कदम्बकी डालीपर देखी गयी। इधर राधिकाजी मिलीं, पर उनकी नकबेसर कहीं अन्यत्र थी। जब आपको युगल मूर्ति एवं उनकी सामग्रियोंके मिलनेकी बात बतायी गयी, तब आप उनके प्रेमकलहसे सम्बन्धित कीर्तन गाने लगे। इस कीर्तनमें राधाजीने श्रीवृन्दावन-बिहारीलालको जो उलाहनाएँ दीं, वे यों हैं—

जा रे चंचल चतुर ढीठ लंगर तुझको मय लखा।
क्या माहिहो भौहाँ कड़ी तेरो नजर सर बाँके बने।
छोरे छली छलबाज का छल जानती छल ना रखा॥ १॥
तेरो नंद बाबा है लंगर, दाउ लंगर हव तू लंगर।
लंगराइ सारे समाजका सब सो रहय लंगर सखा॥ २॥
(गीतरसामृतसे)

भगवन्नाम-संकीर्तनके सम्बन्धमें निम्नाङ्कित साधन बताये गये हैं जो महात्मा हरिनाथके साहित्यमें दर्शनीय हैं—

(१) **प्रतीक्षा**—प्रतीक्षा सकीर्तनका प्रथम साधन है। भक्त हरिनाथद्वारा रचित 'श्रीललित-भागवत' में कंसादि दानवोंका उपद्रव असह्य हो गया है। सभी देवगण प्रभुके आगमनकी प्रतीक्षामें हैं; क्योंकि गोलोक-नाथने इस धराधामपर अवतरण करनेका आश्वासन दिया था। इस दिव्यावतरणकी वेला निकट ही है।

अतः वे सभी राधावल्लभके शुभागमनकी प्रतीक्षा करते हुए उनके नामका संकीर्तन कर रहे हैं, जिसमें उनके यहाँ पधारनेकी प्रार्थना की गयी है——

(राग सामंतिनी, ताल पद ठुमरी)

करिए सनाथ स्वरूप देखाइ ॥
सत गुण रूप विशुद्ध स्वजन, हित धरि दुख दुरित दुराइ ।
लखि लीला गुण कर्म सुर मुनि, वेद विमल यश गाइ ॥
वाजी कमठ सूकर नरहरि वामन धन निराइ ।
हंस राम तन धरि पालन, करि क्षिति भार हरो यदुराइ ॥
मरि गये कंस समुझि अस मनके शोच दुराओ माइ ।
त्रिभुवन पालक बालक होइहै थोरे दिनन में आइ ॥
नारायण को बिना बिसुरन मुनि धरणी धाम सिधाइ ।
जन हरिनाथ प्रमोद मगन मन बहुत फूलन बरषाइ ॥

(२) श्रवण——गोपियोंकी रानी राधिकाजीपर श्रीश्यामसुन्दरने एक दिन कृपा की । वंशी-रवके रूपमें ब्रह्म-नाद निनादित हो रहा है । सभी गोपियाँ इस नादको सुनती हैं, जिसे सुनते ही उनका प्रेम चरम सीमापर पहुँच जाता है । तब गोपीनाथजी स्वयं अपनी आह्लादिनी शक्तिके समक्ष पहुँच जाते हैं——

सुनाय राग साँवरो बढ़ाय प्रीत घनी ॥
रही न दशा देह की अजब सिंगार बनी ॥ १ ॥
पायल गले गुलजार है पगन में लाल मणी ।
चोटी जो छुटी पीठ पर लटक रही फणी ॥ २ ॥
उलट-पलट लपेट भूषण बसन चारु तनी ।
चली अकेली कुंज बन श्रीराधिका जनी ॥ ३ ॥
ललक लखे गोपाल जब घूँघुट बदन तनी ।
उधार डारे साँवरे हरिनाथ के जनी ॥ ४ ॥

(गीतरसामृतसे)

(३) उत्कण्ठा——उत्कण्ठामें अपनी प्यारी वस्तुकी प्राप्तिके लिये तीव्र इच्छा होती है, उसके निकट आनेकी उत्कट अभिलाषा पैदा होती है । भक्त कविका मन लोक-लज्जाको छोड़, गृहस्थीकी बेड़ीको तोड़ श्रीनन्द-नन्दनका दास बन जाता है । इन्हें सांसारिक पदार्थोंकी जरा भी चाह नहीं है । आप भव-जालको काटकर कन्हैयाको प्राप्त करने-हेतु बेचैन होकर यह कीर्तन गा उठते हैं——

कत दूर गेल नन्द लाल शरन मोर ।
कत दूर गेल हो गोपाल ॥
हाथी भेलुं घोड़ा भेलुं वनचर भाल ।
कत वेर दुश्मन डाल लक जाल ॥
कत दुख लावलक नर तन काल ।
तोरा से विमुख देह फिरत वे हाल ॥
थकि गेल हाथ गोड़ धँसि गेल गाल ।
एहि रे उमरिया में चलली न चाल ॥
सुनलूँ में हहो प्रभु निज जन पाल ।
करि हहु खोज हरिनाथ कुचाल ॥

(जीवनचरित्रसे)

(४) गृह-कर्म-त्याग——जब प्रभुके प्रेम-रसका एक बार स्वाद मिल जाता है, तब उससे प्राप्त अलौकिक आनन्दके सामने सांसारिक आनन्दको आत्मा तिलाञ्जलि देकर गृह-कार्यको छोड़ देती है । एक दिन बरसानेकी राजदुलारी यमुना-किनारे जाती हैं तो मुस्कुराते हुए वंशीधर दिखायी पड़ते हैं । दोनों एक-दूसरेको निहारते हैं । आकर्षण-गुणसे पूर्ण श्रीकृष्ण अपनी आह्लादिनी शक्तिको खींचते हैं । उस समय श्रीराधिकाजीकी मनोदशाका वर्णन भक्त कवि इन शब्दोंमें व्यक्त करते हैं——

साले करेजवा रे मारे कन्धैया नयना बान ।
ओझा बोलाओ बैद बोलाओ जियरा भेल हयरान ॥ १ ॥
रोमे रोमे विष फैल गयो है अब न बचिहैं प्रान ॥ २ ॥
नन्द नगर से गुणी यो आया काँवर भरे गुमान ॥ ३ ॥
संग लगायो हरिनाथ ले आया झारी बचायो जान ॥ ४ ॥

(गीतरसामृतसे)

(५) परिसमर्पण——प्रेमी-प्रेमिका जब एक दूसरेको देखते हैं, तब वे किसी अन्यकी अपेक्षा नहीं करते । ऐसी स्थितिमें वे अन्य जनोंकी दृष्टि बचाकर चलते हैं । वे आपसमें एक-दूसरेके भावको समझते हैं । कोई उनके भावको क्या समझ सकता है ? अलौकिक प्रेमकी ऐसी

ही निराली बात है । ऐसा इसलिये होता है कि वे दुनियावालोंको दिखानेवाले ढोंगी नहीं हैं——

ऊँचे रे महल चढी देखे राणी
राधिका कुंजन वन डोलत रे शामलिया ॥ १ ॥
ललित वदन धरि मन मोहन
टेरत सुर मोहनी रे बाँसुलिआ ॥ २ ॥
जननीके चोरी चोरी चली राणी
राधिका डगर पग परतरे अलवेलिआ ॥ ३ ॥
हरि उर लाए धाए मीली राणी राधिका
आनंदघन मगन रे रसकेलिआ ॥ ४ ॥
रचि रचि सुमन सिंगार रंग रसिआ
अलक वीचे गूथत रे नवकलिया ॥ ५ ॥
निज कर वसन भूषण पहिराये
हरिनाथ सगे विहरत छबि छलिआ ॥ ६ ॥

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कृष्ण-भक्त हरिनाथजी महान् संकीर्तन-प्रेमी थे ।

सनकादि कुमार

सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजीने जैसे ही रचनाका प्रारम्भ करना चाहा, उनके संकल्प करते ही उनसे चार कुमार उत्पन्न हुए—सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार । ब्रह्माजीने सहस्र दिव्य वर्षोंतक तप करके हृदयमें भगवान् शेषशायीका दर्शन पाया था । भगवान्ने ब्रह्माजीको भागवतका मूलज्ञान दिया था । इसके पश्चात् ही ब्रह्माजी मानसिक सृष्टिमे लगे थे । ब्रह्माजीका चित्त अत्यन्त पवित्र एवं भगवान्मे लगा हुआ था । उस समय सृष्टिकर्ताके अन्तःकरणमें शुद्ध सत्त्वगुण ही था, फलतः उस समय जो चारो कुमार प्रकट हुए, वे शुद्ध सत्त्वगुणके स्वरूप हुए । उनमें रजोगुण तथा तमोगुण था ही नहीं । न तो उनमे प्रमाद, निद्रा, आलस्य आदि थे और न सृष्टिके कार्यमें उनकी प्रवृत्ति ही थी । ब्रह्माजीने उन्हे सृष्टि करनेको कहा तो उन्होने सृष्टिकर्ताकी यह आज्ञा स्वीकार नहीं की । विश्वमे ज्ञानकी परम्पराको बनाये रखनेके लिये स्वयं भगवान्ने ही इन चारो कुमारोंके रूपमें अवतार धारण किया था । कुमारोकी जन्मजात रुचि भगवान्के नाम तथा गुणका कीर्तन करने, भगवान्की लीलाओ-का वर्णन करने एवं उन पावन लीलाओंको सुननेमें थी । भगवान्को छोड़कर एक क्षणके लिये भी उनका चित्त संसारके किसी विषयकी ओर जाता ही नहीं । ऐसे सहज स्वभावसिद्ध विरक्त भला कैसे सृष्टिकार्यमें लग सकते थे ?

उनके मुखसे निरन्तर 'हरिःशरणम्'—यह मङ्गलमय मन्त्र निकलता रहता है । वाणी इसके जपसे कभी विराम लेती ही नहीं । चित्त सदा श्रीहरिमें लगा रहता है । इसका फल है कि चारों कुमारोंपर कालका कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वे सदा पाँच वर्षकी अवस्थाके ही बने रहते हैं । भूख-प्यास, सर्दी-गरमी, निद्रा-आलस्य—कोई भी मायाका विकार उनको स्पर्श-तक नहीं कर पाता । कुमारोंका अधिक निवास-धाम जनलोक है—जहाँ विरक्त, मुक्त, भगवद्भक्त, तपस्वीजन ही निवास करते हैं । उस लोकमें सभी नित्यमुक्त है । परंतु वहाँ सब-के-सब भगवान्के दिव्य गुण एवं मङ्गलमय चरित सुननेके लिये सदा उत्कण्ठित रहते है । वहाँ सदा-सर्वदा अखण्ड सत्सङ्ग चलता ही रहता है । किसीको भी वक्ता बनाकर वहाँके शेष लोग बड़ी श्रद्धासे उसकी सेवा करके नम्रतापूर्वक उससे भगवान्का दिव्य चरित सुनते ही रहते हैं; परंतु सनकादि कुमारोका तो जीवन ही सत्सङ्ग है । वे सत्सङ्गके विना एक क्षण नहीं रह सकते । मुखसे भगवन्नामका जप, हृदयमें भगवान्का ध्यान, बुद्धिमें व्यापक भगवत्तत्त्वकी स्थिति और श्रवणोंमें भगवद्गुणा-नुवाद—बस, यही उनकी नित्यकी दिनचर्या है ।

चारों कुमारोंकी गति सभी लोकोंमें अबाध है। वे नित्य पञ्चवर्षीय दिगम्बर कुमार इच्छानुसार विचरण करते रहते हैं। पातालमें भगवान् शेषके समीप और कैलासपर भगवान् शंकरके समीप वे बहुत अधिक रहते हैं। भगवान् शेष एवं शंकरजीके मुखसे भगवान्‌के गुण एवं चरित सुनते रहनेमें उनको कभी तृप्ति ही नहीं होती। जनलोकमें अपनेमेंसे ही किसीको वक्ता बनाकर भी वे चरित-श्रवण करते हैं। कभी-कभी किसी परम अधिकारी भगवद्भक्तपर कृपा करनेके लिये वे पृथ्वीपर भी पधारते हैं। महाराज पृथुको उन्होने ही तत्त्वज्ञानका उपदेश किया। देवर्षि नारदजीने भी कुमारोंसे श्रीमद्भागवतका श्रवण किया। अन्य भी अनेक महाभाग कुमारोंके दर्शन एवं उनके उपदेशामृतसे कृतार्थ हुए हैं। भगवान् विष्णुके द्वाररक्षक जय-विजय कुमारोंका अपमान करनेके कारण वैकुण्ठसे भी च्युत हुए और तीन जन्मोंतक उन्हें आसुरी योनि मिलती रही।

सनकादि चारों कुमार भक्तिमार्गके मुख्य आचार्य हैं। सत्सङ्गके वे मुख्य आराधक हैं और कीर्तनके परम प्रेमी हैं। श्रवणमें उनकी गाढतम निष्ठा है। ज्ञान, वैराग्य, नाम-जप एवं भगवच्चरित्र सुननेकी अबाध उत्कण्ठाका आदर्श ही उनका स्वरूप है।

भक्त प्रह्लाद और उनका संकीर्तन

भक्त प्रह्लाद दैत्यवंशमें उत्पन्न हुए थे, पर इनके गर्भस्थ संस्कार भक्तिप्रवण थे। जब ये गर्भस्थ ही थे, तभी श्रीनारदजीने इनकी माता कयाधूको भक्तिका उपदेश दिया था। उसी संस्कारने इन्हें आदर्श भक्त बनाया और ये जगद्विख्यात भक्त हुए। भक्तिकी विधाओंको नवधा बताते हुए इन्होंने ही भागवतमें दूसरी विधाको 'कीर्तन'के रूपमें बतलाया है। ये नाम-जापक तो थे ही, कीर्तनिया भी थे। बालकपनमें अपने दैत्य-पुत्र सहपाठियोंको एकत्र कर उनके साथ कीर्तन किया करते थे। इनकी जीवनगाथा बड़ी रोचक, विचित्र एवं भक्तिमिश्रित है। पद्मपुराण-भूमिखण्डके अनुसार वे पूर्वजन्मके सोमशर्मा नामक ब्राह्मण थे। हरिहरक्षेत्रमें जप करते समय राक्षसोकी टोलीके विघ्नद्वारा इनका भयसे प्राणान्त हुआ, फलतः अन्तकालमें राक्षसका दर्शन-ध्यान होनेसे इनका राक्षसकुलमें जन्म हुआ। गर्भावस्थामें ही जैसा कि कहा जा चुका है, भगवत्कथामृतका पान करनेका सौभाग्य इन्हें प्राप्त हुआ था; अतः ये भागवतोंमें श्रेष्ठ हुए। भक्तजन परम भागवतोंको प्रणाम करते समय इन्हें अग्रगण्य मानकर सबको प्रणाम करते हैं—
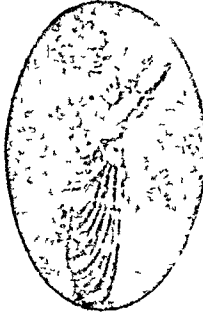
> प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीक-
> व्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
> रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन्
> पुण्यानिमान् परमभागवतान् नमामि॥

इस श्लोकमें सर्वप्रथम प्रह्लादको ही नमस्कार किया गया है; क्योंकि सर्वथा विपरीत परिस्थितियों तथा भयानक उत्पीडनोंमें भी इन्होने कथा-कीर्तन-भजन नहीं छोड़ा। दूसरी विशेषता इनकी निष्कामता थी। जब भगवान्‌ने इन्हें वर माँगनेको कहा, तब इन्होंने स्पष्ट कह दिया—

> कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥
> (श्रीमद्भा० ७। १०। ७)

'मैं आपसे यही वर माँगता हूँ कि मेरे हृदयमें (वर माँगनेकी) कामनाएँ ही कभी उत्पन्न न हों।' जब पिताने पूछा कि किस जादूके प्रभावसे

*

तुम अग्नि, विष आदिके प्रभावसे मुक्त हो जाते हो ?' तब उन्होंने भगवान् एवं भगवन्नाम-संकीर्तनको ही न केवल अपना, प्रत्युत पिता और अन्योंके भी बल-शक्तियोंका बल बतलाया है—

न केवलं मे भवतश्च राजन्
स वै बलं बलिनां चापरेषाम्।
(श्रीमद्भा० ७।८।८)

इसे स्पष्ट करते हुए कहा—

रामनामजपतां कुतो भयं
सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसंनिधौ
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना॥

'सर्वतापशामक श्रीरामनामका ही यह अद्भुत प्रभाव है कि पावक भी मेरे लिये जलका काम कर रहा है।' यही क्यों ? वज्राधिक कठोर हाथियोंके दाँत भी मुझसे टकराकर चूर्ण हो जाते हैं; किंतु इस चमत्कारमें मेरा कुछ बल नहीं है। इसमें महान् विपत्ति और त्रितापको शमन करनेवाले भगवान्के स्मरण-कीर्तनका बल-प्रभाव ही कारण है—

दन्ता गजानां कुलिशाग्रनिष्ठुराः
शीर्णा यदेते न बलं ममैतत्।
महाविपत्तापविनाशनोऽयं
जनार्दनानुस्मरणानुभावः॥
(विष्णुपुराण १।१७।४४)

श्रीप्रह्लादजीने भगवन्नामरूपी अद्भुत जादूके सहारे हाथियोंके वज्राधिक कठोर भयंकर दाँत, सर्पोंके तथा अन्यान्य एक-से-एक भयंकर विषोंके प्रभावको एकदम बेकार कर दिया। राक्षसोंके एक-से-एक भीषण शस्त्रास्त्र उनके सामने व्यर्थ सिद्ध हुए। उन्होंने इतिहासमें एक नयी कड़ी जोड़ी, एक नयी दिशा दी। उनके सामने अग्नि शीतल, विष अमृत, शत्रु भी मित्र एवं व्याघ्र, सर्प, हाथी भी परम शान्त हो जाते थे। वे भक्तिमार्गके प्रवर्तकाचार्य हुए और भक्तशिरोमणि कहलाये। अधिक क्या कहा जाय, इनकी स्मृतिसे भी परम शान्ति, उत्साह एवं साहस मिलता है—

होइ न बाँको बार भगत को, जो कोउ कोटि उपाय करै।
जगत बिदित प्रह्लाद कथा सुनि को न भगति पथ पाँव धरै॥
(विनयपत्रिका १३७)

यही कारण है कि रामचरितमानसकार महात्मा तुलसीदासने इनके प्रति ऐसे उद्गार प्रकट किये हैं—

नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रह्लादू॥

× × × ×

सेवक एक ते एक अनेक भए तुलसी तिहूँ ताप न डाढ़े।
प्रेम बदौं प्रह्लादहि को, जिन्ह पाहन तें परमेसुर काढ़े॥
(कविता०उत्तर०)

× × × ×

भूरि दई बिष मूरि भई प्रह्लाद सुधाइ सुधा की भलाई।
राम कृपा तुलसी जन की जग होइ भले को भलोइ भलाई॥
(कवितावली, ७)

प्रह्लादजीको सर्वाधिक भगवत्प्रिय ज्ञानी भक्त माना गया है—

सुमिरन साँचो कियो, लियो देखि सबहीमें,
एक भगवान् कैसे काटे तरवार है॥
(भक्तमाल, प्रियादास० भक्तिरसबो० टीका ९९)

पर 'चहू चतुर कहु नाम अधारा' के अनुसार वे अत्यन्त पवित्र विशुद्ध स्थितितकमें राग-रोग-लोभ-क्षोभ-मोहादिसे सर्वथा शून्य रहकर भी निरन्तर भगवन्नाम-गुणका संकीर्तन करते रहते थे। प्रह्लादजीके कीर्तनोद्बोधक नाम-माहात्म्यसम्बन्धी कुछ वचन यहाँ दिये जा रहे हैं।

वे कहते हैं कि 'पिशाचग्रस्त पागल प्राणीके समान जब भक्तिमें विभोर होकर मनुष्य 'हे हरे! हे जगत्पते! नारायण' आदिका कीर्तन करता हुआ लज्जा छोड़कर पुकारने लगता है, तब वह समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है—

यदा ग्रहग्रस्त इव
त्याक्रन्दते

मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते
नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ॥
तदा पुमान् मुक्तसमस्तबन्धन-
स्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ।
निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा
भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ॥
(श्रीमद्भा० ७ । ७ । ३५-३६)

भगवान्के स्मरण-कीर्तनमें कोई प्रयास नहीं होता, प्रत्युत आनन्द ही आता है । फलमें तो वह सर्वविध कल्याण प्रदान करता ही है—

प्रयासः स्मरणे कोऽस्य स्मृतो यच्छति शोभनम् ।
(विष्णुपुराण १ । १७ । ७८)

वास्तवमें प्रह्लादजीका जीवन-चरित्र भजन-मार्गमें साधकोंके लिये सर्वथा आनन्दकारी है । गोस्वामीजी सभी श्रेष्ठ जापकोंकी प्रह्लादसे तुलना करते हैं—

राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल ।
जापक जन प्रह्लाद जिमि, पालिहि दलि सुरसाल ॥

संकीर्तनाचार्य उद्धवजी

उद्धवजी साक्षात् देवगुरु बृहस्पतिके शिष्य थे। इनका शरीर श्रीकृष्णचन्द्रके समान ही श्यामवर्ण-का था और नेत्र कमलके समान सुन्दर थे । ये नीति और तत्त्व-ज्ञानकी मूर्ति थे । मथुरा आनेपर श्यामसुन्दरने इन्हें अपना अन्तरङ्ग सखा तथा मन्त्री बना लिया । भगवान्ने अपना संदेश पहुँचाने तथा गोपियोंको सान्त्वना देनेके लिये इनको व्रज भेजा । वस्तुतः दया-मय भक्तवत्सल प्रभु अपने प्रिय भक्त उद्धवजीको व्रज एवं व्रजवासियोंके लोकोत्तर प्रेमका दर्शन कराना चाहते थे । उद्धवजी जब व्रज पहुँचे, तब नन्दबाबाने इनका बड़े स्नेहसे सत्कार किया । एकान्त मिलनेपर गोपियोंने घेरकर इनसे श्यामसुन्दरका समाचार पूछा । उद्धवजीने कहा—'व्रजदेवियो ! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तो सर्वव्यापी हैं । वे तुम्हारे हृदयमें तथा समस्त जड़-चेतनमें व्याप्त हैं । उनसे तुम्हारा वियोग कभी हो नहीं सकता। उनमें भगवद्बुद्धि करके तुम सर्वत्र उनको ही देखो ।'

गोपियाँ रो पड़ीं । उनके नेत्र वारिपरिप्लावित हो गये । उन्होंने कहा —'उद्धवजी ! आप ठीक कहते हैं । हमें भी सर्वत्र मोर-मुकुटधारी ही दीखते हैं । यमुना-पुलिनमें, वृक्षोंमें, लताओंमें, कुञ्जोंमें—सर्वत्र वे ही कमललोचन दिखायी पड़ते हैं । उनकी वह श्याम-मूर्ति हृदयसे एक क्षणको भी हटती नहीं ।'

उद्धवजीमें जो तनिक-सा तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिका गर्व था, वह व्रजके इस अलौकिक प्रेमको देखकर गल गया । वे कहने लगे—'मैं तो इन गोपकुमारियोंकी चरण-रजकी वन्दना करता हूँ, जिनके द्वारा गायी गयी श्रीहरिकी कथा तीनों लोकोंको पवित्र करती है । इस पृथ्वीपर जन्म लेना तो इन गोपाङ्गनाओंका ही सार्थक है; क्योंकि भवभयसे भीत मुनिगण तथा हम सब भी जिनकी इच्छा करते हैं, उन निखिलात्मा श्रीनन्दनन्दनमें इनका दृढ़ अनुराग है । श्रुति जिन भगवान् मुकुन्दको अबतक अन्वेषण ही करती है, उन्हींको इन लोगोंने स्वजन तथा घरकी आसक्ति एवं लौकिक मर्यादाका मोह छोड़कर प्राप्त कर लिया है । अतः मेरी तो इतनी ही लालसा है कि मैं वृन्दावनमें कोई भी लता, वीरुध, तृण आदि हो जाऊँ, जिसमें इनकी पदधूलि मुझे मिलती रहे ।'

उद्धवजी व्रजके प्रेम-रससे आप्लुत होकर नाचने लगे तथा भावमग्न होकर श्रीकृष्ण-रस-संकीर्तनमें तल्लीन हो गये । यह महाभाव लेकर ही वे लौटे । भगवान्के साथ वे द्वारका गये । द्वारकामें श्यामसुन्दर इन्हें सदा प्रायः साथ रखते थे और राज्यकार्योंमें इनसे सम्मति लिया करते थे । जब द्वारकामें अपशकुन होने

संकीर्तनोत्सवमें उद्धवका प्राकट्य

लगे, तब उद्धवजीने पहले भगवान्‌के स्वधाम पधारनेका अनुमान कर लिया। भगवान्‌के चरणोंमें इन्होने प्रार्थना की—'प्रभो! मैं तो आपका दास हूँ। आपका उच्छिष्ट प्रसाद, आपके उतारे वस्त्राभरण ही मैंने सदा उपयोगमें लिये हैं। आप मेरा त्याग न करें। मुझे भी आप अपने साथ ही अपने धाम ले चलें।' भगवान्‌ने उद्धवजीको आश्वासन देकर तत्त्वज्ञानका उपदेश किया और बदरिकाश्रम जाकर रहनेकी आज्ञा दी।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था—'उद्धव ही मेरे इस लोकसे चले जानेपर मेरे ज्ञानकी रक्षा करेंगे। वे गुणोंमें मुझसे तनिक भी कम नहीं हैं।' अतएव अधिकारियोंको उपदेश करनेके लिये वे यहाँ रहें।'

भगवान्‌के स्वधाम पधारनेपर उद्धवजी द्वारकासे बदरिकाश्रम चले। मार्गमें विदुरजीसे उनकी भेंट हुई। भगवान्‌के आज्ञानुसार अपने एक स्थूलरूपसे तो वे बदरिकाश्रम चले गये और दूसरे सूक्ष्मरूपसे व्रजमें गोवर्धनके पास लता-वृक्षोंमें छिपकर निवास करने लगे। महर्षि शाण्डिल्यके उपदेशसे वज्रनाभने जब गोवर्धनके समीप संकीर्तन-महोत्सव किया, तब उद्धवजी लता-कुञ्जोंसे प्रकट हो गये। उन्होंने एक महीनेतक वज्र तथा श्रीकृष्णकी रानियोंको श्रीमद्भागवत सुनाया और अपने साथ वे उन्हें नित्यव्रजभूमिमें ले गये। श्रीभगवान्‌ने स्वयं भक्तोंकी प्रशंसा करते हुए उद्धवसे कहा था—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥
(श्रीमद्भा० ११। १४। १५)

'उद्धवजी! मुझे आप-जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रिय हैं, उतने ब्रह्माजी, शंकरजी, बलरामजी, लक्ष्मीजी भी प्रिय नहीं हैं। अधिक क्या, मेरा आत्मा भी मुझे उतना प्रिय नहीं है।'

संकीर्तनके सूर्य श्रीशंकरदेव

(लेखक—पं० श्रीराजेन्द्रजी शर्मा)

भारतीय वैष्णव संतोंकी समृद्ध परम्परामें पन्द्रहवीं शताब्दिके मध्य असममें उत्पन्न श्रीशंकरदेवका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बारहवीं शताब्दिसे ही वर्तमान नेफाके लोहित प्रभागसे लगाकर पश्चिममें उत्तरी बंगाल और पूर्वी पाकिस्तानके बीच विभाजन-रेखाका कार्य करनेवाली करतोया नदीतकका क्षेत्र, जो कामरूप नामसे जाना जाता था, शाक्त-मतका केन्द्र था। इस क्षेत्रमें कालिकापुराणकी मान्यताके अनुसार कामाख्यादेवीकी मान्यता विशेष थी। शाक्त-धर्मको राज्यकी ओरसे प्रश्रय प्राप्त था। इसके विरुद्ध आचरण करनेवाले राजद्रोही माने जाते थे। ऐसे समयमें सन् १४४९ ईसीके अक्टूबरमासमें कुसुमवराके कायस्थ-परिवारमें श्रीशंकरदेवका प्रादुर्भाव हुआ। अवढरदानी भगवान् शिवकी आराधनाके फलस्वरूप इस बालकका जन्म हुआ था; इसलिये उनका नाम शंकर रखा गया। शंकर बाल्यावस्थामें गायें चराने वनमें जाते और भगवान् कृष्णकी गौ-चारण-लीलाका ध्यान करते थे। बचपनमें ही इनके माता-पिता दोनों स्वर्गवासी हो गये थे, अतः दादीने उनका पालन-पोषण किया। बारह वर्षकी अवस्थामें उनकी पितामही सरस्वतीने उन्हें पूर्वजोंकी विद्वत्-परम्पराका उपदेश करके विद्यार्जनके लिये महेन्द्र-कन्दाली नामक पण्डितजीकी पाठशालामें भेजा। गुरुकी पाठशालामें एक दिन जब ये प्रचण्ड सूर्यकी धूपमें ही सो गये, तब सहसा गुरुने देखा कि एक विशाल सर्पने अपने फनसे शंकरपर छाया कर रखा था। तभीसे गुरुने उन्हें अद्भुत बालक मानकर शंकरदेव नामसे अभिहित किया।

शंकरदेव सचमुच अद्भुत प्रतिभासम्पन्न बालक सिद्ध हुए। उन्होने पण्डित महेन्द्रकन्दालीके सांनिध्यमें छः-सात वर्षोंकी अल्प अवधिमें ही वेद, शास्त्र, पुराण, दर्शन, मीमांसा आदिका गहन

अध्ययन किया, जिससे प्रकाण्ड पाण्डित्यका सूर्य उनके मुखमण्डलपर प्रदीप्त हो उठा। यही नहीं, शंकरदेव स्वयं संस्कृत और असमियामें काव्य-रचना भी करने लगे। इसी छात्रावस्थामें उन्होंने 'हरिश्चन्द्र-उपाख्यान'की रचना की। इन्हीं दिनों शंकरदेवने 'तत्त्व'-दर्शनकी आकाङ्क्षासे योग-साधना आरम्भ की, परंतु ज्यों ही उन्होंने 'भागवतपुराण'का श्रद्धापूर्वक मनन किया, त्यों-ही वे योगके क्षुरधाराके समान कठिन मार्गको छोड़कर भक्तिके अगाध किंतु सुखद-सरल प्रवाहमें आनन्द-विभोर होकर बह चले।

शंकरदेवने यद्यपि अपनी पितामहीका आग्रह स्वीकार कर पारिवारिक जमींदारीका काम सँभाला और सूर्यवती नामकी एक सुन्दरी कन्यासे विवाह किया, किंतु मनु या हरिप्रिया नामकी एक कन्याको जन्म देनेके पश्चात् उनकी पत्नीकी मृत्यु हो गयी। यहींसे शंकरदेवके जीवनमें सांसारिक आसक्तिका नाश होना आरम्भ हुआ।

सन् १४८१में शंकरदेव अपने पारिवारिक दायित्वका भार एकमात्र जामाता और अपने चाचाओंको सौंपकर स्वयं तीर्थयात्रा करनेके लिये उत्तर भारतमें चले गये। उस समय उनकी अवस्था बत्तीस वर्षकी थी। जगन्नाथपुरी, वाराणसी और बदरिकाश्रम आदि तीर्थोंकी यात्रा करते हुए वे भगवान् श्रीकृष्णकी उपासनासम्बन्धी काव्य-रचना करते रहे। पुरीके गोवर्धनमठके आचार्य श्रीश्रीधरस्वामीकी 'भागवत-भावार्थ-दीपिका'ने शंकरदेवपर अपना स्थायी प्रभाव डाला। बारह वर्षोंतक तीर्थ-यात्रामें पावन धामोंका दर्शन कर वे अपनी साधनाको परिपुष्ट करते रहे।

सन् १४९७ में कालिन्दी नामक कन्यासे उनका दूसरा विवाह हुआ, पर वे हार्दिक विरक्ततासे विचलित न हुए। एकान्त स्थानमें उन्होंने एक छोटा-सा मन्दिर निर्मित कराया और वहाँ नियमपूर्वक श्रीकृष्ण-का कीर्तन करने लगे। कीर्तनका आरम्भ उनके लिये नये संघर्षका श्रीगणेश करनेवाला सिद्ध हुआ। शाक्त-मतावलम्बियोंने, जो पशु-वध और नर-बलिको भी 'धर्म' का नाम देते थे, उनका तीव्र विरोध किया तथा उन्हें शास्त्रार्थके लिये चुनौती दी। तब उन्होंने समझाया—

> यथा तरोर्मूलनिषेचनेन
> तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
> प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
> तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥
> (श्रीमद्भा० ४। ३१। १४)

'जैसे मूलको सींचनेसे वृक्षके फूल-पत्ते, शाखा आदि सभी संसिक्त हो जाते हैं, उसी प्रकार अच्युत (विष्णु) भगवान्की उपासनामें सभी देवी-देवताओंकी उपासना हो जाती है।' धर्म-सम्प्रदायकी संकीर्णताओंको चुनौती देते हुए उन्होंने घोषणा की कि 'चाण्डालपर्यन्तकारी हरिभक्ति-अधिकारी।'

शाक्त-पुरोहित इनके वैष्णव भक्तिके प्रचारसे द्वेषी हो गये और उन्होंने अहोम राजा सुहूयुंग (१४९७–१५३९) के दरबारमें दावा कर दिया। इस तरह राज्याश्रय पाकर शाक्त-मतावलम्बी शंकरदेवकी संकीर्तन-प्रभा और वैष्णव भक्ति-प्रचारके कट्टर विरोधी होते गये। इस विरोधका ऐसा भीषण परिणाम हुआ कि कालान्तरमें एक अहोम राजाने शंकरदेवके एकमात्र जामाताकी हत्याका आदेश दे दिया। इस कारण कूच राजाओंसे, जो शंकरदेवके मतसे प्रभावित थे, भीषण युद्ध हुआ; किंतु अहोम राजाओंने (१५३९–१५५२) उन्हें खदेड़ दिया। इसके बाद शंकरदेव कूच-साम्राज्यमें पातबौसी नामक स्थानमें अबसे जीवनके अन्तिम अठारह-बीस वर्षोंतक वहीं रहे। यहीं उन्होंने 'रुक्मिणी-हरण', 'कालिया-दमन', 'केलि-गोपाल' और 'पारिजात-हरण' आदि प्रसिद्ध नाटकोंकी रचना की। श्रीशंकरदेवकी भक्ति-निष्ठाका इन रचनाओंमें प्रचुर प्रमाण मिलता है। वास्तवमें शंकरदेवजी इन

नाटकोंके माध्यमसे पदोंकी रचना करते थे, जिन्हें कीर्तनकी शैलीमें उन 'नाम-घरों'में गाया जाता था, जिनकी स्थापना उन्होंने गाँव-गाँवमें नाम-कीर्तन-प्रचारके उद्देश्यसे की थी। उनके 'कीर्तन-घोष' और 'भक्ति-रत्नाकर' ग्रन्थ भी यहीं रचे गये। शंकरदेवजी मुख्यतया 'श्रीमद्भागवत-महापुराण', 'श्रीमद्भगवद्गीता' और पद्म-पुराणोक्त 'विष्णु-सहस्रनाम'के अंशसे विशेष प्रभावित थे। विष्णु-अवतार श्रीकृष्णकी अनन्यभक्तिका ही उन्होंने 'एक-शरण्य' नामसे प्रचार किया। वे जीवनमें इन चार तत्त्वोंको अपनानेपर बल देते थे—(१) नाम-भगवन्नामोच्चार, (२) देव अर्थात् विष्णु-श्रीकृष्ण, (३) गुरु और (४) भक्त। उनका दृढ़ विश्वास था कि भक्तोंकी कृपासे ही भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा प्राप्त की जा सकती है। भक्तिमें भी शंकरदेव माधुर्य, सख्य अथवा वात्सल्य भावको प्रमुखता नहीं देते थे। उनका सिद्धान्त केवल 'दास्य' भावसे भगवच्चरणोंमें सम्पूर्ण समर्पण करना था। उन्हींकी भक्ति-रचना 'सोई-सोई ठाकुर'में कहा गया है—

सोई सोई ठाकुर मोइ जो हरि परकासा।
नाम धरत-रूप स्मरत ताकेरि हामु आसा॥
× × ×
कृष्ण-किंकर शंकर कह भज गोविन्द पाय।
मोहि पंडित सोहि मण्डित जो हरि गुण गाय॥

'वही केवल मेरा स्वामी है जो हरि-नाम लेता है। जो कृष्णका नाम-स्मरण करता है और उन्हींका ध्यान करता है, मैं उसका दास हूँ। श्रीकृष्णका दास 'शंकर' कहता है कि गोविन्दके चरणोंसे प्रीति कर! जो हरि-गुण गान करता है, वही पण्डित है और वही जग-भूषण है।' श्रीशंकरदेवकी अपनी अनन्यभक्ति गोपी-प्रेमके माध्यमसे अनेक पदोंमें प्रकट हुई है। यथा—

हरि विरहानल आकुल गोपिनी दरसन दिवसे न पाइ।
हरि-गुण कहि रहि प्रेमे झुरय नीर शंक एह रस गाइ॥

कीर्तन-घरोंमें वे मधुर खोल-मृदंग आदिके साथ कीर्तन-घोष करते हुए गाते थे—

कृष्ण-गुण गान्ते प्रेम उपजे। कृष्णेत मन समुदाय भजे॥
कृष्णर किङ्करे शङ्करे भणे। बोलो हरि-हरि समस्त जने॥

श्रीशंकरदेव नवधा भक्तिपर भी विशेष बल देते थे। पर उनमें भी श्रवण-कीर्तनका स्थान प्रथम था। वे विश्वासपूर्वक कहते थे कि यज्ञ, तप, तीर्थ, योगाभ्यास आदि कुछ भी साधन करो, अथवा पर्वतसे छलाँग भी क्यों न लगा दो, पर—'हरिर कीर्तन न करि तथापि नेरय मृत्युर त्रास।' हरि-कीर्तन बिना मृत्युत्राससे छुटकारा नहीं होगा। श्रीकृष्ण और भगवान् रामका नाम-संकीर्तन करनेसे समस्त पापोंका नाश हो जाता है और अनायास मुक्ति प्राप्त हो जाती है—

कृष्णर किंकरे कहे हरि-नामे पाप दहे राम-नाम सवातोअधिक॥
यिटो जन नाम स्मरे सकल पातके तरे अनायासे पावे मुकुतिक॥

कीर्तनके अन्तमें श्रीशंकरदेव दोनों हाथ ऊपर उठाकर घोषणा करते थे—

जय यदुनन्दन देवकु देव। तोहारि चरणे करहु बहुसेव॥
·· · ··· ·· ··· · कहल भाट ऊपर करि हाल—
कृष्णर किंकर ओहि शंकर बोल करु अब नर सब हरि हरि रोल॥

प्रत्येक पदके अन्तमें शंकरदेवजीने अपनेको कृष्ण-किंकर कहकर अपनी दास्यभावरूपा भक्तिको ही प्रधानता दी है। वे अनन्य गृहस्थ रहे और सन् १५६९ के सितम्बर मासमें एक सौ बीस वर्षकी लंबी आयुके पश्चात् उन्होंने अपनी इहलीलाका संवरण किया तथापि उनका नाम-संकीर्तनके अवतारी महापुरुष श्रीचैतन्य महाप्रभुसे साक्षात्कार नहीं हुआ। कुछ इतिहासकारोंने यह अवश्य स्वीकार किया है कि श्रीचैतन्य महाप्रभुके वृन्दावनवासी शिष्य रूप और सनातन श्रीशंकरदेवके सम्बन्धमें जानते थे एवं उन्हें भगवान्‌का अवतार ही स्वीकार करते थे।

हमारे युगके प्रकाण्ड दर्शन-मर्मज्ञ प्रोफेसर वासुदेवशरण अग्रवालने श्रीशंकरदेवजीके सम्बन्धमें लिखा है—'श्रीशंकरदेव ऐसे दिव्य प्रकाशमान सूर्य थे, जिनकी किरणोंसे असममें वैष्णव-भक्तिका कमल सहस्रदल होकर पूर्ण विकसित हुआ।' ऐसे उच्चकोटिके वैष्णव भक्त एवं संकीर्तन-प्रथाके निःस्पृह जनकको हमारी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित है।

ब्रह्मलीन श्रीहरिहरबाबा

(लेखक—श्रीकाशीप्रसादजी साहू)

आजकलके कलुषित वातावरणमें 'संकीर्तनाङ्क'के प्रकाशनकी नितान्त आवश्यकता है। यह ब्रह्मज्ञानका मूलस्रोत है। नाववाले अस्सीघाट काशीजीवाले महात्माजी स्व० श्रीहरिहरबाबा इसकी साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। उनके दर्शन-स्पर्शसे मेरी श्रद्धा उनमें बचपनसे ही दृढ़ हो गयी थी। उनका दर्शन मुझे सन् १९३८में हुआ, जब मैंने काशी हिंदू-विश्वविद्यालयमें विज्ञानके छात्रके रूपमें प्रवेश किया था। मै एक जिज्ञासुके नाते उनके पास जाया करता था। कई बार उनके शिष्योंके माध्यमसे मैंने कुछ जानना भी चाहा। कभी-कभी मैं सीधे ही चरणस्पर्श कर उनसे कुछ पूछ बैठता था; परंतु वे एक अनबूझ पहेलीकी तरह शान्त, गम्भीर बने बैठे रहते थे। कभी-कभी मै अनधिकार चेष्टा कर उनके चरण पकड़कर बैठ जाता और एक ही रट लगाता—'बाबा कुछ बोलिये—हमारे लिये न सही, जगत्के कल्याणके लिये बोलिये।' किंतु वे 'राम राम कहो बैठा जी भर,' जबतक मन लगे 'राम-राम कहो'; —यों कहकर शान्त हो जाते थे।

एक बार श्रीजुगलकिशोरजी बिरला उनका दर्शन करने पधारे तो उन्होंने पूछताछ की। लोगोंने बताया कि 'आज पचासों वर्ष बीत गये, बाबाजी नावपर ही रहते हैं। हम नाविक लोग प्रातःकाल नित्य-निवृत्तिके लिये इन्हें गङ्गापार ले जाते हैं। शेष समय ये इसी नावपर ही रहते हैं। आँधी, तूफान, पानीसे हम सभी मिलकर रक्षा करते हैं—पारी-पारीसे देखभाल करते हैं। शिष्य-मण्डल बाबाके एक समयके भोजनके लिये फलाहार, मिष्टान्न आदि जुटा देता है। आजतक उन्होंने कभी भी किसीसे कोई याचना नहीं की। स्वेच्छासे लोग सेवा-पूजा करते है, परंतु ये निश्चल बैठे मानसिक जप करते रहते हैं और कभी-कभी विशेष आवेशमें इनके ओंठ हिलते दिख जाते हैं। ये मितभाषी ही हैं, विशेष परिस्थितिमें 'राम राम' कहनेका आदेश देते हैं।' काशीवासियोंका विश्वास था कि ये साक्षात् बाबा विश्वनाथ हैं और राम-नामका तारक-मन्त्र प्रदान करते हैं।

श्रीबिरलाजीने दयार्द्र होकर उनके लिये नावका प्रबन्ध कर दिया, जिससे बरसात और ठंडमें भी बाबाको कोई कष्ट न हो। बाबाके शिष्योने उनसे उसे स्वीकार करनेके लिये कहा। बाबाजीने हल्की-सी मुस्कान लेते हुए उसे स्वीकार कर लिया। इसे वे प्रभु-कृपा समझकर चुप रहे। सन् १९४०की बात है—विश्वविद्यालयके कुछ विद्यार्थियोंने उनकी नावपर कुछ पत्थर आदि फेंककर उपद्रव किया। दूसरे शिष्योने उनकी शिकायत माननीय मदनमोहन मालवीयजीसे कर दी। मालवीयजीने एक सूचना निकालकर विश्वविद्यालयको बंद करा दिया और सभीको शिवाजी माउंटपर इकट्ठा होनेके लिये आदेश दिया। वहाँ उन्होंने इस कुकृत्यकी कड़े शब्दोंमें भर्त्सना की और स्वतः हरिहरबाबाके पास जाकर उनसे क्षमा-याचना की। बाबाने भारतीय सभ्यताके प्रतीक मालवीयजीके स्वतः आनेपर उन्हें बड़े प्रेमसे अपने आसनपर बराबरीसे बैठाया और कहा—

'मालवीयजी ! सही मानेमें आप जगद्गुरु हैं, मैं तो मात्र अपनी साधनाके माध्यमसे हरिनामकी अधिकतम गणना ही पूरी करके गणितानन्द ले रहा हूँ ।'

मालवीयजीने अपने अनुभवसे समझाया । राम-नामकी एक शंख गणना पूरी होनेपर यह आत्माराम मात्र रामस्वरूप हो जाता है । इसलिये शास्त्रोंमें मन्त्र-जपकी गणना अलग-अलग निरूपित की गयी है ।

बाबा सदा राम-राम-राम जपते और दर्शनार्थियों एवं भक्तगणोंको प्रेरणा देते—'राम-राम' कहो । न जाने किस क्षण यह पंछी उड़ जाय—'जनम जनम मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं ॥' ऐकान्तिक जप भी संकीर्तन-की अमर ज्योति है । यह बोलने-बतानेसे नहीं, मात्र सत्संगकी प्रेरणासे प्राप्त हो जाती है । सामूहिक संकीर्तनसे भवबाधा भाग जाती है । जहाँ-जहाँ रामायणकी कथा होती है, वहाँ-वहाँ कीर्तनके प्रेमी रामनामके रसिया हनुमान्‌जी स्वतः उपस्थित हो जाते हैं । अब हरिहरबाबा इस संसारमें नहीं है, किंतु उनका शिष्य-मण्डल अभी उनके पदचिह्नोंपर चलकर रामधुन आदिसे उसकी पूर्ति करता है ।

परमाचार्य श्रीयुगलानन्यशरणजी महाराज

(लेखक—श्रीरामलालशरणजी)

संवत् १८७५की कार्तिक शुक्ला सप्तमीको गयाके पास फल्गुनदीके तटवर्ती ईसरामपुर (इस्लामपुर) के सारस्वत ब्राह्मण-वंशमें आपका जन्म हुआ था । उपनयन एवं विद्याध्ययनके पश्चात् आप विभिन्न भाषाओंका अध्ययन करने लगे । उस समय आप नदीके किनारे किसी झाड़ीके नीचे बैठकर भगवद्-भजन-कीर्तनमें तल्लीन हो जाते, भूख-प्यास भूल जाती । बडे प्रेमसे भगवान् शंकरकी आराधना करते । आप संगीतविद्या एवं मल्लविद्यामें भी बडे निपुण थे । कहते हैं कि स्वप्नमें स्वयं भगवान् शंकरने दर्शन देकर आपको षडक्षर (रां रामाय नमः) मन्त्रराजका उपदेश किया था ।

भक्त श्रीमालीजीकी आज्ञासे आप चिराननिवासी श्रीस्वामी जीवारामजी महाराजसे संस्कार कराकर वैष्णव हुए । तबसे वे अनेक स्थानोंमें विभिन्न महापुरुषोंसे सत्संग करते रहे । अनेक तीर्थोंमें होकर वे श्रीअवधजी पहुँचे । वहाँ उन्होंने वर्षों मौन रहकर अनुष्ठान किया । सीतारामके अतिरिक्त वे किसी पाँचवें अक्षरका उच्चारण नहीं करते थे । वे एक समय जौकी दो रोटी पाकर सरयू-जलका पान करते थे । इनके आशीर्वादसे बहुतोंका सांसारिक कल्याण हुआ । आपने अनेको मन्दिर बनवाये । आपद्वारा भगवन्नामजप और संकीर्तनका उपदेश भक्तोको दिया गया । सिपाही-विद्रोहके समय इनके स्थानके पास ही छावनी स्थापित हो गयी थी ।' आपके सुयशको सुनकर फौजके कमांडरने गवर्नमेंटको लिखा और उसके फलस्वरूप निर्गलीकुण्डकी बावन बीघा जमीन सर्वदाके लिये इन्हे माफी दी गयी । रीवॉके दीवानने मन्दिर बनवाये और गाँव बसा दिया । इनके रचे हुए ८६ ग्रन्थ हैं, जो एक-से-एक बढकर है । मुमुक्षु जनोंको उनका अध्ययन करना चाहिये । आपके सदुपदेशोंसे बहुतोंका कल्याण हुआ ।

संगीत एवं संकीर्तनके आचार्य तानसेन

तानसेनका जन्म ग्वालियर राज्यके बेहट ग्राममें मकरन्द पाण्डेयके घर सन् १५३२ ई०में हुआ था। भगवान् शंकरकी उपासनाके फलस्वरूप मकरन्दको तानसेन-जैसे पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई थी। पाँच सालतक वे मूक रहे, भगवान् महेश्वरकी कृपासे उनका कण्ठ खुल गया। उनमें बाल्यावस्थासे ही संगीत और वैराग्यके प्रति निष्ठा थी। एक दिन उनके मनमें वैराग्यका उदय हुआ। वे गेरुआ वस्त्र धारण कर हाथमें माला लेकर परमात्माका नाम लेते हुए घरसे निकल पड़े। उस समय रीवाँमें महाराज रामचन्द्र राज्य करते थे। प्रातःकालका समय था। वे मधुर कण्ठसे संगीतमय संकीर्तन करते हुए राजपथपर विचरण कर रहे थे। राजाने उन्हें अपने प्रासादमें बुलाकर उनका स्वागत-सत्कार किया। वे रीवाँमें रामचन्द्रके ही साथ रहने लगे। धीरे-धीरे उनके संगीत-माधुर्यकी ख्याति देशके कोने-कोनेमें फैल गयी।

तानसेनके संगीतगुरु संगीत-सम्राट् वृन्दावनके रसिक-शिरोमणि स्वामी हरिदासजी थे। एक बार जब तानसेन थकावट और श्रमसे क्लान्त होकर वृन्दावनमें रातको किसी वृक्षके नीचे विश्राम कर रहे थे कि प्रातःकाल निधिवनसे कालिन्दी-तटपर जाते समय स्वामी हरिदासने उनपर कृपा-दृष्टि की। उनके आशीर्वादसे तानसेन महासङ्गीतज्ञ हो गये। भारतके तत्कालीन सम्राट् अकबरकी सभाके नवरत्नोंमेंसे वे एक प्रमुख रत्न घोषित किये गये। भारतके बड़े-बड़े देशपति और सामन्त उनकी कला-कारितासे धन्य होनेके लिये लालायित और उत्सुक रहा करते थे। अकबरकी राजसभामें तानसेन एक संगीत-साधककी तरह भगवद्भक्ति-सम्बन्धी पद ही विशेषरूपसे गाया करते थे। कई बार उनके साथ अकबरने व्रज आदि भक्ति-क्षेत्रोंमें आकर भगवान्‌के लीला-गायकोंके संगीत सुने थे। मेवाड़की राजरानी भक्तिमती मीराका अकबरने तानसेनके साथ ही पवित्र दर्शन कर अपने आपको कृतार्थ किया था। उन्हींके साथ अकबरने स्वामी हरिदासजीके मुखसे भी भगवद्गुण-गान सुना था।

तानसेनकी सूरदाससे घनी मित्रता थी। दोनों एक दूसरेकी हृदयसे सराहना करते थे। अपने जीवनके अन्तिम समयमें तानसेनने 'गोसाँई' विट्ठलनाथजी महाराजसे दीक्षा ले ली। एक बार वे व्रज गये हुए थे। गोसाँईजीने उनका गीत सुना और दस हजार रुपयेकी थैली पुरस्काररूपमें दी। साथ-ही-साथ एक कौड़ी भी दी। कारण पूछनेपर उन्होंने तानसेनसे कहा कि तुम बादशाहके कलाकार हो, इसलिये उचित पुरस्कार देना आवश्यक था। पर हमारे श्रीनाथजी और नवनीतप्रियके गायकोंके सामने तुम्हारा गीत एक कौड़ीका है।' गोसाँईजीकी आज्ञासे तानसेनके सामने गोविन्ददासने विष्णुपद गाया। तानसेनने गोसाँईजीसे ब्रह्मसम्बन्ध लिया, वे प्रायः व्रजमें ही रहा करते थे। एक बार वे श्रीनाथजीके सामने पद गा रहे थे। श्रीनाथजी उनके वश हो गये। व्रजेश्वरके अधरोंपर मुसकानकी ज्योत्स्ना थिरक उठी, तानसेनने सर्वस्व अर्पण कर दिया और आजीवन उन्हींकी सेवा करते रहे। भजन-कीर्तनसे वहाँका वातावरण गूँजता रहता था।

तानसेन संगीत-साधक और भक्त दोनों थे। वृन्दावनकी प्राकृतिक वासन्ती शोभासे ओतप्रोत रासरासेश्वर श्रीकृष्ण सदा उनके नेत्रोंमें झूला करते थे। उनके श्याम सदा कुञ्जधाममें वसन्त खेलते रहते थे। यद्यपि उन्होंने भगवान्‌को 'बहुनायक' पदसे विभूषित किया, तथापि उनके दर्शनके लिये वे रात-दिन तड़पा

करते थे। वे विरही चातककी तरह अपने सङ्गीतसे अपने प्राणेश्वर घनश्यामका आवाहन करके हृदयका विरह-ताप शीतल किया करते थे।

अकबरके देहावसानके बाद भी वे जहाँगीरके शासन-कालमें बहुत दिनोंतक जीवित रहे। उनकी संगीतसाधना भगवान् नन्दनन्दनके यश-कीर्तनसे कृतार्थ हो गयी।

श्रीहरिबाबाजी

(स्वामी श्रीसनातनदेवजी)

किसी भी देशकी सच्ची सम्पत्ति वहाँके संत ही होते हैं। समय-समयपर उन्हींके द्वारा पथ-भ्रष्ट लोगोंको पथ-प्रदर्शन प्राप्त होता है। वर्तमान समय बड़े संकटकी घड़ियोंका है। इस समय भोगवादका बोलबाला है। लोगोंकी मनोवृत्तियाँ अत्यधिक बहिर्मुख हो गयी हैं तथा सम्पूर्ण जगत् नास्तिकताकी ओर अग्रसर हो रहा है। ऐसे समय यज्ञ, तप, संयम आदि आयास-साध्य साधनोंकी ओर लोगोंकी प्रवृत्तिका होना कठिन है। अतः शास्त्रोंमें कलियुगमें प्रधानतया भगवन्नामका आश्रय लेनेका विधान है।

विगत शताब्दियोंमें कई महापुरुषोंने इस कीर्तन-भक्तिका प्रचार किया है। उनमें भी नदियामें उत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यका नाम विशेष उल्लेख्य है। इनका आविर्भाव आजसे प्रायः चार सौ वर्ष पूर्व बंगदेशमें हुआ था। इसी प्रकार महाराष्ट्रमें श्रीतुकाराम, नामदेव और समर्थ गुरु रामदासजीने श्रीभगवन्नामकी सुरसरिता प्रवाहित की। यह सब होते हुए भी उत्तर भारतमें इस संकीर्तन-साधनका विशेष प्रचार नहीं हुआ था। आजसे पचास-साठ वर्ष पूर्व गालको छोड़ उत्तर-प्रदेशके वृन्दावन, अयोध्या, काशी और चित्रकूट आदि कुछ तीर्थस्थानोंमें ही इसकी झाँकी होती थी। अतः भगवदिच्छासे जिन महापुरुषोंने वर्तमान समयमें इस साधनकी प्रतिष्ठा की, उनमें श्रीहरिबाबाजी महाराजका नाम विशेष उल्लेख्य है। आपका जीवन और प्रचार-पद्धति बहुत कुछ श्रीमन्महाप्रभुके ही अनुरूप थी।

आपका आविर्भाव जिला होशियारपुर (पंजाब) के एक सिखधर्मानुयायी अहलूवाल परिवारमें हुआ था। ये लोग अच्छे धनधान्यसम्पन्न और साधुसेवी थे तथा गन्धवाल गाँवके रहनेवाले थे। इनके पिता सरदार प्रतापसिंहजी महँगरवाल गाँवके पटवारी थे। वहीं फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी सं० १९४१ विक्रमीको आपका जन्म हुआ। आपका नाम दीवानसिंह था। कहते हैं, इनके जन्मके समय आकाशसे श्रीरघुनाथजीकी एक मूर्ति गिरी थी। इनके चौथे भाई श्रीहीरासिंहजी बड़े धार्मिक प्रवृत्तिके सज्जन थे। वे एक हाईस्कूलमें प्रधानाध्यापक थे और बड़े ही नियमनिष्ठ और संयमी थे। बाल्य-कालमें इनके चरित्रनिर्माणमें उन्हींका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। जब वे गर्भमें थे, तभी इनके माता-पिताको स्वप्नमें दिव्य तेज और श्रीरघुनाथजीके दर्शन होते थे। बचपनमें ये बड़े ही संकोची और सरल स्वभावके थे। उसी समय लोग कहते थे कि ये सरदारजीके घरमें कोई महापुरुष ही प्रकट हुए हैं।

इनके भाई श्रीहीरासिंहजीके गुरु स्वामी श्रीसच्चिदानन्दजी थे। इन्हें चार वर्षकी आयुमें उनके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। पिताजीके कहनेपर इन्होंने उन्हें प्रणाम किया और अत्यन्त समाहित होकर ये उनके सामने बैठ गये। इनकी ऐसी स्थिति देखकर गुरुदेवने इन्हें गोदमें उठा लिया और शुभाशीर्वाद दिया। गुरुदेव पूर्ण तत्त्वज्ञ और समाधिनिष्ठ महापुरुष थे। आप अपने भावी जीवनमें भी अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उनका स्मरण करते थे।

आपकी प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा होशियारपुरमें ही हुई। पढ़ने-लिखनेमें आप बड़े कुशाग्रबुद्धि थे। उच्च शिक्षाके लिये आप लाहौरके मेडिकल कालेजमें भर्ती हो गये। आपको वयस्क देखकर माता-पिताने विवाहबन्धनमें बाँधनेका विचार किया। विशेष आग्रह करनेपर आपने स्पष्ट कह दिया कि आपलोग मुझे छोड़ दें। मैं आपके घरमें रहनेके लिये नहीं आया हूँ। मुझसे फिर इस विषयमें चर्चा की तो मेरे प्राण निकल जायँगे। ऐसा कहते-कहते आप मूर्च्छित हो गये। फिर किसीने इस विषयमें आपसे कुछ नहीं कहा।

अब मेडिकल कालेजका पाठनक्रम समाप्त होनेमें केवल एक वर्ष रह गया था, परंतु आपको डाक्टर तो बनना नहीं था, अतः डिग्रीकी परवाह न कर आपने कालेज छोड़ दिया और गुरुदेवके पास आश्रममें चले आये। यहाँ निरन्तर रहकर आश्रम और गुरुदेवकी सेवा करने लगे। कई बार गुरुदेवसे संन्यासदीक्षाके लिये प्रार्थना की, परंतु उन्होंने स्पष्ट निषेध करते हुए कहा कि हम किसीको साधु नहीं बनाते। जब समय आयेगा, तब तुम स्वयं साधु हो जाओगे।

आप बड़ी लगन और तत्परतासे गुरुदेवकी सेवामें संलग्न रहे। इससे स्वतः ही उनका अनुभव आपके हृदयमें उतर आया। आश्रममें प्रवृत्तिका वातावरण था। वह आपको असह्य हो गया। अतः एक दिन किसीसे भी कहे बिना आप वहाँसे चल दिये और रेलद्वारा काशी चले आये। यहाँ पहले तो हिंदू कालेजमें बी०ए०-में भर्ती होकर पढ़ने लगे, परंतु वैराग्यकी ज्वालाने यह क्रम अधिक दिन नहीं चलने दिया। आपने अपना सब सामान दीन-दुःखियोंको बाँट दिया और स्वयं ही कपड़े रँगकर संन्यास ले लिया।

अब आप भिक्षावृत्तिसे जीवन-निर्वाह करने लगे। काशीकी परिक्रमामें शूलटंकेश्वर नामक एक एकान्त स्थान है, वहीं रहकर ये ध्यानाभ्यास करते थे और किसीसे भी मिलते-जुलते नहीं थे। रुपये-पैसेका भी स्पर्श नहीं करते थे, परंतु इस अवस्थामें भी आपका चित्त बड़ा पर-दुःखकातर था। एक बार एक अत्यन्त रोगी व्यक्तिने आपके पास आकर अपना दुःख रोया और हरिद्वार जानेकी इच्छा व्यक्त की, परंतु पासमें पैसा न होनेके कारण वह जा नहीं सकता था, तब उसके दुःखसे आतुर होकर आप भिक्षाके समय ही उसके लिये एक झोलीमें जो मिला वह ले आये और झोलीसमेत वे पैसे उसे दे दिये। संयोगसे वे उतने ही पैसे थे जितनोंकी उसे आवश्यकता थी।

आप चौबीस घंटोंमें केवल एक ही बार भिक्षा ग्रहण करते थे। फिर एक दिन छोड़कर करने लगे। कुछ दिन इस वृत्तिसे शूलटंकेश्वरमें रहकर आप गङ्गा-किनारे पश्चिमकी ओर चलने लगे। कुछ दिन प्रयागमें रहे, फिर द्रौपदी-घाटपर चले आये। यहाँ एक वृद्ध बंगाली बाबाका आश्रम था। महात्मा बड़े अनुभवी तत्त्वज्ञ और विरक्त थे। आपको यह स्थान बहुत प्रिय लगा, अतः ये वहाँ गङ्गातटपर एक गुफामें रहने लगे। महात्माजीकी अनुमतिसे आप एक दिन मधुकरी भिक्षा ले आते थे, उस दिन पूरा भोजन करते थे, फिर छः दिनके लिये छः रोटी कपड़ेमें लपेटकर जमीनमें गाड़ देते थे। उनमेंसे प्रतिदिन एक रोटी निकालकर खा लेते थे। इस चर्यासे आप तीन सालतक उस गुफामें रहे। उन दिनों आप अधिकतर उन्मनी-अवस्थामें ही रहते थे। आपकी अवस्था जडोन्मत्त-पिशाचवत् थी। शरीर बहुत कृश हो गया था। आपकी ऐसी अवस्था देखकर बंगाली बाबाको आपके प्रति बड़ी श्रद्धा हुई। आस-पाससे अनेकों लोग दर्शनोंके लिये आने लगे। अधिक भीड़-भाड़ होते देख आप एक दिन वहाँसे चुपकेसे चल दिये और पैदल ही अपने गुरुदेवके आश्रममें होशियारपुर चले आये। आपने

गुरुदेवकी अनुमति लिये बिना ही संन्यास ले लिया था, इसलिये उनके सामने जानेमें बड़ा संकोच होता था। जैसे-तैसे साहस कर रात्रिके समय उन्होंने आश्रममें प्रवेश किया और गुरुदेवके चरणोंमें प्रणाम कर वे रोने लगे। तब किसी व्यक्तिने उन्हें बताया कि ये दीवानसिंह हैं और अब इन्होंने संन्यास ले लिया है। इसपर गुरुदेवने सब वृत्तान्त पूछा और फिर आशीर्वाद देते हुए कहा—'तुम स्वयं ही संन्यासी हुए हो, इसलिये तुम्हारा नाम 'स्वतःप्रकाश' होगा।'

आपका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था, इसलिये गुरुदेवने युक्ताहार-विहार रखते हुए साधन करनेका आदेश दिया। आप मनोयोगसे गुरुदेवकी सेवामें संलग्न हो गये। आपसे मिलनेके लिये माता-पिता और अन्य सगे-सम्बन्धी भी आये और पुनः गृहस्थ-वेषमें रहकर भजन करनेका आग्रह करने लगे, परंतु आपने समाधान करके सबको शान्त कर दिया।

कुछ दिन आश्रममें रहनेपर आप वहाँकी प्रवृत्तिसे भी उपराम-से हो गये, अतः वहाँसे चलकर वे कई स्थानोंमें ठहरते हुए गङ्गातटपर राजघाट चले आये। फिर वहाँसे पैदल चलकर भृगुक्षेत्र पहुँचे, जो राजघाट स्टेशनसे प्रायः आठ मील दूर है। यह स्थान उस समय साक्षात् ऋषि-आश्रम ही था। बंगाली बाबा श्रीरामानन्दजी वहाँके प्रमुख संत थे। वे बडे निष्ठावान्, विद्वान् और विरक्त महात्मा थे। स्वामी श्रीशास्त्रानन्दजी उनकी सेवामें रहते थे। समय-समयपर अनेक भक्त उनके दर्शनार्थ आते रहते थे। दैवयोगसे इसी समय वहाँ पूर्वसे पैदल विचरते हुए श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज भी पहुँचे। श्रीशास्त्रानन्दजी तो वहाँ थे ही। अतः इस संतस्वरूप त्रिवेणीका यह अद्भुत समागम हुआ। आगे चलकर इनका पारस्परिक प्रेमसम्बन्ध बहुत घनिष्ट हो गया।

भृगुक्षेत्रकी संतमण्डलीमें श्रीअच्युत मुनिजी भी थे। वे उच्चकोटिके विद्वान् होनेके साथ बड़े मस्त विरक्त और बालोचित सख्यभावके महात्मा थे। वेदान्त-ग्रन्थोंकी व्याख्या करनेकी उनकी शैली बड़ी सरल और सुबोध थी। उस प्रान्तके कई संन्यासी उनसे पञ्चदशी, उपनिषद् और शांकरभाष्य आदि वेदान्त-ग्रन्थ पढ़ा करते थे। उनके साथ आप भी वेदान्त श्रवण करने लगे। उन्हीं दिनों श्रीअच्युत मुनिजीने वर्धा जाना स्वीकार कर लिया और आपको साथ ले जानेकी इच्छा प्रकट की। अतः आप उनके साथ वर्धा चले गये। वहाँ प्रातःकाल नियमानुसार आपका वेदान्त-ग्रन्थोका पाठ चलता था, परंतु सायंकालका कोई निश्चित कार्यक्रम न था। खोजनेपर आपको ज्ञात हुआ कि वहाँ हनूमानगढ़ी नामका एक स्थान है, उसमें समर्थ गुरु रामदासके समयसे ही परम्परागत **'श्रीराम जय राम जय जय राम'**—इस महामन्त्रका कीर्तन होता है। श्रीपरांजपेजी वहाँके अधिष्ठाता हैं। ये बड़े विद्वान् और भगवद्भक्त महानुभाव हैं। आप नित्यप्रति वहाँ जाने और बड़े मनोयोगसे भगवन्नाम श्रवण करने लगे। भगवदिच्छासे यह क्रम आपके जीवनका परिवर्तनबिन्दु सिद्ध हुआ। संकीर्तनके श्रवण-से आपको बडे आनन्दका अनुभव हुआ। आप उसमें तन्मय हो गये और आपके शरीरमें समय-समयपर सात्त्विक भावोंका उन्मेष होने लगा। आपने अपनेको सँभालनेका बहुत प्रयत्न किया, परंतु नाम-नरेशने आपके हृदयपर अधिकार कर लिया। आपके हृदयको भाव-तरंगें उथल-पुथल करने लगीं। यह क्रम कुछ दिनोतक चला। अन्ततः एक दिन हृदयका छिपा हुआ भावोद्रेक प्रकट हो गया। एक साथ ही अश्रु, पुलक, स्तब्धता, स्वेद, कम्प, वैवर्ण्य, स्वरभंग और मूर्छा—इन आठो भावोंका उद्रेक हुआ। आप बड़े उच्चस्वरसे मेघ-गम्भीर नाद करते हुए हुंकार करने

लगे । अन्तमें भगवदीय आवेशमें भगवान्‌के सिंहासन-पर जा बैठे । उस समय आपमें श्रीमन्महाप्रभुजीकी महाप्रकाश-लीलाका आवेश हो गया । उस समय भक्तों-ने आरती उतारी, भोग लगाया तथा वे खोल-करताल बजाते हुए आपके सामने संकीर्तन करने लगे । आनन्द-का बाजार-सा लग गया । इस प्रकार वह सारी रात बीत गयी । प्रातःकाल अकस्मात् हुंकार करके आप पृथ्वीपर गिर पड़े, तब अनेकों उपचार करनेपर सचेत हुए ।

इस प्रकार आपका भाव-परिवर्तन हुआ । आपके अन्तरात्मामें जो 'सोऽहम्' भाव था, वह 'दासोऽहम्' के रूपमें परिणत हो गया । निर्गुण ब्रह्मके स्थानमें अब सगुण ब्रह्मका अवतरण हुआ । यद्यपि स्वरूपदृष्टिसे अब भी आपमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ था, तथापि अब जीवनमें पूर्णतया भक्तिभावका आविर्भाव हो गया । ऐसी स्थिति देखकर श्रीपरांजपेजीने आपको श्रीशिशिर-कुमार घोषद्वारा विरचित 'लार्ड गौराङ्ग' नामकी पुस्तक दी । इस ग्रन्थमें आपको अपने इष्टदेवके दर्शन हुए । श्रीगौराङ्गदेवमें आपकी इष्ट-बुद्धि हो गयी और भगवन्नाम-संकीर्तन ही आपका हृदयसर्वस्व हो गया । इस प्रकार आपके जीवनमें स्पष्टतया प्रेमा-भक्ति प्रवाहित होने लगी । सचमुच श्रीभगवान्‌के अचिन्त्य गुणोंका ऐसा ही प्रभाव है । आत्माराम मुनि भी उन गुणोंसे आकृष्ट होकर उनकी अहैतुकी भक्ति करने लगते हैं । कहा भी है—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था ह्यप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ॥

इस भावका आविर्भाव होनेपर आपका वेदान्ताध्ययन सर्वथा छूट गया और साथ ही श्रीअच्युतमुनिजीका सहवास भी जाता रहा । आप अमरकण्टक आदि कई स्थानोंमें भ्रमण करते हुए पुनः गाँवमें श्रीहीरालालजीके पास चले आये । वहाँ रहकर आप भगवत्कथा और भगवन्नामकीर्तन करने लगे । नामप्रचारकी भी आपकी अद्भुत शैली थी । आप हर समय भावाविष्ट रहते थे । मार्गमें कोई सामान्य व्यक्ति यदि बोझा लिये जाता होता तो आप उसका बोझा स्वयं ले लेते और उससे हरि-हरि नाम कीर्तन किया करते । इसका कुछ ऐसा प्रभाव पड़ता कि हरिनाम उसकी रसनापर अधिकार कर लेता । इस हरिनामने 'हरिबाबा' नामसे आपकी प्रसिद्धि कर दी । अब वेदान्त-विचारकी तरह आपका 'स्वतःप्रकाश' नाम भी आपमें ही लीन हो गया । धीरे-धीरे भक्तोंकी टोली बढ़ी और घंटों हरिनाम-संकीर्तन होने लगा । इन दिनों आप छः-छः घंटे तक उद्दाम-भावसे भगवन्नाम-कीर्तन करते रहते थे । कभी-कभी भक्तोंके साथ मिलकर भगवल्लीलाओंका अभिनय भी होता था । उसमें कोई वेश-भूषाका परिवर्तन नहीं किया जाता था, केवल भावाविष्ट होकर ही सब खेल होता था । अस्तु !

अब उस प्रान्तमें सब ओर नाम-संकीर्तनकी धूम मच गयी । भोले-भाले ग्रामीण लोग अपना सामान्य कार्य करते हुए भी नाम-कीर्तन करते रहते थे । अनेकों चमत्कार भी हुए और लोगोंपर आपका बड़ा प्रभाव जम गया । उन दिनों आपके एक भक्त लाला कुन्दनलालका पौत्र रामेश्वर बहुत बीमार था । उसे अपस्मार (मृगी)का रोग था, हिस्टीरियाके-से दौरे पड़ते थे । उस समय हृदयकी धड़कन बहुत बढ़ जाती थी । पैर काम नहीं करते थे । उनमें रक्तसंचार प्रायः बंद हो जाता था । बहुत दवा करायी, परंतु कोई लाभ नहीं हुआ । अन्तमें आपसे प्रार्थना की गयी । आप बंगाली स्वामी श्रीकृष्णानन्दजीसे परामर्श करके उसके स्वास्थ्य-लाभके लिये भगवन्नाम-संकीर्तन करने लगे । रामेश्वरके अभिभावकोंपर आर्य-समाजका प्रभाव था, इसलिये इस उपचारमें उनकी पूरी श्रद्धा नहीं थी । अतः तीन महीनेतक नित्यप्रति नियमित संकीर्तन होने-पर भी उसे कोई लाभ नहीं हुआ ।

वहाँ लाभ होता न देखकर आप भक्तवृन्दके साथ रामेश्वरको अनूपशहर ले आये। वहाँ बड़े उत्साहसे संकीर्तन होने लगा। एक दिन सब लोग बडे आवेशमें थे। उस समय खूबीराम नामका एक भक्त झपटकर रामेश्वरके पास पहुँचा और बोला—'हमारे भगवान् तो कीर्तनमें नृत्य कर रहे हैं और तू आरामकुर्सीपर पड़ा है। तू बड़ा रईसका बच्चा है। खड़ा हो।' ऐसा कहकर उसके दो चपत लगाये और खड़ा कर दिया। इस समय मानो कोई शक्ति आपमेंसे निकलकर रामेश्वरमें प्रविष्ट हो गयी और वह उन्मत्त भावसे नृत्य करने लगा। उसका रोग उसी समय न जाने कहाँ चला गया। इस अद्भुत चमत्कारको देखकर सब लोग मन्त्रमुग्ध हो गये।

इस चमत्कारसे उस प्रान्तमें आपके प्रति लोगोंकी श्रद्धा बढ़ गयी। इन्हीं दिनों एक और लीला हो गयी। यह बात सन् १९२२ के पौषमासकी है। गाँवके पास गङ्गाजीका खादर है और महेवा नामकी एक छोटी नदी है। वर्षा ऋतुमें गङ्गाजीमें बाढ आनेपर दोनों नदियाँ मिलकर एक हो जाती थीं। आस-पासके सैकड़ों गाँवोंमें पानी भर जाता था। इससे धन-जनकी बड़ी हानि होती थी। लोगोंकी ऐसी विपत्ति देखकर आपके करुणार्द्र चित्तको बड़ा खेद हुआ और आपने वहाँ गङ्गाजीके किनारे बाँध बनानेका संकल्प कर लिया। ग्रामीण जनताका पूर्ण सहयोग मिला। आस-पाससे आर्थिक सहायता भी भरपूर मिली। आपने घोषणा कर दी कि आगामी रामनवमीतक मिट्टीका काम पूरा हो जाना चाहिये। सबलोग तन-मनसे लग गये। सब काम संकीर्तन करते हुए ही होते थे। भगवन्नामके साथ ही मिट्टीकी प्रत्येक टोकरी डाली जाती थी। अनेक चमत्कार हुए। मिट्टी डालनेसे अनेक लोगोंकी कामनाएँ पूरी हुईं। अब चैत्र शुक्ला अष्टमी आ गयी। आपने निरीक्षण किया तो एक स्थानपर कुछ काम रह गया था। बस, आप कुदाल और टोकरी लेकर मिट्टी डालनेमें जुट गये। लोगोंसे कह दिया कि अब मै तो यहाँ मिट्टी डालते हुए ही प्राण त्याग दूँगा। अब क्या था, आस-पासके गाँवोंसे हजारों लोग आकर इस काममें जुट गये। एक आँधी-सी आ गयी और उसी समय वह काम पूरा हो गया। ऐसा था आपका अपूर्व उत्साह और अद्भुत अध्यवसाय। तीन-चार महीनोंके भीतर प्रायः बीस मील लम्बा बाँध बँध जाना एक आश्चर्य ही था।

श्रीमन्महाप्रभुजी आपके इष्टदेव थे। होलीके दिन उनका आविर्भाव हुआ था। अतः बाँध बँध जानेपर वहाँ होलीके अवसरपर प्रतिवर्ष उनके जन्म-उत्सवका आयोजन होने लगा। इन उत्सवोंमें अखण्ड नाम-संकीर्तन, श्रीरासलीला और अनेक महापुरुषोंके दर्शन एवं प्रवचन आदिका कार्यक्रम रहता था। श्रीभगवन्नाम-कीर्तन तो आपका जीवन-सर्वस्व था ही। आपका संकीर्तन बड़ी धूम-धामसे होता था। जिसमें श्रीराम-नामका उद्घोष होता था। उसके पश्चात् कीर्तनीय नामोंकी आवृत्ति होती थी। सभी लोग झाँझ, मृदंग, हारमोनियम, तबला और नक्कारे आदि अनेक वाद्योंके घोषके साथ भलीभाँति समरस होकर बड़ी तन्मयतासे उछलते-कूदते संकीर्तन करते थे। आप सबके बीचमें घंटा बजाकर चक्कर काटते हुए सबमें शक्ति-संचार करते थे। इस समय लोगोंको भावावेश, दिव्य दर्शन और अनेकों चमत्कार होते थे। आपके आश्रमोंमें अब भी इसी पद्धतिसे प्रायः साय-सकीर्तन करनेका क्रम विद्यमान है।

रासलीलामें आप ठाकुरजीके सिंहासनके पीछे खड़े रहकर चँवर या पंखा डुलाया करते थे। आपकी दृष्टि उस समय भी नीचेकी ओर ही रहा करती थी। चलने-फिरने और उठने-बैठनेके समय भी आप सर्वथा अधोदृष्टि ही रहते थे। सिर उठाकर देखते हुए तो उन्हें क्वचित् ही किसीने देखा होगा। भगवल्लीलामें जैसा भाव आपकी संनिधिमें रहता था, वैसा अन्यत्र नहीं देखा गया।

पूज्य बाबाजीकी संनिधिमें विविध स्थानोंमें जितने उत्सव हुए उनकी गणना करना प्रायः असम्भव है। यों तो जहाँ-कहीं वे रहते थे, वहाँ उक्त तीनों कार्यक्रम नित्य ही चलते रहते थे; परंतु उत्सवोंमें इनका विशेष आयोजन होता था। इस भारी धूमधाम और विशेष जनसमूहके रहनेपर भी आप सर्वथा असंग ही रहते थे। आपकी संनिधि और संकेतसे आपके भक्तलोग ही सब प्रकारकी व्यवस्था करते थे। इन कार्यक्रमोंमें समयका पूरा निर्वाह किया जाता था। समयको तो आप साक्षात् भगवान्का स्वरूप ही मानते थे। उसका व्यतिक्रम आपको सह्य नहीं था।

जीवनमें आपका सम्पर्क तो अनेक संतों और महापुरुषोंसे हुआ, परंतु श्रीउड़ियाबाबाजी और माँ श्रीआनन्दमयीजीसे आपकी अत्यधिक घनिष्ठता थी। इनके बिना तो आपका कोई उत्सव ही न होता था। सन् १९७० ई०के श्रावण माससे आपका शरीर अस्वस्थ रहने लगा। दिनाङ्क १ जनवरी १९७१ ई० को आपने माँ आनन्दमयीके साथ काशीके लिये प्रस्थान किया; परंतु इस यात्राका आपके शरीरपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। आप अर्धमूर्च्छित अवस्थामें जैसे-तैसे काशी पहुँचे। दिनभर ही ऐसी स्थिति रही और रात्रिमें २ जनवरीको १ बजकर ४० मिनटपर यह दिव्य-ज्योति अपने स्वरूपमें लीन हो गयी।

नामनिष्ठ संत श्रीप्रेमभिक्षुजी महाराज और संकीर्तन-महिमा

(लेखक—श्रीगोविन्दभाई अेन० भातेलीया)

भारतवर्षकी धरा युग-युगान्तरसे संत-महात्माओंसे विभूषित होती आयी है। ऐसे अनेक संतोंमें श्रीराम-नामके अमित प्रभावको चरितार्थ करनेवाले एक प्रेमावतार संत हो गये हैं, जिनका नाम श्रीप्रेमभिक्षुजी महाराज था। वे अपने जीवनमें प्रतिक्षण 'श्रीराम जय राम जय जय राम'का संकीर्तन करते थे और दूसरोंको इसके लिये प्रेरणा देते थे।

आविर्भाव—श्रीप्रेमभिक्षुजीका जन्म बिहार प्रान्तके सीतामढ़ी जिलेमें छितौनी गाँवमें हुआ था। इनकी जन्मतिथिका निश्चित प्रमाण तो उपलब्ध नहीं है, किंतु मैट्रिकके प्रमाणपत्रके आधारपर सन् १९१७ ई० माना जा सकता है; क्योंकि उनके ब्रह्मलीन होनेकी तिथि २६-४-१९७० है और उस समय उनकी आयु ५२ वर्षकी थी।

इनके पिताका नाम दिनकर तथा माताका नाम राजमतीदेवी था। माता राजमतीदेवीने मानवजातिको ऐसे पुत्र-रत्नकी भेंट देकर अपना मातृत्व चरितार्थ कर दिखाया; क्योंकि गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुबर भगत जासु सुत होई॥

ऐसी ही उक्ति गुजराती कवि भक्त नरसिंह मेहताकी भी है—

'वाच काछ मन निश्चल राखे धन धन जननी तेनी रे'

माताके जीवनकी इससे विशिष्ट धन्यता और क्या हो सकती है! इनके बचपनका नाम गयाप्रसादसिंह था। इनके दो भाई और थे। बड़े भाई गंगासिंह थे, जो दस वर्षकी आयुमें ही इस दुनियाको त्यागकर चल बसे। दूसरे रामनेकसिंहजी थे, जो ईश्वरकृपासे अभी विद्यमान हैं। इस परिवारका परम्परागत व्यवसाय खेती है। सम्भवतः उसी खेतीने गयाप्रसादसिंहको 'खेती करो हरिनामकी मनवा' की प्रेरणा दी होगी। इनके माता-पिता अध्यात्मपरायण थे, अतः उनके घर संतोंका आना-जाना लगा रहता था। उन्हीं संतोंके समागमके वातावरणसे इनके मानसमें भक्तिकी ज्योति प्रकट हुई।

शिक्षण-साधना और जीवन-संघर्ष—सर्वप्रथम गयाप्रसादसिंह छितौनी गाँवकी पाठशालामें भर्ती हुए। बादमें मिडल स्कूलकी शिक्षा प्राप्तकर इन्होंने मुजफ्फरपुरमें मारवाड़ी स्कूलमें सन् १९३४ ई०में एम्० एस्-सी० की परीक्षा द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण की। इन्हें कबड्डी, फुटबाल और कुश्तीका शौक था। इन्होने महात्मा गाँधीके स्वतन्त्रता-संग्राममें भी भाग लिया था।

पुनः ये मुजफ्फरपुरमें ग्रेट भूमिहार-ब्राह्मण कालेजमें आर्ट्सके विद्यार्थीके रूपमें प्रविष्ट हुए। इनकी कालेजमें पढ़नेकी तीव्र इच्छा थी, किंतु इनके चाचा राय इकबाल-सिंहकी इच्छा इन्हें आगे पढ़ानेकी नहीं थी। अतः इन्हें घरकी ओरसे पूरी सहायता नहीं मिलती थी। ऐसी स्थितिमें इन्होने ट्यूशनका सहारा लिया और सन् १९३७ ई०में इंटरकी परीक्षा द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण की।

इसके बाद ये उत्तरप्रदेशकी करन्दिा शुगर मिलमें लिपिक हुए। दो वर्षके बाद ये वहाँसे चले आये और आजीविकाके लिये पुनः इन्होंने ट्यूशनकी शरण ली। पुनः ये मुजफ्फरपुरकी अवेदा उच्चांगल विद्यालयमें संस्कृतके प्राध्यापक हुए, किंतु प्रतिकूलता होनेके कारण इन्होंने वहाँसे त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद इन्होंने असिस्टेन्ट सब इन्सपेक्टरका स्थान सँभाला; किंतु वह भी इनके अनुकूल नहीं पड़ा, अतः त्यागपत्र दे दिया। अन्तमें इन्होंने बी०ए०की परीक्षा पास की।

गृहस्थाश्रम और गुरुदेव—यद्यपि इनकी सांसारिक जालमें बँधनेकी तनिक भी इच्छा नहीं थी, तथापि मातृत्व-प्रेमने इन्हें विवश करके इस बन्धनसे जकड़ दिया और इनका विवाह शिवबच्चीदेवीके साथ सम्पन्न हो गया। दूसरी ओर सन् १९४१ में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। इन्होंने पूज्य काश्मीरीबाबासे दीक्षा ग्रहण कर ली। गुरुदर्शनसे इन्हे अनिर्वचनीय आनन्दका विलक्षण अनुभव हुआ।

अन्तर्व्यथा और गृहत्याग—जीवनका असीम सत्य समझनेसे गयाप्रसादका चित्त संसारसे ऊब गया। इससे इनका अनासक्ति-योग बढ़ता जा रहा था। इसलिये पुत्रको संसार-त्यागकी सम्मति देकर माता राजमतीदेवीने नारीका उदात्त और भव्य स्वरूप प्रकट कर दिया। उस समय इनके पुत्र कामेश्वरकी आयु तीन-चार वर्षकी थी। सन् १९४४ ई० में गयाप्रसादजीने परिवारको ईश्वर-चरणोंमें रखकर प्रेयकी पगडंडी छोड़ दी और 'प्रेमभिक्षु' बननेके लिये श्रेयके पथपर मङ्गल प्रयाण कर दिया।

सत्य शिष्यत्वकी ओर—पूज्य प्रेमभिक्षुजीने चार वर्ष-तक भारतवर्षमें तीर्थाटन किया और संसारी लोगोंको भव-रोगकी एकमात्र दवा रामनाम-संकीर्तनका आश्रय लेनेकी प्रेरणा दी। इनकी प्रेरणासे लोगोंमें रामनामकी धूम मच गयी। ईर्ष्या-द्वेषके वातावरणके बाहर आकर इन्होंने लोगोंको रामनाम-जपमें लगा दिया। बाबाका

वैराग्य बढ़ता गया। इन्होंने नामसंकीर्तनकी महिमा जगायी। बाबाकी कीर्तन-धारा—'श्रीराम जय राम जय जय राम' भावधाराकी तरह बह चली। बिहारमें रामायणका नवाह्न पारायण हुआ। इसके बाद ये कलकत्ता गये। वहाँ भी इनकी 'श्रीराम जय राम जय जय राम'—इस विजयमन्त्रकी घोषणा और भावसमाधि बढ़ती गयी। तत्पश्चात् पू० बाबा बम्बई (काँदीवाली) आये और वहाँसे सौराष्ट्रकी ओर चल पड़े।

सौराष्ट्रमें संकीर्तन—एक दिन बाबा श्रीकृष्णकी द्वारकामें गये। वहाँ संत और भगवान्‌की आँखें मिलीं और सौराष्ट्रको कर्मभूमि बनानेका मानो इन्हें संकेत मिल गया। श्रीद्वारकाधीशजीके मन्दिरमें ही 'श्रीराम जय राम जय जय राम' संकीर्तनका प्रारम्भ हुआ और गली-गलीमें इस विजयमन्त्रका जयघोष होने लगा। वहाँ संकीर्तन करते-करते पू०बाबाजी दिव्य भाव-समाधिमें घंटों पड़े रहते थे। पू०बाबाकी नाम-निष्ठा और प्रेरणाके फलस्वरूप आज सौराष्ट्रमें जामनगरमें इक्कीस, पोरबंदरमें अठारह और द्वारकामें सतरह सालसे अखण्ड संकीर्तन विश्वकल्याण-की भावनासे चल रहा है, जो एक विश्व-विक्रम है।

पूज्य बाबाके देहोत्सर्गके बाद भी इनका नाम-संकीर्तन-प्रचार-कार्य अविरत चालू है। बिहारमें मुजफ्फरपुरमें नौ वर्षसे 'श्रीराम जय राम जय जय राम'का अखण्ड संकीर्तन चल रहा है। राजकोटमें सात लाख रुपयेसे नये संकीर्तन-मन्दिरका निर्माण हुआ है, जहाँ दिनाङ्क १९-४-१९८४ से अखण्ड संकीर्तन चालू है। प्रभु-कृपासे और पूज्य बाबाकी प्रेरणासे श्रीबेटशंखोद्धारमें, हनुमानदाँडीमें और जूनागढमें संकीर्तन-मन्दिरके निर्माण करनेकी तैयारी चल रही है, जो विशेष आनन्दकी बात है।

पू०बाबाके अनुष्ठान-पर्व—इनका सर्वप्रथम ऐति-हासिक अनुष्ठान जामनगरमें हुआ। बादमें जो मुख्य अनुष्ठान हुए वे इस प्रकार हैं—

(१) बेटद्वारका—१३ मासका काष्ठ-मौन अनुष्ठान १३ करोड़ विजयमन्त्र अर्पण करनेके संकल्पके साथ (तारीख १०-६-५४ से १०-७-५५)।

(२) पोरबंदर (सुकाला तालाब) १०८ दिनका अनुष्ठान (तारीख १-९-५९ से २०-१२-५९)।

(३) पोरबंदर (शेठ नरशी मेघजी वंडी) ४७ दिनका अनुष्ठान (तारीख १०-१०-६१ से २६-११-६१)।

जीवन-संदेश—बाबाके मुख्य संदेश ये हैं—'नाम जपते रहो, काम करते रहो।' रामनाम पथ्य रूप है, मोक्ष और परमपदकी प्राप्तिका साधन है, सज्जनोंका जीवन है और हृदयकी शान्तिका कारण है। इस कलियुगमें भगवत्-साक्षात्कारके लिये श्रीरामनाम-संकीर्तन ही सर्वाधिक सरल और सबल साधन है।

गुन गुपाल गाव रे !

(रचयिता—श्रीराधाकृष्णजी श्रोत्रिय 'साँवरा')

साँचौ गिरिधरन लाल, झूठो सब जगत जाल,
तासों तजि मोहमाल गुन गोपाल गाव रे।
दरसन त्रय-ताप-हरन, विरद-बानि ठाँनि परन,
नीरद नवनील बरन, सीधो सौ सुभाव रे॥
सुन्दर सोभित दुकूल, प्रफुलित मुख-कमल फूल,
काटत भव-द्वन्द्व-मूल, नाम लेत बावरे।
सिगरे बृजको सिंगार, गोप-गोपिका अधार,
जसुमतिकौ कण्ठहार राधावर 'साँवरे'॥

रामनाम और गाँधीजी

[श्रद्धेय महात्मा गाँधीके प्रिय भजन तथा राम-नामसे सम्बन्धित संस्मरण, जिनमें प्रश्नोत्तर तथा राम-नामके प्रति उनकी भावनाओंका दिग्दर्शन होता है, यहाँ पाठकोंके लाभार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है ।—सम्पादक]

श्रीमोहनदास करमचंद गाँधीका जन्म २ अक्टूबर १८६९ को पोरबंदरमें हुआ था। गाँधीजी यद्यपि राजनीतिके माध्यमसे भारतीय जन-जीवनमें आये और शान्तिपूर्ण आन्दोलन-संघर्षद्वारा एवं अहिंसाकी वृत्तिका पालन करते हुए भारतको अंग्रेजी-साम्राज्यसे मुक्त कराया, तथापि उनकी निष्ठा सदा भगवान्पर बनी रही। उनके आध्यात्मिक अनुभवके दो स्रोत थे—भगवन्नाम-जप तथा आर्तहृदयसे प्रार्थना।

गाँधीजीने अपने विभिन्न आश्रमोंमें निजी और सामूहिक प्रार्थनाका क्रम चलाया। प्रतिदिन प्रातःकालिक तथा संध्याकालीन सामूहिक प्रार्थना होती थी। यदि वे जेलमें होते या विदेशमें गये होते तो वहाँ भी सामूहिक प्रार्थनाका क्रम चलता। फिनिक्स आश्रम (द० अफ्रीका)में भी प्रार्थना होती थी। सर्वदा-जेलमें भी प्रातःकालकी प्रार्थना सात बजे होती थी। वे कहते थे—'जो व्यक्तिगत निजी प्रार्थना नहीं करता, वह भले ही सामूहिक प्रार्थनामें भाग ले, पर उससे कुछ विशेष लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।' गाँधीजीका ईश्वरपर अटल विश्वास था। वे 'रामनाम'को वासना-विजयका अमोघ मन्त्र मानते थे और कहा करते थे कि एकमात्र वैद्य और सच्चा डाक्टर तो 'राम' ही है। वे समझते थे कि 'रामनाम ही मेरा बल है'। प्रार्थना-सभामें गाँधीजी कहा करते थे कि 'रामजप'के द्वारा पाप-हरण होता है। रामजपपर उनकी अटूट श्रद्धा थी और रामनाम गाँधीजीको इतना सिद्ध हो गया था कि उत्तर जीवनमें उठते-बैठते, चलते-फिरते भी वह जप स्वतः चलता रहता था।

गाँधीजी 'राम-धुन' और 'रघुपति राघव राजा ..' के कीर्तनको प्रार्थनाका सबसे महत्त्वपूर्ण अङ्ग .. थे। नरसी मेहताका 'वैष्णव जन तो तेने कहिये' भजन गाँधीजीको बहुत प्रिय था। प्रार्थना संस्कृतके श्लोकोंसे आरम्भ होती थी। तुलसी, सूरदास, मीरा, कबीर आदि—सबके भजन इन्हें प्रिय थे। जो भजन और श्लोक उन्हें प्रिय थे और जो प्रार्थना-सभाओंमें गाये जाते थे, उनमेंसे कुछकी प्रथम पंक्ति नीचे दी जा रही है।

प्रिय भजन

(सूरदास) सुने री मैंने निर्बल के बल राम।
प्रभु मेरे अवगुन चित न धरो।
(तुलसीदास) तुम मेरी राखो लाज हरी।
रघुबर तुमको मेरी लाज।
(मीराबाई) पायो जी मैंने रामरतन धन पायो।
हरी तुम हरो जन की पीर।
माई री, मैंने गोविन्द लीन्हो मोल।
राम नाम रस पीजे।
मेरे तो गिरधर गोपाल।
(कबीर) घूँघट का पट खोल।
मन लागो यार फकीरी में।
बीत गये दिन भजन बिना रे।
(नानक) काहे रे मन खोजन जाई।
साधो मन का मान त्यागो।
(नजीर) हैं बहारे बाग दुनिया चंद रोज।
(अन्य) उठ जाग मुसाफिर भोर भई।
प्रेम मुदित मन से कहो,
रघुपति राघव राजा राम।
पितु मातु सहायक स्वामि सखा।
क्यों सोया गफलत का मारा जाग रे
नर जाग रे।
(...गान) वन्दे मातरम्''' आदि आदि।

प्रिय श्लोक

प्रातः स्मरामि, (५) [illegible]
[illegible], (६) यं ब्रह्मा [illegible]

(४) या कुन्देन्दुतुषारहारधवला०, (५) समुद्रवसने देवि०, (६) गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः०, (७) शान्ताकारं भुजगशयनम्०, (८) करचरणकृतं वा०, (९) स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्ताम्०, (१०) भयानां भयं भीषणं भीषणानाम्०, (११) वयं त्वां स्मरामः०, (१२) ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम्० आदि-आदि ।

रामनाम और राष्ट्रसेवा

प्रश्न—क्या किसी पुरुष या स्त्रीको राष्ट्रिय सेवामें भाग लिये बिना रामनामके उच्चारणमात्रसे आत्मदर्शन प्राप्त हो सकता है ? मैंने यह प्रश्न इसलिये पूछा है कि मेरी कुछ बहनें कहा करती हैं कि हमें गृहस्थीके कामकाज करने तथा यदा-कदा दीन-दुखियोंके प्रति दयाभाव दिखानेके अतिरिक्त और किसी कामकी आवश्यकता नहीं है ।

उत्तर—इस प्रश्नने केवल स्त्रियोंको ही नहीं, अपितु बहुतेरे पुरुषोंको भी उलझनमें डाल रखा है और मुझे भी धर्म-संकटमें डाला है । मुझे यह बात मालूम है कि कुछ लोग इस सिद्धान्तके माननेवाले हैं कि काम करनेकी कतई आवश्यकता नहीं और परिश्रम मात्र व्यर्थ है । मैं इस ख्यालको बहुत अच्छा तो नहीं कह सकता । हाँ, यदि मुझे उसे स्वीकार करना ही हो तो मैं उसके अपने ही अर्थ लगाकर स्वीकार कर सकता हूँ । मेरी नम्र सम्मति यह है कि मनुष्यके विकासके लिये परिश्रम करना अनिवार्य है । फलका विचार किये बिना परिश्रम करना आवश्यक है । रामनाम या ऐसा कोई पवित्र नाम आवश्यक है—केवल लेनेके लिये ही नहीं, अपितु आत्मशुद्धिके लिये, प्रयत्नोंको सहारा पहुँचानेके लिये और ईश्वरसे सीधे-सीधे मार्गदर्शन पानेके लिये । इसलिये रामनामका उच्चारण कभी परिश्रमके बदले काम नहीं दे सकता । वह तो परिश्रमको अधिक बलवान् बनाने और उसे उचित मार्गपर ले चलनेके लिये है । यदि परिश्रम मात्र व्यर्थ है तो फिर घर-गृहस्थीकी चिन्ता क्यों ? और दीन-दुखियोंकी यदा-कदा सहायता किसलिये ? इसी प्रयत्नमें राष्ट्र-सेवाका अङ्कुर भी मौजूद है । मेरे लिये तो राष्ट्रसेवाका अर्थ मानव-जातिकी सेवा है । यहाँतक कि कुटुम्बकी निर्लिप्त भावसे की गयी सेवा भी मानव-जातिकी सेवा है । इस प्रकारकी कौटुम्बिक सेवा अवश्य ही राष्ट्रसेवाकी ओर ले जाती है । रामनामसे मनुष्यमें अनासक्ति और समता आती है । रामनाम आपत्तिकालमें उसे कभी धर्मच्युत नहीं होने देता । गरीब-से-गरीब लोगोंकी सेवा किये बिना या उनके हितमें अपना हित माने बिना मोक्ष पाना मैं असम्भव मानता हूँ । (हिंदी नवजीवन, २१-१०-१९२६)

सेवाकार्य या माला-जप ?

प्र०—सेवाकार्यके कठिन अवसरोंपर भगवद्भक्तिके नित्य-नियम नहीं निभ पाते तो क्या इसमें कोई हानि है ? दोनोंमेंसे किसको प्रधानता दी जाय, सेवाकार्यको अथवा माला-जपको ?

उ०—कठिन सेवाकार्य हो या उससे भी कठिन अवसर हो तो भी भगवद्-भक्ति यानी रामनाम बंद हो ही नहीं सकता । उसका बाह्य रूप प्रसंगके अनुसार बदलता रहेगा । माला छूटनेसे रामनाम, जो हृदयमें अङ्कित हो चुका है, थोड़े ही छूट सकता है ?

(हरिजनसेवक, १७-२-१९४६)

नाम-साधनाके चिह्न

रामनाम जिसके हृदयसे निकलता है, उसकी पहचान क्या है ? एक वाक्यमें कहा जाय तो रामके भक्त और गीताके स्थितप्रज्ञमें कोई भेद नहीं है । अधिक गहरे उतरें तो हम देखेंगे कि राम-भक्त पञ्चमहाभूतोंका सेवक होगा । वह प्रकृतिके कानूनपर चलेगा, इसलिये उसे किसी तरहकी बीमारी होगी ही नहीं । होगी भी तो वह उसे पञ्चमहाभूतोंकी सहायतासे अच्छी कर लेगा । किसी भी उपायसे भौतिक दुःख दूर कर लेना शरीरी—

आत्माका काम नहीं, शरीरका काम भले हो। इसलिये जो शरीरको आत्मा मानते हैं, जिनकी दृष्टिमें शरीरसे अलग शरीरधारी आत्मा-जैसा कोई तत्त्व नहीं, वे तो शरीरको टिकाये रखनेके लिये सारी दुनियामें भटकेंगे। लंका भी जायँगे। इससे उलटे जो यह मानता है कि आत्मा देहमें रहते हुए भी देहसे अलग है, सदा स्थित रहनेवाला तत्त्व है, अनित्य शरीरमें बसता है, शरीरकी सँभाल तो रखता है, पर शरीरके जानेसे घबराता नहीं, दुःखी नहीं होता और सहज ही उसे छोड़ देता है, वह देहधारी डाक्टर-वैद्योंके पीछे नहीं भटकता; वह स्वयं ही अपना डाक्टर बन जाता है। सब काम करते हुए भी वह आत्माका ही ध्यान रखता है। वह मूर्च्छासे जगे हुए मनुष्यकी तरह बर्ताव करता है। ऐसा मनुष्य प्रत्येक साँसके साथ रामनाम जपता रहता है। वह सोता है तो भी उसका राम जागता है। खाते-पीते, कुछ भी काम करते हुए राम तो उसके साथ ही रहेगा। इस साथीका खो जाना ही मनुष्यकी सच्ची मृत्यु है।

इस रामको अपने पास रखनेके लिये या अपने-आपको रामके पास रखनेके लिये वह पञ्चमहाभूतोंकी सहायता लेकर संतोष मानेगा। अर्थात् वह मिट्टी, हवा, सूरजकी रोशनी और आकाशका सहज, साफ और व्यवस्थित ढंगसे प्रयोग करके जो पा सकेगा, उसमें संतोष मानेगा। यह उपयोग रामनामका पूरक नहीं, पर राम-नामकी साधनाकी निशानी है। रामनामको इन सहायकों-की आवश्यकता नहीं; किंतु इसके बदले जो एकके बाद दूसरे वैद्य-हकीमोंके पीछे दौड़े और रामनामका दावा करे, उसकी बात कुछ जँचती नहीं।

एक ज्ञानीने तो मेरी बात पढ़कर यह लिखा है कि रामनाम ऐसा कीमिया है, जो शरीरको बदल डालता है। वीर्यको इकट्ठा करना दबाकर रखे हुए धनके समान है। उसमें अमोघ शक्ति पैदा करनेवाला तो रामनाम ही है। खाली संग्रह करनेसे तो घबराहट होती है। किसी भी समय उसका पतन हो सकता है; किंतु जब रेतस् रामनामके स्पर्शसे गतिमान् होता है, ऊर्ध्वगामी (ऊपर जानेवाला) बनता है, तब उसका पतन असम्भव हो जाता है।

शरीरके पोषणके लिये शुद्ध खून आवश्यक है। आत्माके पोषणके लिये शुद्ध वीर्यशक्तिकी आवश्यकता है। इसे दिव्य शक्ति कह सकते हैं। यह शक्ति सारी इन्द्रियोंकी शिथिलताको मिटा सकती है। इसीलिये कहा है कि रामनाम हृदयमें बैठ जाय तो नया जीवन प्रारम्भ होता है। यह कानून जवान, बूढ़े, मर्द, औरत सबपर लागू होता है।

पश्चिममें भी यह विचार पाया जाता है। 'क्रिश्चियन-साइन्स' नामका सम्प्रदाय बिलकुल यही नहीं तो करीब-करीब इसी तरहकी बात कहता है, किंतु मैं मानता हूँ कि हिंदुस्तानमें ऐसे सहारेकी आवश्यकता नहीं; क्योंकि हिंदुस्तानमें तो यह दिव्य विद्या पुराने जमानेसे चली आ रही है।

(हरिजनसेवक, २९-६-१९४७)

रामनाम कैसे लें?

अपने भाषणमें गाँधीजीने बताया था कि किस तरह मनुष्यको सतानेवाली तीनों तरहकी बीमारियोंके लिये अकेले रामनामको ही रामबाण औषध बनाया जा सकता है। उन्होंने कहा—इसकी पहली शर्त तो यह है कि रामनाम दिलके अंदरसे निकलना चाहिये। किंतु इसका मतलब क्या लोग अपनी शारीरिक बीमारियोंकी दवा खोजनेके लिये दुनियाके आखिरी छोरतक जानेसे भी नहीं थकते जबकि मन और आत्माकी बीमारियोंके सामने ये शारीरिक बीमारियाँ बहुत कम महत्त्व रखती हैं। मनुष्यका भौतिक शरीर तो आखिर एक दिन मिटनेवाला ही है। उसका स्वभाव ही ऐसा है कि वह सदाके लिये रह ही नहीं सकता। तिसपर भी लोग अपने अंदर रहनेवाली अमर आत्माको भुलाकर

उसीका अधिक प्यार करते हैं। रामनाममें श्रद्धा रखनेवाला आदमी अपने शरीरसे ऐसे झूठे लाड़ नहीं लड़ायेगा, अपितु उसे ईश्वरकी सेवा करनेका एक माध्यम भर समझेगा। उसको इस तरहका अनुकूल माध्यम बनानेके लिये रामनामसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

रामनामको हृदयमें अङ्कित करनेके लिये अनन्त धीरजकी आवश्यकता है। जिसमें युग-के-युग लग सकते हैं; किंतु यह चेष्टा करने-जैसी है। इसमें सफलता भी भगवान्‌की कृपासे ही मिल सकती है।

जबतक आदमी अपने अंदर और बाहर सचाई, ईमानदारी और पवित्रताके गुणोंको नहीं बढ़ाता, तबतक उसके दिलसे रामनाम नहीं निकल सकता। हमलोग प्रतिदिन शामकी प्रार्थनामें स्थितप्रज्ञका वर्णन करनेवाले श्लोक पढ़ते हैं। हममेंसे हर एक आदमी स्थितप्रज्ञ बन सकता है, यदि वह अपनी इन्द्रियोंको अपने काबूमें रखे और जीवनको सेवामय बनानेके लिये ही खाये, पीये और मौज-शौक या हँसी-विनोद करे। जैसे यदि अपने विचारोंपर आपका कोई काबू नहीं है और यदि आप एक तंग अँधेरी कोठरीमें उसकी तमाम खिड़कियों और दरवाजोंको बंद करके सोनेमें कोई हानि नहीं समझते और गंदी हवा लेते है या गंदा पानी पीते है तो मै कहूँगा कि आपका रामनाम लेना बेकार है।

किंतु इसका यह मतलब नहीं कि चूँकि आप जितने चाहिये उतने पवित्र नहीं हैं, इसलिये आपको रामनाम लेना छोड़ देना चाहिये; क्योंकि पवित्र बननेके लिये भी रामनाम लेना लाभकारी है। जो आदमी दिलसे रामनाम लेता है, वह सरलतासे अपने-आपपर काबू रख सकता है और अनुशासनमें रह सकता है। उसके लिये स्वास्थ्य और सफाईके नियमोंका पालन करना सहज हो जायगा। उसकी जिंदगी सहज भावसे बीत सकेगी—उसमें कोई विषमता न होगी। वह किसीको सताना या दुःख पहुँचाना पसंद नहीं करेगा। दूसरोंके दुःखोंको मिटानेके लिये, उन्हें सुख पहुँचानेके लिये, स्वयं कष्ट उठा लेना उसकी आदतमें आ जायगा और उसे सदाके लिये एक अमिट सुखका लाभ मिलेगा—उसका मन एक शाश्वत और अमर सुखसे भर जायगा। इसलिये मै कहता हूँ कि आप इस चेष्टामें लगे रहिये और जबतक काम करते है, तबतक सारा समय मन-ही-मन रामनाम लेते रहिये। इस तरह करनेसे एक दिन ऐसा भी आयेगा, जब रामनाम आपका सोते-जागतेका साथी बन जायगा और उस हालतमें आप ईश्वरकी कृपासे तन, मन और आत्मासे पूरे-पूरे स्वस्थ बन जायँगे।'

(नयी दिल्ली, २५-५-४६)

'मनवा राधे-कृष्ण बोल'

मुख से राधे-कृष्ण बोल, मनवा राधे-कृष्ण बोल।
भाई-बन्धु और कुटुम्ब कबीला वृथा न इनमें डोल।
कंकर पत्थर छोड़ के मानस मोती मोती रोल॥ मनवा राधे-कृष्ण बोल॥
मानुष देह यह निर्मल काया, है हीरा अनमोल।
इस कंचन की प्याली में तू राम-नाम रस घोल॥ मनवा राधे-कृष्ण बोल॥
दर्शन कारन भटकत डोले हो रहा डावाँ डोल।
आज मिलेंगे गिरिवरधारी, हिरदय के पट खोल॥ मनवा राधे-कृष्ण बोल॥

संकीर्तनप्रेमी संत महात्मा भोलीबाबा

(लेखक—श्रीनरेशजी पाण्डेय 'चकोर', एम्० ए०, बी० एल्०)

सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकासके लिये संकीर्तनका जीवनमें बड़ा महत्त्व है। संकीर्तनके माध्यमसे जीवन सुसंस्कृत होता है और मानसिक संतुष्टिके साथ-साथ भगवत्-प्राप्तिका मार्ग प्रशस्त होता है। संकीर्तन लौकिक और पारलौकिक दोनों ही सुख देता है। भगवद्भजनमें तन्मयता होनेके कारण मानवको भगवान्‌के समीप पहुँचनेमें सुगमता होती है। संकीर्तन एक प्रकारका योग भी है। योगी योगके द्वारा अपने चित्तको भगवान्‌के साथ जोड़ते हैं तो कीर्तनकार भी अपना ध्यान भगवत्-चरणमें अर्पित करता है। जब भगवद्भक्त संकीर्तनके प्रवाहमें डूब जाते हैं, तब उन्हें दुनियाकी सुधि-बुधि नहीं रह जाती। वे उस समय भगवत्-साक्षात्कारको प्राप्त करते हैं। यह स्थिति मनुष्य सरलतासे नहीं प्राप्त कर पाता। इसके लिये सतत संकीर्तन और सत्संगकी आवश्यकता होती है। इसके अभ्याससे आदत पड़ जाती है, आदतसे आत्मानुभूति होती है और उससे परम सुखकी प्राप्ति होती है।

संकीर्तनमें सबको रसानुभूति नहीं होती। इसके लिये भगवत्कृपाकी आवश्यकता होती है। यह संस्कारपर निर्भर करता है। संस्कार दो तरहसे बनता है—एक जन्मजात संस्कार तथा दूसरा संगतिसे बना हुआ। इसलिये जीवनमें यह आवश्यक है कि संत-महात्मा और कीर्तनाचार्योंकी संगति की जाय और सतत भगवन्नाम-संकीर्तन किया जाय। फिर तो क्या कहना। 'क्या सुख है हरिभजनमें कोई गाकर देख ले।' हरिचर्चा या हरि-कीर्तनमें अपार सुख है, अमृत-सा रस है और जीवनको सरसानेकी शक्ति है। चैतन्य महाप्रभु, मीराबाई, नामदेव, तुकाराम आदि भक्तोंने कीर्तनके महत्त्वको समझा और इसके माध्यमसे अपना जीवन सार्थक बनाया। कलियुगमें कीर्तनका बड़ा महत्त्व है—

कलिजुग केवल हरिगुन गाहा। सुमिरत नर पावहिं भव थाहा॥

(रा० च० मा० ७। १०३। २)

श्रीनामानुरागी, कीर्तनके मर्मज्ञ, आजन्म ब्रह्मचारी, भगवत्-चर्चामें तल्लीन, यज्ञादि धार्मिक कार्योंके अनुष्ठाता श्रीश्री १०८ महात्मा भोलीबाबाका जन्म अंग (भागलपुर) जनपदके मंदराचलस्थित फागा नामक गाँवमें एक ब्राह्मण-कुलमें सन् १९०३ ई० भाद्रपद कृष्णाष्टमीके दिन हुआ था। इनका पूरा नाम श्रीभोलानाथ मिश्र था। इनके पिता श्रीजहौरी मिश्र एक मैथिल पण्डित थे। इनकी माँकी मृत्यु इनकी बाल्यावस्थामें ही हो गयी थी। ये माँ-बापके एकलौते पुत्र थे। इनका बाल्यकाल बड़ा ही कष्टमय रहा। सम्भवतः यही कष्टमय जीवन इन्हें भगवन्नाम-संकीर्तनकी ओर अग्रसर होनेका कारण बना। प्रारम्भमें श्रीबाबा दूसरोंकी कीर्तन-मण्डलीमें घूमते थे। बादमें इन्होंने स्वतन्त्र कीर्तन-मण्डली तैयार की। इनका कीर्तन भावसे ओत-प्रोत, रसमयी भगवद्-भक्ति जमानेवाला एवं प्रभावोत्पादक होता था। फलतः बाबाके कीर्तनकी धूम चारों ओर मच गयी। अंगजनपदमें इनकी चर्चा गाँव-गाँवमें होने लगी। इसके बाद ये अखिल भारतीय श्रीरूपकला-हरिनाम-यश-संकीर्तन-सम्मेलनोंमें तथा अन्य महत्त्वपूर्ण धार्मिक सम्मेलनोंमें सादर आमन्त्रित किये जाने लगे और वहाँ इनकी सेवा देशके इने-गिने महात्माओंकी तरह होने लगी। ये मंदारके महात्मा भोली बाबाके नामसे पूरे देशमें कीर्तन-प्रेमियोंके बीच आने-जाने लगे। अखण्ड कीर्तनमें तो ये अग्रगण्य थे। ये बौंसीसे वैद्यनाथ धाम पैदल कीर्तन करते हुए जाते। कीर्तनमण्डली एवं अपने शिष्योंके साथ चारों धामोंकी यात्रा करना आदि इनके जीवनकी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं। इनकी इन धार्मिक यात्राओंके संस्मरण और

चमत्कारोंकी कहानी जब हमारे गुरुभाई श्रीहलधरनाथ पाण्डेय एवं श्रीहरेन्द्रनाथ झा (मैनेजर साहब) सुनाते हैं, तब आनन्दातिरेकसे श्रोता रोमाञ्चित हो जाते हैं।

श्रीभोलीबाबा बड़े-बड़े यज्ञोंका आयोजन स्वयं किया करते थे या ऐसे आयोजनोंके मार्गदर्शक होते थे। इनके यज्ञोंमें मात्र हवनकुण्डमें यज्ञ ही नहीं होता था, अपितु जबतक यज्ञ होता था, तबतक अखण्ड सीताराम-नामका कीर्तन, श्रीहनुमानचालीसाका अखण्ड पाठ, संत-महात्माओंका प्रवचन-कीर्तन और रात्रिमें झाँकी-लीला एवं रासलीलाके उत्सव भी होते रहते थे। हजारोंकी संख्यामें जनता शान्तिपूर्वक इनके आयोजनोंमें भाग लेती थी। मञ्चपर जब इनका कीर्तन होता था, तब श्रोता शान्त एवं दत्तचित्त होकर आनन्दका लाभ उठाते और फिर बाबाकी जयकारसे दिशाएँ गूँज उठती थीं।

बाबा सभी संत-महात्माओंको बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। यही कारण था कि जब इन्होंने ३१ अक्टूबर १९८१ ई०को वाराणसीमें अपने नश्वर शरीरका त्याग किया, तब इनको गङ्गा मैयाकी गोदमें जल-समाधि देनेके लिये स्वयं श्रीश्री १०८ स्वामी करपात्रीजी महाराज पधारे थे। वहाँ इस अवसरपर और भी अनेकानेक संत-महात्मा उपस्थित थे। वाराणसी, बौंसी (मंदार) एवं अन्य कई स्थानोंमें भंडारा हुआ और हजारों ब्राह्मणों एवं दरिद्र-नारायणको भोजन कराया गया।

इतने बड़े महात्माकी यह उदार भावना तो देखिये कि इन्होंने अपने जीवन-कालमें कोई आश्रम या मठ नहीं बनवाया। हजारोकी संख्यामें इनके शिष्य बाबासे आश्रमादि बनवानेकी अनुमति माँगते थे, किंतु कञ्चन और कामिनीसे दूर रहनेवाले बाबा अपने शिष्योंको आश्रम बनाने या रुपया जमा करने या स्मारक बनानेसे सदैव मना करते रहे। उन्होने कहा कि मेरा आश्रम या जो कुछ है सब बौंसीका मधुसूदन भगवान्का मन्दिर है। इस मन्दिरमें प्रतिवर्ष तिल-संक्रान्तिके समय वार्षिकोत्सव मनाया जाता था और अब उनके स्वर्गवासके बाद उनके शिष्य उत्सव मनाते हैं। इस अवसरपर अखण्ड कीर्तन एवं दरिद्र-नारायणका भोज होता है। बौंसीस्थित मंदार पर्वतकी अखण्ड कीर्तन करते हुए तीन परिक्रमा कभी-कभी भोलीबाबा अपने कीर्तन-मण्डलीके साथ करते थे।

एक बार होलीके अवसरपर एक धार्मिक आयोजन (कोरनामा नालन्दा १९८१) में श्रीश्री १०८ सीतारामशरणजी महाराज (लक्ष्मणकिलाधीश) और श्रीश्रीमन्नारायणजीने बाबाके सम्बन्धमें मुझे कई उल्लेख्य बातें बतलायीं। श्रीलक्ष्मणकिलाधीशजी महाराज कहते थे कि 'आपके बाबा विलक्षण संत थे। ऐसे संत कभी-कभी ही पृथ्वीपर अवतरित होते है। वे बड़े ही नामानुरागी संत थे।' श्रीश्रीमन्नारायणजीने कहा कि 'श्रीबाबाकी जलसमाधिके अवसरपर मैं वाराणसीमें उपस्थित था। उनके बिस्तर आदिको देखा गया तो उनकी झोलीमें श्रीहनुमानचालीसाके अतिरिक्त कहींसे एक रुपयाका एक नोट रह गया था।' उनके कहनेका अर्थ था कि बाबा संग्रह-वृत्तिके विरोधी थे। यज्ञादिमें लाखों रुपये आते थे और सारी-की-सारी रकम उन्हीं आयोजनोंमें संत-महात्माओंकी सेवामें लग जाती थी और यज्ञ-समाप्तिके बाद बाबा खाली-के-खाली रह जाते थे। सचमुच बाबाने अपने पीछे कुछ नहीं छोड़ा। बस, कुछ छोड़ा तो नामकीर्तनकी महिमा और अपने भक्तों तथा शिष्योंपर अपनी भगवद्भक्तिकी मधुर छाप।

श्रीबाबाके विषयमें १९५६ ई०में अपनी 'मंदार-परिचय' नामक पुस्तकमें डॉ० अभयकान्त चौधरीने लिखा है—'भगवान्के प्रति एकाग्रता तथा तन्मयता इनमें इतनी अधिक है कि कीर्तन करते-करते ये अपनेको भूल जाते हैं, इन्हें कुछ भी सुध-बुध नहीं रहती। इनकी आँखोंसे घंटों अविराम अश्रुधारा बहने लगती है और बहुत देरतक इनकी यह अवस्था बनी रहती है। कई घंटेतक कीर्तन होता रहता है, फिर भी लोग ऊबते नहीं

हैं, अपितु मन्त्र-मुग्ध-से बैठे हुए एकाग्रचित्त होकर कीर्तन सुनते रहते हैं। संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि मोली-बाबाके कीर्तनके समय प्रेम और भक्ति, श्रद्धा और विश्वास, एकाग्रता और तन्मयताका साम्राज्य छाया रहता है।' श्रीचौधरीकी ये अट्ठाईस वर्ष पुरानी बातें आज भी सत्य हैं। श्रीबाबाकी बातें सचमुच चमत्कारपूर्ण होती थीं।

'करीलकादम्बिनी' नामक संकीर्तनकी बहुमूल्य पुस्तककी भूमिकामें प्रोफेसर श्रीबाँकेबिहारी झा करीलने १९७० ई०में महात्मा मोलीबाबाके सम्बन्धमें अनेक चमत्कारपूर्ण प्रसङ्ग प्रकाशित किये हैं। श्रीबाबाके विषयमें बहुत कुछ लिखा जा सकता है। मुझे अपने अनेक प्रेमियोंसे संस्मरण सुननेको मिले हैं। चमत्कारकी अनेकानेक घटनाएँ सुननेको मिली हैं। उनके चमत्कारोंकी चर्चा मैंने यहाँ जान-बूझकर नहीं की है। यह मान्य तथ्य है कि प्रभुसे बड़ा प्रभुका नाम है और मोलीबाबा नामानुरागकी प्रतिमूर्ति थे। नाम उनका धन था, नाम उनकी पूजा थी और नामके बलपर ही उनका चमत्कारी आशीर्वाद होता था।

मन्नाथ-नामप्रेमी श्रीश्रीसीतारामदास ओंकारनाथ

(प्रेषक—श्रीनीरजाकान्त चौधुरी देवशर्मा, विद्यार्णव, एम्०ए०)

भारत श्रीवैकुण्ठका प्राङ्गण है। यह पुराण-भूमि अध्यात्मराज्यकी मुकुटमणि है। युग-युगान्तरसे यहाँ कितने ही साधु, योगी, भक्तवृन्द उत्पन्न हुए और आगे होंगे। यहाँतक कि स्वयं श्रीभगवान् भी धर्मकी ग्लानि एवं अधर्मका अभ्युत्थान होनेपर साधुगणके परित्राण तथा दुष्कर्म करनेवालोंके विनाशके लिये यहाँ अवतीर्ण होते हैं।

ठाकुर श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराजका बंगदेशमें गङ्गातीरपर (बाँगला) १५ फाल्गुन १२९८ कृष्ण पंचमी बुधवार (खृ० १७ फरवरी १८९२) को हुगली जिलेके ओटा ग्राममें ननिहालमें प्राकट्य हुआ। उनका मूल नाम श्रीप्रबोधचन्द्र चट्टोपाध्याय था। पिता प्राणहरि चट्टोपाध्याय काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे और चिकित्सकका काम करते थे। आप परम भक्त तथा साहित्यिक कवि थे। भुवन व्रजनाथधारी डुमुरदह ग्राम (हुगली जिलामें) भागीरथी-तटपर था। वहाँ श्रीराधा-व्रजनाथजी, श्रीशंकरजी प्रतिष्ठित थे और अभीतक नित्य पूजित होते आ रहे हैं। ये जब चार वर्षके थे, तभी इनकी माताका स्वर्गवास हो गया। इनका पालन इनकी

विमाता गिरिवाना देवीने बडे स्नेहसे किया। इनके पिता भी अल्पकालमें ही परलोक चल बसे। बारह वर्षकी अवस्थामें ठाकुरने चतुष्पाठीमें संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया और व्याकरण, पुराण, वेदान्तादिका अध्ययन किया। उनका पाण्डित्य अगाध था।

साधक-जीवन

बचपनसे ही ठाकुर ऋजुस्वभाव, सत्यप्रतिज्ञ, शास्त्र-विश्वासी, कठोरव्रती, आचारनिष्ठ एवं भक्त थे। बारहवें वर्ष उपनयनके बाद आपने नियमित त्रिसंध्या, उपवासादि आरम्भ किया। मात्र छः वर्षकी आयुमें ही उनको महादेवका दर्शन प्राप्त हुआ। इक्कीसवें वर्षमें दिगसुईके दाशरथि देव स्मृतिभूषण योगेश्वरने, जो रामानन्दी सम्प्रदायके थे, आपको मन्त्रदीक्षा दी। उस समयसे रोग, शोक, दारिद्रय एवं नाना सांसारिक विपत्तियोंके मध्यमें भी आप साधनमार्गपर अग्रसर होते रहे। गुरुजीने उनका 'सीतारामदास' नाम रख दिया।

चुंचड़ा (हुगली) नगरमें आप वेदान्त-पाठ कर रहे थे। उसी समय रातमें जपके समय सहसा पञ्चमुख श्रीशंकरजी इनके समक्ष आविर्भूत हो गये और बोले—'मैं तेरा गुरु हूँ।' पुनः उन भगवान्के स्कन्धदेशसे देवीजी प्रकट होकर बोलीं—'मैं तेरी माँ हूँ।' और उनकी सूक्ष्म देहको अपनी गोदमें ले लिया। दोनो डमरू-निनादके साथ आपको इष्टमन्त्र सुनाने लगे। आपको उस रातमें अनेक अलौकिक दर्शन एवं श्रवण हुए। उनको गुरुजी प्रोत्साहन देते रहे। श्रीसीतारामदास पूर्वजन्ममें श्रीरामकृष्णदेव थे। इसी साल दिगसुईमें गुरुगृहमें वसन्तपञ्चमीको श्रीसरस्वती-पूजाके समय ध्यानमें उन्हें पूर्वजन्मकी मूर्तिका दर्शन हुआ। वह दृश्य उनकी ही वाणीमें देखिये—'मैंने देखा—एक साधु बैठे हुए (ऊपरसे) उतर रहे है ज्योतिके मध्यमें। सोचा, यह साधु कौन है, यह तो मेरा इष्ट नहीं है। बोलते ही आँखोंसे झरझर आँसू गिरता रहा। उसके बाद बोला—'माँ! इस जन्ममें भी मुक्ति नहीं दी!' ध्यान टूटा। उसपर जो साधु भासित हुए थे, वे इसके जन्मसे आगे मरे अथवा पीछे मरे, यह देखनेके लिये निकल पड़ा, वे प्रकृत पहचानके साधु थे। मैंने देखा कि वे छः साल पूर्वमें ही मरे हैं। समस्त दिन उजेलाके राज्यमें कट गया। जब यह सब गुरुदेवको बतलाया तो वे बोले—'यह क्या देखा? यदि तुम्हारा मस्तिष्क विकृत है तो चिकित्सा कराओ।' शिष्य (सेवानन्द) ने पूछा—'जिन साधुको आपने देखा वे तो रामकृष्ण देव थे?' बाबाने कहा—'हाँ'। डोलपूर्णिमातक ठाकुर पूर्णताकी चरम उन्नतिपर समारूढ हो गये। उनको यह वाणी सुनायी पडने लगी—'यदा यदा हि धर्मस्य' इत्यादि। कई वर्षोंतक वे इस देव-वाणीको सुनते रहे।

एक बार उनके गुरुने एक कागजपर—'तुम मेरे गुरु हो अथवा शिष्य—इसका ठीक ज्ञान मुझे नहीं है। मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरे हो—इतना ही ज्ञात है। यदि तुम गुरु हो तो मैंने तुम्हारी शरण ली, मेरा परित्राण करो और यदि तुम शिष्य हो तो कहो कि तुम किस उपादानसे गठित हो।'—यह लिखकर उन्हें दिया—

गुरुर्वा शिष्यो वा भवसि कतरो नैव विदित-
मह ते त्वं मे वै प्रकृतिसुलभात् तत् सुविदितम्।
गुरुश्चेच्छिष्योऽहं शरणमुपगतं पाहि कृपया
गुरुर्वा तऽहं यत् किमसि पठितस्तत् कथय मे॥

ठाकुरका विवाह चौबीस वर्षकी आयुमें दिगसुई ग्राम-की कमलादेवीके साथ हो चुका था। अब तो गृहस्थी-का सारा बोझ उनके ऊपर आ पड़ा। आपने आदर्श गृहस्थका जीवन कुछ दिन यापन किया। उनकी पत्नी मात्र २६ वर्षकी आयुमें दो पुत्र और एक कन्या रखकर सतीलोक चली गयीं। बादमें एक पुत्र भी चल बसा। इसके बाद एक अति कठिन रोगसे ठाकुरका दक्षिण पद आंशिकभावसे विकल हो गया, किंतु रोग,

शोक, दारिद्र्य आपको विचलित न कर सके। डुंगरदह गङ्गातीरपर रामाश्रमकी गुफामें ठाकुर मौन साधन करने लगे। नाना प्रकारके नादका विकास हुआ। कई दिन-राततक 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' आदि महामन्त्रका नाद सुना गया। ठाकुर त्रिवेणीमें कौपीनमात्र धारणकर संसारका त्याग कर विरक्त हुए। आपने संन्यास नहीं लिया। दैववाणी उन्हें बार-बार 'ओंकारनाथ' नामसे पुकारती थी। आप ओंकारमें सिद्ध हो गये। अब उनका प्रबोधजन्य नाम हुआ 'सीतारामदास ओंकारनाथ'। गुरुदेव दाशरथिजी चार वर्ष पहले ही परलोक सिधारे थे। ठाकुरने पुरीधाममें मौन ग्रहण किया। वहाँ भगवान् जगन्नाथने एक गोल ज्योतिर्मण्डलके भीतर ठाकुरके समाधिकालमें आविर्भूत हो आदेश दिया—'या, या, नाम दिगे या।' (जाओ, जाओ, नाम दे जाओ।) अबतक सीताराम केवल ब्राह्मणोंको दीक्षा देते थे। भगवान्का आदेश मिलनेपर आप सभी लोगोंको महामन्त्र वितरण करने लगे। अब जो नाम-प्रचारमें आप निकल पडे तो जीवनावधि एक दिन भी उसकी विरति नहीं हुई।

रामनामके आढ़तिया

श्रीठाकुरने दिगसुईमें श्रीरामचन्द्रका मन्दिर प्रतिष्ठापित किया। बही-खातामें हस्तलिखित १२५ करोड़ रामनाम सुरक्षित है। बादमें कई मन्दिरमें १२५ करोड़ रामनाम रखे गये। ठाकुरने दीक्षा लेनेपर प्रत्येक शिष्यको चार-पाँच लाख राम-नाम लिखकर दक्षिणा देनेका नियम रखा। इस प्रकारसे श्रीठाकुर पृथ्वीभरमें रामनामके सबसे धनी आढ़तिया बन गये।

शास्त्र-प्रचार

श्रीठाकुरने महाभारत, रामायण, श्रीमद्भागवत आदि पुराणका अर्थसहित मूल संस्कृतमें प्रकाशन कर शास्त्रकी पुनः प्रतिष्ठा की तथा प्रचार किया। संस्कृत-भाषाके पण्डितोंको आप सातिशय मान्यता देते थे। वेदके पठन-पाठन और अनेक वैदिक यज्ञद्वारा आपने वेदकी श्रीवृद्धि की। 'सीताराम वैदिक महाविद्यालय'में वेद-शिक्षा दी जाती है।

नाम-प्रचार

आपका एकमात्र व्रत था जीवके कल्याणार्थ नाम-प्रचार करना। इसलिये स्वयं जगन्नाथजीसे आदेश मिलनेपर ठाकुरने भारतके एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें, ग्रामसे ग्राममें, कभी पैदल, कभी गाड़ीमें, कभी तो मालवाही ट्रकमें, कभी यात्रीवाही बसमें, तो कभी रेलके निम्न-श्रेणीमें (आपने कभी भी उच्च श्रेणीमें यात्रा नहीं की), कभी-कभी प्लेनसे दिन-रात चलते रहे। कुछ साल बाद प्रचारके लिये जब ठाकुरको निजी कारका प्रबन्ध हुआ, तब वे दिन-रात इससे अभियान चलाने लगे। ठाकुर पश्चिममें बेटद्वारकासे असम, उत्तरमें केदार-बदरीसे कन्याकुमारीतक बार-बार भ्रमणकर नाम-प्रचार करते रहे।

भारतमें ठाकुरके साठसे ऊपर मठ स्थापित हैं, उनमें कई मठोंके मन्दिरोंमें भगवान्की पूजा होती है। इन सभीमें नाम-कीर्तन प्रत्यक्ष होता है और प्रचारके लिये भक्तगण नाना स्थानोंमें निकल पड़ते हैं। काशी रामाश्रम (वाराणसी), माल्यवती आश्रम (मातृजातिके लिये) और धीर समीरे (वृन्दावन), ओंकार-मठ (मध्यप्रदेश), नीलाचल-मठ (पुरी), लवकुश-आश्रम (विठूर), गुरुधाम (मधुपुर बिहार), महाप्रयाण-मठ (गाजीपुर), हृषीकेश-आश्रम (उ० प्र०), पुष्कर-मठ (पुष्कर, राजस्थान), भागीरथीमठ (उत्तरकाशी), दुर्गापुरी (दिल्ली), श्यामाशंकर-मठ (भुवनेश्वर), श्रीनिवास (चक्रतीर्थ, पुरी), रणछोड़-आश्रम (बेटद्वारका, गुजरात), रामानुज-मठ (कन्याकुमारी), ओंकारनाथ-आश्रम (लादुना, मन्दसौर, मध्यप्रदेश) सरोजिनी-मठ (मातृजातिके लिये) पुरी—इन सभी मठों और आश्रमोंमें नाम-प्रचार हो रहा है।

अनन्त कालोद्दिष्ट महामन्त्र-कीर्तन

पुराणभूमि भारतके सुदीर्घ धर्मानुष्ठान तथा नाम-प्रचारके इतिहासमें भी अनन्तकालके लिये संकल्प लेकर महामन्त्र-कीर्तन कभी भी कहीं भी नहीं हुआ। श्रीठाकुरके दिव्य प्रभावसे सर्वप्रथम यह आरम्भ हुआ गोविन्द-मन्दिर, नवग्राम (वर्धमान) में। उत्साह क्रमशः वृद्धिंगत होकर आज २९ स्थानोंमें अनन्त कालोद्दिष्ट नाम-कीर्तन चल रहे हैं। यद्यपि अर्थ नहीं, लोकबल नहीं, तथापि किसी अदृश्य शक्तिके प्रभावसे अनायास श्यामसुन्दर लीला कर रहे हैं। सीतारामने भुवन-मङ्गल कृष्णनाम महामन्त्र मुक्तहस्त वितरण किया। लगता है मानो इनका आविर्भाव श्रीभगवान्‌के नामप्रचारार्थ ही हुआ था। आपके जीवनमें नामको छोड़कर दूसरा कुछ न था। नाम सुनते-सुनते आप समाधिस्थ हो जाते थे। नाम-प्रचारके लिये आप अविरत उपदेश करते रहे। आप नाम-माहात्म्यमें अटल विश्वासी थे।

ठाकुरने विशाल धर्मसाहित्यकी रचना की है। एक बार ओंकारेश्वरमें इसपर चर्चा चली। आपने तबतक नाम-माहात्म्यपर ३७ (अन्ततः ३७० अध्याय) ग्रन्थ लिख चुके थे। इन ग्रन्थोंमें प्रतिविषयपर शास्त्रसे प्रमाण उद्धृत किया गया है। किसी महापुरुष अथवा भक्तद्वारा आजतक नामपर इतना गम्भीर और विशद साहित्य कभी नहीं लिखा गया। उनका कहना है कि भगवन्नाम सर्वसिद्धिका आकर है। नामसे नादज्योति स्वतः आयेगी और मन्त्रमय होकर प्रणवका आविर्भाव होगा। यह प्रत्यक्ष सत्य है। उनका वृन्दावनदास नामका एक निराहार मौनी शिष्य केवल नामकीर्तनद्वारा समाधि-तक पहुँच गया था। लेखकने उसकी समाधि देखी है।

ठाकुरने 'जय गुरु'-सम्प्रदायकी स्थापना की। इसका नाम सम्प्रदाय है, परंतु यह सब तथाकथित साम्प्र-दायिकतासे मुक्त है। इसके धर्मदर्शन और साधनका पथ पद-पदपर शास्त्रका अनुसरण करता है; कहीं भी किसी भावसे शास्त्रका उल्लङ्घन नहीं करता। फलतः यह शास्त्रका सार है, फिर भी मौलिक है। श्रीसीतारामके धर्ममतका सारांश यह है—ओंकार (प्रणव) ही श्रेष्ठ तन्तु है। वह निर्गुण एवं सगुण, पर एवं अपर ब्रह्म, अवतार और जीव—सबका एकमात्र आधार है। उसको लाभ करनेके उपाय तथा साधनाकी प्रणाली अति सरल है। दिन-रात (गुरुनिर्दिष्ट इष्ट) नाम या मन्त्रका जप करनेसे नामी दर्शन दिये बिना नहीं रह सकते। शुद्ध आहार ही कर्तव्य है। श्रीसीतारामकी रायसे इस कलियुगके कोलाहलके बीचमें भी चर्मचक्षुद्वारा इष्टसाक्षात्कार हो सकता है। श्रीभगवान् मूर्त होकर साधकके सम्मुख प्रकट होते हैं, उससे बात करते हैं और उसे वरदान देते हैं।

भगवत्प्राप्ति मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य होना चाहिये। ठाकुरके मतमें उसका पथ तो अतीव सरल है, बिना कष्टसे प्रत्येक व्यक्ति अमृतका अधिकारी हो सकता है। उसके लिये केवल दिन-रात अखण्ड नाम-कीर्तन करते रहना चाहिये। मनोयोगका प्रयोजन नहीं, विश्वासकी भी कोई आवश्यकता नहीं। अश्रद्धा, अविश्वास, अमनोयोगके साथ भी नाम लेते जाओ। नामके प्रभावसे तथा पूर्वसंस्कारसे सब कुछ ठीक हो जायगा। कर्मयज्ञ होगा, जो चाहोगे सो मिल सकेगा। नामका माहात्म्य एक पुरातन वस्तु है, किंतु ठाकुरके उपदेश और साधन-प्रणाली सम्पूर्ण नूतन हैं। यह तो अध्यात्म-जगत्‌की मर्मवाणी है।

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार जब तीर्थयात्रामें आये, तब इन्दौरमें इस लेखकसे मिले। ठाकुर उस समय ओंकारेश्वरमें मौन तपस्या कर रहे थे। लेखकके कहनेपर भाईजी उनके आश्रमपर गये। सीताराम बाहर आये और उनको एक तुलसीमाला देकर समाधिस्थ हो गये। भाईजी 'कल्याण'में ठाकुरके विचारको 'पागलकी

झोली' नामसे प्रकाशित करने लगे। ठाकुरने कई बार गोरखपुर 'कल्याण'-कार्यालयमें भी पदार्पण किया था। एक बार बरसातके समय वहाँ कीचड़में लोटने लगे और कहा—'यह तो वैकुण्ठ है।' ठाकुर कलकत्ता गोविन्द-भवनमें भी भाषण दे चुके थे।

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

महाप्रभुका यह उपदेश सीताराम अक्षरशः और पूर्णतया पालन करते रहे। किसी भी साधुवेशीको देखते ही आप साष्टाङ्ग प्रणाम करते थे। उनमें दर्प या क्रोध लेशमात्र नहीं था। सभीको आप मान्यता देते थे, पर स्वयं मानसे दूर रहना चाहते थे तथा हरिनाम तो निरन्तर उनकी जिह्वापर और चारों ओर रहता ही था। श्रीसीतारामदास शिष्य चुनते नहीं थे। उनका कहना था कि सबसे पापीको ले आओ। यदि वह कुछ भी न करेगा तो भी तीन जन्ममें बेड़ापार हो जायगा।' श्रीठाकुरने ६ दिसम्बर १९८२को प्रायः ९० वर्षकी आयुमें कलकत्तामें भौतिक शरीरको त्याग दिया।

मनोविज्ञानकी दृष्टिमें संकीर्तन

(लेखक—डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

जो ध्वनियाँ या शब्द हम सुनते हैं, अथवा जिसे अपने आस-पासके वातावरणसे ग्रहण करते हैं, वे ग्रामोफोनके रिकार्डकी तरह सूक्ष्मरूपसे हमारे गुप्त मनमें अङ्कित होती जाती हैं और जीवनको प्रभावित करती हैं। ध्वनिका गुप्त प्रवाह ईथरके माध्यमसे समस्त वातावरणमें फैला रहता है। रेडियो और टी०वी०द्वारा इन्हीं सूक्ष्म ध्वनि-तरंगोंको पुनः बदलकर रिसीवरके माध्यमसे हमें ध्वनियाँ सुनायी देती हैं। कुछ प्रिय ध्वनियोंको, जो अनजानमें ही हमारे मस्तिष्कमें स्थायी रूपसे जम जाती हैं, हम नेत्र मूँदकर भी पहचान लेते है। प्रत्येक ध्वनिका अच्छा या बुरा प्रभाव हमारे मस्तिष्कके माध्यमसे हमारे विचारों, भावनाओं और भावी जीवनपर पड़ता रहता है। ध्वनि हमारे जीवनको सही दिशामें मोड़नेवाली एक अदृश्य शक्ति है। लयबद्ध ध्वनि संगीत है, जो जीवनको उमंग और उत्साहसे भर देती है।

वैज्ञानिकोंके अनुसार जो भले-बुरे काम ज्ञानवान् प्राणियोंद्वारा किये जाते हैं, उनका सूक्ष्म चित्रण अन्तर-चेतनामें होता रहता है। संगीत-शालामें नाच-गान हो रहा है और साथ ही अनेक बाजे बज रहे हैं। इन ध्वनियोंका विद्युत्-शक्तिसे एक प्रकारका संक्षिप्त एवं सूक्ष्म एकीकरण होता है और वह रेकार्डमें जरा-सी जगहमें रेखाओंकी तरह अङ्कित हो जाता है। जिस प्रकार तैयार किया हुआ रेकार्ड रखा रहता है, वह तुरंत ही अपने-आप या चाहे जब नहीं बजने लगता, वरन् तभी उन सगृहीत ध्वनियोंको प्रकट करता है, जब ग्रामोफोनकी मशीनपर उसे घुमाया जाता है और सूईकी रगड़ उन रेखाओंसे होती है, ठीक इसी प्रकार आस-पासकी समस्त अच्छी-बुरी ध्वनियाँ (और कर्मोंकी) रेखाएँ हमारे गुप्तमस्तिष्कके भीतरी कोनोंमें धीरे-धीरे जमती जाती है। गुप्तमनमें जमी हुई रेखाएँ किसी उपयुक्त अवसरका आघात लगनेपर ही प्रकट होती हैं।

डाक्टर यीवन्सने मस्तिष्कमें भरे हुए चर्बी-जैसे भूरे पदार्थका सूक्ष्मदर्शक यन्त्रोकी सहायतासे वैज्ञानिक निरीक्षण किया तो उन्हें एक परमाणुमें अगणित सूक्ष्म रेखाएँ प्राप्त हुईं। निष्कर्ष यह कि मानवमस्तिष्कके नव-निर्माण, स्वस्थ भावनाओंका विकास, सुख, समृद्धि, सफलता आदि सब मनुष्यके

गुप्तमनके आरोग्य, उत्साह और आत्मविश्वासपर निर्भर है। आत्म-संकेतोपचारकी मनोवैज्ञानिक पद्धतिद्वारा अव्यक्त मनका आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है। गुप्त-मनमें पवित्र भावनाओंका बीजारोपण एवं विकास ध्वनि-मूलक संकेतोद्वारा होता है। रात्रिमें सोते हुए रोगीके पास बोलकर संकेत देनेसे रोगीके चरित्रको बदला जा सकता है। उसमें शुभ-विचारोंको बोया जा सकता है।

मनश्चिकित्सक धीरे-धीरे बोलकर आत्मविश्वासपूर्वक कुछ पवित्र संकेत देता है। दुष्ट मनोविकारोंका दमन अच्छे पवित्र विचारोंको विकसित करके ही सम्भव है। मानसोपचारकी पद्धति शुभ संकेतोंपर ही निर्भर है। इन संकेतोंको पुष्ट विचारोंवाला व्यक्ति कमजोर मस्तिष्क-वालेको धीरे-धीरे बोलकर भी दे सकता है। पवित्र भजन, कीर्तन, धार्मिक वातावरण, मधुर नैतिक संगीतके शुभ वातावरणमें रहकर रोगीको स्वस्थ किया जा सकता है। प्राचीन ऋषि-मुनियोंके गीत, भजन, कीर्तनवाले पवित्र वातावरणमें आनेवाले अनेक पापी, अपराधी, बिगड़े हुए व्यक्ति सन्मार्गपर आ जाते हैं। चिकित्सक धीरे-धीरे बोलकर कुछ पवित्र संकेत देता है, रोगी उन्हें आत्मविश्वासपूर्वक सुनता और स्वीकार करता है। उनपर विश्वास करता है और बार-बार सुनकर अपने गुप्तमनमें जमाता है। इस प्रकार नये अव्यक्त मस्तिष्कमें उत्तम विचारों और माननीय भावनाओंको जमाया और विकसित किया जा सकता है।

ये पवित्र शब्द शुभ संकेत हैं। उन्हें अव्यक्त प्रदेशमें जमानेसे उनका नवनिर्माण होता है। अतः जो शब्द हम सुनते अथवा बोलते हैं, उनसे लाभ उठाया जा सकता है। प्रत्येक पवित्र शब्द हमारे गुप्त मस्तिष्कमें मानसिक रूपमें नव-निर्माण करता है। शोक और हर्ष, दुःख और सुख, भय और साहस, राग और द्वेष, ज्ञान और अज्ञान——ये सब हमारे गुप्तमनकी नाना अवस्थाएँ हैं। अपने साहस और आत्मबलमें विश्वास कीजिये तो शक्ति और स्वास्थ्य प्राप्त होगा, नयी स्फूर्ति एवं प्रसन्नता मिलेगी।

सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक लेखिका श्री हण्णुहाराने अपनी पुस्तक (एकाग्रता और दिव्य शक्ति) में मानव-मस्तिष्ककी ग्रहण-शक्तिका वर्णन किया है। वे लिखती हैं कि हमारा मस्तिष्क विचार-तरंगें फेंकता है और बाहरसे आनेवाली ध्वनि-तरंगोंको जाने-अनजाने ग्रहण करता जाता है। सशक्त और बलवान् मस्तिष्क उत्तम तरंगे फेकते है और दूसरोंको प्रभावित करते हैं। इन्हें हम Transmitter कह सकते है। जो मस्तिष्क ध्वनि-तरंगोंको ग्रहण करते है, वे रेडियोकी तरह Receiver है। जो सशक्त मस्तिष्ककी विचार-तरंगोंको स्वीकार करते हैं, वे हो सकता है कि कुछ कमजोर ही हों, किंतु वे पवित्र विचारवाले मस्तिष्कका एक हिस्सा बनते हैं। ये तरंगें हमें वातावरणसे भी मिलती हैं। ध्वनि (शब्द और संगीत) अव्यक्त मस्तिष्कका निर्माण करती है। यह ध्वनि सार्थक होनी चाहिये। कुछ चुने हुए शब्द (कविताएँ, संगीत, लय, वाद्य, भजन, कीर्तन) सुननेवालेको प्रभावित करते रहते हैं।'

आगे उदाहरण देती हुई वे लिखती हैं, 'मान लीजिये, आप 'प्रेम' शब्द बोलते हैं तो वातावरणमें एक विशेष प्रकारका कम्पन पैदा होता है। ज्यों ही आप उस शब्दके व्यापक अर्थपर गहराईसे विचार करते हैं, त्यों ही ध्वनिकी थरथराहट पैदा होने लगती है। ये तरंगें तेजीसे बाहरके वातावरणमें फैलती है और सुननेवाले सूक्ष्म लकीरोके रूपमें अपने मस्तिष्कमें पकड़ लेते हैं। इस क्रियासे कमजोर मस्तिष्कोंका सही दिशामें विकास होता है। इन उदाहरणोंसे

संकीर्तनका मनोविज्ञान स्पष्ट हो जाता है। हमारे विचार ध्वनिके माध्यमसे फैलते हैं। शब्दोंमें चुम्बकीय शक्ति होती है। समझदार व्यक्ति अपने मस्तिष्कको नये उपयोगी एवं शक्तिशाली विचारोंको जमनेके लिये छोड़ देते हैं।

ध्वनिमूलक विचार (संतोके भजन, कविताएँ, वाणियाँ, गीत, कीर्तन आदि) एक प्रकारके शुभ संकेत हैं। इनके गायनद्वारा पवित्र वातावरणका निर्माण होता है। संकीर्तन वातावरणको पवित्र बनाने और हानिकारक मनोविकारोंको दूर करनेका धार्मिक उपाय है। अपराधी-प्रवृत्तिवाले व्यक्तियोके धार्मिक भजन-कीर्तनके वातावरणमे रहनेसे उनका देवत्व जागता है। जेलमे अपराधियोंकी पवित्र मानवीय वृत्तियोको उद्दीप्त करनेका संकीर्तन निश्चित उपाय है। संगीतकी मधुर स्वर-लहरीद्वारा शुभ सात्त्विक संकेत सरलतासे गुप्तमनमें प्रवेश कर जाते हैं।

भगवान्के कीर्तन, भजन, पूजन आदिका सबसे बड़ा लाभ पवित्र धार्मिक वातावरण उत्पन्न करना है। भजन-कीर्तन करनेवालोका तो लाभ होता ही है, सुननेवालोंका भी लाभ होता है। साथ ही आस-पासके वातावरणकी शुद्धि भी होती है। मनुष्यके दोष-दुर्गुण भगवान्का नाम उच्चारण करने और श्रवण करनेसे नष्ट हो जाते हैं। आत्म-परिष्कारका सबसे अच्छा साधन कीर्तन है। इस वातावरणमें रहनेसे देवत्व विकसित होता है। सांसारिक चिन्तनाएँ एवं चिन्ताएँ दूर होती हैं।

कवियों, संतों और महात्माओने भगवान्की कृपा और कीर्तिका गुण-गान करनेमें अनेक मार्मिक भजन, गीत, वानियाँ, कविताएँ आदि लिखी हैं। भक्त तुलसी, सूरदास, नानक, रैदास, कबीर आ.. स्वरमें गीत गा-गाकर आत्म-सुधार करते और समाजको सुधारकी शिक्षा देते रहे। अधिकांश धार्मिक कविताएँ स्वान्तःसुखाय ही लिखी गयी थीं, पर सबका लक्ष्य लोक-मङ्गल रहा है। तुलसीकी 'विनयपत्रिका' ऐसे ही मार्मिक भजनोंका अमर संग्रह है। मीराके मधुर गीत आज भी मनुष्यके दोष-दुर्गुण दूर करते हैं और उन्हें आध्यात्मिकताकी ओर ले जाते हैं। तुलसीदासजीने भी कहा है—

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्हके हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥

नानकने भी बड़े मार्मिक शब्दोंमें गाया है—

रे मन रामसे कर प्रीत।
श्रवण गोविन्द गुन सुनो अरु गाउ रसना गीत॥
कहत नानक राम भज ले जात अवसर बीत॥

भगवान्का कोई पवित्र नाम, भजन, गीत लेकर बार-बार कीर्तन किया जा सकता है। कीर्तनका सबसे बड़ा लाभ ईश्वरत्वसे निकटका नाता जोड़ना है। नामसे नामीका अटूट सम्बन्ध होता है, अतः कीर्तन भगवान्को उपस्थित कर देता है। यही नहीं, इससे पवित्र धार्मिक वातावरण भी निर्मित होता है। कीर्तन करनेवालोंके विकार नष्ट हो जाते हैं। कीर्तनसे पवित्र विचारोंकी तरंगे दोष-दुर्गुणोंको दूर कर देती हैं और सांसारिकतासे हटाकर हमारा ध्यान आध्यात्मिकता (ईश्वरत्व) की ओर केन्द्रित करती है। ईश्वरके अनेक नाम हैं, जैसे राम, कृष्ण, माधव, हरि, मुरारि, साहिब, ओम्, भगवान् आदि। विष्णुसहस्रनाम आदि ग्रन्थोमें उनके हजारों नाम आये हैं। इनमेंसे किसी भी नामका कीर्तन किया जा सकता है। कीर्तन मनमें शान्ति, सुख, आनन्द और धैर्यकी भावना विकसित करता है। ...जिये, पवित्र शब्दोको कानोंमें पड़ने दीजिये। ...नामोच्चारणका फल महान् है।

संकीर्तन एवं ईश्वर-स्मरणके लिये साधकोंको सुझाव

(स्व० श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)

भगवन्नाम-स्मरणमें सौ सिद्धियाँ हैं, परंतु मनुष्य धैर्य धारण कर उसमें रत नहीं होता। रामदास स्वामी प्रातः शीघ्र ही उठकर जलाशयमें खड़े रहकर प्रातःसे सायंके छः बजेतक जप करते थे। इस प्रकार उन्होंने चौदह वर्षतक जप किया। विद्यारण्य स्वामीने गायत्रीके बारह या चौबीस पुरश्चरण किये थे। एक पुरश्चरणमें चौबीस लाख जप होता है। इन दोनों महात्माओंकी सिद्धियाँ जगत्-प्रसिद्ध हैं। इसलिये ईश्वरके नामका जप करनेवाले साधकको धैर्य धारण कर सतत जप करना चाहिये अर्थात् प्रतिदिन नियमानुसार जप करना चाहिये। अपने दैनिक कार्योंसे जितना भी समय बचाकर उसका सदुपयोग हम भगवन्नाम-स्मरणमें करेंगे, उतना ही अधिक समय ईश्वर हमें देगा; परंतु एक म्यानमें दो तलवार नहीं रह सकती। जगत् और ईश्वर—दोनोंको एक साथ नहीं सँभाला जा सकता। भजनके बदले जगत्को नहीं भजा जा सकता। धंधा या नौकरीमें छुट्टी ही कहाँ मिलती है, छुट्टी मिले तो भजन करें—ऐसा कहनेवाले भूल कर रहे हैं और मायाके पीछे भ्रमवश दौड़ रहे हैं। जगत्को भजनेवालोंको आत्मा नहीं मिलती, परंतु आत्माको भजनेवालोंको जगत् और आत्मा दोनों मिलते है। ऐसा मुमुक्षु जगत्का, मायाका अपनी आवश्यकताके अनुरूप उपयोग कर अन्यत्र उपेक्षा रखता है; क्योंकि माया या जगत्को ऐसा साधक अपने नाशका कारण समझता है। अतएव आज ही इस बातका हम परीक्षण करें कि हमारा कितना समय ईश्वर-स्मरणरहित बीत जाता है। फल-प्राप्तिकी तीव्र उत्कण्ठा और तड़पनको छोड़कर सतत जप करते रहना चाहिये। शिथिलता, प्रमाद, मोह, क्रोध, आलस्य और निद्रा—ये सब पापके फल हैं। जप करते समय ये सब उपस्थित हो जाते हैं। ये लेनदार हैं, ऋण वसूल करने आये हैं। उस समय बहुत ही उत्साहसे ईश्वर-स्मरण करना चाहिये, इससे ये भाग जायँगे। ईश्वर-स्मरणके अन्तराय ईश्वर-स्मरणसे ही नष्ट होते हैं।

ईश्वर-स्मरणके फल तो बहुत हैं; परंतु उनको काम, क्रोध, लोभ आदि मिलकर मार्गमें ही खा जाते हैं। शरीर-क्रियाके चक्रके वेगके कारण मनमें वेग उत्पन्न होता है, इससे वह समाहित नहीं हो पाता। मोक्षकी इच्छा रखनेवाले साधकको सर्वप्रथम अपने समस्त भोगोंको कम कर डालना चाहिये। भोग-त्यागके बिना सुख कभी मिलनेवाला नहीं है। भोगमें सुख तो है नहीं, दुःख अवश्य है। इससे साधकको अपना जीवन-निर्वाह कम-से-कम वस्तुओंमें हो सके, ऐसा करना चाहिये। भोग कम करनेके बाद कामको काम करना चाहिये। आरम्भमें मनुष्यको आठ घंटेसे अधिक काम नहीं करना चाहिये। पश्चात् भोग घटाते, खर्च घटाते और ईश्वरकी अनुकूलता प्राप्त होते धीरे-धीरे काम घटाते रहना चाहिये तथा ईश्वरमें मन लगाते रहना चाहिये। इससे ईश्वरस्मरण-परायण साधकको भोगके सहज प्राप्त साधनोंको छोड़कर अन्य किसी भी वस्तुकी इच्छा या आकाङ्क्षा नहीं करनी चाहिये। प्राप्त भोगोंको भी, जिस प्रकार दवा पी जाती है, उसी प्रकार भोगकर साधकको उनसे मुक्त हो जाना चाहिये, अर्थात् भोगमें आसक्ति न रखे।

परोपकार करनेवालेमे इस लोक या परलोककी वासना रहती है। उसका काम करनेका समय कम नहीं होता। वह जन्म-मरणके बन्धनसे नहीं छूटता। उसमें यदि वासना न हो तो वह केवल स्वधर्मके अनुरूप व्यवहार करता रहेगा। वह ईश्वरद्वारा भेजा गया आर्ष

जीव होगा। वह तो मूलसे ही मुक्त जीव है, अर्थात् उसका फिरसे जन्म नहीं होनेवाला है, अन्यथा वह जन्म-मरणके चक्रमें पडेगा; परंतु सच्चा साधक अपने अन्य धर्मको जानकर उन्हे करता हुआ आत्मसाक्षात्कार करता है और इन कर्मोंसे मुक्त होता है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रभु-स्मरण करनेवाले साधकको कभी भी क्रोध नहीं करना चाहिये। क्रोध महातपस्वियोंके रूपको क्षणमात्रमें खा जाता है। शरीरमें रहनेवाला यह भयंकर राक्षस 'क्रोध' साधकके मांस और खूनको चूस लेता है। इतना ही नहीं, परंतु हमारी बुद्धिके तेजको समाप्त कर देता है और मोह उत्पन्न करता है। काम और क्रोध—इन दोनोंने अनेक साधकोंको ईश्वरके मार्गसे च्युत किया है। क्रोधके नाशका उपाय मौन है।

अन्तःकरणकी वृत्तियोंको इस संसारके पदार्थोंसे हटाकर ईश्वरकी ओर लगाना ही योग है। इसका उपाय है ईश्वर-स्मरण। यह अभ्यास और वैराग्यसे ही साध्य है। ईश्वर-नामका जप ही अभ्यास है। इस संसारके भोगपदार्थोंसे उपराम-वृत्ति ही वैराग्य है। इस संसारमें तीन वस्तुएँ है—आत्मा, परमात्मा और अनात्मा। आत्मा हम हैं, परमात्मा सर्वनियन्ता ब्रह्म है और जगत्‌के पदार्थ अनात्मा हैं। हम ऐसा मान लेते हैं कि अनात्मपदार्थसे हमें सुख और आनन्द मिलेगा, परंतु जगत्‌के पदार्थ हमारे अनुकूल हो जायँगे और वे हमें सुख दे सकेंगे, यह आशा कभी न रखनी चाहिये। हम घूम सकते हैं, परंतु जगत् नहीं घूम सकता। ग्रीष्म ऋतुमें परिवर्तन नहीं हो सकता, परंतु शीतके उपचारोंद्वारा हम गर्मीका निवारण कर सकते हैं। यह संसार नाशवान् है, स्थिर नहीं है। नाशवान् वस्तुसे सुख कैसे मिल सकता है? जगत् नाशवान् है, चञ्चल है, परिणामी है, भिन्न स्वभाववाला है, फिर भी इसका जो स्वभाव निश्चित है, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। इससे इस संसारके सारे पदार्थ हमारे अनुकूल हो जायँ, हमारी इच्छाओंके अनुरूप हो जायँ—ऐसी आशा करना व्यर्थ है।

यह संसार अपने स्वभावानुसार ही वर्ताव करेगा, व्यवहार करेगा। हमारे और उसके बीच साम्य नहीं, वैषम्य है। हम नित्य है, वह अनित्य है, हम चेतन है, वह जड है। समानके बीच सम्बन्ध सुखद होता है, विषमका सम्बन्ध दुःखदाता है। हमारे और परमात्माके बीच साम्य है। इसलिये जगत्‌के पदार्थोंके प्रति अपनी रुचि छोड़कर परमात्माकी ओर अपनी वृत्तियोंको मोड़ दें और परमात्माको प्राप्त करें। जगत्‌के पदार्थोंसे वृत्तियोंको मोड़ लेना ही 'वैराग्य' है। परमात्मामें वृत्ति जोड़ना ही अभ्यास है। इस प्रकार वैराग्य और अभ्याससे धीरे-धीरे प्रभुकी प्राप्ति होगी। काम, क्रोध और लोभ ईश्वरस्मरणसे दूर हो जाते हैं। इसलिये साधकको चाहिये कि वह 'ईश्वर-स्मरण इतने समयतक करूँगा या इतनी मालाका जप करूँगा' ऐसा दृढ़ संकल्प करे। यदि इसमें साधक पीछे न हटे, अपितु दृढ़तापूर्वक आगे बढ़े तो काम, क्रोध, लोभपर समय बीतते विजय प्राप्त कर सकता है और उसके ईश्वर-स्मरणसे ये तीनो शत्रु नष्ट हो जा सकते हैं। हाँ, इसमें समय अवश्य लगता है। वास्तवमें काम, क्रोध, लोभ मनुष्यका पराभव करते है। उस समय ईश्वर-स्मरणमें रुचि कम हो जाती है, स्मरण कम हो जाता है, परंतु ईश्वर-स्मरण कम न हो, दिनोदिन बढ़े तो काम, क्रोध और लोभकी कमी हो जाय।

अन्तःकरणकी वृत्तियोंके दो भोक्ता हैं—एक ओर काम, क्रोध और लोभ हैं और दूसरी ओर ईश्वर-स्मरण है। एक बार केवल एक ही पक्ष भोग सकता है। दूसरा पैठे तो समझ लो कि जगह खाली थी, स्थान रिक्त था। यदि सदा निरन्तर हरिस्मरण होता रहे तो

अजामिल—उद्धार

"नारायण" नामका प्रभाव

तोतेका भगवन्नामोच्चारण

सुआ पढ़ावत गनिका तारी

जीवन्ती वेश्या

(सुगा पढ़ावत गणिका तारी)

प्राचीनकालकी बात है । किसी नगरमें जीवन्ती नामकी एक वेश्या रहती थी । लोक-परलोकके भयसे रहित होकर वह वेश्या-वृत्तिसे उदर-पोषण किया करती थी । एक दिन एक तोता वेचनेवालेसे उसने एक सुन्दर छोटा-सा सुग्गेका बच्चा खरीद लिया । उसे कोई संतान न थी, इसलिये वह उस पक्षि-शावकका पुत्रवत् पालन करने लगी । प्रातःकाल उठते ही उसके पास बैठकर उसे 'राम-राम' पढ़ाती । जब वह राम-राम कहता, तब वह उसे अच्छे-अच्छे रसभरे फल खानेको देती । सूआ 'राम-राम' सीख गया और अभ्यासवश बड़े सुन्दर स्वरसे वह रात-दिन 'राम-राम' बोलने लगा । वेश्या छुट्टी पाते ही उसके पास आकर बैठ जाती और उसीके साथ वह भी 'राम-राम'का उच्चारण किया करती । एक दिन एक ही समय दोनोंका मृत्युकाल आ गया । 'राम' उच्चारण करते-करते दोनोने प्राण त्याग दिये । सूआ भी पहलेका पापी था । अतएव दोनो पापियोको लेनेके लिये यमराजके कई चण्ड आदि दूत हाथोंमें फाँसी और अनेक प्रकारके शस्त्र लिये वहाँ पहुँचे । इधर विष्णुतुल्य पराक्रमी शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुके दूत भी आ उपस्थित हुए और यमदूतोंसे बोले—'तुमलोग इन दोनों निष्पाप जीवोंको क्यो फाँसीमें बाँध रहे हो, तुम किसके दूत हो ?'

यमदूत—हम महाराज सूर्यपुत्र यमराजके किङ्कर हैं । इन दोनो पापात्माओंको यमपुरीमें ले जाते हैं ।

विष्णुदूत—(क्रोधसे हँसकर) इन यमदूतोंकी बात तो सुनो ! क्या भगवन्नाम लेनेवाले हरिभक्त भी यमराजसे दण्ड पाने योग्य हैं ? दुष्टोका चरित्र कभी उत्तम नहीं होता, वे सर्वदा ही साधुओंसे द्वेष रखते हैं । पापी मनुष्य अपने ही समान सबको पापी समझा करते हैं । पुण्यात्मा पुरुषोंको सारा जगत् निष्पाप दीखता है । धार्मिक पुरुष पुण्यात्माओंके पुण्यचरितको सुनकर प्रसन्न होते हैं और पापियोको पापकथासे प्रसन्नता होती है । भगवान्‌की कैसी माया है । पापसे महान् पीड़ा होती है, यह समझते हुए भी लोग पाप करनेसे नहीं चूकते ।

विष्णुदूतोंने इतना कहकर चक्रसे दोनोके बन्धन काट दिये । इसपर यमदूतोको बहुत क्रोध आया और वे विष्णुदूतोको ललकारकर बोले—'तुमलोग पापियोंको लेने आये हो, यह जानकर बड़ा आश्चर्य होता है । यदि तुमलोग बलपूर्वक उन्हें ले जाना चाहते हो तो पहले हमसे युद्ध करो ।'

दोनों पक्षके दूतोंमें घोर युद्ध होने लगा । अन्तमें विष्णुदूतोसे पराजित होकर अपने मूर्च्छित सेनापति चण्डको उठाकर हाहाकार करते हुए यमदूत यमपुरी भाग गये । इधर विष्णुदूतोने हर्षके साथ जयध्वनि करके दोनोको विमानमें बैठाया और वे उन्हें विष्णुलोक ले गये ।

रक्ताक्त कलेवर यमदूत यमराजके सामने जाकर रोने लगे और बोले—'महाबाहु सूर्यपुत्र ! हम आपके आज्ञाकारी सेवकोंकी विष्णुदूतोने बहुत ही दुर्गति की है । आपका प्रभुत्व अब कौन मानेगा ! यह पराभव हमारा नहीं, आपका है ।'

यमराजने कहा—दूतो ! यदि उन्होंने मरते समय 'राम' इन दो अक्षरोंका स्मरण किया है तो वे मेरे द्वारा कभी दण्डनीय नहीं हैं । उस 'राम' नामके प्रतापसे भगवान् नारायण ही उनके प्रभु हो गये—

दूता यदि स्मरन्तौ तौ रामनामाक्षरद्वयम् ।
तदा न मे दण्डनीयौ तयोर्नारायणः प्रभुः ॥

'संसारमें ऐसा कोई पाप नहीं, जिसका रामनाम-स्मरणसे नाश न हो जाय। किंकरगण! सुनो, जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक मधुसूदनका नाम लेते है, गोविन्द, केशव, हरि, जगदीश, विष्णु, नारायण, प्रणत-वत्सल और माधव—इन नामोंका भक्तिपूर्वक सतत उच्चारण करते हैं, सदा इस प्रकार कहते हैं—'लक्ष्मीपते! सकलपापविनाशकारी श्रीकृष्ण! केशिनिषूदन! आप हमलोगोंको अपना दास बनायें।' ऐसे लोगोंको मै दण्ड नहीं दे सकता। जिनकी जीभपर दामोदर, ईश्वर, अमरवृन्दसेव्य, श्रीवासुदेव, पुरुषोत्तम और यादव आदि नाम विराजमान रहते है, मै उन लोगोंको प्रतिदिन प्रणाम करता हूँ। जगत्के एकमात्र स्वामी नारायण मुरारिका माहात्म्य-कीर्तन करनेमें जिन लोगोंका अनुराग है, वीरो! मै उनके अधीन हूँ।'

'जो भक्त भगवान् विष्णुकी पूजामें लगे रहते है, कपटरहित हो एकादशीका व्रत करते हैं, विष्णुचरणामृतको मस्तकपर धारण करते हैं, भोग लगानेके बाद प्रसाद ग्रहण करते हैं, तुलसी-सेवी हैं, अपने माता-पिताके चरणोंको पूजनेवाले हैं, ब्राह्मणोंकी पूजा और गुरुकी सेवा करते है, दीन-दुखियोंको सुख पहुँचाते हैं, सत्यवादी, लोकप्रिय और शरणागतपालक हैं, दूसरोंके धनको विषके समान समझते हैं, अन्न, जल और भूमिका दान करते हैं, प्राणिमात्रके हितैषी हैं, जीविकाहीनोको आजीविका देते है, शान्तचित्त हैं, जातिके सेवक हैं, दम्भ-क्रोध-मद-मत्सरसे रहित हैं, पापदृष्टिसे बचे हुए हैं और जितेन्द्रिय हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ, मै उनके अधीन हूँ, ऐसे लोगोंकी मैं कभी नरकके लिये चर्चा भी नहीं करता।'

यमदूत इस प्रकार यमराजके द्वारा समझाये जानेपर भगवान्का माहात्म्य जान गये। 'भगवन्नाम वेदसे भी अधिक है'—'सर्ववेदाधिकानि वै'। तत्त्वज्ञ पुरुष रामनामका स्मरण करते हैं। 'राम' मन्त्र सब मन्त्रोंसे अधिक महत्त्वका है। रामनामका पूरा प्रभाव भगवान् महादेवजी ही जानते हैं, अन्य कोई भी देवता नहीं जानते। राम-नामके उच्चारण (कीर्तन)में कोई श्रम नहीं होता, सुननेमें भी बड़ा सुन्दर है, तो भी दुष्ट मनुष्य इसका स्मरण नहीं करते। जब रामनामसे अत्यन्त दुर्लभ मुक्ति मिल सकती है, तब रामनामको छोड़कर अन्य करनेयोग्य काम ही कौन-सा है। जबतक रामनामका स्मरण चालू नहीं होता, तभीतक पाप रहते हैं। अतएव सबको श्रीरामनामका जप, स्मरण, कीर्तन करना चाहिये।

मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ रामेति नाम यः स्मरेत्।
स पापात्मापि परमं मोक्षमाप्नोति जैमिने॥

'जैमिने! मृत्युसमयमें रामनामका स्मरण करनेसे पापात्मा भी मोक्ष प्राप्त कर लेता है। रामनाम समस्त अमङ्गलहारी, मनोरथपूरक और मोक्षप्रद है, इसलिये बुद्धिमानोंको सदा राम-नामका स्मरण-कीर्तन करना चाहिये।'

रामेति नाम विप्रर्षे यस्मिन्न स्मर्यते क्षणे।
क्षणः स एव व्यर्थः स्यात् सत्यमेतन्मयोच्यते॥
रामनामामृतस्वादभेदज्ञा रसना च या।
तन्नाम रसनेत्याहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेतन्मयोच्यते।
स्मरन्तो रामनामानि नावसीदन्ति मानवाः॥

'जिस समय मनुष्य राम-नाम-स्मरण नहीं करता, वही समय व्यर्थ जाता है—यह मै सत्य कहता हूँ। जो रसना रामनामके रस-भेदको जानती है, तत्त्वदर्शी मुनिगण कहते हैं कि बस, वही 'रसना' है। मैं सत्य, सत्य और फिर सत्य कहता हूँ कि राम-नामका स्मरण-कीर्तन करनेवाले मनुष्य कभी विपादको नहीं प्राप्त होते।

(पद्मपुराण)

प्रभु श्रीनित्यानन्द

मध्यकालीन भारतीय इतिहासके भक्ति-विकासमें निताई और निमाईका नाम बड़ी श्रद्धासे लिया जाता है। भगवद्भक्तिके प्रचारसे निताई (नित्यानन्द) और निमाई (चैतन्यदेव)ने बङ्गदेशको विशेषकर उत्कलको तो बहुत प्रभावित किया। नित्यानन्द मधुरातिमधुर भक्ति-सुधाका पान करके रात-दिन उन्मत्तकी तरह हरिनाम-ध्वनिसे असल्य जीवोंका उद्धार करते रहते थे।

श्रीनित्यानन्दका जन्म शस्यश्यामला बङ्गभूमिके वारभूमि जनपदके एकचाका गाँवमें शाके १३९५ के माघमासमें हुआ था। उनके पिता हाँडाई पण्डित और माता पद्मावती दोनों ही बड़े धर्मनिष्ठ और विष्णुभक्त थे। एक बार पद्मावतीने स्वप्नमें एक महापुरुषको देखा। उन्होंने कहा कि तुम्हारे गर्भसे एक ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, जो पापियोंका उद्धार करेगा और नर-नारियोंको भक्तिका मार्ग दिखायेगा।' नित्यानन्दने महापुरुषके कथनकी सत्यता प्रमाणित कर दी। बचपनसे ही नित्यानन्दमें अलौकिक पुरुषके लक्षण प्रकट होने लगे थे। ये बाल्यावस्थासे ही संसारके प्रपञ्चोंके प्रति उदासीन-से थे और श्रीकृष्णकी बाल-लीलाका अनुकरण करते-करते उन्मत्त हो जाया करते थे।

एक बार इनके घरपर एक संन्यासी आये। निताईके स्वभाव और उनकी प्रतिभापर आकृष्ट होकर वे इन्हें अपने साथ लेते गये! ये तीर्थाटन करने चले गये। अयोध्या, हस्तिनापुर होते हुए व्रज पहुँचे। इस तीर्थयात्रामें इनकी श्रीमाधवेन्द्रपुरीसे भेंट हुई। दोनों प्रेमविह्वल होकर एक दूसरेसे मिले। तदनन्तर निताई वृन्दावनमें एक पागलकी तरह भगवान् श्रीकृष्णके अन्वेषणमें घूमने लगे। बिना माँगे कोई कुछ दे देता तो खा लेते, नहीं तो भूखे ही रह जाते। महात्मा ईश्वरपुरीने इनसे एक बार कहा—'ठाकुर! यहाँ क्या देखते हो? तुम्हारे श्रीकृष्ण तो नवद्वीपमें शचीके घर पैदा हो गये हैं।' इसपर निताई नवद्वीपके लिये चल पड़े और नवद्वीप पहुँचकर नन्दन आचार्यके घर ठहर गये। निमाई पण्डित (श्रीचैतन्य) ने अपने शिष्योंसहित निताईके दर्शन किये। उनके कानोंमें कुण्डल थे। शरीरपर पीताम्बर लहरा रहा था। उनकी भुजाएँ घुटनोंतक लम्बी थीं। उनकी कान्ति अत्यन्त दिव्य थी। निमाई अपने-आपको अधिक समयतक सँभाल न सके। श्रीगौरचन्द्रने इनकी चरण-वन्दना की। नित्यानन्दने उन्हें अपने प्रेमालिङ्गनमें आबद्ध कर लिया। दोनोंने अद्भुत कम्प, अश्रुपात, गर्जन और हुंकारसे सारे वातावरणको प्रभावित कर दिया। चैतन्यने कहा—'बंगालमें भक्ति-भागीरथीके प्रवाहित होनेका समय आ गया है।' निताई और निमाईकी अलौकिक छविने नवद्वीपको मनोमुग्ध कर लिया।

शची माता निताईको अपने बड़े पुत्रके समान मानती थीं। इनके जीवनकी अनेक अलौकिक घटनाएँ हैं। एक बार ये चैतन्यदेवके घर अवधूतवेशमें पहुँचे। गौर उस समय विष्णुप्रियासे बातें कर रहे थे। विष्णुप्रिया लज्जासे घरमें छिप गयीं। निताईके नयनोंसे अश्रु बह रहे थे, रसनासे मधुर हरिनामका उच्चारण हो रहा था। वे बाह्यज्ञान-शून्य थे। गौरने माला पहनाकर इनका चरणामृत लिया। निताई चैतन्यके आदेशसे नवद्वीप और उसके आस-पासके स्थानोंमें हरिनामका प्रचार करने लगे। जगाई-मधाई-सरीखे पातकियोंके उद्धारमें इन्होंने महान् योग दिया। निताईने दोनों भाइयोंसे कृष्ण-नामोच्चारण करनेके लिये कहा। वे मदिरोन्मत्त थे। मधाईने निताईके सिरपर फूटा घड़ा फेंका, जिससे उनका शरीर रक्तसे सराबोर हो उठा। जगाईने मधाईको फटकारा। चैतन्यने जगाईको गले लगाया। इसपर

मवाईको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने निनाईसे क्षमा माँगी, चरण-स्पर्श किया। इस प्रकार उसका भी उद्धार हो गया।

ये नवद्वीपसे पुरी आये। फिर चैतन्यके आदेशसे गौड़देशमें हरिनामका प्रचार करनेके लिये चल पड़े। गौराङ्गके कहनेपर उन्होंने पुनः विवाहित जीवनमें प्रवेश किया। अम्बिकानगरके सूर्यदासकी कन्या वसुधा देवी और जाह्नवी (या जाह्नवा) देवीका उन्होंने पाणिग्रहण किया और खड़दहमें भगवती भागीरथीके तटपर निवास करने लगे। उनके वीरचन्द्र नामका एक पुत्र भी हुआ। इनका यह सब अमृतोपम विस्तृत चरित्र बंगलाके श्रेष्ठ ग्रन्थ 'नित्यानन्देर शक्ति या जाह्नवा'में द्रष्टव्य है। उसमें इनकी वंशपरम्परा और शिष्यपरम्पराका भी वर्णन है।

एक दिन भगवान् श्यामसुन्दरके मन्दिरमें हरिका नाम लेते-लेते ये सदाके लिये अचेत हो गये। भगवान्ने भक्तको अपना लिया।

श्रीयामुनाचार्य

भारतमें भक्तिके आचार्यों और दार्शनिकोंने जिस प्रकार भारतीय संस्कृति तथा धर्म, समाज और शिष्टाचारकी रक्षा की, वह इतिहासकी एक चिरस्मरणीय घटना है। श्रीशंकराचार्य, श्रीयामुनाचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्व, श्रीवल्लभ, श्रीचैतन्य आदिने इस शुभकार्यमें महान् योग दिया। भक्तिकी आदिभूमि दक्षिण भारत है। बड़े-बड़े भक्तिके आचार्योंने प्रायः दक्षिण भारतमें ही जन्म लिया। उसी पावन भूमिके श्रीयामुनाचार्य महान् भक्त, भगवान्के परम विश्वासी और विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्तके प्रचारक थे। भगवद्-भक्तिके प्रचारमें इन्होंने स्तुत्य योगदान दिया।

यामुनाचार्यका जन्म संवत् १०१० वि०में मदुरामें हुआ था। श्रीवैष्णवसम्प्रदायके आचार्य नाथमुनिके पुत्र ईश्वरमुनि उनके पिता थे। पिताकी मृत्युके समय उनकी अवस्था दस सालकी थी। पितामहके संन्यास ले लेनेपर उनका पालन-पोषण दादी और माताकी देख-रेखमें हुआ। वे बाल्यावस्थासे ही अद्भुत प्रतिभाशाली और अध्ययनपरायण थे। इनका स्वभाव बहुत मधुर, प्रेममय और उदार था। पाण्ड्यराजके महा-पण्डित कोलाहलको शास्त्रार्थमें परास्त करनेके उपलक्ष्यमें महारानीने उन्हें आधा राज्य सौंप दिया था। रानीने उनके विजयी होनेपर 'आलवन्दार'की उपाधिसे विभूषित किया था। यामुनाचार्य जब पैंतीस सालके हुए, तब अपने देहावसान-कालमें नाथ-मुनिने शिष्यप्रवर राममिश्रसे कहा—'ऐसा न हो कि यामुन राजकार्यमें ही अपना अमूल्य समय बिता दें, विषय-भोगमें ही उनकी आयु बीत जाय।' नाथमुनिके देहावसानके बाद राममिश्र यामुनको उनकी सम्पत्तिका अधिकार सौंपनेके लिये ले जा रहे थे। रास्तेमें श्रीरंगके मन्दिरमें दर्शनके निमित्त आनेपर यामुनके हृदयमें सहसा भक्तिका स्रोत उमड़ आया। इनके हृदयमें पूर्ण और अखण्ड वैराग्यका उदय हुआ। माया और राज्यभोगकी प्रवृत्तिका नाश हो गया। इन्होंने शुद्ध हृदयसे भगवान् श्रीरंगकी स्तुति की—'परमपुरुष! मुझ अपवित्र, उद्दण्ड, निष्ठुर और निर्लज्जको धिक्कार है, जो स्वेच्छाचारी होकर भी आपका पार्षद होनेकी इच्छा करता है। आपके पार्षदभावको बड़े-बड़े योगीश्वरोंके अग्रगण्य तथा ब्रह्मा, शिव और सनकादि भी, पाना तो दूर रहा, मनमें सोच भी नहीं सकते।' इन्होंने अत्यन्त सादगी और विनम्रतासे कहा कि 'आपके दास्यभावमें ही सुखका अनुभव करने-वाले सज्जनोंके घरमें मुझे कीड़ेकी भी योनि मिले, पर दूसरोंके घरमें मुझे ब्रह्माजीकी भी योनि न मिले।

ये भगवान् श्रीरंगके पूर्ण भक्त हो गये। इनके अधरोंपर भक्तिकी रसमयी वाणी विहार करने लगी। ये भगवद्-गुण-वर्णन-कीर्तनमें जीवनकी सार्थकता करने लगे।

श्रीयामुनाचार्यने भगवान्‌को पूर्ण पुरुषोत्तम माना, जीवको अंश और ईश्वरको अंशीके रूपमें निरूपित किया। जीव और ईश्वर नित्य पृथक् हैं। इन्होंने कहा कि जगत् ब्रह्मका परिणाम है। ब्रह्म ही जगत्‌के रूपमें परिणत है। जगत् ब्रह्मका शरीर है। ब्रह्म जगत्‌की आत्मा है। आत्मा और शरीर अभिन्न हैं। इसलिये जगत् ब्रह्मात्मक है। ब्रह्म सविशेष कल्याणगुणगणसागर सर्व-नियन्ता है। जीव स्वभावसे ही उसका दास है, भक्त है। भक्ति जीवका स्वधर्म है, आत्मधर्म है। भक्ति शरणागतिका पर्याय है। भगवान् अशरणशरण हैं।

यामुनाचार्य श्रीरामानुजके परमगुरु थे। स्तोत्ररत्न, सिद्धित्रय, आगमप्रामाण्य और गीतार्थ-संग्रह इनके ग्रन्थ-रत्न हैं। इनका आलवन्दार स्तोत्र बड़ा ही मधुर है। यामुनाचार्यने आजीवन भगवान्‌से अनन्य भक्तिका ही वरदान माँगा। इन्होंने भक्तिके स्मरण-कीर्तनका ही प्रतिपादन इसी स्तोत्र तथा अन्य रचनाओंमें किया है। भगवान्‌के चरणोंकी शरण लेनेमें इन्हें बन्धनमुक्ति दीख पड़ी। ये अपने समयके महान् दार्शनिक, अनन्य भक्त और विचारक थे।

संकीर्तनाचार्य स्वामी हरिदास

जुगल-नाम सों नेम, जपत नित कुंजबिहारी।
अवलोकत नित रहैं केलि-सुखके अधिकारी॥
गान-कला-गंधर्व स्याम स्यामाकों तोषैं।
उत्तम भोग लगाय, मोर मरकट तिमि पोषैं॥
नित नृपति द्वार ठाढ़े रहैं दरसन आसा जास की।
आसधीर उद्योत कर 'रसिक' छाप हरिदास की॥
(नाभादासजी)

श्रीस्वामी हरिदासजी महाराजका जन्म-संवत् अनिश्चित-सा है; किंतु इसमें संदेह नहीं कि ये सम्राट् अकबरके सिंहासनारूढ़ होनेके पहले ही प्रख्यात हो चुके थे। स्वामीजी कहाँ, किस कुलमें अवतीर्ण हुए थे, यह भी विवादास्पद-सा है। वे लोग, जो इनके वंशधर कहे जाते हैं, इन्हें सारस्वत ब्राह्मण मुलतानके समीप उच्च गाँवका निवासी बताते हैं और स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदासने 'भक्त-सिन्धु'के अनुसार इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण कोलके निकट हरिदासपुरका निवासी होना लिखा है। भक्तसिन्धुके साथ स्वामीजीकी शिष्य-परम्परावाले श्रीसहचरिशरण भी अपना स्वर मिला रहे हैं—

'श्रीस्वामी हरिदास रसिक सिरमौर अनीहा।
द्विज अनन्य बिरताए कृष्ण कहि सकत न सीहा॥
गुरु अनुकम्पा मिल्यो ललित निधिवन तमालके।
सत्तर लौं तरु बैठि गने गुन प्रिया लालके॥'
(भागवत रसिककी वाणी पृ० १३१)

स्वामी हरिदासजी बड़े ही त्यागी, निःस्पृह और रसिकशिरोमणि महात्मा थे। निम्बार्क-सम्प्रदायके अन्तर्गत 'टट्टीसंस्थान' के संस्थापक आप ही हैं। संगीतके आप सुविख्यात आचार्य माने जाते हैं। प्रसिद्ध गायनाचार्य तानसेन आपके ही शिष्य थे। कहते हैं, एक बार साधुका वेष धारण कर तानसेनके साथ बादशाह अकबर भी स्वामीजीका संगीत सुनने गये थे। उनके द्वारा अधिकाधिक भेंट रखनेपर भी आपने कुछ ग्रहण नहीं किया।

आप अष्टप्रहर श्रीराधाकृष्णके लीला-विहारमें मस्त रहा करते थे। आपकी संगीत-कला भगवत्कीर्तनमें चरितार्थ थी। आप लीला-गान-कीर्तनके भावावेशमें प्रायः सहजा-समाधिमें आ जाते थे। सुनते हैं, एक बार एक भक्त स्वामीजीको भेंट करनेके लिये इत्रकी एक शीशी लाया। स्वामीजीने उस शीशीको जमीनपर उँड़ेल

दिया । सेवकके पूछनेपर आपने इत्र उँडेल देनेका यह कारण बतलाया कि 'आज मैं श्रीविहारीजीके साथ होली खेल रहा था । तुम अच्छे अवसरपर इत्र लाये । देखो, काम आ गया । मैंने तुम्हारी शीशीका इत्र श्रीविहारीजीके ऊपर उँड़ेला है । जमीनपर नहीं; विश्वास न हो तो देख आओ ।' सचमुच ही श्रीविहारीजीके वस्त्र इत्रसे सराबोर पाये गये । महात्माओंके भक्ति-भाव अद्भुत होते हैं ।

स्वामीजीने पदोंके अतिरिक्त अन्य छन्दोंमें कविता नहीं लिखी ।* आपके पद भी ऐसे हैं जो साधारणतया पढ़नेमें पिंगल-संगत नहीं जान पड़ते, पर संगीतके रूपमें वे पूरे उतरते हैं । वे प्रायः सब-के-सब गेय हैं और राग-रागिनियोंमें बँधकर अलौकिक भावप्रवणता उत्पन्न कर देते हैं । उनमें कविताका चमत्कार चाहे भले न हो पर मनोहारिता, मार्मिकता और भक्ति तो उनमें बड़े ऊँचे स्तरकी देखनेको मिलती है । आपने सिद्धान्त और शृङ्गार——दोनोंपर ही पदावली लिखी है । आपके सिद्धान्तके उन्नीस तथा शृङ्गारसम्बन्धी एक सौ दस पद मिलते हैं । आपकी विहार-विषयक पदावलीको 'केलि-माला' भी कहते हैं । टट्टी-संस्थानमें जो एक-से-एक बढ़कर सुकवि, त्यागी, अनुरागी और अनुभवी महात्मा हुए हैं और उन्होंने श्रीकृष्ण-सम्बन्धी कविता-सरिताके अविरत प्रवाहमें जो योग दिया है, इस सबका श्रेय रसिक-सम्राट् श्रीस्वामी हरिदासजीको ही है । आपके कुछ पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं——

हरिके नामकौं आलस क्यों,
करत है रे, काल फिरत सर साँधैं ।
हीरा बहुत जवाहर सँचे,
कहा भयो हस्ती दर बाँधैं ॥
बर-कुबेर कछू नहिं जानत,
चढ़ो फिरत है काँधैं ।
कहि हरिदास, कछू न चलत जब
आवत अन्तकी आँधैं ॥

जौ लौं जीवै तौ लौं हरि भजु रे मन, और बात सब बादि ।
दिवस चारिकौ हला-भला, तूँ कहा लेइगो लादि ॥
माया-मद गुन-मद जोबन-मद, भूल्यो नगर-बिवादि ।
कहि हरिदास, लोभ चरपट भयो, काहेकी लागै फिरादि ॥

× × ×

कहो मन सब रसकौ रस-सार ।
लोक वेद कुल करमैं तजिये, भजिये नित्य-विहार ॥
गृह कामिनि कंचन धन त्यागौ, सुमिरौ स्याम उदार ।
कहि हरिदास रीति संतनकी, गादीकौ अधिकार ॥

× × ×

अब हौं कासों बैर करौं ।
कहत पुकारत प्रभु निज मुखतें घट-घट हौं बिहरौं ॥
आपु समान सबै जब लेखौं भगतन अधिक डरौं ।
श्रीहरिदास कृपातें प्रभुकी नित निरभय बिचरौं ॥

नाम ही सब कुछ है

राम निरंजन देव भेद जाणैं शिव शंकर ।
रात दिवस लव लाय रटत रामहिं निज अक्षर ॥
उनहिं दिया उपदेश रह्या कबहू नहिं भूला ।
राम नाम इक सार तत्व सबहीका मूला ॥
रामा रघुबंसी सकल अखिल रूप आनंद है ।
रविदास एक श्रीनाम बिनु सकल जगत यह फंद है ॥

—संत रवि साहब

* कविता-कौमुदी (भाग १)के पृष्ठ १४१ पर स्वामी हरिदासजीका एक कवित्त लिखा है । वह यह है—
गायो न गोपाल मन लाइ कै निवारि लाज, पायो ना प्रसाद साधु-मंडलीमें जाइ के ।
धायो न धमक वृन्दाविपिनकी कुंजनमें, रह्यो न सरन जाय विठ्ठलेस राइ के ॥

मैथिल-कोकिल विद्यापति

महाकवि विद्यापति भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी ह्लादिनी शक्ति श्रीराधारानीके रूप-लावण्य और भक्तिरसमें ओत-प्रोत शृङ्गारमाधुर्यके कुशल मर्मज्ञ और गायक थे। ये बंगालके प्रसिद्ध वैष्णव कवि चण्डीदासके समकालीन थे। दोनो एक-दूसरेके कविता-प्रेम और श्रीकृष्ण-भक्तिसे प्रभावित थे और परम पवित्र भगवती भागीरथीके तटपर दोनोंका एक समय मिलन भी हुआ था।

विद्यापतिने विक्रमकी पंद्रहवीं सदीमें विसपी ग्राममें जन्म लिया था। इनका परिवार विहारके तत्कालीन शासक 'हिंदूपति' महाराज शिवसिंहके पूर्वजोका कृपापात्र था और विद्यापतिने तो शिवसिंह और उनकी पटरानी महारानी लक्ष्मी (लखिमा) के आश्रयमें मिथिलाको अपनी श्रीकृष्ण-भक्ति-सुधासे वृन्दावन बना दिया था। विहार ही नहीं, उत्तरापथकी गली-गलीमे, उपवनमें और सरोवर-तटोंपर काव्यरसिक इनकी पदावलीका रसास्वादन करके प्रमत्त हो उठे थे। महाप्रभु चैतन्यदेव और उनकी भक्तमण्डलीके लिये तो कविकण्ठहार विद्यापतिके पद श्रीराधाकृष्णकी मधुर भक्तिके उद्दीपन ही बन गये थे। महाप्रभु संकीर्तन-प्रसङ्गमें उनके विरह और प्रेम-सम्बन्धी पदोंको सुनते जाते थे और साथ-ही-साथ नयनोंसे अनवरत अश्रुकी धारा बहाते जाते थे।

विद्यापति प्रतिभाशाली कवि ही नहीं, संस्कृतके अच्छे विद्वान् भी थे। श्रीमद्भागवतमें उनकी बड़ी श्रद्धा थी। उन्होंने पाठके लिये स्वयं अपने हाथसे उसकी एक प्रतिलिपि की थी। भगवती गङ्गा और श्रीदुर्गामें भी इनकी बडी भक्ति थी। इन्होंने 'गङ्गावाक्यावली' और 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' की रचना की है। इन्होंने हिमाचल-नन्दिनी भगवती पार्वतीका अपने पदोंमे कहीं-कहीं सादर स्मरण किया है। शिव और पार्वतीमे उनकी अटल निष्ठा थी। उन्होंने एक स्थलपर कहा है—

'हिमगिरि कुँवरि चरन हिरदय धरि कवि विद्यापति भाखे।'

भगवान् शिवकी स्तुतिमें इन्होंने बहुत-से पद लिखे हैं। विहारमें—विशेषकर मिथिलामें इन 'नचारियो' को लोग बड़े उत्साहसे गाया करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि विद्यापतिकी शिवभक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् भोलेनाथने इनको अपना 'उगना' नाम रखकर सेवकके वेषमें धन्य किया था। यह कहना सरल नहीं है कि विद्यापति शैव थे या वैष्णव, पर इनकी सरस पदावलीसे इनकी श्रीकृष्ण और श्रीराधाके प्रति भक्ति और दृढ आस्था प्रकट होती है। इन्होने भक्तिभावसे सने प्रेम, विरह, मिलन, अभिसार और मानसम्बन्धी अनेक सरस पदोंकी रचना करके अपनी श्रीकृष्णभक्तिकी उज्ज्वल पताका फहरायी है। श्रीकृष्ण ही इनके आराध्य देव थे। इनके पदोंमें भक्तिसुलभ सरलता और माधुर्यका सुन्दर समन्वय मिलता है। शृङ्गार और भक्तिका इतना मधुर समावेश अन्यत्र बहुत कम प्राप्त होता है। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती महाकवि गीतगोविन्दकार श्रीजयदेवका पूर्णरूपसे अनुगमन करके अपने 'अभिनव जयदेव' नामकी सत्यता चरितार्थ की है। कविशेखर विद्यापतिने अपने उपास्यका निम्नलिखित पदमें जो ध्यान किया है, उससे इनके रँगीले हृदयकी रसीली भक्तिका पता चलता है—

नंदक नँदन कदम्बक तरु तरे धीरे-धीरे मुरली बजाव।
समय सँकेत निकेतन बइसल बेरि-बेरि बोलि पठाव॥
सामरी तोरा लगि अनुखने विकल मुरारि।
जमुनाके तीरे उपवन उदवेगल फिरि-फिरि ततहि निहारि॥
गोरस बिके अबइते जाइते जनि-जनि पुछ बनमारि।
तो हे मतिमान सुमति मधुसूदन बचन सुनहु किछु मोरा।
भनइ विद्यापति सुन बरजौवति बंदह नंदकिसोरा॥

विद्यापति रसिक भक्त, महाकवि और प्रेमी संगीतज्ञ कीर्तनिया थे। इनको स्वर्ग गये पाँच सौ वर्षसे अधिक हो गये तो भी मैथिल-कोकिलकी वाणी भक्तोंके हृदयोमें गूँजती हुई उन्हें रससिक्त कर रही है।

स्वामी श्रीरामतीर्थ

प्रसिद्ध महापुरुष स्वामी रामतीर्थका जन्म पंजाबप्रान्तके मुरलीवाला गाँवमें एक उत्तम गोस्वामी ब्राह्मणकुलमें सन् १८७३ ई० की दिवालीके दिन हुआ था। जन्मके कुछ ही दिनों बाद आपकी माताका स्वर्गवास हो गया और आपके पालन-पोषणका सारा भार आपकी बुआपर पड़ा। बुआ परम साध्वी थी और बालक रामको लेकर वह कथा-कीर्तन तथा मन्दिरोंमें जाया करती थी। इनका नाम तीर्थराम था।
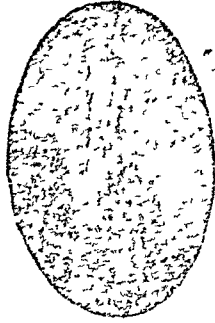
गाँवकी पढ़ाई समाप्तकर तीर्थराम गुजराँवाला आये और वहाँ भगत धन्नारामकी देख-रेखमें आपकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। आर्थिक स्थिति शोचनीय थी ही और छात्र-अवस्थामें आपको अनेकों महान् संकटोंका सामना करना पड़ा। प्रायः ऐसा होता कि भूख लगी है, पर पासमें पैसे नहीं हैं कि भोजन मिले। फिर भी बड़े मस्त रहते। पढ़ने-लिखनेमें आपकी विचक्षण बुद्धि और अप्रतिम प्रतिभा देखकर सभी चकित हो जाते। बी० ए०में प्रथम आनेपर आपको साठ रुपये मासिक छात्रवृत्ति मिलने लगी। गणितमें एम्० ए० करके आप उसी कालेजमें गणितके प्रोफेसर हो गये; परंतु धीरे-धीरे इनपर श्रीकृष्ण-प्रेमका नशा छाने लगा। ये रावी-किनारे प्रातः-सायं घंटों प्रेममें छके रहते। जब होशमें आते, तब 'हा कृष्ण ! हा कृष्ण' कहकर रोने-तड़पने लगते। छुट्टियोंमें मथुरा-वृन्दावन पहुँचते और श्रीकृष्ण-भक्तिका अमृत पीते। उपनिषद् और वेदान्तके अनेक प्रमेय ग्रन्थोंके अनुशीलनके साथ-साथ उत्तराखण्डमें जाकर इन्हें एकान्तसेवनका चसका लगा। दृढ़ वैराग्य और अपार प्रेम! गङ्गा और यमुनाका अद्भुत मिलन! उस अलमस्तीका क्या कहना! 'मैं सूर्य हूँ, मैं सूर्य हूँ, संसार-रूपी बुढ़ियाके नखरे-टखरे और हाव-भाव मुझे मुग्ध नहीं कर सकते।'

सन् १९०० ईस्वीमें नौकरी आदि छोड़कर आपने वनका आश्रय ले लिया। तीर्थराम अब स्वामी रामतीर्थ हो गये। राम अब 'राम बादशाह' बन गया। अब आप सर्वथा उन्मुक्त होकर 'ॐ! ॐ!' गुनगुनाते फिरते और अपने-आपको प्रभुमें खोये रहते। लोगोंके विशेष आग्रहपर विश्वधर्म-परिषद्में सम्मिलित होनेके लिये आप जापान गये और वहाँसे अमेरिका भी। जो भी आपकी मस्ती देखता, वही मुग्ध हो जाता। अमेरिकाके पत्रोंने आपका परिचय 'जीवित ईसामसीह'के रूपमें ससम्मान प्रकाशित किया था।

ढाई वर्ष विदेशोंमें बिताकर आप पुनः उत्तराखण्ड लौट आये। सन् १९०६ की दिवालीका प्रातःकाल था। आज आपकी मस्तीका कुछ और ही स्वरूप था। 'ॐ-ॐ' की धुन लग रही थी। आप गङ्गामें डुबकी लगाने उतरे, गङ्गाकी प्रखर धारामें शरीर बह चला। शरीर गङ्गामें बहा जा रहा है और राम 'ॐ-ॐ'की धुनमें चूर है। दिवालीके ही दिन यह प्रकाश आया था और दिवालीके दिन वह लौट गया अपने प्रभुमें। ज्योतिः-पर्वके दिन दिव्य ज्योतिमें दिव्य ज्योति विलीन हो गयी। स्वामीजीका ऐकान्तिक कीर्तन अपूर्व था।

स्वामी श्रीगोमतीदासजी

आपका शुभ जन्म अबसे प्रायः सौ वर्ष पूर्व पंजाबमें किसी सारस्वत सद्ब्राह्मणके घर हुआ था । कहते हैं कि प्रारब्धवश अपनी बाल्यावस्थामें ही आपको गृहत्याग करना पड़ा और आप किसी साधुके साथ अमृतसरके दुर्ग्याना नामक गुरुद्वारे या साधुओंके अखाड़ेमें सम्मिलित हो गये । आपके दीक्षागुरु श्रीसरयूदासजी थे । इस गुरुद्वारेमें बड़े-बड़े सिद्ध तथा विरक्त होते आये हैं । एक समय वहाँ आपसे 'मठाधीश' होनेका अनुरोध किया गया, पर आपके हृदयमें तो बाल्यावस्थासे ही वैराग्यका सच्चा भाव पैदा हो गया था । इसलिये आप चुपचाप अपने गुरुद्वारेसे निकलकर अन्यत्र चले गये । आप पैदल ही अनेक तीर्थोंमें घूमते रहे । तीर्थोंमें विचरते हुए आप चित्रकूट पहुँचे । चित्रकूटमें आपने बारह वर्षतक मौन-व्रतका अवलम्बन किया । तदुपरान्त आप मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जन्मभूमि श्रीअयोध्यापुरीकी गोदमें आ विराजे और यहाँ भी मौनव्रतका ही पालन करते हुए बारह वर्षतक मणिपर्वतपर टिके रहे । मौनव्रत समाप्त करनेपर आप ग्वालियरके सेठ प्रह्लाददासके प्रेमपूर्ण अनुरोधसे 'संतनिवास' में रहने लगे । आपने निरन्तर अपनेको छिपाये रखनेकी ही चेष्टा की, पर सच्ची विभूति क्या कहीं छिपी रह सकती है ! 'लक्ष्मणकिला'के महंत श्रीरामोदारशरणजी आपके इस योगाभ्यास और अनुपम तपोबलपर मुग्ध हो गये और आपको अपने प्रेमपाशसे ही आबद्ध कर लक्ष्मणकिलेमें ले आये । आप जहाँ ठहराये गये, उस स्थानका नाम आपने 'श्रीहनुमन्निवास' रखा । आपके इष्टदेव श्रीहनुमान्‌जी थे, यद्यपि आपकी अनन्य उपासना श्रीसीतारामके युगलनाम-कीर्तनकी ही थी ।

कहते हैं कि आपको श्रीहनुमान्‌जीका साक्षात्कार भी हुआ करता था और उनसे प्रत्यक्ष आदेश मिलता था । आपकी आयु सौसे अधिक हो गयी थी, पर आपकी दिनचर्यामें कभी कोई अन्तर न पड़ा । आप रात्रिके बारह बजेतक जागते और पहर रात रहते उठकर तीनसे छः तक अपनी श्रीसीताराम-नाम-पाठशालामें सम्मिलित होते और शुद्ध भजनानन्दमें तल्लीन हो जाते । सूर्योदय होनेपर दुबारा श्रीसरयूजीमें स्नान करके अपने उपास्य और इष्टदेव श्रीराम तथा रामकिंकर श्रीहनुमान्‌जीकी पूजामें लग जाते । पूजा समाप्त कर प्रातःकालीन हवन आदि धर्मकृत्य किया करते । श्रीविग्रहोंका शृङ्गार और सेवा तथा अर्चा भी अपने ही हाथों किया करते । आलस्य तो आपमें आपकी वृद्धावस्थातक नहीं फटक पाया था । दस-ग्यारह बजे फिर आप अपनी भजनमण्डलीके साथ श्रीसीतारामकी मधुर नामध्वनि करते हुए श्रीसरयूजी स्नान करने जाते और वहीं सरयू-तटपर घंटाभर भजन-कीर्तनमें लगे रहते । फिर मध्याह्नकालीन हवन समाप्त कर अपने सामने ही संतोंको बड़े ही विलक्षण प्रेमसे भगवत्प्रसादका भोजन कराते । पुनः श्रीसीतारामजीकी जयध्वनि या 'रामधुनि' कराते हुए भजनानन्दमें मग्न हो जाते । साधु-संतोंके प्रसाद पा लेनेपर संतोको अपने हाथसे पान-इलायची देते, अभ्यागतों और दरिद्रनारायणोंको भोजन कराते और तब आप फलाहारमात्र करते । नित्य दोपहरसे चार बजेतक आप अपनी एकान्त कोठरीके किवाड़ बंदकर ध्यानस्थ रहते । एक बार और स्नानार्थ बाहर आते और फिर संध्या-प्रवेशतक जप-ध्यानमें ही लीन रहते । संध्याको दिया-बत्तीके बाद आँगनमें आसन-पर विराजकर भजन करते और संत-समाज श्रीरामायण आदिकी कथा, श्रीराम-नाम-कीर्तनका आनन्द लूटते । रात्रिके समय आठ-साढ़े आठ बजे फिर स्नानादि कृत्योंसे निवृत्त हो हनुमान्‌जीकी सेवा करते और तब श्रीरामायण-का गायन हुआ करता ।

ये गौओंको अपने हाथसे ही रोटियाँ खिलाने और स्वयं

ही उनकी देखभाल किया करते। अपने सेवकों तथा शिष्यवर्गको भी गो-सेवाके लिये सदा उत्साहित किया करते। फिर शयनासनपर विराजमान हो अपनी उपस्थित संतमण्डलीमें 'रामकथा' या विविध रहस्यमय रामचरित्रोंका आस्वादन किया करते। अपनी अन्तिम जीवन-लीला भी आपने अपने श्रीहनुमन्निवासमें ही समाप्त की।

स्वामी श्रीसियारामशरणजी (श्रीरूपलताजी)

श्रीअयोध्याजीके प्रसिद्ध महात्मा श्रीरूपलताजीका पूरा नाम, जो 'पुजारीजी'के नामसे भी प्रसिद्ध रहे हैं, सियारामशरणजी था। इनका सेवा-प्रकार, गहरी भक्ति और उच्च ज्ञानावस्था अनुपम थी। ये बडे ही सेवा-ध्यान-ज्ञान-निष्ठ थे। इन्होंने श्रीरामघाट अयोध्याजीमें प्रथम-प्रथम बहुत समयतक एकान्तमें बैठकर निरन्तर प्रेममग्न रहकर भजन-कीर्तन किया। फिर भगवत्कृपासे इनकी भजनशक्ति बहुत बढ़ गयी। भोजनमें एक समय चतुर्थ प्रहरमें एक पैसे भरका भिगोया चना चबाकर ये शरीरपोषण कर लेते थे। इतना भी शरीरको भाड़ा देने और क्षुधा-कुत्तीको टुकड़ा डालनेके रूपमें ही था। यही समय एक मुहूर्तमात्र बातचीत कर लेनेका था। इनका और सब समय दिन-रात भजन-ध्यानमें लगता था।

इतना हो जानेपर ईश्वरानुग्रहसे आपको श्रीअयोध्याजीके सुप्रसिद्ध कनकभवनमें भगवत्-पूजाका कार्य मिला। इसे आपने बड़े चाव-भाव, तन-मन, पूर्ण तल्लीनता और हार्दिक भक्तिसे किया। तभीसे ये 'पुजारीजी' विख्यात हो गये। ये श्रीवाल्मीकीय रामायणका नवाह्नपारायण बड़ी उत्तमतासे किया करते थे। आप अच्छे पण्डित और कवि थे। इनकी रची हुई अच्छी-अच्छी पुस्तकें हैं, जिनमें 'विनयचालीसी' और 'अष्टयाम' द्रष्टव्य हैं। विनयचालीसीसे पाँच दोहे नीचे दिये जा रहे हैं। ये दोहे बहुत अर्थ और सारपूर्ण हैं—

चतुरानन गहि कलम को रचे अनेकन छंद।
सिय मुख समता ना लही लिखन मिटावत चंद॥ १॥
मायिक तन से नहिं बनै निरमायिक तसवीर।
कृपा करै सिय लाडिली पावै दिव्य शरीर॥ २॥
स्वस्वरूप को पाइ कै परस्वरूप दरसाय।
तुरिया लखि तुरिया भई आवागमन नसाय॥ ३॥
कौन कहै, अरु को सुनै, छवि में छवि दरसाय।
भई पूतरी लौन की रही जु सिंधु समाय॥ ४॥
परा अवस्था में सदा रहत सदा यह भृत्य।
कृपा लडैती लाल की सेवा कीन्ही नित्य॥ ५॥

'अष्टयाम'की रचनाएँ भी बहुत सरस और सारभरी हैं, जिनसे भक्तिरस और सेवारहस्यका अच्छा तत्त्व प्राप्त होता है। अन्ततोगत्वा बडी अवस्थामें आप सं० १९५० की वैशाख वदी एकादशीको श्रीसाकेतधाम (परमधाम) पधार गये।

भजन ही सार है

भजो श्रीराधे गोविन्द हरी॥
युगल नाम जीवन-धन जानो, या सम और धर्म नहिं मानो।
वेद पुरानन प्रगट बखानो, जपै जोइ है धन्य घरी॥
कलियुग केवल नाम अधारा, नवधा भक्ति सकल श्रुति-सारा।
प्रेम परा पद लहै सुखारा, रसना नाम लगावो भवरी॥
नृत्य करें प्रभुके गुन गावैं, गदगद स्वर तन मन पुलकावैं।
टहल महल कर हिय हुलसावैं, 'सरसमाधुरी' रंग भरी॥

जिस नाड़ीमें रामनाम चलता हो, वह नाड़ी कैसी है ?

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकरपात्रीजी तथा उनके भगवन्नाम-सम्बन्धी संस्मरण)

अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजी महाराज इस शताब्दीमें एक महान् संत, भक्त, आचार्य, तपस्वी और युगपुरुषके रूपमें अवतरित हुए थे। इस धरापर कभी-कभी ऐसे महापुरुषोंका भी प्रादुर्भाव होता है, जिनमें विशेष प्रकारकी विलक्षण प्रतिभा होती है, जो अन्यत्र दिखायी नहीं पड़ती। पूज्य स्वामीजी महाराज भी इसी कोटिके महात्मा थे। जिन लोगोंने आपकी विद्वत्ता और साधुताका निकटसे दर्शन किया, उन्होंने स्पष्ट रूपसे यह अनुभव किया कि इनकी-जैसी प्रतिभा एक जीवनकी प्रज्ञासे प्राप्त नहीं की जा सकती। अनेक पूर्वजन्मोंकी सारस्वत साधनाओंकी ही वह परिणति हो सकती है। पूज्य स्वामीजीके द्वारा जो कार्य सम्पन्न हुए, उन सबका सकलन यहाँ सम्भव नहीं है। हम केवल उनके जीवनकालके कुछ संस्मरण, जो हमारी उपस्थितिमें हमारे सामने घटे हैं, पाठकोंके लाभार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं, जो सामान्य होते हुए भी अत्यन्त प्रेरणादायक हैं।

श्रीभगवन्नाम-स्मरण-जप-कीर्तनमें पूज्य स्वामीजी महाराजकी अत्यन्त सुदृढ़ आस्था थी। कलिकालमें वे इसे कल्याणका परम साधन मानते थे। स्वयं भी निरन्तर स्मरण, पाठ, कीर्तन करते रहते थे तथा दूसरोंको भी प्रेरित करते थे। उनकी यह दृढ़ भावना थी कि श्रीभगवन्नाम-जप-कीर्तनसे सर्वपापोंका नाश होता है।

१—लगभग सात-आठ वर्ष पूर्वकी बात है कि पूज्य स्वामी करपात्रीजी महाराज अपना चातुर्मास्य काशीमें सम्पन्न कर रहे थे। एक दिन अपनी कुटीमें बैठकर कोई पुस्तक देख रहे थे। मैं भी उनके पास बैठा कुछ आध्यात्मिक प्रश्न पूछ रहा था। पूज्य स्वामीजी बीच-बीचमें समाधान करते जाते थे। इसी बीच एक नवागन्तुक व्यक्ति वहाँ आकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने महाराजसे निवेदन किया कि 'स्वामीजी! मेरे भोजनकी कोई व्यवस्था नहीं है।' तत्काल महाराजश्रीके मुखसे यह शब्द निकला कि 'भगवान्‌के नामका स्मरण करो, उनकी कृपासे ही इसकी व्यवस्था होगी।'—ऐसा कहनेके कुछ क्षण बाद महाराजश्री मेरी ओर मुख करके बोले—'देखो! मैं यह बात ऊपर-ऊपरसे नहीं कह रहा हूँ। यह बात मैं भीतरसे कह रहा हूँ। इस संसारमें तो कोई तत्त्व है नहीं। किस क्षण क्या हो सकता है? इसे कोई जानता नहीं। यदि कोई सार है तो वह है एकमात्र भगवन्नामका सहारा और दूसरा काशीका आश्रय।' इतना कहते-कहते स्वामीजी महाराज भाव-विह्वल हो गये। जिस समय महाराजद्वारा यह बात प्रस्तुत की गयी, उस समय उनकी भाव-भङ्गिमाओंसे मुझे ऐसा परिलक्षित हुआ मानो अपने जीवनकी साधनाओंका अनुभव और सम्पूर्ण शास्त्रों एवं सत्संगोंका सार उनकी इस वाणीसे प्राप्त हो रहा है।

२—एक बहुत अच्छे संतने, जो ऋषिकेशकी पहाड़ियोंमें एकान्तवास कर साधना करते हैं, मुझे एक पत्र लिखा था, जिसमें एक भक्त महिलाकी व्यक्तिगत समस्या लिखी थी और यह लिखा था कि 'इसका समाधान पूज्यपाद स्वामीजी महाराजसे पूछकर लिख दें।'

संक्षेपमें समस्या इस प्रकार थी। एक सत्संगी भक्त महिलाका विवाह कई वर्ष पूर्व एक सुशिक्षित इंजीनियरिंग-पास युवकके साथ सम्पन्न हुआ था; पर वह महिला विवाहके बाद प्रायः मानसिक रूपसे अशान्त रहती थी, जिसका कारण था कि विवाहके पूर्व किसी अन्य

व्यक्तिसे उसके विवाहकी सम्भावना थी, जिसका चिन्तन उसके मनमें हो जाया करता था। माता-पिताने उससे अधिक योग्य घर-वर ढूँढ़कर उक्त युवकसे उसका विवाह कर दिया था। चूँकि महिला धार्मिक विचारोंकी थी और अपने साधन-भजन-सत्संगके लिये भी कुछ समय निकालती थी, जिसमें उसका पति कोई बाधा नहीं डालता था एवं उसके सत्संग-भजन आदिका विरोध भी नहीं करता था, फिर भी उसके मनमें वह चिन्तन बना रहता था। यह एक दुःखदायी परिस्थिति थी उस महिलाके लिये। उसके मनमें विवेक-पूर्वक विचार करनेसे यह ग्लानि होती थी कि जिससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं, उसका चिन्तन क्यों होता है! इन परिस्थितियोंसे परेशान होकर उस महिलाने अपनी समस्या ऋषिकेशके महात्माके समक्ष रखी। उन संतने यह समस्या पूज्य स्वामी करपात्रीजी महाराजसे पूछनेके लिये मेरे पास भेज दी। मैंने उनका पत्र पूज्य स्वामीजीको पढ़कर सुनाया। महाराजश्रीने एक ही उत्तर दिया कि 'उन्हें लिख दो कि अन्यथा-चिन्तन तो ठीक नहीं है, पर उस महिलाको इस सम्बन्धमें चिन्तित नहीं रहना चाहिये। पूर्वजन्मके संस्कारोंके अनुसार ऐसी स्थिति कभी-कभी आ जाती है। इसका एक ही अमोघ उपाय है कि उस महिलाको चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते हर समय (निरन्तर) भगवन्नामका जप-कीर्तन और स्मरण करते रहना चाहिये। इस साधनसे समयानुसार सारी परिस्थिति स्वतः ठीक हो जायगी।' मैंने यह बात उन महात्माको लिख दी। तत्पश्चात् उनका पत्र आया कि 'महाराजने यह सहज साधन बताकर उस महिलाका महान् उपकार किया है।'

३—श्रीस्वामीजी महाराजका यह नियम था कि वे प्रवचनके प्रारम्भ तथा अन्तमें श्रीभगवन्नाम-कीर्तन कराते थे। उनका सर्वप्रिय कीर्तन था—'श्रीराम जय राम जय जय राम' जिसे पहले वे बोलते थे तथा बादमें वहाँ उपस्थित जनसमुदाय दोहराता था। इस कीर्तनके अन्तमें 'धर्मकी जय हो! अधर्मका नाश हो! प्राणियोंमें सद्भावना हो! विश्वका कल्याण हो! गोमाताकी जय हो! गोहत्या बंद हो! हर हर महादेव!'—ये नारे भी वे लगवाते थे, जो उनके कीर्तनका ही एक अङ्ग था।

वर्षमें एक बार काशीकी पञ्चकोशी यात्रा भी महाराजद्वारा सम्पन्न की जाती थी, जिसमें यह नियम था कि यात्राकालमें—'हर हर महादेव शम्भो:, काशी विश्वनाथ गङ्गे।' यह कीर्तन-ध्वनि सभी यात्री एक साथ करते थे। कोई अन्य वार्तालाप आदि करना अमूल्य समयका अपव्यय माना जाता था।

एक बार महाराजश्री जब अस्वस्थ थे, तब उनके एक भक्तने महाराजको एक कीर्तन सुनाया, जिसे सुनकर महाराज भाव-विभोर हो गये तथा स्वयं भी वह कीर्तन करने लगे। वहाँ जो भी महाराजका दर्शन करने आता, उससे वे यह कीर्तन कराते और स्वयं भी करते—

हे आशुतोष जगदीश हरे, जय पार्वतीनाथ दयालु हरे।
गोविन्द हरे गोपाल हरे, जय जय प्रभु दीनदयालु हरे॥

यह महाराजका परम-प्रिय कीर्तन बन गया। कीर्तन करते-करते एक दिन महाराजने मेरी ओर मुखाकृति कर भाव-विह्वल होकर कहा—'देखो, भगवान्‌में अनन्त गुण हैं। वे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले आशुतोष तो हैं ही, साथ ही दीनोंके दयालु, करुणाके सागर, सबके सुहृद्, परम निष्काम, आप्तकाम आत्माराम हैं। भगवान्‌के जिन गुणोंका चिन्तन, मनन और स्मरण भक्तको होना है, वे गुण उस भक्तको भी प्राप्त हो जाते हैं। यदि हम भगवान्‌का चिन्तन-मनन और दर्शन आप्तकाम-पूर्णकाम-परम निष्कामके रूपमें करते हैं तो यह निष्कामता हममें भी आ जायगी। इसी तरह भगवान्‌के सभी गुण भक्तको प्राप्त हो सकते हैं।

४—एक बार स्वामीजी महाराज कुछ विशेष अस्वस्थ हो गये थे। कुछ समयके लिये अचेतावस्था भी आ गयी थी। बारह दिनों बाद चेतना वापस लौटी, तब दिनाङ्क ३ मई १९८१, रविवारको दिनमें चार बजे एक सुप्रसिद्ध वैद्यने, जो पूज्य श्रीमहाराजजीके परम भक्त हैं, महाराजश्रीकी नाड़ीका परीक्षण किया तथा पूज्य स्वामीजीके पूछनेपर बताया कि 'महाराजश्रीकी नाड़ी पूर्णतया निर्दोष है।' इसपर पूज्य महाराजजीने कहा—'आजकलके—आधुनिक लोग कुछ प्रपञ्च भी करते हैं। फिर देखो, क्या हाल है?' दोबारा नाड़ी देखनेपर वैद्यजीने कहा—'नाड़ी पूर्णतया ठीक है।' इसपर महाराजश्री अत्यन्त मार्मिक शब्दोंमें बोले—'अच्छा बताओ, जिस नाड़ीमें राम-नाम चलता हो, वह नाड़ी कैसी है?' वैद्यजी भावविभोर हो गये। वे कहने लगे—'महाराज! उस नाड़ीका भला मैं क्या परीक्षण कर सकता हूँ। मुझमें यह सामर्थ्य कहाँ?'

५—दिनाङ्क ५ मई १९८१ मंगलवारको दिनमें ग्यारह बजे अस्वस्थावस्थामें चेतना लौटनेपर पहली बार महाराजश्रीने अपने निकट खड़े एक भक्त श्रीव्यासजीसे कहा—'मुझे श्रीभगवान्‌की कथा सुनाओ।' इसपर उन्होंने उत्तर दिया कि आपकी 'अस्वस्थताके कारण वैद्यजीने कुछ भी सुनाना मना कर दिया है।' तब महाराजजीने कहा कि 'श्रीभगवान्‌की कथा ही तो यथार्थमें मनुष्यको स्वस्थ बनाती है।' पुनः श्रीमहाराजजीने कहा—'गजेन्द्र-मोक्ष ही सुनाओ।' इसपर व्यासजीने वहाँ उपस्थित पुरीके शंकराचार्यजीसे अनुमति लेकर भागवतीय 'गजेन्द्र-मोक्ष'-स्तोत्र सुनाया।

इसके पश्चात् एक अन्य भक्तसे, जो महाराजश्रीके अत्यन्त समीप था, उसकी ओर देखते हुए महाराजश्रीने कहा—'तुम्हें कोई स्तोत्र स्मरण हो तो सुनाओ।' उन सज्जनने भी महाराजसे यह प्रार्थना करते हुए कहा कि 'वैद्यजीने कथा-स्तोत्र तथा पाठ आदि कुछ भी सुनानेके लिये मना कर रखा है तथा पूर्ण विश्रामकी सम्मति दी है।' वहीं खड़े हुए एक सज्जनने भी इसकी पुष्टिमें महाराजश्रीसे निवेदन किया कि 'वैद्यजीने तो यहाँतक मना किया है कि जप आदि भी महाराजको अभी नहीं करने देना चाहिये।' इसपर पूज्य श्रीस्वामीजी महाराज आश्चर्य प्रकट करते हुए किंचित् हास्यकी मुद्रामें बोले—'अच्छा! तब तो वैद्यजीसे कहो कि वे कोई दूसरा रोगी ढूँढ़ें।'

इतनेमें शंकराचार्यजीपर महाराजश्रीकी दृष्टि गयी। श्रीस्वामीजीने उनसे पूछा कि 'मुझे कौन-सी कथा सुननी चाहिये—भगवान्‌की कथा या लोक-कथा।' इसपर श्रीशंकराचार्यजीने उत्तर दिया कि 'आपके लिये तो भगवान्‌की कथा सर्वोत्तम है।' महाराजश्रीने कहा—'यही तो मैं भी कहता हूँ। फिर रोकते क्यों हो?' इसपर श्रीशंकराचार्यजीने स्तुति करनेकी मुद्रामें कहा—'महाराज! आप तो स्वयं सर्वश्रोतव्यश्रुत, ज्ञातज्ञेय, वेद्य-विद्, प्राप्त-प्राप्तव्य और कृतकृत्य हैं। आपका वाचिक एवं मानस जप स्वतः निरन्तर चल रहा है। अभी अन्य श्रम नहीं करना चाहिये।' महाराजश्री भी भावविभोर हो गये और कहने लगे—'ठीक कहते हो। यह संसार श्रम ही तो है—**'श्रम एव हि केवलम्'**। भगवान्‌की कथा और चिन्तन छोड़कर शेष सब श्रममात्र ही तो है।'

'महाराजजी! डाक्टरोंकी रायमें आपको पूर्ण विश्राम करना चाहिये।'

'विश्राम तो भगवच्चिन्तन एवं भगवान्‌की कथामें ही है। शेष तो सब श्रम-ही-श्रम है। सनकादि मुनि अखण्ड बोधरूप समाधिको छोड़कर भी कथा सुनते हैं। श्रीमद्भागवत, वाल्मीकिरामायण, विष्णुसहस्रनाम—ये हमारे प्राण हैं, अतः इन्हें निरन्तर हमें सुनाते रहो।'

वहाँ उपस्थित एक भक्तने कहा—'महाराजजी ! आपको लेटे ही रहना चाहिये ।' इसपर महाराजश्री बोले—'अनादिकालसे जीव सोता पड़ा रहा है । उसे तो वस्तुतः अब जागनेकी आवश्यकता है ।'

एक अन्य सज्जनने कहा—'महाराजजी ! आपको बैठे हुए बहुत देर हो गयी, इससे थकावट आ जायगी ।'

महाराजजीने कहा—'हाँ भैया ! यह जीव अनन्तकालसे बैठा है । अब तो इसे कुछ सत्कर्म करना ही चाहिये ।'

किसीने कहा—'महाराजश्री ! वैद्यजीने आपके लिये बहुत अच्छा धातु-पाक (ओषधि-विशेष) बनाकर दिया है ।'

महाराजश्रीने उत्तर दिया कि 'वैद्यजीसे बोलो, ऐसी ओषधि दें, जिससे यह संसार भूल जाय और केवल भगवान्‌का ही स्मरण होता रहे ।' —राधेश्याम खेमका

जिज्ञासा-समाधान नाम-जप-संकीर्तनके महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

[एक अनुभवी संतसे एक सत्सङ्गी भाई द्वारा श्रीभगवन्नामसंकीर्तन तथा जपके सम्बन्धमें विभिन्न प्रश्न पूछे गये । उन्होंने सभी प्रश्नोंका सुन्दर समाधान भी किया । यह समाधान नाम-संकीर्तन तथा नाम-जप करनेवाले साधकोंके लिये परम उपयोगी है । —सम्पादक]

प्र०—सबके लिये सुगम और सर्वोत्तम मार्ग क्या है ?

उ०—नामजप तथा भगवन्नाम-संकीर्तन करना सबके लिये सुगम और श्रेष्ठ है ।

प्र०—नामजपमें रुचि कैसे हो ?

उ०—रुचि होना कठिन है । रुचि हो जानेपर भजन नहीं छूटता । विषय-सेवनका अभ्यास अनेक जन्मोंसे पड़ा हुआ है । वह धीरे-धीरे बदलेगा । इसलिये उत्साहपूर्वक नाम-जप करते रहना चाहिये । इससे ऊबनेकी आवश्यकता नहीं है ।

प्र०—श्रीकृष्णकीर्तन क्यों करना चाहिये ?

उ०—श्रीकृष्ण हमारे प्यारे हैं, इसीलिये उनका कीर्तन करना चाहिये । प्यारेका नाम लेना हमारी न छूटनेवाली आदत है । इसलिये प्यारेके नामका जप-कीर्तन और उसका गुणानुवाद किये बिना रहा ही नहीं जाता । यह भक्तोंका मानो स्वभाव ही है । इसके लिये भले ही उनकी कोई निन्दा करे । यह एक नियम भी है कि जिस प्रकार बनियेसे व्यापार किये बिना नहीं रहा जाता, कामीसे स्त्रीका कीर्तन किये बिना नहीं रहा जाता, किसानोंसे खेती किये बिना नहीं रहा जाता, इसी प्रकार भक्तोंसे श्रीकृष्ण कीर्तन किये बिना नहीं रहा जाता ।

प्र०—महाराजजी ! जो लोग लज्जा और संकोच छोड़कर कीर्तन करते हैं, उन्हें बहुत आदमी तो ढोंगी बताते हैं ?

उ०—बताने दो ढोंगी । भौंरेको तो रस चूसनेसे काम । जो तमोगुणी होते हैं, उन्हें ही भगवन्नाम-कीर्तनमें लज्जा आती है ।

प्र०—क्या कीर्तन करनेसे ध्यान स्थिर रह सकता है ?

उ०—कीर्तन भी ध्यान ही है । भगवद्भक्तको भगवान्‌का किसी भी प्रकार भजन-चिन्तन करनेसे आनन्द आ जाता है । भगवान्‌को याद करना और इस जगत्‌को भुलाना—यही हमारा लक्ष्य है । कीर्तन करो, कीर्तनसे थक गये हो तो जप करो, जपसे थक जाओ तो स्वाध्याय करो और स्वाध्यायसे भी थको तो ध्यान करो तथा ध्यानसे भी थक जाओ तो भगवच्चर्चा करो । समयको व्यर्थ बातोंमें नष्ट न करो । हर समय भगवान्‌का चिन्तन करते रहो ।

प्र०—कीर्तनमें झाँझ पीटनेसे क्या पुण्य होता होगा ?

उ०—यदि पुण्य नहीं होता होगा तो पाप भी तो नहीं होता । जब तुम सुल्फा, बीड़ी, तम्बाकू आदिका सेवन करने और तास खेलनेको बुरा नहीं मानते तो इसीको क्यों बुरा मानते हो ? कुछ न करनेसे तो यह अच्छा ही है—

भायँ कुभायँ अनख आलस हूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥

प्र०—श्रीकृष्णकीर्तनसे क्या लाभ है ?

उ०—श्रीकृष्ण-कीर्तनसे साधकको भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन होते हैं और उन सिद्धोंको जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हो गये हैं, अपने प्यारेके नाम लेनेमें परम आनन्द आता है।

प्र०—महाराजजी! संकीर्तनोत्सवोंका लक्ष्य क्या होना चाहिये?

उ०—मैं तो कहता हूँ कि हरिनामसंकीर्तन हरिनाममें आसक्ति होनेके लिये ही होना चाहिये। भगवान्‌के दर्शन या किसी अन्य हेतुसे नहीं।

प्र०—तो क्या भगवन्नाममें आसक्ति होना भगवद्दर्शनसे भी बढ़कर है?

उ०—हाँ, अवश्य बढ़कर है। भगवन्नाममें आसक्ति हो जानेके बाद दर्शन हो चाहे न हो, साधकको परवा नहीं रहती। उसको दर्शन देनेके लिये तो भगवान् तैयार ही रहते हैं।

प्र०—मन तो लगता नहीं, ऐसी अवस्थामें क्या केवल जिह्वासे नाम-जप करते रहनेसे विशेष लाभ हो सकता है?

उ०—अवश्य लाभ होता है; क्योंकि सांसारिक काम भी बिना मन लगे करनेपर भी पूरा हो जाता है। जैसे बहीखातेका काम करते समय भी मन भ्रमण करता रहता है, किंतु इस प्रकार बिना मन लगे भी करते रहनेसे वह काम पूरा हो ही जाता है, वैसे ही बिना मन लगे केवल जिह्वासे ही जप करते रहनेपर भी सफलता अवश्य मिलेगी।

प्र०—नाम-जप, नाम-स्मरण और नाम-कीर्तनमें कौन श्रेष्ठ है? वाणीद्वारा होनेवाले, उपांशु और मानसिक जपोंमें कौन-सा जप उत्कृष्ट है?

उ०—साधारण जनताके लिये नाम-संकीर्तन विशेष लाभप्रद है और जो संयतचित्तवाले हैं, उनके लिये जप अधिक उपयोगी है। प्रारम्भमें उच्चारण करके जप करना चाहिये, फिर उपांशु और उसके बाद मानसिक जप करना अच्छा है। जैसे-जैसे मन समाहित होगा वैसे-वैसे ही मानसिक जप अधिक प्रिय लगने लगेगा।

प्र०—संकीर्तनमें जो स्वर-ताल आदिका रस आता है, वह क्या बन्धनकारी है?

उ०—वह भक्तके लिये तो बन्धनकारक हो नहीं सकता; क्योंकि उसकी उसमें भगवदीयताकी भावना है—वह उसे श्रवण-रस न समझकर भगवत्-रस समझता है। अतः भगवत्प्राप्तिका साधन होनेके कारण वह उसके बन्धनका कारण नहीं हो सकता। हाँ, जिज्ञासुकी अवश्य उसमें उपेक्षा रहती है, क्योंकि उसकी उसमें भगवद्भावना नहीं होती। इसके सिवा भगवत्प्रेम उसका लक्ष्य भी नहीं होता। वह तो भगवत्तत्त्वका जिज्ञासु है। अतः उसे ये स्वर-ताल भी विषयरूप प्रतीत होनेके कारण हेय ही प्रतीत होते हैं, परंतु बोधवान्‌की उनमें न तो हेयबुद्धि होती है और न उपादेय-बुद्धि ही, उसकी दृष्टिमें तो सब कुछ ब्रह्मस्वरूप ही है।

प्र०—कुछ लोग आपके ऊपर आक्षेप करते हैं कि आप लोगोंको संध्या-गायत्रीका उपदेश न देकर संकीर्तनका ही उपदेश क्यों देते हैं?

उ०—भाई! मैं यह कब कहता हूँ कि संध्या मत करो। मैं तो कहता हूँ कि जो संध्या कर सकें, वे अवश्य करें, किंतु जो अक्षर नहीं जानता, शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकता और न जिसे पढ़ने-लिखनेका समय है, वह मेरे कहनेसे संध्या कैसे याद कर सकता है? उससे मैं कह देता हूँ कि कीर्तन करो। यदि कीर्तनके लिये भी न कहूँ तो वह कुछ भी न करेगा।

प्र०—महाराजजी! बहुत-से पण्डित लोग कहते हैं कि कीर्तनमें ओंकारका उच्चारण नहीं करना चाहिये। इसे सब नहीं बोल सकते। शूद्रका इसे उच्चारण करनेमें अधिकार नहीं है।

उ०—यदि मना करते हैं तो मत बोलो, शास्त्रके विरुद्ध मत चलो। हमारा 'कृष्ण' नाम तो सब नामोंसे बड़ा है। देखो, मुझे बंगालीस्वामीसे एक श्लोक प्राप्त हुआ है, उसमें श्रीकृष्ण-नामकी कितनी महिमा है—

> वज्रं पापमहीभृतां भवमहारोगस्य सिद्धौषधं
> मिथ्याज्ञाननिशाविशालतमसस्तिग्मांशुबिम्बोदयः।
> क्रूरक्लेशमहीरुहामुरुतरज्वालाजटालः शिखी
> द्वारं निर्वृतिसद्मनो विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥*

* 'कृष्ण' इस दो वर्णोंवाले नामकी जय हो। जो पापरूपी पर्वतोंके लिये वज्र, संसार-रोगके आवेशको शान्त करनेके लिये सिद्ध औषध, अज्ञानराशिके गहन अन्धकारके लिये सूर्योदय, क्रूर क्लेशरूपी वृक्षोंके लिये प्रचण्ड ज्वाला-मालाओंसे मण्डित अग्नि और शान्तिसदनका खुला द्वार है, ऐसा श्रीकृष्ण-संकीर्तन विजयी हो रहा है।

'हरि' और 'राम' हैं तथा दूसरेमें 'हरि' और 'कृष्ण' नाम हैं। सो क्या एक पद बोलनेके समय श्रीरामका ध्यान करना उचित है और दूसरा पद बोलनेके समय उस ध्यानको बदलकर श्रीकृष्णका ध्यान करना चाहिये ? ऐसी दुविधा होनेसे तो ध्यान ठीक नहीं हो सकता। ऐसी स्थितिमें क्या कर्तव्य है ?

उ०—भक्तको सदैव एकमात्र अपने इष्टदेवका ही ध्यान करना चाहिये। मन्त्रमें जो इष्टदेवका नाम है वह तो उसका है ही, उसके अतिरिक्त जो अन्य नाम है वे भी अपने इष्टदेवके ही समझने चाहिये। जैसे महामन्त्रका जप या कीर्तन करते समय कृष्णका ही ध्यान करना चाहिये। जब वह 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' पदका उच्चारण करे तो भी श्रीकृष्ण-का ही ध्यान रखे और यह समझे कि 'राम' भी 'श्रीकृष्ण' का ही नाम है; क्योंकि 'राम' उसीको कहते हैं जो सब जगह रमा हुआ है अथवा जिसमें योगीजन रमण करते हैं। श्रीकृष्णमें यह नाम पूर्णतया सार्थक है; क्योंकि वे सब जगह रमे हुए हैं और योगी उनमें रमण करते हैं। इसी प्रकार रामभक्तको जब वह 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे' उच्चारण करे तो भी श्रीरामका ही ध्यान करना चाहिये; क्योंकि रामका नाम 'कृष्ण' भी है। 'कृष्ण'का अर्थ 'खींचनेवाला' है। जैसे श्रीकृष्ण मनको खींचते हैं उसी प्रकार रामजी भी उसे अपनी ओर खींचते हैं। इसी प्रकार यदि शिवके नामका कीर्तन करे तो भी राम या कृष्णके भक्तोंको अपने इष्टदेवका ही ध्यान करना चाहिये; क्योंकि उनके इष्टदेवका नाम 'शिव' भी है। शिवका अर्थ है 'मङ्गलकारी' सो राम और कृष्ण भी मङ्गलकारी हैं ही। अतः उनका नाम शिव भी हो ही सकता है। मैं तो यह कहता हूँ कि अच्छे-बुरे जो कुछ भी नाम हैं, वे सब भगवान्‌के ही हैं। अतः भक्तको उनमें इष्टबुद्धि ही करनी चाहिये।

प्र०—विद्वान् लोग भगवान्‌का नाम क्यों नहीं जपते ?

उ०—भगवत्कृपाके बिना भगवन्नाम नहीं लिया जाता और न उसमें प्रीति ही होती है। भगवत्कृपा कब और किसपर होती है—यह हम नहीं कह सकते।

प्र०—भगवान्‌का जोर-जोरसे नाम लेनेसे क्या लाभ है ?

उ०—भक्त लोग अपने प्यारेका नाम जोर-जोरसे लेकर आनन्दित होते हैं।

प्र०—नाम-कीर्तनमें सबकी निष्ठा क्यों नहीं होती ?

उ०—जिस प्रकार स्कूलमें दो सौ लड़के पढ़ते हैं; परंतु परीक्षामें सभी उत्तीर्ण नहीं होते। हाँ, बार-बार प्रयत्न करें तो सभी उत्तीर्ण हो सकते हैं, उसी प्रकार एका-एकी सबकी निष्ठा नहीं होती, किंतु बार-बार कीर्तन करनेसे सभीकी निष्ठा हो सकती है। आसक्तिका नाश होनेपर ही तुम्हें भगवन्नाम-निष्ठाकी उपलब्धि होगी। नाम-कीर्तन करनेसे मनुष्यकी तदाकार-वृत्ति हो जाती है। जो रामनाम-कीर्तन करते हैं, वे रामको प्राप्त होते हैं तथा जो कृष्णनाम-कीर्तन करते हैं, वे कृष्णको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार अपनी-अपनी धारणाके अनुसार हिंदू, मुसलमान, ईसाई आदि सब ईश्वरको ही प्राप्त होते हैं।

प्र०—तत्त्वज्ञान या भगवत्प्राप्तिके लिये क्या साधना करनी चाहिये ?

उ०—चोरी, हिंसा, व्यभिचार, नशा, जुआ, झूठ, गाली, चुगली, असम्बद्ध प्रलाप, दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन, परधन लेनेका संकल्प और देहमें आत्मबुद्धि—इन सबका त्याग और दैवीसम्पत्तिका ग्रहण—ये भगवत्प्राप्तिके साधारण उपाय हैं। त्यागकी भावना और भगवत्स्मरण—ये दो असाधारण साधन हैं। स्मरणका अर्थ है जप। जपके लिये मैंने तीन मन्त्र चुने हैं—

१–हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
२–ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।
३–ॐ नमः शिवाय।

× × × ×

प्र०—कीर्तन करनेकी विधि क्या है ?

उ०—कीर्तनमें तीन बातोंपर दृष्टि रखनी चाहिये—(१) कीर्तनका स्थान, (२) कीर्तन करनेवाले और (३) दर्शक-लोग। स्थान परम सात्त्विक और भगवान्‌के चित्र तथा ध्वजा-पताका आदिसे सुसज्जित होना चाहिये। दर्शकोंमें भी कोई नास्तिक या बहिर्मुख पुरुष न हो। कीर्तनकारोंको सब ओरसे चित्त हटाकर नेत्र मूँदे हुए अनन्यभावसे भगवानकी मधुर मूर्तिका चिन्तन करते हुए कीर्तन करना चाहिये। जब कीर्तन समाप्त हो जाय तभी नेत्र खोलना चाहिये। इस प्रकार कीर्तन करनेसे बहुत शीघ्र भगवत्कृपा होती है।

प्र०—एक आदमीको तो नामजपमें आनन्द आता है और दूसरा वेदपाठमें मस्त है। इन दोनोंमें कौन ठीक है?

उ०—नाम-जपसे नामाकार-वृत्ति हो जाती है और जगदाकार-वृत्तिका अन्त हो जाता है। पीछे जब नाममें आसक्ति होती है तो आँसू आने लगते हैं और भगवदनुरागकी प्राप्ति हो जाती है; किंतु जो वेदपाठी है वह तो अधिक-से-अधिक स्वर्गकी प्राप्ति कर सकता है। उसे भगवान् नहीं मिल सकते।

× × × ×

जिज्ञासु—श्रीमहाराजजी! मैं आपका नाम सुनकर आया हूँ। मुझे क्या करना चाहिये? मेरा कल्याण किस प्रकार होगा, सो कृपा करके बताइये।

बाबा—तुम कौन-सा मन्त्र जपते हो?

जि०—गायत्री-मन्त्रकी एक माला जपता हूँ।

बाबा—अरे! एक माला गायत्रीसे क्या होगा? कम-से-कम ग्यारह माला नित्य जपो तो कुछ चमत्कार हो सकता है।

जि०—महाराज! मैं एक साधारण आदमी हूँ। मुझे जीविकोपार्जनके लिये भी काम करना पड़ता है। मुझे इतना समय नहीं मिलता जो ग्यारह माला जप करूँ।

बाबा—अच्छा, तुम गायत्रीकी तो एक ही माला जपते रहो, किंतु इसके सिवा और सब समय काम-काज करते हुए ही 'राधेश्याम-राधेश्याम' जपा करो। इस प्रकार निरन्तर नामजप करनेसे बड़ा लाभ होता है। भगवन्नाममें बड़ी अद्भुत शक्ति है। इसका निरन्तर जप करनेसे भगवान्‌के दर्शन भी हो सकते हैं।

१—जबतक किसी वस्तुका लोभ नहीं होता, तबतक उसे पाने और सुरक्षित रखनेकी धुन सवार नहीं होती। इसीसे जबतक हमारा नाममें लोभ नहीं होता तबतक नामजपमें प्रीति होनी भी कठिन है। नामका लोभ होनेपर तो स्वतः ही हर समय जप होने लगेगा। जैसे एक मिनट भी अपने व्यापारको छोड़ना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार भगवन्नामका लोभी पाँच मिनट भी व्यर्थ नहीं बिता सकता।

२—जप सबसे कठिन वस्तु है। मैं तो ज्ञान और ध्यानसे भी जपको कठिन समझता हूँ। लोग ज्ञानकी बातें तो रात-दिन कर सकते हैं; परंतु उन्हें जप करना कठिन है। इधर-उधरकी बातें छोड़कर निरन्तर एक ही मन्त्रको जपते रहना साधारण बात नहीं है। जपमें बड़ी विलक्षण शक्ति होती है।

३—नाम मन्त्रसे भी बड़ा है; क्योंकि मन्त्रजपमें विधिका बन्धन है, जबकि नामजपमें विधि-विधानकी कोई आवश्यकता नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

'नामु लेत भव सिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥'

नामकी यह महिमा कोई कल्पना नहीं, सर्वथा सत्य है।

४—जिसकी रामनाममें निष्ठा हो गयी उसके लिये संसारमें क्या काम शेष रह गया!

५—तुम जिस समय कृष्ण-नाम लो, उस समय अपनेको गोलोकमें समझो।

६—नामके अभ्याससे नाम मधुर लगने लगेगा। जैसे ध्यान करनेवालेको दिव्य गन्ध एवं दिव्य दर्शनादि चमत्कार होते हैं वैसे ही नामजप करनेसे भी होंगे। भगवान्‌के दर्शनोंकी चाह होगी तो वे भी तत्काल दर्शन देंगे। विश्वास होनेपर तो केवल नामजपसे भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं। जो काम अधिक करता है वह भजन भी अधिक करेगा। जो काम नहीं करता उससे भजन भी नहीं हो सकता। हाँ, भजन धीरे-धीरे बढ़ाते जाओ तो काम अपने-आप कम होता जायगा। यदि भजनमें अत्यन्त प्रेम है तो घर छोड़कर एकान्तमें भजन कर सकते हो। भजनमें कोई विघ्न कर ही नहीं सकता। इसलिये पहले अभ्यास करना चाहिये; कुछ समय भजन-कीर्तनादि करना चाहिये और थोड़ी देर गुणानुवाद करना चाहिये। इससे भजनमें मन लग जायगा। यदि पैसे पास हों तो साधु-सेवा भी करो।

७—श्रीकृष्णके गुणानुवादमें कर्मकाण्डकी तरह आचार-विचारका कोई नियम नहीं है। व्रजमें तो गौ दुहते, झाड़ू देते, दही मथते तथा हर एक काम करते हुए व्रजबालाएँ श्रीकृष्णका गुणगान किया करती थीं।

८—'कल्याण' मासिक पत्रने ध्यानसहित नाम-जपकी महिमा गाकर संसारका मार्ग-दर्शन किया है; क्योंकि सब लोग जपके साथ ध्यान नहीं करते। अतः ध्यानके बिना उन्हें विशेष लाभ भी नहीं होता। भजन कैसे करना चाहिये, इस विषयमें गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

लोभीकी भाँति नाम अविच्छिन्न मात्रामें जपना चाहिये और कामीकी भाँति निरन्तर स्वरूपका ध्यान करना चाहिये ।

९–इष्टदेवके अनन्त नाम और अनन्त रूप हैं; किंतु हमारा तो एक नाम और एक रूपमें ही अनन्य प्रेम होना चाहिये ।

१०–भगवान्से भगवन्नाम अलग है, परतु भगवन्नामसे भगवान् अलग नहीं हैं । नामके अंदर भगवान् हैं ।

११–गोस्वामी तुलसीदासजीकी 'जासु कृत भवसिंधु सुखाहीं । करहु विचार सुजन मन माहीं ॥' इस चौपाईको सब लोग गाते हैं; किंतु फिर भी भगवन्नाम नहीं जपते और भगवन्नामकीर्तन भी नहीं करते । भगवान् तो अनन्त सौन्दर्यकी खान हैं, फिर भी उनकी ओर मन नहीं जाता । इसका कारण यही है कि श्रीभगवान्का कृपाकटाक्ष नहीं है । अपना पुरुषार्थ भी हो और भगवत्कृपा भी हो, तभी काम बनता है ।

१२–ऋषियोंने यह निश्चय किया है कि भगवच्चिन्तन ही विधि है और जगच्चिन्तन ही निषेध है । जगच्चिन्तनका परिणाम ही यह देह है । भगवच्चिन्तन करनेसे यह दिव्य हो जायगी । अतः सर्वदा भगवान्का चिन्तन करना चाहिये । बस, भगवन्नामकी रट लगा दो—'नहिं कलि करम न भगति बिबेकू । राम नाम अवलंबन एकू ॥'

१३–जो जितना अधिक जप करेगा उसे उतनी ही अधिक सिद्धि मिलेगी । सोलह नामोंके महामन्त्रकी कम-से-कम सोलह मालाएँ, द्वादशाक्षर मन्त्रकी कम-से-कम बारह मालाएँ और 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रकी कम-से-कम पचास मालाएँ नित्यप्रति फेरनी चाहिये; अधिक जितनी कर सके तो उत्तम है । जिस व्यक्तिकी जिस मन्त्रमें प्रीति हो उसे उस एक ही मन्त्रका जप करना चाहिये । त्यागकी भावनाके लिये परद्रव्यका त्याग करे, पुरुषार्थसे यथावश्यक द्रव्योपार्जन करे, विषयोंमें आसक्तिका त्याग करे, यथालाभ-संतुष्ट रहे तथा ब्याज (सूद-दर-सूद) से बचे । इन नियमोंका पालन किये विना तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती । इससे भी शीघ्र तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिका उपाय है सद्गुरुकी प्राप्ति । सद्गुरुके मिल जानेसे उसे शीघ्र ही सिद्धिकी प्राप्ति हो जाती है । सद्गुरु जो नियम बतलावें, उन्हींका पालन करे ।

१४–अधिक जप करनेसे शरीरके परमाणु मन्त्राकार हो जाते हैं ।

१५–भगवन्नामस्मरण करनेके लिये शुचि-अशुचि, सुसमय-कुसमय और सुस्थान-कुस्थानका विचार नहीं करना चाहिये ।

१६–भगवान्के अनन्त नाम हैं, अनन्त शक्तियाँ हैं, अनन्त रूप हैं और अनन्त भाव हैं । किन्हीं-किन्हीं महानुभावने अनन्त नाम और अनन्त शक्तियाँ—ये दो ही पक्ष माने हैं । इस प्रकार जब उनके अनन्त नाम हैं तो 'श्रीकृष्ण' 'श्रीराम' 'श्रीशिव'—ये भगवन्नाम क्यों नहीं हो सकते । जो इन्हें भगवन्नाम नहीं मानते वे उक्त सिद्धान्तसे अनभिज्ञ हैं ।

१७–कीर्तन करनेवालोंको संख्या अवश्य करनी चाहिये । यह नहीं सोचना चाहिये कि हम कीर्तन करते हैं, हमें संख्या करनेकी क्या आवश्यकता है ।

१८–कीर्तन करनेवाले भक्तोंसे मेरा निवेदन है कि वे कीर्तन करते समय बिना भावकी विशेषताके दिखावटी गिर पड़ना, मूर्च्छित हो जाना, रोना, नाचना आदि न करें तो अच्छा हो । यदि अत्यन्त बढ़े हुए भावके आवेशमें कोई सावधान न रह सकता हो तो दूसरी बात है ।

१९–भाई ! मैं यह नहीं कहता कि ध्यान मत करो; किंतु एक आदमी तो केवल ध्यान ही करता हो और दूसरा ध्यान भी करता हो और समय मिलनेपर कीर्तन भी—तो थोड़े ही दिनोंमें देख लोगे कि कौन अधिक उन्नति करता है ।

२०–कलियुग सब युगोंसे खराब है; परतु तो भी देवताओंने भगवान्से प्रार्थना की कि हम कलियुगमें पैदा हों । इसका कारण यही है कि इस युगमें केवल श्रीभगवन्नाम-जप और कीर्तनसे ही मोक्ष मिल जाता है ।

२१–सब यज्ञोंमें जप-यज्ञ श्रेष्ठ है । अन्य यज्ञोंमें तो यह देखना होता है कि उसमें काना न हो, कुष्ठी न हो, विधुर न हो, अविवाहित न हो, आदि-आदि; किंतु जप-यज्ञमें ऐसी कोई बात नहीं देखी जाती । इसमें तो चाहे बालक हो, चाहे बूढा, चाहे स्त्री हो या शूद्र, सभीका अधिकार है ।

२२–मैं अपने अनुभवसे कह सकता हूँ कि आजकल भगवन्नाम-जप और जितेन्द्रियता ही सब कुछ है । तत्त्वज्ञान कलियुगी जीवोंकी समझमें नहीं आ सकता । तत्त्वज्ञान तो पवित्र हृदयवालोंको ही होता है और हृदय तब पवित्र होता है जब सब प्रकारकी पवित्रताओंका पालन किया जाय ।

२३–सबसे कठिन वस्तु क्या है ? जप । और बुद्धिको पवित्र करनेवाली वस्तु क्या है ?—जप । जप यदि एक आसनसे किया जाय तो बहुत अच्छा है ।

२४–जिस दिन हमारी आसक्ति नाममें हो जायगी, उसी दिन भक्ति महारानी आ जायँगी ।

२५–भगवन्नामकीर्तनसे ही उद्धार हो सकता है—

'देखो जी ऐसी रामनाम रसखानि ।
मूरख याको मरम न जाने पीवैं चतुर सुजान ॥

२६–जिनकी विचारमें रुचि नहीं है और जो भगवद्-गुणानुवादमें ही मस्त हैं, वे ही उत्तम हैं । पाप-कर्मोंको ध्वंस करनेके लिये भी जप करनेकी आवश्यकता है । इसीसे ज्ञान-वैराग्य-युक्त भक्तिकी प्राप्ति होगी । इसको भी अनिर्विण्ण-चित्तसे करना चाहिये । देहनाशपर्यन्त इसे तत्परतासे करते रहना चाहिये । पुनः-पुनः चिन्तन करनेको ही अभ्यास कहते हैं और यही पुरुषार्थ है । ईश्वर-चिन्तनमें आनन्द आये अथवा न आये उसे तो प्रतिज्ञापूर्वक करते ही रहना चाहिये । मन भागता रहे तो भी कोई चिन्ता नहीं; किंतु नियमपूर्वक चिन्तनकी प्रतिज्ञा करनी ही चाहिये । भगवान् उसीपर दया करते हैं जो उनका चिन्तन करता है । जिस प्रकारसे भगवान्में मन लगे वही करना चाहिये । जपमें मन कम लगे तो कीर्तन करे या स्तोत्रपाठ अथवा स्तुतिपरक पदोंका गान करे ।

२७–अभ्यास करनेसे हम निद्राको जड़-मूलसे उखाड़ सकते हैं; किंतु यह काम चार दिनके अभ्याससे नहीं होगा । इसलिये जल्दबाजी नहीं होनी चाहिये; यह निश्चय कर लेना चाहिये कि मैं आजन्म भगवन्नाम लेता रहूँगा । नित्यके नामजपका हिसाब लिखें । इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेसे भजन होगा । भजन तो हठपूर्वक भी करना चाहिये । भजन करनेवालोंके लिये आहार और अतिपरिश्रम निषिद्ध है । जप करते हुए मन भटके तो भटकने दो । जपमें इतनी शक्ति है कि वह अधिक होनेसे अपने-आप मनको एकाग्र करनेमें सहायता करेगा । हम एकाग्रताकी अपेक्षा भी प्रतिज्ञा-पूर्वक नियमित रूपसे जप करनेमें विशेष लाभ समझते हैं । जैसे तीन घंटे भजनका तथा नित्यप्रति गीतापाठका नियम कर लिया जाय । नित्यप्रति साधन करनेकी प्रतिज्ञा कर ली जाय तो इससे बड़ा लाभ होगा । यदि लाभ न दीखे तो भी कोई हानि नहीं । इस जन्ममें नहीं तो अगले जन्ममें लाभ दिखायी देगा । कभी-न-कभी तो आनन्द आयेगा ही ।

२८–एक बार एक मुसलमानने मेरे पास आकर पूछा कि हमारा उद्धार कैसे हो सकता है । मैंने कहा—भैया ! अल्लाह-अल्लाह रटा करो । अल्लाह-अल्लाह रटनेसे तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा और हिंसा आदि बुरे कर्म छूट जायँगे; क्योंकि यह भी एक प्रकारका कीर्तन ही है ।

२९–माला भगवत्स्वरूप है । जिस मालासे हम जप करते हैं उसमें एक प्रकारकी शक्ति पैदा हो जाती है । अतः मालाको जल्दी जल्दी नहीं बदलना चाहिये ।

३०–कीर्तनसे एकाग्रता उत्पन्न होती है । शब्दमें रूपके समान ही आकर्षण-शक्ति है । इसलिये प्रभु श्रीकृष्णने वंशी और रूप दोनोंसे ही सबको वशमें किया था । मिलकर कीर्तन करनेसे तुमुल ध्वनि होती है । दूसरी बात यह है कि कीर्तन करनेवालोंमेंसे यदि एकका चित्त भी सत्त्वगुणमय होगा तो सभीके चित्तोंमें सत्त्वगुणका आविर्भाव हो जायगा । इस प्रकार पहले कीर्तनद्वारा चित्तकी एकाग्रता लाभ कर लेनेपर प्रभुका ध्यान होगा ।

३१–भगवान् और भगवान्के नाममें कोई भेद नहीं है; अतः प्रेमसे भगवन्नाम जपना चाहिये—

जाई नाम सेई कृष्ण भजन निष्ठा करि ।
नामेर सहित आछे आपनि श्रीहरि ॥

३२–जबतक पाप रहेगा तबतक श्रीकृष्ण-नाममें प्रेम नहीं हो सकेगा ।

३३–जब पास बैठनेसे ही दूसरे व्यक्तिकी जपमें प्रवृत्ति होने लगे, तब समझना कि जापकका नाम-जप सिद्ध हुआ ।

३४–जप किये बिना न रहा जाय, यहाँतक कि जप पूरा न होनेपर खाना-पीना भी अच्छा न लगे तब समझो कि जप सिद्ध हुआ । इसीको जपनिष्ठा कहते हैं ।

३५–पाठ आदि अन्य साधनोंसे तो मनोरञ्जन भी होता है, ये प्रवृत्तिकी ओर ले जाते हैं; किंतु जप निवृत्तिमार्ग है और भगवान्की ही ओर ले जाता है । वास्तवमें जप ही सबसे मुख्य है, किंतु उसमें मन कठिनतासे लगता है ।

३६–भगवान्के स्वरूपमें तो प्रेम हो सकता है; परंतु नाममें प्रेम होना कठिन है । जिसने अद्भुत चमत्कार सेवाकी

हो उसका ही नाममें प्रेम हो सकता है। भगवान्‌का नाम उनके स्वरूप और सेवा दोनोंकी अपेक्षा सूक्ष्म है।

३७–स्मरण ही प्रेमका स्वरूप है। स्मरण करनेसे ही प्रेम होता है। बिना स्मरण किये केवल जप करनेसे विशेष लाभ नहीं होता। जब इष्ट नाममें प्रेम हो जाता है, तब नाम लेनेके साथ ही गद्‌गदता होकर आँसू आ जाते हैं और बेहोशी होने लगती है। जो प्रेमसे भगवान्‌का नाम लेता है, भगवान् उस भक्तका स्मरण करते हैं। देखो, एक ओर श्रीराधिकाजी 'कृष्ण-कृष्ण' कहती रहती हैं तो दूसरी ओर श्रीकृष्ण 'राधे-राधे' की रट लगाये रहते हैं। इससे निश्चय होता है कि जप इष्टदेवके स्मरणपूर्वक होना चाहिये। देखा जाता है कि बहुत लोग माला लेकर जप भी करते रहते हैं और भाईसे लड़ाई अथवा मुकदमेबाजीकी बातें भी। ऐसे जपसे भला क्या लाभ होगा। होगा भी तो, अगले जन्ममें भले ही हो, तत्काल लाभ तो स्मरणपूर्वक जप करनेसे ही होगा।

३८–जपके समय ये चार काम नहीं करने चाहिये—(१) बोलना, (२) इधर-उधर देखना, (३) सिर या गर्दन हिलाना और (४) हँसना। जैसा कि कहा है—

> ध्यायेत्तु मनसा मन्त्रं जिह्वोष्ठौ न विचालयेत्।
> न कम्पयेच्छिरोग्रीवां दन्तान् नैव प्रकाशयेत्॥
> (योगि याज्ञवल्क्य)

३९–भगवान्‌के मङ्गलमय नामका उच्चारण करनेसे करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं—ऐसा विद्वानोंने निश्चय किया है।

४०–भगवान् उत्तमश्लोक (पवित्र कीर्ति) का नाम जानकर लिया जाय अथवा बिना जाने, वह पापोंका नाश करता ही है।

४१–ज्ञानी या भक्तसे कोई अपराध (पाप) बन जाय तो उसे शास्त्रोक्त प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं है। वह केवल जपसे ही दूर हो जायगा। बस, जप ही उसका प्रायश्चित्त है।

जगत्‌का सार पारस नहीं, श्रीकृष्ण-नाम

बहुत दूर बर्दवानसे चलकर एक ब्राह्मण आया था ब्रजमें। वह पूछता हुआ सनातन गोस्वामीके पास पहुँचा। उसे पारस पत्थर चाहिये। कई वर्षोंसे वह तप कर रहा था। भगवान् शङ्करने उसे स्वप्नमें आदेश दिया था कि ब्रजमें सनातन गोस्वामीको पारसका पता है, वहाँ जाओ।

ब्राह्मणकी बात सुनकर सनातनजीने कहा—'मुझे अकस्मात् एक दिन पारस दीख गया। मैंने उसे रेतमें ढक दिया कि जाते आते भूलसे कहीं छू न जाय। वहाँ उस स्थानपर खोदकर निकाल लो। मैं स्नान कर चुका हूँ। उसे छूनेपर मुझे फिर स्नान करना पड़ेगा।'

निर्दिष्ट स्थानपर रेत हटाते ही पारस मिल गया। उससे स्पर्श होते ही लोहा सोना बन गया। ब्राह्मणका तप सफल हो गया। उसे सचमुच पारस प्राप्त हुआ—अमूल्य पारस। जिससे स्वर्ण उत्पन्न होता है, उस पारसका मूल्य कोई कैसे बता सकता है।

पारस लेकर ब्राह्मण चल पड़ा। कुछ दूर जाकर वह फिर लौटा और सनातन गोस्वामीके पास आकर खड़ा हो गया। सनातनजीने पूछा—'आपको पारस मिल गया?'

'जी, पारस मिल गया।' ब्राह्मणने दोनों हाथ जोड़े—'किंतु एक प्रश्न भी मिला उसके साथ। उस प्रश्नका उत्तर आप ही दे सकते हैं। जिस पारसके लिये मैंने वर्षोंतक कठोर तप किया, वह पारस आपको प्राप्त था। आपने उसे रेतमें ढक दिया था और आप उसका स्पर्शतक नहीं करना चाहते थे। आपके पास पारससे भी अधिक मूल्यवान् कोई वस्तु होनी चाहिये। क्या वस्तु है वह?'

'तुमको वह चाहिये?' सनातनगोस्वामीने दृष्टि उठायी—'वह चाहिये तो पारस फेंको यमुनाजीमें।'

ब्राह्मणने पारस फेंक दिया। उसे वह बहुमूल्य वस्तु मिली। वह वस्तु जिसकी तुलनामें पारस एक कंकड़ जितना भी न था। वह वस्तु थी—श्रीकृष्ण-नाम।

मनन करनेयोग्य

भगवन्नाम-साधना

यदि रूपका चिन्तन न हो सके तो निरन्तर भगवान्‌का नामस्मरण ही करना चाहिये। भगवान्‌के नामस्मरणसे मन और प्राण पवित्र हो जायँगे और भगवान्‌के पावन पदकमलोंमें अनन्य प्रेम उत्पन्न हो जायगा। नाम-जप-कीर्तनकी सहज विधि यह है कि अपने श्वास-प्रश्वासके आने-जानेकी ओर ध्यान रखकर उनके साथ-ही-साथ मनसे और धीमे स्वरसे वाणीसे भी भगवान्‌के नामका जप-कीर्तन करता रहे। यह साधन उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते सब समय किया जा सकता है। अभ्यास दृढ़ हो जानेपर चित्त विक्षेपशून्य होकर निरन्तर भगवान्‌के चिन्तनमें अपने-आप ही लग जायगा। प्रायः सभी प्रसिद्ध भक्तों और संतोंने इस साधनका प्रयोग किया था। महात्मा चरणदासजी कहते हैं—

स्वासा माहीं जपे नें दुविधा रहे न कोय।

इसी प्रकार कबीरजी कहते हैं—

साँस साँस सुमिरन करौ, यह उपाय अति नीक।

तात्पर्य यह कि भगवान्‌के स्वरूप, प्रभाव, रहस्य, गुण, लीला अथवा नामका चिन्तन निरन्तर तैलधाराकी भाँति होते रहना चाहिये। यही अखण्ड भजन है।

भगवन्नामके श्रवण और कीर्तनका महान् फल होता है। जहाँतक भगवान्‌के नामकी ध्वनि पहुँचती है, वहाँतकका वातावरण पवित्र हो जाता है। मृत्युकालके अन्तिम श्वासमें यदि भगवान्‌का नाम किसी भी भावसे जिसके मुँहसे निकल जाय तो उसे परमपदकी प्राप्ति हो जाती है। भगवान्‌के नामका जहाँ कीर्तन होता है वहाँ यमदूत नहीं जा सकते। अतएव दस नामापराधोंसे बचते हुए भगवान्‌के नामका जप, कीर्तन और श्रवण अवश्य ही करना चाहिये।

सभी सद्ग्रन्थों और संतोंकी वाणियोंमें भगवन्नामकी महिमा गायी गयी है। श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोक मनन करने योग्य हैं—

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन्। हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात्॥
संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः॥
(१२। १२। ४६-४७)

'कोई भी मनुष्य गिरते, फिसलते, छींकते और दुःखसे पीड़ित होते समय परवश होकर भी यदि ऊँचे स्वरसे 'हरये नमः' पुकार उठता है तो वह सब पापोंसे छूट जाता है। जैसे सूर्य पर्वतकी गुफाके अन्धकारका नाश कर देते हैं और जैसे प्रचण्ड पवन बादलोंको छिन्न-भिन्न करके लुप्त कर देता है, इसी प्रकार अनन्त भगवान्‌का नाम-कीर्तन अथवा उनके प्रभावका श्रवण हृदयमें प्रवेश करके समस्त दुःखोंका अन्त कर देता है।'

यह तो विवश होकर नाम लेनेका फल है, किंतु प्रेमसे नाम लेनेपर तो कहना ही क्या? इसीसे गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

अतएव भक्तिकी प्राप्तिके लिये नित्य-निरन्तर भगवान्‌के नाम-गुण-यशका कीर्तन, श्रवण और चिन्तन निःसंदेह परम आवश्यक है।

भजनका नैरन्तर्य

जो सबसे बढ़कर प्रियतम, प्राणोंका आधार और जीवनका एकमात्र अवलम्बन हो, जिसकी स्मृति और मिलनकी आशा जीवनमें प्रतिपल चेतना प्रदान करती हो, उसे क्षणभरके लिये भी कैसे भुलाया जा सकता है ! कोई कहे कि 'दिन-रातमें दो घंटे भले ही उसे स्मरण कर लिया करो, शेष बाईस घंटे घरके दूसरे आवश्यक कामोंमें खर्च किया करो ।' तो ऐसा करना उस प्रेमीके लिये कैसे सम्भव हो सकता है ! उसे कितने ही घंटे कुछ भी काम क्यों न करना पड़े, वह करेगा अपने प्रियतमका स्मरण करते हुए ही । उसे वह क्षणभरके लिये भी अपने हृदय-मन्दिरसे अलग नहीं कर सकता । हृदयमें उसकी झाँकी सदा खुली रहेगी । वह उसका दर्शन करता हुआ ही यन्त्रकी भाँति शरीरसे कार्य करता रहेगा । ऐसे अनन्यचेता सतत और नित्य चिन्तनमें लगे रहनेवाले प्रेमीको भगवान् नित्य प्राप्त ही रहते हैं, वे उसकी अन्तर्दृष्टिसे कभी ओझल हो ही नहीं सकते । इसी स्थितिको प्राप्त भक्त सूरदासने कहा था—

कर छटकाए जात हौ, निबल जानिके मोहि ।
हिरदे तें जब जाहुगे, सबल बदौंगो तोहि ॥

इसी तन्मयतामें लीन गोपियाँ प्रतिक्षण प्रत्येक कार्य करते समय प्रियतम श्यामसुन्दरके गुणगान करती हुई आँसू बहाया करती थीं । भाग्यशालिनी व्रजाङ्गनाओंकी बड़ाई करते हुए भागवतकार भगवान् व्यास कहते हैं—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥
(श्रीमद्भा० १० । ४४ । १५)

'उन श्रीकृष्णमें चित्तको अनुरक्त रखनेवाली व्रज-वनिताओंको धन्य है, जो गौ दूहते, दहीका मथन करते, घर लीपते, झूला झूलते, रोते हुए बालकोंको लोरी देते, झाड़ू देते, चौका लगाते तथा विश्राम करते—सब समय सर्वदा पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णको अपने सामने देखकर नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहाती हुई गद्गदस्वरसे उनका गुण गाया करती हैं ।'

भगवान्‌को याद रखनेका उपदेश, घंटे-दो-घंटे या अधिक नियमित कालके लिये नाम-जपकी आज्ञा, इतनी संख्या पूरी करनेपर सिद्धि हो जायगी, इस लोभसे संख्यायुक्त जप या संख्याकी गणनासे जप हो जाता है, यों भूल रह जाना सम्भव है, इसलिये संख्याकी अवधि बाँधकर जप करना चाहिये, यह आदेश तो उन प्रारम्भिक साधकोंके लिये है, जो भगवान्‌के प्रेमी नहीं हैं । न करनेकी अपेक्षा ऐसा करना बहुत उत्तम है । प्रेम प्राप्त होनेपर यह कहना नहीं पड़ता कि अमुक संख्यासे उन्हें याद किया करो । संख्या या समयका हिसाब कौन रखे ! जब एक क्षणके लिये भी स्मृति चित्तसे नहीं हटती, तब हिसाब-किताबकी बात ही कहाँ रह जाती है ! श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामको सीताका संदेश सुनाते हुए श्रीहनूमान्‌जी कहते हैं—'प्रभो ! सीता प्राण-त्याग करना चाहती हैं, परंतु प्राण निकल नहीं पाते । सीताजीने कहा है—

नाम पाहरु दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
लोचन निज पद जंत्रित प्रान जाहिं केहिं बाट ॥

प्राण कैद हो गये । आठों पहर आपके ध्यानके किवाड़ लगे रहते हैं । आपका ध्यान कभी छूटता नहीं, आपकी श्याम-तमाल माधुरी मूर्ति कभी मनके नेत्रोंसे परे होती ही नहीं । यदि कभी किवाड़ खोले भी जायँ तो बाहर रात-दिन पहरा लगता है । पहरेदार कौन है ! राम-नाम, क्षणभरके लिये राम-नाम लेनेसे जिह्वा विराम नहीं लेती । प्राण कैसे निकलें ! ऐसी स्थितिमें क्या

सीताको इस उपदेशकी अपेक्षा थी कि तुम अशोक-वाटिकामें अकेली रहती हो, समय बहुत मिलता है, इसके सिवा राक्षसियोंका डर रहता है, इसलिये कुछ देर रामको याद कर लिया करो। यह उपदेश या तो अभक्तोंके लिये है या प्रेमहीन रँगरूटोंके लिये।

प्रेमी जनोंको तो अपने प्रेमास्पदका नाम इतना प्यारा होता है कि स्वयं तो वे उसे कभी भूल ही नहीं सकते, दूसरेको कभी भूले-भटके उच्चारण करते सुन लेते हैं तो उसकी चरण-धूलि लेने दौड़ते हैं। प्रियतमका नाम लेनेवाला, प्रियतमका गुण गानेवाला, प्रियतमका प्रेमी हृदयसे आदरका पात्र—प्रेमका पात्र न हो तो अन्य कौन होगा? प्रियतमका चिह्न ही हृदयमें हर्ष पैदा कर देता है। गोपियाँ श्याम मेघोंको देखकर श्रीकृष्णका स्मरण करती हुई मेघोंका दीर्घ जीवन मनाती हैं—

> स्यामघन जीवत रहौ सदाय।
> तुम्ह देखत घनश्याम हमारे मनमंदिर प्रगटाय॥

भरतजी श्रीरामके पदचिह्न और कुशशय्याके तृणोंको देखकर वहाँकी धूलिको और तृणोंको सिर-माथेपर चढ़ाने लगते हैं।* श्रीराम सीताके वस्त्रको हृदयसे लगाते हैं! पट उर लाइ सोच अति कीन्हा। महामुनि वसिष्ठ और भरतजी गुहको अपने रामका प्रिय सखा समझकर उसपर रामके सदृश स्नेह और प्रेम दिखलाते हैं—

> राम सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥
> एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ बसिष्ट सम को जग माहीं॥
> भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती॥

सीता-संदेश सुनानेवाले हनुमान्‌के प्रति श्रीराम और श्रीरामका आगमन-संवाद सुनानेवाले हनुमान्‌के प्रति श्रीभरत ऐसी कृतज्ञता प्रकट करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। दोनों ही अपनेको हनुमान्‌का चिर ऋणी घोषित करते हैं। भगवान् श्रीराम कहते हैं—

> सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
> प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
> सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥

श्रीभरतजी भी कहते हैं—

> एहि संदेस सरिस जग माहीं। करि बिचार देखेउँ कछु नाहीं॥
> नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥

भगवान् श्रीकृष्णका संदेश लेकर जब उद्धवजी व्रजको पधारे, तब श्रीकृष्णके-से वेषमें देखकर गोपियोंने उन्हें घेर लिया और यह जानकर कि ये भगवान् श्रीकृष्णका संदेश लेकर आये हैं, गोपियोंके हर्षका पार न रहा—

> तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं
> सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः।
> रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने
> विज्ञाय संदेशहरं रमापतेः॥
> (श्रीमद्भा० १०। ४७। ३)

—और उन्होंने विनयावनत होकर प्रेमभरी लज्जापूर्ण दृष्टिसे और मधुर वचनोंसे उनका सत्कार किया। जबतक भगवान् हमारे परम प्रेमास्पद नहीं हैं, तभीतक उनके स्मरण-चिन्तनका अभ्यास करना है। जिस शुभ घड़ीमें हम अपने-आपको उनके चरणोंपर न्यौछावर कर देंगे, मनको उनके मनमें मिला देंगे, फिर तो हर घड़ी हमें उन्हींकी प्राणाधिक प्रिय छवि दिखलायी देगी; फिर गोपियोंकी भाँति कविवर 'देव'की भाषामें हम भी यह कह सकेंगे—

> जौ न जीमें प्रेम तो कीजे व्रत नेम, जब
> कंजमुख भूलै तब संजम बिसेखिये।
> आस नहीं पीकी, तब आसन ही बाँधियत,
> सासनकै साँसनको मूँदि पति पेखिये॥
> नखतें सिखालौं सब स्याममयी बाम भई
> बाहर औ भीतर न दूजो देव लेखिये।
> जोग करि मिलैं जो बियोग होइ प्रजपतिको,
> जो न हरि होय, तौ ध्यान धरि देखिये॥

* कुस साँथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई॥ चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥

योग कहते हैं अप्राप्तकी प्राप्तिको और प्राप्तिके अभावको कहते हैं वियोग। यहाँ प्राणप्यारे नन्दनन्दनका नित्य संयोग है, फिर योग किसलिये साधें ? वियोग ही नहीं, तब योग कैसा ? परंतु ऐसी शुभ स्थिति प्रत्येकके भाग्यमें नहीं होती। भगवान्‌के प्रेमको प्राप्त करना सहज बात नहीं। प्रेम मुँहकी वस्तु नहीं, प्रेमकी बातें बनानेवाले बहुत मिल सकते हैं, पर प्रेमके पथपर कोई विरला वीर ही चल सकता है। जबतक जगत्‌के भोगोंमें आसक्ति है, शरीरके आरामकी चिन्ता है, यश-कीर्तिका मोह है, तबतक प्रेमके पन्थकी ओर निहारना भी मना है। प्रेमके मार्गपर वही वीर चल सकता है, जिसने वैराग्यके दावानलमें विषयासक्तिको सदाके लिये जला डाला हो। प्रेमदीवानी मीरा कहती हैं—

चुनरीके किये टूक ओढ़ लई कोई।
मोती मूँगे उतार बनमाला पोई॥

प्रेमके पथपर वही पग रख सकता है, जो प्रेम-मार्गके काँटोंको फूलोंकी शय्या, प्रेमास्पदके किये हुए तिरस्कारको पुरस्कार, महान् विपत्तिको सुख-सम्पत्ति, अपमानको सम्मान और अयशको यश समझता है। उसका पथ ही उल्टा होता है। वह कोई ऐसा अशिष्ट कार्य नहीं करता, जिससे उसका अपमान या तिरस्कार हो अथवा विपत्ति आवे, तथापि वह अपमान, तिरस्कार और विपत्तिको प्रेमास्पदके मिलनका मार्ग समझकर उनका स्वागत करता है, उनसे चिपटे रहता है। प्रेमपन्थियोंको प्रेमियोंके निम्नलिखित शब्द याद रखने चाहिये—

नारायण घाटी कठिन जहाँ प्रेमको धाम।
विकल मूर्छा सिसकिबो, ये मगके विश्राम॥
सीस काटिके भुइँ धरैं, ऊपर रासे पाव।
इश्कचमनके बीचमें, ऐसा हो तो आव॥
सिर काटौ छेदौ हिया टूक-टूक करि देहु।
पै याके बदले बिहँसि वाह वाहकी लेहु॥
पीया चाहै प्रेमरस राखा चाहै मान।
एक म्यानमें दो खड़ग देखा सुना न कान॥

प्रेमपंथ अति ही कठिन सबपै निबहत नाहिं।
चढ़के मोम-तुरंग पै चलिबो पावक माहिं॥
नारायण प्रीतम निकट सोई पहुँचनहार।
गेंद बनावे सीसकी खेले बीच बजार॥
ब्रह्मादिकके भोग सब बिषसम लागत ताहि।
नारायण ब्रजचंदकी लगन लगी है जाहि॥

ऐसे प्रेमी भक्त शीश उतारकर मरते नहीं। शीश उतारे फिरते हैं, परंतु प्यारेके लिये जीवन रखते हैं। मर जाय तो प्यारेको दुःख हो। इसलिये जीते हुए ही मर जाते हैं अथवा मरकर भी जीते हैं। जिनकी ऐसी स्थिति हो गयी है, उनको धन्य है, उनके पिता-माताको धन्य है, उनके देशको धन्य है। उन्हींका जन्म सफल होता है। ऐसा करनेपर जब उन्हें प्रियतम मिल जाता है, जब प्रियतमके साथ घुल-मिलकर वे अपने-आपको खो देते हैं, तब तो वे प्रियतमका स्वरूप ही बन जाते हैं—

'तू तू करते तू भयो मुझमें रहो न हूँ'
× × ×
जब मैं था तब 'हरि' नहीं, अब 'हरि' है 'मैं' नाहिं।
प्रेमगली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥

इसी स्थितिको प्राप्त करना मनुष्य-जीवनका ध्येय है। इसीके लिये भगवान्‌ने गीतामें आज्ञा दी है—

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥'

इस सुखरहित और अनित्य मनुष्य-शरीरको पाकर तू निरन्तर मेरा भजन कर। भजनसे ही उपर्युक्त स्थिति प्राप्त हो सकती है। जबतक प्रेम न हो, तबतक श्रद्धाके साथ कुछ नियम बनाकर ही भगवान्‌का भजन अवश्य करना चाहिये। भजन करते-करते ज्यों-ज्यों अन्तःकरणका मल नष्ट होगा, त्यों-ही-त्यों अन्तःकरण शुद्ध होगा और भगवान्‌के प्रति प्रेम बढ़ता रहेगा; परंतु यह 'अटल सिद्धान्त' सदा स्मरण रखना चाहिये—

वारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धांत अपेल॥

भगवान्‌का स्मरण कैसे करें ?

१–ऐसे करो, जैसे अफीमची अफीम न मिलनेपर अफीमका स्मरण करता है ।

२–ऐसे करो, जैसे मुकदमेबाज मुकदमेका स्मरण करता है ।

३–ऐसे करो, जैसे जुआरी जुएका स्मरण करता है ।

४–ऐसे करो, जैसे लोभी धनका स्मरण करता है ।

५–ऐसे करो, जैसे कामी कामिनीका स्मरण करता है ।

६–ऐसे करो, जैसे शिकारी शिकारका स्मरण करता है ।

७–ऐसे करो, जैसे निशानेबाज निशानेका स्मरण करता है ।

८–ऐसे करो, जैसे किसान पके खेतका स्मरण करता है ।

९–ऐसे करो, जैसे प्याससे व्याकुल मनुष्य जलका स्मरण करता है ।

१०–ऐसे करो, जैसे क्षुधार्त हुआ मनुष्य भोजनका स्मरण करता है ।

११–ऐसे करो, जैसे घर भूला हुआ मनुष्य घरका स्मरण करता है ।

१२–ऐसे करो, जैसे बहुत थका हुआ मनुष्य विश्रामका स्मरण करता है ।

१३–ऐसे करो, जैसे भयसे कातर मनुष्य शरणदाताका स्मरण करता है ।

१४–ऐसे करो, जैसे डूबता हुआ मनुष्य जीवनरक्षकका स्मरण करता है ।

१५–ऐसे करो, जैसे दम घुटनेपर मनुष्य वायुका स्मरण करता है ।

१६–ऐसे करो, जैसे परीक्षार्थी परीक्षाके विषयका स्मरण करता है ।

१७–ऐसे करो, जैसे सद्योघटित पुत्रवियोगसे पीड़िता माता पुत्रका स्मरण करती है ।

१८–ऐसे करो, जैसे नवीन विधवा अपने मृत पतिका स्मरण करती है ।

१९–ऐसे करो, जैसे घरमें रहनेवाली कुल्टा स्त्री अपने जारका स्मरण करती है ।

२०–ऐसे करो, जैसे मातृपरायण शिशु माताका स्मरण करता है ।

२१–ऐसे करो, जैसे प्रेमी अपने प्रियतम प्रेमास्पदका स्मरण करता है ।

२२–ऐसे करो, जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पतिका स्मरण करती है ।

२३–ऐसे करो, जैसे अन्धकारसे अकुलाये हुए प्राणी प्रकाशका स्मरण करते हैं ।

२४–ऐसे करो, जैसे सर्दीसे काँपते हुए मनुष्य अग्निका स्मरण करते हैं ।

२५–ऐसे करो, जैसे चकवा-चकवी सूर्यका स्मरण करते हैं ।

२६–ऐसे करो, जैसे चातक मेघका स्मरण करता है ।

२७–ऐसे करो, जैसे जलसे बिछुड़ी हुई मछली जलका स्मरण करती है ।

२८–ऐसे करो, जैसे चकोर चन्द्रमाका स्मरण करता है ।

२९–ऐसे करो, जैसे फलकामी पुरुष फलका स्मरण करता है ।

३०–ऐसे करो, जैसे मुमुक्षु पुरुष आत्माका स्मरण करता है ।

३१–ऐसे करो, जैसे शुद्धहृदय मुमूर्षु पुरुष भगवान्‌का स्मरण करता है ।

३२–ऐसे करो, जैसे योगी पुरुष चेतन ज्योतिका स्मरण करता है ।

३३–ऐसे करो, जैसे ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मका स्मरण करता है ।

नाम-संकीर्तनकी सार्वभौमिकता

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥*

बहुत-से कर्म ऐसे हैं, सकाम ही किये जाते हैं, जैसे पुत्रेष्टि आदि कई यज्ञ। बहुत-से निष्काम कर्म भी हैं। बहुत-से कर्म ऐसे हैं जिनके लिये नियम है कि ऐसे देशमें करने चाहिये—तीर्थ-स्थान हो, नदीतट हो, शुद्ध भूमि हो। इसी प्रकार उसमें निषेध भी है कि अमुक स्थानमें नहीं करना चाहिये। बहुत-से कर्म किसी विशेष समयमें ही किये जाते हैं—जैसे प्रातः-कालीन संध्या सूर्योदयसे पूर्व हो, सायं-संध्या सूर्य रहते-रहते हो जाय। कई कार्योंमें संक्रान्ति, पूर्णिमा, उत्तरायण, व्यतीपात आदिका विचार किया जाता है। कुछ कर्मोंमें पात्रताका बड़ा विचार किया जाता है। फिर ऐसे भी नियम हैं कि द्विज ही अमुक कर्मको कर सकता है, उसके रजोवीर्यमें संकरता न हो, वह यज्ञोपवीतधारी हो। दूसरे करेंगे तो पतित होंगे। स्त्री, शूद्र, वेदबहिष्कृत, वर्णसंकरोंका उसमें अधिकार नहीं है। किंतु एक हरि-नाम-संकीर्तन ही ऐसा साधन है, जिसमें सकाम, अकाम, देश, काल और पात्रताके भेदभाव या नियम नहीं हैं। समस्त कामनाओंके लिये सभी समय सभी लोग हरिनाम-संकीर्तन करके कृतार्थ हो सकते हैं।

यदि आपको धनकी इच्छा है तो भगवान्‌का भजन कीजिये। यदि आपको पुत्रकी इच्छा है तो प्रेमसे हरिनाम-संकीर्तन कीजिये। प्रभु सभी प्रकारकी इच्छाएँ पूर्ण करेंगे। वे कल्पतरु हैं। आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—चारों प्रकारके भक्तोंको वे सुगति देते हैं। यद्यपि ये धन, पुत्र, ऐश्वर्य, मान, प्रतिष्ठा क्षणिक हैं, दुःखके हेतु हैं, तथापि जिनका मन सकाम है, उन्हें आप लाख समझाइये, उनके मनमें निष्कामकी बात न बैठेगी। वे भगवान्‌को न चाहकर धन या पुत्रको ही चाहेंगे। यदि वे धन या पुत्रकी इच्छा भगवान्‌से न करके किसी व्यक्ति-विशेषसे करते हैं, धनकी इच्छासे नीचोंकी सेवा करते हैं, बेईमानीसे धन पैदा करना चाहते हैं, किसीको धोखा देकर धन हड़पना चाहते हैं तो वे कामी हैं, नीच हैं। उनकी सद्‌गति नहीं होती। यदि धन और पुत्रकी इच्छा होनेपर वे किसी मनुष्य-विशेषकी आशा न करके भगवान्‌के सामने अपनी कामना प्रकट करते हैं, उस कामनासे भगवान्‌का भजन करते हैं तो वे अर्थार्थी भक्त हैं। भगवान् उनकी वह कामना पूरी करते हैं। वे उनकी मनोवाञ्छित वस्तुको पहले दे देते हैं। सांसारिक वस्तुएँ तो अन्तमें दुःखदायी होती ही हैं, उनके परिणामोंको देखकर उन्हें उनसे विराग होता है और फिर वे उस वस्तुको छोड़कर भगवान्‌के भजनमें लग जाते हैं या कामनासे भजन करते-करते ही भगवान् उनकी बुद्धिको बदल देते हैं। उन्हें फिर भगवान्‌को छोड़कर कोई वस्तु अच्छी लगती ही नहीं। इसी तरह जो दुःखी होकर अपने दुःखको मेटनेके लिये किसी मनुष्यसे इच्छा करते हैं, वे दीन, लोक-निन्द्य और परमुखापेक्षी हैं, किंतु जो दुःख पड़नेपर किसी मनुष्यका आश्रय न लेकर द्रौपदीकी भाँति भगवान्‌से ही उसे दूर करनेके लिये प्रार्थना करते हैं, वे आर्तभक्त हैं। जिज्ञासु और ज्ञानी भी केवल भगवान्‌का आश्रय लेकर निरन्तर उनका ही भजन करते रहते हैं। इस प्रकार भगवान्‌का भजन, हरिका कीर्तन सकाम, निष्काम और सिद्धकाम—सभी कर सकते हैं। इसमें यह नियम नहीं कि निष्काम होनेपर ही भगवद्-कीर्तनका अधिकार हो सकता है।

---

* उदार बुद्धिवाला मनुष्य चाहे वह अकाम हो, सकाम हो या मोक्षकी कामनावाला हो, उसे कामनासिद्धिके लिये तीव्र भक्तियोगके द्वारा परम पुरुष परमात्माका यजन—स्मरण कीर्तन करना चाहिये।

भगवान‍्को अपना समझो । उन्हें सब कामनाओंका दाता कल्पतरु मान लो । फिर चाहे उनसे धन माँगो या स्वयं उन्हें ही माँग लो । धन माँगनेवालेको वे धन भी देंगे और अपनेको भी दे देंगे । उन्हें जो माँगेगा उसके वे अपने हो जायँगे । किंतु एकमात्र उनका ही होकर उनका ही विश्वास करके उनसे ही माँगना चाहिये । यदि भक्त कहलाकर तुमने किसी मनुष्यका आश्रय लिया तो उनपर यह विश्वास कहाँ रह गया—

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥

इसी प्रकार नाम-संकीर्तनमें देश और कालका नियम नहीं है । श्मशानमें शवको ले जाते समय भी आप बड़े प्रेमसे कीर्तन कर सकते हैं तथा यज्ञ-मण्डपमें भी संकीर्तनकी सुमधुर ध्वनिसे होता, उद्गाता, यजमान और पुरोहितको सुखास्वादन करा सकते हैं । इसमें समय और पवित्रताका भी नियम नहीं है । शौच जाते समय, मल-मूत्र त्यागते समय, खाते और पीते समय, चलते, उठते, बैठते, सोते, लेटे-लेटे, जँभाई लेते समय—हर हालतमें आप स्मरण कर सकते हैं । इस प्रकारका कीर्तन यदि पवित्र देशमें पवित्रताके साथ किया जाय तब तो और भी उत्तम है, वह तो सोनेमें सुगन्ध की तरह है । किंतु ऐसे ही करो, यह नियम नहीं है । इसीलिये व्यासजीने कहा है—

न देशनियमो राजन् न कालनियमस्तथा।
विद्यते नात्र सन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्तने॥

इसी तरह पात्रताके लिये भी है । वेदोंको सब नहीं पढ़ सकते । गायत्रीमन्त्र तथा अन्य वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणका सबको अधिकार नहीं है । योग भी सब नहीं कर सकते । इन सब कर्मोंके लिये पात्रताकी बड़ी आवश्यकता है । फिर जिन साधनोंको एक सम्प्रदायवाले करते हैं, उन्हें दूसरे सम्प्रदायवाले नहीं कर सकते । किंतु भगवन्नाम-कीर्तन एक ऐसा साधन है, जिसे सभी कर सकते हैं । इसीलिये कलिकालमें संकीर्तन ही एक सर्वोपयोगी सार्वभौम साधन है । कलिकालके लिये एक ऐसे साधनकी आवश्यकता होती है, जिसे अपने-अपने वर्णाश्रमविहित कर्म करते हुए भी सभी समान रूपसे कर सकें । उसमें यह भेदभाव न हो कि इसे शूद्र करते हैं तो वेदपाठी ब्राह्मण न करें या इसे वेद-बहिष्कृत म्लेच्छ अन्त्यज न करें । सबके लिये समान रूपसे सद्गति देनेवाला, सरल, सुगम, सर्वोपकारी, सर्वोत्तम, सर्वोपकरणरहित भगवन्नाम-संकीर्तन ही है । इसीलिये बृहन्नारदीय पुराणमें महर्षि सनकने नारदजीसे कहा है—

वेदमार्गबहिष्ठानां जनानां पापकर्मणाम् ।
मनःशुद्धिविहीनानां हरिनामैव निष्कृतिः ॥

प्रेमरसके आस्वादनका आनन्द

बहुतोंने बर्फका केवल नाम सुना है, किंतु उसे देखा नहीं है । उसी प्रकार बहुत-से धर्मोपदेशकोंने ईश्वरके गुणोंको धर्म-ग्रन्थोंमें पढ़ा है, किंतु अपने जीवनमें उनका अनुभव नहीं किया है । बहुतोंने बर्फको देखा है, किंतु उसका स्वाद नहीं लिया है, उसी प्रकार बहुत-से धर्मोपदेशकोंको ईश्वरके तेजकी एक बूँद मिल गयी है, किंतु उन्होंने उसके तत्त्वको नहीं समझा है । जिन्होंने बर्फको खाया है, वे ही उसका स्वाद बतला सकते हैं । उसी प्रकार जिन्होंने ईश्वरकी संगतिका लाभ भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें उठाया है—कभी ईश्वरका सेवक बनकर, कभी मित्र बनकर, कभी भक्त बनकर और कभी एकदम उसीमें लीन होकर—वे ही बतला सकते हैं कि परमेश्वरके गुण क्या हैं और उनकी संगतिके प्रेमरसका आस्वादन करनेमें कैसा आनन्द मिलता है ।

नाम-संकीर्तनका वायुमण्डलपर प्रभाव

इस बातपर विचार करना चाहिये कि हम जो सामूहिक कीर्तन करते हैं, उससे कीर्तन करनेवाले पुरुषोंके अतिरिक्त आस-पासके लोगोंको भी कुछ लाभ होता है क्या? वहाँके वायुमण्डलमें भी उसका कुछ प्रभाव होता है या नहीं?

इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि आस-पासके लोगोंको भी इससे लाभ होता है और वायुमण्डल-पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। यह तो सभी जानते हैं कि हम जो कुछ भी शब्द बोलते हैं, वह वायुमण्डलमें फैलकर व्याप्त हो जाता है।

यद्यपि आकाशमें अच्छे और बुरे—दोनों प्रकारके शब्द-जन्य भाव रहते हैं, फिर भी जहाँ अधिकांश लोग बुरे विचारके होंगे, वहाँ वायुमण्डलमें बुरे विचारोंका ही प्राबल्य होगा और जहाँ लोग विशुद्ध भावोंके होंगे वहाँका वायुमण्डल विशुद्ध भावोंसे परिपूर्ण होगा। यह अनुभव करके देखा गया है कि साधु-महात्मा शान्त पुरुषोंके समीप जाते ही उनके समीपके वातावरणका ऐसा प्रभाव पड़ता है कि जानेवालेको सहज ही उसी भाँतिका अनुभव होने लगता है और बुरे लोगोंके समीप जाते ही अशान्तिके साथ चित्तकी घबराहट बढ़ने लगती है।

स्वभावतः हमारे विचार सामान्य होते हैं। यदि हमारे भीतर कलुषित भाव हैं और ऐसे ही विचारोंका ही प्राबल्य है तथा उनके ही विषयमें हम सोचते रहते हैं तो एकान्तमें उन विचारोंको और भी अधिक उत्तेजना मिलेगी। यदि हमारे विचारोंमें विशुद्ध धार्मिक भावोंका प्राबल्य है तो एकान्तमें वे और बढ़ेंगे। गणितज्ञको एकान्तमें गणित-सम्बन्धी नयी बातें सूझेंगी। समस्त ज्ञान, समस्त विचार, समस्त भाव वायुमण्डलमें भरे हैं। हम जैसे चाहेंगे वैसे विचार हममें आने लगेंगे। आपके मनमें टेलीफोनका यन्त्र है, उसका सम्बन्ध सभी जगहसे है। यदि आप बुरे विचारके हैं तो बुरे विचारवालेके साथ उससे सम्पर्क कर उनसे बातें कर सकते हैं और उनके भावोंको ले सकते हैं; किंतु यदि आप धार्मिक विचारके हैं तो वैसे ही धार्मिक पुरुषोंसे सत्सङ्ग कर सकते हैं। इस सम्बन्धमें एक मनोरञ्जक दृष्टान्त है जो इस प्रकार है—

कहते हैं, किसी धनलोलुप गरीबने यह बात सुनी कि रुपयोंको रुपया खींचता है; अर्थात् रुपयेवालोंके पास ही रुपये आते हैं। व्यापारमें यही होता है। उसके पास एक रुपया था, उसे लेकर वह रुपयोंके एक खजानेमें गया। वहाँ लाखों रुपये रखे थे। एक रुपयेको हाथमें लेकर वह कहने लगा—'आ! आ!! आ जा!!!' वह बार-बार पुकारता और रुपयेसे कहता—'इन सबको खींच ले।' दैवात् उसके हाथसे वह रुपया भी गिरकर खजानेमें चला गया। वह खिसयाता हुआ आया और बोला—'सब ठग हैं, रुपयेको रुपया कहाँ खींचता है, मेरा तो गाँठका रुपया भी चला गया।' एक समझदार आदमीने यह बात सुनी। उसने कहा—'भाई! ठीक तो है, जिधरका आकर्षण अधिक होगा उधर ही खिंचाव भी अधिक होगा। खजानेमें बहुत रुपये थे, उधर खिंचाव भी अधिक था, तुम्हारा रुपया खिंच गया।'

इस दृष्टान्तका भाव इतना ही है कि भले-बुरे वायुमण्डलका हमारे नित्य-नैमित्तिक जीवनपर बड़ा असर पड़ता है। कलिकालमें अधिकांश लोगोंके मनकी प्रवृत्ति तो चोरी, बदमाशी, हिंसा और असत्यकी ओर होती है, अतः वहाँके वायुमण्डलमें इन्हीं भावोंका प्राबल्य होता है। ये भाव सामूहिक प्रार्थना और कीर्तनसे ही हटाये जा सकते हैं। अतः जो सामूहिक प्रार्थना करते हैं, वे स्वयं तो कृतार्थ होते ही हैं, साथ

लोगोंके लिये विशुद्ध वातावरण निर्माण करनेमें भी वे बहुत बड़ी सहायता करते हैं। अतः नामसंकीर्त्तन जितने ही समान मनवाले प्रेमी लोगोंके साथ शान्त वातावरणमें किया जायगा उसका उतना ही अधिक असर होगा। जैसे जलती हुई अग्निके वेगको जल शान्त कर सकता है, और अन्धकारको छिन्न-भिन्न करनेमें सूर्य भगवान् समर्थ हैं, उसी प्रकार कलिकालके जो हिंसा, मद, मत्सर आदि दोषोंसे गंदा वातावरण बन गया है, उसे मिटानेमें हरिनाम-संकीर्तन ही समर्थ हो सकता है—

शमायालं जलं वह्नेस्तमसो भास्करोदयः।
शान्त्यै कलेरघौघस्य नामसंकीर्तनं हरेः॥

अखण्ड-संकीर्तनसे लाभ

अहोरात्रं हरेर्नाम कीर्तयन्ति च ये नराः।
कुर्वन्ति हरिपूजां वा न कलिर्बाधते च तान्॥*

सामान्यतः अखण्ड कीर्तनसे बहुत लाभ है। मानवमें अच्छे-बुरे भाव ठूँस-ठूँसकर भरे हैं। बुरे भावोंको तभी घटाया जा सकता है, जब वहाँके वायु-मण्डलमें बिना विश्रामके सतत कीर्तन होता रहे। अखण्ड कीर्तनमें होता क्या है? पारी-पारीसे लोग कीर्तन करते रहते हैं। यदि शक्ति हो तो एक या अनेक व्यक्ति अहोरात्र बिना विश्रामके कीर्तन करते रहें, किंतु ऐसा बहुत कठिन है। अतः कुछ छः आदमी मिलकर नियम बना लेते हैं कि अमुक समयसे अमुक समयतक ये लोग कीर्तन करेंगे। फिर एकके पश्चात् दूसरी टोली और दूसरीके पश्चात् तीसरी टोली ऐसे ही बराबर कीर्तनकार आते-जाते हैं। कीर्तनका तार टूटने नहीं पाता। वह अविच्छिन्न रूपसे दिन-रात बराबर चलता रहता है। कीर्तन करनेवालोंको तो लाभ होता ही है, किंतु जो आस-पासके लोग हैं, उन्हें भी उससे बहुत लाभ होता है। इस प्रकार जिनके कानमें ध्वनि पड़ती है वे तो श्रवण-सुखका अनुभव करते हैं और जो सुन भी नहीं सकते, उन्हें वहाँके वातावरणसे ही संकीर्तनके परमाणुओंसे सद्भाव और पारमार्थिक विचार मिलते हैं। जैसे एक मन्दिरमें एक पुरुष बैठकर पूजा करता है और धूप जलाता है, उससे देवता तो प्रसन्न होते ही हैं, किंतु उस मन्दिरमें जो बैठे हुए हैं, उन्हें भी उतनी ही सुगन्ध मिलती है, जितनी उस जलानेवालेको। पर सुगन्धका फल मन्दिरके सभी लोगोंको तथा उसके आस-पासवाले लोगोंको भी दूरीके अनुसार थोड़ा-बहुत अवश्य ही मिलेगा। इसी प्रकार अखण्ड-कीर्तनकी दिगन्तव्यापी ध्वनिसे जो एक प्रकारकी सुगन्ध निकलती है, उससे जानमें, अनजानमें जो वहाँ रहते हैं, वहाँ साँस लेते हैं, उन्हें अवश्य ही पारमार्थिक लाभ होता है।

अखण्ड-कीर्तनसे पारमार्थिक वातावरण तो तैयार होता ही है, एक विशेष शक्ति भी उत्पन्न होती है—जैसे किसी सभामें सभी लोग यदि देशभक्ति और उत्साहकी बातें सुनें तो कैसे भी दुर्बल मनका व्यक्ति क्यों न हो, एक बार तो उसके हृदयमें भी जोश आ ही जाता है। अखण्ड-कीर्तन वायुमण्डलमें बिखरे हुए रोगके सूक्ष्म कीटाणुओंको हटाता है, बुरे विचारके परमाणुओंको छिन्न-भिन्न करता है और वहाँका वातावरण शान्त, गम्भीर और भक्तिमय बनाता है। यह अपना आँखों-देखा अनुभव है कि जिस स्थानपर साल-दो-साल या महीने-दो-महीने भी अखण्ड-कीर्तन होता है, वहाँके

* जो मनुष्य दिन-रात भगवान्‌के नामका अखण्ड कीर्तन या सानन्द हरिपूजा करते हैं, उन्हें कलिकाल बाधा नहीं पहुँचाता।

बालक बिना कहे खेल-खेलमें कीर्तन करने लगते हैं। माता-बहनें अपने-आप ही विवाह और पर्वोंमें गंदे गीत न गाकर सुन्दर स्वरमें भगवन्नामका कीर्तन करने लगती हैं। चरवाहे गाय-भैंस चराते हुए, हलवाहे हल चलाते हुए मुखसे राम-नामका उच्चारण करते रहते हैं। अखण्ड-कीर्तनसे केवल समीप रहनेवाले ही ऐसे मनुष्य जो पहले साधु-ब्राह्मणको प्रणाम नहीं करते थे, कभी भगवान्का नाम नहीं लेते थे, न पूजा करते थे, वे स्वत भगवान्की ओर बढ़ने लगते हैं। अत· बन पड़े तो कभी अहोरात्रका, सप्ताहका, कभी महीनेभरका अथवा अधिकका अखण्ड-कीर्तन करनेका उद्योग अवश्य करना चाहिये।

येऽहर्निशं जगद्धातुर्वासुदेवस्य कीर्तनम्।
कुर्वन्ति तान् नरव्याघ्रान् न कलिर्बाधते नरान्॥

जो जगत्का धारण-पोषण करनेवाले भगवान् वासुदेवका रात-दिन कीर्तन करते हैं, उन नरश्रेष्ठ मनुष्योंको कलि बाधा नहीं पहुँचाता।

क्या नाम-संकीर्तन नवीन साधन है ?

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

आजकल लोग एक बात प्राय कहा करते हैं कि कीर्तन, गान, नृत्यादि सब नये साधन हैं और इन्हें महाराष्ट्रमें संत तुकाराम आदि और बंगालमें श्रीचैतन्य महाप्रभुने प्रकट किया है, किंतु यथार्थ बात ऐसी नहीं है। नाम-संकीर्तन तो अत्यन्त ही प्राचीन साधन है। असंख्य कलियुग बीत गये और आगे भी बीतेंगे, जैसा कि हम प्रतिदिन संकल्पमें पढ़ते हैं—**'अष्टाविंशतितमे कलियुगे'**—यह इस मन्वन्तरका अट्ठाईसवाँ कलियुग है। ये सब बातें हमें वेदों और पुराणोंसे ज्ञात होती हैं। वेद-पुराण न हों तो हम इन बातोंको समझ ही नहीं सकते। अतः वेद-पुराणोंमें जिन साधनोंको बताया है, वे अत्यन्त प्राचीन अनादि माने जायँगे। वेदोंमें जो हैं, उन्हींका विस्तार पुराणोंमें किया गया है। पुराणोंमें सर्वत्र नामकी महिमा भरी पड़ी है। पुराण वेदोंके भाष्य मात्र हैं। यदि वेदोंमें नाम-कीर्तन न होता तो वह पुराणोंमें कहाँसे आता ? वेदोंमें जो अनेक देवोंकी, भगवान्की स्तुतिके मन्त्र हैं, वे नाम-संकीर्तन नहीं तो क्या हैं ? इस विषयमें जिन्हें विशेष जाननेकी आवश्यकता हो वे भगवान आद्य शंकराचार्य-कृत 'विष्णुसहस्रनाम'के भाष्यको पढ़ें। नाम-माहात्म्यके कितने ही सुन्दर श्लोकोंका उन्होंने उद्धरण किया है। पहले युगोंमें अन्य साधनोंके साथ स्वभावतः नाम-कीर्तन होता ही था। नाम-कीर्तन समस्त साधनोंका एक प्रधान अङ्ग माना जाता था, अतः उसपर बल देनेका अर्थ ही भगवन्नाम-कीर्तनपर बल देना था। इस युगमें और कोई साधन तो ऐसे रहे नहीं, जिनपर बल देनेसे आप-से-आप नाम-माहात्म्य समझमें आ जाता। इस युगमें तो केवल कीर्तन-ही-कीर्तन शेष रह गया। इसीलिये अब इसपर विशेष बल दिया जाता है। यह कोई नवीन धर्म नहीं, किसी व्यक्ति-विशेषके दिमागकी स्वतन्त्र उपज नहीं, किसी विशेष सम्प्रदायका मत नहीं, कोई विवाद-ग्रस्त प्रश्न नहीं, इसे तो वेदोंने, पुराणोंने, शास्त्रोंने, रामायण-महाभारतने एवं कबीर, रैदास, नानक आदि समस्त आधुनिक संतोंने भगवान् शंकर, रामानुज, निम्बार्क और वल्लभादि समस्त आचार्यचरणोंने एक स्वरसे स्वीकार किया है। जो परलोक और ईश्वर दोनोंको नहीं मानते, उन घोर नास्तिकोंको छोड़कर समस्त धर्मावलम्बियोंने, चाहे वे भारतीय हों या विदेशी, रामनाम-महिमाको माना है। ईसाई,

मुसलमान, पारसी सभीने नाम-महिमाको स्वीकार किया है। इन सभी धर्मोंमें किसी-न-किसी रूपमें नाम-जप और नाम-कीर्तन होता ही है।

कीर्तन है क्या? भगवान्‌के नामोंका, साकार भगवान्‌का, भक्तोंके गुणोंका गान करना संकीर्तन है। कौन ऐसा सम्प्रदाय है, जो उपासनाके समय भगवान्‌की दयालुता, भक्तवत्सलता आदि गुणोंका, उनके जगत्पावन अनन्त नामोंका कीर्तन न करता हो। अतः नाम-संकीर्तनके सम्बन्धमें किसी भी आस्तिक धर्मावलम्बीको संदेह नहीं होता। नाम-संकीर्तन एक अनादि तथा मुख्य साधन है। कोई उपासना इसके बिना हो नहीं सकती। आप जहाँ हैं, जिस धर्म, जिस सम्प्रदाय, जिस जाति, जिस वर्णमें है, वहीं रहिये। आपको धर्म-परिवर्तन एवं जाति-परिवर्तनकी आवश्यकता नहीं। यदि आप वैदिक-तान्त्रिक जपयोग, नेति-धोति आदि हठयोग करते हैं और इसे करना अपना धर्म समझते है तो इन्हे करते हुए भी आप इनके अतिरिक्त समयमें भगवान्‌के नामका जप-कीर्तन कीजिये। आपका कल्याण होगा। आप वैदिक कर्मकाण्डी ब्राह्मण है तो विधिवत् कर्मकाण्ड कीजिये और प्रेमपूर्वक भगवान्‌के नामका कीर्तन भी कीजिये। यदि आप अन्त्यज हैं तो अपनी जातिधर्म-परम्पराके पेशेको करते हुए भी प्रेमपूर्वक भगवान्‌के नामोंका कीर्तन कीजिये। दोनोंका नाम-प्रेम समान है तो उस वैदिक ब्राह्मणको और अन्त्यजको समान गति मिलेगी। आप किसी भी सम्प्रदायके क्यो न हो, प्रेमसे भगवान्‌के नामोंका, भगवान्‌के गुणोंका कीर्तन कीजिये, आप शाश्वत शान्तिको प्राप्त करेंगे। ईसाई, मुसलमान, यहूदी, बौद्ध जो भी कोई भगवान्‌के नाम-कीर्तनको, अपने सम्प्रदायके अनुसार भगवान्‌के नामोंका जप करेगा उसे भगवत्-प्राप्ति होगी। इसमे कोई संदेह नहीं। नाम-संकीर्तन नवीन साधन नहीं, किसी एक सम्प्रदायका साधन नहीं, यह प्राचीन और सर्वसम्मत साधन हैं।

*

बेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥

नाम-संकीर्तन इस युगके लिये सरल क्यों है? इसलिये कि इसमें अधिक उपकरणोंकी अपेक्षा नहीं होती। यदि आप अकेले हैं, एकान्तमें हैं तो भगवान्‌की मूर्तिके सम्मुख या वैसे ही हृदयमें उनका ध्यान करके बैठ जाइये और प्रेमसे ताली बजाते हुए उच्च स्वरसे 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव' या 'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम' या 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ अथवा 'शिव शिव शम्भो। हर हर महादेव' कहिये।

जो भी भगवान्‌का नाम-मन्त्र आपको प्रिय हो, इष्ट हो, उसीका प्रेमसे गद्गद्‌कण्ठ होकर कीर्तन कीजिये। उनके लिये रोइये, आँसू बहाइये, गीत गाइये और उन्मत्त होकर नृत्य कीजिये। यदि आप गृहस्थ है, परिवार और बाल-बच्चेदार है तो सायं-प्रातः अपने परिवार तथा आस-पासके लोगोंको एकत्र कीजिये। यदि हो सके और सम्भव हो तो ढोलक, झाँझ, मृदङ्ग आदिके साथ एक स्वरमें कीर्तन कीजिये। बड़े प्रेमके साथ और ताल-स्वरसे जब एक साथ सब गद्गदकण्ठसे कीर्तन करते हैं, तब कितना आनन्द आता है। पत्थरका हृदय भी पिघल जाता है। सामूहिक कीर्तनमें एक विशेष शक्ति उत्पन्न हो जाती है। सबकी कातर वाणी सुनकर भगवान् फिर रह नहीं सकते। वे भी आकर उस मण्डलीमें बैठ जाते हैं। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—'नारद! मै वैकुण्ठमे या योगियोंके हृदयमें नहीं रहता। (वहाँ जाता हूँ, किंतु चक्कर लगाकर खडे होकर लौट आता हूँ।) किंतु जहाँ मेरे बहुत-से भक्त मिलकर मेरे गुणोंका गायन करते हैं वहाँ जाकर मैं बैठ जाता हूँ'—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

आप महीनेभर इसे करके देखें। किंतु स्मरण रहे, वह कीर्तन केवल गानविषयक न हो, इन्द्रिय-तृप्तिका साधन न बने, आपकी मण्डली अश्लील गानवाली संगीत-गोष्ठी न बनने पाये। उसमें भगवन्नाम और भगवद्-गुण-कीर्तनके अतिरिक्त दूसरी बात न हो तो आप देखेंगे कि जीवनमें कितना परिवर्तन होता है। आपके बाल-बच्चोंका झुकाव किस प्रकार धार्मिक जीवन-की ओर होने लगता है। आपके घरका, पति-पत्नी और परस्परका कलह कितना कम हो जाता है। आपके पड़ोसी आपसे कितना प्रेम करने लगते हैं। आप इस वेद-स्मृतिसम्मानित सरल सुगम साधनको, जो इस कलिकालमें विशेष उपयोगी है, अपने नित्य-नैमित्तिक कार्योंका प्रधान अङ्ग बना लें। इस **'पाप पयोनिधि मम मन मीना'** वाले युगमें यही एक उपाय है।

चहुँ जुग चहुँ स्तुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेष नहिं आन उपाऊ॥

बार-बार एक ही नाम क्यों लें ?

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥*

नाम-माहात्म्य सुननेके पश्चात् लोग कहते है कि 'जब एक ही बार नाम लेनेसे संसार-सागरसे पार हो जाना है, तब फिर इतना परिश्रम क्यो करें? एक बार नाम ले लिया छुट्टी हो गयी। फिर बार-बार उसी नामको लेनेसे क्या लाभ?'

इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि मुक्ति केवल एक ही नामसे होती है, किंतु वह एक अन्तिम हो, उसके पश्चात् पुण्य-पापवाला कोई काम न किया जाय। आज हम नाम लेते है, उससे पिछले पापोंका नाश होता है। दूसरे ही क्षण पाप या पुण्य करते है; उनसे फिर भोग बनता है—कर्मोका तो फल बनेगा ही। चलती चक्कीमें अन्न डालनेसे तो उसका पिसान बनता ही है। यदि एक रामके बाद फिर शरीर ही न रहे और अन्तमें मरते समय मुखसे 'राम' निकल जाय तो वह अवश्य ही मुक्तिका दाता होगा।

पुराणोमें जितने भी दृष्टान्त हैं, सब इसीके समर्थक है। अन्त समयमें जिसने नाम लिया वह पार हो गया। अजामिलने मरते समय नाम लिया था—लिया था पुत्रका नाम, किंतु वह भगवान्‌का नाम तो था ही; फलतः अन्तिम स्वॉसका नाम होनेसे वह पुण्य-पाप दोनोंसे मुक्त हो गया। फिर उससे न पुण्य बना न पाप। जटायु गीधने मरते समय साक्षात् रामकी गोदमें सिर रखकर 'राम राम' कहते हुए तन त्यागा। गणिकाको प्राणान्तके समय महात्माने राम-राम बताया और वह उसे ही कहते मुक्त हो गयी। बृहन्नारदीय पुराणमें ऐसी अनेक कथाएँ है कि किसीकी शिवजीके मन्दिरको झाड़ते मृत्यु हो जानेपर, किसीकी दीपक जलाते मृत्यु हो जानेपर, किसीके मुखमें चरणामृत पडते मृत्यु हो जानेपर इन पुण्य कर्मोके प्रभावसे उन्हे ब्रह्मलोक मिला।

* भगवान् श्रीकृष्णको एक बार भी किया हुआ प्रणाम दस अश्वमेधयज्ञोके अवभृथस्नानोके तुल्य होता है। इतनेपर भी अश्वमेध करनेवाले और प्रणाम करनेवालेमें यह अन्तर है कि यज्ञ करनेवाला तो पुण्य भोगकर फिर संसारमें जन्म लेता है, किंतु भगवान् कृष्णको प्रणाम करनेवाला फिर जन्म नहीं लेता, वह जन्म-मरण-(के बन्धन-) से छूट जाता है।

यद्यपि ये सब बड़े पापी थे, किंतु अन्त समय उनके भाग्यसे उनसे ऐसा पुण्यप्रद काम बन पड़ा कि उस पुण्यके प्रभावसे उन्हें ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई। नृग कितने धर्मात्मा राजा थे, किंतु अन्त समय, मृत्युके समय, उनसे एक अपराध भूलमें बन गया। उन्होंने एक श्रोत्रिय प्रतिग्रहरहित ब्राह्मणकी गौ भूलसे दूसरे ब्राह्मणको दे दी। राजा इसी चिन्तामें मग्न थे कि मृत्यु आ गयी। अतः अन्तमें ऐसी चिन्ता होनेके कारण उन्हें गिरगिट बनना पड़ा। सारांश यह है कि एक ही नाम हो, किंतु वह अन्तिम समयका हो।

अब आप कहेंगे, जब यही बात है तो मरते समय ही कह लेंगे, जब मरेंगे तब राम-नाम कह लेंगे। बात तो ठीक है और यही अभीष्ट भी है, किंतु हमें पता क्या कि कब मृत्यु होगी? मृत्युकी कोई निश्चित तिथि तो है नहीं। अन्तमें भी तो वही बातें स्मरण आती हैं जिनका जीवनभर अभ्यास किया हो।

मृत्यु-समय तो एक बार ही आता है, किंतु उसके लिये हमें सचेष्ट हर समय रहना पड़ता है। कोई जंगल है, उसमें बड़ा भयंकर सिंह रहता है, हमें उसमें रहना है तो हमारे अभिभावक कहते हैं—'देखो सावधान रहना, वहाँ सिंह है। जब आवे तो उसे तुरंत गोलीसे मार देना।' आप उनकी बात मानकर पिस्तौल ले जाते हैं और हर समय उसे पास रखते हैं, सोते समय भी उसे नहीं छोड़ते। पता नहीं, सिंह कब आ जाय, पास ही तो है। पिस्तौलका काम उसी समय ठीक-ठीक पड़ेगा, जब सिंह आ जाय, किंतु उसे रखते हैं सदा साथ; क्योंकि साथ रहेगी तभी काम देगी। इसी तरह 'राम राम' रटते रहे, राम-नामको छोड़ो नहीं, मृत्युके समय भी यह हमारे कण्ठमें रहा तो बेड़ा पार है। उस समय वात, पित्त, कफसे गला भर जाता है। बहुत पहलेसे खूब अभ्यास न होगा तो अन्तमें राम-नाम आ ही नहीं सकता—

प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते।

अभ्यासका ही जीवनपर प्रभाव पड़ता है। हमारा अभिप्राय यहाँ यही दिखाना है कि शास्त्रोंका सिद्धान्त है, अन्तमें, मरनेकी बेहोशीमें, मुखसे राम-नाम निकले तो उससे कल्याण होता है। इसे हमें तर्कसे तो सिद्ध करना नहीं है कि ऐसा क्यों होता है? शास्त्रोंमें कहा है, शास्त्रोंके वचनोंपर हमें विश्वास है, इसीलिये होता है; किंतु हमें तो यहाँ यही दिखाना है कि अन्तमें मरते समय राम-नाम तभी आ सकेगा जब पहलेसे पूरा अभ्यास हो।

प्रभो! आप हमें ऐसा वरदान दीजिये कि आपके नामोंको सोते, जागते, उठते-बैठते सदा रटते रहें। आपके चरणारविन्दोंमें हमारा यह मानसहंस अभी इसी क्षण घुस जाय। मनमेंसे आप कभी हटें ही नहीं। मनमें आपका रूप, जीभपर आपका नाम सदा नाचता रहे। मरते समय तो प्रभो! जब पैरोंसे लेकर सिरतक सभी नसोंसे बलपूर्वक प्राण खिंचने लगेंगे और जब त्रिदोष होनेसे वात, पित्त, कफके प्रकोपसे कण्ठ रुक जायगा और घरघराहट होने लगेगी तब आपके नामका स्मरण-चिन्तन भला कैसे हो सकेगा?

कृष्ण त्वदीयपदपङ्कजपञ्जरान्ते
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते॥

नाम-संकीर्तन और सदाचार

आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः।
आश्रमाचारयुक्तेन पूजितः सर्वदा हरिः॥

बहुधा लोग प्रश्न करते हैं कि 'अमुक आदमी कितने दिनसे राम-राम कहता है, किंतु हम उसके जीवनमें कोई परिवर्तन नहीं देखते। वह बात-बातपर झूठ बोलता है। पैसे-पैसेपर बेईमानी करता है। आचरण भी उसका ऐसा विशुद्ध नहीं है। इसका क्या कारण है? जब एक नामका शास्त्रोंमें इतना अधिक माहात्म्य बताया गया है, तब वह तो न जाने कितने दिनोंसे कितने नाम ले रहा है, फिर भी उसके पाप क्यों नहीं कटे? यह तो निश्चय ही है कि उपरिनिर्दिष्ट कर्म बिना पापमय अन्तःकरणके हो नहीं सकते। राम-नामका उनके ऊपर असर क्यों नहीं होता?' यह प्रश्न बहुत विचारणीय है। नाम यद्यपि अनन्त पापोंका नाश करनेमें समर्थ है, फिर भी पाप-नाश होते-होते ही होंगे। नाम भी एक पुण्यकर्म है, यदि वह मृत्युके समीप भी आ जाय तो कर्म-बन्धनोंको मेटकर वही नाम मोक्षका भी हेतु हो जाता है। इसीलिये नाम साधन भी है और साध्य भी।

जो लोग नाम लेते हुए भी पापकर्ममें लगे हुए हैं, उनका पुण्य तो बढ़ रहा है, किंतु साथ ही पाप भी बढ़ता जाता है। नाम लेनेमें भी लोगोंको भ्रम हो जाता है। नामका माहात्म्य सुनकर लोग समझते हैं कि जब नाममें इतनी शक्ति है, नाम लेनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं, तब हम खूब पाप क्यों न करें, नाम लेनेसे वे नष्ट हो जायँगे। इस प्रकार वे सदाचारको छोड़कर नाम लेते हैं और नामका आश्रय लेकर पाप करते हैं। यह बड़ा भारी अपराध है। नामकी आड़ लेकर पाप करना इतना घोर अपराध है कि उसकी किसी भी प्रायश्चित्तसे निष्कृति नहीं हो सकती। नाम तो कल्पतरु है, जो जिस वासनासे नाम लेता है, सबसे पहले नाम उसकी उसी वासनाको पूरा करता है। नाम तो कैसे भी लिया जाय, लाभदायक तो है ही, पापोंको तो नष्ट करेगा ही, किंतु पूर्ण लाभ तभी होगा, जब सदाचारपूर्वक नामापराधोंको बचाते हुए नाम-जप-कीर्तन किया जाय। भगवान्‌का पापहारी नाम लेनेपर भी पापकर्मोंमें प्रवृत्ति हो, भगवान्‌से अधिक पाप-कर्म अच्छे लगें तो समझना चाहिये कि हमारे अनन्त जन्मोंके घोर पाप हैं और वे पाप तभी नष्ट होंगे जब हम सतत नाम-स्मरण करते रहेंगे। नाम-स्मरणमें नामापराधोंको बचानेकी शक्तिभर चेष्टा करनी चाहिये। नामापराध दस हैं। उनका विवरण संक्षेपमें अग्रिम लेखमें दिया जा रहा है।

'कलिजुग तारक नाम'

भज मन निसदिन सीताराम।
प्रेममगन होय हरिगुन गायो, तिन पायो आराम॥
सुगम उपाय महासुखदाई कलिजुग तारक नाम।
'मानपुरी' हरिनाम गाइकैं हो रहिये निहकाम॥

दस नामापराध

सन्निन्दासति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधी-
रश्रद्धा गुरुशास्त्रवेदवचने नाम्न्यर्थवादभ्रमः।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागौ हि धर्मान्तरैः
साम्यं नाम्नि जपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश ॥*

नामापराध कौन-कौनसे हैं ? इस प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है——नाम-जप-कीर्तनमें सर्वप्रथम अपराध तो सज्जन पुरुषोंकी निन्दा करना है। निन्दा तो किसीकी भी न करनी चाहिये। जो पुरुष किसी पापीकी भी निन्दा करता है तो वह उसके पापका चौथाई भाग ग्रहण कर लेता है। इस विषयमें एक दृष्टान्त है। कोई राजा बड़ा कीर्तिलोलुप था। वह सब काम कीर्तिके लिये ही करता था। सबसे अपनी प्रशंसा सुनता और उसे सुन-कर वह बड़ा प्रसन्न होता था। आत्मप्रशंसामें स्पृहा रखना भी एक पाप है। एक देवदूतने आकर बताया कि 'पहले आपके शुभ कर्मोंके लिये स्वर्गमें एक बड़ा सुन्दर महल बनाया गया था, पर अब उसमें लीद-ही-लीद भर गयी है। यदि अच्छे काम करते हुए भी लोग तुम्हारी निन्दा करें तो लीद साफ हो जाय।' राजाने ऐसा ही किया। आत्मश्लाघा सुननेकी जगह वह अपनी निन्दा सुनने लगा। सब लोग उसे बुरा-भला कहते थे। थोड़े दिनोंमें देवदूतने बताया कि 'सब लीद तो साफ हो गयी, एक कोनेमें थोड़ी शेष है। अमुक लोहार किसीकी निन्दा नहीं करता। यदि वह तुम्हारी निन्दा करे तो वह भी साफ हो जाय।' राजा वेष बदलकर उसके यहाँ गये और बातोंमें लगाकर उससे राजाकी निन्दा करानी चाही। वह समझ गया, राजाको भी पहचान गया, बोला——'राजन्! आप समझते होंगे कि मैं मूर्ख हूँ, यदि मैं राजाकी निन्दा करूँ तो वह महलके कोनेकी लीद मुझे खानी पड़ेगी। मैं कभी निन्दा न करूँगा।' कहनेका अभिप्राय यही है कि दूसरोंकी निन्दा करना दूसरोंकी लीदको खानेके समान है। फिर जिन सज्जनोंने नामकी इतनी भारी महिमा बढ़ायी है, उनकी निन्दा भला नाम कैसे सहन कर सकता है!

'स यैः ख्यातिं यातः कथमुपसहेत् तद्विगर्हाम्।'

अतः नामानुरागी जापक और कीर्तनकारको सबसे पहले तो सबकी और विशेषकर नामानुरागी भक्तोंकी निन्दासे बचना चाहिये।

दूसरा नामापराध है, अनिच्छुकके सामने नाम-माहात्म्य-का कथन करना। आप नामका जोर-जोरसे संकीर्तन कीजिये, जिसे अच्छा लगेगा स्वयं करेगा, जो आपसे नामका माहात्म्य पूछे उसे यथाशक्ति वेद, शास्त्र और संतोंके अनुभवके आधारपर नाम-माहात्म्य सुनाइये; किंतु जो सुनना ही नहीं चाहता, भगवन्नामकी बातें सुनते ही चला जाता है या झगड़ा करने लगता है, उसके सामने हठपूर्वक नाम-माहात्म्य कहना, सुननेकी इच्छा न होनेपर उसे हठपूर्वक सुनाना भी एक नामापराध है; किंतु एक बातका स्मरण रहे कि यह परपक्षके लोगोंके लिये है। जो आपके आश्रित हैं, पाल्य और पोष्य हैं, जिनकी उन्नति और शिक्षाका भार आपके ऊपर है ऐसे शिष्य और पुत्रोंके विषयमें यह लागू नहीं है। उन्हें तो प्रेमपूर्वक धीरे-धीरे नामका माहात्म्य बड़े स्नेहके साथ सुनाइये, समझाइये; किंतु जो धर्मध्वजी बनकर शास्त्रार्थ करते फिरते हैं, वे नाम-माहात्म्यके विरुद्ध हैं। नाम-जापकके लिये वाद-विवाद करना तो

* सत्पुरुषोंकी निन्दा, नाम-माहात्म्यको न सुननेवालेको सुनाना, शिव और विष्णुमें भेदबुद्धि, गुरु, शास्त्र और वेदके वचनमें अश्रद्धा नाममें अर्थवादका भ्रम, नामका आश्रय लेकर पाप करना, विहित धर्मका त्याग करना, दूसरे पुण्यकर्मोंसे नामकी समता करना——ये हरि और हरके नामजप सम्बन्धी दस 'नामापराध' हैं।

एक बड़ा अपराध है। कहते हैं, जीवगोस्वामीजीने शास्त्रार्थमें किसी दिग्विजयी पण्डितको हरा दिया। उस पण्डितको एक बार इनके दोनों चाचाओ—श्रीपाद रूप तथा सनातन गोस्वामियों—ने विजयपत्र बिना शास्त्रार्थके पहले ही लिख दिया था। जब इन दोनो गोस्वामिचरणोंने सुना कि जीवजीने उस पण्डितको शास्त्रार्थमें परास्त किया है, तब इन्होंने उन्हे बहुत डाँटा। इन्होंने कहा—'इस संसारी मान-प्रतिष्ठामें क्या रखा है? ये तो संसारी विषय है और संसारी विषयोसे तो हम हारे ही हुए हैं।' कहनेका अभिप्राय यह है कि नाम अपना प्रचार स्वयं कर लेगा। वह जड तो है नहीं, चैतन्य है। आप अपने स्वान्तःसुखके निमित्त उसका माहात्म्य वर्णन करना चाहते हों तो करें।

श्रीशिवजीके और विष्णुजीके नामोंमें भेद-बुद्धि रखना, किसीके नामको किसीसे छोटा बताकर दूसरे नाममे अश्रद्धा रखना—यह भी एक नामापराध है। हम तो श्रीवैष्णव है, हम शिवजीका नाम नहीं लेते। हम कृष्ण-कृष्ण नहीं कहेंगे, राम-राम कहेगे। हमे शंकरजीके नाम-कीर्तनसे क्या प्रयोजन? ऐसी बातें सदा मन्द-बुद्धिवाले लोग ही करते है। यह कौन कहता है कि आप अपने इष्टदेवकी पूजा मत करे। आपका इष्ट सबसे बडा है—यह तो निर्विवाद ही है। इष्टका अर्थ ही यह है कि जो सबसे रुचिकर हो। किंतु एक आपको रुचिकर है, पर दूसरेसे आपको घृणा है, यह कहाँका न्याय है? आप यह समझें कि ये सब अपने इष्टके ही नाम है। इन सब रूपोंमें अपने इष्ट ही विराजते हैं। श्रीशिवसहस्रनाम कई हैं, उन सबमे शिवजीके नाम-ही-नाम हैं। भगवान्‌के नारायण, हरि आदि समस्त नाम शिवसहस्रनामोंमें भी आ गये हैं। अब इनमें परस्परमें भेद-भाव करना एक भारी अपराध है। पुराणोंमें इस बातपर अधिक बल दिया गया है। इतना बल शायद ही किसी दूसरेपर दिया गया हो। जब हमारे इष्ट ही सब रूपोंमें है, तब भेद-भाव कैसा? विरोध किस बातका?

'निज प्रभु मय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध।'

बृहन्नारदीय पुराणमें इस बातपर बहुत ही बल दिया गया है। जहाँ भगवान्‌के 'नारायण', 'वासुदेव', 'हरि' आदि नामोंका कीर्तन बताया गया है, उसके नीचे ही 'हर', 'शंकर', 'मृड' आदि नामोका भी कीर्तन है। एक पुरानी कथा है। कहते है, विवाहमें जैसे वंशपरम्पराका वर्णन होता है, वैसे ही शिवजीके विवाहमें भी वर्णन करनेके लिये पूछा गया। आपके पिताका क्या नाम है? शिवजीने कहा 'ब्रह्माजी'। फिर पूछा, 'पितामहका क्या नाम है?' बताया, विष्णुजी। फिर पूछा, 'तीन पीढी बतानी पड़ती है, प्रपितामहका नाम और बताइये।' तब तो शिवजी बोले, 'प्रपितामह तो सबके हमीं हैं।' विष्णु भगवान्‌से पूछा, 'आपके पिता कौन हैं?' उन्होने कहा—'शिवजी'। शिवजीसे पूछा—'आपके पिता कौन है?' वे बोले—'विष्णु भगवान्।' इन सबका यही अभिप्राय है कि सब एक ही है। इनमें भेद-भावके लिये स्थान ही नहीं? शिवजी दिन-रात 'राम-राम' रटते है और रामजी प्रेमपूर्वक नियमसे शिवजीकी आराधना करते है। इसीलिये भगवान् रामने रामेश्वरजीकी स्थापना करते हुए स्पष्ट सबके सामने अपना सच्चा सिद्धान्त सुना दिया है—

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहु मोहि न भावा॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ मति थोरी॥

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महँ बास॥

गुरु-वेद-वचनोंमें, शास्त्रोंमें, स्मृति-पुराणोंमें अश्रद्धा प्रकट करना—ये भी नामके तीन पृथक्-पृथक् अपराध माने गये है। वेद तो हमारे ज्ञानके आदि

भण्डार हैं। इनसे ही तो हमने नाम-महिमा प्राप्त की है। उसके अन्य वचनोंमें अश्रद्धा प्रकट करना बड़ा अपराध है। इसी प्रकार शास्त्र-पुराण भी वही बात कहते हैं जो वेद भगवान् आज्ञा करते हैं। सब वचन सबके लिये उपयोगी नहीं होते और वे सबके लिये कहे भी नहीं गये हैं। उनमें परस्परमें कुछ बाहरी विरोध-सा प्रतीत होनेपर सभीको त्याज्य बताना—यह हमारी बुद्धिकी क्षुद्रता है। हम अपनी तपस्या और विशुद्ध संस्कारसे रहित क्षुद्र बुद्धिसे जो सोचते हैं, वही ठीक और जो बात हमारी सीमित बुद्धिमें नहीं आती वह मिथ्या ही है—इसे हम किसके बलपर कह सकते हैं! श्रीभगवान् और उनके अनन्त गुण तो बुद्धिके परे तीनों गुणोंसे आगेकी बात है, इन्हें हम अपनी त्रिगुणमयी बुद्धिके द्वारा मापना चाहते हैं तो कैसे ठीक होगा! अतः वेद-शास्त्रोंपर, आप्त-वचनोंपर श्रद्धा कीजिये।

शास्त्रोंमें तीन प्रकारके शब्द आते हैं—रोचक, यथार्थ और भयानक। अमुकके सिरपर किसी चिड़ियाने बीट कर दी, उससे तिलक-सा बन गया। उसके कारण उसे कितने करोड़ वर्षोंतक विष्णुलोकमें निवास प्राप्त हुआ। यह रोचक वचन है। इसका इतना ही अभिप्राय है कि तिलक लगाना बहुत पुण्यका कार्य है। भयानक—जैसे अमुक आदमीने भूलसे अमावस्याके दिन एक दातौन तोड़ ली तो उसे कितने करोड़ वर्षोंतक नरकोंकी यातना सहनी पड़ी। यह भयानक वाक्य है। इसका यह अभिप्राय है कि अमावस्याको कभी पेड़ न काटना चाहिये। यथार्थ तो यथार्थ है ही; जैसे—प्रातः-साय संध्या करनी चाहिये। माता-पिताकी आज्ञा माननी चाहिये, आदि।

शास्त्रकारोंका कहना है कि शुभ भगवन्नाममें अर्थवादका आरोप मत करो। अजी, अजामिल पुत्रके बहाने अन्तमें नाम लेनेसे भला कैसे तर सकता है! आयुभर निषिद्ध कर्म करनेवाली गणिका अन्तमें राम-नाम लेनेसे कैसे मुक्त हो सकती है! पशु-योनिवाला गज मनसे स्तुति करनेपर कैसे तर सकता है! आदि। भैया! तुम इस संसार-चक्रको क्या जानते हो! किस जीवके कब कौनसे कर्म, कौनसे संस्कार जाग्रत् हो जाते हैं यह किसीको क्या मालूम! जिस अजामिल, गज, गणिका, गीधका नाम व्यास, वाल्मीकिसे लेकर आजतकके समस्त कवि बड़ी श्रद्धाके साथ लेते आ रहे हैं, क्या यह कोई एक जन्मके साधारण कर्मका फल है! ये तो भगवान्की अनुग्रह-सृष्टिके नित्य जीव हैं। पता नहीं, किस जीवपर भगवान्की कब कृपा हो जाय। शास्त्रोंका कहना है कि इन बातोंमें अर्थवादका भ्रम करो ही मत। भगवन्नाममें वह शक्ति है कि वह सब कुछ कर सकता है। शिव-सनकादिकी तो बात ही क्या, साक्षात् श्रीरामजी भी अपने नामकी पूरी महिमा स्वयं नहीं कह सकते। यदि पूरी कह सकें तो वह असीम कैसे होगी!

'कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई॥'

नामकी आड़ लेकर पाप करना, यह सबसे बड़ा नामापराध है। प्रायः लोग कहते हैं—'नाममें तो अनन्त शक्ति है।'

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

नाममें पापोंको नष्ट करनेकी जितनी भारी शक्ति है, उतना पाप यदि घोर पापी हठपूर्वक भी करना चाहे तो नहीं कर सकता। इसके माने यह थोड़े ही हैं कि नामकी आड़ लेकर जान-बूझकर पाप करने चाहिये। जैसे यदि कोई दुःखी हो, संकटमें हो तो बड़े लोग उसे क्षमा कर देते हैं, किंतु उनका ही नाम लेकर लोगोंको ठगे, लोगोंमें अविश्वास पैदा करे तो उसपर वे अधिक अप्रसन्न होते हैं। नाममें पापोंको

दग्ध करनेकी शक्ति है, किंतु वह उन्हीं पापोंके लिये है जो विषयोंका आश्रय लेकर अनजानमें किये गये हों। इसलिये जब नामका आश्रय पकड़ लिया हो, तब यथासाध्य पापोंसे बचनेकी ही चेष्टा करते रहनी चाहिये। जिस अन्तःकरणमें नामका माहात्म्य प्रवेश कर गया, जिस मनमें यत्किंचित् भी भगवद्भक्ति हो गयी, उस व्यक्तिसे पाप बन भी नहीं सकते। उससे फिर दुर्गुण होंगे ही कैसे।

कुछ आधुनिक समाजोंके अनुयायियोंमें इस समय एक बड़ी ही घातक प्रवृत्ति चल पड़ी है। उनका विचार है कि हमारे पन्थके महंतने जो साधन बताये हैं उन्हें करते जायँ और उनकी यथासाध्य खाने-पहननेकी वस्तुओंसे थोड़ी-बहुत सेवा करते जायँ, फिर चाहे हम जो भी पाप करें, लोगोंसे घूस लेऊँ, उन्हें ठगें, झूठ बोलें, धोखा दें, फिर भी हमें पाप न लगेगा। यह बड़ा भारी भ्रम है। वे अपने लिये सीधे नरकका रास्ता तैयार कर रहे हैं और अपने लोभी गुरुको भी उधर घसीट ले जानेकी चेष्टा कर रहे हैं।

'लोभी गुरु लालची चेला। दोनों नरक में ठेलम ठेला॥'

कोई भी पारमार्थिक साधन क्यों न हो, उसमें सबसे पहले यम, नियम, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-विश्वास—इन गुणोंकी परम आवश्यकता है। अत नामका आश्रय लेकर जो पाप किया जाता है, वह अन्य पापोंसे बहुत भयंकर होता है। इसलिये इनसे बचाकर ही नाम-जप-कीर्तन करना चाहिये। प्रायः लोग कह देते हैं—'अजी! हमने तो एक नामका ही आश्रय पकड़ लिया है, फिर वैदिक संस्कार, श्राद्ध, तर्पण, संध्या-वन्दन क्यों करें! भगवन्नाम सबसे बड़ा है, इसमें सब आ जाते हैं। इसे छोड़कर दूसरेका आश्रय लेना अनन्यताके विरुद्ध है।' बात तो सच है, भगवन्नाममें प्रेम होना ही सब साधनोंका फल है और इसीके लिये सब कर्म किये जाते हैं, किंतु आरम्भमें ही वे कर्म छोड़ दिये जायँ जो कि भगवन्नाममें प्रेम उत्पन्न करनेमें सहायक हैं, तो इसका फल यह होगा कि हम भ्रष्ट हो सकते हैं। वायु थोड़ी अग्निको बुझा देती और अधिक अग्निको प्रज्वलित करती है। अभी जबतक नाम-प्रेमका अङ्कुर भी उत्पन्न नहीं हुआ, तभीतक यदि उसमें पानी देना, गोड़ना छोड़ दिया जाय और काँटोंकी बाड़ हटा दी जाय तो प्रथम तो अङ्कुर उत्पन्न होगा ही नहीं, होगा भी तो उचित आहार और रक्षाके अभावमें कुम्हला जायगा। अतः जबतक सर्वतोभावेन भगवद्-आश्रय हो न जाय, जबतक संसारको एकदम भूल न जाय, तबतक वेदाचार और कुलाचार आदिका बड़ी तत्परतासे पालन करना चाहिये। अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुरूप कर्मोंको तबतक न छोड़ना चाहिये जबतक भगवत्-लीला-कथा-श्रवणमें पूरी श्रद्धा न हो जाय।

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥

जब हम माता-पिता, कुल, परिवार, शरीरकी चिन्ता करते है और सब संसारी काम करते हैं, दूसरोंके गुण-दोषोंकी भी समीक्षा करते हैं तबतक यदि हम अपने सत्कर्मोंका त्याग करते हैं तो मानो अपराध करते हैं। अनन्य प्रेम होनेपर कर्म छोड़ने नहीं पड़ते, स्वयं ही छूट जाते हैं।

बहुधा जब हमें किसीकी उपमा देनी होती है, तब उससे बड़ी अच्छी वस्तुकी उपमा देते है। जैसे इस कूपका जल तो अमृत-तुल्य है। जलसे अमृत बहुत सुन्दर, बहुत स्वादिष्ट, बहुत गुणकारी होता होगा। यहाँ जलको अमृतकी उपमा देनेसे इतना ही तात्पर्य है कि जल बहुत सुन्दर है, मीठा है, स्वच्छ है। अमुक व्रत करोगे तो अश्वमेध यज्ञका फल मिलेगा। इसे साम्य कहने

हैं। भगवन्नामकी दूसरे धर्म-कार्योंके साथ समता करना यह भी एक नामापराध है। समता तो तभी की जा सकती है जब उस वस्तुसे कोई बड़ा हो या बराबरका हो। भगवन्नामसे बड़ा तो कोई है ही नहीं। न उसके बराबरका ही कोई दूसरा धर्म है, फिर उसके साथ दूसरे कर्मोंकी समानता करना अनधिकार चेष्टा ही है। जिसके नामका महान् यश है, जो बड़ेसे भी बड़ा है, जो फलोंका भी फल है, पुण्योंका भी पुण्य है, समस्त धर्म जिसके आश्रयपर टिके हुए हैं, उसकी किसी दूसरेके साथ तुलना की ही कैसे जा सकती है! इसीलिये शास्त्रोंमें कहा है—

> गोकोटिदानं ग्रहणेषु काशी-
> प्रयागगङ्गायुतकल्पवासः ।
> यज्ञायुतं मेरुसुवर्णदानं
> गोविन्दनाम्ना न कदापि तुल्यम् ॥

सबसे बढ़कर गोदानका माहात्म्य काशीजीमें है, यदि ग्रहणके समय गोदान किया जाय तो वह अक्षय हो जाता है। उस काशीमें चन्द्रग्रहणके समय करोड़ों गौओंका दान किया जाय तो उस पुण्यका कुछ ठिकाना ही नहीं, वह सबसे बड़ा दान है। प्रयागमें स्नान करनेका ही बड़ा माहात्म्य है। यदि उस प्रयागमें गङ्गा-यमुनाके मध्यमें जीवनभर कल्पवास करे तो फिर उस पुण्यका तो कुछ कहना ही नहीं। ऐसे कल्पवास यदि दस हजार वर्ष किये जायँ तो वह पुण्य अक्षय है। यज्ञ तो भगवान्‌का स्वरूप ही है, 'यज्ञो वै विष्णुः'। ऐसे यज्ञ यदि दस हजार किये जायँ तो सबसे अधिक पुण्यकर्म वे ही माने जायँगे। सुवर्णकी चोरी करना जैसे महापाप है उसी प्रकार सुवर्णका दान करना भी महापुण्य है। सुमेरु पर्वत सुवर्णका ही है और उसीके चारों ओर दिक्पालोंके लोक हैं। सबसे ऊपर ब्रह्माजीकी पुरी है। जगत्‌में सुमेरु ही सबसे बड़ा है। उस सुमेरुके बराबर सुवर्णका दान कर दिया जाय उस पुण्यका कोई अनुमान भी नहीं कर सकता। ऊपर जितने भी पुण्यप्रद कर्म गिनाये गये हैं, ये सब मिलकर भी भगवान्‌के नामके समान नहीं हो सकते। भगवन्नामका माहात्म्य इन सबसे भी बढ़कर है। यह कर्म चाहे कितने भी सुखप्रद क्यों न हों, किन्तु इनसे संसार-बन्धन नहीं छूट सकता। कितने भी करोड़ वर्षतक सही, ब्रह्मलोक आदि अनन्त सुखोंके लोकोंमें रहकर फिर आवागमनमें आना पड़ता है। यदि भगवान्‌का नाम मरते समय मुखसे निकल जाय तो संसार-बन्धन सदाके लिये छूट सकता है। ऐसे नामकी समता भला किसीसे करें भी तो कैसे करें! यदि हम अपनी अज्ञतासे करते हैं तो घोर नामापराध करते हैं। अतः इन दस नामापराधोंको बचाकर ही नाम-जप-कीर्तन करना चाहिये, तभी नामका यथार्थ फल मिलेगा।

नामापराधका प्रायश्चित्त

यह एक बड़ी भारी कठिनता हुई। नाम-जप-कीर्तन फिर सरल कहाँ रहा! यह तो महान् कठिन हो गया। ब्रह्महत्या, सुरापान आदि महापातकोंका तो प्रायश्चित्त कहा है, किंतु नामापराधका कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है। वह यज्ञ, याग, उपवास, तप आदिसे भी दूर नहीं होता; तो यह तो बड़े भयकी बात हुई। पग-पगपर हमसे नामापराध बननेकी सम्भावना है। जान-बूझकर अपराध न करनेकी चेष्टा की जा सकती है। नामका आश्रय लेकर पाप करनेकी प्रवृत्तिको मनसे हटानेका उद्योग हो सकता है, किंतु ये जो दस नामापराध बताये गये हैं, इनका कोई प्रायश्चित्त न होनेसे हमारा इतना नाम-जप-कीर्तन निष्फल हो जायगा, तब तो यह किया-कराया सब चौपट ही हुआ!

बात तो ऐसी ही है। नाम-जपको लोग जितना सरल समझते हैं, उतना सरल है नहीं। लोग सरल

उसे कहते हैं कि हम यथेच्छ दिल खोलकर पाप भी करते रहें और परमार्थके पथिक भी बन जायँ। ऐसा किसी साधनसे नहीं होनेका। परमार्थकी ओर अग्रसर होनेवालेको पापकर्मोंको छोड़ना ही होगा। भगवान् तो दैव हैं, उन्हें तो दैवी सम्पत्तिके गुणके लोग ही अधिक प्रिय होंगे। फिर भी भूलमे, अनजानमें जो नामापराध बन जाते हैं, उनका प्रायश्चित्त तप, उपवास आदिसे तो हो नहीं सकता; क्योंकि नामका अपराध है और नाम सबसे बड़ा है, बडोंके अपराधको बडे ही क्षमा भी कर सकते हैं, छोटोंकी शक्ति नहीं कि उसे क्षमा कर दें, इसलिये भूलमें हुए नामापराधका प्रायश्चित्त बताया गया है। वह यह है—

> **नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्।**
> **अविश्रान्तप्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि हि॥**

भूलसे जिनसे नामापराध बन गया हो और पीछे उन्हे माल्रम पड़ जाय तो उसके लिये मनमे खूब पश्चात्ताप करें। नाम-अपराधको नाम ही मिटा सकता है, अत: बिना विश्रामके सतत नामका जप-कीर्तन करे। अविच्छिन्न नाम-जप-कीर्तन करनेसे नामापराध भी नष्ट हो सकते हैं।

नामका आश्रय लेनेकी आवश्यकता है। नामके आश्रय लेनेवालेसे तत्काल तो कोई अपराध होते नहीं, यदि पूर्व-संस्कारानुसार कोई भूलमें बन भी जाते हैं तो निरन्तर नामके जप-कीर्तन-स्मरणमें ऐसी प्रबल शक्ति है कि वह उसका नाश कर ही देती है। अत: जैसे भी बने वैसे नामस्मरण करना चाहिये। खाते-पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, जोर-जोरसे हो, मन-ही-मनमें हो, कैसे भी क्यो न हो, नामका जप-स्मरण अवश्य ही होना चाहिये। आप नामको अपने जीवनका ध्रुव लक्ष्य बना ले। समस्त विघ्न, समस्त अपराध आप ही आप नष्ट हो जायँगे। यह आग्रह नहीं कि आप भगवान्‌का अमुक नाम ही लीजिये। भगवान्‌के समस्त नामोमें पाप-दहन करनेकी शक्ति समान है, फिर भी साधकको जो नाम प्रिय हो उसीका जप करना चाहिये। शेष सभी नामोका विरोधरहित कीर्तन करना चाहिये। जिनका नाम-संकीर्तन करनेसे समस्त पापोका नाश होता है, उन परात्पर प्रभुके पाद-पद्मोंमें प्रणाम करते हुए यह लेख समाप्त किया जा रहा है।

> **नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।**
> **प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥**

'करै उजैला तोय'

> साँचा हरिका नाम है, झूठा यह संसार।
> चरणदास-सों शुक कही सुमिरण करो विचार॥
> श्वासा लेवे नाम बिनु, सो जीवन धिक्कार।
> श्वास-श्वासमें नाम जप, यही धारणा सार॥
> उलट-पुलट जप नामही, टेढ़ा-सीधा होय।
> याका फल नहिं जायगा, कैसा ही लो कोय॥
> खाते-पीते नाम ले, चलते, बैठे, सोय।
> सदा पवित्र यह नाम है, करै उजैला तोय॥

कीर्तनका वैविध्य

कीर्तन जोर-जोरसे होता है और इसमें संख्याका कोई हिसाब नहीं रखा जाता है। यही जप और कीर्तनमें भेद है। जप जितना गुप्त होता है उतना ही उसका महत्त्व अधिक है, परंतु कीर्तन जितना ही गगन-भेदी स्वरमें होता है, उतना ही उसका महत्त्व बढ़ता है। कीर्तनके साथ संगीतका सम्बन्ध है। कीर्तनमें पहले-पहल स्वरोंकी एकतानता करनी पड़ती है।

कीर्तनके कई प्रकार हैं—

१—अकेले ही भगवान्‌के किसी नामको आर्तभावसे पुकार उठना, जैसे द्रौपदी और गजराज आदिने पुकारा था, यह एक प्रकार है।

२—अकेले ही भगवान्‌के गुणनाम, कर्मनाम, जन्म-नाम और सम्बन्ध-नामोंका विस्तारपूर्वक या संक्षेपमें जोर-जोरसे उच्चारण करना—यह भी एक ढंग है।

३—भगवान्‌के चरित्र या भक्तचरित्रके किसी कथा-भागका गान करना और बीच-बीचमें नाम-कीर्तन करना—यह तीसरा प्रकार है।

४—कुछ लोगोंका एक साथ मिलकर प्रेमसे भगवन्नाम-गान करना तथा

५—अधिक लोगोंका एक साथ मिलकर एक स्वरसे नाम-कीर्तन करना आदिके सिवाय और भी अनेक भेद हैं।

जब मनुष्य किसी दुःखसे घबराकर जगत्‌के सहायकोंसे निराश होकर भगवान्‌से आश्रय-याचना करता हुआ जोरसे उनका नाम लेकर पुकारता है, तब भगवान् तत्काल भक्तकी इच्छाके अनुकूल स्वरूप धारणकर उसे दर्शन देते और उसका दुःख दूर करते हैं। श्रीभगवान्‌के रामावतार और कृष्णावतारमें असुरोंके द्वारा पीड़ित सुर-मुनियोंने मिलकर पहले आर्तस्वरसे कीर्तन ही किया था।

इसी प्रकार गजराजकी कथा प्रसिद्ध है। वहाँ भी इसी तरहकी व्याकुलतापूर्ण पुकार थी। आज भी यदि कोई ऐसे ही मनसे आर्त होकर पुकारे तो यह निश्चय है कि उसके लोक-परलोक दोनोंकी सिद्धि हो सकती है। इस बातका कई लोगोंको कई तरहका प्रत्यक्ष अनुभव है। अतएव प्रातःकाल, सायंकाल, रातको सोते समय भगवन्नामका कीर्तन अवश्य करना चाहिये। जहाँतक हो सके कीर्तन निष्काम एवं केवल प्रेमभावसे ही करना उचित है।

यह तो व्यक्तिगत नाम-कीर्तनकी बात हुई। इसके बाद समुदायमें नाम-कीर्तनका तरीका बतलाया जाता है। महाराष्ट्र और गुजरात प्रान्तमें कीर्तनकारोंके अलग समुदाय हैं, जो हरिदास कहलाते हैं। ये लोग समय-समयपर मन्दिरों, धर्मसभाओं और उत्सवोंमें बुलाये जाते हैं। इनका कीर्तन बड़ा सुन्दर होता है। भगवान्‌की किसी लीला-कथाको या भक्तोंके किसी चरित्रको लेकर ये लोग कीर्तन करते हैं। आरम्भमें किसी भक्तका कोई एक श्लोक या पद गाते हैं और उसीपर उनका सारा कीर्तन चलता है। अन्तमें उसी श्लोक या पदके साथ कीर्तन समाप्त भी किया जाता है। आरम्भमें, अन्तमें और बीच-बीचमें हरिनाम (हरिबोल, हरिबोल) की धुन लगायी जाती है, जिसमें श्रोतागण भी साथ देते हैं। ये लोग गाना-बजाना भी जानते हैं और कम-से-कम हार्मोनियम तथा तबलेके साथ इनका कीर्तन होता है। बीच-बीचमें समानभाव-वाले सुन्दर पद भी गाते हैं। इसमें दोष यही है कि इस प्रकारके अधिकांश कीर्तनकारोंका ध्यान भगवन्नामकी अपेक्षा सुर-अलापकी ओर अधिक रहता है। गुजरातमें विवाहके अवसरपर एक दिन हरिकीर्तन करानेकी प्रथा है जो बड़ी ही सुन्दर मालूम होती है। अन्य अनेक बहुव्ययी कार्यक्रमोंमें धनका नाश किया जाता है, वहाँ यदि इस प्रथाका प्रचार किया जाय तो लोगोंके मनोरञ्जनके

साथ-ही-साथ बड़ा पारमार्थिक लाभ भी हो सकता है। यह भी एक तरहका संकीर्तन है।

इसके बाद वह कीर्तन आता है, जो सर्वश्रेष्ठ है, जिसका इस युगमे विशेष प्रचार महाप्रभु श्रीश्रीगौराङ्ग-देवजीकी कृपासे हुआ। इस कीर्तनका प्रकार यह है कि बहुत-से लोग एक स्थानपर एकत्र होते हैं। एक आदमी एक बार पहले बोलता है, उसके पीछे-पीछे और सब बोलते हैं। पर आगे चलकर सभी एक साथ बोलने लगते हैं। किसी एक नामकी धुनको सब एक स्वरसे गाते हैं। ढोल, करताल, झाँझ और तालियाँ बजाते हुए गला खोलकर, लज्जा छोड़कर बोलते हैं। जब धुन जम जाती है, तब स्वरका ध्यान आप ही छूट जाता है। कीर्तन करनेवाला दल धुनमें मस्त हो जाता है। फिर कीर्तनकी मस्तीमें नृत्य करने लगता है। कीर्तन करनेवालेकी रग-रग नाचने लगती है, आँखोसे अश्रुओंकी धारा बहने लगती है, शरीरका ज्ञान नष्टप्राय हो जाता है। नवद्वीप, वृन्दावन, अयोध्या और पण्ढरपुरमें ऐसे कीर्तन बहुत हुआ करते हैं। यह कीर्तन किसी एक स्थानमें भी होता है और घूमते हुए भी होता है। लेखकका विश्वास है कि ऐसे प्रेमभरे कीर्तनमें कीर्तनके नायक भगवान् स्वयं उपस्थित रहते हैं।

इस प्रकारके कीर्तनमें प्रेमका सागर उमड़ता है, जो जगत्‌भरको पावन कर देता है। इस कीर्तनमें ब्राह्मण-चाण्डाल सभी सम्मिलित हो सकते हैं। जिसे प्रेम उपजा, वही सम्मिलित हो गया, कोई रुकावट नहीं। 'जाति पाँति पूछै नहिं कोई। हरिको भजै सो हरिका होई॥' वही बड़ा है, वही श्रेष्ठ है, जो प्रेमसे नाम-कीर्तनमें मतवाला होकर स्वयं पावन होता है और दूसरोंको पावन करता है। इस कीर्तनसे एक बड़ा लाभ और होता है। हरिनामकी तुमुल ध्वनि पापी, पतित, पशु, पक्षीतकके कानोंमें जाकर सबको पवित्र और पापमुक्त करती है। जिसके श्रवण-रन्ध्रसे भगवन्नाम उसके हृदयके अंदर चला जाता है, उसके पाप-मलको वह धो डालता है। वामनपुराणका वचन है—

नारायणो नाम नरो नराणां
प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेकजन्मार्जितपापसंचयं
हरत्यशेषं श्रुतमात्र एव॥

'पृथ्वीमें नारायण-नामरूपी नर प्रसिद्ध 'चोर' कहा जाता है; क्योंकि वह कानोंमें प्रवेश करते ही मनुष्योंके अनेक जन्मार्जित पापोंके सारे संचयको एकदम चुरा लेता है।' जिस हरि-नाम-कीर्तनका ऐसा प्रताप है, जो पुरुष जीभ पाकर भी उसका कीर्तन नहीं करते, वे मन्दभागी हैं—

जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत्।
लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणीं स नारोहति दुर्मतिः॥

'जो जिह्वाको पाकर भी कीर्तनीय भगवन्नामका कीर्तन नहीं करते, वे दुर्मति मोक्षकी सीढ़ियोंको पाकर भी उनपर चढ़नेसे वञ्चित रह जाते हैं।'

कुछ लोग कहा करते है कि हमें जोर-जोरसे भगवन्नाम लेनेमें संकोच होता है। ऐसे बहुत-से अच्छे-अच्छे लोग देखनेमें भी आते हैं, जिन्हे पाँच आदमियोंके सामने या रास्तेमें हरिनामकी पुकार करनेमें लज्जा आती है। झूठ बोलनेमें, कठोर वाणीके प्रयोगमें, परनिन्दा-परचर्चामें, अनाचार-व्यभिचारकी बातें करनेमें लज्जा नहीं आती, परंतु भगवन्नाममें लज्जा आती है! यह चिन्त्य है। यदि भगवन्नामसे किसी सभ्यतामें बट्टा लगता हो तो ऐसी विषमयी शुष्क 'सभ्यता'को दूरसे ही नमस्कार करना चाहिये। धन्य वही है जिसके भगवन्नामके कीर्तनमात्रसे, श्रवण और स्मरणमात्रसे रोमाञ्च हो जाता है, नेत्रोंमें आँसू भर आते हैं, कण्ठ रुक जाता है। वास्तवमें वही पुरुष मनुष्य कहलाने योग्य है। ऐसे पुरुष ही जगत्‌को पावन करते हैं। भगवान् कहते हैं—

वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥
(श्रीमद्भा० ११ । १४ । २४)

'जिसकी वाणी गद्‌गद हो जाती है, हृदय द्रवित हो जाता है, जो बार-बार ऊँचे स्वरसे नाम ले-लेकर मुझे पुकारता है, कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी लज्जा छोड़कर नाचता है, ऊँचे स्वरसे मेरा गुणगान करता है, ऐसा भक्तिमान् पुरुष अपनेको पवित्र करे—इसमें तो बात ही क्या है, परंतु वह अपने दर्शन और भाषणादिसे जगत्‌को भी पवित्र कर देता है ।'

यही कारण था कि कीर्तनपरायण भक्तराज नारदजी और श्रीगौराङ्गदेव आदिके दर्शन और भाषण आदिसे अनेक जीवोंका उद्धार हो गया ।

महाप्रभुके कीर्तनको सुनकर वनमें रहनेवाले भीषण हिंस्र जन्तु—सिंह, भालू आदि पशु भी प्रेममें निमग्न होकर नामकीर्तन करने हुए नाचने लगे थे । भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

गीत्वा तु मम नामानि नर्तयेन्मम संनिधौ ।
इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्जुन ॥

'अर्जुन ! जो मेरे नामोंका गान करता हुआ मुझे अपने समीप मानकर मेरे सामने नाचता है, मैं सत्य कहता हूँ कि मैं उसके द्वारा खरीद लिया जाता हूँ ।'

कीर्तनकी महिमा क्या कही जाय ! जो कभी कीर्तन करता है, उसी भाग्यवान्‌को इसके आनन्दका पता है । जिसको यह आनन्द प्राप्त करना हो, वह स्वयं करके देख ले । वाणी इस आनन्दके स्वरूपका वर्णन नहीं कर सकती; क्योंकि यह—**'मूकास्वादनवत्'** (नारदभक्ति० ५२)—गूँगेके गुड़के समान केवल अनुभवकी वस्तु है ।

द्रौपदीका कारुणिक कीर्तन

गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ॥
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन ॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम् ॥

हे द्वारिकावासी गोविन्द, गोपियोंके प्रिय कृष्ण ! कौरवोंसे—दुष्ट दुर्योधन-दुःशासनादि जनोंसे घिरी हुई मुझे क्या तुम नहीं जानते ? हे नाथ, रमाके नाथ, व्रजनाथ, दुःखका नाश करनेवाले जनार्दन ! मैं कौरवरूपी समुद्रमें डूब रही हूँ । मुझे बचाओ । हे विश्वात्मन्, विश्वको उत्पन्न करनेवाले महायोगी सच्चिदानन्दस्वरूप कृष्ण ! हे गोविन्द ! कौरवोंके बीच कष्ट पाती हुई मैं तुम्हारी शरण आयी हूँ । मुझे बचाओ ।

× × ×

तुम बिन मेरी कौन खबर ले, गोबरधन गिरधारी ।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुंडल की छवि न्यारी ॥
भरी सभामें द्रौपदि ठाढ़ी, राखो लाज हमारी ।
मीराके प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहारी ॥

जिस समय एकवस्त्रा देवी द्रौपदी कौरवोंके दरबारमें केश पकड़कर लायी जाती है और दुर्योधन उसके वस्त्रहरणके लिये अमित बलशाली दुःशासनको आज्ञा देता है, उस समय द्रौपदीको यह कल्पना ही नहीं होती कि बड़े-बूढ़े धर्मज्ञ विद्वान् और वीरोंकी इस सभामें ऐसा अनाचार होगा; परंतु जब दुःशासन सचमुच वस्त्र खींचने लगता है, तब द्रौपदी घबराकर राजा धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य आदि तथा अपने वीर पाँच पतियोंकी सहायता चाहती है, किंतु भिन्न-भिन्न कारणोंसे जब कोई भी उस समय द्रौपदीको छुड़ानेके लिये तैयार नहीं होता, तब वह सबसे निराश हो जाती है । सबसे निराश होनेके बाद ही भगवान्‌की अनन्य स्मृति हुआ करती है । दुःशासन बड़े जोरसे साड़ी खींचता है । एक झटका और लगने

ही द्रौपदीकी लज्जा जा सकती थी। द्रौपदीकी उस समयकी दीन अवस्था हमलोगोकी कल्पनामें भी पूरी नहीं आ सकती। महलोंके अंदर रहनेवाली एक राजरानी, पृथ्वीके सबसे बड़े पाँच वीरोंद्वारा रक्षिता कुलरमणी रजस्वला-अवस्थामें बड़े-बूढ़ोंके तथा वीर पतियोंके सामने नंगी की जाती हो, उस समय उसे कितनी मार्मिक वेदना हो रही होगी, इस बातको वही जानती है। कवियोंकी कलम कुछ कल्पना करती रही है। खैर, द्रौपदीने निराश होकर भगवान्‌का स्मरण किया और वह व्याकुल हो भगवान्‌का नाम लेकर पुकार उठी।

व्याकुलतापूर्ण नामकीर्तनका फल तत्काल होता है। जब सबकी आशा छोड़कर केवलमात्र परमात्मापर भरोसा कर उसे एक मनसे कोई पुकारता है, तब वह करुणासिन्धु भगवान् एक क्षण भी निश्चिन्त और स्थिर नहीं रह सकता। उसे भक्तके कामके लिये दौड़ना पड़ता है। नामकी पुकार होते ही भगवान्‌का अलौकिक वस्त्रावतार हो गया! वस्त्रका ढेर लग गया। दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाले दुःशासनकी भुजाएँ फटने लगीं—

'दस हजार गज बल घट्यो, बढ्यो न दस गज चीर।'

भक्त सूरदासजी कहते हैं—

'दुःसासनकी भुजा थकित भइ बसनरूप भए स्याम।'

किंतु साड़ीका छोर न आया। एक कवि कहते हैं—

पाय अनुसासन दुसासन के कोप धायो,
　　द्रुपदसुताको चीर गहे भीर भारी है।
भीषम, करन, द्रोन बैठे ब्रतधारी तहाँ,
　　कामिनीकी ओर काहू नेक ना निहारी है।
सुनिकै पुकार धाये द्वारिका ते जदुराई,
　　बाढ़त दुकूल खैंचे भुजबल भारी है।
सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है,
　　कि सारी ही कि नारी है कि नारी ही कि सारी है।

दुःशासन थककर मुँह नीचा करके बैठ गया। द्रौपदीकी लाज और उसका मान रह गया। भगवन्नाम-कीर्तनका फल प्रत्यक्ष हो गया।

'ब्रजकी लीला गावै'

मुक्ति कहत गोपालसों, मेरी मुक्ति कराय।
ब्रजरज उड़ि मस्तक चढ़ै, मुक्ति मुक्त ह्वै जाय॥
धनि गोपी औ, ग्वाल धनि, धनि जसुदा धनि नंद।
जिनके आगे फिरत है, धायो परमानंद॥
ब्रजलोचन, ब्रजरमन, मनोहर, ब्रजजीवन ब्रजनाथ।
ब्रज-उत्सव, ब्रजवल्लभ सबके ब्रजकिसोर सुभगाथ॥
ब्रजमोहन, ब्रजभूषन, सोहन, ब्रजनायक, ब्रजचन्द।
ब्रजनागर, ब्रजछैल, छबीले, ब्रजवर, श्रीनँदनंद॥
ब्रज-आनँद, ब्रजदूलह, नितही अतिसुन्दर ब्रजलाल।
ब्रजगौवनके पाछे आछे सोहत ब्रज-गोपाल॥
ब्रजसम्बन्धी नाम लेत ये ब्रजकी लीला गावै।
नागरिदासहि मुरलीवारो ब्रजको ठाकुर भावै॥

संत-भक्तोंके संकीर्तनीय पद

संत कबीरसाहब

कबीरसाहब निर्गुनिया संत थे। ये कीर्तनके पक्षधर थे, पर इनके कीर्तनीय राम परब्रह्म राम थे, दशरथनन्दन श्रीराम नहीं। इन्होंने रमैनी, सबद और साखियाँ लिखी हैं। इनकी रचनाओंका सच्चा संग्रह ग्रंथसाहबमें है, जो अब कई स्थानसे प्रकाशित हो गया है। रमैनी और सबदमें गेय पद हैं। उन पदोंमें नाम-कीर्तन-महिमा वर्णित है। ऐसे कुछ पद यहाँ दिये जाते हैं —

अब तुम कब सुमरोगे राम। जिवड़ा दो दिनका मिहमान ॥
बालापन में खेल गँवाया, तरुन हुवा तब काम सताया,
बिरधापन तन काँपन लागा, निकल गया अवसान ॥
झूठी काया झूठी माया, आखिर मौत निदान ॥
कहत कबीर सुनो भाई संतो, यह थोड़ा मैदान ॥

× × ×

कहा नर गरबसि थोरी बात।
मन दस नाज टका दस गठिया टेढ़ौ टेढ़ौ जात ॥
कहा लै आयो यह धन कोऊ कहा कोऊ लै जात।
दिवस चारि की है पतिसाही ज्यों बन हरियल पात ॥
राजा भयो गाँव सौ पायो टका लाख दस ब्रात।
रावन होत लंक को छत्रपति पल मे गई बिहात ॥
माता पिता लोक सुत बनिता अन्ति न चलै संगात।
कहै कबीर राम भज बौरे जनम अकारथ जात ॥

× × ×

राम नाम हिरदे धरि, निरमोलिक हीरा।
सोभा तिहुँ लोक, तिमिर जाय त्रिविध पीरा ॥
त्रिसना ने लोभ लहरि, काम क्रोध नीरा।
मद-मच्छर-कच्छ-मच्छ, हरख सोक तीरा ॥
कॉमनी अरु कनक भँवर, बोये बहु बीरा।
जन कबीर नौका हरि, खेवट गुरु कीरा ॥

× × ×

भजन बिन बावरे तैंने हीरा सो जन्म गँवाया।
कभी न आया सन्ता सरण नातैं हरि गुण गाया ॥
बह बह मर्यो बैल की नाईं सोय रह्यो उठि खाया।
यह संसार हाट बनिये की सब कोई सौदे आया ॥
चातुर माल चौगुना कीनो मूरख मूल गमाया।
यह संसार फूल सेमर का सोभा देखि भुलाया ॥
मारी चोंच रुई निकसी तब सिर धुनि-धुनि पछताया।
यह संसार माया का लोभी ममता महल चिनाया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो हाथ कछू नहिं आया ॥

× × ×

भजन बिन तीनों पन बिगरे।
बालापन तो खेल गँवायो तरुण गये अकरे ॥
वृद्ध भये तब कछुक न सूझत अन्ध होय निबरे।
काहे को देह धरी मानुस की पसु समान गुजरे ॥
मन तो धन यौवन मद मातो चेतन गर्व भरे।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो करले भजन हरे ॥

× × ×

खबर नहिं या जग में पलकी।
सुकृत करले राम सुमर ले को जाने कल की ॥टेक॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी करि बातें छल की।
पाप पुन्य की बँध पोटरिया कैसे हो हलकी ॥
तारन बीच चन्द्रमा झलके जोति झला झलकी।
मात पिता कुटुम्ब भाई बन्धु तिरिया मतलब की ॥
माया लोभी नगर बसत है या अरने कब की।
या संसार रैन का सपना ओस बुन्द झलकी ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो बातें सदगुरु की ॥

× × ×

नहि छोड़ूँ रे बाबा राम-नाम, मेरो और पढ़न सों नहीं काम।
प्रह्लाद पठाये पढ़न साल, संग सखा बहु लिये बाल ॥
मोकौं कहा पढ़ावत आल जाल, मेरी पटिया पै लिख देउ गोपाल।
यह संडामरके कह्यौ जाय, प्रह्लाद बुलाये बेग धाय ॥
तू राम कहनको छोड़ बान, तोहे तुरत छुड़ाऊँ कह्यौ मान।
मोकौं कहा सतावौ बारबार, प्रभु जलथल नभ कीये पहार ॥
एक राम न छोड़ूँ गुरुहि गार, माकौं घाल जार चाहे मार डार।
काढि खड्ग कोप्यौ रिसाय, कहँ राखनहारो मोहि बताय ॥
प्रभु खंभसे निकसे कर हुँकार, हरिनाकुस छेद्यौ नख बिदार।
श्रीपरम पुरुष देवाधिदेव, भक्त हेतु नरसिंह भेव।
कह कबीर कोउ लखै न पार, प्रह्लाद उबारे बार-बार ॥

× × ×

संतो रे सैया राम गोबिंद हरी।
जप तप साधन कछु नहिं लागत, खरचत नहिं गठरी ॥१॥

तत संपत सुख के कारन, जासों भूल परी ॥
कहत कबीरा राम न जा मुख, ता मुख धूल भरी ॥

× × ×

सुने री मैंने निर्बल के बल राम ।
जब तक गज बल अपनो कीनो, सरो न एकहु काम ॥
जब गज ने हरि नाम पुकारो, आये आधो नाम ।
दीन होय जब द्रौपदि टेरी, बसन रूप धर्‌यो श्याम ॥
बहुत सी साख सुनी सन्तन की, अड़े सँवारे काम ।
नरसी भगत की हुण्डी पेली, दिये रोकड़ी दाम ॥
जप बल, तप बल और भुजा बल चौथे बल हैं दाम ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो ! हारे को हरि नाम ॥

× × ×

बीत गये दिन भजन बिना रे ।
बाल अवस्था खेल गँवायो, जब जवानि तब मान घना रे ॥
लाहे कारन मूल गँवायो, अजहुँ न गई मन की तृसना रे ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो ! पार उतर गये संत जना रे ॥

भक्तवर सूरदासजी

भक्तवर सूरदासजीका जन्म संवत् १५४० वि०में दिल्लीके पास सिंही नामक गाँवमें हुआ था और मृत्यु संवत् १६२० वि०में पारसोली गाँवमें गुसाईं श्रीविट्ठलनाथजीके सामने हुई । इनके पिताका नाम रामदासजी था । ये सारस्वत ब्राह्मण थे । सूरदासजी जन्मसे अन्धे थे या बादमें हुए, इस विवादसे यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है । कहते हैं, एक बार सूरदासजी कुएँमें गिर पड़े, सातवें दिन एक गोपबालकने उन्हें कुएँसे निकाला और प्रसाद खिलाया । सूरदासजी बालककी अमृतभरी वाणी सुन और उसके करका कोमल स्पर्श पाकर यह ताड़ गये कि बालक साक्षात् श्यामसुन्दर हैं । सूरदासजीने उनकी बाँह पकड़ ली, पर वे बाँह छुड़ाकर भाग गये । इसपर उन्होंने यह दोहा पढ़ा—

बाँह छुड़ाये जात हौ, निबल जानिकै मोहिं ।
हिरदै ते जब जाहुगे, मर्द बदौंगो तोहिं ॥

इस घटनाके बाद वे गऊघाट नामक स्थानमें रहने लगे । वहीं वे गोस्वामी श्रीवल्लभाचार्यके शिष्य हुए और उन्हींके साथ गोकुलमें श्रीनाथजीके मन्दिरमें गये । गोस्वामी विट्ठलनाथजीने इन्हें पुष्टिमार्गीय आठ महाकवियोंमें सर्वोच्च स्थान दिया । सूरदासजी भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त, व्रजसाहित्याकाशके सूर्य और सिद्ध कवि थे । भक्तिपक्षमें इन्हें उद्धवका अवतार माना जाता है । आपने कई ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें 'सूरसागर' प्रधान है । सूरसागरके सवा लाख पद कहे जाते हैं, परंतु मिलते प्रायः ४० हजारके लगभग हैं । आपकी भावमयी रचनामें अमृत भरा पड़ा है । भगवत्-प्रेमसे छलकती हुई सूरदासकी कविताके रसका जो प्रेमी रसिकजन आनन्द लूटते हैं, वे धन्य हैं । शरीर छोड़ते समय सूरदासजीने प्रेमगद्गद कण्ठसे यह पद गाया था—

खंजन नैन रूप रस माते ।
अतिसै चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते ॥
चलि चलि जात निकट स्रवननिके उलटि पलटि ताटंक फंदाते ।
सूरदास अंजन गुन अटके, न तरु अबहिं उड़ि जाते ॥

सगुण भक्ति-धाराकी कृष्ण-भक्ति-शाखाके सर्वश्रेष्ठ कवि सूरदासजी वात्सल्य, सख्य एवं विप्रलम्भ शृङ्गारके अनन्य भावधनी भक्त कवि थे । ये एकतारापर ऐकान्तिक संकीर्तनमें मस्त रहते थे और सुननेवालोंको भावविभोर कर देते थे । इनके कुछ पद प्रादर्श रूपमें दिये जा रहे हैं—

बोलो भैया कृष्ण गोविन्द हरी ।
माल दाम कछु नहिं बैठत है, छूटत नहिं गठरी ॥
यह काया कागदकी पुतरी छिनमें जात जरी ।
जा मुख 'सूर' प्रभु नहिं उचरत ता मुख धूर परी ॥

× × ×

रे मन, कृष्ण नाम कहि लीजै ।
गुरु के बचन अटल करि मानहि, साधु-समागम कीजै ॥
पढ़िये गुनिये भगति भागवत, और कहा कथि कीजै ।
कृष्ण नाम बिनु जनमु बादिही, बिरथा काहे लीजै ॥

कृष्ण नाम-रस बह्यो जात है, तृषावन्त ह्वै पीजै ।
सूरदास हरि सरन ताकिये, जनम सफल कर लीजै ॥
× × ×

सुने री मैंने निरबलके बल राम ।
पिछली साख भरूँ संतनकी, अड़े सँवारे काम ॥
जब लगि गज बल अपनो बरत्यो, नेक सर्‌यो नहिं काम ।
निरबल ह्वै बलराम पुकार्‌यो, आये आधे नाम ॥
द्रुपद-सुता निरबल भइ ता दिन, तजि आये निज धाम ।
दुस्सासन की भुजा थकित भई, बसनरूप भये स्याम ॥
अप-बल तप-बल और बाहु-बल, चौथो है बल दाम ।
सूर किशोर-कृपातें सब बल, हारेको हरि नाम ॥
× × ×

दीनन दुखहरन देव, संतन सुखकारी ।
अजामील गीध ब्याध, इनमें कहो कौन साध ।
पंछीहू पद पढ़ात, गनिका-सी तारी ॥
ध्रुवके सिर छत्र देत, प्रह्लाद कहँ उबार लेत ।
भगत हेत बाँध्यो सेत, लंकपुरी जारी ॥
तंदुल देत रीझ जात, साग-पातसों अघात ।
गिनत नहीं जूँठे फल, खाटे-मीठे-खारी ॥
गजको जब ग्राह ग्रस्यो, दुस्सासन चीर खस्यो ।
सभा बीच कृष्ण कृष्ण, द्रौपदी पुकारी ॥
इतनेमें हरि आइ गये, बसनन आरूढ़ भये ।
सूरदास द्वारे ठाढ़ो, आँधरो भिखारी ॥

गोस्वामी तुलसीदास

महात्मा तुलसीदास हिंदीके सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। ये भक्तिकालकी सगुण भक्ति-धाराके रामाश्रयी शाखाके कवि थे। इनके उपास्य दशरथनन्दन रघुवंशविभूषण श्रीराम थे, जो सच्चिदानन्दघनके अवतार थे। इन्होंने एक दर्जनसे अधिक भक्ति-प्रधान ग्रन्थोंका प्रणयन किया। रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, विनय-पत्रिका-प्रभृति पुस्तकें भगवन्नाम-गुण-यशोवर्णनमें प्रणीत एवं प्रसिद्ध हैं। यहाँ इनके कुछ कीर्तनीय गेय पद संकलित किये जा रहे हैं—
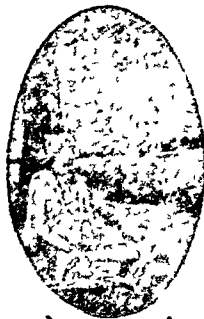
राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे ।
घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे ॥
एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साधि रे ।
ग्रसे कलि रोग जोग संजम समाधि रे ॥
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो, बाम रे ।
राम-नाम ही सों अंत सबहीको काम रे ॥
जग नभ-बाटिका रही है फलि-फूलि रे ।
धुआँ-कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे ॥
राम-नाम छाड़ि जो भरोसो करै और रे ।
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे ॥
× × ×

राम राम रटु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा ।
रामनाम-नव-नेह-मेह को मन हठि होहि पपीहा ॥
रामनाम गति, रामनाम मति, रामनाम अनुरागी ।
ह्वै गये हैं, जे होहिंगे आगे, ते गनियत बड़भागी ॥
× × ×

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे ।
नाहिं तौ भव-बेगारि महँ परिहै, छूटत अति कठिनाई रे ॥
बाँस पुरान साज सब अठकठ, सरल तिकोन खटोला रे ।
हमहि दिहल करि कुटिल करमचँद मंद मोल बिनु डोला रे ॥
बिषम कहार मार-मद-माते चलहिं न पाउँ बटोरा रे ।
मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे ॥
काँट कुराय लपेटन लोटन ठावहिं ठाउँ बझाऊ रे ।
जस-जस चलिय दूरि तस-तस निज बास न भेंट लगाऊ रे ॥
मारग अगम संग नहिं संबल, नाउँ गाउँ कर भूला रे ।
तुलसिदास भव-त्रास हरहु अब होहु राम अनुकूला रे ॥
× × ×

जौ मन भज्यो चहै हरि-सुरतरु ।
तौ तज बिषय-बिकार, सार भज,
अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु ॥
सम, संतोष, बिचार बिमल अति,
सतसंगति, ये चारि दृढ़ करि धरु ।

काम-क्रोध अरु लोभ-मोह-मद,
राग-द्वेष निसेष करि परिहरु ॥
श्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि,
सिर प्रनाम, सेवा कर अनुसरु ।
नयननि निरखि कृपा-समुद्र हरि
अग-जग-रूप भूप सीतावरु ॥
इहै भगति, बैराग्य-ग्यान यह,
हरि-तोषन यह सुभ व्रत आचरु ।
तुलसिदास सिव-मत मारग यहि
चलत सदा सपनेहुँ नाहिंन डरु ॥

× × ×

हरि तजि और भजिये काहि ?
नाहिंने कोउ राम सो ममता प्रनतपर जाहि ॥
कनककसिपु बिरंचिको जन करम मन अरु बात ।
सुतहिं दुखवत बिधि न बरज्यो कालके घर जात ॥
संभु-सेवक जान जग, बहु बार दिये दस सीस ।
करत राम बिरोध सो सपनेहु न हटक्यो ईस ॥
और देवनकी कहा कहौं, स्वारथहिके मीत ।
कबहुँ काहु न राखि लियो कोउ सरन गयउ सभीत ॥
को न सेवत देत संपति लोकहू यह रीति ।
दास तुलसी दीनपर एक राम ही की प्रीति ॥

× × ×

भरोसो जाहि दूसरो सो करो ।
मोको तो रामको नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो ॥
करम, उपासन, ग्यान, बेदमत, सो सब भाँति खरो ।
मोहि तो 'सावनके अंधहिं' ज्यों सूझत रंग हरो ॥
चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो ।
सो हौं सुमिरत नाम-सुधारस पेखत परुसि धरो ॥
स्वारथ औ परमारथहूको नहिं कुंजरो-नरो ।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि-कटक तरो ॥
प्रीति-प्रतीति जहाँ जाकी, तहँ ताको काज सरो ।
मेरे तो माय-बाप दोउ आखर, हौं सिसु-अरनि अरो ॥
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तो जरि जीह गरो ।
अपनो भलो राम-नामहि ते तुलसिहि समुझि परो ॥

× × ×

काहे न रसना रामहि गावहि ?
निसिदिन पर-अपबाद बृथा कत रटि-रटि राग बढ़ावहि ॥
नर मुख सुंदर मंदिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि ।
ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत रबिकर-जल कहँ धावहि ॥
काम-कथा कलि-कैरव-चंदिनि, सुनत श्रवन दै भावहि ।
तिनहिं हटकि कहि हरि-कल-कीरति, करन कलंक नसावहि ॥
जातरूप मति, जुगुति, रुचिर मनि
रचि-रचि हार बनावहि ।
सरन-सुखद, रबिकुल सरोज-रबि
रामनृपहि पहिरावहि ॥
बाद-बिबाद, स्वाद तजि भजि हरि,
सरस चरित चित लावहि ।
तुलसिदास भव तरहि, तिहूँ पुर
तू पुनीत जस पावहि ॥

× × ×

राम जपु जीह ! जानि, प्रीति सों प्रतीत मानि,
रामनाम जपे जैहै जियकी जरनि ।
रामनामसों रहनि, रामनामकी कहनि,
कुटिल कलि-मल-सोक-संकट-हरनि ॥
रामनामको प्रभाउ पूजियत गनराउ,
कियो न दुराउ, कही आपनी करनि ।
भव-सागरको सेतु, कासीहू सुगति हेतु,
जपत सादर संभु सहित घरनि ॥
बालमीकि ब्याध थे अगाध-अपराध-निधि,
'मरा'-'मरा' जपे पूजे मुनि अमरनि ।
रोक्यो बिंध्य, सोख्यो सिंधु घटजहूँ नाम-बल,
हार्यो हिय, खारो भयो भूसुर-डरनि ॥
नाम-महिमा अपार, सेष-सुक बार-बार
मति-अनुसार बुध बेदहू बरनि ।
नामरति-कामधेनु तुलसीको कामतरु,
राम-नाम है बिमोह-तिमिर-तरनि ॥

× × ×

राम ! रावरो नाम मेरो मातु-पितु है ।
सुजन-सनेही, गुरु-साहिब, सखा-सुहृद,
राम-नाम प्रेम-पन अबिचल बितु है ॥
सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि
लियो काढ़ि वामदेव नाम-घृतु है ।
नामको भरोसो बल चारिहू फलको फल,
सुमिरिये छाड़ि छल, भलो कृतु है ॥
स्वारथ-साधक, परमारथ-दायक नाम,
राम-नाम सारिखो न और हितु है ।
तुलसी सुभाव कही, साँचिये परैगी सही,
सीतानाथ-नाम नित चितहूको चितु है ॥

गुरु नानक देव

सिखोंके दस गुरु हुए हैं। इनका चलाया पंथ सिख-मत, गुरुमत अथवा खालसापथ कहा जाता है। ये दसो गुरु विश्वके धार्मिक इतिहासमें अद्वितीय नेता माने जाते हैं।

इनमें प्रथम गुरु नानकदेवजी संत और संकीर्तन-प्रेमी थे। आपकी उच्चारित अथवा रचित सारी वाणियाँ पवित्र 'गुरु ग्रन्थ साहब' में संग्रथित हैं। जपुजी, पट्टी, आरती, दक्षिणीय ओंकार सिद्ध गोष्ठी आदि आपकी प्रसिद्ध वाणियोंमेंसे है। आपके सम्प्रदायके मूल-मन्त्रके बाद संकीर्तनोपयोगी कुछ पद नीचे दिये जा रहे हैं—

मूल-मन्त्र

बीज-मन्त्र—एक ॐकार।

नाम-मन्त्र—सत नाम।

गुरु-मन्त्र—वाहि गुरु।

मूल-मन्त्र—एक ॐकार सतनाम कर्ता पुरुष, निर्भौ, निर्वैर, अकालमूर्त्त, अजोनि, स्वयं, गुरुप्रसाद। जप—आद सच्च, जगद सच्च, है भी सच्च, नानक होसी भी सच।

राम सुमिर, राम सुमिर, एही तेरो काज है॥
माया कौ संग त्याग, हरिजूकी सरन लाग।
जगत सुख मान मिथ्या, झूठौ सब साज है॥ १॥
सुपने ज्यों धन पिछान, काहे पर करत मान।
बालू की भीत तैसें, बसुधा कौ राज है॥ २॥
नानक जन कहत बात, बिनसि जैहै तेरो गात।
छिन छिन करि गयौ काल्ह, तैसे जात आज है॥ ३॥

× × ×

ध्रु. सुमरण करले मेरे मना, तेरी बीती जात उमर हरिनाम बिना॥
पंछी पंख बिन, हस्ती दंत बिन, नारी पुरुष बिना।
जैसे पंडित वेद बिहीना तैसे प्राणी हरि नाम बिना॥
देह नयन बिन, रैन चन्द्र बिन, धरणी मेघ बिना।
जैसे पुत्र पिता बिन हीना, तैसे प्राणी हरिनाम बिना॥
कूप नीर बिन, धेनु छीर बिन, मन्दिर दीप बिना।
जैसे तरुवर फल बिहीना तैसे प्राणी हरिनाम बिना॥

काम-क्रोध-मद लोभ निवारो, त्यागो मोह तुम सन्त जना।
कहै नानक सुनो भगवंता, या जगमें नहिं कोई अपना॥

× × ×

राम भज राम भज जनम सिरात है।
कहौं कहा बार-बार समुझत नहिं क्यों गँवार।
बिनसत नहिं लगै बार ओले सम गात है॥
सकल भरम डार देहु गोबिन्दको नाम लेहु।
अन्त बार संग तेरे यही एक जात है॥
बिषया विष ज्यों बिसार, प्रभुको जस हिये धार।
नानक जन कह पुकार अवसर बिहात है॥

× × ×

रे मन कौन गति होय है तेरी।
इह जगमें राम नाम सो तो नहीं सुन्यो कान।
विषयन सों अति लुभान मती नाहिं फेरी॥
मानुष को जनम लीन सुमिरन नहि निमिष कीन।
दारा सुख भयो दीन पगहुँ परी बेरी॥
नानक जन कह पुकार सुपने ज्यों जग पसार।
सुमिरत नहिं क्यों मुरारि माया जाकी चेरी॥

× × ×

रे मन राम सों कर प्रीत।
श्रवण गोविन्द गुण सुनो अरु गाव रसना गीत॥
कर साधु संगति, सुमिरु माधव, होय पतित पुनीत।
काल ब्याल ज्यों पर्यो डोलै मुख पसारे मीत॥
आज कल पुनि तोहिं ग्रसि है समझ राखो चीत।
कहै नानक राम भज ले जात अवसर बीत॥

× × ×

मन कर कबहूँ हरि-गुन गायो।
विषयासक्त रह्यो निशि बासर कीनो अपनो भायो॥
गुरु उपदेश सुन्यो नहिं कानन पर-दारा लपटायो।
पर निन्दा कारन बहु धावत आगम नहिं समझायो॥
कहा कहौं मैं आपन करनी जेहि विधि जनम गँवायो।
कह नानक सब अवगुन मोमें राखि लेहु सरनायो॥

× × ×

राम सुमर राम सुमर येही तेरो काज है।
मायाका संग त्याग प्रभुजीकी सरन लाग।
जगत सुख मान मिथ्या झूठो सब साज है॥

सुपने ज्यों धन पछनु काहे पर करत मान ।
बालू की भीति जैसे बसुधा को राज है ॥
नानक जग कहत जात विनसि जैहैं तेरो गात।
छिन छिन करि गयो काल, तैसे जात आज है ॥

× × ×

गुन गोविन्द गायो नहीं, जनम अकारथ कीन ।
कह नानक हरि भज मना, जेहि बिधि जलको मीन ॥
सुखमें सब संगी भये, दुखमें संग न कोय ।
कह नानक हरि भज मना, अंत सहाई होय ॥

× × ×

ठाकुर तुम शरणाई आया ।
उतर गया मेरे मनका संशय जबसे दरसन पाया ॥
अनबोलत मेरी बिरथा जानी, अपना नाम जपाया ।
दुख नाठे सुख सहज समाये अनंद अनंद गुन गाया ॥
बाहँ पकड़ लीनो अपने गृह, अंधकूपसे माया ।
कह नानक गुरु बंधन काटे बिछुरत आन मिलाया ॥

× × ×

भूलो मन माया अरुझायो ।
जो जो कर्म कियो लालच लगि तहँ तहँ आप बँधायो ॥
समझ न पड़ी विषय रस राच्यो जस हरिको बिसरायो ।
सँग ही स्वामी सो जान्यो नहिं बन-बन खोजन धायो ॥
रतन नाम घटहीके भीतर ताको ग्यान न पायो ।
जन नानक भगवंत भजन बिनु बिरथा जनम गँवायो ॥

× × ×

हरिको नाम सदा सुखदाई ।
जाको सिमर अजामिल उधर्यो गनिका हूँ गति पाई ॥
पंचालीको राज सभामें राम नाम सुधि आई ।
ताको दुःख हर्यो करुनामय अपनी पैज बढ़ाई ॥
जे नर करुनानिधि-जस गायो ताको भये सहाई ।
कह 'नानक' मैं यही भरोसे आन गही सरनाई ॥

कुछ गायक भक्त कवियोंके पद

भगवान्‌के रूप, गुण, शील, लीला और चरित्र गानेवाले कुछ भक्त-कवियोंके नाम-महिमा और कीर्तनके सम्बन्धमें बड़े भाव-पूर्ण पद हैं। ऐसे कुछ पद यहाँ दिये जा रहे हैं—

मलूकदास—

राम कहो राम कहो, राम कहो बावरे ।
अवसर न चूक, भोंदू, पायो भलो दाँवरे ॥
जिन तोको तन दीन्हो, ताको न भजन कीन्हो ।
जनम सिरानो जात, लोहे-कैसो ताव रे ॥
रामजी को गाय-गाय, रामको रिझाव रे ।
रामजी के चरन-कमल, चित्त माहिं लाव रे ॥
कहत 'मलूकदास', छोड दे तैं झूठी आस ।
आनंद-मगन होइ कै हरि गुन गाव रे ॥

नागरीदासजी—

ब्रज-सम और कोउ नहिं धाम ।
या ब्रजमें परमेसरहूके सुधरे सुंदर नाम ॥
कृष्ण नाँव यह सुन्यो गर्ग ते, कान्ह कान्ह कहि बोलैं ।
बालकेलि-रस मगन भये सब, आनंद-सिंधु कलोलैं ॥
जसुदानंदन, दामोदर, नवनीत-प्रिय, दधिचोर ।
चीरचोर, चितचोर, चिकनियाँ चातुर नवलकिशोर ॥
राधा-चंद-चकोर, साँवरो, गोकुलचंद, दधिदानी ।
श्रीवृंदावनचंद, चतुर चित, प्रेम-रूप-अभिमानी ॥
राधारमन, सुराधावल्लभ, राधाकांत रसाल ।
वल्लभ-सुत, गोपीजन-वल्लभ, गिरिधर-धर, छबिलाल ॥
रासबिहारी, रसिकबिहारी, कुंजबिहारी स्याम ।
बिपिनबिहारी, बंकबिहारी, अटलबिहारीऽभिराम ॥
छैलबिहारी, लालबिहारी, बनवारी, रसकंद ।
गोपीनाथ, मदनमोहन, पुनि बंसीधर, गोबिंद ॥
ब्रजलोचन, ब्रजरमन, मनोहर, ब्रजउत्सव, ब्रजनाथ ।
ब्रजजीवन, ब्रजवल्लभ सबके, ब्रजकिशोर, सुभगाथ ॥
ब्रजमोहन, ब्रजभूषन, सोहन, ब्रजनायक, ब्रजचंद ।
ब्रजनागर, ब्रजछैल, छबीले, ब्रजवर, श्रीनँदनंद ॥
ब्रज-आनंद, ब्रजदूलह नितहीं, अति सुंदर ब्रजलाल ।
ब्रज गउवनके पाछे आछे, सोहत ब्रजगोपाल ॥
ब्रज-संबंधी नाम लेत ये, ब्रजकी लीला गावैं ।
'नागरिदासहिं' मुरलीवारो, ब्रजको ठाकुर भावैं ॥

दादूदयालजी—

राम रस मीठा रे, कोई पीवे साधु सुजान ।
सदा रस पीवै प्रेम सूँ, सो अबिनासी प्रान ॥
इहि रस मुनि लागे सबै, ब्रह्मा-बिसुन-महेस ।
सुर-नर साधू-संत जन, सो रस पीवै सेस ॥

रानी रूपकुँवरिजी—

जय जय श्रीकृष्ण चन्द्र नंदके दुलारे !
ब्यास ऋषिन कपिल देव सच्छ कच्छ हंस सेव ।
नर हरि वामन सुमेव परसु धरनहारे ॥
कलकि बौद्ध पृथु सुधीर ध्रुव हरि रघुबंस बीर ।
धन्वन्तरि हरण पीर हयग्रीव प्यारे ॥
बद्रीपति दत्तात्रय मन्वन्तर टारन भय ।
यज्ञेश्वर शूकर जय सनकादिक उचारे ॥
रूपकुँवरि चतुरविंस नाम जपति बदति बंस ।
भुक्ति मुक्ति लहै हंस अधमनको तारे ॥

× × ×

जय जय मोहन मदन मुरारी !
जय जय जय बृंदावनवासी आनँद मंगलकारी ।
जय जय रंगनाथ श्रीस्वामी, जय प्रभु कलिमलहारी ॥
जय जय कहत सकल सुर हरषित, जय जय कुंजविहारी ।
जय जय जय मधुबन बंसीबट, जय जय करि गिरधारी ॥
जय जय दीनबंधु करुनाकर, जय जय गर्बप्रहारी ।
रूपकुँवरि बिनवति कर जोरे, हौं प्रभु सरन तिहारी ॥

यारी साहब—

रसना, राम कहत तैं थाको !
पानी कहे कहुँ प्यास बुझति है, प्यास बुझै जदि चाखो ॥
पुरुष-नाम नारी ज्यों जानैं, जानि-बूझि नहिं भाखो ।
दृष्टि से मुष्टी नहिं आवै, नाम निरंजन वाको ॥
गुरु-परताप साधुकी संगति, उलटी दृष्टि जब ताको ।
'यारी' कहै, सुनो भाई संतो, बज्र बेधि कियो नाको ॥

ताजबीजी—

ध्रुव-से, प्रह्लाद, गज, ग्राह-से अहल्या देखि,
सौंरी और गीध यौं विभीषन जिन तारे हैं ।
पापी अजामील, सूर, तुलसी, रैदास कहूँ,
नानक, मलूक, 'ताज' हरि ही के प्यारे हैं ॥
धनी, नामदेव, दादू, सदना कसाई जानि,
गनिका, कबीर, मीरा, सेन उर धारे हैं ।
जगत कौ जीवन जहान बीच नाम सुन्यौ,
राधा के वल्लभ कृष्णवल्लभ हमारे हैं ॥

दरियासाहब (मारवाड़वाले)—

नाम बिन भाव करम नहिं छूटै !
साध-संग और राम-भजन बिन, काल निरंतर लूटै ॥
मलसेती जो मल को धोवै, सो मल कैसे छूटै ।
प्रेमका साबुन नामका पानी, दोय मिल ताँता टूटै ॥
भेद-अभेद भरम का भाँडा, चौडे पड़-पड फूटै ।
गुरुमुख-सब्द गहै उर-अन्तर, सकल भरम से छूटै ॥
राम का ध्यान तू धर रे प्राणी, अमरत का मेंह बूटै ।
जन 'दरियाव' अरप दे आपा, जरा-मरन तब छूटै ॥

× × ×

रामनाम नहिं हिरदे धरा । जैसा पसुवा तैसा नरा ॥
पसुवा-नर उद्यम कर खावै । पसुवा तौ जंगल चर आवै ॥
पसुवा आवै, पसुवा जावै । पसुवा चरै औ पसुवा खावै ॥
रामनाम ध्याया नहिं भाई । जनम गया पसुवाकी नाई ॥
रामनामसे नाही प्रीत । यह ही सब पसुओं की रीत ॥
जीवत सुखदुख में दिन भरे । मुवा पछै चौरासी परै ॥
जन 'दरिया' जिन राम न ध्याया ।
पसुवा ही ज्यों जनम गँवाया ॥

नजीर—

ऐसी बजाई कृष्ण-कन्हैयाने बाँसुरी
जब मुरलीधरने मुरलीको अपने अधर धरी,
क्या-क्या प्रेम-प्रीत-भरी उसमें धुन भरी ।
लय उसमें 'राधे-राधे' की हरदम भरी खरी,
लहराई धुन जो उसकी इधर और उधर जरी ।
सब सुननेवाले कह उठे जै जै हरी हरी,
ऐसी बजाई कृष्ण-कन्हैयाने बाँसुरी ॥
ग्वालोंमें नंदलाल बजाते वो जिस घड़ी,
गौएँ धुन उसकी सुननेको रह जातीं सब खड़ी ।
गलियोंमें जब बजाते तो वह उसकी धुन बड़ी,
ले-लेके अपनी लहर जहाँ कानमें पड़ी ।
सब सुननेवाले कह उठे जै जै हरी हरी,
ऐसी बजाई कृष्ण-कन्हैया ने बाँसुरी ॥
मोहनकी बाँसुरीके मैं क्या-क्या कहूँ जतन,
है उसकी मनकी मोहिनी धुन उसकी चितहरन ।
उस बाँसुरीका आनके जिस जा हुआ बजन,
क्या जल पवन, 'नजीर' पखेरु व क्या हरन ॥
सब सुननेवाले कह उठे जै जै हरी हरी,
ऐसी बजाई कृष्ण-कन्हैयाने बाँसुरी ॥

खालस—

नाम जपन क्यों छोड़ दिया ?

क्रोध न छोड़ा झूँठ न छोड़ा, सत्य वचन क्यों छोड़ दिया ?

झूठे जग में दिल ललचा कर, असल वतन क्यों छोड़ दिया ?
कौड़ी को तो खूब सम्हाला, लाल रतन क्यों छोड़ दिया ?
जेहि सुमिरन ते अति सुख पावे, सो सुमिरन क्यों छोड़ दिया ?
'खालस' है भगवान भरोसे, तन मन धन क्यों छोड़ दिया ?

स्फुटपद

'जयति परात्पर लोकमहेश्वर गुणातीत चिन्मय गुणधाम'

जय वसुदेव-देवकी-नन्दन, व्रजपति नन्द-यशोदालाल ।
जय मुष्टिक-चाणूर-विमर्दन, गज कुवलया-कंसके काल ॥
जय नरकासुर-केशिनिषूदन, जरासंध-उद्धारक श्याम ।
जयति जगद्गुरु, गीता-गायक, अर्जुन-सारथि-सखा ललाम ॥
जय अनुपम योद्धा लीलामय, योगेश्वर, ज्ञानी, निष्काम ।
जय धर्मज्ञ, धर्म, वरदायक, शुचि सुखदायक शोभाधाम ॥
जय सर्वज्ञ, सर्वमय, शाश्वत, सर्वातीत, सर्वविश्राम ।
जयति परात्पर लोकमहेश्वर गुणातीत चिन्मय गुणधाम ॥

अधर-मुरली, गिरिधरम्

कमलनेत्र, कटि पीताम्बर, अधर मुरली, गिरिधरम् ।
मुकुट कुण्डल, कर लकुटिया, साँवरे राधेवरम् ॥
कूल यमुना धेनु आगे, सकल गोपिन मनहरम् ।
पीतवस्त्र, गरुड़ वाहन, चरण नित सुख-सागरम् ॥
करत केलि कलोल निशिदिन, कुंज भुवन उजागरम् ।
अजर अमर अडोल निश्चल, पुरुषोत्तम अपरापरम् ॥
दीनानाथ दयालु गिरिधर, कंस-हिरणाक्षसंहरम् ।
गल फूल माल, विशाल लोचन, अधिक सुन्दर केशवम् ॥
श्रीकृष्ण केशव कृष्ण केशव, कृष्ण यदुपति केशवम् ।
श्रीराम रघुवर राम रघुवर, राम रघुवर राघवम् ॥

× × ×

'वासुदेवः सर्वम्'

देश कृष्ण, काल कृष्ण, दिवस कृष्ण, रात कृष्ण ।
जन्म कृष्ण, मरण कृष्ण, संरक्षण-घात कृष्ण ॥
दुःख कृष्ण, सुख कृष्ण, तम और प्रकाश कृष्ण ।
हानि कृष्ण, लाभ कृष्ण, विलय और विकास कृष्ण ॥
काम कृष्ण, क्रोध कृष्ण, लोभ कृष्ण, मोह कृष्ण ।
हर्ष कृष्ण, शोक कृष्ण, दम्भ-दर्प-द्रोह कृष्ण ॥
तोष कृष्ण, क्षमा कृष्ण, समता, विवेक कृष्ण ।
विनय कृष्ण, मृदुता कृष्ण, सुहृदता-टेक कृष्ण ॥
लेन कृष्ण, देन कृष्ण, ग्रहण कृष्ण, दान कृष्ण ।
स्तुति कृष्ण, निन्दा कृष्ण, मान-अपमान कृष्ण ॥
तिक्त कृष्ण, मधुर कृष्ण, सुन्दर-वीभत्स कृष्ण ।
घोर विष-कुण्ड कृष्ण, मधुर अमृत-उत्स कृष्ण ॥
सब विधि स्वतन्त्र कृष्ण, कारागार-बद्ध कृष्ण ।
नित्य सहज मुक्त कृष्ण, माया-सम्बद्ध कृष्ण ॥
दण्ड-पुरस्कार कृष्ण, बन्धन कृष्ण, मुक्ति कृष्ण ।
युक्ति-सिद्धान्त कृष्ण, विभ्रम-अयुक्ति कृष्ण ॥
विप्र कृष्ण, शूद्र कृष्ण, अन्त्यज-अस्पृश्य कृष्ण ।
गोपन रहस्य कृष्ण, इदमित्थं दृश्य कृष्ण ॥
नर कृष्ण, नारी कृष्ण, बालक और वृद्ध कृष्ण ।
बुद्धिहीन मूढ़ कृष्ण, शुद्ध मति समृद्ध कृष्ण ॥
त्यागी, महाभोगी कृष्ण, कुलटा, औ सती कृष्ण ।
वर्णी-गृहस्थ कृष्ण, वानप्रस्थ-यती कृष्ण ॥
सम कृष्ण, विषम कृष्ण, मलिन-कान्तिमान कृष्ण ।
शेष कृष्ण, शेषी कृष्ण, भक्त-भगवान् कृष्ण ॥
शिव कृष्ण, विष्णु कृष्ण, सगुण कृष्ण, निर्गुण कृष्ण ।
कृष्ण कृपा, कृष्ण कृष्ण, कृष्ण कृपा, कृपा कृष्ण ॥

कृष्ण ही आराध्य है

कृष्ण उठत, कृष्ण चलत, कृष्ण शाम भोर है ।
कृष्ण बुद्धि, कृष्ण चित्त, कृष्ण मन-विभोर है ॥
कृष्ण रात्रि, कृष्ण दिवस, कृष्ण स्वप्न-शयन है ।
कृष्ण काल, कृष्ण कला, कृष्ण मास-अयन है ॥
कृष्ण शब्द, कृष्ण अर्थ, कृष्ण ही परमार्थ है ।
कृष्ण कर्म, कृष्ण भाग्य, कृष्ण ही पुरुषार्थ है ॥
कृष्ण स्नेह, कृष्ण राग, कृष्ण ही अनुराग है ।
कृष्ण कली, कृष्ण कुसुम, कृष्ण ही पराग है ॥
कृष्ण भोग्य, कृष्ण त्याग, कृष्ण तत्व-ज्ञान है ।
कृष्ण भक्ति, कृष्ण प्रेम, कृष्ण ही विज्ञान है ॥
कृष्ण स्वर्ग, कृष्ण मोक्ष, कृष्ण परम साध्य है ।
कृष्ण जीव, कृष्ण ब्रह्म, कृष्ण ही आराध्य है ॥

संकीर्तनामृत
(कीर्तन-विधि)

संकीर्तनका आयोजन होनेपर सर्वप्रथम उसके स्थानको स्वच्छ एवं पवित्र कर लेना चाहिये। कीर्तन-स्थान यदि मन्दिरका प्राङ्गण आदि उत्तम देव-स्थल हो तो अतिश्रेष्ठ है। वहाँ एक ओर उच्च स्थान बनाकर उसपर पवित्र वस्त्र बिछावे, उसे फूलों एवं फूल-मालाओं आदिसे भलीभाँति सजाकर उसपर भगवान्‌की मूर्ति या चित्रपट स्थापित करे। यथासम्भव स्वस्तिवाचन आदिके बाद संकल्प करे। उस समय जल, अक्षत, पुष्प हाथमें लेकर देश, काल और पात्र (**अमुक गोत्रः, अमुक शर्मा, अमुक वर्मा-अथवा अमुक गुप्तोऽहम्**) आदिका उच्चारण करनेके बाद (ग्राम,-प्रान्त,-देश अथवा) **लोककल्याणार्थ भगवत्प्रीत्यर्थं च 'हरे राम हरे राम' इति महामन्त्रेणाहोरात्रपर्यन्तं सप्ताहपर्यन्तं मासावधि यावद्वार्षिकं द्वादशवार्षिकं वा संकीर्तनं कारयिष्ये (अथवा करिष्ये) कल्याणार्थम्** कहकर हाथमें ली हुई सामग्रीको किसी पात्रमें अथवा भूमिपर छोड़ दे। गङ्गाजल, पुष्प, पुष्पमाला, तुलसीदल, रोरी, केसर, चन्दन, मौली, अक्षत (चावल), नैवेद्य, धूप, दीप, अगरबत्ती, आदि सामग्रियाँ एकत्र कर गणेश-पूजन करे और कलश-स्थापित करे तथा वरुणपूजन एवं प्रधान देव-पूजनादि षोडशोपचार या पञ्चोपचार-विधिसे सम्पन्न करे। कीर्तन प्रारम्भ करते समय भक्तजनोंको क्रमशः मन्त्रों एवं श्लोकोंसे भगवान्‌की स्तुति करनेके पश्चात् श्रीभगवान्‌के चरणारविन्दमें पुष्पाञ्जलि अर्पित करनी चाहिये।* इसके बाद जय-जयकार बोलकर कीर्तन प्रारम्भ करना चाहिये।

संकीर्तनमें मधुर वाद्यका संयोजन हो। फिर मङ्गलाचरणके पश्चात् गणपति-वन्दना कर कलियुगके प्रभाव और दोषके निवारणार्थ भगवन्नामका संकीर्तन करे। साथ ही पद-गान (भजन), हनुमानचालीसा आदिके पाठका भी आयोजन हो। फिर मोहनभोग लगाकर आरती उतारकर प्रार्थना और भूल-चूकके लिये क्षमा-याचना कर पुष्पाञ्जलि अर्पितकर साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहये। फिर उपस्थित भक्तजनोंको चरणामृत और प्रसाद बाँटना चाहिये। यह दैनिक संकीर्तनकी संक्षिप्त विधि है। ऐसे ही साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, षाण्मासिक और वार्षिक आदिका तत्तत्तरीय विधि-विधानसे समारम्भ और समापन करना चाहिये।

ध्यान रहे—संकीर्तनमें झाँझ, छैने, मृदंग, करताल, हारमोनियम, तबला, ढोलक आदि उपलब्ध बाजे सुर-ताल मिलाकर बजाये जायँ। संकीर्तनमें स्वर और तालकी एकताका ध्यान अवश्य रखना चाहिये। सबको मिलकर एक ही साथ एक स्वरमें शुद्ध उच्चारण करना चाहिये, अन्यथा संकीर्तनका आनन्द भङ्ग हो जाता है। हाँ, स्वरोच्चारणसे अधिक वाद्यका घोष नहीं होना चाहिये। देखा जाता है कि वाद्यका घोष कीर्तन-ध्वनिको गौण कर देता है। अतः वाद्य मधुर हो।

संकीर्तनमें धूम्रपान करना (सिगरेट आदि पीना), किसीकी आवाजपर या आकृतिपर हँसना, मुँह बनाना आदि बातें कदापि उचित नहीं हैं। शान्त-चित्तसे ईश्वरको अपने बीच उपस्थित समझकर उनको रिझानेके लिये शुद्ध भावसे भाव-विभोर होकर कीर्तन करना चाहिये। ऐसे स्थानपर भगवान् स्वयं उपस्थित होते हैं, अतः विनम्रता और दैन्यभावके साथ कीर्तन-ध्वनिका यथावत् उच्चारण करना चाहिये। स्वयं भगवान्‌ने कहा है—

---

* पुष्पाञ्जलिका मन्त्र यह है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं दूर्वाङ्कुरस्तथापि वा। अरण्यादाहृतैः पुष्पैः सम्पूज्य मधुसूदनम्॥
नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च। पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर॥

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

'नारद! मैं न तो वैकुण्ठमें निवास करता हूँ, न योगियोंके हृदयमें ही, प्रत्युत मेरे भक्त जहाँ भी मेरे गुणों और नामोंका गायन करते हैं, मैं वहीं रहता हूँ।'

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥
(श्रीमद्भा० ११। १४। २४)

'जिसका चित्त गद्गद वाणीसे द्रवीभूत हो जाता है, जो कभी जोर-जोरसे रोता है, कभी हँसता है, कभी लज्जा छोड़कर गाता है और कभी नाचने लगता है, ऐसा मेरा परम भक्त त्रिभुवनको पवित्र कर देता है।'

कालके गणनानुसार यह कलियुग है। कलियुग दोषोंका आगार है। इसमें सभी दुर्गुण ऊपर हो जाते हैं और सद्गुण दब जाते हैं। कलियुगी मानव छल, दम्भ, द्वेष, पाखंड, झूठ, अन्याय, अनाचार, अत्याचार, दुराचार आदि दुर्गुणोंको उपादेय और सत्य, विनय, प्रेम, न्याय, सदाचार प्रभृति सद्गुणोंको हेय मान लेते हैं। परिणामतः लोक अमङ्गल, दुःख-दारिद्र्य, कलह-कोलाहल, द्वेष-दम्भ, दैवी प्रकोप, प्राकृतिक आपदाओं—अनिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, महामारियों, भूकम्पादि, उपप्लवों, राष्ट्रिय उपद्रवों एवं विपदाओंका घर बन जाता है। आजकी स्थितिका आकलन कर तत्त्वचिन्तक शास्त्रकार ऋषियोंके आधारपर महात्मा गोस्वामी तुलसीदासने लिखा है—

कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा॥
नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मगता॥
इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता॥
सब लोग बियोग बिसोक हए। बरनाश्रम धर्म अचार गए॥
दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता परबंचनताति घनी॥
तनु पोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो बगरे॥

प्रकृत मानस-प्रसंगमें काकभुशुण्डिजीने कलिदोषका संक्षेपतः बखानकर साकल्येन यह कहते हुए कि—'कलिकाल पाप और अवगुणोंका घर है'—यह भी कहा है कि इसमें एक बड़ा गुण यह भी है कि जो गति सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें पूजा, यज्ञ और योगसे मिलती है, वही गति कलियुगमें लोग केवल भगवान्‌के नाम (-संकीर्तन) से पा जाते हैं—

कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग॥
(राम० मा० १०२ ख)

गोस्वामी तुलसीदास स्मरण दिलाते हैं—'नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं।' तथा 'नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।' पर हमारी बुद्धि कुण्ठित है और हम हीरा जन्म अमोल गँवा रहे हैं। साधकको सावधान करते हुए वे कहते हैं—

अजहुँ जानि जिय मानि हारि हियँ होय पलक महँ नीको।
सुमिरि सनेह सहित हित रामहि मानु मतो तुलसी को॥

भगवान्‌का स्मरण, उनके नामका जप और कीर्तन क्षणभरमें कल्याणका विधान कर देता है। स्मरणका जप और कीर्तनके साथ अटूट सम्बन्ध है, इसीलिये 'स्मरण' जप और कीर्तनका भी उपलक्षक होकर 'सुमिरि सनेहसहित हित रामहि' में विराजमान है। यद्यपि जप और कीर्तनमें मानस-सम्बन्ध समानभावसे संयुक्त रहता है, तथापि जपमें उसकी विशिष्ट प्राथमिकतासे वह कुछ गूढ़ हो जाता है और सर्वसाधारण स्तरके लिये दुरूहताकी श्रेणीमें चला जाता है। यही कारण है कि अपेक्षाकृत हरिकीर्तनकी सर्वोपयोगिता प्रतिपादित है। हरिकीर्तन अथवा सामूहिक रूपमें संकीर्तन इसलिये भी महत्त्वका साधन है। संकीर्तनमें पशु-पक्षी, कीट आदि प्राणी, जो स्वयं नामोच्चारणमें असमर्थ हैं, हरिनामको

संकीर्तनका महामन्त्र

सुनकर ही उत्तम गति प्राप्त करते हैं। उनकी तिर्यग्योनि छूट जाती है। श्रीभगवन्नामजपसे मनुष्य स्वयं अपने-आप तरता है, पर भगवन्नामोंके ऊँचे स्वरसे भाव-विह्वलताकी दशामें ऐकान्तिक अथवा सामूहिक उच्चारण करनेसे उस क्षेत्रके अन्य मनुष्य, जीव-जन्तु भी तर जाते हैं, उनका भी परममङ्गल हो जाता है। इसीलिये तो जपकी अपेक्षा संकीर्तनका शतगुणित फल कहा गया है। श्रीचैतन्य-महाप्रभुकी भावमग्नतावाली संकीर्तन-पद्धतिमें पशु-पक्षी भी संकीर्तन-संलग्न हो जाते थे। वस्तुतः वैसी भावमयता ही संकीर्तनकी विशेषता होती है। इस विशेषताके कारणभूत कुछ ग्राह्य गुण हैं, जिन्हें अपनाना प्रत्येक कीर्तनियेका कर्तव्य होना चाहिये—

जैसे हम स्मरणके लिये नाम-रूपका और जपके लिये मन्त्र-स्वरूपका चयन करते हैं, वैसे ही कीर्तनके लिये हमें कीर्तन-ध्वनियोंका चुनाव करना चाहिये। चयन करते समय हमें अपनी रुचि, भावना, स्थानीय जनमानसकी प्रवृत्ति और परम्परापर भी ध्यान देना चाहिये। नाम और नामीका अविनाभाव या अटूट सम्बन्ध होता है। ऐसी दशामें संकीर्तन-ध्वनियों और स्वरूपके सामञ्जस्यका ध्यान भी आवश्यक है। हम भगवान्‌के चाहे जिस रूप और जिस अभिधान (नाम) का चयन करें, दोनोंमें एकरूपता रहनी चाहिये। पर साथ ही यह ध्यान सदा रहे कि भगवान्‌के सभी नाम मङ्गलकारक हैं। इनमें भेद-बुद्धिकी आवश्यकता नहीं।

संकीर्तन-ध्वनियाँ

संकीर्तनमें प्रारम्भिक गणपति वन्दना

गाइये गनपति जगबंदन।
　संकर-सुवन भवानीके नंदन ॥ १ ॥
सिद्धि-सदन, गज-बदन बिनायक।
　कृपा-सिंधु, सुंदर सब लायक ॥ २ ॥
मोदक-प्रिय, मुद-मंगल-दाता।
　बिद्या-बारिधि, बुद्धि-बिधाता ॥ ३ ॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे।
　बसहिं राम सिय मानस मोरे ॥ ४ ॥

अब संकीर्तन-प्रेमी भक्तजनोंके सुविधार्थ कुछ संकीर्तनीय नाम और प्रचलित ध्वनियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

संकीर्तनका षोडशनामात्मक महामन्त्र—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

× × ×

इस महामन्त्रके साथ और भी नामामृतका आनन्द लें—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

× × ×

जय रघुनायक दसरथ नंदन कौसल्या-सुत राम हरे।
जय भरताग्रज करुणासागर, भुवनेश्वर सुखधाम हरे ॥
जय सीतावल्लभ नारायण, प्राणाधार ललाम हरे।
जय जनरंजन भवभयभंजन बारंबार प्रणाम हरे ॥
　नारायण नारायण जय गोविन्द हरे।
　नारायण नारायण जय गोपाल हरे ॥
जय राम हरे रघुनाथ हरे। जय जय प्रभु पूरणकाम हरे ॥
　गोपाल हरे, नंदलाल हरे।
　(गोबिन्द हरे गोपाल हरे)
　　जय जय प्रभु दीनदयाल हरे ॥
　श्रीकृष्ण हरे, बलराम हरे।
　　जय सखा सुबल श्रीदाम हरे ॥

× × ×

जय राम हरे जय कृष्ण हरे,
　जय मनमोहन घनश्याम हरे।
गोबिन्द हरे गोपाल हरे,
　जय रघुपति राजाराम हरे ॥
जय मच्छ कच्छ सूकर नरहरि,
　जय कल्कि बौद्ध वामन सबल।

जय यज्ञपुरुष जय परशुराम,
गज-अवध-विहारी श्याम हरे ॥
जय नारायण जय रमारमण,
जय गोपीवल्लभ दामोदर ।
जय भरताग्रज, बलरामानुज,
जय वासुदेव अभिराम हरे ॥
जय दीनबंधु अधमोद्धारक,
जय युगल सदा आश्रित-पालक ।
जय केशव विष्णु मुकुन्द हरे,
कलि-कलुष-विभंजन नाम हरे ॥

× × ×

सामूहिक कीर्तन—संगीतमय संकीर्तन कीजिये—

रघुपति राघव राजा राम पतित पावन सीताराम ।
भयहर दसरथ-नन्दन राम, जय जय मंगल सीताराम ॥
जय रघुपति जय जनमन हारी सीताराम सीताराम ।
जय दसरथ जय अजिर बिहारी, सीताराम सीताराम ॥
भज ले भज ले सीताराम, मंगल मूरति सुंदर श्याम ।
कमलनाथ कमलापति राम, अच्युत कमलनयन घनश्याम ॥
नारदकी वीणासे निकला रघुपति राघव राजाराम ।
शंकरके डमरूसे निकला पतित पावन सीताराम ॥
सुर नर मुनि गंधर्व पुकारे यदुपति यादव श्रीघनश्याम ।
अखिल विश्व गुंजार रहा है, जय रघुनंदन जय सियाराम ॥
जय रघुनंदन जय सियाराम जानकीवल्लभ सीताराम ।
जय यदुनन्दन जय घनश्याम रुक्मिणिवल्लभ राधेश्याम ॥
कमलनाभ कमलापति राम । अच्युत कमलनयन घनश्याम ॥
मधुर मनोहर है दो नाम, राधेकृष्ण सीताराम ॥
सीताराम सीताराम सीताराम जय सीताराम ।
राधेश्याम राधेश्याम राधेश्याम जय राधेश्याम ॥
जै सियाराम जै जै सियाराम जै सियाराम जै जै सियाराम ॥
जय मीराके गिरधर नागर, जय तुलसीके सीताराम ।
जय नरसीके साँवरिया, जय सूरदासके राधेश्याम ॥
गौरीशंकर सीताराम । पार्वतीशिव सीताराम ॥
जयति शिवा-शिव जानकिराम । गौरीशंकर सीताराम ॥
जय व्रजनन्दन जय घनश्याम । व्रजगोपी प्रिय राधेश्याम ॥
राधा-गोपी-प्राणधन वृन्दावन बिहारी श्याम ।
भक्तजनके जीवनधन अवधबिहारी राम ॥
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम् ।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम् ॥

केशव कलिमलहारी राधेश्याम राधेश्याम ।
दशरथ-अजिरविहारी सीताराम सीताराम ॥
श्रीमद् दशरथनन्दन राम । कौशल्यासुखवर्धन राम ॥
रसपीयूष रघुसुत श्रीराम । सीता-प्राण-प्रियंकर राम ॥
जय राम जय राम जय जय राम ।
श्रीराम जय राम जय जय राम ॥
भज ले भज ले सीताराम । मंगलमूरति सुंदर श्याम ॥
जय मुरलीधर जय घनश्याम । जय नँदनन्दन राधेश्याम ॥
माधव मुरलीधारी राधेश्याम श्यामा श्याम ।
मोहन मुकुन्द मुरारी राधेश्याम श्यामा श्याम ॥
राघव शर-धनुधारी सीताराम राम राम ।
पत्थरकी ऋषि-पत्नी-तारी सीता राम राम राम ॥
राजा राम राम राम । सीता राम राम राम ॥
श्रीराम जय राम जय जय राम ।
श्रीराम जय राम जय जय राम ॥
जगमें मंगल हैं दो नाम, चाहे कृष्ण कहो या राम ॥

× × ×

रामभगत बलबुद्धि-निधान ।
मारुतनन्दन जय हनुमान ॥
संकटमोचन श्रीहनुमान ।
मारुतनन्दन जय हनुमान ॥

× × ×

भगवान्‌के अवतारोंमें दो विशिष्ट हैं—भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण । रामावतार त्रेतामें और कृष्णावतार द्वापरमें हुए थे । इन दोनोंने लोकरावण रावणका और जगत्कष्ट कुटिल कंसका ध्वंस कर लोक-मङ्गलकी स्थापना की । इन दोनोंके नाम मङ्गलमय हैं । इनके कीर्तनसे कल्याण होता है । 'राम' और 'कृष्ण' एक-दूसरेसे बढ़कर मङ्गल और मधुर है । चाहे रामका कीर्तन करो या कृष्णका—एक ही बात है । यदि ऐसी बात है तो हम क्यों न दोनों नामोंका साथ-साथ कीर्तन करें—

रामचन्द्र रघुनायक जय जय,
दिव्य चाप कर सायक जय जय ॥
कृष्णचन्द्र यदुनायक जय जय,
भगवद्गीता गायक जय जय ॥
गोविन्द जय जय गोपाल जय जय ।
राधारमण हरि गोविन्द जय जय ॥
ब्रह्माकी जय-जय विष्णुकी जय जय ।
उमा-पति शिवशंकरकी जय जय ॥

राधाकी जय-जय, रुक्मिणीकी जय जय ।
मोर-मुकुट बंशीवारेकी जय जय ॥
गङ्गाकी जय-जय, यमुनाकी जय जय ।
सरस्वती तिरवेणीकी जय जय ॥
रामकी जय-जय, श्यामकी जय जय ।
दशरथ कुँवर चारों भैयाकी जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय ।
जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जयति शिवा-शिव शंकर हर जय ।
महादेव हे शम्भो जय जय ॥
जय गिरिनवे, नीलकण्ठ जय ।
जगदम्बे जय आशुतोष जय ॥

महादेव हर हर शंकर जय ।
मदनदर्पहर मङ्गलकर जय ॥
दुर्गतिनाशिनि दुर्गा जय जय ।
कालविनाशिनि काली जय जय ॥
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय ।
राधा सीता रुक्मिणि जय जय ॥
गिरधारी बनवारी जय जय ।
राधा-रासविहारी जय जय ॥
नन्द-यशोदा-छैयाकी जय ।
वन वन गाय-चरैयाकी जय ॥
वासुदेव देवकिनन्दन जय जय ।
दारुण-दैत्य निकन्दन जय जय ॥
यमुना-पुलिनविहारी जय जय ।
वृन्दा-विपिन-विहारी जय जय ॥
जय कंसारि मुरारी जय जय ।
जय अघारि असुरारी जय जय ॥
राधा बाधाहारिणि जय जय ।
मोहन-हृदय-विहारिणि जय जय ॥
मोहन-मोहिनि रासेश्वरि जय ।
नित्य-निकुंजेश्वरी जयति जय ॥
केसरिनन्दन कपि जय जय ।
कपि-वपु-धारी शिव जय जय ॥
देव पवननन्दन जय जय ।
दशरथललाकी जय, जनकललीकी जय ।
रामसखाकी जय, सीता सखीकी जय ॥
सिय-स्वामीकी जय, प्यारे राघवकी जय ।
बोलो हनुमत् कृपालुकी जय जय जय ॥
वंशीधारीकी जय, बनवारीकी जय ।
बोलो गिरवरधारीकी जय जय जय ॥
चीरहारीकी जय, रासधारीकी जय ।
बोलो कुंजविहारीकी जय जय जय ॥

× × ×

अब भूतभावन भगवान-'शिव'का जो आशुतोष और औढरदानी हैं, कीर्तन कीजिये—

जै शिव जै शिव शिव शिव
जै शिव जै शिव तव शरणम् ।
नमामि शंकर भवानि शंकर
उमामहेश्वर तव शरणम् ॥
साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव,
साम्ब सदाशिव जय शंकर ॥
हर हर शंकर दुखहर सुखकर,
अघ-तम हर हर हर शंकर ॥
साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव,
साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव ।
हर हर हर हर साम्ब सदाशिव,
साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव ॥

सच्चिदानन्दघन परमात्मा प्रभुका स्वरूप कितना विचित्र एवं मङ्गलमय है । साथ ही इनका नाम भी कितना मधुर, कितना सुन्दर, कितना मङ्गलमय है । यह तो नामीसे भी बढ़कर है—

राम एक तापस तिय तारी । नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥
जय रघुनन्दन जनककिशोरी । सीताराम मनोहर जोरी ॥
नंदनन्दन वृषभानुकिशोरी ।
कृष्णचन्द्र राधिका चकोरी ।
जय यदुनन्दन रुक्मिणि गोरी ।
रुक्मिणि-कृष्ण मनोहर जोरी ॥
सुर-मुनि-तारक असुर-विदारक सब भवहारक अवतारी ।
वेणु-बजायक गीता-गायक सबके नायक गिरधारी ॥
भज बालकृष्ण गोपाल गोविन्द गिरधारी ।
जय हरि हरि गोविन्द गिरधारी ॥
जय राधा साँवर जय प्यारी ।
जय श्याम मोहन-मनहारी ॥

श्रीराधावर कुंजविहारी, मुरलीधर गोवर्धनधारी ॥
मेरी राखो लाज विहारी, साँवरिया गिरिधारी ॥
गिरिधारी गिरिधारी, साँवरिया गिरिधारी ॥

× × ×

महादेव शिव शंकर शम्भो उमाकान्त हर त्रिपुरारे।
गङ्गाधर वृषभध्वज शूलिन् चन्द्रमौलि जय अघहारे ॥
गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे।
गोविन्द गोविन्द मुकुन्द प्यारे ॥
गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे,
राधाकृष्ण गोपीकृष्ण श्रीकृष्ण प्यारे।
जय गोविन्द गोविकानंदन पूर्ण सच्चिदानन्द उदार।
जय सब गोपी-गोप-गोपबालक गोधनके प्राणाधार ॥

× × ×

जय गोपीप्रिय जय गोविन्द। जय राधारमन-आनंदकन्द ॥
कालिन्दीप्रिय नन्दानन्द। सुर-मुनि-पूजित पद-अरविन्द ॥

× × ×

राधेश्याम राधेश्याम श्याम श्याम राधे राधे।
राधे बोलो राधे, गोविन्द बोलो राधे।
राधे राधे राधे, गोविन्द जय बोलो राधे।
राधे बोलो राधे, गोविन्द बोलो राधे ॥

× × ×

हरि बोल हरि बोल बोल हरि बोल।
केशव माधव मुकुन्द बोल ॥
हरि बोल हरि बोल बोल हरि बोल।
बोल हरि बोल हरि हरि हरि बोल ॥

× × ×

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव।
हरे मुरारे मधुकैटभारे, गोविन्द गोपाल मुकुन्द कृष्ण ॥

× × ×

कीर्तनमें बच्चोंकी भी बड़ी रुचि होती है, माताएँ-बहनें भी कीर्तन-ध्वनियोंमें भगवद्भक्तिका आनन्द लूटती हैं। उनके लिये भी निम्नांकित ध्वनियाँ उपयोगी हैं। दो दलोंमें बँटकर आधी-आधी पंक्ति बोलनी चाहिये—

प्रेमसे हरिका नाम बोलो, राधे राधे श्याम बोलो।
सीता सीता राम बोलो, प्रेमसे हरिका नाम बोलो ॥

× × ×

राम कहो घनश्याम कहो, जय जय श्रीसीताराम कहो ॥
राम कहो घनश्याम कहो, जय जय श्रीराधेश्याम कहो ॥

× × ×

राम धुन लागी, गोपाल धुन लागी ॥

× × ×

जय गोविन्द जय गोपाल, केशव माधव दीनदयाल।
जय गोपाला जय गोपाला। यशुमति-नंदन नंदके लाला ॥

× × ×

कृष्ण गोविन्द गोपाल गाते चलो,
मनको विषयोंके विषसे हटाते चलो।
देखना इन्द्रियोंके न घोड़े भगें,
इनपर दिनरात संयमके कोड़े लगें ॥
अपने रथको सुमारग चलाते चलो,
कृष्ण गोविन्द गोपाल गाते चलो ॥
(मन०)

प्राण जायें पै हरिनाम भूलो नहीं,
दुखमें तड़पो नहीं, सुखमें फूलो नहीं।
प्रेम-भक्तिके आँसू बहाते चलो,
कृष्ण गोविन्द गोपाल गाते चलो ॥
(मन०)

काम करते रहो, नाम जपते रहो,
पापकी वासनाओंसे डरते रहो।
नाम-धनका खजाना बढ़ाते चलो,
कृष्ण गोविन्द गोपाल गाते चलो ॥
(मन०)

याद आयेगा प्रभुको कभी-न-कभी,
दास पायेगा, उनको कभी-न-कभी।
ऐसा विश्वास मनमें जमाते चलो,
कृष्ण गोविन्द गोपाल गाते चलो ॥
(मन०)

× × ×

रघुपति राघव राजाराम, पतित-पावन सीताराम ॥
सीताराम सीताराम, भज प्यारे तू सीताराम ॥
राम-कृष्ण हैं तेरे नाम। सबको सन्मति दे भगवान ॥
दीन-दयालु राजाराम, पतित-पावन सीताराम ॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम, जानकि-वल्लभ सीताराम ॥
जय यदुनन्दन जय घनश्याम, रुक्मिणि-वल्लभ राधेश्याम ॥
जय मधुसूदन जय गोपाल, जय मुरलीधर जय नन्दलाल ॥
जय दामोदर कृष्ण मुरारि, देवकी-नन्दन सर्वाधार ॥
जय गोविन्द जय गोपाल, केशव माधव दीनदयाल ॥
राधाकृष्ण जय कुंजविहारी, मुरलीधर-गोवर्धन धारी ॥

दशरथनन्दन अवधकिशोर, यशुमति सुत जय माखनचोर॥
कौसल्याके प्यारे राम, यशुमति सुत जय नवघनश्याम ॥
वृन्दावन मथुरामें श्याम, अवधपुरीमें सीताराम ॥
जय गिरिजापति जय महादेव,
जय जय शम्भो जय महादेव ॥

जय जय दुर्गा जय माँ तारा,
जय गणेश जय शुभ आगारा ॥
× × ×
रामाय मङ्गलं लक्ष्मणाय मङ्गलम् ।
सीतासमेतरामचन्द्राय मङ्गलम् ॥
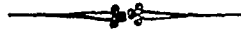
बलिहारी, बलिहारी, जय-जय गिरधारी गोपालकी

अरे पलट दी है काया ही इस केशवने काल की,
बलिहारी, बलिहारी, जय-जय गिरधारी गोपाल की।
अति कर दी अच्युत ने आहा! भर दी मति-गति और ही,
कर लेता है ठीक ठिकाना वह चाहे जिस ठौर ही।
नागर-नटवर होकर भी वह हम सबका सिरमौर है,
हम हाथी-घोड़े हैं उसके यमुना उसकी पालकी।
बलिहारी, बलिहारी, जय-जय गिरधारी गोपाल की॥
× × ×
मुरली है अपूर्व असि उसकी, विजयी है वह प्रेम का,
वह गो-धन का धनी, हाथ है उस उदार का हेम का,
शिखि-शेखर को ध्यान सदा है, सबके योग-क्षेम का।
वह गरुड़ध्वज मत्स्य न था, जो चला बकासुर लीलने,
अघ-अजगर से हमें बचाया उसी अलौकिकशील ने।
विष ही झाड़ दिया कालिय का सहृदय सदय सलील ने,
आग पिये था, इस पानी से हुई शान्ति ही ज्वाल की।
बलिहारी, बलिहारी, जय-जय गिरधारी गोपाल की।
× × ×
यमुना बहा ले गयी, पानी उतर गया सुरराज का,
अन्त प्रलयका भी है आहा! और वही दिन आज का।
हरियाली ही हरियाली है, जब नव जन्म समाज का।
अब फिर बजे चैन की वंशी उस माई के लाल की।
बलिहारी, बलिहारी, जय-जय गिरधारी गोपाल की।
× × × ×
निर्मल-नीलाकाश हासमय चमके चन्द्र-विकास में,
दमके कल-जल, गमके थल-जल कोमल-कुसुम-सुवास में।
लय से बँधा अराल-काल भी, डूबे रासोल्लास में,
घूमे भूमण्डल भी गति से सम भर कर स्वर-ताल की!
बलिहारी, बलिहारी, जय-जय गिरधारी गोपाल की।

नाम-संकीर्तन और भगवान्‌के सहस्रनाम एवं शतनाम-स्तोत्रोंकी महिमा

संकीर्तन शब्दके व्यापक अर्थमें सम्यकरीत्या नाम, गुण, लीला, यशोवर्णन आदि गृहीत होते हैं ।* शास्त्रोंमें निर्दिष्ट अथवा पठित सभी अष्टाविंशतिनाम, अष्टोत्तरशतनाम, नामत्रिशती एवं सहस्रनाम अभिधानतः भगवान्‌के नाम, गुण, यश और लीलाका वर्णन करते हैं । फलतः उन (सहस्र एवं शतनामों)का संकलन संकीर्तनोपयोगी—विशेषतया ऐकान्तिक संकीर्तनके लिये उपयोगी होनेसे यहाँ कुछ प्रसिद्ध शतनाम एवं सहस्रनाम स्तोत्रोंके विवरण उप-निबद्ध किये जा रहे हैं ।

संकीर्तनमयी सामवेदकी (अनुष्टुप् छन्दकी) स्तुति-परम्परामें इतिहास-पुराणोंमें तथा शाक्तप्रमोद आदि ग्रन्थोंमें भगवान्‌के सैकड़ों श्रेष्ठ नाम-गुण-कीर्तनपरक स्तोत्र—स्तवराज, नामद्वादशी, द्वात्रिंशत् नाम, शतनाम, नामत्रिशती, सहस्रनामस्तोत्र निबद्ध हैं । नृसिंहतापनी उपनिषद्‌के मूल एवं शांकर भाष्यमें इस परम्पराकी महा-महिमा वर्णित है । सभी शतनामो तथा सहस्रनामोंके आदि-अन्तमें प्रायः **'इति नामसहस्रं ते वृषभध्वज ! कीर्तितम्** (गरुड० १५।१५९) तथा **'इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य प्रकीर्तितम् । यश्चापि परिकीर्तयेत्', 'कलौ तु कीर्तनेनैव सर्वं पापं व्यपोहति'** आदिसे संकीर्तनकी उपयोगिता सूचित करते हुए उनकी विधि प्रदष्ट एवं निरूपित हुई है । इसी प्रकार महामहिम भगवत्पाद आचार्य शंकर आदि व्याख्याताओंने भी इसकी **'कीर्तयेत्' इत्यनेन—उच्चोपांशुमानसलक्षणस्त्रिविधो जपो लक्ष्यते'** जैसे वाक्योंमें कीर्तन, पाठ, जप आदिकी सर्वत्र समान उपयोगिता सूचित की है ।

आगमों एवं ज्योतिष ग्रन्थोंमें अनिष्टकारिणी ग्रहदशा-अन्तर्दशाओंमें इनके कीर्तनसे सभी अनिष्टोंकी शान्ति और ईश्वरप्राप्तिकी भी बात कही गयी है; जैसे—सूर्यसहस्रनामसे सूर्यकी, विष्णुसहस्रनामसे बुधकी, शिवसहस्रनामसे बृहस्पतिकी और दुर्गासहस्रनामसे शुक्रकी दशा-अन्तर्दशामें **'तद्दोषपरिहारार्थं विष्णु-साहस्रकं जपेत्' शिवसाहस्रकं जपेत्' सूर्यसाहस्रकं जपेत्'** आदि वाक्योंद्वारा तत्तद् दोषोंकी परिशान्ति एवं शुभ श्रेयः-प्राप्तिकी बात प्रतिपादित है ।

'हरे राम' महामन्त्रमें हरि, राम, कृष्ण—ये तीन नाम आवृत्त होते हैं । इसी प्रकार 'सहस्रनामों'में वैसे ही कुछ और नाम आवृत्त होते हैं । विष्णुसहस्रनाममें केशव, गोविन्द, हरि, वासुदेव आदि शब्द बार-बार आवृत्त हैं, पर भिन्न व्युत्पत्तियोंसे इनके भिन्न भाव निर्दिष्ट हैं, साथ ही वे इस प्रकार मन्त्र-रचनाकी विशिष्ट शक्तिसे भी सम्पन्न हो गये हैं ।

सहस्रनामोंमें विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, सूर्य आदिके अलग-अलग कई सहस्रनाम हैं । देखा जाय तो केवल रुद्रयामलमें ही बीसों सहस्रनाम हैं । यहाँ दिङ्‌निर्देशार्थ इनकी एक संक्षिप्त तालिका दी जा रही है—

१-विष्णुसहस्रनाम—इसके चार स्वरूप उपलब्ध हैं—(१) महाभारत अनुशासनपर्वके १४९ वें अध्यायमें, (२) पद्मपुराण (६ । ७२)में, (३) स्कन्दपुराण (५ । १ । ७४†)में, (४) गरुडपुराण (अध्याय १५ में और (५) शाक्तप्रमोदके अन्तमें । इन सबके प्रायः अलग-अलग स्वरूप उप-निबद्ध हैं ।

२-गणपति या गणेशसहस्रनाम—इसके दो स्वरूप हैं—एक मुद्गलपुराणका गकारादि क्रमका गणेश-सहस्रनाम और दूसरा गणेशपुराणके उपासनाखण्डका, जिसपर भास्कर राय भारतीका परमश्रेष्ठ भाष्य है ।

३-गायत्रीसहस्रनाम दो हैं—एक देवीभागवतका अकारादि क्रमपर तथा दूसरा गायत्रीपञ्चाङ्ग एव मन्त्र-

---

* देखिये पृ० ४०५ पर वाल्मीकीय रामायणका वचन । कथामृत सबका मूल है । उसकी प्रशस्तिके भी वचन निबन्ध रूपमें प्रकाश्य हैं । † 'शुक्लाम्बरधर देवं', 'लाभस्तेषां', 'सजलजलदनीलं' आदि सभी प्रसिद्ध श्लोक इसी परम श्रेष्ठ सहस्रनामके हैं ।

महार्णवका गायत्र्यक्षरके क्रमपर 'गायत्री दिव्यसहस्रनाम' रूपमें प्रसिद्ध ।

४-रामसहस्रनाम चार हैं--(१) रकारादि रामसहस्रनाम, २-मकारादि रामसहस्रनाम ३-सामान्य क्रमपर आनन्दरामायणप्रोक्त तथा ४-अगस्त्यसंहिताप्रोक्त ।

५-काली या कालिकासहस्रनाम (ककारादि क्रमका)—शाक्त-प्रमोद, प्रथम पटलमें है । **६-हयग्रीवसहस्रनाम**—(हयग्रीवकल्पमें प्राप्य), **७-नृसिंहसहस्रनाम** ('नृसिंहप्रासाद' में निबद्ध), **८-लक्ष्मीनृसिंहसहस्रनाम** (ब्रह्माण्डपुराणमें ग्रथित), **९-सरस्वतीसहस्रनाम** (शक्तियामल), **१०-हनुमत्सहस्रनाम** [(१) हनुमत्कल्प और (२) मन्त्रमहार्णव ।] **११-गङ्गासहस्रनाम** दो है—(१)स्कन्दपुराण, (२) काशीखण्ड तथा बृहद्धर्मपुराणमें प्राप्य। **१२-दत्तात्रेयसहस्रनाम** (दत्तात्रेयसंहिता), **१३-सूर्यसहस्रनाम** (साम्बपुराण), **१४-बटुकभैरवसहस्रनाम** (रुद्रयामल, पूर्वयामल), **१५-भवानीसहस्रनाम** (शाक्तप्रमोद), **१६-भुवनेश्वरीसहस्रनाम** (शाक्तप्रमोद), **१७-रेणुकासहस्रनाम** (आगमसर्वस्व), **१८-गोपालसहस्रनाम** (सम्मोहन-तन्त्र), **१९-पुरुषोत्तमसहस्रनाम** (विष्णुयामल), **२०-कृष्णसहस्रनाम** (ककारादि क्रमका,गर्गसंहिता), **२१-दुर्गासहस्रनाम** (कुलार्णव तन्त्र और शाक्तप्रमोद), **२२-गौरीसहस्रनाम** (कूर्मपुराण), (यही अद्भुत-रामायणमें सीतासहस्रनामसे उपलब्ध है), **२३-देवीसहस्रनाम** (महाभागवत, देवीपुराण), **२४-तकारादि तारासहस्रनाम** (ब्रह्मयामल, शाक्तप्रमोद), **२५-ललितासहस्रनाम** (ब्रह्माण्डपुराण इसपर भास्कररायजी भारतीका परम श्रेष्ठ सौभाग्य भास्करभाष्य पठनीय है।), **२६-बगलासहस्रनाम** (शाबरनागेन्द्र-तन्त्र और शाक्तप्रमोद), **२७-महाकालसहस्रनाम** (स्कन्दपुराण, अवन्तीखण्ड), **२८-मृत्युंजयसहस्रनाम** (रुद्रयामल), **२९-रुद्रसहस्रनाम** (शिवपुराण, लिङ्गपुराण उत्तरार्द्ध तथा महाभा० शान्तिपर्व अ० १२। ६८), **३०-शिवसहस्रनाम**—महाभारत, अनुशासनपर्व १७। ७८, (२) शिवपुराण ४। ३५, (३) लिंगपुराण १। ८८, (४) सौरपुराण ४४। **३१-कुण्डलिनीसहस्रनाम** (रुद्रयामल, उत्तरतन्त्र), **३२-गुरुसहस्रनाम** (रुद्रयामल, उत्तरतन्त्र)। **३३-कुमारीसहस्रनाम** (रुद्रयामल, उत्तरतन्त्र)। **३४-त्रिपुरसुन्दरी (षोडशी) सहस्रनाम** (शाक्तप्रमोद), **३५-भैरवीसहस्रनाम** (विश्वसारतन्त्र), **३६-धूमावतीसहस्रनाम** (शाक्तप्रमोद), **३७-राधिका (राधा) सहस्रनाम** (ब्रह्मयामल), **३८-राघवेन्द्रसहस्रनाम** **३९-कार्तिकेयसहस्रनाम** (उत्तरयामल), **४०-मातङ्गीसहस्रनाम** (नन्द्यावर्त सूत्र, उत्तरखण्ड), **४१-अन्नपूर्णासहस्रनाम** (अन्नपूर्णापञ्चाङ्ग), **४२-गकारादि गोरक्षसहस्रनाम**, **४३-निष्कलङ्कसहस्रनाम**, तथा **४४-युगलसहस्रनाम** ।

सहस्रनामोंमें कीर्तनकी महिमा

जिन पापोंकी शुद्धिके लिये कोई उपाय नहीं, उनके लिये सहस्रनाम-कीर्तन सर्वोत्तम साधन है । सहस्रनामोंके कीर्तनसे काशी, कुरुक्षेत्र, गया, द्वारका आदि जानेका पुण्य सहज ही प्राप्त हो जाता है—ऐसा वर्णन है । सात्त्विकताकी दृष्टिसे विष्णु आदि देवोंके नामकी महिमा विशेष है । ये सहस्रनाम सभी पाप-तापोंके शामक एवं अभीष्ट फल देनेवाले हैं । इनसे सभी दुःख-दारिद्र्य, ऋण आदि दूर होते हैं । ये रोगहर, राज्यप्रद, वन्ध्या-पुत्रप्रद, आयुष्यप्रद एवं परम मङ्गलप्रद बताये गये हैं । इनके पाठमात्रसे सभी वेद-पुराण, शास्त्रके स्वाध्याय एवं मन्त्रादिके जपके फल प्राप्त हो जाते हैं । इनका एक-एक अक्षर महामहिमामय कहा गया है। महाभारतका भीष्मप्रोक्त विष्णुसहस्रनाम विशेष प्रसिद्ध है । यह मूल पाठ, उसपर शांकरभाष्य एवं हिन्दी अनुवादसहित गीताप्रेसद्वारा भी प्रकाशित हैं । वह द्वापरके अन्तका है । पद्मपुराण, उत्तरखण्डमें वर्णित विष्णुसहस्रनाम विशेषमहत्त्वका है, जो पाञ्चरात्र आगमों तथा शाक्तप्रमोदके अन्तमें भी प्रायः इसी रूपमें निबद्ध होनेसे बहुत पुराना है । यह शिवजीद्वारा पार्वतीजीके लिये कथित है, पुनः 'मुनिभनित' (दोहावली १८८) इस विशेष कथनसे अगस्त्यजीद्वारा सुतीक्ष्णजीको भी उपदिष्ट है । अतः अगस्त्यसंहिता एवं प्राचीन पुराणमें भी प्राप्त है । इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज इसके प्रचारको लुप्त न होने देना चाहते हुए इसका प्रचार बढ़ाना ही कल्याणकर मानते

थे। इस सहस्रनामकी महिमा भी बहुत है और माहात्म्य-वर्णनके पूरे साठ श्रेष्ठ श्लोक प्राप्त हैं। माहात्म्य-वर्णनके लिये सहस्रनामाध्यायके अतिरिक्त एक स्वतन्त्र अध्याय भी है। इसके माहात्म्यमें यहाँतक कहा गया है कि इसके एक श्लोक, एक पाद, एक अक्षरका एक वार भी श्रवण, पठन अथवा जप करनेसे साङ्गवेद, पुराण, शास्त्र, स्मृतियाँ तथा कोटि-कोटि मन्त्रोंके भी श्रवण-मनन तथा पाठका फल प्राप्त हो जाता है, सभी अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं; फिर समूचे स्तोत्र-पाठकी तो बात ही क्या!

सकृदस्याखिला वेदाः साङ्गा मन्त्राश्च कोटिशः।
पुराणशास्त्रस्मृतयः श्रुताः स्युः पठितास्तथा॥
जप्त्वा चैकाक्षरं श्लोकं पादं वा पठति प्रिये।
नित्यं सिध्यति सर्वेषामचिरात् किमुताखिलम्॥

इसका पाठ चलते-फिरते भी कर सकते हैं।

पूज्य गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने इस सहस्रनामकी चर्चा मानस आदि अपनी सभी रचनाओंमें कई वार की है। दोहावलीके १८८वें दोहेमें वे लिखते हैं—

सहस नाम मुनि भनित सुनि—'तुलसीबल्लभ' नाम।
सकुचत हिय हँसि निरखि सिय, धरमधुरंधर राम॥

इस रहस्यपूर्ण दोहेका अर्थ दोहावलीके प्रायः सभी टीकाकारोंने मात्र यही किया है कि 'मुनिके' कहे हुए 'रामसहस्रनाम'में 'तुलसीवल्लभ' नाम सुनकर रामजी हँसकर सीताजीकी ओर देखते हुए सकुचाते हैं।'[1] यहाँ ध्यान देनेकी बात है कि तुलसीदासजीने केवल 'सहस्रनाम' शब्द लिखा है, 'रामसहस्रनाम' नहीं। वैसे रामसहस्रनाम चार-पाँच हैं, जो पहले निर्दिष्ट हैं। एक आनन्दरामायणके राज्यकाण्डके पूर्वार्धके प्रथम अध्यायमें है जो गणेशजीद्वारा कहा गया है। दूसरा मन्त्रमहार्णवका है, जो गीताप्रेससे प्रकाशित है। तीसरा रकारादि रामसहस्रनाम है, जिसमें सभी नाम रकारसे ही आरम्भ होते हैं। चौथा 'मकारादि' है, जिसमें सब नाम मकारसे आरम्भ होते हैं। पर इनमें किसीमें भी 'तुलसीवल्लभ' शब्द नहीं आया है। महाभारत, स्कन्दपुराण[2] एवं गरुडपुराण[3]में प्रोक्त विष्णुसहस्रनामोंमें भी यह शब्द नहीं मिलता। किमधिकम्; यह शब्द इस पाद्मीय सहस्रनामको छोड़कर किसी भी सहस्रनाममें नहीं मिलता, चाहे वह किसी भी देवता या देवीका क्यों न हो। अतः लोगोंके अर्थ त्रुटिपूर्ण होनेसे विचारणीय हैं।

वह सहस्रनाम कौन-सा है?

यह 'तुलसी-वल्लभ' नामवाला पूरा श्लोक इस प्रकार है—

तुलसीवल्लभो वीरो वामाचारोऽखिलेष्टदः।
महाशिवः शिवारूढो भैरवैककपालधृक्॥

यह श्लोक इसी पद्मपुराणोक्त श्रीविष्णुसहस्रनामका है। इसमें 'तुलसीवल्लभ' पदमें रहस्यपूर्ण श्लेष है। यहाँ इससे भगवान्‌की नित्य-अभीष्ट तुलसी (वृन्दा) देवीके प्रिय, भक्त तुलसीदासके प्रिय एवं व्यञ्जनासे सीतानाथ—ये तीन अर्थ अभिप्रेत हैं। रामचरितमानसमें यह बार-बार संकेतित है। यहाँ दिग्दर्शनार्थ केवल इसकी थोड़ी चर्चा कर दी जा रही है।

रामचरितमानस तथा उपर्युक्त सहस्रनाम

इसकी छाया मानसके अनेक स्थलोंपर दीख पड़ती है। उदाहरणार्थ उत्तरकाण्डकी कुछ विशिष्ट चौपाइयोंको लिया जाय। गोस्वामीजी महाराज लिखते हैं—

रामु कामु सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन॥
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा॥

१–द्रष्टव्य–सिद्धान्ततिलक-भाष्य तथा दीनजी आदिकी प्रायः सभी टीकाएँ।

२–अवन्तीखण्ड, अध्याय ६३ वेंमें 'वेंकटेश्वर प्रेस'का संस्करण, नवलकिशोर-प्रेस लखनऊके संस्करणमें यह ७४ वाँ अध्याय है तथा श्लोक सं० २०३ है।

३–गरुडपुराण, पूर्वखण्ड अध्याय १५।

४–यह सहस्रनाम मूलतः शिवजीद्वारा पार्वतीसे कहा गया है। मुनिसे अगस्त्यजी गृहीत हैं। यह अगस्त्यसंहिता, नारदपाञ्चरात्र, शाक्तप्रमोद आदिमें भी प्राप्त है।

तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघपुंज नसावन॥
सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥
(रा० मा० उत्तर० ९१–९२)

इन चौपाइयोंका मूल स्रोत उपर्युक्त सहस्रनाम ही है। इसके मूलभूत वचन* देखिये—

सूर्यकोटिप्रतीकाशो यमकोटिदुरासदः।
कंदर्पकोटिलावण्यो दुर्गाकोट्यरिमर्दनः॥
समुद्रकोटिगम्भीरस्तीर्थकोटिसमाह्वयः।
ब्रह्मकोटिजगत्स्रष्टा वायुकोटिमहाबलः॥
कोटीन्दुजगदानन्दी शम्भुकोटिमहेश्वरः।
कुबेरकोटिलक्ष्मीवाञ् शक्रकोटिविलासवान्॥
हिमवत्कोटिनिष्कम्पः कोटिब्रह्माण्डविग्रहः।

(वही, पद ६। ७१। १५९–२६१, पूना संस्करण, वेंकटेश्वर सं० ७ श्लोक १५१–१५७ आदि)

यहाँ प्रायः दस श्लोकोंका भाव पूज्यपादने उपर्युक्त चौपाइयोंमें लिया है। बालकाण्डकी—

'सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेइँ पिय संग भवानी॥

—यह चौपाई भी इसे शिवोक्त, अगस्त्यादि-मुनिप्रोक्त कहती है तथा यह इसी सहस्रनामके—

नाम्नैकेन तु येन स्यात् तत्फलं ब्रूहि मे प्रभो॥३३४॥
रामरामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥३३५॥

—इन वचनोंके आधारपर निर्मित है।

सभी सहस्रनाम बडे हैं, अतः पाठकोंके लाभार्थ यहाँ केवल यह सर्वाधिक प्राचीन विवेचित पद्मपुराणीय सात्त्विक एवं श्रेष्ठ विष्णुसहस्रनाम दिया जा रहा है। सहस्रनामके बाद कुछ शतनाम भी दिये जा रहे हैं। वैसे गणेशशतनाम, सीता-रामशतनाम, विष्णुशतनाम, शिव, दुर्गा, ललिता आदि दस महाविद्याओंके शतनामके अतिरिक्त, सूर्य, सुब्रह्मण्य, कृष्ण, लक्ष्मी, गुरु, गायत्री आदिके भी शतनाम, नामद्वादशी, त्रिशती आदि मिलते हैं। यहाँ उनमेंसे केवल पञ्चदेवोंके शतनाम मात्र संकलित हैं, जिनकी महिमा पद्मपुराण, आनन्दरामायण आदिमें द्रष्टव्य है।

अथ-श्रीविष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीविष्णोर्नामसहस्रस्तोत्रस्य श्रीमहादेव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, परमात्मा देवता, ह्रीं बीजम्, श्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, चतुर्वर्गप्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः।

ॐ वासुदेवाय विद्महे महाहंसाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।

इसके अङ्गन्यास, करन्यासविधिद्वारा पाठ करनेसे कोटिगुणा फल होता है—

'तत्फलं कोटिगुणितं भवत्येव न संशयः॥' जो इस प्रकार है—

अङ्गन्यास—

श्रीवासुदेवः परं ब्रह्मेति हृदयम्[1]। मूलप्रकृतिरिति शिरः[2]। महावराह इति शिखा[3]। सूर्यवंशध्वज इति कवचम्[4]। ब्रह्मादिकाम्यलालित्यजगदाश्रयशैशव इति नेत्रम्[5]। पार्थार्थखण्डिताशेष इत्यस्त्रम्[6]। ॐ नमो नारायणायेति।

इन मन्त्रोंको पढ़कर अथवा केवल 'ॐ नमो नारायणाय'से भगवान्‌की भावनासे हृदय, सिर, शिखा, बाहु, नेत्र, अङ्ग-प्रत्यङ्गका स्पर्श करना चाहिये।

---

* 'इत्येतद् वासुदेवस्य विष्णोर्नामसहस्रकम्।' से यह वासुदेव-सहस्रनाम भी कहा गया है (पद्मपुरा० उत्तर० ७१। २९५ वेंकटेश्वरप्रेस, बंगवासी तथा मोरप्राच्य संस्करण पूनामें ७२।' २९७)।

१–यह कहकर पाँचों अङ्गुलियोंको मिलाकर हृदयका स्पर्श करे। २–यह कहकर सिरका स्पर्श करे। ३–यह कहकर चोटीका स्पर्श करे। ४–दाहिने हाथसे बायें कंधे और बायें हाथसे दाहिने कंधेको छूए। ५–यह कहकर तीनों नेत्र छूए। ६–यह कहकर शरीरके बाहर दोनों करतलोंको घुमाये।

ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने । विशुद्धशुद्धसत्त्वाय महाहंसाय धीमहि । तन्नो देवः प्रचोदयात् ॥ क्लीं कृष्णाय विष्णवे (विद्महे) ह्रीं रामाय धीमहि । तन्नो देवः प्रचोदयात् । क्ष्रौं नृसिंहाय विद्महे श्रीकण्ठाय धीमहि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् । ॐ वासुदेवाय विद्महे देवकीसुताय धीमहि तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् ॥ ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय नमः स्वाहा ॥

उपर्युक्त मन्त्रोंसे अन्नद्वारा या मानसिक आहुति दे । मूल स्तोत्र इस प्रकार है—

ॐ वासुदेवः परं ब्रह्म परमात्मा परात्परः । परं धाम परं ज्योतिः परं तत्त्वं परं पदम् ॥
परः शिवः परो ध्येयः परं ज्ञानं परा गतिः । परमार्थः परः श्रेष्ठः परानन्दः परोदयः ॥
परोऽव्यक्तात् परं व्योम परमर्द्धिः परेश्वरः । निरामयो निर्विकारो निर्विकल्पो निराश्रयः ॥
निरञ्जनो निरालम्बो निर्लेपो निरवग्रहः । निर्गुणो निष्कलोऽनन्तोऽभयोऽचिन्त्योऽचलोऽचिंतः ॥
अतीन्द्रियोऽमितोऽपारो नित्योऽनीहोऽव्ययोऽक्षयः । सर्वज्ञः सर्वगः सर्वः सर्वदः सर्वभावनः ॥
सर्वशास्ता सर्वसाक्षी पूज्यः सर्वस्य सर्वदृक् । सर्वशक्तिः सर्वसारः सर्वात्मा सर्वतोमुखः ॥
सर्ववासः सर्वरूपः सर्वादिः सर्वदुःखहा । सर्वार्थः सर्वतोभद्रः सर्वकारणकारणम् ॥
सर्वातिशायितः सर्वाध्यक्षः सर्वेश्वरेश्वरः । षड्विंशको महाविष्णुर्महागुह्यो महाविभुः ॥
नित्योदितो नित्ययुक्तः नित्यानन्दः सनातनः । मायापतिर्योगपतिः कैवल्यपतिरात्मभूः ॥
जन्ममृत्युजरातीतः कालातीतो भवातिगः । पूर्णः सत्यः शुद्धबुद्धस्वरूपो नित्यचिन्मयः ॥
योगप्रियो योगगम्यो भवबन्धैकमोचकः । [10]पुराणपुरुषः प्रत्यक्चैतन्यः पुरुषोत्तमः ॥
वेदान्तवेद्यो दुर्ज्ञेयस्तापत्रयविवर्जितः । ब्रह्मविद्याश्रयोऽनघः स्वप्रकाशः स्वयंप्रभुः ॥
सर्वोपाय उदासीनः प्रणवः (१००) सर्वतः समः । [11]सर्वानवद्यो दुष्प्राप्यस्तुरीयस्तमसः परः ॥
कूटस्थः सर्वसंश्लिष्टो वाङ्मनोगोचरातिगः । संकर्षणः सर्वहरः कालः सर्वभयंकरः ॥
अनुल्लङ्घ्यश्चित्रगतिर्महारुद्रो दुरासदः । मूलप्रकृतिरानन्दः प्रद्युम्नो विश्वमोहनः ॥
महामायो विश्वबीजं परशक्तिः सुखैकभूः । सर्वकाम्योऽनन्तलीलः सर्वभूतवशंकरः ॥
अनिरुद्धः सर्वजीवो हृषीकेशो मनःपतिः । निरुपाधिप्रियो हंसोऽक्षरः सर्वनियोजकः ॥
ब्रह्मप्राणेश्वरः सर्वभूतभृद् देहनायकः । क्षेत्रज्ञः प्रकृतिस्वामी पुरुषो विश्वसूत्रधृक् ॥
अन्तर्यामी त्रिधामान्तःसाक्षी निर्गुण ईश्वरः । [12]योगिगम्यः पद्मनाभः शेषशायी श्रियः पतिः ॥
श्रीशिवोपास्यपादाब्जो नित्यश्रीः श्रीनिकेतनः । नित्यवक्षःस्थलस्थश्रीः श्रीनिधिः श्रीधरो हरिः ॥
वश्यश्रीर्निश्चलश्रीदो विष्णुः क्षीराब्धिमन्दिरः । कौस्तुभोद्भासितोरस्को माधवो जगदार्तिहा ॥
श्रीवत्सवक्षा निःसीमकल्याणगुणभाजनम् । पीताम्बरो जगन्नाथो जगत्त्राता जगत्पिता ॥
जगद्बन्धुर्जगत्स्रष्टा जगद्धाता जगन्निधिः । जगदेकस्फुरद्वीर्यो नाहंवादी जगन्मयः ॥
सर्वाश्चर्यमयः सर्वसिद्धार्थः सर्वरञ्जितः । सर्वामोघोद्यमो ब्रह्मरुद्राद्युत्कृष्टचेतनः ॥
शम्भोः पितामहो ब्रह्मपिता शक्राद्यधीश्वरः । सर्वदेवप्रियः सर्वदेवमूर्तिरनुत्तमः ॥
सर्वदेवैकशरणः सर्वदेवैकदेवता । यज्ञभुग् यज्ञफलदो यज्ञेशो यज्ञभावनः ॥

७—यहाँसे निर्गुण निराकार ब्रह्मका कीर्तन है । ८—यहाँसे सगुण निराकारका कीर्तन है । ९—यहाँसे महाविष्णुका कीर्तन है । १०—यहाँसे पुरुषोत्तम-कीर्तन-प्रकरण है । (द्र० शारदातिलक) ११—यहाँसे चतुर्व्यूह स्वरूपका संकीर्तन है । १२—यहाँसे विष्णुभगवान्का कीर्तन है ।

यज्ञत्राता यज्ञपुमान् वनमाली द्विजप्रियः। द्विजैकमानदो (२००) विप्रकुलदेवोऽसुरान्तकः ॥
सर्वदुष्टान्तकृत् सर्वसज्जनानन्यपालकः। सप्तलोकैकजठरः सप्तलोकैकमण्डनः ॥
सृष्टिस्थित्यन्तकृच्चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः। शङ्खभृन्नन्दकी पद्मपाणिर्गरुडवाहनः ॥
अनिर्देश्यवपुः सर्वपूज्यस्त्रैलोक्यपावनः। अनन्तकीर्तिर्निःसीमपौरुषः सर्वमङ्गलः ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशो यमकोटिदुरासदः। कंदर्पकोटिलावण्यो दुर्गाकोट्यरिमर्दनः ॥
समुद्रकोटिगम्भीरस्तीर्थकोटिसमाह्वयः। ब्रह्मकोटिजगत्स्रष्टा वायुकोटिमहाबलः ॥
कोटीन्दुजगदानन्दी शम्भुकोटिमहेश्वरः। कुबेरकोटिलक्ष्मीवान् शक्रकोटिविलासवान् ॥
हिमवत्कोटिनिष्कम्पः कोटिब्रह्माण्डविग्रहः। कोट्यश्वमेधपापघ्नो यज्ञकोटिसमार्चनः ॥
सुधाकोटिस्वास्थ्यहेतुः कामधुक्कोटिकामदः। ब्रह्मविद्याकोटिरूपः शिपिविष्टः शुचिश्रवाः ॥
विश्वम्भरस्तीर्थपादः पुण्यश्रवणकीर्तनः। आदिदेवो जगज्जैत्रो मुकुन्दः कालनेमिहा ॥
वैकुण्ठोऽनन्तमाहात्म्यो महायोगेश्वरोत्सवः। नित्यतृप्तो लसद्भावो निःशङ्को नरकान्तकः ॥
दीनानाथैकशरणं विश्वैकव्यसनापहः। जगत्कृपाक्षमो नित्यं कृपालुः सज्जनाश्रयः ॥
योगेश्वरः सदोदीर्णो वृद्धिक्षयविवर्जितः। अधोक्षजो विश्वरेताः प्रजापतिशताधिपः ॥
शक्रब्रह्मार्चितपदः शम्भुब्रह्मोर्ध्वधामगः। सूर्यसोमेक्षणो विश्वभोक्ता सर्वस्य पारगः ॥
जगत्सेतुर्धर्मसेतुधरो विश्वधुरंधरः। निर्ममोऽखिललोकेशो निःसङ्गोऽद्भुतभोगवान् ॥
वश्यमायो वश्यविश्वो विष्वक्सेनः सुरोत्तमः। सर्वश्रेयःपतिर्दिव्योऽनर्घ्यभूषणभूषितः ॥
सर्वलक्षणलक्षण्यः सर्वदैत्येन्द्रदर्पहा। समस्तदेवसर्वस्वं सर्वदैवतनायकः ॥
समस्तदेवकवचं सर्वदेवशिरोमणिः। समस्तदेवतादुर्गः प्रपन्नाशनिपञ्जरः ॥
समस्तभयहन्नामा भगवान् विष्टरश्रवाः। विभुः सर्वहितोदर्को हतारिः स्वर्गतिप्रदः (३००) ॥
सर्वदैवतजीवेशो ब्राह्मणादिनियोजकः। ब्रह्मशम्भुपरार्धायुर्ब्रह्मज्येष्ठः शिशुस्वराट् ॥
विराड् भक्तपराधीनः स्तुत्यः स्तोत्रार्थसाधकः। परार्थकर्ता कृत्यज्ञः स्वार्थकृत्यसदोज्झितः ॥
सदानन्दः सदाभद्रः सदाशान्तः सदाशिवः। सदाप्रियः सदातुष्टः सदापुष्टः सदार्चितः ॥
सदापूतः पावनाग्र्यो वेदगुह्यो वृषाकपिः। सहस्रनामा त्रियुगश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्भुजः ॥
भूतभव्यभवन्नाथो महापुरुषपूर्वजः। नारायणो मञ्जुकेशः सर्वयोगविनिःसृतः ॥
वेदसारो यज्ञसारः सामसारस्तपोनिधिः। साध्यश्रेष्ठः पुराणर्षिर्निष्ठा शान्तिः परायणम् ॥
शिवत्रिशूलविध्वंसी श्रीकण्ठैकवरप्रदः।
नरः कृष्णो हरिर्धर्मनन्दनो धर्मजीवनः। आदिकर्ता सर्वसत्यः सर्वस्त्रीरत्नदर्पहा ॥
त्रिकालजितकन्दर्प उर्वशीसृड् मुनीश्वरः। आद्यः कविर्हयग्रीवः[13] सर्ववागीश्वरेश्वरः ॥
सर्वदेवमयो ब्रह्मगुरुर्वागीश्वरीपतिः। अनन्तविद्याप्रभवो मूलाविद्याविनाशकः ॥
सर्वज्ञदो नमज्जाड्यनाशको मधुसूदनः। अनेकमन्त्रकोटीशः शब्दब्रह्मैकपारगः ॥
आदिविद्वान्[14] वेदकर्ता वेदात्मा श्रुतिसागरः। ब्रह्मार्थवेदाहरणः सर्वविज्ञानजन्मभूः ॥
विद्याराजो ज्ञानमूर्तिर्ज्ञानसिन्धुरखण्डधीः। मत्स्यदेवो[15] महाशृङ्गो जगद्बीजवहित्रधृक् ॥
लीलाव्याप्ताखिलाम्भोधिर्ऋग्वेदादिप्रवर्तकः। आदिकूर्मोऽखिलाधारस्तृणीकृतजगद्भरः ॥
अमरीकृतदेवौघः पीयूषोत्पत्तिकारणम्। आत्माधारो धराधारो[16] यज्ञाङ्गो धरणीधरः ॥
हिरण्याक्षहरः पृथ्वीपतिः श्राद्धादिकल्पकः। समस्तपितृभीतिघ्नः समस्तपितृजीवनम् ॥
हव्यकव्यैकभुग् (४००) हव्यकव्यैकफलदायकः। रोमान्तर्लीनजलधिः क्षोभिताशेषसागरः ॥

१३—यहाँसे हयग्रीव भगवान्‌का कीर्तन है। १४—यहाँसे मत्स्यावतारका संकीर्तन है। १५—यहाँसे कूर्मरूपका संकीर्तन है। १६—यहाँसे वराह भगवान्‌का संकीर्तन है।

महावराहो यज्ञघ्नध्वंसको याज्ञिकाश्रयः । श्रीनृसिंहो[17] दिव्यसिंहः सर्वानिष्टार्थदुःखहा ॥
एकवीरोऽद्भुतबलो यन्त्रमन्त्रैकभञ्जनः । ब्रह्मादिदुःसहज्योतिर्युगान्ताग्न्यतिभीषणः ॥
कोटिवज्राधिकनखो जगद्दुष्प्रेक्ष्यमूर्तिधृक् । मातृचक्रप्रमथनो महामातृगणेश्वरः ॥
अचिन्त्यामोघवीर्याढ्यः समस्तासुरघस्मरः । हिरण्यकशिपुच्छेदी कालः संकर्षणीपतिः ॥
कृतान्तवाहनः सद्यः समस्तभयनाशनः । सर्वविघ्नान्तकः सर्वसिद्धिदः सर्वपूरकः ॥
समस्तपातकध्वंसी सिद्धिमन्त्राधिकाह्वयः । भैरवेशो हरार्तिघ्नः कालकोटिदुरासदः ॥
दैत्यगर्भस्राविनामा स्फुटद्ब्रह्माण्डगर्जितः । स्मृतमात्राखिलत्राताद्भुतरूपो महाहरिः ॥
ब्रह्मचर्यशिरःपिण्डी दिक्पालोऽर्धाङ्गभूषणः । द्वादशार्कशिरोदामा रुद्रशीर्षैकनूपुरः ॥
योगिनीग्रस्तगिरिजात्राता भैरवतर्जकः । वीरचक्रेश्वरोऽत्युग्रो यमारिः कालसंवरः ॥
क्रोधेश्वरो रुद्रचण्डीपरिवारादिदुष्टभुक् । सर्वाक्षोभ्यो मृत्युमृत्युः कालमृत्युनिवर्तकः ॥
असाध्यसर्वरोगघ्नः सर्वदुर्ग्रहसौम्यकृत् । गणेशकोटिदर्पघ्नो दुःसहाशेषगोत्रहा ॥
देवदानवदुर्दर्शो जगद्भयदभीषकः । समस्तदुर्गतित्राता जगद्भक्षकभक्षकः ॥
उग्रशोऽम्बरमार्जारः कालमूषकभक्षकः । अनन्तायुधदोर्दण्डी नृसिंहो वीरभद्रजित् ॥
योगिनीचक्रगुह्येशः शक्रारिपशुमांसभुक् । रुद्रो नारायणो मेषरूपशंकरवाहनः ॥
मेषरूपशिवत्राता दुष्टशक्तिसहस्रभुक् । तुलसीवल्लभो[18] वीरो वामाचाराखिलेष्टदः ॥
महाशिवः शिवारूढो भैरवैककपालधृक् । झिल्लिचक्रेश्वरः शक्रदिव्यमोहनरूपदः ॥
गौरीसौभाग्यदो मायानिधिर्मायाभयापहः । [19]ब्रह्मतेजोमयो ब्रह्मश्रीमयश्च त्रयीमयः ॥
सुब्रह्मण्यो बलिध्वंसी वामनोऽदितिदुःखहा । उपेन्द्रो नृपतिर्विष्णुः कश्यपान्वयमण्डनः ॥
बलिस्वाराज्यदः सर्वदेवविप्रान्नदोऽच्युतः (५००) । उरुक्रमस्तीर्थपादस्त्रिपदस्थस्त्रिविक्रमः ॥
व्योमपादः स्वपादाम्भःपवित्रितजगत्त्रयः । ब्रह्मेशाद्यभिवन्द्याङ्घ्रिर्द्रुतधर्माङ्घ्रिधावनः ॥
अचिन्त्याद्भुतविस्तारो विश्ववृक्षो महाबलः । राहुमूर्धापराङ्गच्छिद्भृगुपत्नीशिरोहरः ॥
पापात् त्रस्तः सदापुण्यो दैत्याशानित्यखण्डकः । पूरिताखिलदेवाशो विश्वार्थैकावतारकृत् ॥
[20]स्वमायानित्यगुप्तात्मा भक्तचिन्तामणिः सदा । वरदः कार्तवीर्यादिराजराज्यप्रदोऽनघः ॥
विश्वश्लाघ्योऽमिताचारो दत्तात्रेयो मुनीश्वरः । पराशक्तिसदाश्लिष्टो योगानन्दसदोन्मदः ॥
समस्तेन्द्रारितेजोहृत् परमामृतपद्मपः । अनसूयागर्भरत्नं भोगमोक्षसुखप्रदः ॥
[21]जमदग्निकुलादित्यो रेणुकाद्भुतशक्तिधृक् । मातृहत्यादिनिर्लेपः स्कन्दजिद्विप्रराज्यदः ॥
सर्वक्षत्रान्तकृद्वीरदर्पहा कार्तवीर्यजित् । सप्तद्वीपवतीदाता शिवार्चकयशःप्रदः ॥
भीमः परशुरामश्च शिवाचार्यैकविश्वभूः । शिवाखिलज्ञानकोशो भीष्माचार्योऽग्निदैवतः ॥
द्रोणाचार्यगुरुर्विश्वजैत्रधन्वा कृतान्तजित् । अद्वितीयतपोमूर्तिर्ब्रह्मचर्यैकदक्षिणः ॥
मनुश्रेष्ठः सतां सेतुर्महीयान् वृषभो विराट् । आदिराजः क्षितिपिता सर्वरत्नैकदोहकृत् ॥
[22]पृथुर्जन्माद्येकदक्षो गीःश्रीःकीर्तिस्वयंवृतः । जगद्वृत्तिप्रदश्चक्रवर्तिश्रेष्ठोऽद्वयास्त्रधृक् ॥
सनकादिमुनिप्राप्यभगवद्भक्तिवर्धनः । वर्णाश्रमादिधर्माणां कर्ता वक्ता प्रवर्तकः ॥
[23]सूर्यवंशध्वजो रामो राघवः सद्गुणार्णवः । काकुत्स्थो वीरराजार्यो राजधर्मधुरंधरः ॥
नित्यस्वस्थाश्रयः सर्वभद्रग्राही शुभैकदृक् । नररत्नं रत्नगर्भो धर्माध्यक्षो महानिधिः ॥

१७—यहाँसे नृसिंहावतारका संकीर्तन है—जिसकी नृसिंहतापिनी भाष्यमें विस्तृत व्याख्या है। १८—इसी नामपर दोहावलीके विचार हैं। १९—यहाँसे वामनका कीर्तन है। २०—यहाँसे दत्तात्रेयका कीर्तन है। २१—यहाँसे परशुरामका कीर्तन है। २२—यहाँसे पृथुका कीर्तन है। २३—यहाँसे रामावतारका कीर्तन है।

सर्वश्रेष्ठाश्रयः सर्वशस्त्रास्त्रग्रामवीर्यवान् । जगदीशो दाशरथिः सर्वरत्नाश्रयो नृपः ॥
समस्तधर्मसूः सर्वधर्मद्रष्टाखिलार्तिहा । अतीन्द्रो ज्ञानविज्ञानपारद्रष्टा क्षमाम्बुधिः ॥
सर्वप्रकृष्टः शिष्टेष्टो (६००) हर्षशोकाद्यनाकुलः । पित्राज्ञात्यक्तसाम्राज्यः सपत्नोदयनिर्भयः ॥
गुहादेशार्पितैश्वर्यः शिवस्पर्धाजटाधरः । चित्रकूटाप्तरत्नाद्रिर्जगदीशो वनेचरः ॥
यथेष्टामोघसर्वास्त्रो देवेन्द्रतनयाक्षिहा । ब्रह्मेन्द्रादिनतैषीको मारीचघ्नो विराधहा ॥
ब्रह्मशापहताशेषदण्डकारण्यपावनः । चतुर्दशसहस्रोग्ररक्षोघ्नैकशरैकधृक् ॥
खरारिस्त्रिशिरोहन्ता दूषणघ्नो जनार्दनः । जटायुषोऽग्निगतिदोऽगस्त्यसर्वस्वपात्रराट् ॥
लीलाधनुष्कोट्यपास्तदुन्दुभ्यस्थिमहाचलः । सप्ततालव्यथाकृष्टध्वस्तपातालदानवः ॥
सुग्रीवराज्यदोऽहीनमनसैवाभयप्रदः । हनुमद्रुद्रमुख्येशः समस्तकपिदेहभृत् ॥
सनागदैत्यबाणैकव्याकुलीकृतसागरः । सम्लेच्छकोटिबाणैकशुष्कनिर्दग्धसागरः ॥
समुद्राद्भुतपूर्वैकबद्धसेतुर्यशोनिधिः । असाध्यसाधको लङ्कासमूलोत्सादद‍क्षिणः ॥
वरदृप्तजगच्छल्यपौलस्त्यकुलकृन्तनः । रावणिघ्नः प्रहस्तच्छित्कुम्भकर्णभिदुग्रहा ॥
रावणैकशिरश्छेत्ता निःशङ्केन्द्रैकराज्यदः । स्वर्गास्वर्गत्वविच्छेदी देवेन्द्रारातिनिर्हरः ॥
रक्षोदेवत्वहृद्धर्माधर्मत्वघ्नः पुरुष्टुतः । नतिमात्रदशास्यारिर्दत्तराज्यविभीषणः ॥
सुधावृष्टिमृताशेषस्वसैन्योज्जीवनैककृत् । देवब्राह्मणनामैकधाता सर्वामरार्चितः ॥
ब्रह्मसूर्येन्द्ररुद्रादिवन्द्यार्पितशताप्रियः । अयोध्याखिलराजाग्र्यः सर्वभूतमनोहरः ॥
स्वाम्यतुल्यकृपादण्डो हीनोत्कृष्टैकसत्प्रियः । श्वपक्ष्यादिन्यायदर्शी हीनार्थाधिकसाधकः ॥
व्याधव्याजानुचितकृत्तारकोऽखिलतुल्यकृत् । पार्वत्याधिक्यमुक्तात्मा प्रियात्यक्तः स्मरारिजित् ॥
साक्षात्कुशलवच्छद्मद्रावितो ह्यपराजितः । कोसलेन्द्रो वीरबाहुः सत्यार्थत्यक्तसोदरः ॥
शरसंधाननिर्धूतधरणीमण्डलो जयः । ब्रह्मादिकामसांनिध्यसनाथीकृतदैवतः ॥
ब्रह्मलोकाप्तचाण्डालशेषप्राणिसार्थकः । स्वर्नीतगर्दभश्वादिश्चिरायोध्यावनैककृत् ॥
रामो द्वितीयसौमित्रिलक्ष्मणः प्रहतेन्द्रजित् । विष्णुभक्तः सरामाङ्घ्रिपादुकाराज्यनिर्वृतिः ॥
भरतोऽसह्यगन्धर्वकोटिघ्नो लवणान्तकः । शत्रुघ्नो वैद्यराडायुर्वेदगर्भौषधीपतिः ॥
नित्यामृतकरो धन्वन्तरिर्यज्ञो जगद्धरः । सूर्यारिघ्नः सुराजीवो दक्षिणेशो द्विजप्रियः ॥
छिन्नमूर्धोपदेशार्कः शेषाङ्गस्थापितामरः । विश्वार्थाशेषकृद्राहुशिरश्छे(त्ता)-क्षताकृतिः ॥
वाजपेयादिनामाऽग्निर्वेदधर्मपरायणः (७००) । श्वेतद्वीपपतिः सांख्यप्रणेता सर्वसिद्धिराट् ॥
विश्वप्रकाशितज्ञानयोगमोहतमिस्रहा । [२४]देवहूत्यात्मजः सिद्धः कपिलः कर्दमात्मजः ॥
योगस्वामी ध्यानभङ्गसगरात्मजभस्मकृत् । धर्मो वृषेन्द्रः सुरभीपतिः शुद्धात्मभावितः ॥
शम्भुस्त्रिपुरदाहैकस्थैर्यविश्वरथोद्वहः । भक्तशम्भुजितो दैत्यामृतवापीसमस्तपः ॥
महाप्रलयविश्वैकद्वितीयोऽखिलनागराट् । [२५]शेषदेवः सहस्राक्षः सहस्रास्यशिरोभुजः ॥
फणामणिकणाकारयोजिताच्छाम्बुदक्षितिः । कालाग्निरुद्रजनको मुशलास्त्रो हलायुधः ॥
नीलाम्बरो वारुणीशो मनोवाक्कायदोषहा । असंतोषदृष्टिमात्रपातितैकदशाननः ॥
बिलसंयमनो घोरो रौहिणेयः प्रलम्बहा । मुष्टिकघ्नो द्विविदहा कालिन्दीकर्षणो बलः ॥
रेवतीरमणः पूर्वभक्तिखेदाच्युताग्रजः । [२६]देवकीवसुदेवाह्वकश्यपादितिनन्दनः ॥

२४—यहाँसे कपिलावतारका कीर्तन प्रारम्भ होता है। २५—यहाँसे बलदेवजीका सकीर्तन प्रारम्भ होता है। २६—यहाँसे भगवान् श्रीकृष्णके अवतारका कीर्तन प्रारम्भ होता है।

वार्ष्णेयः सात्वतां श्रेष्ठः शौरिर्यदुकुलेश्वरः । नराकृतिः परं ब्रह्म सव्यसाचि-वरप्रदः ॥
ब्रह्मादिकाम्यलालित्यजगदाश्चर्यशैशवः । पूतनाघ्नः शकटभिद् यमलार्जुनभञ्जकः ॥
वातासुरारिः केशिघ्नो धेनुकारिर्गवीश्वरः । दामोदरो गोपदेवो यशोदानन्ददायकः ॥
कालीयमर्दनः सर्वगोपगोपीजनप्रियः । लीलागोवर्धनधरो गोविन्दो गोकुलोत्सवः ॥
अरिष्टमथनः कामोन्मत्तगोपीविमुक्तिदः । सद्यःकुवलयापीडघाती चाणूरमर्दनः ॥
कंसारिरुग्रसेनादिराज्यव्यापारितामरः । सुधर्माङ्कितभूर्लोको जरासंधबलान्तकः ॥
त्यक्तभग्नजरासंधो भीमसेनयशःप्रदः । सांदीपनिमृतापत्यदाता कालान्तकादिजित् ॥
समस्तनारकत्राता सर्वभूपतिकोटिजित् । रुक्मिणीरमणो रुक्मिशासनो नरकान्तकः ॥
समस्तसुन्दरीकान्तो मुरारिर्गरुडध्वजः । एकाकिजितरुद्रार्कमरुदाद्यखिलेश्वरः ॥
देवेन्द्रदर्पहा कल्पद्रुमालंकृतभूतलः । बाणबाहुसहस्रच्छिन्नन्द्यादिगणकोटिजित् ॥
लीलाजितमहादेवो महादेवैकपूजितः । इन्द्रार्थार्जुननिर्भङ्गजयदः पाण्डवैकधृक् ॥
काशिराजशिरश्छेत्ता रुद्रशक्त्येकमर्दनः । विश्वेश्वरप्रसादाढ्यः काशिराजसुतार्दनः ॥
शम्भुप्रतिज्ञाविध्वंसी काशीनिर्दग्धनायकः (८००) । काशीशगणकोटिघ्नो लोकशिक्षाद्विजार्चकः ॥
शिवतीव्रतपोवश्यः पुराशिववरप्रदः । शंकरैकप्रतिष्ठाधृक् स्वांशशंकरपूजकः ॥
शिवकन्याव्रतपतिः कृष्णा (ष्ण) रूपशिवारिहा । महालक्ष्मीवपुर्गौरीत्राता वैदलवृत्रहा ॥
स्वधाममुचुकुन्दैकनिष्कालयवनेष्टकृत् । यमुनापतिरानीतपरिलीनद्विजात्मजः ॥
श्रीदामरङ्कभक्तार्थभूम्यानीतेन्द्रवैभवः । दुर्वृत्तशिशुपालैकमुक्तिदो द्वारकेश्वरः ॥
आचाण्डालादिकप्राप्यद्वारकानिधिकोटिकृत् । अक्रूरोद्धवमुख्यैकभक्तः स्वच्छन्दमुक्तिदः ॥
सबालस्त्रीजलक्रीडामृतवापीकृतार्णवः । ब्रह्मास्त्रदग्धगर्भस्थपरीक्षिज्जीवनैककृत् ॥
परिलीनद्विजसुतानेतार्जुनमदापहः । गूढमुद्राकृतिग्रस्तभीष्माद्यखिलकौरवः ॥
यथार्थखण्डिताशेषदिव्यास्त्रपार्थमोहकृत् । गर्भशापच्छलध्वस्तयादवोर्वीभरापहः ॥
जराव्याधारिगतिदः स्मृतमात्राखिलेष्टदः । कामदेवो रतिपतिर्मन्मथः शम्बरान्तकः ॥
अनङ्गो जितगौरीशो रतिकान्तः सदेप्सितः । पुष्पेषुर्विश्वविजयी स्मरः कामेश्वरीप्रियः ॥
उषापतिर्विश्वकेतुर्विश्वतृप्तोऽधिपूरुषः । चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्युगविधायकः ॥
चतुर्वेदैकविश्वात्मा सर्वोत्कृष्टांशकोटिसूः । आश्रमात्मा[२७] पुराणर्षिर्व्यासः शाखासहस्रकृत् ॥
महाभारतनिर्माता कवीन्द्रो बादरायणः । बुद्धो[२८] ध्यानजिताशेषदेवदेवीजगत्प्रियः ॥
निरायुधो जगज्जैत्रः श्रीधनो दुष्टमोहनः । दैत्यवेदबहिष्कर्ता वेदार्थश्रुतिगोपकः ॥
शौद्धोदनिर्दृष्टदिष्टः सुखदः सदसस्पतिः । यथायोग्याखिलकृपः सर्वशून्योऽखिलेष्टदः ॥
चतुष्कोटिपृथक्तत्त्वप्रज्ञापारमितेश्वरः । पाखण्डवेदमार्गेशः पाखण्डश्रुतिगोपकः ॥
कल्किर्[२९]विष्णुयशःपुत्रः कलिकालविलोपकः । समस्तम्लेच्छदुष्टघ्नः सर्वशिष्टद्विजातिकृत् ॥
सत्यप्रवर्तको देवद्विजदीर्घक्षुधापहः । अश्ववारादिरेवन्तः पृथ्वीदुर्गतिनाशनः ॥
सद्यःक्ष्मानन्तलक्ष्मीकृन्नष्टनिःशेषधर्मवित् । अनन्तस्वर्णयागैकहेमपूर्णाखिलद्विजः ॥
असाध्यैकजगच्छास्ता विश्ववन्द्यो जयध्वजः । आत्मतत्त्वाधिपः कर्तृश्रेष्ठो विधिरुमापतिः ॥
भर्तृश्रेष्ठः (९००) प्रजेशाग्र्यो मरीचिर्जनकाग्रणीः । कश्यपो देवराडिन्द्रः[३०] प्रह्लादो दैत्यराट् शशी ॥

२७ यहाँसे व्यासावतारका कीर्तन है। २८ यहाँसे बुद्धावतारका कीर्तन है। २९ यहाँसे कल्कि-अवतारका वर्णन है। ३० यहाँसे प्रह्लादादि भक्त एवं विष्णु-परिकरोंका संकीर्तन परिशिष्टरूपमें कीर्तित है।

नक्षत्रेशो रविस्तेजः श्रेष्ठः शुक्रः कवीश्वरः। महर्षिराड् भृगुर्विष्णुरादित्येशो बलिस्वराट् ॥
वायुर्वह्निः शुचिश्रेष्ठः शंकरो रुद्रराड् गुरुः। विद्वत्तमश्चित्ररथो गन्धर्वाग्र्योऽक्षरोत्तमः ॥
वर्णादिरग्र्यस्त्रीगौरी शक्त्यग्र्या श्रीश्च नारदः। देवर्षिराट्पाण्डवाग्र्योऽर्जुनो वादः प्रवादराट् ॥
पावनः पावनेशानो वरुणो यादसाम्पतिः। गङ्गा तीर्थोत्तमो द्यूतांछलकाग्र्यं वरौषधम् ॥
अन्नं सुदर्शनोऽस्त्राग्र्यं वज्रं प्रहरणोत्तमम्। उच्चैःश्रवा वाजिराज ऐरावत इभेश्वरः ॥
अरुन्धत्येकपत्नीशो ह्यश्वत्थोऽशेषवृक्षराट्। अध्यात्मविद्या विद्याग्र्यः प्रणवश्छन्दसां वरः ॥
मेरुर्गिरिपतिर्मार्गो मासाग्र्यः कालसत्तमः। दिनाद्यात्मा पूर्वसिद्धः कपिलः सामवेदराट् ॥
तार्क्ष्यः खगेन्द्र ऋत्वग्र्यो वसन्तः कल्पपादपः। दातृश्रेष्ठः कामधेनुरार्तिघ्नाग्र्यः सुहृत्तमः ॥
चिन्तामणिर्गुरुश्रेष्ठो माता हिततमः पिता। सिंहो मृगेन्द्रो नागेन्द्रो वासुकिर्नृवरो नृपः ॥
वर्णेशो ब्राह्मणश्चेतःकरणाग्र्यं (१०००) नमो नमः। इत्येतद्वासुदेवस्य विष्णोर्नामसहस्रकम् ॥
विष्णुलोकस्य सोपानं सर्वदुःखविनाशनम्। सर्वेषां प्राणिनामाशु सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥

गणेशशतनामस्तोत्रम्

ॐ गणेश्वरो गणक्रीडो महागणपतिस्तथा। विश्वकर्ता विश्वमुखो दुर्जयो धूर्जयो जयः ॥
सुरूपः सर्वनेत्राधिवासो वीरासनाश्रयः। योगाधिपस्तारकस्थः पुरुषो गजकर्णकः ॥
चित्राङ्गः श्यामदशनो भालचन्द्रश्चतुर्भुजः। शम्भुतेजा यज्ञकायः सर्वात्मा सामबृंहितः ॥
कुलाचलांसो व्योमनाभिः कल्पद्रुमवनालयः। निम्ननाभिः स्थूलकुक्षिः पीनवक्षा बृहद्भुजः ॥
पीनस्कन्धः कम्बुकण्ठो लम्बोष्ठो लम्बनासिकः। सर्वावयवसम्पूर्णः सर्वलक्षणलक्षितः ॥
इक्षुचापधरः शूली कान्तिकन्दलिताश्रयः। अक्षमालाधरो ज्ञानमुद्रावान् विजयावहः ॥
कामिनीकामनाकाममालिनीकेलिलालितः। अमोघसिद्धिराधार आधाराधेयवर्जितः ॥
इन्दीवरदलश्याम इन्दुमण्डलनिर्मलः। कर्मसाक्षी कर्मकर्ता कर्माकर्मफलप्रदः ॥
कमण्डलुधरः कल्पः कपर्दी कटिसूत्रभृत्। कारुण्यदेहः कपिलो गुह्यागमनिरूपितः ॥
गुहाशयो गुहाब्धिस्थो घटकुम्भो घटोदरः। पूर्णानन्दः परानन्दो धनदो धरणीधरः ॥
बृहत्तमो ब्रह्मपरो ब्रह्मण्यो ब्रह्मवित्प्रियः। भव्यो भूतालयो भोगदाता चैव महामनाः ॥
वरेण्यो वामदेवश्च वन्द्यो वज्रनिवारणः। विश्वकर्ता विश्वचक्षुर्हवनं हव्यकव्यभुक् ॥
स्वतन्त्रः सत्यसंकल्पस्तथा सौभाग्यवर्धनः। कीर्तिदः शोकहारी च त्रिवर्गफलदायकः ॥
चतुर्बाहुश्चतुर्दन्तश्चतुर्थीतिथिसम्भवः। सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥
कामरूपः कामगतिर्द्विरदो द्वीपरक्षकः। क्षेत्राधिपः क्षमाभर्ता लयस्थो लड्डुकप्रियः ॥
प्रतिवादिमुखस्तम्भो दुष्टचित्तप्रसादनः। भगवान् भक्तिसुलभो याज्ञिको याजकप्रियः ॥
इत्येवं देवदेवस्य गणराजस्य धीमतः। शतमष्टोत्तरं नाम्नां सारभूतं प्रकीर्तितम् ॥*
सहस्रनाम्नामाकृष्य मया प्रोक्तं मनोहरम्। ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय स्मृत्वा देवं गणेश्वरम् ॥
पठेत्स्तोत्रमिदं भक्त्या गणराजः प्रसीदति ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीगणेशपुराणे उपासनाखण्डे गणपतिरष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं समाप्तम् ॥

---

* यह शतनाम गणेश-सहस्रनामसे ही सारसार रूपमें संगृहीत है।

सूर्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

धौम्य उवाच—

सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः। गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम्। सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च॥
इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो यमः॥
वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसां पतिः। धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वामराश्रयः। कला* काष्ठा मुहूर्तश्च क्षपा यामस्तथा क्षणः॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः। पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः॥
कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः। वरुणः सागरोऽशश्च जीमूतो जीवनोऽरिहा॥
भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः। स्रष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः॥
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः। जयो विशालो वरदः सर्वभूतनिषेवितः॥
मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारणः। धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः॥
द्वादशात्मारविन्दाक्षः पिता माता पितामहः। प्रजाद्वारं स्वर्गद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्॥
देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः। चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वितः॥
एतद् वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः। नामाष्टशतकं चेदं प्रोक्तमेतत् स्वयम्भुवा॥

सुरगणपितृयक्षसेवितं ह्यसुरनिशाचरसिद्धवन्दितम्।
वरकनकहुताशनप्रभं प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम्॥
सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत् स पुत्रदारान् धनरत्नसंचयान्।
लभेत जातिस्मरतान्तरः सदा धृतिं च मेधां च स विन्दते पुमान्॥
इमं स्तवं देववरस्य यो नरः प्रकीर्तयेच्छुद्धमनाः समाहितः।
विमुच्यते शोकदवाग्निसागराल्लभेत कामान् मनसा यथेप्सितान्॥

॥ इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि धौम्ययुधिष्ठिरसंवादे श्रीसूर्यस्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्† ॥

विष्णुशतनामस्तोत्रम्

अष्टोत्तरशतं नाम्नां विष्णोरतुलतेजसः। यस्य श्रवणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्॥
विष्णुर्जिष्णुर्वषट्कारो देवदेवो वृषाकपिः। दामोदरो दीनबन्धुरादिदेवोऽदितेः सुतः॥
पुण्डरीकः परानन्दः परमात्मा परात्परः। परशुधारी विश्वात्मा कृष्णः कलिमलापहः॥
कौस्तुभोद्भासितोरस्को नरो नारायणो हरिः। हरो हरप्रियः स्वामी वैकुण्ठो विश्वतोमुखः॥
हृषीकेशोऽप्रमेयात्मा वराहो धरणीधरः। वामनो वेदवक्ता च वासुदेवः सनातनः॥
रामो विरामो विरजो रावणारी रमापतिः। वैकुण्ठवासी वसुमान् धनदो धरणीधरः॥
धर्मेशो धरणीनाथो ध्येयो धर्मभृतां वरः। सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥
सर्वगः सर्ववित् सर्वः शरण्यः साधुवल्लभः। कौसल्यानन्दनः श्रीमान् रक्षःकुलविनाशकः॥
जगत्कर्ता जगद्भर्ता जगज्जेता जनार्तिहा। जानकीवल्लभो देवो जयरूपो जलेश्वरः॥
क्षीराब्धिवासी क्षीराब्धितनयावल्लभस्तथा। शेषशायी पन्नगारिवाहनो विष्टरश्रवाः॥

---

* यह एक नाम है।

† यह स्तोत्र हरिवंश, ३। नरसिंहपुराण, २०। १-१४, ब्रह्मपुराण ३३। ३३-४५, स्कन्दपुराण, काशी० ४४। १-१२ कुमारिका० ४३। १८-३०, अवन्तीखण्ड ४४। १—१६, पद्मपुराण भूमिखण्ड पृ० १०१ आदि बीसों स्थलोंपर प्रायः इसी रूपमें प्राप्त होता है। इसके कल्याण वर्ष ४५, नर० पु० पृ० ६१-६३ पर विस्तृत व्याख्या है।

माधवो मधुरानाथो मोहदो मोहनाशनः । दैत्यारिः पुण्डरीकाक्षो ह्यच्युतो मधुसूदनः ॥
सोमसूर्याग्निनयनो नृसिंहो भक्तवत्सलः । नित्यो निरामयः शुद्धो नरदेवो जगत्प्रभुः ॥
हयग्रीवो जितरिपुरुपेन्द्रो रुक्मिणीपतिः । सर्वदेवमयः श्रीशः सर्वाधारः सनातनः ॥
सौम्यः सौम्यप्रदः स्रष्टा विष्वक्सेनो जनार्दनः । यशोदातनयो योगी योगशास्त्रपरायणः ॥
रुद्रात्मको रुद्रमूर्ती राघवो मधुसूदनः । इति ते कथितं दिव्यं नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥
सर्वपापहरं पुण्यं विष्णोरमिततेजसः । दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यनाशनं सुखवर्धनम् ॥
सर्वसम्पत्करं सौम्यं महापातकनाशनम् ।
प्रातरुत्थाय विप्रेन्द्र पठेदेकाग्रमानसः । तस्य नश्यन्ति विपदां राशयः सिद्धिमाप्नुयात् ॥

॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे विष्णोरष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

शिवशतनामस्तोत्रम्*

शिवो महेश्वरः शम्भुः पिनाकी शशिशेखरः । वामदेवो विरूपाक्षः कपर्दी नीललोहितः ॥
शंकरः शूलपाणिश्च खट्वाङ्गी विष्णुवल्लभः । शिपिविष्टोऽम्बिकानाथः श्रीकण्ठो भक्तवत्सलः ॥
भवः शर्वस्त्रिलोकेशः शितिकण्ठः शिवाप्रियः । उग्रः कपालिः कामारिरन्धकासुरसूदनः ॥
गङ्गाधरो ललाटाक्षः कालकालः कृपानिधिः । भीमः परशुहस्तश्च मृगपाणिर्जटाधरः ॥
कैलासवासी कवची कठोरस्त्रिपुरान्तकः । वृषाङ्को वृषभारूढो भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥
सामप्रियः स्वरमयस्त्रयीमूर्तिरनीश्वरः । सर्वज्ञः परमात्मा च सोमसूर्याग्निलोचनः ॥
हविर्यज्ञमयः सोमः पञ्चवक्त्रः सदाशिवः । विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथः प्रजापतिः ॥
हिरण्यरेता दुर्धर्षो गिरीशो गिरिशोऽनघः । भुजङ्गभूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रियः ॥
कृत्तिवासा पुरारातिर्भगवान् प्रमथाधिपः । मृत्युंजयः सूक्ष्मतनुर्जगद्व्यापी जगद्गुरुः ॥
व्योमकेशो महासेनजनकश्चारुविक्रमः । रुद्रो भूतपतिः स्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बरः ॥
अष्टमूर्तिरनेकात्मा सात्त्विकः शुद्धविग्रहः । शाश्वतः खण्डपरशुरजपाशविमोचकः ॥
मृडः पशुपतिर्देवो महादेवोऽव्ययः प्रभुः । पूषदन्तभिदव्यग्रो दक्षाध्वरहरो हरः ॥
भगनेत्रभिदव्यक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात् । अपवर्गप्रदोऽनन्तस्तारकः परमेश्वरः ॥
इमानि दिव्यनामानि जप्यन्ते सर्वदा मया । नामकल्पलतेयं मे सर्वाभीष्टप्रदायिनी ॥
नामान्येतानि सुभगे शिवदानि न संशयः । वेदसर्वस्वभूतानि नामान्येतानि वस्तुतः ॥
एतानि यानि नामानि तानि सर्वार्थदान्यतः । जप्यन्ते सादरं नित्यं मया नियमपूर्वकम् ॥
वेदेषु शिवनामानि श्रेष्ठान्यघहराणि च । सन्त्यनन्तानि सुभगे वेदेषु विविधेष्वपि ॥
तेभ्यो नामानि संगृह्य कुमाराय महेश्वरः । अष्टोत्तरसहस्रं तु नाम्नामुपदिशत् पुरा ॥

॥ इति शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र सम्पूर्णम् ॥

---

* 'जपहु जाइ संकर सतनामा' इस मानसवचनके लिये बार-बार जिज्ञासा भरे प्रश्न आते हैं कि यह शंकर-शतनाम कौन है ? यहाँ वही निर्दिष्ट श्रेष्ठ शतनाम दिया जा रहा है । इन नामोंके भाव बड़े हृदयार्पक एवं कथामृतसारगर्भित हैं । आशा है, प्रकाशित होनेपर इस स्तोत्रका बहुत प्रचार-प्रसार होगा ।

श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने। यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता सदा भवेत् ॥
सती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी। आर्या दुर्गा जया भद्रा त्रिनेत्रा शूलधारिणी ॥
पिनाकधारिणी चित्रा चन्द्रघण्टा महातपा। मनो बुद्धिरहंकारा चित्तरूपाचिता चितिः ॥
सर्वमन्त्रमयी सत्ता सत्यानन्दस्वरूपिणी। अनन्ता भाविनी भव्या भवाभव्या सदागतिः ॥
शम्भुपत्नी देवमाता चिन्तारत्नप्रिया सदा। सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी ॥
अपर्णा चैव पर्णा च पाटला पटलावती। पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीररञ्जिनी ॥
अमेया विक्रमा क्रूरा सुन्दरी कुलसुन्दरी। वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता ॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा। चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः ॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया नित्या च वाक्प्रदा। बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना ॥
निशुम्भशुम्भहननी महिषासुरमर्दिनी। मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी ॥
सर्वासुरविनाशा च सर्वदा नवघातिनी। सर्वशास्त्रमयी विद्या सर्वास्त्रधारिणी तथा ॥
अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रविधारिणी। कुमारी चैव कन्या च कौमारी युवती यतिः ॥
अप्रौढा चैव प्रौढा च वृद्धमाता बलप्रदा। महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला ॥
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी। नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी ॥
शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी। कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी ॥
य इदं च पठेत् स्तोत्रं दुर्गानामशताष्टकम्। नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्वति ॥
धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च। चतुर्वर्गं तथा चान्ते लभेन्मुक्तिं च शाश्वतीम् ॥
कुमारीं पूजयित्वा च ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम्। पूजयेत् परया भक्त्या पठेन्नामशताष्टकम् ॥
तस्य सिद्धिर्भवेद्देवि सर्वैः सुरवरैरपि। राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात् ॥
गोरोचनालक्तककुङ्कुमेन सिन्दूरकर्पूरमधुत्रयेण।
विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो भवेत् सदा धारयते पुरारिः ॥
भौमावास्यानिशाभागे चन्द्रे शतभिषां गते। विलिख्य पठते स्तोत्रं स भवेत्सम्पदाम्पदम् ॥

॥ इति श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् ॥

कमलाया अष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

श्रीशिव उवाच

शतमष्टोत्तरं नाम्नां कमलाया वरानने। प्रवक्ष्याम्यतिगुह्यं हि न कदापि प्रकाशयेत् ॥
महामाया महालक्ष्मीर्महावाणी महेश्वरी। महादेवी महारात्रिर्महिषासुरमर्दिनी ॥
कालरात्रिः कुहूः पूर्णानन्दाद्या भद्रिकानिशा। जया रिक्ता महाशक्तिर्देवमाता कृशोदरी ॥
शचीन्द्राणी शक्रनुता शंकरप्रियवल्लभा। महावराहजननी मदनोन्मथिनी मही ॥
वैकुण्ठनाथरमणी विष्णुवक्षःस्थलस्थिता। विश्वेश्वरी विश्वमाता वरदाभयदा शिवा ॥
शूलिनी चक्रिणी मा च पाशिनी शङ्खधारिणी। गदिनी मुण्डमाला च कमला करुणालया ॥
पद्माक्षधारिणी ह्यम्बा महाविष्णुप्रियंकरी। गोलोकनाथरमणी गोलोकेश्वरपूजिता ॥
गया गङ्गा च यमुना गोमती गरुडासना। गण्डकी सरयू तापी रेवा चैव पयस्विनी ॥
नर्मदा चैव कावेरी केदारस्थलवासिनी। किशोरी केशवनुता महेन्द्रपरिवन्दिता ॥

ब्रह्मादिदेवनिर्माणकारिणी वेदपूजिता । कोटिब्रह्माण्डमध्यस्था कोटिब्रह्माण्डकारिणी ॥
श्रुतिरूपा श्रुतिकरी श्रुतिस्मृतिपरायणा । इन्दिरा सिन्धुतनया मातङ्गी लोकमातृका ॥
त्रिलोकजननी तन्त्री तन्त्रमन्त्रस्वरूपिणी । तरुणी च तमोहन्त्री मङ्गलामङ्गलायना ॥
मधुकैटभमथनी शुम्भासुरविनाशिनी । निशुम्भादिहरा माता हरिशङ्करपूजिता ॥
सर्वदेवमयी सर्वा शरणागतपालिनी । शरण्या शम्भुवनिता सिन्धुतीरनिवासिनी ॥
गन्धर्वगानरसिका गीता गोविन्दवल्लभा । त्रैलोक्यपालिनी तत्त्वरूपतारुण्यपूरिता ॥
चन्द्रावली चन्द्रमुखी चन्द्रिका चन्द्रपूजिता । चन्द्रा शशाङ्कभगिनी गीतवाद्यपरायणा ॥
सृष्टिरूपा सृष्टिकरी सृष्टिसंहारकारिणी । इति ते कथितं देवि रमानामशताष्टकम् ॥
त्रिसन्ध्यं प्रयतो भूत्वा पठेदेतत्समाहितः । यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयः ॥

इमं स्तवं यः पठतीह मर्त्यो वैकुण्ठपत्न्याः परमादरेण ।
धनाधिपाद्यैः परिवन्दितः स्यात् प्रयास्यति श्रीपदमन्तकाले ॥

॥ इति कमलाया अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र सम्पूर्णम् ॥

श्रीकृष्णशतनामस्तोत्रम्

श्रीकृष्णः कमलानाथो वासुदेवः सनातनः । वसुदेवात्मजः पुण्यो लीलामानुषविग्रहः ॥
श्रीवत्सकौस्तुभधरो यशोदावत्सलो हरिः । चतुर्भुजात्तचक्रासिगदाशङ्खाद्युदायुधः ॥
देवकीनन्दनः श्रीशो नन्दगोपप्रियात्मजः । यमुनावेगसंहारी बलभद्रप्रियानुजः ॥
पूतनाजीवितहरः शकटासुरभञ्जनः । नन्दव्रजजनानन्दी सच्चिदानन्दविग्रहः ॥
नवनीतविलिप्ताङ्गो नवनीतनटोऽनघः । नवनीतनवाहारो मुचुकुन्दप्रसादकः ॥
षोडशस्त्रीसहस्रेशस्त्रिभङ्गी मधुराकृतिः । शुकवागमृताब्धीन्दुर्गोविन्दो योगिनां पतिः ॥
वत्सवाटचरोऽनन्तो धेनुकासुरभञ्जनः । तृणीकृततृणावर्तो यमलार्जुनभञ्जनः ॥
उत्तालतालभेत्ता च तमालश्यामलाकृतिः । गोपगोपीश्वरो योगी कोटिसूर्यसमप्रभः ॥
इलापतिः परं ज्योतिर्यादवेन्द्रो यदूद्वहः । वनमाली पीतवासाः पारिजातापहारकः ॥
गोवर्धनाचलोद्धर्ता गोपालः सर्वपालकः । अजो निरञ्जनः कामजनकः कञ्जलोचनः ॥
मधुहा मथुरानाथो द्वारकानायको बली । वृन्दावनान्तसंचारी तुलसीदामभूषणः ॥
स्यमन्तकमणेर्हर्ता नरनारायणात्मकः । कुब्जाकृष्णाम्बरधरो मायी परमपूरुषः ॥
मुष्टिकासुरचाणूरमल्लयुद्धविशारदः । संसारवैरी कंसारिर्मुरारिर्नरकान्तकः ॥
अनादिब्रह्मचारी च कृष्णाव्यसनकर्षकः । शिशुपालशिरश्छेत्ता दुर्योधनकुलान्तकः ॥
विदुराक्रूरवरदो विश्वरूपप्रदर्शकः । सत्यवाक्सत्यसंकल्पः सत्यभामारतो जयी ॥
सुभद्रापूर्वजो विष्णुर्भीष्ममुक्तिप्रदायकः । जगद्गुरुर्जगन्नाथो वेणुनादविशारदः ॥
वृषभासुरविध्वंसी बाणासुरकरान्तकः । युधिष्ठिरप्रतिष्ठाता बर्हिबर्हावतंसकः ॥
पार्थसारथिरव्यक्तो गीतामृतमहोदधिः । कालीयफणिमाणिक्यरञ्जितश्रीपदाम्बुजः ॥
दामोदरो यज्ञभोक्ता दानवेन्द्रविनाशकः । नारायणः परंब्रह्म पन्नगाशनवाहनः ॥
जलक्रीडासमासक्तो गोपीवस्त्रापहारकः । पुण्यश्लोकस्तीर्थपादो वेदवेद्यो दयानिधिः ॥
सर्वतीर्थात्मकः सर्वग्रहरूपी परात्परः । एवं श्रीकृष्णदेवस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥
कृष्णनामामृतं नाम परमानन्दकारकम् । अत्युपद्रवदोषघ्नं परमायुष्यवर्धनम् ॥

॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

शिवप्रोक्त श्रीरामशतनामस्तोत्र

पञ्चचामर

राघवं करुणाकरं भवनाशनं दुरितापहम् । माधवं खगगामिनं जलरूपिणं परमेश्वरम् ॥
पालकं जनतारकं भवहारकं रिपुमारकम् । त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥
भूधवं वनमालिनं घनरूपिणं धरणीधरम् । श्रीहरिं त्रिगुणात्मकं तुलसीधवं मधुरस्वरम् ॥
श्रीकरं शरणप्रदं मधुमारकं व्रजपालकम् । त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥
विट्ठलं मथुरास्थितं रजकान्तकं गजमारकम् । सन्नुतं बकमारकं वृषघातकं तुरगार्दनम् ॥
नन्दजं वसुदेवजं बलियज्ञगं सुरपालकम् । त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥
केशवं कपिवेष्टितं कपिमारकं मृगमर्दिनम् । सुन्दरं द्विजपालकं दितिजार्दनं दनुजार्दनम् ॥
बालकं खरमर्दिनं ऋषिपूजितं मुनिचिन्तितम् । त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥
शंकरं जलशायिनं कुशबालकं रथवाहनम् । सरयूनतं प्रियपुष्पकं प्रियभूसुरं लवबालकम् ॥
श्रीधरं मधुसूदनं भरताग्रजं गरुडध्वजम् । त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥
गोप्रियं गुरुपुत्रदं वदतां वरं करुणानिधिम् । भक्तपं जनतोषदं सुरपूजितं श्रुतिभिः स्तुतम् ॥
भुक्तिदं जनमुक्तिदं जनरञ्जनं नृपनन्दनम् । त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥
चिद्घनं चिरजीविनं मणिमालिनं वरदोन्मुखम् । श्रीधरं धृतिदायकं बलवर्धनं गतिदायकम् ॥
शान्तिदं जनतारकं शरधारिणं गजगामिनम् । त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥
शार्ङ्गिणं कमलाननं कमलादृशं पदपङ्कजम् । श्यामलं रविभासुरं शशिसौम्यदं करुणार्णवम् ॥
सत्पतिं नृपपालकं नृपवन्दितं नृपतिप्रियम् । त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥
निर्गुणं सगुणात्मकं नृपमण्डनं मतिवर्धनम् । अच्युतं पुरुषोत्तमं परमेष्ठिनं स्मितभाषिणम् ॥
ईश्वरं हनुमन्नुतं कमलाधिपं जनसाक्षिणम् । त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम् ॥
ईश्वरोदितमेतदुत्तममादराच्छतनामकम् । यः पठेद् भुवि मानवस्तव भक्तिमांस्तपनोदये ॥
त्वत्पदं निजबन्धुदारसुतैर्युतश्चिरमेत्य नः । सोऽस्तु ते पदसेवने बहुतत्परो मम वाक्यतः ॥

(आनन्दरामायण, पूर्णकाण्ड ६ । ३२–५१)

श्रीशिवजी कहते हैं—जो रघुवंशमें उत्पन्न, करुणाकी खान, आवागमनके विनाशक, पापापहारी, लक्ष्मीके पति, पक्षिराज गरुडपर सवार होनेवाले, जलरूपमें स्थित, परमेश्वर, (जगत्के) पालक, भक्तजनोंका उद्धार करनेवाले, भव-बाधाके नाशक, शत्रुओंका संहार करनेवाले, नररूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ । जो पृथ्वीके पति, वनमालाधारी, नील मेघ-सदृश श्यामकाय, पृथ्वीको धारण करनेवाले, श्रीहरि, सत्त्व, रजस्, तमस्—इन तीनों गुणोंसे समन्वित, तुलसीके पति, मधुर स्वरसे सम्पन्न, शोभाका विस्तार करनेवाले, शरणदाता, मधुनामक दैत्यका वध करनेवाले, व्रजके रक्षक, नररूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ । जो विट्ठलरूपसे मथुरामें स्थित, रजकके संहारक, गजको मारनेवाले, सत्पुरुषोंद्वारा संस्तुत, बकासुर, वृषासुर और अश्वरूपी केशी नामक राक्षसका वध करनेवाले, नन्दकुमार, वसुदेवके पुत्र, बलिके यज्ञमें गमन करनेवाले, देवताओंके रक्षक, मानवरूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ । जो केशव, वानरोंद्वारा आवेष्टित, (बालीनामक) वानरका वध करनेवाले, मृगरूपी राक्षस मारीचके संहारक, शोभाशाली, ब्राह्मणोंके रक्षक, दैत्यों और दानवोंके वधकर्ता, बालरूपधारी, खर नामक राक्षसका वध करनेवाले, ऋषियोंद्वारा पूजित, मुनियोंद्वारा चिन्तित, नररूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ ।

जो कल्याणकारी तथा जलमें शयन करनेवाले हैं, कुश जिनके बालक (पुत्र) हैं, रथ जिनका वाहन हैं, जो सरयूद्वारा नमस्कृत, पुष्पक विमानके प्रेमी और ब्राह्मणोंको प्रिय हैं, लव जिनका बालक (पुत्र) हैं, जो (वक्षःस्थलपर) लक्ष्मीको धारण करनेवाले, मधु नामक राक्षसके संहारक और भरतके ज्येष्ठ भ्राता हैं, जिनकी ध्वजापर गरुड़का चिह्न वर्तमान रहता है, जो मानवरूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो गौओंके प्रेमी, यमलोकसे गुरुपुत्रको लाकर गुरुको प्रदान करनेवाले, वक्ताओंमें श्रेष्ठ, दयानिधान, भक्तोंके रक्षक, स्वजनोंके लिये संतोषदाता, देवताओंद्वारा पूजित, श्रुतियोंद्वारा संस्तुत, भोगदाता, स्वजनोंके लिये मुक्तिदायक, जनताको प्रसन्न करनेवाले, राजकुमार, मनुष्यरूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो चिद्घनस्वरूप, चिरजीवी, मणियोंकी माला धारण करनेवाले, वर प्रदान करनेके लिये उद्यत, सौन्दर्यशाली, धैर्य प्रदान करनेवाले, बलवर्धक, मोक्षदाता, शान्तिदायक, भक्तोंको तारनेवाले, बाणधारी, हाथीकी-सी चालसे चलनेवाले (अथवा हाथीकी सवारी करनेवाले), नररूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले हैं, जिनके चरण और मुख कमल-सरीखे हैं, जो लक्ष्मीकी ओर निहारते रहते हैं, जिनके शरीरका रंग श्याम है, जो सूर्यके समान देदीप्यमान, चन्द्रमा-सरीखे सुखदाता, दयासागर, श्रेष्ठ स्वामी, राजाओंके रक्षक, राजाओंद्वारा वन्दित, राजाओंके लिये प्रिय, मानवरूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो निर्गुण एवं सगुणस्वरूप, राजाओंमें भूषणरूप, बुद्धिवर्धक, अपनी मर्यादासे च्युत न होनेवाले, पुरुषोंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मस्वरूप, मुसकराते हुए बोलनेवाले, ऐश्वर्यशाली, हनुमान्‌द्वारा संस्तुत, लक्ष्मीके अधीश्वर, लोकसाक्षी, नररूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ।

जो मनुष्य भूतलपर सूर्योदयकालमें शिवजीद्वारा कथित इस उत्तम शतनाम नामक स्तोत्रका आदरपूर्वक पाठ करेगा, उसकी आपके चरणोंमें भक्ति हो जायगी तथा वह मेरे कथनानुसार अपने बन्धु, स्त्री और पुत्रोंके साथ मेरे लोकमें आकर चिरकालतक आपके चरणोंकी सेवामें दृढतापूर्वक तत्पर हो जायगा।

श्रीरामशतनामस्तोत्रम्

श्रीराघवं दशरथात्मजमप्रमेयं सीतापतिं रघुकुलान्वयरत्नदीपम्।
आजानुबाहुमरविन्ददलायताक्षं रामं निशाचरविनाशकरं नमामि॥

श्रीरामो रामभद्रश्च रामचन्द्रश्च शाश्वतः। राजीवलोचनः श्रीमान् राजेन्द्रो रघुपुंगवः॥
जानकीवल्लभो जैत्रो जितामित्रो जनार्दनः। विश्वामित्रप्रियो दान्तः शरणत्राणतत्परः॥
वालिप्रमथनो वाग्मी सत्यवाक्सत्यविक्रमः। सत्यव्रतो व्रतधरः सदा हनुमदाश्रितः॥
कौसलेयः खरध्वंसी विराधवधपण्डितः। विभीषणपरित्राता हरकोदण्डखण्डनः॥
सप्ततालप्रभेत्ता च दशग्रीवशिरोहरः। जामदग्न्यमहादर्पदलनस्ताटकान्तकः॥
वेदान्तसारो वेदात्मा भवरोगस्य भेषजम्। दूषणत्रिशिरोहन्ता त्रिमूर्तिस्त्रिगुणात्मकः॥
त्रिविक्रमस्त्रिलोकात्मा पुण्यचारित्रकीर्तनः। त्रिलोकरक्षको धन्वी दण्डकारण्यकर्तनः॥
अहल्याशापशमनः पितृभक्तो वरप्रदः। जितेन्द्रियो जितक्रोधो जितामित्रो जगद्गुरुः॥
ऋक्षवानरसंघाती चित्रकूटसमाश्रयः। जयन्तत्राणवरदः सुमित्रापुत्रसेवितः॥
सर्वदेवादिदेवश्च मृतवानरजीवनः। मायामारीचहन्ता च महादेवो महाभुजः॥
सर्वदेवस्तुतः सौम्यो ब्रह्मण्यो मुनिसंस्तुतः। महायोगी महोदारः सुग्रीवेप्सितराज्यदः॥
सर्वपुण्याधिककलः स्मृतसर्वाघनाशनः। अनादिरादिपुरुषः महापूरुष एव च॥

पुण्योदयो दयासारः पुराणपुरुषोत्तमः। स्मितवक्त्रो मिताभाषी पूर्वभाषी च राघवः॥
अनन्तगुणगम्भीरो धीरोदात्तगुणोत्तमः। मायामानुषचारित्रो महादेवादिपूजितः॥
सेतुकृज्जितवारीशः सर्वतीर्थमयो हरिः। श्यामाङ्गः सुन्दरः शूरः पीतवासा धनुर्धरः॥
सर्वयज्ञाधिपो यज्वा जरामरणवर्जितः। शिवलिङ्गप्रतिष्ठाता सर्वापगुणवर्जितः॥
परमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः। परं ज्योतिः परं धाम पराकाशः परात्परः॥
परेशः पारगः पारः सर्वदेवात्मकः परः॥

॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीरामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

श्रीसूर्यस्तवराज

स्तोत्र-कीर्तनका बड़ा महत्त्व है। इनमें स्तवराज तो स्तुतियोंका राजा ही ठहरा। श्रीराम, जानकी, सूर्य, विष्णु तथा भीष्मकृत कृष्ण आदिके स्तवराज अत्यन्त प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ हैं। इसी प्रकार सूर्याष्टोत्तरशतनाम भी अत्यन्त महत्त्वका होनेसे प्रायः सभी पुराणोंमें एक ही रूपमें प्राप्त है। यहाँ २१* नामवाला सूर्यका स्तवराज दिया जा रहा है। उसके सविधि पाठसे रोग-दुःखकी निवृत्ति होती है।

वसिष्ठ उवाच

स्तुवंस्तत्र ततः साम्बः कृशो धमनिसंततः। राजन् नामसहस्रेण सहस्रांशुं दिवाकरम्॥
खिद्यमानस्तु तं दृष्ट्वा सूर्यः कृष्णात्मजं तदा। स्वप्ने तु दर्शनं दत्त्वा पुनर्वचनमब्रवीत्॥

सूर्य उवाच

साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु जाम्बवतीसुत। अलं नामसहस्रेण पठस्वेमं स्तवं शुभम्॥
यानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च। तानि ते कीर्तयिष्यामि श्रुत्वा वत्सावधारय॥

विनियोगः

ॐ नमः श्रीसूर्यस्तवराजस्तोत्रस्य वसिष्ठ ऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीसूर्यो देवता सर्वपापक्षयपूर्वकसर्व-रोगोपशमनार्थे विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ रथस्थं चिन्तयेद् भानुं द्विभुजं रक्तवाससम्। दाडिमीपुष्पसंकाशं पद्मादिभिरलंकृतम्॥
ॐ विकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा। तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः। एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टः सदा मम॥
श्रीरारोग्यकरश्चैव धनवृद्धियशस्करः। स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥
य एतेन महाबाहो द्वे संध्येऽस्तमितोदये। स्तौति मां प्रणतो भूत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
कायिकं वाचिकं चैव मानसं चैव दुष्कृतम्। एकजप्येन तत्सर्वं प्रणश्यति ममाग्रतः॥
एष जप्यश्च होम्यश्च संध्योपासनमेव च। बलिमन्त्रोऽर्घ्यमन्त्रश्च धूपमन्त्रस्तथैव च॥
अन्नप्रदाने स्नाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे। पूजितोऽयं महामन्त्रः सर्वव्याधिहरः शुभः॥
एवमुक्त्वा तु भगवान् भास्करो जगदीश्वरः। आमन्त्र्य कृष्णतनयं तत्रैवान्तरधीयत॥
साम्बोऽपि स्तवराजेन स्तुत्वा सप्ताश्ववाहनम्। पूतात्मा नीरुजः श्रीमान् तस्माद् रोगाद् विमुक्तवान्॥

इति श्रीसाम्बपुराणे रोगापनयने श्रीसूर्यवक्त्रविनिर्गतः श्रीसूर्यस्तवराजः सम्पूर्णः।

* इस सूर्यस्तोत्रमें कुल २१ नाम हैं। इसके अतिरिक्त आदित्यहृदय स्तोत्रकी भी बड़ी महिमा है। ये दो हैं। एक वाल्मीकीय-रामायणका है, दूसरा भविष्योत्तर पुराणका। उन दोनोंपर कई भाष्य-व्याख्यानादि हैं। इसी प्रकार महाभारत ३। ३ में भी १०८ नामकी स्तुति है। इनमें कई नाम परस्पर मिलते भी हैं। यह ब्रह्म, पद्म, भविष्यादिमें भी है।

क्लेशहरनामामृतस्तोत्रम्

इसका श्रद्धापूर्वक पाठ करनेसे दोषों तथा क्लेशोंका नाश होकर पुण्य तथा भक्ति प्राप्त होती है तथा निष्काम पाठसे मनुष्य मुक्तिको प्राप्त कर सकता है।

श्रीकेशवं क्लेशहरं वरेण्यमानन्दरूपं परमार्थमेव। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
श्रीपद्मनाभं कमलेक्षणं च आधाररूपं जगतां महेशम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
पापापहं व्याधिविनाशरूपमानन्ददं दानवदैत्यनाशनम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
यज्ञाङ्गरूपं च रथाङ्गपाणिं पुण्याकरं सौख्यमनन्तरूपम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
विश्वाधिवासं विमलं विरामं रामाभिधानं रमणं मुरारिम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
आदित्यरूपं तमसां विनाशं चन्द्रप्रकाशं मलपङ्कजानाम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
सखड्गपाणिं मधुसूदनाख्यं तं श्रीनिवासं सगुणं सुरेशम्। नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
नामामृतं दोषहरं सुपुण्यमधीत्य यो माधवविष्णुभक्तः। प्रभातकाले नियतो महात्मा स याति मुक्तिं न हि कारणं च॥

(पद्म० भूमि० ७३। १०-१७)

'भगवान् केशव सबका क्लेश हरनेवाले, सर्वश्रेष्ठ, आनन्दस्वरूप और परमार्थ-तत्त्व हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग इच्छानुसार उसका पान करें। भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है। उनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं। वे जगत्के आधारभूत और महेश्वर हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग इच्छानुसार उसका पान करें। (भगवान् विष्णु) पापों और व्याधियोंका नाश करके आनन्द प्रदान करते हैं। (वे) दानवों और दैत्योंका संहार करनेवाले हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें। यज्ञ भगवान्के अङ्गस्वरूप हैं, उनके हाथमें सुदर्शनचक्र शोभा पाता है। वे पुण्यकी निधि और सुखरूप हैं। उनके स्वरूपका कहीं अन्त नहीं है। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें। सम्पूर्ण विश्व उनके हृदयमें निवास करता है। वे निर्मल, सबको आराम देनेवाले, 'राम' नामसे विख्यात, सबमें रमण करनेवाले तथा मुर दैत्यके शत्रु हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं लाकर सुलभ कर दिया है। संसारके लोग उसका इच्छानुसार पान करें। भगवान् केशव आदित्यस्वरूप, अन्धकारके नाशक, मलरूप कमलोंके लिये चाँदनीरूप हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उसे यहीं लाकर सुलभ कर दिया है, सब लोग उसका पान करें। जिनके हाथमें नन्दक नामक खड्ग है, जो मधुसूदन नामसे प्रसिद्ध, लक्ष्मीके निवासस्थान, सगुण और देवेश्वर हैं, उनका नामामृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। राजा ययातिने उसे यहीं लाकर सुलभ कर दिया है, सब लोग उसका पान करें।

यह नामामृत-स्तोत्र दोषहारी और उत्तम पुण्यका जनक है। लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुमें भक्ति रखनेवाला जो महात्मा पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल नियमपूर्वक इसका पाठ करता है, वह मुक्त हो जाता है, पुनः प्रकृतिके अधीन नहीं होता।

महामृत्युंजयस्तोत्रम्

रत्नसानुशरासनं रजताद्रिशृङ्गनिकेतनं शिञ्जिनीकृतपन्नगेश्वरमच्युतानलसायकम् ।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदशालयैरभिवन्दितं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
पञ्चपादपपुष्पगन्धिपदाम्बुजद्वयशोभितं भाललोचनजातपावकदग्धमन्मथविग्रहम् ।
भस्मदिग्धकलेवरं भवनाशिनं भवमव्ययं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
मत्तवारणमुख्यचर्मकृतोत्तरीयमनोहरं पङ्कजासनपद्मलोचनपूजिताङ्घ्रिसरोरुहम् ।
देवसिद्धतरङ्गिणीकरसिक्तपीतजटाधरं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
कुण्डलीकृतकुण्डलीश्वरकुण्डलं वृषवाहनं नारदादिमुनीश्वरस्तुतवैभवं भुवनेश्वरम् ।
अन्धकान्तकमाश्रितामरपादपं शमनान्तकं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
यक्षराजसखं भगाक्षिहरं भुजङ्गविभूषणं शैलराजसुतापरिष्कृतचारुवामकलेवरम् ।
क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणं दक्षयज्ञविनाशिनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम् ।
भुक्तिमुक्तिफलप्रदं निखिलाघसंघनिबर्हणं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
भक्तवत्सलमर्चतां निधिमक्षयं हरिदम्बरं सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनूपमम् ।
भूमिवारिनभोहुताशनसोमपालितस्वाकृतिं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
विश्वसृष्टिविधायिनं पुनरेव पालनतत्परं संहरन्तमथ प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम् ।
क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथसमावृतं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥
रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम् । नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
कालकण्ठं कलामूर्तिं कालाग्निं कालनाशनम् । नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निरुपद्रवम् । नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम् । नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
देवदेवं जगन्नाथं देवेशवृषभध्वजम् । नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
अनन्तमव्ययं शान्तमक्षमालाधरं हरम् । नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
आनन्दं परमं नित्यं कैवल्यपदकारणम् । नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥
स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम् । नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥

(पद्मपुराण, उत्तर० २३७ । ७५—९०

श्रीहठीजी

ये विक्रमी उन्नीसवीं शतीमें हुए हैं। विस्तृत चरित उपलब्ध नहीं है। श्रीहितहरिवंशजीके अनुयायी रहे हैं। श्रीराधानाममें इनकी निष्ठा अद्भुत थी। ये अपने सम्बन्धमें कुँवर कान्हसे माँग करते हैं—'हम नहीं चाहते देवतादि होना। मनुष्य बनाओ या पशु-पक्षी अथवा जड, किंतु बनाओ व्रजमें ही।'

गिरि कीजै गोधन, मयूर नव कुंजन कौ,
पशु कीजै महाराज नंद के बगर कौ।
नर कौन ? तौन, जौन राधे-राधे नाम रटै,
तरु कीजै वर कूल कालिंदी कगर कौ ॥
इतने पै जोई कछु कीजियै कुँवर कान्ह,
राखिये न आन फेर 'हठी' के झगर कौ
गोपी-पद-पंकज-पराग कीजै
तृन कीजै रावरेई गोकुल नगर
भवसिंधु पार करनेका ये एक ही बतलाते हैं—

राधा-राधा कहत हैं, जे नर
ते भव सिंधु उलंघि कैं, बसत
राधा-राधा जे कहैं, ते न
जासु कंधपर कर कमल धरे
अज-सिव-सिद्ध-सुरेस मुख जपत
बाधा जन की हरत है राधा-

संकीर्तनोंका विवरण

श्रीचैतन्यमहाप्रभु-पञ्चशती-समारोहपर एकादशोत्तर पञ्चशतदिवसीय अखण्ड संकीर्तन।

[अखण्ड महासंकीर्तन प्रारम्भ दिनाङ्क १० नवम्बर १९८४ ई०, महामन्त्र 'हरे कृष्ण—हरे राम', समापन आगामी दिनाङ्क ५ अप्रैल १९८६ ई०।] यह अखण्ड महासंकीर्तन संकीर्तनके परम आचार्य श्रीचैतन्य महाप्रभुके आविर्भावके पाँच सौवें वर्ष २५ मार्च १९८६ई० फाल्गुन पूर्णिमा (सं० २०४२)को पूर्ण होगा। इसी उपलक्ष्यमें ५११ दिनोंका विशेष 'संकीर्तन-समारोह चाकुलिया, सिंहभूम (बिहार)में किया गया है। यहाँ संकीर्तन-स्थलमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुका षड्भुज-विग्रह एवं श्रीजगन्नाथजी, श्रीबलदेवजी और श्रीसुभद्राजीके विग्रह भी स्थापित किये गये हैं। दैनिक पूजा-सेवाके अतिरिक्त यहाँ निम्न प्रकारके अन्य कार्यक्रम भी चल रहे हैं—(१) प्रतिदिन ४०० पुस्तकें, कापियाँ आदि जिनमें लगभग एक करोड़ बीस लाख श्रीभगवन्नाम लिखे रहते हैं, श्रीमहाप्रभुको अर्पित की जाती है। (२) श्रीमद्भागवत-महापुराणके सप्ताह-क्रमसे और श्रीरामचरितमानसके नवाह्न-क्रमसे पारायण चल रहे हैं। (३) श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणका इक्कीसदिवसीय पाठ-क्रम चल रहा है। साथ ही (४) श्रीविष्णुसहस्रनाम, हनुमानचालीसा तथा अन्य कई स्तोत्रोंके पाठ भी होते रहते हैं। इसके सिवा (५) श्रीचैतन्यचरितामृत, चैतन्य-भागवत तथा कतिपय अन्य पुराणों एवं धर्मग्रन्थोंके पारायण चलते हैं।

इस आयोजनका समापन-समारोह इक्कीस दिनोंतक चलेगा। समापन-कार्यक्रमके निम्नलिखित मुख्य आकर्षण होंगे—

श्रीमद्भागवत-प्रवचन, विशिष्ट महात्मा, संत एवं विद्वानोंद्वारा सत्सङ्ग तथा प्रवचन; एक सौ आठ विद्वान् ब्राह्मणोंद्वारा श्रीमद्भागवतका तथा श्रीरामचरितमानसका पारायण; श्रीचैतन्यलीला, श्रीकृष्णलीला आदिके लीला-कीर्तन (तुमुल ध्वनिसे सामूहिक कीर्तन), यज्ञीय हवनादि, शोभा एवं आकर्षणके लिये विद्युन्मयी झाँकियाँ तथा विभिन्न प्रदर्शनियोंका भव्य आयोजन भी आनुषङ्गिक रूपमें किया गया।

श्रद्धा-भक्ति और प्रेमसे चल रहे इस 'संकीर्तन-समारोह'के संचालक एवं आयोजक भक्त-शिरोमणि रामदूत श्रीहनुमन्तलालजी महाराज माने गये हैं।

शतवर्षीय अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन, वृन्दावनधाम

भगवान् श्रीराधाकृष्णकी असीम अनुकम्पासे स्थानीय बाबा श्रीकुंजदासजी महाराज पीपलवाली कुंज, केशीघाट, वृन्दावनमें शतवर्षीय अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन गत आठ वर्षोंसे सानन्द सोत्साह चल रहा है।

(प्रेषक—डॉ० वैराग गोस्वामी, वृन्दावन)

चतुर्दशवर्षीय अखण्ड संकीर्तन

महामन्त्र—**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।**
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

चन्दौली, जि० वाराणसीमें सन् १९६८से अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन अबाधगतिसे चल रहा है।

उक्त महामन्त्रके अखण्ड संकीर्तनमें प्रतिदिन मङ्गलमय भगवान्का पूजन-अर्चन, कथा, भजन एवं प्रसादवितरण होता है। सचमुच इस हरिनाम-संकीर्तनसे यहाँका वातावरण बड़ा ही सात्त्विक हो गया है।

इसके संयोजक हैं—श्रीराजेन्द्रसिंह, अवरअभियन्ता ग्राम—नारायणपुर, पो०-मैढी, वाराणसी।

अखण्ड संकीर्तन (संक्षिप्त परिचय)

श्रीजनकपुरधाममें अखण्ड कीर्तनके आयोजन

श्रीजानकी-मन्दिरमें सन् १९६२में अष्टग्रही योगके समयमें श्रीजनकपुरधामके गण्य-मान्य संत-महंत तथा सद्गृहस्थोंके सहयोगसे भगवन्नाम-संकीर्तन प्रारम्भ

हुआ, जिसमें श्रीजानकी-मन्दिरके महंत तथा अन्य उच्चकोटिके संत-महात्मा सम्मिलित हुए थे। तभीसे यह निरन्तर अखण्डरूपसे चल रहा है।

यहाँपर परमहंस परिव्राजक श्रीअयोध्याशरणजी मधुकर चुरोट कारखानाके निकट कुटी बनाकर निवास करते हैं। उन्होंने बड़े उत्साहसे चौदह वर्षपर्यन्त अखण्ड संकीर्तन चलाया। अभी भी वहाँ समय-समयपर अखण्ड कीर्तनका आयोजन होता रहता है।

यहींपर 'श्रीहनुमान्-दरबार' श्रीरामानन्द चौकके पास आठ वर्षोंसे बड़े धूमधामसे उत्साहपूर्वक संकीर्तन हो रहा है। एक हजार श्रीरामायण-पाठ कराकर प्रारम्भ किया गया संकीर्तन बड़े प्रेमसे चल रहा है। यह बारह वर्षका नियम लेकर महात्मा श्रीरामचन्द्रशरणजीके प्रेम तथा अदम्य उत्साहसे नियमपूर्वक चल रहा है।

प्रेषक—श्रीअवधकिशोरदासजी वैष्णव, प्रेमनिधि

द्वादशवर्षीय संकीर्तन तथा अखण्डज्योति

भगवान् श्रीसीतारामकी असीम अनुकम्पासे सतधारा, मन्त्रालय-बरमान, जिला-नरसिंहपुर (म०प्र०) में लोक-कल्याणार्थ दैहिक, दैविक, भौतिक——त्रयताप-शान्तिहेतु द्वादशवर्षीय 'जय सियाराम जय जय सियाराम' का अखण्ड रामधुन (संकीर्तन) विरक्त संत-महात्माओंद्वारा चल रहा है। अखण्डज्योति भी तिथि १४ जनवरी १९७५से जल रही है।

द्वादशवर्षीय अखण्ड संकीर्तन

महंत श्रीमौनीजी महाराज, श्रीसंकटमोचन पञ्चमुखी महावीरजीका मन्दिर, रामबाग, खाक चौक, बाई पास रोड, जम्मू-तवीमें सं० २०३३ की निर्जला एकादशीके पर्वसे भगवान् श्रीरामकी कृपासे द्वादशवर्षीय अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन भावुक भक्तोंद्वारा सुचारुरूपसे चल रहा है।

जम्मू-तवी क्षेत्रकी पर्वतीय सुषमा निराली है। इस प्रदेशकी 'तवी' नामक निर्मल जलवाली नदी अपनी विमल धारासे जल-समस्याका सम्यक् समाधान करती है। उत्तर दिशामें राजा-महाराजाओंके शाही राजमहल हैं। इसके पूर्व मध्यमें तवीके तटपर एक रमणीय आश्रम है, जहाँ भव्य और विशाल पञ्चमुखी महावीरजीका मन्दिर है। यहींपर १९५७ से मौनव्रत-धारी श्रीमौनीबाबा रहते हैं, जिन्होंने इस अखण्ड संकीर्तनका शुभारम्भ किया। वर्षमें चार बार श्रीरामायण तथा हनुमानचालीसा आदिके अखण्ड पाठ होते हैं और वर्षमें दो बार एकादश-दिवसीय यज्ञ होते हैं, जिसमें तीस विद्वान् ब्राह्मण भाग लेते हैं। इस सात्त्विक अनुष्ठानसे यहाँकी धर्मप्राण जनता लाभान्वित होती है।

द्वादशवर्षीय अखण्ड संकीर्तन

धर्मकी ध्वजा फहराता हुआ द्वादशवर्षीय अखण्ड कीर्तन बाँदा नगरके मुहल्ला खुटला, उर्फ रामनगरस्थित राजघाट रोडपर नागाबाबा-आश्रमस्थित पञ्चमुखी भगवान् शंकरजीके मन्दिरमें विगत २३ अगस्त १९८२ ई०से महंत श्रीरामानन्दजी परमहंस सरस्वती महाराज एवं श्रीमनमोहनदास प्रधानजीकी देख-रेखमें सफलतापूर्वक चल रहा है। कीर्तन-ध्वनि 'श्रीसीताराम' है।

द्वादशवर्षीय अखण्ड संकीर्तन

संकीर्तन-मन्त्र——

जय सीताराम सीताराम सीताराम जय सीताराम।
जय राधेश्याम राधेश्याम राधेश्याम जय राधेश्याम॥

गोलोकवासी महंत श्रीब्रजविहारीदासजी महाराजकी पावन तपोभूमि चमनदूबे, ग्राम-अरमल, पो०-सिवहरी, जि० पटना (बिहार)के निर्माणाधीन हनुमान्-मन्दिरपर संकीर्तनाचार्य श्रीमारुतिनन्दनकी असीम अनुकम्पा और प्रेरणासे गत ज्येष्ठ शुक्ल गंगादशहराके पावनपर्वसे संकीर्तनप्रेमी भक्तोंद्वारा द्वादशवर्षीय अखण्ड संकीर्तन सानन्द चल रहा है। प्रेरक—त्यागीबाबा श्रीरामदासजी महाराज एवं श्रीरामचरितदासजी।

पञ्चवर्षीय अखण्ड संकीर्तन

देवमन्दिर संस्थान, पत्रालय खैर जि० अलीगढ़, पञ्चवर्षीय अखण्ड संकीर्तन 'सीताराम सीताराम सीताराम जय सीताराम' मधुर नाम-ध्वनिसे गत वैशाख शुक्ला अक्षय तृतीया सं० २०३८ को प्रारम्भ हुआ और अब आगामी वैशाख शुक्ला अक्षय तृतीया, सं० २०४३ को इसकी पूर्णाहुति होगी। इसके अतिरिक्त स्थानीय नृसिंह-मन्दिरमें भी एक वर्षसे अधिक समयतक अखण्ड संकीर्तनका आयोजन हो चुका है।

प्रेषक—श्रीमिश्रीलाल अग्रवाल, मन्त्री

श्रीरामनाम अखण्ड संकीर्तन

मध्यप्रदेशके जिला विदिशा, तह०गंज वासोदा, सागर रोड, वस स्टैंड मोरौदा ग्रामसे कुछ दूर दक्षिणमें एक सुरम्य पर्वतके मध्यभागमें पूर्वाभिमुख गुफा है। कहते हैं, यही शरभंग ऋषिका पवित्र आश्रम है। यहाँ संकीर्तनप्रेमी श्रीप्रभुदासजी महाराजके सत्प्रभावसे धर्म-प्राण जनताद्वारा विश्वकल्याणार्थ 'श्रीराम जय राम जय जय राम' महामन्त्रका वाद्ययन्त्रोंके साथ अखण्ड संकीर्तन हो रहा है।

यह संकीर्तन विगत आषाढ शुक्ल गुरुपूर्णिमा, सं० २०४० तदनुसार दि० २४ जुलाई, १९८३को मध्याह्नसे प्रारम्भ होकर अनिश्चित कालतक चलेगा।

प्रेषक—श्रीउमाशंकर शर्मा, शास्त्री

अखण्ड संकीर्तन

बिहार राज्य, समस्तीपुर जिलान्तर्गत, पो० लाटवसेपुरा, टोला ब्रह्मवानामे बिरजेश्वरनाथजीके मन्दिरमें श्रीमौनीबाबा एवं ब्रह्मचारीजीकी अध्यक्षतामें पं० श्रीसत्यनारायणजी मिश्र 'सत्य' द्वारा महाशिवरात्रिके पावन पर्वसे आगामी शिवरात्रितक अखण्ड संकीर्तनका आयोजन चल रहा है।

विश्वकल्याणार्थ अखण्ड अष्टयाम संकीर्तन-महायज्ञ

स्वामी श्रीपशुपतिनाथबाबाके आदेशानुसार चंदिला, मकेर, बाघाकोलक्षेत्रके संकीर्तनप्रेमी भक्तोंके द्वारा विगत बारह वर्षोंसे विश्वकल्याण-हेतु अखण्ड अष्टयाम संकीर्तन-महायज्ञका कार्यक्रम 'श्रीराम जय राम जय जय राम' महामन्त्रके कीर्तनसे निर्विघ्न रूपसे चल रहा है। इसके अतिरिक्त फुलवरिया बाजारके एक भक्तके यहाँ प्रत्येक शुक्लपक्षकी एकादशीको मासिक संकीर्तन 'जय सियाराम जय जय सियाराम' विगत तीन वर्षोंसे चल रहा है। ये दोनों संकीर्तन-स्थल पवित्र नारायणी नदीके पूर्वी-उत्तरी तटपर मकेर थानान्तर्गत जि० सारन (बिहार) में है।

(प्रेषक—श्रीलक्ष्मण शर्मा)

अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन

महर्षि वाल्मीकि-आश्रम, स्थान-लालपुर, पो०-रेपुरा (जि०बाँदा) में श्रीमानसभूषण वेदान्ती स्वामीजीकी अध्यक्षता एवं संरक्षतामें अखण्ड संकीर्तनका आयोजन गत वर्षसे चल रहा है, जिसमें आस-पासके करीब अट्ठावन गाँवोंके भक्तगण बारी-बारीसे संकीर्तनमें योग-दान करते है। स्वामीजी प्रत्येक मंगलवारको श्रीरामचरित-मानसपर प्रवचन तथा आगन्तुक श्रोताओं और सत्संगियोंसे श्रीरामनाम-जप-कीर्तनकी भिक्षाकी भी याचना करते है।

अखण्ड संकीर्तन एवं महामन्त्रद्वारा प्रभातफेरी

महत श्रीआत्मादाराजी महाराजद्वारा मु०पो०-सलैयाँ बुजुर्ग, वाया-कोच, जि०-जालौन (उ०प्र०) में अखण्ड-ज्योति-सहित सीताराम-नाम-संकीर्तन गत प्रथम श्रावण माससे अनवरत चल रहा है। इसमे स्थानीय संकीर्तन-प्रेमी भक्त एवं आस-पासकी देहातोंके प्रेमी बड़े चावसे भाग लेते है। नित्य प्रातःकाल स्थानीय भक्तलोग 'हरे राम ... हरे कृष्ण' महामन्त्रका संकीर्तन करते हुए ग्रामकी परिक्रमा (प्रभातफेरी) करते है। ये सभी कार्यक्रम अनिश्चितकालीन है।

अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन-मण्डल

भगवान् श्रीगौरीशंकरकी असीम अनुकम्पासे विगत पंद्रह वर्षोंसे 'हरि-संकीर्तन-मण्डलद्वारा हरिकुटी, सोखना (हाथरस)में भगवन्नाम-संकीर्तन चल रहा है। यहाँ स्थानीय धर्मशालामें एक वटवृक्ष तथा भगवान् भवानी-शंकरका मन्दिर एवं पासमें ही एक कुँआ भी है। इसी पवित्र स्थलपर संकीर्तनका आयोजन है। भावुक भक्त बड़े उत्साहसे योग देते हैं। श्रीगीताजी, रामायण और शिवपुराण आदि धर्मग्रन्थोंके पाठ भी चल रहे हैं।

अखण्ड संकीर्तन

ॐ बाबा श्रीसिद्धेश्वर महादेव-पूजा-प्रबन्धक-समिति, लालगंज, पो० बौंशिला, जि० मयूरभंज (उड़ीसा) में संकीर्तन-प्रेमी भक्तोंद्वारा अष्टयाम हरिनाम-संकीर्तन सानन्द चल रहा है।

(प्रेषक—श्रीशरतचन्द्रसिंह)

अखड—'हरे राम'....'हरे कृष्ण०-संकीर्तन'

भगवान् श्रीराधाकृष्ण-मन्दिर, स्थान-पो०-वानखेड (तह०-संग्रामपुर) मार्ग-शेगाँव-(महाराष्ट्र) मे विगत सात वर्षोंसे स्थानीय प्रेमी भक्तोंद्वारा अखण्ड संकीर्तन (महामन्त्र—'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥') सानन्द सोत्साह चल रहा है।

प्रेषक—श्रीगंगाधर सूरजमलजी चाण्डक, वानखेड

अष्टयाम अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन

भगवान् शंकरजीकी असीम अनुकम्पासे स्थान-राजगंगपुर (उड़ीसा) स्थानीय सेमेण्टकिलमें संकीर्तनप्रेमी श्रद्धालु भक्तोंद्वारा अष्टयाम भगवन्नाम-संकीर्तन अबाधगतिसे चल रहा है।

अनन्तकालोद्दिष्ट अखण्ड नाम-संकीर्तन-केन्द्र

यहाँ नीचे कीर्तनप्रेमी श्रीश्रीठाकुर सीतारामदास ओंकारनाथजी महाराज-द्वारा प्रेरित संस्थापित अखण्ड संकीर्तन-संघोंकी सूची संलग्न है—आरम्भकी तिथि एवं स्थानके साथ। ये संकीर्तन-केन्द्र सम्प्रति ३० हैं—(१) गोविन्द-मन्दिर, अगहन १९५२, पो०—नवग्राम, वर्द्धमान। (२) नामकीर्तन-मण्टप, उत्थानी एकादशी कार्तिक १९५६, उत्तरेश्वरमन्दिर, पो०-बहरमपुर, गंजाम, उड़ीसा। (३) महामन्त्र-भवन, फरवरी १९५५ (अनिर्दिष्ट काल) पो०—नवग्राम, वर्द्धमान। (४) 'नाम दुर्ग', काशीरामाश्रम, जनवरी १९५७, दि० २२।११, चौसट्टिघाट, वाराणसी (उ०प्र०)। (५) आनन्द-कानन, आषाढ, संक्रान्ति, १९५८, पो०—मगरा, हुगली। (६) रामदयाल-आश्रम, जनवरी, १९५९ दगेडे, पो० लाउग्राम, बाँकुड़ा। (७) श्रीनाममन्दिर (अनिर्दिष्ट काल) मई, १९६३, पो० बारुईपुर, २४परगना। (८) अखण्ड नाम-मण्डल (गोलक) दोल पूर्णिमा—श्रीनीलाचल-आश्रम, चटक पहाड़, पो० पुरी, उड़ीसा। (९) अखण्ड नाम-मन्दिर, अगस्त, १९६५, माहमिलन-मठ, पी० डब्ल्यू० डी० रोड, कलकत्ता-३५। (१०) श्रीसाधनसमिति, फरवरी, १९६८ (अनिर्दिष्ट काल) दिगसुइ, हुगली। (११) सदानन्द-मठ, १९६८ (अनिर्दिष्ट काल) बालटिकुरी, हवड़ा। (१२) सोमेश्वर-मठ, (कैलास-धाम) मार्च, १९६९, पो० सोंयाइ, वर्द्धमान। (१३) ऋषिकेश-आश्रम, जुलाई, १९६९, पो० ऋषीकेश, उ० प्र०। (१४) श्रीदाशरथि-मठ—१९७१, (अनिर्दिष्ट काल), वेलरूई, पो० सीतारामपुर, वर्द्धमान। (१५) श्रीगङ्गा-आश्रम—मई, १९७२, रानीरघाट, चन्दननगर। (१६) श्रीश्यामराय-मन्दिर-१९७२, रथयात्रा, धीरसमीर-कुंज, वृन्दावन, मथुरा, उ० प्र०। (१७) श्रीरामाश्रम अखण्ड नाम-क्षेत्र—अप्रैल, १९७४, पो० डुमुरदह, जिला—हुगली। (१८) श्रीभुवनेश्वर-मठ (अखण्डनाम) अप्रैल, १९७६, जिला, पो० जयरामबाटी। (१९)

श्रीवृन्दावन-धाम, अप्रैल, १९७५ कौपीनधारी कुंज, गोविन्दबाजार। (२०) श्रीव्रजनाम, निकेतन, डमुरदह, १९७५। (२१) श्रीगुरुनिवास, वर्द्धमान (स्त्रियोंके लिये) अखण्डनाम, १९७५। (२२) खामारगाछी हुगली, अखण्डनाम, १९७५। (२३) श्रीयोगेन्द्र-मठ, गंगासागर, अखण्डनाम, जुलाई, १९७५। (२४) श्रीअखण्डनाम-लीलाकेन्द्र, खालुइविलेर-मठ, वर्द्धमान। (२५) श्रीश्यामसुन्दर-आश्रम, पो० श्यामसुन्दर, वर्द्धमान। (२६) श्रीपुष्कर-मठ, पो० पुष्कर, सप्तर्षिघाट, अजमेर। (२७) श्रीरणछोड़-आश्रम १९७९, पो० बेट, भाया-ओखा, गुजरात। (२८) श्रीगिरिबाला देवी, पान्थ-निवास, १९८०, एम० जि० गाँधी रोड, पो०—कनखल, हरिद्वार, उ० प्र०। (२९) श्रीअखण्डनाम-मण्डल, १९८०, तलकुइ, मेदिनी और (३०) श्रीकालना अखण्ड नाम-निकेतन, १९८०, पो० कालना, वर्द्धमान।

प्रेषक—श्रीश्रीसीतारामकिंकर रामेशानन्दजी।

द्वादशवर्षीय श्रीभगवन्नाम-संकीर्तनमण्डल

संकीर्तन—'श्रीराम जय राम जय जय राम'।

बाबाजी श्रीसत्यानन्दजीकी प्रेरणासे प्रसिद्ध श्रीगोपी-नाथजीका मन्दिर, पो०-सिंगरावट, जि०-सीकर (राजस्थान) में द्वादशवर्षीय अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन अनवरत चल रहा है। संकीर्तनके साथ विशेष पर्वोंपर श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसके पारायण आदि सात्त्विक अनुष्ठान होते हैं। भगवत्कृपासे अखण्ड श्रीरामनाम-संकीर्तन और धार्मिक अनुष्ठान अनिश्चित कालतक चलते रहनेकी सम्भावना है।

प्रेषक—श्रीदामोदरप्रसाद शर्मा

अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन

बाबा श्रीविश्वहरिचन्द्रनदासके सत्प्रयाससे स्थान-पो०-बरगढ़, जि० सम्बलपुर (उडीसा) में गत तीन वर्षोंसे अखण्ड नाम-संकीर्तन 'हरे कृष्ण हरे राम राधे गोविन्द ॥' मधुर ध्वनि-विस्तारक यन्त्र (माइक) के माध्यमसे सुचारुरूपसे चल रहा है। इसमें स्थानीय विशिष्ट व्यक्तियों एवं भक्तोंका पूर्ण सहयोग मिलता है।

प्रेषक—रामेश्वरदास ताराचन्द एण्ड सन्स

भागवत-सप्ताहसहित अखण्ड हरि-संकीर्तन

महाराष्ट्रके साँगली जिलेके मिरज नामक छोटे शहरमें स्वनामधन्य श्रीगोपाल राव और उनके भाईने सन् १९०१में दीपमालिकाके पावन पर्वपर 'अहोरात्र भजन-सप्ताह' प्रारम्भ किया। उन दिनों पाँच-सात साधक भाग लेते थे, किंतु आज भगवत्कृपासे लगभग एक सौ साधक अहोरात्र-सप्ताहमें भाग लेते हैं। यह गत पचासी वर्षोंकी पवित्र परम्परा है।

साधक श्रीगोपाल राव बोडसने सन् १९२० में मिरजशहरके पास कृष्णा नदीके पावन तटपर एक भगवान्‌के मन्दिरमें श्रीमद्भागवत-सप्ताहका शुभारम्भ किया था, जो भगवान् श्रीराधाकृष्णकी महती दयासे क्रमशः विगत पैंसठ वर्षोंसे अनवरत चल रहा है। साथ ही भगवद्गीता और ज्ञानेश्वरी धर्म-ग्रन्थोंका सार्थ वाचन होता है। इन सभी धार्मिक अनुष्ठानोंके प्रभावसे आज मिरजमें बोडसजीका आवास पावन मन्दिर बन गया है। श्रीराम-जन्मोत्सव और श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव भी बड़े उत्साहसे मनाये जाते हैं।

अखण्ड रामनाम-संकीर्तन

मङ्गलमय भगवान् श्रीसीतारामके पवित्र नाम-ध्वनिसे परिपूर्ण चित्रकूटधामसे लगभग आठ किलोमीटर उत्तर दिशामें पतितपावनी मन्दाकिनी गङ्गाके पावन तटपर मनोवाञ्छित फल देनेवाला सूर्यकुण्ड नामक आश्रम है। इस स्थानका वर्णन सूर्यपुराणमें भी मिलता है। धर्मनिष्ठ संत श्रीकमलनयनदासजी महाराज 'फलाहारी' के सत्प्रयाससे दि० १२ मार्च १९५८ से आरम्भ होकर श्रीसीताराम-नाम-संकीर्तन-पूजन-अर्चन एवं दीपक तथा श्रीमानसका

अखण्ड पाठ आदि सात्त्विक अनुष्ठान श्रीहनुमान्जी महाराजकी विशेष कृपासे विगत सत्ताईस वर्षोंसे अनवरत चल रहा है।

अखण्ड पावन संकीर्तन

महामन्त्र-संकीर्तन—हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

उड़ीसा प्रदेशान्तर्गत बलांगिर मण्डलके सोनपुरसे पूर्वकी ओर प्रवाहित पुण्यतोया चित्रोत्पला महानदीके निकट जर्टेसिंहा ग्राम-पंचायतमें बड़खम्भार ग्राम स्थित है। इसके पश्चिमकी ओर कुछ दूर सुरम्य पर्वतपर वराहपुर मठ है। मठके चारों ओर आध्यात्मिक परिवेशमें एक निकुञ्जमें श्यामसुन्दर कुञ्जकुटी सुशोभित है। इस पावन तपोभूमिके अधिष्ठाता ब्रह्मलीन महंत श्रीकृष्णचरणदासजी महाराज थे, जिन्होंने दि० २३ मई १९५५ में पवित्र महामन्त्रके अखण्ड संकीर्तनका शुभारम्भ किया था। भगवत्कृपासे लगभग तीस वर्षोंसे यह धार्मिक अनुष्ठान अनवरत चल रहा है।

प्रेषक—महंत श्रीकुंजकिशोरदासजी महाराज

अखण्ड नाम-संकीर्तन

मङ्गलमय प्रभुकी प्रेरणासे श्रीहनुमत्-दरबार, महेन्द्र-राजपथ, जनकपुरधाम (नेपाल)के प्राङ्गणमें विगत कई वर्षोंसे अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन महात्मा श्रीरामचन्द्र-शरणजीके संयोजकत्वमें चल रहा है। इस आयोजनमें संकीर्तनके साथ ही अखण्ड पाठ भी अहर्निश चलता है।

प्रेषक—डॉ० कुलेश्वरप्रसादसिंह

यहाँ श्रीरामानन्द-आश्रममें भी प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीपुलहा भगवान्की आरतीके बाद बारह बजेतक अतिथि-अभ्यागत संकीर्तन करते हैं तथा प्रभुका प्रसाद सेवन-कर विदा हो जाते हैं। रात्रिमें सायंकालसे प्रार्थना-स्तुतिके साथ संकीर्तन आरम्भ होता है, जो सायंकाल-की आरतीतक चलता है। ऐसे कभी नवाह्निक, कभी साप्ताहिक अखण्ड कीर्तनके आयोजन होते ही रहते हैं। प्रत्येक पूर्णिमाको भी प्रायः अखण्ड कीर्तन होता है।

इसके अतिरिक्त यहाँ विहारकुण्ड, अग्निकुण्ड, राजसागर, मधुकरकुंज आदि स्थानोंमें भी नित्यप्रति प्रातः-सायं कुछ समय संकीर्तन तो स्वाभाविक रूपसे होता ही है।

उत्तर गुजरातके बनासकांठा जिलेके श्रीबजरंग-भजनाश्रम, कटावधाम एक महान् भजनानन्दी संत महापुरुष हो गये हैं। ये इस प्रान्तमें श्रीखाकीजी महाराजके नामसे प्रसिद्ध रहे हैं। ये इतने नामानुरागी थे कि पढ़ाते समय भी 'वर्णानामर्थ' सीताराम 'संघानां' सीताराम, 'रसानां'-सीताराम, 'छन्दसामपि' 'सीताराम' ऐसे नाम लगाकर पढ़ाते थे। रात्रिमें बारह बजेसे दो बजेतक शिष्योंको सोने देते थे, फिर दो बजेसे उठकर भजनमें लग जाते थे, ऐसे ये महान् प्रभु-प्रेमी थे। आपके ही कृपापात्र शिष्य श्रीसीतारामीय श्रीस्वामी मथुरादासजी महाराज हुए। ये तो जंगलोंमें चलते समय भी रामधुन संकीर्तन करवाते थे। कहते थे, जंगलके बेचारे पशु-पक्षियोंको रामनाम कौन सुनायेगा, यह काम तो हमारे-आपके-जैसे साधु-संतोंका है। ये चोरों-डाकुओंके ग्राममें जाकर अड्डा जमाते थे और उन्हें दुर्व्यसनोंसे मुक्तकर रामभक्त बनाकर चोरी-डकैती-जैसे कुकर्मोंसे हटाकर सन्मार्गपर लाते थे।

आपने कटावग्रामको धाम बनाया, श्रीराघवेन्द्र भगवान्का विशाल मन्दिर उस धरणीधरकी झाड़ीमें बनवाया तथा रामधुन और रामायणका रंग लगाकर लोगोंमें धार्मिकताका प्रचार किया। इस कटावधाममें 'श्रीरामनाममन्त्रमन्दिर'की स्थापना हुई, जिसमें नौ अरब चौरासी करोड़ श्रीरामनाम लिखकर पधराये गये हैं तथा प्रतिवर्ष लगभग सौ करोड़—जितने श्रीरामनाम लिखकर भक्तजन इस मन्दिरमें पधरानेका सौभाग्य प्राप्त करते हैं। यहाँ प्रातःकाल आठ बजेसे सायंकाल चार बजेतक विभिन्न गाँवोंसे

भक्तोंकी मण्डलियाँ आकर अखण्ड रामनाम-धुन मचाती हैं, संकीर्तन करती हैं। यहाँ जंगलमें मङ्गल नाम सार्थक हो रहा है।

गुजरातमें-डाकोर-अहमदाबाद-राजकोट आदि स्थानोंमें कई जगह अखण्ड संकीर्तन चलते है।

अवधके संकीर्तनप्रेमी संतका संक्षिप्त परिचय

श्रीअवधके श्रीहनुमानबागमें आज पचास वर्षोंसे भी अधिक समय हो गया, अखण्ड संकीर्तन नियमपूर्वक चल रहा है। इसका श्रेय महान् कर्मठ, अदम्य उत्साही भजनानन्दी संत श्रीअयोध्यादासजी महाराज तथा संतसेवी पुजारीजीको है। ये श्रीअयोध्यादासजी महाराज अनन्य नामानुरागी संत थे। आपने श्रीहनुमान्जीको नाम-संकीर्तन सुनाना प्रारम्भ किया। श्रीहनुमान्जी तो स्वयं श्रीमुखसे कहते है—

राम त्वत्तोऽधिकं नाम इति मे निश्चिता मतिः।
त्वया तु तारितायोध्या नाम्ना तु भुवनत्रयम्॥

'प्रभो श्रीराम! आपसे भी आपका नाम अधिक श्रेष्ठ है, यह मेरा हार्दिक दृढ़तम सिद्धान्त है; क्योंकि आपने तो केवल अपने समयमें श्रीअयोध्यावासियोंको ही तारा है, परंतु आपका नाम तो सदा-सर्वदा त्रिभुवनके जीवोंको तारता ही रहता है।' श्रीहनुमान्जीकी प्रेरणासे अन्य श्रीनामसंकीर्तनरससिक्त संत भी आकर वहाँ आसन जमाने लगे। भोजन तथा निवासकी कोई व्यवस्था न होनेपर भी नामानुरागी संतोंने श्रीहनुमान्जीको नाम सुनाना नहीं छोड़ा। धीरे-धीरे भोजनकी भी व्यवस्था होने लगी, आवास भी बनने लगा और बडे धूमधामसे संकीर्तन-ध्वनिकी आनन्दलहरियाँ लहराने लगीं।

'रागरागिनी' एवं ताल-स्वरपर विशेष ध्यान देकर संकीर्तन करनेवालोंकी अपेक्षा श्रीअयोध्याजीके इन अलमस्तप्रेमी संतोका संकीर्तनरस अत्यधिक अनिर्वचनीय —विशेष अलौकिक आनन्द बरसाता है। यह संकीर्तन श्रीहनुमान्जीको इतना प्रिय लगा कि स्वयं श्रीहनुमान्जीने आग्रहपूर्वक इस स्थानको छोड़ना स्वीकार न किया।

घटना इस प्रकार है—एक बार श्रीसरयूजीकी बाढ़से श्रीहनुमान्जीके मन्दिरमें भी पानी भर गया और बहुत दिनोतक भरा ही रहा। सारा बगीचा जलमग्न था। श्रीजानकीघाटके श्रीमहाराजने सोचा कि ऊँचेपर मन्दिर बनवाकर उसमें श्रीहनुमान्जीको पधराया जाय। आपने ऊँचेपर रोडके पास ही दूसरी जमीन लेकर लाखों रुपयोका खर्च कर बहुत ऊँचा मन्दिर बनवाया; परंतु जब श्रीहनुमान्जीको उठाकर ऊपरवाले मन्दिरपर ले जानेकी बात आयी, तब सब संतोका विचार लिया गया। कुछ संतोने 'हाँ' और कुछने 'ना' कहा, तब यह निर्णय हुआ कि चिट्ठी डालकर श्रीहनुमान्जीकी आज्ञा ली जाय और जो आज्ञा मिले, वही किया जाय। सर्व-सम्मतसे चिट्ठी डाली गयी। एक भोले-भाले भजनानन्दी संतको उसमेंसे एक चिट्ठी लानेके लिये प्रार्थना की गयी। संत भगवान्को साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणामकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करके एक चिट्ठी उठा ले आये, उसमें लिखा था—'हमको यहीं रहना है', संतोंने हर्षोन्मत्त होकर जय-जयकारकी ध्वनिसे वातावरणको आनन्दमय बना दिया और अभीतक श्रीहनुमान्जी उसी छोटेसे मन्दिरमें विराजमान होकर अखण्ड संकीर्तन-श्रवणका दिव्य आनन्द ले रहे है।

बात यह थी कि चिट्ठीद्वारा आज्ञा प्राप्त करनेके लिये जब चिट्ठियाँ समर्पण की गयीं, तब पुजारी श्रीअयोध्यादासजी महाराज मन-ही-मन श्रीहनुमान्जीसे प्रार्थना कर रहे थे कि 'प्रभो! आपको श्रीसीतारामनाम-संकीर्तन निरन्तर सुनना है तो यहीं विराजमान रहनेकी आज्ञा प्रदान कीजिये।' भक्तकी आर्तवाणी-अन्तर्नाद श्रीहनुमान्जीने सुन लिया और उन्होने 'हमको यहीं रहना है'—यह आज्ञा प्रदान की।

लाखोंकी लागतका विशाल मन्दिर बन चुका था; परंतु श्रीसीतारामनाम-संकीर्तनके रसिया श्रीहनुमान्जी यहीं विराजते रह गये । श्रीमहाराजजीने दूसरे विग्रहका निर्माण कराकर उस नवीन मन्दिरमें प्राणप्रतिष्ठा करवायी । वहाँ आर्तिक्य, अखण्ड संकीर्तन सैकड़ों संत करते हैं ।

श्रीअवधमें तो अन्यत्र भी अखण्ड संकीर्तन चलते ही रहते हैं—श्रीरामजन्मभूमि, श्रीहनुमानगढ़ी, श्रीजानकी-महलमें गोलाघाट, श्रीमनीरामजीकी छावनी आदिमें भी अखण्ड संकीर्तन बड़े प्रेमसे चल रहे हैं ।

गोरखपुर—नित्यलीलालीन परम पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी तपःस्थली गीतावाटिका, गोरखपुरमें आजसे सत्रह वर्ष पूर्व श्रीराधाष्टमी (सं० २०२५)के पावन पर्वपर पुण्यश्लोक श्रीभाईजीद्वारा अखण्ड संकीर्तनका शुभारम्भ हुआ था, जो भगवत्कृपासे अब भी निरन्तर चल रहा है ।

कलिसंकीर्तनावतार श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी पावन जन्म-स्थली नवद्वीपधामके बंगालीवृन्द यहाँ महामन्त्र—'**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥**' का वाद्य-यन्त्रोंके साथ सस्वर संकीर्तन करते हैं । दूर-ध्वनि-यन्त्रद्वारा दूर-दूरतक सुमधुर नाम-धुन सुनायी देती है । अन्य संकीर्तन-प्रेमीलोग भी मिलकर रात-दिन कीर्तन करते हैं ।

श्रीराधाकृष्ण-साधना-मन्दिरकी स्थापना होनेके बाद 'अखण्ड संकीर्तन'की शोभा और अद्भुत हो गयी है । निरन्तर मङ्गलमय मधुर संकीर्तनमें भगवान्के दिव्य विग्रहोंकी झाँकी प्रत्यक्षरूपमें दर्शन देती है, जो संकीर्तनप्रेमी भक्तों और दर्शकोंके मनको अनायास मोह लेती है ।

प्रेषक—श्रीहरिकृष्णजी दुजारी

सीतामढ़ी—आद्या शक्ति जगज्जननी माँ जानकी (सीताजी) की पावन जन्मस्थली सीतामढ़ी (बिहार)में सुप्रसिद्ध श्रीजानकी-मन्दिरके पृष्ठभागमें बाबा मानदास-मन्दिरके प्राङ्गणमें वि० सं० २००७ से अखण्ड संकीर्तन चल रहा है । भगवत्कृपासे गत पैंतीस वर्ष पूर्व इसका शुभारम्भ स्वनामधन्य बाबा जयसियारामजीने किया था । मन्दिरमें सेवा करनेवाले साधु-संत और संकीर्तनप्रेमी भक्तोंद्वारा वाद्ययन्त्रोंके साथ सस्वर 'जय सियाराम जय जय सियाराम' का निरन्तर संकीर्तन चल रहा है ।

प्रेषक—श्रीकमलेश [illegible]

स्थान-श्रीबालाजीदरबार बेहटा जनपद फतेहपुर, (उ० प्र०)में (इस स्थानका राजस्थानके सुप्रसिद्ध घाटा-मेंहदीपुरके श्रीबालाजीकी चमत्कारी प्रतिमासे सम्बन्ध है ।) विगत आश्विन शुक्ल १ सं० २०३१ बुधवारको १२ बजे तदनुसार दि० १६ अक्टूबर १९७४ से अनिश्चितकालीन अखण्ड संकीर्तन श्रीसीताराम नाम-यज्ञ अनवरत अबाधगति प्रतिध्वनित हो रहा है । साथमें अखण्ड घी ज्योतिकी भी व्यवस्था है ।

इस श्रीसीताराम नाम-संकीर्तन यज्ञके संचालक श्री-हनुमानजी महाराज ही हैं ।

प्रेषक—पुजारी श्रीहनुमानजी श्रीबालाजी दरबार

पुण्यतोया नर्मदाके उत्तर तटपर सुरम्य, सात्त्विकतायुक्त और शान्तिप्रद स्थानमें देवमन्दिर दर्शनीय हैं । इसी तपोवनमें 'निर्लोभी आश्रम'में संकीर्तनप्रेमी भक्तोंद्वारा अहर्निश 'हरिनाम-संकीर्तन' होता है । माघ शुक्ल वसन्त पञ्चमी, सं० २०३७ से महामन्त्र संकीर्तन—'**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।**' का दीपज्योतिके साथ शुभारम्भ हुआ । ध्वनि-विस्तारक यन्त्रद्वारा महामन्त्रकी कर्णप्रिय ध्वनि दूर-दूरतक सुनायी पड़ती है ।

प्रेषक—महंत पं० मेदिनीशरणजी शास्त्री

मङ्गलमय श्रीभगवान्के मङ्गल विधानानुसार श्रीसंकीर्तन-मण्डल, महादेव-मन्दिर, बड़ोदामें सं० १९९५से अखण्ड संकीर्तन महामन्त्र '**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥**' चल रहा है । महाशिवरात्रि पर्वपर विशेष समारोह आयोजित होता है । इसके सिवा संकीर्तनमण्डल, मोजवपुर, संकीर्तनमण्डल कुरेलामें भी साप्ताहिक संकीर्तन तथा प्रतिदिन प्रभातफेरीमें एकघंटा संकीर्तन होता है ।

प्रेषक—श्रीलक्ष्मणदास पटेल, श्रीकाशी विश्वनाथ महादेव ट्रस्ट बड़ोदा

बरगढ़ (सम्बलपुर) (उत्कल प्रदेश) यहाँ श्रीवेणु बाबाके आश्रममें लगभग तीन वर्षसे अखण्ड हरिकीर्तन

चल रहा है। स्थानीय श्रीहनुमान-मन्दिर और श्रीवेणु-बाबामन्दिरमें क्रमशः गत उनचास वर्षोंसे श्रीकृष्णजन्माष्टमीपर्व और श्रीराधाष्टमीपर्वपर एवं लगभग बीस वर्षोंसे संकीर्तन होता है। यहाँ हरिजन भाइयोंकी ओरसे भी गत दस वर्षोंसे श्रीकृष्ण जन्माष्टमीपर संकीर्तनका आयोजन होता है।

प्रेषक—श्रीकेशवदेव विरमीवारन

वार्षिक अखण्ड संकीर्तन

भुरकी, जि० सिवनी (म० प्र०) मे स्थानीय संकीर्तन प्रेमीगण प्रतिवर्ष श्रीकृष्णजन्माष्टमीपर्वपर अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन करते हैं। पुण्यतोया नर्मदा-तटपर पद्मीघाट आश्रममें भी संकीर्तन होता है।

प्रेषक—श्रीनरेन्द्रसिंह

भगवत्कृपासे विगत आठ वर्षसे पाइक बहाल सीताराम-मठ केवल पदार, जि० बलांगिरमें अखण्ड संकीर्तन होता है। इसका शुभारम्भ श्रीपुच्छमनदासजी महाराजने किया था। प्रेषक—महंत श्रीगिरिवरदास

ग्राम-गुफा मालेर, जि० विदिशामें आषाढ शुक्ल पूर्णिमा (गुरुपूर्णिमा) सं० २०३९ से अहर्निश (चौबीस घण्टेका) **'श्रीराम जय राम जय जय राम'** के महामन्त्रका अखण्ड संकीर्तन चल रहा है। इस पुनीत आयोजनमें निकटवर्ती ग्रामोंके लाखों नर-नारी सम्मिलित होकर धर्म-लाभ कर रहे हैं।

संकीर्तन-विराट्-आयोजनके प्रेरक स्वामी श्रीप्रभुदासजी महाराज हैं, इन्हींके सत्प्रयाससे यह सात्त्विक अनुष्ठान चल रहा है। भगवान् श्रीव्यंकटेशकी कृपासे एकादश वर्षतक संकीर्तन चलानेकी योजना है।

प्रेषक—पं० श्रीकैलाशनारायण चतुर्वेदी

बिहारके मुजफ्फरपुर नगरमे श्रीगयाप्रसाद मास्टरजी रहते थे। उन्हें काश्मीरी बाबा मिल गये और वैराग्य हो गया। गुरुजीसे दीक्षा लेकर वे प्रेमभिक्षुकजी बन गये और गृह त्यागकर भारतकी यात्रा की।

सन् १९४२ मे वे श्रीद्वारकाधीशजीके दर्शनार्थ द्वारका गये। श्रीद्वारकानाथके दर्शनसे इतने भावविभोर हो गये कि अचानक उनके श्रीमुखसे **'श्रीराम जय राम जय जय राम'** की धुन लगी और अचेत हो गिर पड़े। फिर तो ईश्वर-दर्शनकी तीव्र इच्छा जाग उठी। वहाँसे वे द्वारका गया। वहाँ कुछ दूरीपर दाडिया-हनुमान—मन्दिरमें बैठ गये और तेरह करोड़ नाम-जप किया, भगवत्कृपासे उन्हें ईश्वर-साक्षात्कार हुआ। अतः नामजपका वे प्रचार करने लगे।

भगवत्कृपा और श्रीप्रेमभिक्षुकजीकी प्रेरणासे जामनगर, द्वारका, ओखा, पोरबन्दर, महुवा, राजकोट, भावनगर, ध्रागध्रा, राजुला, सुरेन्द्रनगर, जूनागढ़, वेरावल, सोमनाथ, मोरवी, वॉकानेर, पाटण, बड़ोदा, अहमदाबाद, बम्बई, मुजफ्फरपुर आदि स्थानोंमे संकीर्तनका शुभारम्भ हो गया। अब संकीर्तन-मण्डलकी स्थापना हो चुकी है और उनके द्वारा निम्न शहरोंमें संकीर्तन-मन्दिरके भवनोंका निर्माण भी हुआ है।

जामनगर, द्वारका, पोरबन्दर, महुवा, राजकोट—इन पाँच शहरोंमें मन्दिर बनवाये गये हैं और भगवत्कृपासे अखण्ड संकीर्तन चालू है।

इसके अतिरिक्त महंत श्रीरणछोड़दासजी महाराजकी प्रेरणासे राजकोटमें स्थित श्रीसद्गुरु-आश्रममें **'श्रीराम जय राम जय जय राम'** का नित्य संकीर्तन धुन चलता है। राजकोटमें नदीके तटपर श्रीरुक्खडिया हनुमान-मन्दिरमें महंत श्रीप्रभुदासजी महाराजकी प्रेरणासे **'सीताराम'** नाम-धुन संकीर्तन होता है। प्रेषक—श्रीभगवानदास कोटक

अखण्ड संकीर्तन

इन्दौरमें श्रीराम-गायत्री-मन्दिर और श्रीवीरेश्वर हनुमान् महाराजके भव्य मन्दिर हैं, जो महारानी अहल्याबाईद्वारा संस्थापित हैं। भगवत्कृपासे इन दोनो स्थानोंपर गत भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमा सं० २०४१ से श्रीहरिनाम-संकीर्तन **'सीताराम सीताराम सीताराम जय सीताराम'** अखण्ड एवं अबाध गतिसे उत्साहपूर्वक चल रहा है।

प्रेषक—श्रीओम्प्रकाश मंगल

बाँदा (उ० प्र०) में प्राचीन श्रीपञ्चमुख महादेवजीका मन्दिर है, इस सिद्धपीठमें भगवान् शंकरकी पञ्चमुखी काले पत्थरकी दुर्लभ मूर्ति है। श्रीपञ्चानन-सेवाश्रम, राजघाट रोडपर गत दि० २३ अगस्त १९८२ से द्वादश-वर्षीय अखण्ड भगवन्नाम-संकीर्तन सफलतापूर्वक चल रहा है। स्थानीय संकीर्तनप्रेमी भक्त और संत महात्मा बड़े चावसे भाग लेते हैं।

प्रेषक—श्रीअवधेशनारायण वाजपेयी, अध्यक्ष

गुजरात राज्यमें सुरेन्द्रनगर जिलान्तर्गत धांगध्रा, लखपत और दमाड़ा स्थानोंके लगभग तीस कि० मी० क्षेत्रस्थ छोटे-बड़े गाँवोंने मिलकर एक 'हरिनाम-संकीर्तन' संस्था बनायी है। यहाँ प्रत्येक एकादशीको अखण्ड संकीर्तनका आयोजन होता है। एक छोटेसे गाँवमें श्रीराम-मन्दिरमें तो गत पुरुषोत्तम माससे प्रारम्भ होकर दीपावलीपर्यन्त (एक सौ बीस दिनका) अखण्ड नाम-संकीर्तन हो रहा है।

प्रेषक—श्रीकान्तिलाल देसाई 'अनुज'

स्थान—मोहनपुर (रोहतास) (बिहार)—यहाँ 'हरिकीर्तन-समिति'की ओरसे प्रतिवर्ष शारदीय नवरात्रपर 'अखण्ड हरि-संकीर्तन'—'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥' होता है। यह संकीर्तन-अनुष्ठान भगवत्कृपासे सन् १९२५ से चालू है।

प्रेषक—श्रीरामनौजसिंह, प्रबन्धक

वार्षिक संकीर्तन

ग्राम—केनापारा (भैयाथान) जि० सरगुजा (म० प्र०)। यहाँ वसन्तपञ्चमीके पावन पर्वपर बारह घंटाका अखण्ड संकीर्तन होता है।

प्रेषक—श्रीमनोहरप्रतापसिंह

अम्बाला शहरमें 'सदाशिव' नामकी एक सत्सग-स्थली है, यहाँ कुछ सम्भ्रान्त, सुशिक्षित प्रबुद्ध जन किसी भक्तकी प्रेरणासे व्रजभावसे अनुरञ्जित होकर, व्रजके रंगीले रसीले ठाकुरकी नित्य सेवा-प्राप्तिकी रसीली स्पृहाको हृदयोंमें सँजोकर प्राणपणसे नाम-रूप-लीला-धामकी दिशामें प्रयत्न-शील हैं। यह प्रेरणा इन्हें गीताप्रेस गोरखपुरसे प्रकाशित सत्साहित्य एवं 'कल्याण' मासिक पत्रिकासे मिली। लगभग तीस वर्षोंसे महाशिवरात्रि, श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, राधाष्टमी, शरत्पूर्णिमा और कार्तिकी पूर्णिमापर रात्रिपर्यन्त सरस-संकीर्तन होता है।

प्रेषिका—निर्मला गुप्ता, (च० पी० टी० यस०

प्रभातफेरी और अखण्ड संकीर्तन

मङ्गलमय भगवानकी असीम अनुकम्पासे श्रीगोपाल-मन्दिर, डीडवाना (राजस्थान) में प्रातःकाल चार बजेसे नगरकी परिक्रमा करते हुए सामूहिक संकीर्तन, भगवानकी आरती, स्तोत्र-पाठ, प्रार्थना आदि सत्कार्य पिछले सात वर्षोंसे अनवरत चल रहे हैं। गत पुरुषोत्तम-मासमें अखण्ड संकीर्तनका भी आयोजन हुआ। स्थानीय श्रद्धालु नागरिक इन सात्त्विक अनुष्ठानोंमें बड़े उत्साहसे भाग लेते हैं।

प्रेषक—श्रीमधुसूदनदास

महात्मा श्रीभोली बाबा-संकीर्तन-प्रचार-संस्थान, बौंसी, भागलपुर (बिहार)—यह संस्थान ब्रह्मलीन बाबा श्रीभोली-जीके नाम-प्रचार तथा संकीर्तन-प्रचारके उद्देश्यसे संस्थापित है। इसके माध्यमसे स्थान-स्थानपर अखण्ड संकीर्तन और यज्ञादि किये जाते हैं।

इस संस्थानद्वारा स्थानीय मधुसूदन-मन्दिरमें 'मकर-संक्रान्ति'के पावन पर्वपर प्रतिवर्ष तीन दिनोंतक अखण्ड संकीर्तनका आयोजन होता है।

ग्राम कुल्वड्यिामें प्रतिवर्ष जनवरीके प्रथम सप्ताहमें तीन दिनोंतक अखण्ड संकीर्तन, श्रीसीताराम-विवाहोत्सव और श्रीरामार्चा पूजादि कार्यक्रम बड़े धूमधामसे मनाया जाता है। ये आयोजन लगभग चालीस वर्षोंसे होते आ रहे हैं।

श्रीहरिनाम-संकीर्तन-समाज देवघा, पो० बाथ, जि० भागलपुर—यह संस्थान वर्षोंसे स्थान-स्थानपर संकीर्तन करके अध्यात्म-जागरण करता है। धार्मिक आयोजनों और सम्मेलनोंमें भी संस्थानद्वारा अखण्ड संकीर्तन प्रायः होते रहते हैं।

जाह्नवी-अंगिका-संस्कृति संस्थान, आदर्शनगर, सुल्तानगंज भागलपुर—इस संस्थानकी स्थापना अङ्ग जनपदकी संस्कृति, कला एवं साहित्यके विकास तथा संरक्षणके लिये की गयी है, साथ ही 'हरिनाम-संकीर्तन'का प्रचार-प्रसार भी इसका उद्देश्य है। इस स्थानमें प्रतिवर्ष अखण्ड संकीर्तन होता है।

प्रेषिका—श्रीमती उमा पाण्डेय

पुरुषोत्तम-मासमें अखण्ड संकीर्तन एवं धर्म-ग्रन्थोंका पठन

पुण्यतोया नर्मदाके पावन तटपर श्रीनर्मदा मन्दिरमें श्रीरामचरितमानसके इक्यावन दिनोंके अखण्ड पाठ एवं सन्निकट राठौर धर्मशाला डिण्डोरीनगरमें अखण्ड संकीर्तन-का आयोजन हुआ। पुरुषोत्तम-मासमें विशेषरूपसे श्रीमद्भागवत, शिवपुराण और नर्मदापुराणादि धर्म-ग्रन्थोंकी कथाएँ सम्पन्न हुईं।

प्रेषक—श्रीमन्दौरी बाबा, श्रीकाशीप्रसाद अवधिया

परमपिता परमात्माकी असीम अनुकम्पासे महात्यागी बाबा श्रीरामचन्द्रदासजी महाराजद्वारा श्रीतालवाले बालाजी महाराजके संनिकट (जो रतनगढ़, राजस्थानमें है ।) स्थित प्रकोष्ठमें ज्येष्ठ सुदी २ संवत् २०३१ दिनाङ्क २५ मई १९७२ को शुभ मुहूर्तमें विश्व-मानव-कल्याणार्थ अखण्ड-भगवन्नाम-संकीर्तनका शुभारम्भ हुआ । संकट-मोचन-मङ्गलमूर्ति मारुतिनन्दन वीर हनुमान्‌के सांनिध्यमें मङ्गलमय भगवन्नामका अखण्ड-संकीर्तन-स्थापना-दिवस रतनगढ़के धार्मिक एवं आध्यात्मिक इतिहासमें चिर-स्मरणीय रहेगा ।

प्रारम्भमें केवल एक दिनके लिये—'**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥**' षोडश भगवन्नाम-संकीर्तनका आरम्भ किया था, जो श्रद्धालु सज्जनोंद्वारा तीन दिन तथा पुनः सात दिनके लिये बढ़ाया गया; किंतु बालाजी महाराजकी अहैतुकी कृपासे रतनगढ़की जनता एवं आस-पासकी देहाती जनता उस संकीर्तनसे इतनी अधिक आनन्दित, चमत्कृत एवं प्रभावित हुई कि उसे तपस्वी बाबासे संकीर्तनको निरन्तर चालू रखनेका आग्रह करना पड़ा । बाबाने स्वीकार कर लिया । एक दिनके लिये किया जानेवाला भगवन्नाम-संकीर्तन भगवत्कृपासे अखण्डरूपमें निरन्तर किया जाने लगा ।

भगवान्‌के सभी केन्द्रोंमें कीर्तन या स्मरणमें मानव-कल्याणकी अद्भुत शक्ति निहित है । फिर भी भगवान्‌के षोडशनाम-संकीर्तनका अपना विशेष महत्त्व है । 'कलिसंतरणोपनिषद्' में कहा गया है कि 'षोडशनाम' महामन्त्रके साढ़े तीन करोड़ जप करनेवाले मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है । चालू अखण्ड संकीर्तनमें सामान्य मन्थर गतिसे संकीर्तन करनेपर चौबीस घण्टोंमें ८,६४० मन्त्रों या १, ३८, २४० भगवन्नामोंका उच्चारण होता है । यह पावन संकीर्तन आठ वर्षोंसे निरन्तर चल रहा है । एक श्रद्धालु भक्त अनुमान लगा सकता है कि इतने वर्षोंमें कितने भगवन्नामोंका मङ्गलमय पावन उच्चारण हुआ है ।

प्रेषक—श्रीबलदेवप्रसाद इन्दौरिया, एम्० ए०, साहित्यरत्न

स्थान—मऊ, पत्रालय—मऊ छीबो (जि० बाँदा) (उ० प्र०) मे विगत सं० २००९ में विजयादशमीके पावन पर्वपर श्रीभागवत-मण्डलकी स्थापना हुई । इस संस्थानके सत्प्रयाससे सं० २०१३ वैशाखमें अखण्ड संकीर्तन और श्रीमद्भागवत-पाठका बृहत् आयोजन हुआ । इसमें भगवत्कृपासे योगिराज संत श्रीदेवरहवा बाबा और पू० श्रद्धेय श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज प्रभृति संत-महात्माओंके दर्शन और शुभाशीर्वाद प्राप्त हुए ।

इसी क्रममें ढाई वर्षका अखण्ड संकीर्तन नेपाली साधकोंद्वारा धर्मशाला राममन्दिरमें हुआ, जिसमें संकीर्तन-प्रेमी भक्तोंके माध्यमसे संकीर्तन-स्तम्भका श्रीगणेश किया गया, जिससे क्षेत्रमें आये दिन षोडश-नाम मन्त्र '**हरे राम हरे** राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥'की मधुर ध्वनि गूँजती रहती है । धाता, फतेहपुरमें सायंकाल श्रीहनुमान्‌जीके मन्दिरमें प्रतिदिन इस ध्वनिका संकीर्तन आज भी हो रहा है ।

प्रेषक—आचार्य श्रीकृष्णदेव त्रिपाठी, शास्त्री 'पत्रकार'

राजस्थानकी पश्चिमोत्तर सीमापर स्थित लुहारू (हरियाणा) के निकट ग्राम पहाडी, पत्रालय नकीपुर (भिवानी) में सुरम्य पर्वतपर सुशोभित भव्य और विशाल मन्दिरमें माँ चामुण्डाकी स्वयम्भू मूर्ति धर्मप्राण जनताको अपनी ओर आकृष्ट कर शान्ति प्रदान कर रही है । दोनों नवरात्रोंपर लाखों श्रद्धालु भक्त दूर-दूरसे यहाँ माताजीका दर्शन कर लाभान्वित होते हैं । नवरात्रोंपर यहाँ विशेषरूपसे भजन-संकीर्तनका आयोजन होता है ।

प्रेषिका—श्रीमती गीतादेवी शर्मा, काजड़ा

संकीर्तन-भजन और सत्सङ्ग

हमारे ग्राम—काजड़ा, जि० झुंझुनू (राजस्थान) में भगवान् श्रीराधाकृष्ण-मन्दिर, शिवालय और रेजडीमाताके मन्दिरमें एकादशी, मंगलवार, दोनों नवरात्र, पुरुषोत्तममास, श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, श्रीरामनवमी, महाशिवरात्रि आदि पर्वों तथा ग्रहणके अवसरपर वाद्ययन्त्रोंके साथ स्थानीय भक्तोंद्वारा सामूहिक सस्वर संकीर्तन-भजनादि कार्यक्रम होते हैं, जिनमें आबाल-वृद्ध, वनिता सभी बड़े उत्साह और चावसे भाग लेते हैं । प्रतिवर्ष श्रावणमासमें शुक्लपक्षकी एकादशीसे पूर्णिमापर्यन्त स्थानीय मन्दिर और शिवालयमें भगवान् राधाकृष्ण और शिवपरिवारकी विशेष झाँकियाँ सजायी जाती है, झूलनोत्सव (हिंडोला) खूब धूमधामसे मनाया जाता है । इसमें बाहरसे भी कई संकीर्तनकार और भजनोपदेशक भाग लेते हैं । प्रेषक—श्रीसुदर्शनकुमार शर्मा

(अगले अङ्कमें समाप्य)

पढ़ो, समझो और करो

सामूहिक संकीर्तनका लौकिक चमत्कार

यह सन् १९५४ के सितम्बर महीनेकी आँखों-देखी सत्य घटना है। मद्रास नगरमें बहुत दिनोंसे वर्षा न होनेके कारण पानीका अभाव हो गया। वहाँका पानी-सप्लाई-केन्द्र 'रेड हिल्स लेक' था, जो बिल्कुल सूख गया था। नगरकी जनता पानीकी संकट-मयी स्थिति हो जानेसे त्राहि-त्राहि कर रही थी। मैं उस समय मद्रासमें अनाजके व्यापारमें कार्य करता था। नगरनिवासियोंकी पानीके अभावमें दुःखद स्थिति देखकर मुख्यमन्त्री श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचार्यजी भी किंकर्तव्य-विमूढ़-से होकर चिन्तित थे। इस संकटका निवारण करना शासन-कर्ताओंके वशकी बात नहीं रही। ऐसी संकटकालीन स्थितिमें सबको यही बोध होने लगा कि अब तो बचानेवाला परमपिता परमात्माके सिवा और कौन है? मुख्यमन्त्रीजी अपनेको निर्बल अनुभव करने लगे। एक दिन उन्होंने एकाएक मद्रासके प्रमुख पत्र हिंदू तथा अन्य तामिल पत्रोंमें एक संवाद प्रकाशित करवा दिया कि कल प्रातःकाल समुद्र-तटपर एक सामूहिक ईश्वरीय करुण-प्रार्थनाके साथ संकीर्तनका आयोजन होगा। उसमें नगरकी समस्त जनताको सम्मिलित होनेकी अभ्यर्थना है।

दूसरे दिन इस विज्ञप्तिके अनुसार मुख्यमन्त्री तथा अन्य सभी मन्त्रिमण्डलके सदस्य कार्यकर्ता एवं नगरके लाखों नर-नारी प्रातःकाल होते-होते समुद्र-तटपर पहुँच गये। सर्वप्रथम भगवान्‌की पूजा की गयी। तत्पश्चात् विद्वान् पण्डितों एवं संत-महात्माओंने वैदिक मन्त्रोंद्वारा इन्द्र, वरुण आदि देवताओंकी प्रार्थना की, जो लगभग तीन घंटेतक चलती रही। उसके बाद मुख्यमन्त्री राजाजी-सहित लाखों नर-नारियोंने रामधुन एवं कृष्णधुनका सामूहिक संकीर्तन प्रारम्भ कर दिया। कई घंटोंतक उच्चस्वरों एवं गगनभेदी शब्दोंसे [illegible] रहा। इस प्रकार अश्रुपूरित नेत्रोंसे नर-नारियोंके संकीर्तन एवं वैदिक प्रार्थना आदि कार्यक्रम अनवरत चलते रहे। अनन्य विश्वास एवं श्रद्धापूरित [illegible] संकीर्तन प्रातःकालसे सायंकाल तक चलता रहा। यह एक अद्भुत दृश्य था। इस संकीर्तन-आयोजनके [illegible] गये। तब अन्तमें प्रार्थनाविभोर मुख्यमन्त्री राजाजीने अश्रुपूरित नेत्रोंसे [illegible] प्रार्थना करते हुए प्रार्थना की—'प्रभो! जनता पानी बिना तड़प रही है। आप सर्वशक्तिमान् हैं, अतः सबकी प्यास बुझानेमें आप ही समर्थ हैं। हम आपकी शरणापन्न हैं।' ऐसा कहते हुए उन्होंने संकीर्तन-समाप्तिकी घोषणा की। तदनन्तर समस्त जनता अपने-अपने घरोंको लौट गयी।

मद्रासकी जनता गर्मीसे विकल हो रही थी। मैं भी अपने निवासस्थान आकर सो गया। कहीं बादलका चिह्न भी नहीं था, किंतु रात्रिके ठीक दो बजे एकाएक घनघोर बादल छा गये। बिजलीकी चमचमाहट एवं बादलोंकी गर्जन-तर्जनके साथ एकाएक मूसलाधार पानी बरसने लगा, जो प्रातः छः बजेतक लगातार बरसता रहा। मद्रासके पानीका केन्द्र 'रेड हिल्स लेक' पानीसे भर गया। उतना ही पानी [illegible] पड़ा रहा। सारे नगरमें सड़कोंपर घुटनोंसे ऊपरतक पानी भर गया। कई सड़कोंपर तो नावें भी चलानी पड़ीं। पानीके लिये तरसनेवाली प्रजा यह कहने लगी कि 'हे ईश्वर बस कर, तेरी महिमा अपार है।' अनाजके गोदाम तथा कपड़ेकी दूकानों एवं गोदामोंमें पानी भर गया। सब लोग अपना-अपना बचाव करने लगे।

यह है, हार्दिक सामूहिक संकीर्तनकी करुणामयी ध्वनिसे द्रवित परब्रह्म परमात्माकी असीम कृपाका विलक्षण प्रभाव। —बालमुकुन्द श्याम पारीक

विश्वासः फलदायकः

यह घटना सन् १९७५की है। दतिया जिलेके एक छोटेसे गाँव 'डगरा कुआ'में रहनेवाले श्रीपं०भगतजी अध्यापक अपने ऐकान्तिक संकीर्तनके लिये बहुत विख्यात थे। वे प्रतिदिन गाँवसे एक मील दूर स्थित *साठेश्वर नामक शिव-मन्दिरमें जाकर हरिनाम-संकीर्तन करते थे। गाँव और साठेश्वर-मन्दिरके मध्य विस्तृत जंगल था, जिसमें शेर, चीता, भेड़िया आदि हिंस्र पशु स्वाभाविक रूपसे रहते थे। एक दिन ऐसी घटना घटी, जिसने उनके गृहस्थाश्रमको ही परिवर्तित कर दिया।

एक दिन जब वे प्रतिदिनकी भाँति घरसे साठेश्वर जाने लगे, तब उनका एक पञ्चवर्षीय बालक उनके साथ जानेके लिये आग्रह करने लगा, परंतु उन्होंने उसे समझा-बुझाकर रोक दिया और यह सोचकर कि 'बच्चा अब साथ नहीं चलेगा, वे सीधे साठेश्वर-मन्दिरके लिये चल पड़े। पर बच्चा भी चुपचाप उनके पीछे-पीछे चलने लगा और जंगलमें एक जगह रास्ता भूल गया। अध्यापकजी अपना संकीर्तन पूरा करके घर वापस आये तो उनकी धर्मपत्नीने चिन्तातुर होकर पुत्रके विषयमें पूछा। इसपर अध्यापकजी स्तब्ध रह गये; क्योंकि उन्हे ज्ञात ही न था कि बच्चा भी मेरे पीछे-पीछे चला गया था। संध्या हो चुकी थी, अतः दम्पतिने निश्चय कर लिया था कि बच्चा अवश्य ही हिंसक पशुका शिकार बन गया होगा। माँका ममत्वभरा शोक उमड़ पड़ा! वह अपने बच्चेके लिये बिलख उठी। दम्पतिका शोकाकुल होना स्वाभाविक था। तब अध्यापकजीने धैर्य धारण कर पत्नीको समझाते हुए कहा—'जिसकी मृत्यु आ गयी हो, उसे कौन बचा सकता है? और जिसकी मौत न आयी हो, उसे जंगलमें भी कौन मार सकता है?' तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर वे पुनः नित्यकी भाँति साठेश्वर गये और नाम-संकीर्तन पूरा करके घरकी ओर वापस लौटे। रास्तेमें जंगलमेंसे निकलता हुआ उन्हें अपना बच्चा दिखायी दिया। बच्चा दोनों हाथोंमें मोरका पंख लिये हुए था। अध्यापकजी गद्गद हो गये। वे ईश्वरकी कृपा और संकीर्तनके प्रत्यक्ष प्रभाव और चमत्कारसे आनन्दविभोर थे। तत्पश्चात् भगवान्को 'धन्य-धन्य' कहते हुए घरपर पहुँचे। बच्चेको सकुशल पाकर उनकी धर्मपत्नी भी ईश्वरके प्रति विशेष श्रद्धावनत और नतमस्तक थी।

इस छोटी-सी घटनासे अध्यापकजीको सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो गया था। अतः वे अपनी अध्यापकीसे त्याग-पत्र देकर पत्नीको समझा-बुझाकर सदाके लिये संन्यासी बन गये। सन् १९७५ से आजतक उनका कोई पता न चला कि वे कहाँ रहते हैं!

—अतरसिंह दांगी एम्० ए०

संकीर्तन-संस्मरण

[प्रयागराजका संकीर्तन]

द्वितीय महायुद्धकी विनाशकारिणी विभीषिकासे त्रस्त जनता प्रायः सर्वत्र भगवन्नामका आश्रय लेकर शान्ति-सुरक्षा-हेतु हरिनाम-कीर्तनमें जुट गयी थी। उन दिनों तीर्थराज प्रयागके त्रिवेणीतटपर इक्कीस दिनोंतक चलनेवाले संकीर्तनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है, जिसका आयोजन पूज्य महामना मालवीयजी महाराजकी संरक्षतामें हुआ था। ब्रह्मचारी प्रभुदत्तजी महाराज इसका संचालन करते थे। इसमें प्रायः सभी प्रदेशकी मण्डलियाँ सम्मिलित थीं। बिहारसे नौ सौ कीर्तनियोंको अपने व्ययसे लिवा लाकर श्रीकुमार श्यामनन्दसिंह सम्मिलित हुए थे। प्रातःकाल नित्यक्रियासे निवृत्त होकर पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीके आनेपर प्रतिदिन संकीर्तन आरम्भ हो जाता था। 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥' की गगन-भेदी ध्वनि गूँज उठती थी और कीर्तनकर्ता तथा दर्शक भाव-विभोर हो जाते थे। बिहारी पार्टीकी मङ्गल ध्वनि 'मंगल भवन अमंगलहारी—सीताराम सीताराम। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी'—

* (सिंध नदीके संगमको साठ कहते हैं)।

सीताराम सीताराम ॥' इस मीठी स्वर-लहरीसे प्रारम्भ होती थी और—

राम चरन बारिज जब देखौं—सीताराम सीताराम ।
तब निज जनम सुफल करि लेखौं—सीताराम सीताराम ॥

इस अन्तिम ध्वनिसे समाप्त होती थी ।

बंगाल-पार्टी चैतन्य महाप्रभुकी संकीर्तन-प्रणालीके अनुसार कीर्तन करती थी । उनके कीर्तनका प्रभाव अद्भुत था । श्रोता भी भाव-मुग्ध हो जाते थे ।

कीर्तनका भाव-प्रभाव

हमारे गाँव जगोली (पूर्णियाँ) में छः-सात वर्ष पहले बंगालसे एक ऐसी कीर्तनमण्डली मँगवायी गयी थी, जिसमें छः वर्षसे आठ वर्षतकके बालक-बालिकाएँ कीर्तनिये थे । उनकी कीर्तन-प्रणाली और सुमधुर कीर्तनध्वनिसे मानो भक्तिकी प्रबल धारा बह चली थी । कीर्तनध्वनि और कीर्तनप्रक्रिया चैतन्यके अनुकरणपर होती थी । इस मण्डलीकी कीर्तनस्वर-लहरीसे मुग्धकारी दृश्य उपस्थित हो जाता था और श्रोता भी भाव-विभोर हो जाते थे । प्रेषक—मोतीलालजी गोस्वामी

भगवान् गायक-रूपमें प्रकट हुए

सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वरमें सभी शक्तियाँ सदैव विद्यमान हैं, पर एक शक्तिका सर्वथा अभाव है; वह है—किसी सच्चे भक्तके करुण-क्रन्दनकी उपेक्षा कर सकनेकी शक्ति । जभी किसीने हृदय खोलकर पुकारा, उन अनाथ-नाथको प्रकट होना ही पड़ा है । भक्ति-भाव-विभोर होकर लगायी गयी टेरमें भगवान् देर कर ही नहीं सकते । चाहे जिस रूपमें आयें, शीघ्र ही आ जाते हैं । यह आवश्यक नहीं है कि सभीकी पुकारपर भगवान् विष्णु, शिव, राम या कृष्णके रूपमें ही प्रकट हों, पर यह निश्चित है कि आप प्रकट होते हैं । अनन्त बार भगवान् ऐसे भी आते हैं जिससे लोग पहचान नहीं पाते; पर भक्तोंसे वे कबतक छिपे रह सकते हैं ! ऐसी टेरसे भक्तवत्सलको प्रकट होनेके लिये हमारे गाँवके एक भक्तने बाध्य किया ।

घटना लगभग पचास वर्ष पहलेकी है । हमारे गाँव विजयघाट (बिहार)में श्रीलुड्कू पण्डित नामके एक विपन्न कृषक थे । वे आडम्बरशून्य भक्त थे । एक बार उन्होंने तय किया कि किसी प्रकार पैसेका प्रबन्ध कर श्रीसत्यनारायण भगवान्‌की पूजा तथा संकीर्तन-का आयोजन किया जाय । पर पूजा-संकीर्तन उसी दिन करानी चाहिये, जिस दिन उनके निकटके गाँवके निवासी भक्तवर गेंदा पण्डित संकीर्तनमें सम्मिलित हों । पण्डित गेंदाको सदैव बाहरसे निमन्त्रण आते रहते थे । लुड्कू पण्डितके लगातार आग्रह करते रहनेपर गेंदा पण्डितने एक दिन रात्रिकालमें संकीर्तन करनेका समय निकाला । बड़े हर्ष और उल्लाससे लुड्कू पण्डितने भगवत्-पूजनका आयोजन किया । पर निश्चित समयपर गायक महोदय न आये । विलम्ब देख सभी अधीर होने लगे । उसी समय बहुत विलम्बसे गायक महोदयका शुभागमन हुआ । इसपर लुड्कू पण्डितने विनोद-भरे शब्दोंमें व्यंग्यकी बातें कहीं । संकीर्तनमें भाग लेनेवाले अन्य सज्जन निकटके ही निवासी थे । पण्डितजी मूल गायक थे । कथा समाप्त होनेपर प्रसाद-वितरण प्रारम्भ हुआ । उसी समय गेंदा पण्डित गायब हो गये । घरवालोंको बहुत खेद हुआ कि विनोदमें कुछ कटु शब्दोंके प्रयोगसे भक्तजी चले गये और प्रसाद ग्रहण नहीं किया । उनका गाँव वहाँसे लगभग आधा किलोमीटरपर था । लुड्कू पण्डित कई साथियोंके साथ प्रसाद लेकर रात्रिकालमें ही उनके घर पहुँच गये । पर उन्हें वहाँ पहुँचते ही महान् आश्चर्य हुआ । उन्होंने देखा—'गेंदा पण्डितजी पेट-दर्दसे पीड़ित थे ।' परिजनके सभी सदस्य कहने लगे कि पण्डितजी सूर्यास्त समयसे ही बेचैन हैं । लुड्कू पण्डित

कहते थे कि अभी कुछ देर पहले पण्डितजी संकीर्तन करके उनके यहाँसे लौटे हैं। प्रसाद लिये बिना ही चले आये, इसलिये हमलोग प्रसाद देने आये हैं। इस प्रकारकी बात सुनकर सबको परम आश्चर्य हुआ तथा सबने यह विचारकर निश्चय किया कि आज तो भगवान् ही गेंदा पण्डितके रूपमें संकीर्तनमें सम्मिलित हुए थे। गाँव-निवासियोंमें कोई लुड़कू पण्डितकी भक्ति-भावनाकी प्रशंसा करने लगे तो कोई गेंदा पण्डितके रूपमें भगवान्‌के प्रकट होनेके कारण पण्डितजीकी भक्तिका गुण गाने लगे। अधिकतर लोग दोनों भक्तोंकी महत्तापर परम प्रसन्न थे।

—श्रीछेदी

भगवान् शंकरकी अहैतुकी कृपा

घटना दिनाङ्क ५ अक्टूबर १९७८ की है। भगवान् शंकर मेरे आराध्यदेव हैं। मै जिस मुहल्लेमें रहता हूँ, वहाँ श्रीशंकरजीका एक विशाल मन्दिर है। उसमें एक प्राचीन शिवलिङ्ग है। उस मन्दिरके चारों ओर विशाल और प्राचीन वट-वृक्ष हैं, जो एक प्रकारसे उसके मुख्य द्वार-स्वरूप बन गये हैं। मै १९७१ ई०से लगातार इस शिवलिङ्गकी आराधना करता आ रहा हूँ। दिनाङ्क ६–१०–१९७८को सायंकाल मेरी धर्मपत्नीको कालरा (हैजा) हो गया। रात्रिके ग्यारह बजेतक उसे बहुत उल्टी और दस्त हुए, शरीर ठंडा हो गया तथा नाड़ी छूट गयी। मै हताश हो गया। मध्य-रात्रिमें कोई सहारा भी न था। जिस कमरेमें वह लेटी थी, उसीमें भगवान् शंकरके चित्र लगे थे। भूतभावन भगवान् शिवको सम्बोधित करते हुए मैंने बड़े करुण-हृदयसे याचना की—'प्रभो! आप संसारके सबसे बड़े चिकित्सक अकारण-करुण तथा करुणा-वरुणालय एवं दीनोंके परमाश्रय हैं। यह (मेरी धर्मपत्नी) आपकी ही शरणमें है। अब आप ही इसकी रक्षा कर सकते हैं।' इतना कहकर मै बाहर आया। मैंने सड़कपर देखा कि उसी मन्दिरके पुजारी ठाकुर बाबा आ रहे हैं। जब वे मेरे दरवाजेपर आये, तब मैंने उनसे अपनी धर्मपत्नीका सब हाल बतलाया। वे तुरंत ऊपर मकानमें आये और जेबसे एक पुड़िया दवा निकालकर उन्होंने हमें दी और कहा—'इसे खिला दो।' मैंने चम्मचमें दवा पानीके साथ उसके मुखमें डाल दी। यह पुड़िया देकर श्रीठाकुर बाबा चले गये और मुझसे कह गये कि घबराना नहीं, भगवत्कृपासे सब ठीक हो जायगा। फिर मैं सो गया।

प्रातःकाल हुआ तो देखा कि मेरी धर्मपत्नी बैठी है। उसने मुझसे कहा—ठाकुर बाबासे एक पुड़िया दवा और ले आइयेगा; क्योंकि पहली पुड़िया खाते ही मेरा रोग प्रायः शान्त हो गया। मै ठाकुर बाबाके घर गया और उनसे बताया कि आपकी पहली पुड़ियासे मेरी पत्नीको बहुत लाभ हुआ, इसलिये एक पुड़िया दवा और दे दीजिये, जिससे वह पूर्ण स्वस्थ हो जाय। इसपर ठाकुर बाबाने आश्चर्यके साथ कहा, 'मै स्वयं तीन दिनसे बीमार हूँ, मै कहीं गया ही नहीं और न मैंने किसी प्रकारकी कोई पुड़िया दी।' अब मैं समझ गया कि वे स्वयं मेरे आराध्यदेव भूतभावन भगवान् ही थे। धन्य है, उनकी अहैतुकी कृपा और करुणामयी वत्सलता।

—रमेशचन्द्र प्रकाश

रामनाम दिव्य औषधि

घटना १९६८ की है। जिला छिन्दवाड़ा (म० प्र०,) वन-मण्डल-परिक्षेत्र परासियाके पास आरक्षित वनमें पथरई नामकी एक छोटी-सी नदी है। उसीके तटपर एक नवयुवक संत गुफा बनाकर चातुर्मास्यमें निराहार रहकर रामनाम-जपकी साधना कर रहे थे। महात्माकी तपःस्थलीके चारों ओर सघन वन था। तीन-चार मीलकी दूरीपर छोटी-छोटी बस्तियाँ हैं।

उन दिनों क्षेत्रभरमें पशुओंकी बीमारी बढ़ गयी थी। प्रतिदिन दस-पंद्रह पशु मरने लग गये थे। किसानोंकी एक टोली बाबाकी तपःस्थली पथरई-तटपर आयी और बाबासे पशुओंकी रक्षाके लिये प्रार्थना की। बाबाजीने कहा—'रामनाम अद्भुत दवा है, इससे भवरोग भी ठीक हो जाता है।' उन्होंने एक झण्डा दिया और हरिनाम-संकीर्तन प्रारम्भ कराकर आदेश दिया—'जाओ, कीर्तन करते हुए पूरे गाँवकी परिक्रमा करके देवस्थानमें चौबीस घंटे खड़े-खड़े अखण्डसंकीर्तन-नाम-सप्ताह करो, हवन करो, प्रसाद वितरण करो, रोगी पशुओंको भी खिलाओ।' बस क्या था, सचमुच चमत्कार हो गया।

फिर तो कई पटेलोंने अपने-अपने गाँवमें वैसा ही नाम-संकीर्तन आरम्भ कर दिया। प्रभात-फेरी निकाली जाने लगी, जिससे एक सप्ताहमें ही क्षेत्रभरके सभी पशुओंको परम लाभ हो गया और भगवत्कृपासे वे पुनः कभी बीमार न हुए। महात्माजी रामनामके साधक होनेके साथ तपस्वी एवं प्रकाण्ड विद्वान् भी थे। वे प्रायः मौन ही रहते थे। जब दर्शकोंकी और सत्संगी भाइयोंकी अधिक भीड़ होने लगी, तब उन्होंने सायं चार बजे सत्संगका समय नियुक्त कर दिया। अतएव दूर-दूरसे कई विद्वान् जिज्ञासु शास्त्रीय ज्ञान-पिपासा बुझाने वहाँ आने लगे। बाबाका सत्संग प्रायः 'राम-नाम-महिमा'-से ही प्रारम्भ होता था।

एक दिन हमारे मित्र गोविन्दजी शास्त्री एक समस्या लेकर मेरे घर आये और बोले—'महात्माजीके यहाँ आश्रमपर चला जाय।' हमलोग कई दर्शक बाबाके पास पहुँचे। बाबा गुफासे निकलकर चौकीपर बैठ गये, अभिवादन, कुशल-क्षेमके बाद सत्संग प्रारम्भ हो गया। 'मेटत कठिन कुअंक भालके' (रामनाम-) महिमाका प्रकरण चल रहा था। उसी समय तीन-चार सज्जन और आ गये। उनके साथमें एक दस-ग्यारह वर्षका बालक भी था। वह गूँगा था। इससे उसके माता-पिता बड़े दुःखी थे। वे बाबाजीका आशीर्वाद लेने आये थे।

बालकको बाबाजीके चरणोंमें डाल दिया। बाबाने बड़े स्नेहभावसे उसे उठाकर मुखमें अँगुली डाली और जिह्वाको हिलाया 'राऽऽम राऽऽम' स्वयं बोल रहे थे और हम सभीको भी साथमें बोलनेका आदेश दिया। थोड़ी देरमें यह बालक भी 'राऽऽम राऽऽम' उच्चारण करने लगा। भगवत्कृपासे उसे वाणी मिल गयी। हमलोगोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा; परंतु बाबाने इस घटनाको किसीसे भी न कहनेका आग्रह किया और बोले—'प्रभु-नाममें अमोघ शक्ति है। कभी-कभी चित्त शुद्ध होनेपर थोड़ी झलक मिलती है।' वे मुस्कराकर पुनः कहने लगे—'आपलोगोंने ही तो एक साथ नाम उच्चारण कर इस बालकको वाणी दी है। आपलोग प्रभु-नाम-महिमाके बड़े धनी हैं, धन्य हैं।'

उन्हीं दिनो वे 'रामनाम-महिमापर' एक ग्रन्थ लिख रहे थे, उसे उन्होने हमलोगोको सुनाया। वह 'श्रीरामनामामृत' सुनकर हमलोग आनन्दविभोर हो गये। उस स्थानपर बाबाने एक यज्ञ किया। यज्ञ सम्पन्न होनेके बाद बाबा कहीं अन्यत्र जाना चाहते थे, परंतु भक्तोंके आग्रहसे कुछ दिनके लिये रुक गये। वहीं भक्तोंने बाबाके लिये एक भव्य सीताराम-मन्दिर (संकीर्तन-भवन) भी बनवा दिया। वह स्थान एक छोटा-सा तीर्थ बन गया था। प्रतिमाहकी एकादशी, पूर्णिमा, अमावस्याको अखण्ड संकीर्तन, हवन तथा भण्डारा होता था। सहस्रों श्रद्धालु नर-नारी इकट्ठे होते थे। शरत्पूर्णिमाको भी महोत्सव होता था। कुछ ही दिनोंके बाद बाबा कहीं चले गये।

—रविशंकर मिश्र

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥

'जिन श्रीहरिका नाम-संकीर्तन समस्त पापोका नाश कर देता है, जिनके निमित्त किया गया प्रणाम सभी प्रकारके तापोको मिटा देता है, उन परात्पर प्रभुके पादपद्मोंमें हम श्रद्धापूर्वक नमन करते है ।'

श्रीभगवन्नाम-संकीर्तनके समर्थ प्रेरक संत श्रीचैतन्य महाप्रभुका पञ्चशती-समारोह इस वर्ष मनाया जा रहा है। महाप्रभुका संकीर्तन-संदेश जन-जनतक पहुँच सके, इस दृष्टिसे इस वर्ष 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें 'संकीर्तनाङ्क' आपकी सेवामें प्रस्तुत है ।

मनुष्य-शरीर प्राप्त करनेके बाद भी यदि व्यक्ति इस संसार-सागरको पार नहीं करता, जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त नहीं होता, अर्थात् उसे भगवत्पद-प्राप्ति नहीं होती तो वह एक महान् हतभागी ही माना जायगा । संत गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने तो यहाँतक कहा है कि ऐसा व्यक्ति आत्महत्यारा है, अर्थात् अपनी आत्माका स्वयं हनन करता है—

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ ।
सो कृतनिंदक मंद मति आत्माहन गति जाइ ॥

शास्त्रों, वेदो, पुराणो और ऋषि-महर्षियोंने जन्म-जन्मान्तरके पापोसे छूटकर परमात्माके परम-पदको प्राप्त करनेके लिये दुःख-कातर जीवोंके कल्याणार्थ अनेक उपाय और विधियाँ बतायी है, जिनका यथाधिकार आचरण करनेसे जीव पापमुक्त होकर सदाके लिये निरतिशयानन्द परमात्म-सुखको प्राप्त कर सकता है; परंतु इस कलिकालमें जीवनकी अवधि तो घटती जा रही है तथा मनुष्य अनास्था-संकटसे पीडित होता जा रहा है । ईर्ष्या, द्वेष, कलह, छल, कपट, मिथ्याभाषण, मिलावट, चोरी, व्यभिचार और हिंसा आदि आजके मानवका स्वभाव बनता जा रहा है । भोगोंकी प्रबल लालसाने प्रायः सभीको विवश और उन्मत्त बना रखा है । आजका मानव सुख चाहता है, परंतु धर्मानुमोदित सुखसे सुखी होना नहीं चाहता, अपितु सुखकी मूल-भित्ति धर्मका सर्वनाश करनेपर तुला है । फलतः सुखके स्वप्नसे भी जगत्को केवल निराश ही रहना पड़ता है । हमारी इस दुर्दशाको ऋषि-महर्षि तथा शास्त्रकारोंने पहले ही जान लिया था । इसीसे उन्होने दयापरवश हो हमारे लिये एक ऐसा उपाय बतलाया जो इच्छा करनेपर सहजमें ही काममें लाया जा सकता है, जिसका वह महान् फल होता है—जो पूर्वकालमें बड़े-बड़े यज्ञ, तप और दानसे भी नहीं होता था । वह उपाय है श्रीहरिनामका कीर्तन और स्मरण ।

शास्त्र कहते हैं कि सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञोसे और द्वापरमें सेवा-परिचर्यासे जो पद प्राप्त होता था, वही कलियुगमें केवल श्रीहरिनाम-कीर्तनसे प्राप्त होता है । वेदान्तदर्शनके निर्माता भगवान् व्यासदेव-रचित भागवतमें ज्ञानिश्रेष्ठ श्रीशुकदेवजी महाराज मृत्युकी प्रतीक्षा करनेवाले राजा परीक्षित्से बल देकर कहते है—'राजन् ! दोषोसे भरे हुए इस कलियुगमें एक महान् गुण यह है कि केवल श्रीकृष्णके नाम-कीर्तनसे ही मनुष्य कर्मबन्धनसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त कर लेता है ।'

भगवत्संकीर्तनकी परम्परा बहुत पुरानी है । आदि-कालसे ही मानव-मनमें ईश्वरके प्रति आस्तिक भावके उदय होनेपर सभी धार्मिक अनुष्ठानोंके प्रारम्भ और उपसंहारमें संकीर्तनका आयोजन होता आया है । वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, महाभारत, रामायण, श्रीमद्भागवत, गीता, शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र एवं नारद-भक्तिसूत्र आदि सभी प्राचीन ग्रन्थोमें संकीर्तनकी महिमा विशेषरूपसे विद्यमान है । साथ ही भगवान्‌के स्तवन, उनके यशोगान और उन्हें प्रसन्न करनेके अनेक मन्त्र, स्तोत्र, व [illegible] दि सं

हुए हैं, जो संकीर्तनके माध्यम रहे हैं। देवगणोंमें ब्रह्मा, शिव, विष्णु, शेषनाग, देवराज इन्द्र आदि प्रभु-सुयश-गायकोंमें अग्रणी माने जाते हैं। ब्रह्माजीने सनकादिकोंको संकीर्तनके उपक्रमका आदेश दिया था। सनकादिसे नारद, नारदसे व्यास, व्याससे शुकदेवजीको संकीर्तनकी शिक्षा मिली, जिसे उन्होंने श्रीमद्भागवतकी रसमयी कथा-रूपमें प्रस्तुत किया। यह है, संकीर्तनकी प्राचीन-परम्परा।

अर्वाचीनकालमें पाँच सौ वर्ष पूर्व नवद्वीपके अन्तर्गत नदिया नामक ग्राममें एक बंगाली परिवारमें श्रीचैतन्य-महाप्रभुका प्रादुर्भाव हुआ। इनका बाल्यावस्थाका नाम 'निमाई' था। इन्होंने पचीस वर्षकी अवस्थामें संन्यास ग्रहण कर लिया तथा इस कलिकालमें संसार-सागरको पार करनेवाली नौकारूप संकीर्तनका दिव्य संदेश जन-जनतक पहुँचाया। इन्होंने मुक्तकण्ठसे यह घोषणा की थी कि 'भय न करो, सबसे बड़ा प्रायश्चित्त और परमात्माके प्रेम-सम्पादनका सर्वोत्तम साधन श्रीहरिनाम-संकीर्तन ही है। संसार-वासनाका परित्याग कर दृढ़ विश्वासके साथ इसीमें लग जाओ और अपना उद्धार कर लो।' इन्होंने केवल ऐसा कहा ही नहीं, अपितु स्वयं लोगोंके घरोंपर जाकर और अपने परम भागवत साथियोंको भेजकर येनकेन प्रकारेण लोगोंको हरिनाम-संकीर्तनमें प्रवृत्त भी किया।

इसी प्रकार भक्तश्रेष्ठ कबीर, नानक, तुकाराम, रामदास, ज्ञानदेव, नामदेव, मीरा, तुलसीदास, सूरदास, नन्ददास, चरणदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, सहजोबाई, दयाबाई, सखूबाई आदि भागवतोंने भी हरिनामकीर्तनको ही जीवोंके कल्याणका प्रधान उपाय समझा और अपनी दिव्यवाणीसे इसीका प्रचार किया। आधुनिक समयमें भी भारतवर्षमें जितने संत-महात्मा हुए हैं, सभीने एक स्वरसे मुक्तकण्ठसे भगवन्नाम-महिमाका गान किया और आज भी वे कर रहे हैं।

शास्त्रोंमें नाममहिमाके इतने अधिक प्रसङ्ग हैं कि उनकी गणना करना भी एक कठिन कार्य है। इतना होते हुए भी अधिकांश लोग प्रायः नामका आश्रय नहीं लेते। उन्हें नामकी महिमापर विश्वास ही नहीं होता। नाम-संकीर्तनकी सहजताको देखकर वे नाम-महिमाको अर्थवाद मान लेते हैं तथा इस सरल और महान् साधनसे वञ्चित रह जाते हैं।

प्रायः यह देखा जाता है कि भगवन्नामका वास्तविक स्मरण विपत्तिकालमें ही होता है। जब मनुष्यके सब सहारे छूट जाते हैं, कहींसे कोई आशा नहीं रहती, किसीसे कोई आश्वासन नहीं मिलता, मित्र, स्नेही, सुहृद् और पारिवारिक जनोंका ऐकान्तिक अभाव हो जाता है, तब मनुष्य घबरा उठता है और सहसा उसके मुँहसे यह उद्‌गार निकल पड़ता है कि 'हे राम! हे भगवन्! आप ही बचाइये, अब और कोई सहारा नहीं है।' ऐसे विपरीत समयमें अबाधगतिसे भगवन्नामका उच्चारण होने लगता है तथा अन्तर्हृदयसे स्मरण भी होने लगता है। इसीलिये तो माता कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णसे विपत्तिका वरदान माँगा था। उसने कहा था कि 'कृष्ण! तेरा स्मरण विपत्तिमें ही होता है, इसलिये मुझे बार-बार विपत्तिमें डालता रह।' तात्पर्य यह कि दुःखी, अनाश्रित और दीनजन ही भगवन्नामका आश्रय लेते हैं। इसीलिये कुछ लोग जो विषयोंके बाहुल्यसे मोहवश अपनेको बड़ा, बुद्धिमान्, धन-जनवान् और सुखी मानते हैं, भगवन्नाम लेकर अपनी समझसे दीन-दुःखी और अनाश्रितोंकी श्रेणीमें सम्मिलित होना नहीं चाहते।

संसारमें विभिन्न विचारधाराके लोग रहते हैं। कुछ लोग जो पाप करना नहीं छोड़ते, वे नाम-जप-संकीर्तनको पापका साधन बना लेते हैं। यद्यपि नामके प्रभावसे बड़ा-से-बड़ा पापी मनुष्य भी भगवान्‌के परम-पदको प्राप्त हो जाता है, परंतु जो मनुष्य हरिनामकी दुहाई

देकर मनमें दृढ संकल्प करके जानबूझकर पापोंमें प्रवृत्त होता है, उसका कहीं निस्तार नहीं होता।

हम सभीके लिये यह लज्जाकी बात है कि इस भगवत्प्राप्तिरूप लक्ष्यकी ओर चलने-चलानेवाला भारत आज परमार्थरूप इस अध्यात्म-पथको छोड़कर बुरी तरहसे भोगाभिमुख होता हुआ लक्ष्यभ्रष्ट हो रहा है। जो देश अध्यात्म-शिक्षामें सबका गुरु था, आज भी जगत्के मनीषी-साधक आध्यात्मिक प्रकाशकी प्राप्तिके लिये जिस भारतकी ओर देखते हैं, वही आज भोग-परायण होकर अपने स्वरूपको भूलकर पतनकी ओर बढ रहा है। शासक-शासित, धनी-गरीब, विद्वान्-अविद्वान्, पुरुष-स्त्री—सभीकी प्रायः यही दशा है। सदासे भारतका प्रधान बल था—उसका आध्यात्मिक बल, भगवत्कृपाकी अमोघ शक्ति, जिससे आज वह विमुख होता जा रहा है। ऐसी विषम परिस्थितिमें चराचर जगत्के लिये कल्याण-कारी सर्वजन-सुलभ तथा सर्वोपरि सर्वमान्य साधनरूप श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन जन-जनतक पहुँचानेकी दृष्टिसे 'कल्याण'के विशेषाङ्करूपमें 'संकीर्तनाङ्क' प्रकाशित किया जा रहा है। इसका एकमात्र लक्ष्य है—भोगा-भिमुखी प्रवृत्तिसे हटकर भगवदभिमुख होनेके लिये प्रेरणा प्रदान करना।

संकीर्तनका एकमात्र उद्देश्य प्रभुप्रेमकी प्राप्ति ही है। यद्यपि संकीर्तनके भेद-प्रभेद भी किये गये हैं, परंतु इनमें नाम-कीर्तन ही प्रधान है। भगवान्के गुण, रूप, लीलाओंके गानकी परम्परा भी बहुत पुरानी है और उनका भी उतना ही महत्त्व है। शास्त्रोंमें नाम-जपका भी विधान है। नाम-जप और नाम-संकीर्तनमें यही अन्तर है कि जप गोपनीय, नादरहित, व्यक्तिगत होता है, जिसमें केवल जपकर्ताका कल्याण समाहित है, जबकि नाम-कीर्तन उच्च स्वरसे होता है, गाजे-बाजे, नृत्य, ताल, ध्यान-धारणा, हावभाव, अङ्गमुद्राओंसहित होता है। सामूहिकरूपसे उच्च स्वरमें होनेके कारण वह विशेष आकर्षक और लोक-कल्याणकारी तो होता ही है, साथ ही वातावरणको भी प्रभावित करता है। इससे आस-पासके समस्त चराचर जीवोंमें भक्तिरसका संचार होता है। जैसे कोई व्यक्ति अपने नामका सम्बोधन सुनकर उस ओर उन्मुख हो जाता है, उसी प्रकार शास्त्रवचनानुसार भगवान् भी अपने नामका अनुगमन करते हैं, नाम लेते ही उपस्थित हो जाते हैं। इस प्रकार नामकीर्तनद्वारा उनकी सर्वव्यापकता अखिल ब्रह्माण्डको प्रभावित करती है। भगवन्नाम-संकीर्तनका अन्तिम परिणाम है भगवान्में एकान्त प्रेम हो जाना। ऐकान्तिक प्रेम होनेके बाद प्रेमास्पदके मिलनेमें जरा भी विलम्ब नहीं होता।

इस 'संकीर्तनाङ्क'के लिये जिन संत-महात्माओं, आचार्यों, विद्वानों, साधकों तथा साहित्यिक सज्जनोंने लेखादि भेजकर हमारी सहायता की है, उन सबके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। उनके उपकारोंका हम क्या बदला दे सकते हैं। इस बार विशेषाङ्कमें प्रकाशनार्थ आदरणीय लेखक महोदयोंने कृपापूर्वक जितनी सामग्री भेजी, उतनी इस अङ्कमें प्रकाशित नहीं की जा सकी। इसके कई कारण हैं—स्थानाभाव मुख्य कारण है। इसके अतिरिक्त कुछ लेख विलम्बसे आये। विलम्बसे आनेवाले लेखोंमें कुछ तो बड़े ही उत्कृष्ट कोटिके थे, जिनमेंसे कुछको यहाँ छापनेका प्रयत्न भी किया गया, पर अधिकांश छूट ही गये। उन्हें आगे फरवरीके परिशिष्टाङ्कमें देनेका प्रयत्न किया जा रहा है। पर यथार्थमें तो लेख इतने अधिक है कि बचे हुए लेखोंसे इसी प्रकारका एक विशेषाङ्क और भी प्रकाशित हो सकता है। अतः चाहते हुए भी हम इन सब लेखोंको प्रकाशित नहीं कर सके। इसके लिये लेखकोंको कष्टका अनुभव होना स्वाभाविक है, पर हमारी भी विवशता है जिसके कारण

उनसे क्षमा-प्रार्थनाके अतिरिक्त हमारे पास कोई दूसरा चारा नहीं है ।

संयोगकी बात है कि विशेष मँहगाईके कारण पिछले कई वर्षोंसे 'कल्याण'का कलेवर पहलेकी अपेक्षा कुछ कम होता गया । यद्यपि मँहगाई तो अभी भी बढ़ती ही जा रही है, कागजके मूल्य तथा मजदूरी आदिमें अत्यधिक वृद्धि होती जा रही है, इसी कारण इस बार न चाहते हुए भी 'कल्याण'के मूल्यमें कुछ वृद्धि करनी पड़ी; परंतु प्रसन्नताकी बात है कि 'कल्याण'में पृष्ठ-संख्या एवं चित्र भी बढ़ानेका निर्णय लिया गया है। गत वर्षोंकी अपेक्षा इस वर्ष विशेषाङ्कमें ४० पृष्ठ अधिक बढ़ाये गये हैं । साथ ही साधारण मासिक अङ्कोंमें भी ८ पृष्ठ बढ़ाकर और अधिक सामग्री देनेका विचार है । इसी प्रकार विशेषाङ्कके चित्रोंकी संख्यामें भी वृद्धि कर दी गयी है ।

इस विशेषाङ्कमें लेखोंके अतिरिक्त संकीर्तनसे सम्बद्ध श्रद्धेय संत-महात्माओं तथा भक्तजनोंके जीवन-चरित्र भी देनेका प्रयत्न किया गया है । कुछ सहस्रनाम एवं शतनाम-स्तोत्रोंका भी संकलन हुआ है । साथ ही घटनाओं तथा अखण्ड-संकीर्तनसम्बन्धी सूचनाओंका भी संकलन किया गया है । विषय-वस्तुकी दृष्टिसे कुछ लेखोंमें पुनरुक्तियाँ भी आ गयी हैं, जो स्वाभाविक हैं । पर उनसे लाभ ही होगा । सद्-वस्तुका बार-बार स्मरण होना श्रेयस्कर ही होता है ।

इस अङ्कके सम्पादनमें हमने अपने सम्पादकीय विभागके पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल, पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा तथा पं० श्रीराजबलिजी त्रिपाठी आदि महानुभावोंका अत्यधिक हार्दिक सहयोग प्राप्त किया है । इसके सम्पादन, प्रूफ-संशोधन, चित्रनिर्माण आदि कार्योंमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहायता मिली है, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते ।

वास्तवमें 'कल्याण'का कार्य भगवान्‌का कार्य है । अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं । हम तो केवल निमित्तमात्र हैं । कल्याण-सम्पादन-कार्यके अन्तर्गत भगवद्भक्ति एवं भगवन्नामका पवित्र संयोग सौभाग्यवश हम सबको प्राप्त हुआ है, पाठकोंको भी यह प्राप्त होगा, यह हम सबके लिये कम लाभकी बात नहीं है ।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये आप सबसे पुनः क्षमा-प्रार्थना करते हुए भगवान् श्रीअच्युत (नारायण)-का वन्दन करते हैं, जिनके नाम-स्मरणमात्रसे जप-तप, यज्ञ तथा अन्य सभी क्रियाओंमें जो न्यूनता (त्रुटि) रह जाती है, वह पूर्णताको प्राप्त होती है—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

—राधेश्याम खेमका (सम्पादक)